मतादर्श

सामाजिक विज्ञान, मानविकी एवं वाणिज्य की शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ० प्रसून दत्त सिंह

प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

संपादक

डॉ० रितेश भारद्वाज

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

मेखला प्रकाशन

एफ-3/139, सेक्टर-16, रोहिणी

वर्ष : 17 **अंक** : 4 ❑ अक्टूबर–दिसम्बर, 2025

मतादर्श

मतादर्श भारत में समाचार पत्रों के निबंधक (आर.एन.आई.) द्वारा अनुमोदित है।

संपादक मंडल

डॉ॰ आर. एन. कुंअर

डॉ॰ बामेश्वर सिंह

डॉ॰ विद्या भूषण श्रीवास्तव

डॉ॰ रवीन्द्रनाथ राय

डॉ॰ अमरकान्त सिंह

डॉ॰ लक्ष्मेश्वर ठाकुर

डॉ॰ हिमांशु शेखर

फोन : 01135522994, 40564514, 22753916

e-mail : matadarsh.journal@gmail.com

मुद्रक एवं प्रकाशक अलका सिंह द्वारा एफ–3/139, सेक्टर–16, रोहिणी दिल्ली–110089 से प्रकाशित तथा बी. के. ऑफसेट, नवीन शाहदरा दिल्ली–32 से मुद्रित

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

Editorial

महिलाओं ने बदल दी बिहार चुनाव की तसवीर

लालू शासन में सामान्य जनता लचर कानून-व्यवस्था से त्रस्त थी। तब बलात्कार, अपहरण और फिरौती, हत्याएं तथा अन्य प्रकार के अपराध बिहार में सामान्य बात थी। इन अपराधों की त्रासदी अधिकांशत: महिलाओं को ही झेलनी पड़ती थी। महिलाओं को यह डर सता रहा था कि यदि तेजस्वी यादव चुनाव जीत कर मुख्यमंत्री बनते हैं, तो जंगलराज की वापसी हो सकती है।

बिहार चुनाव में एग्जिट पोल से पहले तक एनडीए और महागठबंधन के बीच कांटे की टक्कर मानी जा रही थी। ऐसे कयास भी लगाये जा रहे थे कि शायद बिहार की जनता परिवर्तन के नाते नीतीश कुमार के स्थान पर तेजस्वी यादव को सत्ता सौंप सकती है। नीतीश कुमार की आयु, एंटी-इनकंबेंसी, तेजस्वी यादव की लोकप्रियता आदि जैसे तर्क भी दिये जा रहे थे। पर, चुनाव में जब महागठबंधन की करारी हार हुई, तो चुनाव विश्लेषक सोचने पर मजबूर हो गये कि आखिर इस परिणाम के पीछे क्या कारण रहा? चुनाव विश्लेषक एनडीए की जीत का बड़ा श्रेय महिलाओं को दे रहे हैं। यह सच है कि इस चुनाव में महिलाओं ने अभूतपूर्व ढंग से मतदान किया है। वर्ष 2024 के संसदीय चुनाव में 59.4 प्रतिशत महिलाओं ने और 53.3 प्रतिशत पुरुषों ने वोट डाला था। लेकिन 2025 के विधानसभा चुनाव में महिलाओं ने 71.8 प्रतिशत की रिकॉर्ड वोटिंग की, जबकि पुरुषों का वोट प्रतिशत 63 रहा। यानी लगभग नौ प्रतिशत बिंदु का अंतर। विभिन्न विधानसभा क्षेत्र में तो यह अंतर कई स्थानों पर 10 से 21 प्रतिशत का भी रहा।

लालू शासन में सामान्य जनता लचर कानून-व्यवस्था से त्रस्त थी। तब बलात्कार, अपहरण और फिरौती, हत्याएं तथा अन्य प्रकार के अपराध बिहार में सामान्य बात थी। इन अपराधों की त्रासदी अधिकांशत: महिलाओं को ही झेलनी पड़ती थी। महिलाओं को यह डर सता रहा था कि यदि तेजस्वी यादव चुनाव जीत कर मुख्यमंत्री बनते हैं, तो जंगलराज की वापसी हो सकती है।

बिहार चुनाव में एग्जिट पोल से पहले तक एनडीए और महागठबंधन के बीच कांटे की टक्कर मानी जा रही थी। ऐसे कयास भी लगाये जा रहे थे कि शायद बिहार की जनता परिवर्तन के नाते नीतीश कुमार के स्थान पर तेजस्वी यादव को सत्ता सौंप सकती है। नीतीश कुमार की आयु, एंटी-इनकंबेंसी, तेजस्वी यादव की लोकप्रियता आदि जैसे तर्क भी दिये जा रहे थे। पर, चुनाव में जब महागठबंधन की करारी हार हुई, तो चुनाव विश्लेषक सोचने पर मजबूर हो गये कि आखिर इस परिणाम के पीछे क्या कारण रहा? चुनाव विश्लेषक एनडीए की जीत का बड़ा श्रेय महिलाओं को दे रहे हैं। यह सच है कि इस चुनाव में महिलाओं ने अभूतपूर्व ढंग से मतदान किया है। वर्ष 2024 के संसदीय चुनाव में 59.4 प्रतिशत महिलाओं ने और 53.3 प्रतिशत पुरुषों ने वोट डाला था। लेकिन 2025 के विधानसभा चुनाव में महिलाओं ने 71.8 प्रतिशत की रिकॉर्ड वोटिंग की, जबकि पुरुषों का वोट प्रतिशत 63 रहा। यानी लगभग नौ प्रतिशत बिंदु का अंतर। विभिन्न विधानसभा क्षेत्र में तो यह अंतर कई स्थानों पर 10 से 21 प्रतिशत का भी रहा।

चूंकि महिलाओं द्वारा पूर्व की तुलना में भारी संख्या में वोट डाले गये, तो यह समझना जरूरी हो जाता है कि इसका क्या कारण रहा होगा? विपक्षी दल इसके पीछे एनडीए सरकार द्वारा मुख्यमंत्री महिला रोजगार योजना के तहत 75 लाख महिलाओं को 10,000 रुपये की राशि अंतरित करने को कारण मानते हैं। हालांकि, इसे झुठलाया नहीं जा सकता। परंतु केवल 10,000 की राशि का अंतरण ही महिलाओं द्वारा समर्थन दिये जाने का कारण नहीं हो सकता, क्योंकि महागठबंधन ने भी तो चुनाव प्रचार में महिलाओं को पैसे देने का वादा किया था। हमें इस संबंध में महिला सशक्तिकरण और कल्याण के संदर्भ में नीतीश सरकार के लगभग 20 वर्षों के कामकाज का और बिहार के आर्थिक विकास तथा रोजगार सृजन के प्रयासों का आकलन करना होगा।

लालू शासन में सामान्य जनता लचर कानून-व्यवस्था से त्रस्त थी। तब बलात्कार, अपहरण और फिरौती, हत्याएं तथा अन्य प्रकार के अपराध बिहार में सामान्य बात थी। इन अपराधों की त्रासदी अधिकांशत: महिलाओं को ही झेलनी पड़ती थी। महिलाओं को यह डर सता रहा था कि यदि तेजस्वी यादव चुनाव जीत कर मुख्यमंत्री बनते हैं, तो जंगलराज की वापसी हो सकती है। महिलाओं ने नीतीश शासन में महिला सुरक्षा और कानून-व्यवस्था में बेहतरीन सुधार का स्वाद चख लिया था। ऐसे में वे लालू शासन के जंगलराज की पुनरावृत्ति नहीं होने देना चाहती थीं। इतना ही नहीं, नीतीश सरकार के दौरान लागू शराबबंदी ने जिन्हें सर्वाधिक सुकून दिया, वे महिलाएं ही थीं। महिलाओं को यह भी लगता था कि किसी अन्य दल के सत्ता में आने से शराबबंदी का कानून निरस्त हो सकता है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि जब पूरे देश में जीडीपी छह से आठ प्रतिशत की दर से बढ़ रही थी, तब लालू यादव के शासनकाल में बिहार की जीडीपी में प्रतिवर्ष एक प्रतिशत की गिरावट दर्ज हो रही थी। विकास के अभाव में पलायन जोरों पर था। ऐसे में नीतीश

सरकार ने आकर बिहार की जनता को न केवल बेहतर शासन दिया, बल्कि विकास और जनकल्याणकारी योजनाओं की शुरुआत भी की। नीतीश कुमार के पहले 10 वर्ष के कार्यकाल में तो विकास, सुशासन और कल्याणकारी योजनाओं के चलते बिहार की जनता को राहत मिली ही थी, 2014 में केंद्र में प्रधानमंत्री मोदी की अगुवाई में एनडीए की सरकार आने के बाद तो कल्याणकारी योजनाएं व्यवस्थागत रूप धारण कर गयीं। जनधन खातों का खुलना, सीधे लाभ हस्तानांतरण (डीबीटी), शौचालय का निर्माण, प्रधानमंत्री ग्रामीण, शहरी आवास योजना के तहत घरों का निर्माण, 100 प्रतिशत बिजली की पहुंच और विद्युत आपूर्ति की निरंतरता, हर घर नल से जल के माध्यम से पेयजल की पहुंच, आयुष्मान भारत योजना, आंगनबाड़ी सुविधा, उज्ज्वला योजना के तहत गैस सिलेंडरों का मुफ्त वितरण जैसे उपायों से आम बिहारी के जीवन में बड़ा बदलाव आया। डबल इंजन की सरकार के दौरान लखपति दीदी, ड्रोन दीदी, आशा और आंगनबाड़ी में बेहतर वेतन और महिला स्वयं सहायता समूहों जैसी योजनाओं ने महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया।

कहा जाता है कि बिहार की राजनीति में जातिगत समीकरण हावी रहते हैं। चुनाव में जाति और बिरादरी के आधार पर वोट डाले जाते हैं। राजनीति को जातिगत समीकरणों के आधार पर आंका जाता है। कहा जा रहा था कि तेजस्वी यादव, यादव और मुस्लिम वोटों के ध्रुवीकरण से जीत हासिल कर सकते हैं। लेकिन, इस बार महिला वोटरों ने ही नहीं, पुरुष वोटरों ने भी जातिगत विचार से इतर विकास और सुशासन पर वोट डाला है और सत्ता पुनः एनडीए को सौंप दी है। बिहार चुनाव में वोटिंग का बढ़ना जाति की बजाय मुद्दों के आधार पर मतदान, महिलाओं की चुनाव में बढ़ती भागीदारी सब भारत में मजबूत होते लोकतंत्र के द्योतक हैं। विपक्षी दलों के लिए यह एक चेतावनी है कि वे किसी वर्ग विशेष के तुष्टीकरण, मुफ्त योजनाओं के वादे, जातिगत समीकरणों के आधार पर चुनाव जीतने की रणनीति से बाहर आकर सुशासन, जन कल्याण और विकास की राजनीति करें, तो उनके लिए संभावनाएं बेहतर हो सकेंगी।

—Editor

इस अंक में

भारतीय उपनिषद् परम्परा में वर्णित ज्ञान-भक्ति-वैराग्य मीमांसा–प्रमोद कुमार 1

बिहार मे बढ़ता सामाजिक सेवाओं पर व्यय एवं गरीबी तथा बेरोजगारी पर इसका प्रभाव: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० सोहित राम 4

भारत में नारी जागरण एवं शिक्षा–डॉ० बरुण कुमार 9

अंग्रेजी साम्राज्य के दौरान चम्पारण के नीलहे किसानों की त्रासदी–डॉ० संजय कुमार सिंह 13

भारत में डिजिटल विधि शिक्षा के विकास एवं चूनौतियों पर बार कौंसिल की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन –तिलक राम पटेल; डॉ० किरण चौहान 16

भारत में चुनावी भागीदारी का विश्लेषणात्मक एक अध्ययन–डॉ० स्वाती सिंह 21

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण: एक मूल्यांकन–प्रकाश नारायण 28

भारत के राजनीतिक दल: दशा एवं दिशा–डॉ० संध्या कुमारी 31

भारत की सुरक्षा में पड़ोस-नीति की भूमिका: एक अध्ययन–उज्जवल कुमार सिंह 35

गीता में कर्म: एक कर्तव्य दृष्टि–डॉ० हरेराम कुमार उपाध्याय 40

गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालीन अभिलेखों में व्यापार-वाणिज्य-आलोचनात्मक अध्ययन–ललिता सिंह; डॉ० पवन कुमार सिंह 43

अन्त: परिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन-एक अध्ययन–डॉ० मो० इरशादुल हक 47

आधुनिक युग में संस्कृत काव्य–डॉ० राजीव कुमार 50

धर्मशास्त्र और अभिज्ञान शाकुन्तलम्–कुमारी नीतू 53

कामकाजी महिलाओ की पारिवारिक भूमिका और कार्य जीवन संतुलन–डॉ० रीना कुमारी 61

आधुनिक भारत के निर्माण में बाबू जगजीवन राम का योगदान–डॉ० भानु प्रताप सिंह 63

भारत की आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण–प्रो० दिबाकर गोप 68

झारखण्ड की राजनीति और जनजातीय समाज–डॉ० मुकेश कुमार सिंह 70

डिजिटल युग का अदृश्य खतरा: साइबर अपराध–प्रो० नरेश कुमार पान 73

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली और आज उनकी प्रासंगिकता–प्रो० परमानन्द महतो 75

रामचरितमानस की प्रासंगिकता - वर्तमान समाज के संदर्भ में–प्रो० साबिद हुसैन 78

कृषि में रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग के कारण उत्पन्न किसानों की समस्या–चंदन कुमार; प्रो० (डॉ०) विभा सिंह 81

बिहार में छात्र आन्दोलन की रूप रेखा 1942-1977–राजेश पासवान; डॉ० अमित कुमार सांतकर 85

कृषि पद्धति में परिवर्तन का सामाजिक प्रभाव: नालंदा जिला का एक भौगोलिक अध्ययन–सोनू कुमार; प्रो० (डॉ०) विभा सिंह 89

आत्मा: एक अविनाशी तत्व–डॉ० डी०एन० सिंह; अंकित कुमार 94

बैगा जनजाति के प्रमुख तीज त्यौहार एवं बदलते प्रतिमान का एक नृजातीय अध्ययन (कबीरधाम एवं मुंगेली जिला के विशेष संदर्भ में) –चम्पा साहू; डॉ० रश्मि कुजूर; डॉ० एन. कुजूर 97

पारिस्थितिक चिंतन: हिंदी कविता के आईने में–डॉ० सुप्रिया पी०; रचना तनवर 104

ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना: बिहार के पंचायती राज सिस्टम में डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन का असर - गया ज़िले की एक खास केस स्टडी–सुमित कुमार 109

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में प्रभावती देवी का योगदान–प्रिया कुमारी; प्रो० (डॉ०) श्रवण कुमार सिंह 113

वर्तमान विश्व व्यवस्था में संयुक्त राष्ट्र संघ का भविष्य: एक अवलोकन–डॉ० अशोक कुमार 117

ई.- गवर्नेंस और नागरिक सेवा वितरण में पारदर्शिता की भूमिका–स्वीटी गुप्ता 125

विनोबा भावे के सामाजिक-धार्मिक विचार: एक सिंहावलोकन–डॉ० सुभाष चन्द्र सिंह 132

विश्व व्यापार संगठन (WTO) की प्रासंगिकता- भारत के विशेष संदर्भ में–प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल 135

हिंदी भाषा का विस्तार: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० सतवीर कौर 139

भारतीय ज्ञान परंपरा और ऋग्वेदिक सूक्तों की स्त्री मंत्र द्रष्टा : ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाओं के विशेष सन्दर्भ में –डॉ० मुक्ता मणि 143
कृषि आय का परिचयात्मक अध्ययन An Introductory Study of Agricultural Income–डॉ० दिव्या शुक्ला 150
नीति शास्त्र में न्याय की संकल्पना: एक विश्लेषण–डॉ० संजीव कुमार सुधांशु 154
मिथिलेश्वर के 'सुरंग में सुबह' उपन्यास में लोक से दूर जाता तंत्र–डॉ० उपेन्द्र प्रसाद 159
हिन्दी भाषा के विकास में डॉ० रामविलास शर्मा का योगदान–डॉ० अभिनय कुमार 162
भारत-नेपाल संबंध 2025: राजनीतिक अस्थिरता, क्षेत्रीय सुरक्षा और रणनीतिक पुनर्संतुलन पर व्यापक अध्ययन –डॉ० विनोद कुमार यादव 166
हॉस्टल में रहने वाले छात्रों एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन–आरूषी पुरोहित; डॉ० कीर्ति दशोरा 172
उत्तर प्रदेश की क्षेत्रिय लोकगीत परम्पराओं का परिचय–डॉ० अरविंद गुप्ता 184
मौर्योत्तर काल में चिकित्सा का विकास–पवन कुमार यादव 188
भक्ति काव्य में लोकचेतना–रजनी सोनी; डॉ० ब्रजलता शर्मा 197
छत्तीसगढ़ी साहित्य में सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था–डॉ० श्रीमती माग्रेट कुजूर 201
बिहार में किसान आंदोलन और स्वामी सहजानंद सरस्वती: औपनिवेशिक दासता से कृषि क्रांति तक एक विश्लेषणात्मक अध्ययन –डॉ० कृष्णा कुमार शर्मा 204
बच्चों के सर्वांगीण विकास मे शिक्षा तथा माता-पिता की भागीदारी–डॉ० विवेकानन्द सिंह; अंगद कुमार सिंह 209
मौर्यकाल में धातु निर्माण प्रौधोगिकी का विकास–शशिकला भारती 214
स्मृति, परंपरा और इतिहास: जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों में सांस्कृतिक चेतना–डॉ० प्रभात शर्मा 217
बिहार में शराबबंदी नीति: सुशासन या सामाजिक नियंत्रण?–साइस्ता बानो 225
सह-शैक्षणिक गतिविधियों का विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के विकास में योगदान: एक तुलनात्मक विश्लेषण–पूजा सिंह 227
किसानों के बीच ग्रामीण उद्यमिता जागरूकता: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण–सन्नी गिरी; कीर्ति सिंह 230
"समाज में महिलाओं के अधिकार, सशक्तिकरण एवं चुनौतियों का अध्ययन"–सन्नी कुमार; पूजा 232
कबीर के काव्य में सामाजिक बोध और व्यंग्य–लल्लू सिंह वर्मा; डॉ० परमजीत कौर 235
मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और महिलाएँ–डॉ० विजय शंकर चौधरी; डॉ० सुधीर कुमार 240
मन की शान्ति का प्राचीन विज्ञान: मानसिक स्वास्थ्य और भारतीय संस्कृति–गौरव यादव 246
चंपारण सत्याग्रह और गांधीजी का सामाजिक-शैक्षिक प्रयोग: एक अध्ययन–मधुसूदन साह; डॉ० नागेश्वर कुमार 252
भारतीय चुनाव प्रकिया में इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन (EVM) का प्रयोग: तकनीकी, संवैधानिक, प्रशासनिक एवं लोकतांत्रिक विश्लेषण–सुरेश कुमार मीणा 256
''रामकथा का आधुनिक परिपार्श्व और रामचरितमानस''–डॉ० जितेन्द्र कुमार उपाध्याय 261
दीनदयाल उपाध्याय का समाजवादी चिंतन: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० पवन पाठक 267
अमृता प्रीतम की रचनाओं में स्त्री स्वर का विश्लेषण (संदर्भ सहित विस्तृत आलेख)–प्रो० बृजलता शर्मा; कु० उमा 270
बैंकों की ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं का विस्तार: लाभ, चुनौतियाँ, जागरूकता स्तर और कर्मचारियों की सहायक भूमिका का मूल्यांकन–डॉ० धीरज कुमार शर्मा 273
बिहार के प्रशासनिक तंत्र में पारदर्शिता और जवाबदेही की चुनौतियां–प्रवीण कुमार झा 280
'देवरानी-जेठानी की कहानी': सामाजिक सुधार और स्त्री शिक्षा का एक दस्तावेज–डॉ० सोनिया दहिया 284
लोक संस्कृति में संगीत की भूमिका–डॉ० हेमलता कुमारी 288
कृषि जानकारी के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका–विघनेश्वर सिंह 293
शांति की खोज: धर्म और दर्शन का नवीन दृष्टिकोण–अनुज कुमार सिंह; डॉ० मोहम्मद अली 300
आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो के नैतिकता का अध्ययन–कैलाश मीणा 304
उच्च माध्यमिक स्तर के वॉलीबॉल खिलाडियों की नैतिकता का अध्ययन–नरेश पालीवाल, डॉ० तिलकेश आमेटा 310

बदलते परिदृश्य में संयुक्त परिवार का एक समाजशास्त्रीय अध्ययनः जनपद सिद्धार्थनगर के विशेष संदर्भ में –डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार सोनकर; दया शंकर 317
भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतको की दृष्टि में कला संवेदनाः एक परिचय–डॉ. चन्द्रकान्ता पिलवाल 321
भारतीय राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था में महिलाओं का योगदानः एक अध्ययन–डॉ० स्मिता अंशु 325
हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटकः स्वरूप, विकास, शिल्प और समकालीन अर्थवत्ता–अंशु कुमारी 329
समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और प्रतिरोध–शिव शंकर प्रसाद सिंह 337
Problems Of Labour Migration From Bihar: An Overview–Kumari Muskan Ray 1
Relationship between Academic Stress and Adjustment in Adolescents–Vimlesh Kumar 5
A Study of Stress among Mothers of Primary School Children–Rinki Kumari; Prof. Sheo Kumar Prasad 9
From Persuasion to Interaction: The Changing Role of Advertising in Shaping Consumer Behavior and Market Dynamics in the Globalized World–Medha 14
Transforming Agriculture: Innovative Strategies for A Sustainable Future With Special Refrence To India –Dr. Krishna Devi; Gaurav 18
Educable Mentally Retarded Students and their Behavioural Problems–Dr. Archana Pandey 27
Financial Literacy Among Youth: Need of the Hour–Prof. Raj Karan Yadav 31
HO – The Tribal Language–Kuljinder Singh 35
Guru Tegh Bahadur Ji (An Apostle Of Human Rights And Supreme Sacrifice)–Mandeep Singh 37
Women Empowerment and Higher Education- Issues, Challenges and Prospects–Dr. Shyam Lal Nirala 41
Importance of English as a Communicative Language in India–Dilsher Bir Singh 48
Contested Spaces: The Interplay of Colonial Urbanization and Caste Identities in 19th Century North India —Pro Priyanka Sharma 52
Progress of SHG-Bank Linkage Programme in India: Evidence from 2018-19 to 2022-23—Minni 57
Gender Disparities in Food Consumption Patterns—Akanksha Yadav 63
Misogyny And Women's Resistance In Adichie And Kincaid's Writings: Moving From Silence To Protest —Roshan Kumar Das 68
Socio-Cultural Movement of the Chamar Caste in Bijnor District, Uttar Pradesh (1900–1950) —Dr. Om Prakash Singh; Akshat Raghunath Daksh 74
Role of Social Media in Shaping Youth Behaviour and Mental Health: An Indian Perspective —Dimpal Chaudhary; Neha Pundir 81
Barrier to Digital Education Among Rural Women in Digital Era—Neeraj Kumar; Prerna Pundir 85
Temporal Analysis of Tourist Inflow in Bihar -A Case Study of Gayaji District of Bihar —Amarjit Sharma; Prof. (Dr.) Lalit Sagar 89
Spatio-temporal Analysis Of Livestock Population In Khagaria District Of Bihar —Nitish Kumar; Prof. (Dr.) Lalit Sagar 96
The Foreign Policy of China during Deng Xiaoping and Its Contemporary Relevance—Deepika Mishra 104
India as a Factor in Pakistan-US Relationship—Sewak Singh 108
Urbanisation in Early Medieval India: A Case Study of Parmar Dynasty—Mukul Dubey 113
Exploring the Concept of Poetic Space in the Select Poems of Rita Dove —Andaleeb Faridi; Dr. Md. Abullais 119
Evolution of Sikhism: A Historical Analysis—Ramanpreet Kaur 125
Illness, Impairment and Identity: Re-reading Disability through Medical Humanities in India —Jyotsna Priyam 129
Article-356:- The Most Comtroversial Article at Indian Constitution—Dr. Rama Kant Pandey 144
Enhancing Stock Market Predictions using Hybrid Machine Learning Approach with XGBOOST-LSTM and XGBOOST-GRU Models—Dr. Prakash Kumar Singh 151

Agro-Based Industries in India: An Analysis—Dr. Md. Ajmat Raza 160
A Study on Production and Prospects of Exports of Wheat (Special Reference of India) —Ashish Ojha; Shailendra Mishra 166
Impact of Urbanisation on Indian Family Structure: A Sociological Study—Anima Sinha 176

भारतीय उपनिषद् परम्परा में वर्णित ज्ञान-भक्ति-वैराग्य मीमांसा

प्रमोद कुमार

शोधच्छात्र, वेदविभाग, गुरुकुल काङ्गडी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड

ज्ञान-भक्ति-वैराग्य से पूरित मंत्र उपनिषदों में यत्र तत्र हैं तत्वचिंतकों का मानना तो यह है कि उपनिषदें आत्मा के स्वरूप को बताने वाले मुख्य ग्रंथों के रूप में ही हैं। ईशावास्योपनिषद् के सातवें मन्त्र में ज्ञान का वर्णन इस प्रकार है।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।[1]

अर्थात् जिस स्थिति में परब्रह्म परमेश्वर को भलीभाँति जानने वाले महापुरुष के अनुभव में संपूर्ण प्राणी एकमात्र परमात्म स्वरुप ही हो जाते हैं। उस अवस्था में उस एकता का (परमेश्वर का) निरंतर साक्षात् करने वाले पुरुष के लिए कौन सा मोह रह जाता है कौन सा शोक? तात्पर्य जिसने अपनी आत्मा के व्यापकत्व को पहचान लिया कि जो आत्मा है, वही परमात्मा है तो उसके लिए कहीं कोई शत्रु-मित्र नहीं और जब शत्रु-मित्र नहीं तो राग-द्वेष नहीं है।

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्दवल्ली में ज्ञान के लक्ष्य ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार है-

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।
यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति।।" [2]

अर्थात् ब्रह्म सत्य ज्ञान स्वरूप और अनंत है, जो मनुष्य परम विशुद्ध आकाश में रहते हुए भी) प्राणियों के हृदय रूप गुहा में छिपे हुए (उस ब्रह्म) को जानता है वह विज्ञान स्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों का अनुभव करता है।

तात्पर्य जो ब्रह्म के साथ एकीकार हो गया जिसने ज्ञान के द्वारा यह जान लिया कि मेरे स्वरूप और ब्रह्म के स्वरूप में एकता है। वह करता हुआ भी कर्ता नहीं भोगते हुए भी भोक्ता नहीं रहता। यह इस ऋचा में निहित ज्ञान है श्वेताश्वतर उपनिषद् ने इस प्रकार व्यक्त किया है-

निष्कलं निष्क्रिय शान्तं निरवद्यं निरंजनम्।
अमृतस्य पर सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।।[3]

अर्थात् कलाओं से रहित, क्रिया रहित, सर्वदा शांत, निर्दोष, निर्मल अमृत के परम सेतुरूप जले हुए ईधन से युक्त अग्नि की भाँति निर्मल ज्योति स्वरूप उन परमात्मा का मैं चिंतन करता हूँ। तात्पर्य निर्गुण-निराकार परमात्मा की साधना करने वाले को संसार से असंबद्ध, अक्रिय एवं अमृत के केंद्र, मोक्ष दाता का आश्रय लेना चाहिए या उसे तत्वतः जान लेना चाहिए। जिससे वह अज्ञान से निवृत्त होकर ज्ञानस्वरूप परमतत्व के साथ एक हो जाता है और निरंतर उन्हीं के चिंतन में संलग्न हो जाता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् के तीसरे अध्याय में ज्ञान की व्याख्या कुछ इस प्रकार है-

अणोरणीयान महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्।।[4]

अर्थात् वह सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म बड़े से भी बहुत बड़ा परमात्मा इस जीव की हृदय रूप गुहा में छिपा हुआ है सबकी रचना करने वाले परमेश्वरकी कृपासे जो उस संकल्प रहित परमेश्वर को और उसकी महिमा को देख लेता है या जान लेता है वह सब प्रकार से दुखों से रहित हो जाता है।

कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता से इसी विषय में कहते हैं

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।।[5]

अर्थात् जिस प्रकार निर्मल जल में मेघों द्वारा सब ओर से बरसाया हुआ निर्मल जल वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतमवंशीय नचिकेता ! एकमात्र परब्रह्म पुरुषोत्तम ही सब कुछ है इस प्रकार जानने वाले मुनिका आत्मा परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है अर्थात् परमेश्वर में मिल जाता है।

मुंडकोपनिषद् में -

सम्प्राप्यैनमृशयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा, युक्तात्मान सर्वमेवाविशन्ति।।[6]

अर्थात् सर्वथा आसक्तिरहित और विशुद्ध अंतःकरणवाले लोग इस परमात्मा को पूर्णतया प्राप्त होकर ज्ञानसे तृप्त एवं परम शांत हो जाते हैं, अपने आपको परमात्मा में संयुक्त कर देने वाले वे ज्ञानीजन सर्वव्यापी परमात्मा को सब ओर से प्राप्त करके सर्वरूप परमात्मा में ही प्रविष्ट हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त जिन उपनिषदों में कर्म ज्ञान की चर्चा है उनमें भी भक्ति-वैराग्य की ऋचाएँ प्राप्त होती हैं। मुंडकोपनिषद् में भक्ति एवं वैराग्य की प्रसिद्ध ऋचाओं के पूरे के पूरे प्रकरण प्राप्त होते हैं-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।
समाने वृक्षे पुरूषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।
यदा पश्यः पश्यते रूक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति।।[7]

अर्थात् एक साथ रहने वाले तथा परस्पर सखा भाव रखने वाले दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा) एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं, उन दोनों में से एक तो उस वृक्षके कर्मरूप फलों का स्वाद ले लेकर उपभोग करता है, किन्तु दूसरा खाता नहीं केवल देखता रहता है, इस शरीर रूपी समान वृक्ष पर रहने वाला जीवात्मा शरीर की गहरी आसक्ति में डूबा रहता है और असमर्थतारूप दीनता का अनुभव करता हुआ मोहित होकर शोक करता है किंतु जब कभी भगवान् की अहैतुकी दया से भक्तोंद्वारा नित्यसेवित तथा अपने से भिन्न परमेश्वर को और उनकी महिमा को यह अप्रत्यक्ष कर लेता है, तब सर्वथा शोक रहित हो जाता है तथा जब यह द्रष्टा (जीवात्मा) सबके शासक ब्रह्मा के भी आदि कारण, संपूर्ण जगत के रचयिता दिव्यप्रकाशस्वरूप परम पुरुष को प्रत्यक्ष कर लेता है, उस समय पुण्य-पाप दोनों से रहित होकर निर्मल हुआ वह भक्त सर्वोत्तम समता को प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य परमेश्वर की दया ही इस विषय में परम कारण हैं अगर परमात्मा एक बार अपनी दया दृष्टि जीव पर कर दे, तो वह समस्त दुःखों से छूट कर उसके निकट पहुँच जाता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भक्ति एवं वैराग्य से पूरित परमात्मा की स्तुति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम्।।
पुरूष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति।।[8]

अर्थात् वह परम पुरुष हजारों सिर वाला हजारों आँख वाला हजारों पैर वाला है वह समस्त जगत को सब ओर से घेरकर नाभिसे दस अंगुल ऊपर अर्थात् हृदय में स्थित है जो अब से पहले हो चुका है, जो भविष्य में होने वाला है और जो खाद्य पदार्थों से इस समय बढ़ रहा है, यह समस्त जगत परम पुरुष परमात्मा ही है और वही अमृतस्वरूप मोक्ष का स्वामी है।

तात्पर्य सर्वत्र और सब कुछ परमात्मा है ऐसा जानकर उसी का भजन करना चाहिए। क्योंकि वही दुःखों से छुड़ाकर आनंद प्रदान कर सकता है अतः उसी की शरण लेनी चाहिए। शरणागति के लिए श्वेताश्वतर उपनिषद् का मंत्र है ख्र

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।[9]

अर्थात् जो परम पुरुष परमात्मा समस्त इंद्रियोंसे रहित होनेपर भी समस्त इंद्रियोंके विषयों को जानने वाला है सबका स्वामी सबका शासक सबसे बड़ा आश्रय है उसकी शरण में जाना चाहिए। तात्पर्य ऐसे दिव्य गुण परमात्मा की शरण होना ही भक्ति का मुख्य प्रयोजन है। ईशावास्योपनिषद् में उस दिव्य गुण परमेश्वर के दिव्य दर्शन की प्रार्थना है-

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्वं पूषन्न पावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।।[10]

अर्थात् हे सबका भरण-पोषण करने वाले परमेश्वर सत्य स्वरूप आप सर्वेश्वर का श्रीमुख ज्योतिर्मय सूर्य मंडल पात्र से ढका हुआ है, आपकी भक्ति रूप सत्य धर्म का अनुष्ठान करनेवाले मुझको अपने दर्शन कराने के लिए उस आवरण को आप हटा लीजिए। तात्पर्य

उस परमात्मा का दर्शन साधन साध्य नहीं, उसकी कृपा पर ही निर्भर है वे जब कृपा करेगें तभी उनका दर्शन होगा। उसका स्वरूप कैसा है? इसका गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद् में आकर्षक वर्णन भी द्रष्टव्य है –

सत्पुण्डरीकनयनं मेघाभं वैद्युताम्बरम्।
द्विभुजं ज्ञानमुद्राढयं वनमालिनमीश्वरम्स।।
गोपगोपांगनावीतं सुरद्रुमतलाश्रितम्।
दिव्यालंकारणोपेतं रत्नपंकजमध्यगम्।।
कालिन्दीजलकल्लोलसंगिमारूतसेवितम्।
चिन्तयंश्चेतसा कृष्णं मुक्तो भवति संसृते।।[11]

अर्थात् भगवान् के नेत्र विकसित श्वेतकमल के समान परम सुंदर हैं, उनके श्री अंगों की कांति मेघ के समान श्याम है वे विद्युत के सदृश तेजोमय पीतांबर धारण किए हुए हैं, उनकी दो भुजाएँ हैं व ज्ञानमुद्रा में स्थित हैं, उनके गलेमें पैरों तक लंबी वनमाला शोभा पा रही है, वे ईश्वर हैं, ब्रह्मा आदि देवताओं पर भी शासन करने वाले हैं, गोपों तथा गोप सुंदरियों द्वारा वे चारों ओर से घिरे हुए हैं, कल्पवृक्ष के नीचे वे स्थित हैं, उनका श्रीविग्रह दिव्य आभूषणोंसे विभूषित है रत्न सिंहासन पर रत्नमय कमल के मध्यभाग में विराजमान हैं। कालिंदी सलिलसे उठती हुई चंचल लहरों को चूमकर बहने वाली शीतल मंद सुगंध वायु भगवान् की सेवा कर रही है। इस रूप में भगवान् श्रीकृष्ण का मन से चिंतन करने वाला भक्त संसार बंधन से मुक्त हो जाता है।

भगवान् के ऐसे दिव्य स्वरुप, दिव्यलोक का वर्णन न केवल एक गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद् में है वरन् इस भक्ति के चरम लक्ष्य नंदनंदन व इनके अन्य सगुण स्वरूपों के वर्णन से उपनिषदें भरी हुई हैं।

इस प्रकार उपनिषदें ज्ञान, भक्ति व वैराग्य के वर्णन से ओतप्रोत हैं। आवश्यकता है तो विवेकपूर्ण दृष्टि से इन विषयों का अनुसंधान करने की और सुधीजनों तक सम्प्रेषित करने की। क्योंकि पूर्वोक्त तीनों हम सभी के जीवन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण व उत्तम पाथेय हैं।

संदर्भ

1 ईशावास्योपनिषद् – 07
2 तैत्तिरीयोपनिषद् ब्रह्मानन्दवल्ली
3 श्वेताश्वतरोपनिषद् – 06/19
4 श्वेताश्वतरोपनिषद् – 03/20
5 कठोपनिषद् – 02/01/15
6 मुण्डकोपनिषद् – 03/02/05
7 मुण्डकोपनिषद् – 03/01/01–03
8 श्वेताश्वतरोपनिषद् – 03/14–15
9 श्वेताश्वतरोपनिषद् – 03/17
10 ईशावास्योपनिषद् – 15
11 गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद् – 01/10–12

बिहार मे बढ़ता सामाजिक सेवाओं पर व्यय एवं गरीबी तथा बेरोजगारी पर इसका प्रभावः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० सोहित राम

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, आर. बी. महाविद्यालय, दलसिंह सराय, समस्तीपुर, बिहार

सारांश

सोशल सेक्टर किसी भी इकॉनमी के सबसे जरूरी सेक्टर में से एक है। इस सेक्टर के डेवलपमेंट का लेवल सीधे तौर पर किसी इलाके या देश के ह्यूमन डेवलपमेंट के लेवल पर असर डालता है। हालांकि, सोशल सेक्टर इकॉनमिक ग्रोथ की दर को भी प्रभावित करने में अहम भूमिका निभा सकता है। जैसे ही सोशल सेक्टर का डेवलपमेंट शुरू होगा, जीवन की क्वालिटी बेहतर होगी, जिससे क्वालिटी ह्यूमन कैपिटल बनेगा जिससे लेबर और दूसरे फैक्टर प्रोडक्टिविटी बढ़ेगी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, यह रिसर्च पेपर 1980-81 से 2017-18 तक बिहार के सोशल सेक्टर के खर्च पर चर्चा करता है।

यह पेपर जांच करता है कि क्या मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (MDGs) का अडैप्टेशन सोशल सेक्टर के एलोकेशन को प्रभावित करता है और राज्य में UNDP द्वारा सुझाए गए चार जरूरी खर्च रेश्यो की क्या स्थिति है? स्टडी में पाया गया है कि सोशल सेक्टर के खर्च का एलोकेशन लगातार बढ़ रहा है, लेकिन UNDP द्वारा सुझाए गए चार जरूरी सोशल सेक्टर खर्च रेश्यो में से, केवल सोशल प्रायोरिटी रेश्यो ही सुझाए गए खर्च के नियमों से काफी ऊपर है।

किसी भी राज्य की बेरोजगारी दूर करने में राज्य के चालू कल-कारखानों का बड़ा योगदान होता है. बिहार इस मामले में सर्वाधिक पिछड़ा राज्य है। बिहार के युवा रोजगार की तलाश में दूसरे राज्य का रुख करते हैं। देश में रोजगार हेतु पलायन करने वाले युवाओं की सर्वाधिक संख्या बिहार से है. पिछले दो दशक में बिहार में कल-कारखानों की संख्या में भारी गिरावट के आंकड़े डराने वाले है।

आश्चर्य तो यह है कि युवाओं की संख्या के आधार पर जनसांख्यिकीय लाभांश (डेमोग्राफिक डिविडेंड) लेने में पिछड़ा बिहार अन्य प्रदेशों के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भागीदारी निभा रहा है. बिहार को बीमारू राज्य की श्रेणी से निकालने के लिए एक मजबूत औद्योगिक नीति की आवश्यकता है।

मूल शब्दः बेरोजगारी, तकनीकी प्रशिक्षण, आधारभूत संरचना, गुणवतापूर्ण शिक्षा, रोजगारपरक शिक्षा, गरीबी का दुश्चक्र, आर्थिक विकास, मानव विकास आदि।

प्रस्तावना

आम तौर पर, हम सोशल सेक्टर के खर्च को सेंट्रल और स्टेट बजट (देव, 2003) में दी गई सोशल सर्विस, रूरल डेवलपमेंट, फूड स्टोरेज और वेयरहाउसिंग पर किए गए कुल खर्च के तौर पर समझते हैं। सोशल सर्विस के तहत आने वाले हेड में एजुकेशन, हेल्थकेयर और फैमिली वेलफेयर, वॉटर सप्लाई और सैनिटेशन, हाउसिंग, रूरल डेवलपमेंट, लेबर और लेबर वेलफेयर, SC/ST और OBC का डेवलपमेंट, सोशल सिक्योरिटी और वेलफेयर, न्यूट्रिशन और नेचुरल कैलेमिटीज (इकोनॉमिक सर्वे, 2015) शामिल हैं। 'रूरल डेवलपमेंट और फूड, स्टोरेज और वेयरहाउसिंग' हेड के तहत होने वाले खर्च को यूनियन गवर्नमेंट के बजट क्लासिफिकेशन में इकोनॉमिक सर्विस के तहत रखा गया है (कौर एट अल., 2013)।

इन सभी सोशल सेक्टर के खर्चों को दो कैटेगरी में बांटा गया है। पहला, सोशल और इकोनॉमिक ओवरहेड खर्च हैं जिनका बड़ा मकसद सोशल मौकों को बढ़ाना और पूरी आबादी के एजुकेशन, हेल्थकेयर और न्यूट्रिशन स्टैंडर्ड जैसे सोशल इंडिकेटर्स के नतीजों को बेहतर बनाना है। दूसरा, कुछ प्रोग्राम मुख्य रूप से गरीबी कम करने के लिए होते हैं। गांव और शहर के गरीबों के लिए सेल्फ-एम्प्लॉयमेंट पैदा करने वाले प्रोग्राम के अलावा, महिलाओं और बच्चों के लिए खास हेल्थ और न्यूट्रिशन प्रोग्राम हैं, जो मुख्य रूप से आबादी के गरीब तबके को टारगेट करते हैं।

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में बिहार देश में सबसे तेजी से बढ़ने वाले राज्यों में दूसरे स्थान पर है। राज्य की अर्थव्यवस्था 14.50% की दर से बढ़ रही है। वहीं, पिछले वर्ष की तुलना में प्रति व्यक्ति आय में भी 12.8 % की बढ़ोतरी होने की संभावना है और यह बढ़कर 66828 रुपए होने का अनुमान है।

बिहार में लगभग 88.7 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं और 33.74 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करते हैं। बिहार में बच्चों को व्यापक गरीबी, गहरी सामाजिक-सांस्कृतिक और लैंगिक असमानताओं, जातिगत विभाजन, खराब बुनियादी ढाँचे, बुनियादी सेवाओं की कमी और बार-बार होने वाली प्राकृतिक आपदाओं के कारण कई अभावों का सामना करना पड़ता है।

आर्थिक सर्वेक्षण के मुताबिक राज्य की प्रति व्यक्ति आय पिछले वर्ष की तुलना में 12.8 % की बढ़ोतरी हुई है और यह 59,637 रुपये से बढ़कर 66828 रुपए होने का अनुमान है। यदि स्थिति मूल्य पर देखे तो यह वृद्धि करीब 7.6% है। यानी स्थिर मूल्य पर प्रति व्यक्ति आय 35,119 से बढ़कर 36333 रुपए होने अनुमान है। रिपोर्ट के मुताबिक राज्य सरकार ने अपने राजकोषीय संसाधनों को विवेकपूर्ण प्रबंधन से कई विकासमूलक लक्ष्य हासिल की है। राज्य सरकार अपने व्यय का एक बड़ा हिस्सा सामाजिक सेवाओं पर खर्च करती है। वर्ष में 2023-24 में यह खर्च बढ़कर 83225 करोड़ हो गया है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2019-20 में सामाजिक क्षेत्र में 57816 करोड़ खर्च किया गया था। वर्ष 2019-20 के पूंजीगत व्यय की तुलना में वर्ष में 2023-24 बढ़कर तीन गुना होने का अनुमान है। पूंजीगत व्यय में बढ़ोतरी इस बात का संकेत है कि राज्य सरकार असेट निर्माण पर अधिक खर्च करने ताकि भविष्य में इससे रिटर्न मिल सके।

बिहार में सामाजिक सेवाओं पर बढ़ा हुआ व्यय गरीबी में कमी लाने में मदद कर रहा है, लेकिन गरीबी अभी भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे की कमी जैसी समस्याएं हैं। 'जीविका' जैसे कार्यक्रमों ने महिला समूहों को सशक्त बनाकर और महंगे कर्ज से मुक्त करके परिवारों की आय में सुधार किया है, जबकि बच्चों के लिए शिक्षा पर व्यय बढ़ने से स्कूलों से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या में कमी आई है। हालांकि, गरीबी के मूल कारणों, जैसे कि भूमिहीनता और वित्तीय संस्थानों तक सीमित पहुंच, को दूर करने के लिए एक समग्र और अधिक प्रभावी दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

बिहार में सामाजिक सेवाओं पर बढ़ता सरकारी व्यय बेरोजगारी पर मिश्रित प्रभाव डाल रहा है। एक ओर, यह अल्पकालिक राहत प्रदान करता है, लेकिन दूसरी ओर, यह स्थायी और गुणवत्तापूर्ण रोजगार के बजाय अस्थायी या अल्पकालिक समाधान प्रदान करने वाले कार्यक्रमों पर निर्भरता बढ़ाता है। इस व्यय से लोगों को प्रत्यक्ष सहायता मिल सकती है, जैसे कि पेंशन और अन्य वित्तीय लाभ, जो गरीबी कम करने में सहायक हो सकते हैं। हालाँकि, दीर्घकालिक आर्थिक सुधार के लिए यह पर्याप्त नहीं है। बिहार में शिक्षा, स्वास्थ्य और उद्योग के क्षेत्रों में सुधार की कमी के कारण बेरोजगारी बनी हुई है और युवा रोजगार की तलाश में पलायन करने को मजबूर हैं।

बिहार में सरकारी खर्च के ट्रेंड

इकॉनमी के कुल सरकारी खर्च के ट्रेंड की जांच करना जरूरी है, क्योंकि सोशल सेक्टर के ओवरहेड इसी पर आधारित होते हैं। टेबल 1 में 1980-81 से 2014-15 तक बिहार सरकार के कुल खर्च के ट्रेंड दिखाए गए हैं। कुल खर्च 1980-81 में Rs. 1790.6 करोड़ से बढ़कर 1991-92 में Rs. 7870.67 करोड़ हो गया और 2001-02 में Rs. 17178.22 करोड़ तक पहुंच गया। बिहार और झारखंड के बीच राज्य के बंटवारे और मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (MDGs) को अपनाने के बाद, बिहार के कुल सरकारी खर्च में बड़ी बढ़ोतरी देखी जा सकती है।

तालिका: बिहार में सामाजिक क्षेत्र व्यय की संरचना

Heads	2002-03	2004-05	2006-07	2008-09	2010-11	2012-13	2014-15	2015-16	2016-17	2017-18	2018-19
(1) Education, Sports, Art and Culture	66.3	64.06	62.95	53.38	51.01	59.11	49.51	49.52	45.63	40.68	46.34
(2) Medical and Public Health	11.56	10.67	11.93	8.73	8.79	8.49	9.68	10.87	11.41	9.42	9.59
(3) Family Welfare	3.64	2.09	1.61	1.28	1.53	1.33	1.12	0.94	0.98	1.32	0.9
(4) Water Supply and Sanitation	5.7	4.27	5.62	4.29	6.42	2.54	4.46	3.58	5.34	5.65	10.7
(5) Housing	0.15	0.03	0.09	0.09	4.86	3.38	4.79	3.84	8.11	9.79	9.65
(6) Urban Development	1.72	2.21	3.28	8.03	3.13	4.66	4.36	4.26	6.37	6.08	5.67
(7) Welfare of SC, ST and OBC	2.36	2.1	2.23	2.11	3.51	7.18	6.84	10.53	5.07	4.64	4.12
(8) Labour and Labour Welfare	0.69	2.33	4.65	0.52	0.49	0.38	0.36	0.45	0.87	0.7	0.95
(9) Social Security and Welfare	4.31	5.68	3.54	7.85	11.82	8.3	13	11.42	11.25	10.31	8.16
(10) Nutrition	0.84	0.7	3.06	3.92	3.29	3.27	3.58	2.78	2.15	2.71	2.28
(11) Relief on account of Natural Calamities	2.29	5.4	0.6	8.89	3.4	0.86	1.26	0.9	1.85	7.8	0.9
(12) Others	0.43	0.45	0.39	0.62	1.67	0.11	0.5	0.5	0.42	0.55	0.53
Social Services (1 to 12)	100	100	100	100	100	100	100	100	100	100	100

Source: Author's Calculation, Data were taken from EPW Research Foundation

उद्योगों और विनिर्माण का योगदान

बिहार आर्थिक सर्वेक्षण 2024-25 के अनुसार, विनिर्माण जो एक प्रमुख औद्योगिक गतिविधि है, ग्रॉस स्टेट डोमेस्टिक प्रोडक्ट (GSDP) में इसकी हिस्सेदारी 2021-22 में 9.9% गिरकर 2023-24 में 7.6% हो गई है। मैन्युफैक्चरिंग की हिस्सेदारी में गिरावट, कमजोर औद्योगिक बुनियादी ढांचे, कम निजी निवेश और बड़े पैमाने पर उद्योगों की कमी को उजागर करता है।

केंद्र सरकार के आंकड़े भी बिहार के औद्योगिक क्षेत्र की बदतर स्थिति की पुष्टि करते है। औद्योगिक सर्वेक्षण के अनुसार बिहार में चालू कारखानों की संख्या 2013-14 में 3,132 थी, जो घट कर 2022-23 में 2,782 रह गई। यह खराब औद्योगिक स्थिरता का संकेत है। केंद्रीय वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय द्वारा प्रकाशित ईज ऑफ डूइंग बिजनेस (व्यापार सुगमता) रैंकिंग में सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में बिहार 26 वें स्थान पर है।

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय के उद्यम पंजीकरण पोर्टल पर आंकड़े देखें, तो भारत के कुल सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों की संख्या में बिहार का योगदान केवल 5.47% है। बिहार में कुल सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग की संख्या 14,23,380 है।

अपर्याप्त ऋण सहायता के साथ-साथ खराब भौतिक अवसंरचना और लॉजिस्टिक्स (रसद) ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक कमियां पैदा कर दी हैं।

बिहार मे बढ़ता सामाजिक सेवाओं पर व्यय

बिहार में सामाजिक सेवाओं पर व्यय में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि 2025-26 के लिए बाल कल्याण योजनाओं के बजट में 17.63% की वृद्धि और 2024-25 के बजट में सामाजिक सुरक्षा पेंशन राशि को रू. 400 से बढ़ाकर रू. 1100 प्रति माह करने जैसे उपायों से स्पष्ट है। साथ ही, 2022-23 में समाज कल्याण और पोषण पर रू. 14,118 करोड़ खर्च हुए थे, जिसमें सक्षम आंगनवाड़ी पोषण 2. 0 और वृद्धजन पेंशन योजना के लिए महत्वपूर्ण आवंटन शामिल थे।

मुख्य बिंदु

- बाल कल्याण: 2025-26 के लिए बाल कल्याण योजनाओं पर कुल बजट प्रावधान रू. 64554.03 करोड़ है, जो पिछले वर्ष की तुलना में 17.63% अधिक है।
- सामाजिक सुरक्षा पेंशन: 400 रुपये की मासिक पेंशन राशि को बढ़ाकर 1100 रुपये प्रति माह कर दिया गया है।
- समाज कल्याण और पोषण: 2022-23 में इस क्षेत्र पर घ14,118 करोड़ खर्च हुए थे।
- अन्य व्यय:
  - सक्षम आंगनवाड़ी पोषण 2.0 के लिए रू. 2,967 करोड़ का आवंटन किया गया है।
  - मुख्यमंत्री वृद्धजन पेंशन योजना के लिए रू. 897 करोड़ आवंटित किए गए हैं।
  - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कल्याण के लिए रू. 13,368.47 करोड़ का प्रावधान किया गया था।

ये आँकड़े दर्शाते हैं कि बिहार सरकार सामाजिक सुरक्षा और कल्याणकारी योजनाओं पर अपना खर्च बढ़ा रही है, जिससे बच्चों, बुजुर्गों और कमजोर वर्गों को लाभ मिल रहा है।

सामाजिक सेवाओं पर व्यय और गरीबी पर प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव:

- बेहतर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ लोगों की उत्पादकता बढ़ाती हैं और उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने में मदद करती हैं।
- कल्याणकारी योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन सीधे तौर पर गरीबों को राहत देता है।

चुनौतियाँ:

- उच्च जनसंख्या घनत्व के कारण कल्याणकारी योजनाओं पर राज्य को अधिक खर्च करना पड़ता है।
- गरीबी की मात्रा ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है और यह उपभोग असमानता को बढ़ाती है।
- कुछ समस्याओं, जैसे कुपोषण, का समाधान केवल आर्थिक विकास से नहीं होता, बल्कि उन्हें लक्षित नीतियों की भी आवश्यकता होती है।

सामाजिक सेवाओं पर व्यय और बेरोजगारी पर प्रभाव

सकारात्मक प्रभाव:

- सरकारी नौकरियों और स्वरोजगार के अवसरों को बढ़ावा देने से बेरोजगारी कम हुई है।
- बेहतर शिक्षा और कौशल विकास पहलें युवाओं को अधिक कुशल बनाती हैं और श्रम बाजार में उनकी भागीदारी को बढ़ाती हैं।

चुनौतियाँ:

- बिहार में बेरोजगारी की दर राष्ट्रीय औसत से अधिक रही है, और शिक्षित बेरोजगारों की संख्या लगातार बढ़ रही है।
- सेवा क्षेत्र के विकास के बावजूद, रोजगार के अवसर सीमित हैं, जिससे बड़ी संख्या में युवा रोजगार के लिए दूसरे राज्यों में पलायन करने को मजबूर हैं।
- ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर निर्भरता, मौसमी स्वरूप और स्वरोजगार के सीमित साधनों के कारण बेरोजगारी की दर अधिक है।
- श्रम बल भागीदारी दर और कार्यबल अनुपात राष्ट्रीय औसत से कम है, जो दर्शाता है कि राज्य में काम करने लायक लोगों में से एक बड़ा हिस्सा या तो काम नहीं कर रहा है या नौकरी की तलाश में नहीं है।

आगे की राह

- कौशल विकास: कौशल विकास पहलों पर अधिक ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।
- रोजगार सृजन: कृषि के अलावा ग्रामीण और गैर-कृषि क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करने की जरूरत है।
- औद्योगिक विकास: औद्योगिक उत्पादन में निरंतरता की कमी को दूर करने और स्वरोजगार के साधनों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है।
- महिला सशक्तिकरण: श्रम बाजार में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए लक्षित नीतियाँ आवश्यक हैं।

सोशल सेक्टर में खर्च का लेवल सीधे तौर पर किसी इलाके या देश के ह्यूमन डेवलपमेंट के लेवल पर असर डालता है। हालांकि, सोशल सेक्टर इकोनॉमिक ग्रोथ की दर को भी प्रभावित करने में अहम भूमिका निभा सकता है। जैसे ही सोशल सेक्टर का डेवलपमेंट शुरू होगा, जीवन की क्वालिटी बेहतर होगी, जिससे अच्छी क्वालिटी का ह्यूमन कैपिटल बनेगा जिससे लेबर और दूसरे फैक्टर प्रोडक्टिविटी बढ़ेगी। इसलिए, इकोनॉमिक फ्रंट पर कामयाबी सोशल सेक्टर पर काफी हद तक निर्भर करती है और उससे जुड़ी है। सोशल सेक्टर के खर्च के ऊपर दिए गए पूरे डेटा एनालिसिस से यह पता चलता है कि बिहार सरकार ने 2010 के बाद ही सोशल सेक्टर पर कुछ ध्यान दिया है, लेकिन सोशल सेक्टर के खर्च के मामले में यह अभी भी कई राज्यों से पीछे है। यह पाया गया है कि कुल सोशल सेक्टर खर्च में कैपिटल खर्च में बिहार का हिस्सा पिछले कुछ सालों में बेहतर हो रहा है, हालांकि राज्य के रेवेन्यू खर्च के हिस्से की तुलना में इसका प्रतिशत बहुत कम है। डेवलपमेंट पर होने वाले खर्च में ग्रोथ रेट जरूरी है और बेसिक इंफ्रास्ट्रक्चर की ग्रोथ के लिए जरूरी है, जो राज्य सरकार के लिए सपोर्ट सिस्टम है। राज्य का सोशल सेक्टर पर प्रति व्यक्ति खर्च बिहार में सबसे कम है, जो राज्य में गरीब लोगों को सोशल सर्विस की क्वालिटी पक्का करने के लिए एक बड़ा खतरा रहा है क्योंकि गरीब लोग लगभग सरकारी सर्विस पर निर्भर रहे हैं। बिहार के कुल पब्लिक खर्च में सोशल सेक्टर का हिस्सा कम हो रहा था, लेकिन लंबे समय में ग्रोथ रेट पॉजिटिव है। एनालिसिस से यह देखा जा सकता है; एजुकेशन सेक्टर में सोशल सेक्टर के खर्च का एक बड़ा हिस्सा सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है, क्योंकि यह सब जानते हैं कि शिक्षा ही सभी सफलताओं और कामयाबियों की चाबी है; इसलिए सरकार जानबूझकर शिक्षा के मोर्चे पर ज्यादा इन्वेस्ट कर रही है। लेकिन साथ ही, शिक्षा की तुलना में हेल्थ सेक्टर को नजरअंदाज किया जाता है, जिसका राज्य में गरीबों की हेल्थ पर गंभीर असर पड़ता है। मेडिकल और पब्लिक हेल्थ का हिस्सा शिक्षा के खर्च के आधे से भी कम है, और यह हर साल कम होता जा रहा है, और हाल के दिनों में, इसके हिस्से में भी भारी गिरावट आई है, जबकि यह ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट के लिए भी उतना ही जरूरी है, जैसा कि हम जानते हैं कि हेल्थ ह्यूमन डेवलपमेंट इंडेक्स को तय करने वाले फैक्टर्स में से एक है। न्छक्च द्वारा सुझाए गए चार जरूरी क्रिटिकल एक्सपेंडिचर रेश्यो में से, बिहार में सिर्फ एक क्रिटिकल एक्सपेंडिचर रेश्यो खर्च के नियमों को पूरा करता है, यानी सोशल प्रायोरिटी एक्सपेंडिचर और बाकी तीन कम इन्वेस्टमेंट वाले हैं, जिसका राज्य में सोशल सेक्टर के ओवरऑल डेवलपमेंट पर बहुत बुरा असर पड़ा है।

निष्कर्ष

बिहार में सामाजिक सेवाओं पर बढ़ता व्यय गरीबी और बेरोजगारी को कम करने में मदद करता है, लेकिन इसका प्रभाव मिश्रित रहा है। सकारात्मक प्रभाव: शिक्षा, स्वास्थ्य और कल्याणकारी योजनाओं पर खर्च से लोगों की उत्पादकता और जीवन स्तर में सुधार हुआ है।

इसके बावजूद, उच्च जनसंख्या घनत्व, धीमी कृषि वृद्धि और कौशल की कमी के कारण गरीबी और बेरोजगारी की समस्याएँ बनी हुई हैं, जो युवाओं को पलायन करने के लिए मजबूर करती हैं।

सामाजिक सेवाओं में सुधार से जीवन की गुणवत्ता में सुधार होता है, मानव पूंजी का निर्माण होता है और उत्पादकता बढ़ती है, जो अंततः गरीबी में कमी ला सकता है। हालाँकि, प्रभावी गरीबी उन्मूलन के लिए समग्र और व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. बर्धन पी. डिसेंट्रलाइज्ड डेवलपमेंट। इंडियन इकोनॉमिक रिव्यू, 1996, 139-156.
2. बिहार इकोनॉमिक सर्वे. (2018-19). फाइनेंस डिपार्टमेंट, बिहार सरकार.
3. बर्ड्सल एन. सोशल डेवलपमेंट ही इकोनॉमिक डेवलपमेंट है (वॉल्यूम 1123). वर्ल्ड बैंक पब्लिकेशन्स, 1993.
4. चंद्रमौली सी, जनरल आर. भारत की जनगणना 2011. प्रोविजनल पॉपुलेशन टोटल. नई दिल्ली: भारत सरकार, 2011.
5. चंद्रमौली सी, जनरल आर. भारत की जनगणना 2011. प्रोविजनल पॉपुलेशन टोटल. नई दिल्ली: भारत सरकार, 2011.
6. चेलिया आरजे, सुदर्शन आर. (एडिटर्स). इनकम-गरीबी और उससे आगे: भारत में ह्यूमन डेवलपमेंट. एंथम प्रेस, 1999.
7. दास एसजी, चटर्जी आर. इकोनॉमिक डेवलपमेंट और कॉम्पिटिटिवनेस: ब्रिक्स के बीच तुलना, 2019.
8. दत्त जी, रावलियन एम. क्या भारत की इकोनॉमिक ग्रोथ गरीबों को पीछे छोड़ रही है? जर्नल ऑफ इकोनॉमिक पर्सपेक्टिव्स. 2002; 16(3):89-108.
9. देव एमएस, मूइज जेजे. सोशल सेक्टर खर्च के पैटर्न: सुधार से पहले और बाद का समय, 2004.
10. देव एसएम. एग्रीकल्चर, एम्प्लॉयमेंट और सोशल सेक्टर नेग्लेक्टेड. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2003, 1353-1356.
11. देव एसएम, मूइज जे. 1990 के दशक में सोशल सेक्टर खर्च: सेंट्रल और स्टेट बजट का एनालिसिस. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2002, 853-866.
12. ड्रेज जे, सेन ए. इंडिया: इकोनॉमिक डेवलपमेंट एंड सोशल अपॉर्चुनिटी, 1995.
13. ड्रेज जे, सेन ए, हुसैन ए. द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ हंगर: सिलेक्टेड एसेज. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995. http://hdr.undp.org/en/countries/profiles/IND 14. जोशी एस. इंडिया में सोशल सेक्टर के खर्च पर इकोनॉमिक रिफॉर्म्स का असर. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 2006, 358-365.
15. कौर बी, मिश्रा एस, सुरेश एके. सोशल सेक्टर के खर्च की साइक्लिकलिटी: इंडियन स्टेट्स से सबूत. रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ओकेशनल पेपर्स, 2013, 34(1).
16. कुमार एनपी. उत्तर प्रदेश में सोशल सेक्टर पर पब्लिक खर्च के ट्रेंड्स: एक्सटेंट और डायरेक्शन. मध्य प्रदेश जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज. 2017; 22(1):19-39.
17. कुरियन NJ. भारत में बढ़ती क्षेत्रीय असमानताएँ। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली। 2000; 35(7):538-550.
18. नायक P. नॉर्थ-ईस्ट इंडिया पर ह्यूमन डेवलपमेंट रिपोर्ट: बर्ड्स आई व्यू, 2010.

भारत में नारी जागरण एवं शिक्षा

डॉ० बरुण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, आर्यभट्ट टिचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, रकसिया, पटना

i) शोध आलेख का सार तत्वः-

सदियों से भारतीय समाज में नारी की स्थिति काफी दयनीय रही है। इनके दयनीय स्थिति के लिए मुख्यतः सती प्रथा, विधवा विवाह, बहुपत्नी प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, संपति में अधिकारों का निषेध, स्त्री शिक्षा पर पाबंदी आदि कई मुद्दे रहे हैं। 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में नारियों के जागरण के लिए कई प्रयास हुए। इसमें राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, महादेव गोविंद रानाडे, महात्मा ज्योतिबा फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, एनी बेसेंट आदि समाज सुधारकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

ii) मूल शब्दः- नारी नगाहरण, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, स्त्री शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, दहेज प्रथा, हिन्दू समाज।

iii) प्रस्तावनाः-

भारतीय समाज में नारियों की उदयनीय स्थिति सदियों से चली आ रही है। 18वीं एवं 19वीं सदी में भारत में नारी जागरण के कई प्रयास हुए। सती प्रथा, विधवा-विवाह, बहुपत्नी प्रथा, बाल-विवाह संपत्ति अधिकारों का निषेध, स्त्री शिक्षा आदि मुद्दों को लेकर राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, महादेव गोविंद राणाडे, महात्मा फुले आदि समाज सुधारकों ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के प्रयत्न किये। (गुप्त, 2001)[1] विधवा पुनर्विवाह को लेकर पहली बहस 1756 ई० में शुरू हुई। ढाका के राजा राजबल्भ अपनी विधवा पुत्री का पुनर्विवाह करना चाहते थे। राजा ने यह जानने के लिए क्या हिन्दू शास्त्रों में विधवा विवाह वास्तव में वर्जित है, बनारस, मिथिला एवं दक्षिण के प्रकांड पंडितों के मत लिये। इन पंडितों ने सर्वसम्मति से यह मत दिया कि यदि किसी के पति का कुछ पता न चले, या उसकी मृत्यु हो जाए या वह संसारिक जीवन त्याग दे या नपुंसक हो अथवा जात से बाहर कर दिया जाए तो स्त्रियाँ फिर से विवाह कर सकती हैं। (राजकुमार, 2008)[2] इसी आधार पर राजा ने अपनी विधवा पुत्री का पुनः विवाह कराया।

हिंदू धर्म में नारियों के उत्थान का पहला कदम राजा राम मोहन राय ने उठाया। इनका मानना था कि पाश्चात्य ज्ञान को अंगीकार करते हुए हिन्दू धर्म एवं समाज में पनपे कुरीतियों का तर्क संगत ढंग से प्रतिकार होना चाहिए। इनका सबसे जयादा जोर सती प्रथा का प्रतिकार पर था। सती प्रथा को 4 दिसंबर 1829 ई० को लार्ड विलियम बेंटिक ने समाप्त कर दिया। राजा राममोहन राय के प्रयासों के बाद ही बेंटिक ने सती प्रथा उन्मूलन अधिनियम पारित करके इस प्रथा को कानूनी रूप से प्रतिबंधित कर दिया गया। (ग्रोवर, 2003)[3] इसके बाद नारियों की सबसे बड़ी कठिनाई सती होने से मुक्ति मिली। सती होने को हत्या के समान माना गया तथा इसके संचालकों पर हत्या का मुकदमा दर्ज किया जाता था। इस कानून के बनने से सैकड़ों महिलाएँ सती होने से बच गई।

सती प्रथा की तरह ही महिलाओं की दूसरी सबसे बड़ी समस्या थी विधवा का जीवन जीना। विधवा स्त्री का जीवन नरकीय बना दिया गया था। उन्हें सफेद वस्त्र धारण करना पड़ता, एकांत वास करना होता, पूजा, शादी आदि अवसरों पर अपने कमरे से बाहर नहीं आने दिया जाता, भोजन एकदम सादा सिर्फ जीवन निर्वाह भर दिया जाता तथा परिवार एवं समाज की आलोचना जीवन भी झेलना पड़ता था। महिलाओं के इस दयनीय स्थिति में सुधार हेतु ईश्वर चंद्र विद्यासागर का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। (चोपड़ा, 1975)[4] इसके विरूद्ध उन्होंने संघर्ष किया। विधवा पुनर्विवाह के साथ-साथ बहु विवाह एवं बाल विवाह के रोक के लिए ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने प्रयास किये। 30 जून 1837 ई० को लिखे पत्र में कानून आयोग के सचिव जे०पी० ग्रांट ने विधवा विवाह की वांछनीयता पर कुछ न्यायधीशों की राय जाहिर की। परंतु सामाजिक उथल-पुथल और कट्टर हिंदुओं के विरोध के डर से सरकार यह कानून नहीं बना पाई।

विधवा विवाह पर ईश्वर चंद्र विद्यासागर का पहला लेख 'तत्वोधिनी पत्रिका' में निकला जो शीघ्र ही जनवरी 1855 ई० में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। (चोपड़ा, 1975)[5] उन्होंने धर्मशास्त्रों के उदाहरण प्रस्तुत कर विधवा पुनिर्विवाह का समर्थन किया। उन्होंने 4 अक्टूबर 1855 ई० को 987 लोगों द्वारा हस्ताक्षरित याचिका सरकार के पास भेजी जिसमें विधवा विवाह को कानूनी बनाने की माँग की गई थी। सामाजिक बुराई को समाप्त करने वाला यह पहला जनआंदोलन था। बंबई, पूना, सिकंदराबाद, उत्तर प्रदेश, सतारा, अहमदाबाद, सूरत आदि जगहों से इसके समर्थन में अनेकों पत्र निकाले गए। राधाकान्त देव के नेतृत्व में 19 जनवरी 1856 को 36763 लोगों द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रतिकार याचिका सरकार के पास भेजी गई। अंततः सरकार ने 26 जुलाई 1856 ई० को हिन्दू विधवा-विवाह को कानूनी दर्जा दे दिया। (राजकुमार, 2008)[6] इसके तहत विधवा महिलाओं को पुनर्विवाह का अधिकार मिला।

विधवा विवाह के बाद ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने बाल विवाह तथा बहु विवाह को खत्म करने का प्रयास किया। उनका कहना था कि ''मैं चाहूँगा कि बाल-विवाह स्त्रियों को धार्मिक लोकाचारों का किसी भी रूप में प्रतिरोध किए बिना उचित काननी सुरक्षा के नियम

बने। मैं यह भी सुझाव दूँगा कि विवाह के बावजूद पत्नी के प्रथम मासिक धर्म से पहले सेभोग करने को जुर्म माना जाए,.इस प्रकार का कानून न केवल मानवता के हित में होगा बल्कि धार्मिक लोकाचारों में दखल दिए बिना शास्त्रों में निर्दिष्ट नियम को भी लागू करेगा।'' (हालदार, 2000)[7] इनके ही प्रयास के कारण 1860 ई० में अंग्रेजी सरकार ने एक एक्ट पारित कर विवाह की उम्र 10 वर्ष स्वीकृत की एवं 10 वर्ष से कम आयु की लड़की के साथ संभोग को बलात्कार घोषित किया गया। आगे चलकर केशवचंद्र सेन के प्रयास से 1872 ई० में सरकार ने एक नया कानून नैटिव मैरिज एक्ट पारित किया जिसमें बाल-विवाह पर रोक लगा दी गई।

अंग्रेज वाल्टर ने 18 मार्च 1888 ई० को अजमेर में राज्यों के सभी सरदारों, सामंतों एवं चारणों के प्रतिनिधियों की सभा बुलाई और उसमें सुधार कार्यों के लिए सुझाव आमंत्रित किए गए। वाल्टर सभा में लड़की की विवाह आयु 14 वर्ष वर्ष तथा लड़के की विवाह आयु 18 वर्ष रखी गई। (सरकार, 2012)[8] 1890 में बाल गंगाधर तिलक ने भी महादेव गोविंद रानाडे के साथ मिलकर एक गश्ती पत्र निकाला जिसमें स्त्रियों की शिक्षा एवं विवाह की न्यूनतम आयु बढ़ाने की हिमायत की गई थी। इससे अंग्रेजी सरकार पर दबाव बढ़ने लगा।

बाल विवाह के विरूद्ध बहरामजी मलाबारी के पत्र बुद्धिजीवियों के बीच एक देशव्यापी बहस छेड़ दी। (सिंह, 1982)[9] यह सच है कि उनके निरंतर आंदोलन का लक्ष्य भारतीयों को प्रभावित करना उतना नहीं था जितना कि इंग्लैण्ड के जनमत एवं ब्रिटिश अधिकारियों को प्रभावित करना। उनके दबाव के फलस्वरूप ही अंग्रेजी सरकार ने 1891 ई० में एज ऑफ कंसेंट एक्ट पारित किया। (सिंह, 1982)[10] अब लड़कियों की विवाह की आयु 10 से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दी गई।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी बाल-विवाह, विधवा को हेय मानना, पर्दाप्रथा, दहेज-प्रथा, बहु-विवाह प्रथा, वेश्यागमन, देवदासी प्रथा के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने ब्राह्मण पुरोहितों के धार्मिक एवं सामाजिक सर्वोच्चता के दावे को चुनौती दी। उन्होंने ब्राह्मणों के इस कथन की किये वे शेष मनुष्यों तथा ईश्वर के बीच एक मध्यस्थ हैं आलोचना की। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को वेद पढ़ने तथा उसे अपने तर्क के अनुसार निर्वचन करने का अधिकार है। भारत के सामाजिक इतिहास में वह पहले सुधारक थे जिन्होंने शूद्र तथा स्त्री को वेद पढ़ने तथा ऊँची शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञोपवीत धारण करने तथा अन्य सभी पक्षों से ऊँची जाति तथा पुरुषों के बराबर के अधिकार प्राप्त करने के लिए आंदोलन किया। (ग्रोवर, 2003)[11] इनके अनुसार पुत्र तथा पुत्रियाँ समान है। उन्होंने नारी एवं शूद्रों के उत्थान की विस्तृत चर्चा अपनी पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में की। उनका मानना था कि वेदों एवं उपनिषदों में कहीं भी नारी के साथ असमानता की चर्चा हैं स्त्री शिक्षा को उनके उत्थान का प्रमुख मार्ग मानते थे। उन्होंने हरिद्वार में एक गुरूकुल स्थापित किया। इसमें नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया गया।

नारी एवं दलितों में शिक्षा का अलख जगाने में नारायण गुरु की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी। उन्होंने नारियों एवं दलितों की शिक्षा के लिए स्कूलों की स्थापना की। (ग्रोवर, 2003)[12] जाति एवं लिंग आधारित भेदभाव के खिलाफ शिक्षा को सामाजिक सुधार और सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण साधन माना। उन्होंने लिंग एवं जाति के आधार पर शिक्षा के बहिष्कार के खिलाफ आवाज उठाई और सभी समुदायों के लिए शिक्षा को बढ़ावा देने का काम किया। इनका मानना था कि शिक्षा के बिना कोई भी समुदाय मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए उन्होंने लड़कियों और हाशिए के समुदायों के लिए स्कूलों की स्थापना की। सरकारी एवं सार्वजनिक शिक्षा के केंद्र स्कूलों एवं कॉलेजों में महिलाओं तथा दलितों के प्रवेश की माँग की। उन्होंने जाति आधारित भेदभाव को समाप्त करने और सभी के लिए शिक्षा और सामाजिक सुधार को बढ़ावा देने के लिए श्री नारायण धर्म परिपालन योगम् (S.N.D.P.) की स्थापना की। उन्होंने 'एक ही जाति, एक धर्म, एक ईश्वर' का नारा दिया जिसका मुख्य उद्देश्य समाजिक एकता और समानता स्थापित करना था जिसमें शिक्षा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी।

नारी शिक्षा एवं निम्न जातियों के उत्थान में ज्योतिराव फुले की काफी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने 1848 ई० में अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले के साथ मिलकर पुणे के भिडेबाड़ा में भारत का पहला बालिका विद्यालय स्थापित किया था। यह स्कूल लड़कियों की शिक्षा के लिए एक क्रांतिकारी कदम था, जिसे फुले दंपत्ति ने सामाजिक मानदंडों और रूढ़ीवादी विरोध का सामना करते हुए स्थापित किया था। इस स्कूल की साबित्रीबाई फुले पहला प्रिंसपल थी, जो भारत की पहली महिला शिक्षिका थीं। इस स्कूल का मुख्य उद्देश्य उन वंचित लड़कियों को शिक्षा प्रदान करना था जिन्हें सामाजिक कुरीतियों के कारण शिक्षा से वंचित रखा गया था। फुले ने 1873 ई० में सत्य शोधक सभा। (ग्रोवर, 2003)[13] (सत्य को खोजने वाला समाज) की स्थापना की। उन्होंने 'गुलामगिरी', 'धर्म तुतीय रत्न', 'इशारा', शिवाजी की जीवनी', आदि पुस्तकें लिखी। 1873 ई० में लिखी पुस्तक गुलामगिरी मुख्यतः जाति व्यवस्था, लिंग भेद, ब्राह्मणवादी वर्चस्व आदि के खिलाफ था। इस पुस्तक का अमेरिकी गुलामों को समर्पित किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य जाति व्यवस्था की आलोचना करना और दलित वर्ग एवं महिलाओं के शोषण और उत्पीड़न को उजागर करना था।

iv) अध्ययन का उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध आलेख का शीर्षक 'भारत में नारी जागरण' है। इस शीर्षक 'भारत में नारी जागरण' है। इस शीर्षक के अनुरूप ही इसका अध्ययन का उद्देश्य भारत में नारी की स्थिति उसके उत्थान से संबंधित है। इस शोध आलेख का उद्देश्य न केवल नारी के दयनीय स्थिति

को उजागर करना है बल्कि भारत के कई समाज सुधारकों ने इसके खिलाफ जो आवाज उठाई उसकी गहनतापूर्वक विश्लेषण किया गया है।

v) साहित्य सर्वेक्षणः-

नारी जागरण से संबंधित कई पुस्तकें हैं जिसमें नारीवाद महिलाओं के अधिकारों, लैंगिक असमानता और सामाजिक मुद्दों पर विचारोतेजक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती हैं। निवेदिता मेनन की पुस्तक 'नारीवादी' की तरह देखना काफी महत्वपूर्ण है। यह पुस्तक भारत में नारीवाद के विभिन्न पहलुओं जैसे विवाह कानूनों और महिलाओं के अवैतनिक श्रम पर केंद्रित है।

इस्मत चुगतई की पुस्तक 'पर्दा उठाना' नारीवाद से संबंधित एक महत्वपूर्ण लेखनी है। यह व्यंग्यात्मक और साहसी कहानियों का संग्रह है जो महिलाओं के जीवन और स्वतंत्रता के विषयों को गहराई से उजागर करता है।

गरिमा श्रीवास्तव की पुस्तक 'चुपियाँ और दरारें'' नारीवाद से संबंधित एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह पुस्तक भारती महिलाओं की आत्मकथाओं का विश्लेषण करती है जो सामाजिक मौन और विभाजन के बीच उनके अनुभवों को सामने लाती हैं।

vi) शोध प्रविधिः-

प्रस्तुत शोध आलेख 'भारत में नारी जागरण के प्रयास' का शोध प्रविधि विवरणात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। इसमें नारी के दयनीय स्थिति का विवरण प्रस्तुत किया गया है। नारी के दयनीय स्थिति से मुक्ति दिलाने वालों की भूमिका को विश्लेशणात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसमें यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि नारी उत्थान के प्रयासों से ही भारत में सामाजिक सुधारों का सूत्रपात होता है।

vii) परिकल्पनाः-

किसी भी शोध आलेख में परिकल्पना का बहुत ही महत्व होता है। इसी परिकल्पना के परिप्रेक्ष्य में शोध कार्यो को सम्पन्न किया जाता है। इस शोध आलेख 'भारत में नारी जागरण एवं शिक्षा' में निम्नलिखित रूप में परिकल्पना अपेक्षित है:-

i) नारी की दुर्दशा के मुख्य कारक कौन-कौन है?
ii) नारी मुक्ति के लिए जिन समाज सुधारकों ने प्रयास किये उसका नारी उत्थान में क्या प्रभाव पड़ा?
iii) नारी की मुक्ति भारत को कैसे सर्वांगिण विकास का मार्ग खोल दिया?
iv) नारी मुक्ति आंदोलन में कुंठित मानसिकता वालों पर क्या प्रभाव डाला?
v) आज के नारी उत्थान में समाज सुधारकों की क्या भूमिका रही आदि।

ix) निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध आलेख 'भारत में नारी जागरण एवं शिक्षा मुख्यत: नारी मुक्ति से संबंधित है। नारी सदियों से पुरुषों की गुलामी करते आ रही थी। इन्हें शिक्षा एवं संपत्ति दोनों से वंचित कर दिया गया था। 18वीं एवं 19वीं सदी के समाज सुधारकों जिसमें राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि ने इनके मुक्ति हेतु प्रयास किये। राजा राम मोहन राय के प्रयासों के कारण ही अंग्रेजों ने सती प्रथा का अंत किया। विधवा विवाह एवं बाल विवाह के क्षेत्र में ईश्वर चंद्र विद्यासागर की भूमिका अग्रगण्य रही। नारी एवं शूद्रों को शिक्षा के लिए प्रेरित करने तथा भद्रजनों की तरह इन्हें भी यज्ञोपवित धारणा करने का अधिकार स्वामी दयानंद सरस्वती ने दिया। दलितों एवं नारी के बीच शिक्षा का अलख जगाने में जयेातिराव फुले एवं श्री नारायण गुरु का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा। इन्हीं के प्रयासों के कारण आज नारी पुरुषों के समान हैं।

भारत में नारी जागरण के जितने प्रयास हुए उन प्रयासों के फलस्वरूप उनकी सामाजिक स्थिति, उनकी सोच और समाज के उत्थान के लिए उनकी उपयोगिता पर काफी बल दिए गये। यदि हम गौर करें तो उनके उत्थान के लिए प्रयास करने वाले सभी व्यक्ति और सामाजिक आंदोलन अपनी शिक्षा के फलस्वरूप जागृत एवं गतिशील विचार से आलोकित थे। उन आंदोलनों ने भी शिक्षा को हथियार बनाया और यह संदेश दिया कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे व्यक्ति का सशक्तिकरण संभव है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नारी चेतना के संचरण के लिए भी शिक्षा ही सशक्त एवं उपयुक्त माध्यम है। स्वतंत्रता के बाद इस दिशा में काफी प्रयास हुए और आज इसका प्रभाव नारी पर सबसे अधिक प्रभावी दिखता है। सात से ग्याहर वर्ष में शादी, बच्चे, वैद्यव्य का दुख, आदि झेलनी वाली अधिकांश महिलाओं की तुलना में आज की स्थिति कितनी सुखद है। दुख है कि इस स्थिति को उतना हम नहीं बदल सके हैं। जितनी हमारी राष्ट्रीय एवं सामाजिक अपेक्षा है, परन्तु हमारे प्रयास लगातार अधिक एवं अनुशासित हो रहें। देश बढ़ेगा यदि नारी बढ़ेगी और नारी बढ़ेगी जब वह शिक्षित होगी। यह अटल सत्य है जो कल भी सत्य था, आज भी सत्य है, और आगे भी सत्य रहने वाला है। हमारे

राजनेता, नीति-निर्माता, समाज, शिक्षक, माता-पिता सब को इस दिशा में काम करना होगा और इस पर अमल करना पड़ेगा कि क्यों नेहरू जी ने कहा कि एक पुरुष की शिक्षा एक व्यक्ति की शिक्षा है, किन्तु एक महिला की शिक्षा परिवार की शिक्षा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. गुप्त, विश्वप्रकाश एवं मोहनी गुप्त (2001), महात्मा गाँधी व्यक्ति और विचार राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ० 184
2. राजकुमार, डॉ० (2008), भारतीय महिला सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ० 39-41
3. ग्रोवर, बी० एल०, यशपाल (2003), आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, (1707 ई० से वर्त्तमान समय तक), एस० चन्द एण्ड कंपनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली, पृ० 272
4. चोपड़ा, पी० एन०, बी० एन० पुरी, एम० एन० दास, (1975), भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, आधुनिक भारत, मैकमिलन, दिल्ली, 1975, पृ० 85-89
5. चोपड़ा, पी० एन०, सी० एन० पुरी, एम० एन० दास, वही, पृ० 100
6. राजकुमार, डॉ०, वही, पृ० 139-141
7. हालदार, मोहित कुमार, अनुवाद कर्ण सिंह चौहान (2000), भारतीय नवजागरण और पुरूत्थानवादी चेतना, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, पृ०29-31
8. सरकार, सुमित, (2012), आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 89
9. सिंह, अयोध्या, (1982), भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, पृ० 43-44
10. सिंह, अयोध्या, वही, पृ० 45
11. ग्रोवर, बी० एल०; यशपाल, वही, पृ० 274-275
12. ग्रोवर, बी० एल०, यशपाल, वही, पृ० 286
13. ग्रोवर, बी० एल०, यशपाल, वही, पृ० 287

अंग्रेजी साम्राज्य के दौरान चम्पारण के नीलहे किसानों की त्रासदी

डॉ० संजय कुमार सिंह

पीएच.डी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

चम्पारण बिहार राज्य के तिरहुत प्रमंडल के अंतर्गत एक जिला है, जिसे वर्तमान में पूर्वी चम्पारण एवं पश्चिमी चम्पारण के नाम से विभाजित किया गया है। औपनिवेशिक काल में चम्पारण अंग्रेजों के लिए नील उत्पादन का सर्वाधिक आकर्षक केंद्र था। चम्पारण की मिट्टी बहुत उपजाऊ थी। वैसे तो चम्पारण के किसान प्राचीन काल से ही अपनी भूमि में क्या, कब और कितना उत्पादन करना है, इसके लिए स्वतंत्र थे, किंतु ब्रिटेन में आद्योगिक युग के दौरान नील की माँग बढ़ गई। जिससे भारतीय नीलवरों को भी नील उद्योग में लाभ मिलने लगा। अत: अब नील उत्पादन में तीव्र विस्तार की लालसा में निलहों ने चम्पारण के किसानों पर केवल नील की खेती के लिए दबाव बनाना प्रारम्भ कर दिया। जबकि चम्पारण के किसान अब तक अपनी भूमि पर खाद्यान्न फसलें जैसे - दलहन, जौ, गन्ना आदि का विशेष रूप से उत्पादन करते आ रहे थे। किंतु अब किसानों की स्वतंत्र कार्यपद्धति पर पाबंदी लग गयी।

18वीं सदी में ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति आरंभ हो गया। जिसके फलस्वरूप कपास के उत्पादन में भारी इजाफा हुआ तथा ब्रिटेन में अत्यधिक मात्रा में सूती वस्त्र तैयार होने लगा। जिसकी रंगाई के लिए अधिक मात्रा में नील की आवश्यकता पड़ी। जब नील की माँग बढ़ी उसी समय ब्रिटेन को भारत के अलावे अन्य जगहों से नील उपलब्धि का स्रोत रूक गया। अत: अब नील आपूर्त्ति के लिए भारतीय किसानों को जबरन नील की खेती के लिए अनुबंध कराया जाने लगा। किसानों को जबरदस्ती कुछ ददनी खेती के लिए दे दी जाती थी। किसानों की इच्छा हो अथवा न हो इसका कोई महत्त्व न था। नील एक ऐसी फसल थी, जिसके पैदावार का कोई भरोसा नहीं था। कभी-कभी नील का उत्पादन न के बराबर होता था। वैसी परिस्थिति में किसान ददनी की रकम लौटाने में भी सक्षम नहीं होते थे। अत: ''चम्पारण में कृषि क्षेत्र में जमींदारी और ठेकेदारी प्रथा पुराने समय से चली आ रही थी। निलहों द्वारा भी इसी का अनुकरण किया गया। नील की खेती में जिस कठिन श्रम की आवश्यकता होती थी उसके अनुसार कृषकों एवं मजदूरों को मजदुरी नहीं मिलती थी। कृषक एवं मजदूर अपने को उपेक्षित एवं शोशित महसूस कर रहे थे। और उनके अंदर नील की खेती के प्रति एवं निलहों के प्रति घृणाभाव उत्पन्न होने लगा।[1]

चम्पारण में नील, किसानों व मजदूरों द्वारा प्राकृतिक रूप से तैयार किया जाता था। नील के पौधे से नीला रंग तैयार करने की प्रक्रिया बहुत कष्टदायी थी। नील के पौधे बोने के लिए सर्वप्रथम फाल्गुन माह के मध्य तक खेत तैयार किया जाता था। फाल्गुन माह के अंत तक नील के पौधे बो दिये जाते थे। अत: आषाढ़ के महीने में नील तैयार हो जाता था, एवं भादों में इसकी कटाई की जाती थी। कटाई के पश्चात् मजदूरों द्वारा 40 फीट लम्बा एवं 25 फीट चौड़ा हॉज तैयार किया जाता था। ''नील के पौधे इसी हॉज में रख दिये जाते थे। और हॉज को पानी से भरकर दो-तीन दिनों तक के लिए छोड़ दिया जाता था। नील का पौधा सड़कर गंध देने लगता था। तब उसकी पिटाई की जाती थी। उसके बाद पौधे के सड़े भाग को पानी से निकाल दिया जाता था। जो जिरात में खाद का काम करता था। हॉज के सड़े पानी में धिरनी द्वारा चक्का से मथनी की जाती थी। मथनी करने वाले मजदूर का हाथ, पाँव एवं नाक कपड़ों से बाँध दिया जाता था। जो मजदूर मथनी का काम पानी में रहकर करता था उसके शरीर पर भिन्न-भिन्न तरह के चर्मरोग हो जाते थे।[2] नील तैयार करने की यह प्रक्रिया बेहद पीड़ादायक होती थी। नील के पौधे से नीला रंग तैयार करने में बहुत अधिक श्रम एवं समय लगता था।

चम्पारण में मुख्यत: दो प्रकार से नील की खेती होती थी:-

(1) जीरात या नीज व्यवस्था और (2) आसामीवार या रैयती व्यवस्था

(1) जीरात या नीज व्यवस्था - इस व्यवस्था के अंतर्गत निलहें अपनी भूमि या पट्टे पर प्राप्त भूमि में स्वयं के खर्चे पर किसानों से नील की खेती करवाते थे। किसानों व मजदूरों को निलहों के आदेशानुसार मजदूरी व बेगारी करनी पड़ती थी। इसके लिए किसानों को मजदूरी तो मिलती थी, किंतु बहुत कम दर पर। जिस वजह से किसान सदैव असंतुष्ट रहते थे। चम्पारण की कुल आबाद भूमि के 1/4 भाग पर जीरात व्यवस्था के अंतर्गत ही नील उत्पादन होता था।

(2) आसामीवार या रैयती व्यवस्था - इस व्यवस्था के अनुसार किसानों को स्वयं की भूमि पर ही नील की खेती करनी पड़ती थी। नील की फसल तैयार होने के उपरांत फसल की कटाई कर निलहों को सौंप देना होता था। जिसके पश्चात् किसानों को पूर्व निर्धारित दर पर फसल की कीमत मिल जाती थी। चम्पारण में 3/4 भाग में आसामीवार व्यवस्था के अधीन नील की खेती होती थी। आसामीवार व्यवस्था के अंर्तगत ही एक आपत्तिजनक व्यवस्था भी शामिल थी जो चम्पारण में तीन-कठिया व्यवस्था के नाम से प्रचलित थी।

तीन-कठिया व्यवस्था - यही व्यवस्था किसानों के दु:खों का मूल कारण था। इस व्यवस्था के अंतर्गत किसानों को अपनी भूमि के 20 कट्ठा यानी 1 बीघा भूमि के 3 कट्ठा पर नील की खेती करना अनिवार्य कर दिया गया था। इसके लिए किसानों को जबरन अनुबंध कराया जाता था। ''इस व्यवस्था ने चम्पारण में गरीबी, उत्पीड़न, शोषण, अमानवीय व्यवहार एवं निलहों के अत्याचार को बढ़ाया। निलहों के अत्याचार से तंग आकर बहुतों ने चम्पारण छोड़ दिया तो कुछ ने न्याय के लिए न्यायालय का दरवाजा खट खटाया।[3] अपने पैतृक आवास छोड़ने वाले कुछ किसानों में ''पदारथ बिंद जो छपैनिया में, अनमोल जोल्हा जो लाल परसा में, नथू हजाम जो केसरिया में, डोमा कोइरी जो केसरिया में जाकर बस गये थे।[4]

किसानों के इन्हीं दुर्दशा के बीच एक ऐसी घटना हुई, जिसके परिणामस्वरूप किसानों की शोषण प्रक्रिया में और तीव्रता आ गई। जर्मनी में एक वैज्ञानिक खोज हुई, जिसके फलस्वरूप जर्मनी में कृत्रिम नीला रंग तैयार कर लिया गया। जिसकी लागत प्राकृत रूप से तैयार किये गए नीले रंग की तुलना में बहुत कम थी। जहाँ अब तक भारत द्वारा तैयार प्राकृतिक नीला रंग ही जर्मनी, ब्रिटेन एवं अन्य जगहों पर निर्यात होती थी। अब कृत्रिम नीले रंग की खोज से प्राकृतिक नील की माँग यूरोपीयन देशों में घट गयी। ''परिणामस्वरूप चम्पारण में जहाँ 1892-99 में 98000 एकड़ में नील की खेती होती थी, वहाँ 1914 में मात्र 8100 एकड़ में नील की खेती हो पाई।[5] ऐसी परिस्थिति में चम्पारण के नीलवरों को नील उद्योग में भारी नुकसान का सामना करना पड़ा। नीलवरों ने नील उद्योग में हुए नुकसान की क्षतिपूर्त्ति का भार भी गरीब किसानों के ऊपर डालने की योजना बनानी प्रारंभ कर दी। अत: जल्द ही किसानों को लूटने के लिए निलहों ने अबवाब के रूप में एक नया उपाय खोज निकाला। अब किसानों पर लगान के अतिरिक्त लगभग 46 प्रकार के अबवाब भी लगाए जाने लगे। अबवाब भले ही, भिन्न-भिन्न तरीकों से वसूला जाता हो किंतु उद्देश्य सदा एक होता था, गरीब किसानों का शोषण करना। ''1793 ई. के बंगाल टेनेंसी ऐक्ट के अनुसार ''अबवाब'' लेना गैर कानूनी है। यदि अबवाब लेने की बात प्रमाणित हो जाय तो लेने वाले को दुनी रकम लौटानी पड़ती थी। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि चम्पारण के लिए कोई कानून बने या मिटे, निलहों को कोई सरोकार नहीं था।[6]

चम्पारण में प्रचलित कुछ प्रमुख अबवाब इस प्रकार थे-

(1) हुण्डा - नील की खेती से जब लाभ मिलना बंद हो गया तब उतने ही भूमि पर 1897-98 ईङ्क में मुरला कोठी द्वारा नील के बदले धान की खेती करने के लिए बाध्य किया गया। धान में नाममात्र का हिस्सा किसानों को मिलता, अधिकांश धान कोठी वाले रख लेते थे। कभी-कभी धान की जगह नकद भी वसूल कर लिया जाता था, जिसे हुण्डा कहा जाता था।

(2) हरजाना - ये तीन प्रकार से वसूले जाते थे। पहला, तो जो किसान नील की खेती नहीं करना चाहते थे। तब उन्हें बदले में दो या तीन रूपया प्रति कट्ठा की दर से हरजाना देना पड़ता था। दूसरा, जहाँ नील की खेती नहीं होती थी, वहाँ के किसानों को भी दो या तीन रूपया प्रति बीघा लगान के अतिरिक्त देना पड़ता था। एवं तीसरा, जहाँ नील की खेती तो होती थी किंतु उत्पादन कम होता था। तब उसके बदले में भी किसानों को हरजाना भरना पड़ता था।

(3) शहरवेशी - बंगाल टेनेन्सी एक्ट की धारा- 28 के अंतर्गत प्रावधान था कि किसान को यदि विशेष फसल से आमदनी में वृद्धि होती है तो मालिक को हक होता था कि ली गई मालगुजारी के रूपया में दो आना बढ़ाकर वसूल सकता था।

(4) पैन खर्चा - पैन, नहर को कहते थे जिसमें सिंचाई के लिए पानी की व्यवस्था होती थी। इसके निर्माण में आने वाले खर्च को पैन खर्चा कहा जाता था। नीलवरों द्वारा कुछ ही जगहों पर सिंचाई की यह व्यवस्था की गई थी। लेकिन कोठी वाले सभी क्षेत्रों के किसानों को पैन-खर्चा देने के लिए बाध्य करते थे।

(5) बैटमाफी - कोठी के जीरात में सभी किसानों एवं मजदूरों के लिए मुफ्त काम करने का एक निर्धारित समय था। जो किसान कोठी के लिए मुफ्त काम नहीं करते थे, उन्हें बैटमाफी टैक्स के रूप में तीन रूपया कोठी को देना पड़ता था।

(6) बपही-पुतही - जब किसी किसान की मृत्यु हो जाती थी तो कोठी वाले उसके वारिस का नाम तब तक दर्ज नहीं करते थे, जब तक यह टैक्स न भर दिया जाए। 1901 ईङ्क में इसी क्रम में तिलहारा कोठी के विरूद्ध आंदोलन हुआ जिसमें वहाँ का मैनेजर मारा गया।

(7) आदमी-सलामी - निलहें साहब जब चम्पारण के किसी गाँव में जाते थे, तब किसानों को वहाँ सलामी के लिए आना पड़ता था। जो किसान सलामी के लिए नहीं आते, उन्हें भी बाद में यह टैक्स चुकाना पड़ता था।

''बाबू राजेंद्र प्रसाद जहाँ चम्पारण के गाँवों का दौरा कर रहे थे, तो कुछ रैयतों ने इन्हें सिंगारहाट के नाम से प्रचलित विचित्र सजा का हवाला दिया। वास्तव में सिंगारहाट व्याभिचार से संबंधित एक सजा का नाम है।[7] जो किसी स्त्री-पुरूष को अवैध संबंध के लिए दोषी पाये जाने पर दिया जाता था।

इन अबवाबों के अतिरिक्त भी तवान, हलबंदी, बाँध-बेहरी, घबही, अमही-कटहली, दीवान-भेंटी जैसे कई अनुचित अबवाब प्रचलित थे। ऐसा नहीं था कि सारे ''अबवाब'' प्रत्येक वर्ष एक बार ही वसूले जाते हों। इनमें कुछ अबवाब समय-समय पर एक से अधिक बार भी वसूले जाते थे।

समय-समय पर किसानों द्वारा इन व्यवस्थाओं के विरूद्ध आवाज जो उठायी जाती, किंतु सेटेलमेंट अफसरों के समक्ष कोठी वाले अबवाब लेने के संदर्भ में अपना पक्ष रखते हुए कहते थे - अबवाब लेने का प्रचलन तो प्राचीन समय से चला आ रहा है और हमें जो ठिका मिलता है उसमें लाभ की गुंजाइश बहुत कम होती है। इस कारण अबवाब लेना हमारी विवशता है। इस तरह के दलील पेश कर निलहे स्वयं का बचाव करते थे।

किसानों द्वारा अबवाब के विरोध में सरकारी अफसरों को आवेदन पत्र लिखा गया, जिसमें निलहों द्वारा की जा रही ज्यादती से राहत दिलाने की गुहार लगाई गई। ''थोड़ी-बहुत राहत दिलवाने के पश्चात् सरकार ने इन मामलों की जाँच हेतु बन्दोबस्त किया, जो 1913 से चम्पारण के कार्य करना शुरू कर दिया। मिस्टर स्वीनी ने इस संदर्भ में सूक्ष्मता से जाँच करवायी। अगर स्वीनी इतनी सुगमता से जाँच नहीं करवाते तो महात्मा गाँधी को अपने चम्पारण मिशन में और भी तकलीफ हुई होती।[8] जाँच के पश्चात् जब रिपोर्ट सरकार को सौंपा गया तो उसमें कई अबवाब नाजायज पाये गये। गरीब एवं लाचार किसानों का अबवाब के नाम पर भरपूर शोषण हो रहा था। कुछ अधिकारियों एवं स्थानीय नेताओं का समर्थन पाकर किसानों ने निलहों का पुरजोर विरोध किया। कई जगहों पर तो किसानों ने अबवाब देना भी बंद कर दिया। किंतु जहाँ के ठेकेदार वर्ग मजबूत स्थिति में होते वहाँ बलपूर्वक अबवाब वसूल कर लिया जाता।

निष्कर्षत:- देखा जाए तो चम्पारण में नील की खेती गरीबी एवं लाचारी से ग्रस्त किसानों की शोषण की गाथा है। ''जर्मनी में नकली नील के आविष्कार से नील के व्यापार निलहों के लिए लाभप्रद नहीं रह गया था, फिर भी निलहों का क्रोध ठंडा नहीं हुआ था। वे तरह-तरह के अनुचित उपायों द्वारा रैयतों को तंग करने से बाज नहीं आते थे।[9] किसान जब भी नील की खेती से इंकार करते, उन्हें निलहों के अमानुशिक अत्याचारों का सामना करना पड़ता। जो भी किसान निलहों के खिलाफ जाने की हिम्मत दिखाते उनके घर लूट लिये जाते। उनके फसलों में आग लगा दी जाती। इनकी औरतों का बलात्कार किया जाता। कई बार तो किसानों की निर्मम हत्या कर दी जाती थी। अत: चम्पारण की ऊर्वर भूमि एवं वहाँ के बेबस, गरीब किसानों के लिए नील की खेती किसी अभिशाप से कम न थी।

सन्दर्भ सूची

1. भैरव लाल दास ''गाँधीजी के चम्पारण आंदोलन के सूत्रधार राजकुमार शुक्ल की डायरी'' पृष्ठ सं. - 33
2. ब्रज किशोर सिंह ''नील-संघर्ष और गाँधी'' पृष्ठ सं. - 17-18
3. डॉ. बादशाह चौबे '' बेतिया राज और चम्पारण के किसान'' पृष्ठ सं. - 120
4. रिर्पोट ऑफ द कमिटी ऑन द एगरेरियन कन्डीसन्स इन चम्पारण, भाग - II, पृष्ठ सं. - 127
5. बिहार इतिहास परिषद् ''पंचम अधिवेशन'' नरकटियागंज- 1994'' पृष्ठ सं. - 10
6. ब्रज किशोर सिंह '' चम्पारण में बापू'' पृष्ठ सं. - 46
7. वही, पृष्ठ सं. - 48
8. वही, पृष्ठ सं. - 49
9. विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त ''नील के धब्बे'' पृष्ठ सं. - 162

भारत में डिजिटल विधि शिक्षा के विकास एवं चूनौतियों पर बार कौंसिल की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

तिलक राम पटेल

(रिसर्च स्कॉलर), अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय,बिलासपुर (छ.ग.)

डॉ० किरण चौहान

(मार्गदर्शक), अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय,बिलासपुर (छ.ग.)

सारांश: भारत में विधि शिक्षा पारंपरिक शिक्षण पद्धति से परिवर्तित होकर वर्तमान में डिजिटल विधि शिक्षा का स्वरूप ले रहा है। भारतीय विधि शिक्षा सूचना प्रौद्योगिकी, इंटरनेट, ई लर्निंग, वर्चुअल कोर्ट, डिजिटल एविडेंस तथा ऑनलाइन शिक्षण माध्यमों के व्यापक उपयोग में विधि शिक्षा की संरचना, पकिया और उपलब्धता तीनों को प्रभावित किया है। कोरोना काल के पश्चात इस डिजिटल क्रांति ने विधि के छात्रों एवं शिक्षकों के लिए एक समावेशी शिक्षा का अवसर प्रदान किया है।

इस शोध में डिजिटल विधि शिक्षा का विश्लेषणात्मक पद्धति के द्वारा अध्ययन कर इसका विकास,वर्तमान प्रवृत्तियां, टेक्नोलॉजी आधारित शिक्षण मॉडल वर्चुअल कोर्ट तथा ई-न्यायिक संरचनाओं की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। तकनीकी अवसंरचना की कमी साइबर सुरक्षा, डिजिटल डिवाइड, शिक्षक- प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम के डिजटलीकरण और ई- मूल्यांकन प्रणाली से जुड़ी चुनौतियों का भी विश्लेषण किया गया है।

इस अध्ययन से पता चलता है कि यदि बार काउंसिल आफ इंडिया की ओर से इस डिजिटल विधि शिक्षा हेतु तकनीकी संसाधनों का विस्तार, सुदृढ़ डिजिटल नीतियां ,साइबर सुरक्षा मानक और नवीन टेक्निकल आधारित शिक्षण पद्धतियों को अपनाये जाने हेतु आवश्यक नीति व निर्देश बनाया जाकर इस शिक्षण को वैश्विक स्तर पर नवीन प्रतिमान स्थापित कर ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है।

यह शोध तकनीकी संसाधनों व नवाचारों का प्रयोग किया जाकर डिजिटल विधि शिक्षा की संभावनाओं सीमाओं और भविष्य की दिशा को समझने हेतु एक महत्वपूर्ण संदर्भ प्रदान करता है, जिससे भारत विश्व स्तर पर विधि शिक्षा के क्षेत्र में अग्रिम पंक्ति पर खड़ा हो सकता है।

मुख्य शब्द: डिजिटल विधि शिक्षा, भारतीय विधिज्ञ परिषद, डिजिटल एविडेंस, तकनीकी विशेषज्ञता, वर्चुवल कोर्ट।

अनुसंधान पद्धति: इस शोध पत्र की अध्ययन पद्धति गुणात्मक शोध पर आधारित है जिसके साथ ही साथ विश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से संग्रहित डाटा जो द्वितीयक स्रोत के द्वारा प्राप्त है का विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक डेटा स्रोत यथा डिजिटल विधि शिक्षा पर प्रकाशित शोध ग्रंथों, नीतिगत दस्तावेजों शोध पत्रों, जनरल्स, पुस्तक, भारत सरकार की नीति विशेष कर एन. ई. पी. 2020, बार काउंसिल आफ इंडिया की रिपोर्ट, इंटर नेशनल व नेशनल वेबीनार, वर्कशॉप, ई-लाइब्रेरी का विश्लेषण, गुणात्मक सामग्री विश्लेषण, तुलनात्मक विश्लेषण व समस्या अवसर विश्लेषण कर भारत में डिजिटल विधि शिक्षा एवं बार काउंसिल की भूमिका में कमियां एवं चुनौतियों को पहचान कर भावी संभावनाओं व समस्या निराकरण के उपाय के संबंध में सुझाव तैयार किए गए हैं।

प्रस्तावना: वर्तमान समय में शिक्षा के क्षेत्र में नवीन गतिविधियों एवं तकनीकी का प्रयोग किया जा रहा है विधि शिक्षा में भी नवीन तकनीकों का प्रयोग किया जाकर विधि शिक्षा को सरल प्रभावी एवं विश्व व्यापीकरण बनाया जा रहा है कोरोना काल के पश्चात नवीन संचार साधन का प्रयोग तकनीक के माध्यम से ऑनलाइन कक्षाओं वर्चुअल कोर्ट डिजिटल लाइब्रेरी लर्निंग टूल्स डिजिटल पाठय सामग्री एवं न्यायालय के निष्कर्ष की रिपोर्ट ऑनलाइन प्राप्त किया जाकर विधि शिक्षा को ज्यादा प्रभावी बनाए जाने की संभावना बन रही है।

विधि शिक्षा का उद्देश्य न सिर्फ एक अच्छे अधिवक्ता का निर्माण करना है बल्कि एक ऐसे सुसंस्कृत नागरिक का निर्माण करना है जो कानून का पालन करने वाला तथा मानवीय मूल्य व मानव अधिकार की अवधारणा को अंतर्निहित करें।[1]

विधि शिक्षा को नियंत्रित करने वाली संस्था बार काउंसिल की भूमिका इस डिजिटल विधि शिक्षा को लेकर बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया है इस बदलते नवीन तकनीक का प्रयोग के संदर्भ में बार काउंसिल विधि शिक्षण संस्थानों को नवीन परिदृष्यो के अनुसार

संस्थानों में तकनीकी का प्रयोग करने, पाठ्यक्रम में नवीन तकनीकी विषयों को समावेश करने एवं कक्षा शिक्षण के माध्यमों में नवीन तकनीक का प्रयोग करने आदि हेतु नीति निर्धारण करने या सुनिश्चित करने की दिशा में आगे बढ रहे हैं।

बार काउंसिल आफ इंडिया बनाम बोर्ड आफ मैनेजमेंट दयानंद कॉलेज ऑफ लॉ (2007) 2 एस.सी.सी. 202 सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में बार काउंसिल आफ इंडिया को कानून की शिक्षा के मानकों को निर्धारित करने तथा कानून के कॉलेजो का निरीक्षण करने का अधिकार को मान्यता दिया गया।

विधि शिक्षा की नीति वर्तमान परिवर्तन के अनुरूप संशोधित होना चाहिए वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी विकास के परिणाम स्वरुप विशेषकर सॉफ्टवेयर टेक्नोलॉजी का प्रयोग विधि शिक्षा में किया जाना चाहिए।[2]

बार काउंसिल आफ इंडिया लीगल एजुकेशन रूल्स संशोधन 2021 के द्वारा कोविड काल में विधि शिक्षा में डिजिटल शिक्षा को मान्यता देने के संदर्भ में निर्देश जारी किया जाकर ऑनलाइन कक्षाओं एवं ऑनलाइन परीक्षा को अस्थाई मान्यता प्रदान किया गया था।

डिजिटल शिक्षा न केवल कक्षा शिक्षण के लिए उपयोगी है बल्कि पाठ्यक्रम की सहज उपलब्धता एवं विश्व व्यापीकरण पाठ सामग्री का प्रचुर मात्रा में उपलब्धता भी सुनिश्चित करती है । शहरी एवं ग्रामीण सभी क्षेत्र के शिक्षार्थियों के द्वारा इस नवीन तकनीक का प्रयोग कर विधि शिक्षण को सहज सरल एवं प्रभावी बनाया जा रहा है किंतु कुछ कमियां या चुनौतियां भी इस तकनीक के माध्यम से सामने आ रही है जैसे शिक्षकों की तकनीकी क्षमता, ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की कमी या आसमान उपलब्धता, शैक्षणिक सामग्री की गुणवत्ता तथा पारदर्शिता की कमी आदि । इसलिए भारत में डिजिटल विधि शिक्षा पर एक विश्लेषणात्मक अध्ययन करने की आवश्यकता है, जिसके आधार पर बार काउंसिल को भी भविष्य के लिए नीति निर्माण एवं संस्थागत कमियों को दूर करने हेतु उपाय खोजने में सहायक हो सके।

इस शोध पत्र के माध्यम से भारत में डिजिटल विधि शिक्षण की वर्तमान दशा और दिशा तथा नवीन संभावनाओं व वर्तमान कर्मियों का अध्ययन कर विधि शिक्षा को नवाचारों, नवीन तकनीकों एवं वैश्विक मानकों के अनुकूल बनाए जाने में सहायक हो सके।

डिजिटल विधि शिक्षा अध्ययन एवं विश्लेषणः

शिक्षा प्रदाय करने के प्राचीन संसाधनों यथा रटने की आदत व श्याम पट लेखन व कक्षा शिक्षक के पठन पश्चात छात्र-छात्राओं का पठन आदि के स्थान पर नया व वैज्ञानिक ढंग से तकनीकी का प्रयोग करते हुए अध्ययन व अध्यापन व्यवस्था डिजिटल शिक्षा के रूप में जाना जाता है भारत में विधि शिक्षा पुराने प्रचलित शिक्षण व्यवस्था के स्थान पर तकनीकी का प्रयोग करते हुए ऑनलाइन शिक्षण व्यवस्था को स्वीकार किया गया है भारत में डिजिटल विधि शिक्षा की विवेचना निम्न तरह कर सकते हैं।

डिजिटल विधि शिक्षा की आवश्यकताः विशेष कर कोविड-19 की अवधि में जब लॉकडाउन के कारण शिक्षण संस्थाने बंद थे कक्षा शिक्षण पूरी तरह बंद पड़ा हुआ था तब ऑनलाइन शिक्षण व्यवस्था को महत्व दिया गया और ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म और वर्चुअल क्लासरूम को स्वीकार किया गया हालांकि कोविड-19 के पूर्व भी विधि विषय की पाठ सामग्री, शोध पत्र पत्रिकाएं जैसे न्यायालयिन निर्णय के प्रकाशन ऑनलाइन उपलब्ध होते रहे है किंतु कोविड 19 महामारी के समय से विधि शिक्षा को व्यापक पहुंच व किफायती एवं समय पर शिक्षण बनाए जाने हेतु इसकी आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा।

नई टेक्नोलॉजी के साथ नए तरह के कानून साइबर लॉ एवं ए आई पर आधारित होने के कारण ऑनलाइन शिक्षण व्यवस्था को मान्य किया गया न्यायालयिन क्षेत्र में जुडिशल टेक्नोलॉजी का प्रयोग, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से कोर्ट की प्रोसिडिंग प्रारंभ होने के कारण नई टेक्नोलॉजी या डिजिटल प्रक्रिया को मान्य किया गया।

बार काउंसिल आफ इंडिया को विधि पाठ्यक्रम में डिजिटल विषयों को शामिल करने तथा नवीन तकनीकी ए. आई. व ऑनलाइन प्लेटफॉर्म को कानूनी शिक्षा में उपयोग करने की आवश्यकता है।[3]

डिजिटल विधि शिक्षा का विकासः भारत में डिजिटल विधि शिक्षा का विकास अन्य विषयों की शिक्षण के समान ही हुआ है एवं वर्तमान समय में इसकी आवश्यकता महसूस की जा रही है।

भारत में डिजिटल विधि शिक्षा की शुरुआत धीरे-धीरे हुई है। 2000 के दशक में विधि शिक्षा के पाठय सामग्री को उपलब्ध कराने का चलन ई- लर्निंग और डिजिटल माध्यम से प्रारंभ हुआ है। कुछ राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालयों अपने विधि पाठ सामग्री को ऑनलाइन उपलब्ध कराना शुरू किया। इसी तरह राष्ट्रीय इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय और अन्य मुक्त विश्वविद्यालयों ने कानून से संबंधित डिप्लोमा सर्टिफिकेट और अन्य विधि विषय में प्रमाण पत्र ऑनलाइन मोड में देने की शुरूआत किया। कुछ वर्षों पश्चात भारत सरकार द्वारा डिजिटल प्लेटफॉर्म का व्यवस्थित स्वरूप में विशेषकर 2015 के बाद से उपलब्ध कराना शुरू किया गया और स्वयं (एस.डबलयू. ए.वाय.ए.एम.), नेशनल लाइब्रेरी आफ इंडिया (एन.डी.एल.आई.), ई-पाठशाला आदि की शुरुआत किया गया। डिजिटल विधि शिक्षा के व्यापक और औपचारिक विस्तार कॉविड-19 के समय एवं उसके पश्चात ज्यादा प्रयोग किया गया। कई विधि शिक्षण संस्थाओं ने

सेमिनार, वेबीनार ,वर्चुअल कोर्ट- प्रैक्टिस और लाइव प्रोजेक्ट आधारित डिजिटल विधि शिक्षा प्रणाली को विकसित कर आज व्यवहार में लाया जा रहा है।

विधि शिक्षण संस्थान जैसे महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयो में कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त विधि पाठ्यक्रमों एवं अध्ययन सामग्रियों को ऑनलाइन उपलब्ध कराने की जरूरत पड़ रही है। शिक्षण हेतु विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का उपयोग बढ़ती जा रही है इसके लिए जूम मीटिंग, गूगल मीट, एम. एस. टीम्स जैसे प्लेटफार्म का प्रयोग किया जाकर ए आई आधारित शिक्षण व्यवस्था को स्वीकार किया जा रहा है।

विधि के छात्र-छात्राओं के लिए पुस्तकालय में उपलब्ध पठन सामग्रियों का ऑनलाइन डेटाबेस तथा ई-लाइब्रेरी का प्रयोग किया जाकर विभिन्न विधि पाठय सामग्रियों का अवलोकन किया जा रहा है मनुपात्रा, एस.एस.सी., ए.आई.आर., लेकिसस नेकिक्सस एवं शोध पत्र पत्रिकाएं, ग्रंथो आदि का अध्ययन ई-लाइब्रेरी व ऑनलाइन प्लेटफॉर्म का प्रयोग किया जा रहा है।

ए. आई. कानूनी अभ्यास में बदल रही है और यह कानूनी शिक्षा में डिजिटल साक्षरता डाटा एनालिटिकस, एल्गोरिदम को जोड़ने की जरूरत है । बार काउंसिल आफ इंडिया को इसमें हस्तक्षेप कर कानूनी प्रशिक्षण में टेक्नोलॉजी कौशल अनिवार्य किया जाए।[4]

विधि के छात्र-छात्राओं द्वारा एक्सपीरियंशियल लर्निंग के तौर पर वर्चुअल कोर्ट और प्रायोगिक पशिक्षण के लिए ई-कोटस प्रीजेक्ट के अंतर्गत ऑनलाइन फाइलिंग का अनुभव प्राप्त कर रहे हैं। छात्र-छात्राएं मुक हियरिंग भी ऑनलाइन या ए.आई. के माध्यम से कर रहे है। विभिन्न उच्च न्यायालयो एवं सर्वोच्च न्यायालय के विचारण पकिया की लाइव स्ट्रीमिंग के माध्यम से प्रक्रिया को सीखने का कार्य भी ऑनलाइन माध्यम से कर रहे हैं।

बार कौंसिल ऑफ इंडिया बनाम बोनी एफ. ओ. आई. लॉ कॉलेज (2023) इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला देते हुए यह माना है कि बार काउंसिल को अधिवक्ताओं के नामांकन के पूर्व या नामांकन के बाद परीक्षा आयोजित करने का अधिकार है अर्थात ऑल इंडिया बार एग्जामिनेशन को न्यायालय ने वैथता प्रदान किया है।

इस प्रकार वर्तमान विधि शिक्षण व्यवस्था न सिर्फ कक्षा शिक्षण हेतु आई.सी.टी.का उपयोग कर रहे हैं बल्कि पाठ्य सामग्री वह व्यावहारिक प्रशिक्षण के लिए भी डिजिटल विधि शिक्षा का प्रयोग करके विधि शिक्षा को ज्यादा से ज्यादा प्रभावी और सहज व सरल बनाने की ओर अग्रसर हो रहे हैं, साथ ही पाठ्यक्रम में नवीन पाठ्यक्रमों का समावेश जैसे साइबर लॉ डाटा प्रोटक्शन कानून जैसे नए विषय का भी अध्ययन कर रहे हैं।

बार काउंसिल आफ इंडिया के नियामक ढांचे, वैश्वीकरण और डिजिटल टेक्नोलॉजी के संदर्भ में कानूनी शिक्षा को परिवर्तन करने की आवश्यकता है।[5]

डिजिटल विधि शिक्षा की अनिवार्यता: वर्तमान वैश्वीकरण के युग में आज कोई भी कार्य एक सीमित दायरे से बाहर होकर विश्व स्तर पर पहुंच रहा है साथ ही लोगों द्वारा उस कार्य का अनुकरण करके उसके गुण दोष पर अपनी राय भी व्यक्त कर रहे हैं ।भारत में डिजिटल विधि शिक्षा इसी वैश्वीकरण के युग में विकसित हो रहा है जिसके कारण पूरे विश्व में एक राष्ट्र की व्यवस्था दूसरे राष्ट्र की व्यवस्था के रूप में या तो स्वीकार किया जा रहा है या उसकी आलोचना की जा रही है विकसित राष्ट्र यथा अमेरिका, इंग्लैंड,जापान एवं चीन आदि के विधि शिक्षा व्यवस्था विश्व मानकीकरण की स्तर पर पहुंच रहा है तो निश्चित ही भारतीय विधि शिक्षा व्यवस्था भी एक मानक स्थापित करें और अन्य देशों के लिए एक आदर्श प्रतिमान भी बने जिसके लिए वर्तमान समय की मांग के अनुसार डिजिटल विधि शिक्षा को सहज सरल व सुलभ बनाए जाने की आवश्यकता है।

बार काउंसिल आफ इंडिया बनाम स्टेट ऑफ केरला (मार्च 2025) इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि बार काउंसिल आफ इंडिया को यह तय नहीं करना चाहिए कि ऑनलाइन / डिजिटल विधि शिक्षा कब और कैसे दी जाए। इस मामले में एक व्यक्ति जो आजीवन कारावास की सजा प्राप्त है जेल में रहकर एल.एल.बी. कक्षा की पढ़ाई करने की अनुमति देने से संबंधित रहा है सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि विधि शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षा की पद्धति व इसके संबंध में नियम बनाने की अधिकारिकता न्यायविदो व विधि शिक्षाविदों के अधिकार में होना चाहिए । बार काउंसिल आफ इंडिया को विधि शिक्षण संस्थानों के निरीक्षण तथा विधि के मानदंडों के अनुरूप चलाने हेतु निर्देश जारी करने की अधिकारिता है।

भारत में कानूनी शिक्षा को पारंपरिक तरिकों से आगे बढ़ाकर टेक एजुकेशन (ए.आई.-असिस्टेड) पद्धतियों, वर्चुअल मूट-कोर्टस आदि के साथ पुनर्परिभाषित करना चाहिए। डिजिटल विधि शिक्षा के संदर्भ में यह विचार प्रस्ताव उपयोगी है।[6]

बार काउंसिल आफ इंडिया की भूमिका सीमित करनी चाहिए और उच्च कानूनी शिक्षा के लिए स्वतंत्र निकाय की आवश्यकता है अर्थात कानूनी शिक्षा सुधार और नियंत्रक संस्थापक पुनर्विचार हो रहा है।[7]

सुझावः

भारत में डिजिटल विधि शिक्षा एवं बार काउंसिल की भूमिका विषय के उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह सुझाव के रूप में कहा जा सकता है कि अभी भी विधि शिक्षा में तकनीकी के प्रयोग हेतु समुचित प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

विधि अध्ययन संस्थानों में ऑनलाइन सुविधा उपलब्ध कराने के लिए डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर को सुधार करने के लिए हाई स्पीड इंटरनेट की व्यवस्था एवं ई लर्निंग प्लेटफॉर्म स्मार्ट क्लासरूम आदि को सुव्यवस्थित करना होगा। ग्रामीण परिवेश के शिक्षण संस्थानों के लिए उपरोक्त हेतु सरकारी अनुदान की व्यवस्था आवश्यक लगती है।

बार काउंसिल आफ इंडिया एवं यू.जी.सी. को विधि शिक्षण संस्थानों के लिए एक समान राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत राष्ट्रीय ई-ला पोर्टल का निर्माण किया जाना होगा जिसमें ई-कंटेंट ,वीडियो लेक्चर, केस ला डेटाबेस उपलब्ध कराना होगा।

शिक्षण संस्थानों में विधि के छात्र-छात्राओं को न्यायालय से जोड़ने हेतु वर्चुअल माध्यम का सहारे से वर्चुअल कोर्ट और ई-मूटकोर्ट साथ ही ई-ड्राफ्टिंग व ई-फाइलिंग के माध्यम से व्यावहारिक प्रशिक्षण को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

विधि शिक्षण को नियंत्रित करने वाली संस्था बार काउंसिल आफ इंडिया को राष्ट्रीय स्तर पर एकीकृत डिजिटल लीगल एजुकेशन फ्रेमवर्क तैयार करने हेतु मजबूत डिजिटल नीति का निर्माण कर पाठ्यक्रम को मानकीकृत करना होगा।

सेंटर आफ लीगल एजुकेशन (सी. एल. ई.) को नए विषय जैसे ब्लाकचौन साइबर सुरक्षा, ए.आई. आदि को विधि पाठ्यक्रम में शामिल करने हेतु गाइडलाइन जारी किया गया है।[8]

विधि शिक्षण में लगे शिक्षकों को भी डिजिटल विधि शिक्षा हेतु पूर्ण योग्य/प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है, जिसके लिए शिक्षकों को आई.सी.टी. के इस्तेमाल करके एडवांस लीगल रिसर्च टूल्स, ऑनलाइन केस डाटाबेस तथा ई शिक्षण तकनीकियों के बारे में जानकारी हो सके।

शिक्षण संस्थानों में अध्यनरत दिव्यांग छात्र-छात्राओं हेतु आवश्यक तकनीकी का प्रबंध करने की भी आवश्यकता है जिस हेतू ऑडियो बुक, स्कीन रीडर, सबटाइटल वीडियो और विशेष सॉफ्टवेयर उपलब्ध कराकर दिव्यांगों के लिए विधिक शिक्षा को अधिक समावेशी बनाया जा सके।

निष्कर्षः

आधुनिकरण के इस युग में डिजिटल तकनीकी ने हर क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है भारत में डिजिटल विधि शिक्षा के माध्यम से न्याय व्यवस्था को प्रभावी बना रहा है विधि के छात्र डिजिटल रूप से सक्षम होकर ई -कोर्ट, ऑनलाइन केस मैनेजमेंट , वर्चुअल हियरिंग के द्वारा विधि शिक्षण की महत्व को बढ़ावा मिल रहा है। बार काउंसिल आफ इंडिया डिजिटल विधि शिक्षा के संबंध में आवश्यक नीति निर्धारित कर अपनी भूमिका का निवहन कर रहे हैं और विधि शिक्षा के मानकों का निर्धारण डिजिटल शिक्षा को दृष्टिगत करते हुए किया जा रहा है। डिजिटल ढांचा ऑनलाइन शिक्षण व्यवस्था शिक्षक- प्रशिक्षण और प्रौद्योगिकी आधारित कौशल को बढ़ावा दिया जा रहा है।

किंतु अभी भी डिजिटल विधि शिक्षा हेतु एक समग्र रणनीति की आवश्यकता है जिससे विधि शिक्षण को अधिक सुलभ, किफायती और व्यावहारिक बनाया जा सके, जिसमें शिक्षक प्रशिक्षण, समावेशी पाठ्यक्रम के साथ ही शिक्षा संस्थानों में संसाधनों की कमी को दूर किया जाकर एक स्वस्थ मानक निर्धारित हो सके।

कोविड महामारी के बाद डिजिटल स्रोतों का विस्तार होता गया है और विधि शिक्षा को हाइब्रिड मॉडल पर आधारित कर दिया है जिसमें शिक्षण की गुणवत्ता सुनिश्चित करना एवं डाटा सुरक्षा संबंधी चुनौतियों का समाधान ठोस नीतिगत उपाय करने की आवश्यकता आज पड़ रही है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि डिजिटल विधि शिक्षण विधि के छात्र-छात्राओं को अधिक सक्षम, तकनीकी के प्रयोग की सक्षमता और भविष्य की न्यायिक आवश्यकताओं के अनुकूल बना रहा है, वहीं दूसरी ओर बी. सी. आई. द्वारा आवश्यक दिशा निर्देश, संसाधन एवं ढांचा प्रदान कर भारत के विधि शिक्षण व्यवस्था को वैश्विक स्तर पर खड़ा करने की ओर आगे बढ़ रहा है।

संदर्भ सूचीः

1. मेनन एन.आर. एम. क्लीनिकल लीगल एजुकेशन इन इंडिया थ्योरी एंड प्रैक्टिस, ईस्टर्न बुक कंपनी
2. शिव रमैया बी. , लीगल एजुकेशन इन इंडिया, एन एम त्रिपाठी
3. सुराना के. टेक्नोलॉजी एंड लॉ इमर्जिंग ट्रेंड्स, यूनिवर्सल लॉ पब्लिशिंग

4. खान एम (2021) ई लर्निंग एंड प्रोफेशनल लीगल ट्रेनिंग इन इंडिया, इंडियन जनरल ऑफ लॉ एंड जस्टिस
5. राव जी. (2019) बार काउंसिल रेगुलेशन एंड देयर इंपैक्ट आन लीगल एजुकेशन, नेशनल लॉ रिव्यू
6. यूजीसी (2020) गाइडलाइन ऑन डिजिटल एंड ऑनलाइन एजुकेशन 2020 यू.जी.सी.
7. बार काउसिल ऑफ इंडिया (2020) गाइडलाइंस फॉर ऑनलाइन लीगल एजुकेशन कॉविड-19 पीरियड नोटिफिकेशन बी. सी. आई.
8. नीति आयोग इंडियास डिजिटल एजुकेशन रेडिनेस रिपोर्ट, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया
9. स्वयम एवं स्वयमप्रभा प्लेटफार्म , स्वयम वेबसाइट
10. बार बेंच आर्टिकल टाइटल रिलेटेड टू बी.सी. आई
11. सोरेन चुन्नू राम आई.जे. आर. आर. दिसंबर 2021 लीगल एजुकेशन इन इंडिया एंड एनालिटिकल स्टडी
12. रिपोर्ट ऑफ द करिकुलम डेवलपमेंट सेंटर इन लॉ न्यू दिल्ली 1990 पी.12
13. मान जे.एस. नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी दिल्ली 2023
14. पांडे हार्दिक एवं सिंह ज्योत्सना इंडियन जनरल आफ लिगल रिव्यू आई.जे. एल.आर. वॉल्यूम 5, 2025 ,द रोल ऑफ लीगल एजुकेशन इन प्रिपेयरिंग लॉयर्स फॉर ए.आई. टेक्नोलॉजी
15. ढाल ए. देहरादून ला रिव्यू डॉट कॉम 2023ए ष्लीगल एजुकेशन इन इंडियारू द इमर्जिंग चौलेंजेस एंड प्रास्पेक्ट्सष
16. रीडिफाइनिंग इंडियन लीगल पेडगॉगी टू एनहेस क्रिटिकल थिंकिंग इन इरा ऑफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, इंटरनेशनल जनरल ऑफ रिसर्च एंड साइंसटिफिक इनोवेशन (आई.जे.आर.एस.आई.) 2022.
17. पार्लियामेंट्री स्टैंडिंग कमिटी आन ला रिपोर्ट आन लीगल एजुकेशन रिफॉर्म्स (2024)
डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू इंडिया टुडे डाट इन
18. बी.सी.आई.सर्कुलर, 06/2024

फुटनोट

1 सोरेन चुन्नू राम आई.जे. आर. आर. दिसंबर 2021 लीगल एजुकेशन इन इंडिया एंड एनालिटिकल स्टडी
2 रिपोर्ट ऑफ द करिकुलम डेवलपमेंट सेंटर इन लॉ न्यू दिल्ली 1990 पी.12
3 मान जे.एस. नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी दिल्ली 2023
4 पांडे हार्दिक एवं सिंह ज्योत्सना इंडियन जनरल आफ लिगल रिव्यू आई.जे. एल.आर. वॉल्यूम 5, 2025, द रोल ऑफ लीगल एजुकेशन इन प्रिपेयरिंग लॉयर्स फॉर ए.आई. टेक्नोलॉजी
5 ढाल ए. देहरादून ला रिव्यू डॉट कॉम 2023ए 'लीगल एजुकेशन इन इंडिया: द इमर्जिंग चौलेंजेस एंड प्रास्पेक्ट्स'
6 रीडिफाइनिंग इंडियन लीगल पेडगॉगी टू एनहेस क्रिटिकल थिंकिंग इन इरा ऑफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस,
इंटरनेशनल जनरल ऑफ रिसर्च एंड साइंसटिफिक इनोवेशन (आई.जे.आर.एस.आई.) 2022.
7 पार्लियामेंट्री स्टैंडिंग कमिटी आन ला रिपोर्ट आन लीगल एजुकेशन रिफॉर्म्स (2024)
डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू इंडिया टुडे डाट इन
8 बी.सी.आई.सर्कुलर, 06/2024

भारत में चुनावी भागीदारी का विश्लेषणात्मक एक अध्ययन

डॉ० स्वाती सिंह

एम. ए. पीएचडी., स्नात्तकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

सारांश

यह शोध पत्र भारत के लोकसभा चुनावों में मतदाता भागीदारी की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है, विशेष ध्यान लिंग (महिला बनाम पुरुष) अंतर और स्थानिक (राज्य/क्षेत्रीय, शहरी-ग्रामीण) विविधताओं पर है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि पिछले दो दशकों में कुल मतदान दर में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है- विशेषकर 2014 के बाद- और महिलाओं की भागीदारी ने ऐतिहासिक रूप से मौजूद लिंग अंतर को लगभग समाप्त कर दिया है। 2019 और 2024 दोनों में महिलाओं का मतदान पुरुषों के बराबर या उससे अधिक दर्ज हुआ। 2024 के चुनाव, जिनमें लगभग 98 करोड़ पंजीकृत मतदाता और लगभग 64.6 करोड़ मत पड़े, विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक अभ्यास रहे; इनमें से लगभग 31.3 करोड़ मत महिलाओं द्वारा डाले गए, जो अब तक का उच्चतम स्तरीय महिला राजनीतिक सहभाग है। चुनाव आयोग द्वारा जारी ताजे ग्रेन्युलर डाटासेट्स राज्यवार और संसदीय क्षेत्रवार विश्लेषण की अनुमति देते हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि पूर्वोत्तर, पूर्वी तथा दक्षिणी राज्यों में मतदान दर सामान्यत: उच्च तथा कई पश्चिमी महानगरीय क्षेत्रों में अपेक्षाकृत निम्न है। शहरी क्षेत्रों में कम मतदान की प्रवृत्ति राज्य-विशिष्ट है और समय के साथ कुछ हद तक संकुचित हुई है, किंतु बनी हुई है। नीति-निष्कर्षों में शहरी मतदाताओं तक पहुँच, महिला-केंद्रित कल्याण योजनाओं का राजनीतिक अनुवाद, और डेटा-पारदर्शिता का महत्व रेखांकित किया गया है।

मूल शब्द: चुनाव , राजनीति विज्ञान , भारत , मीडिया , लोकतंत्र , कार्यप्रणाली

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जहाँ चुनावी भागीदारी लोकतांत्रिक प्रक्रिया की मजबूती और जनता की राजनीतिक चेतना का प्रमुख संकेतक मानी जाती है। भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के सिद्धांत के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को समान मतदान का अधिकार प्राप्त है। 1951-52 के प्रथम आम चुनाव से लेकर 2024 तक के चुनावी परिदृश्य में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए हैं। प्रारंभिक वर्षों में मतदान प्रतिशत जहाँ लगभग 45.7% था, वहीं 2019 के आम चुनाव में यह बढ़कर 67.4% तक पहुँच गया। महिलाओं की भागीदारी में भी महत्वपूर्ण वृद्धि देखी गई हैय 1962 में महिला मतदान प्रतिशत लगभग 46% था, जबकि 2019 में यह बढ़कर 67.18% हो गया। 2024 के लोकसभा चुनाव में अनुमानित 96.8 करोड़ मतदाता पंजीकृत हुए, जिनमें लगभग 47% महिलाएँ थीं।[1]

चुनावी भागीदारी केवल समय के साथ ही नहीं, बल्कि स्थानिक स्तर पर भी काफी भिन्नता प्रदर्शित करती है।

दक्षिणी राज्यों जैसे केरल और तमिलनाडु में मतदान प्रतिशत सामान्यत: 70-75% के बीच रहा है, जबकि शहरी केंद्रों जैसे दिल्ली और मुंबई में यह अक्सर 50-60% तक सीमित पाया गया है। पूर्वोत्तर राज्यों में भागीदारी अपेक्षाकृत अधिक (75-85%) रही है, जबकि जम्मू-कश्मीर और नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में यह औसत से कम पाई गई।

लिंग आधारित चुनावी भागीदारी का विश्लेषण विशेष महत्व रखता है, क्योंकि यह राजनीतिक सशक्तिकरण और लैंगिक समानता की दिशा में प्रगति को दर्शाता है। 2004 में जहाँ पुरुषों का मतदान प्रतिशत महिलाओं से अधिक था, वहीँ 2019 के आम चुनाव में कई राज्यों में महिलाओं की भागीदारी पुरुषों से अधिक रही, जैसे बिहार, ओडिशा और छत्तीसगढ़।[2]

यह प्रवृत्ति महिलाओं की बढ़ती राजनीतिक जागरूकता और सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों का स्पष्ट प्रमाण है।

2004 से 2024 का समय भारतीय चुनावी राजनीति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इस अवधि में सूचना प्रौद्योगिकी, सोशल मीडिया, महिला मतदाताओं को आकर्षित करने वाली नीतियों, और क्षेत्रीय दलों के बढ़ते प्रभाव ने चुनावी परिदृश्य को नए आयाम दिए। इस अध्ययन में चुनावी भागीदारी के स्थानिक और लिंग आधारित स्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा, ताकि यह समझा जा सके कि किन कारकों ने इस बदलाव को प्रभावित किया है और इसका लोकतांत्रिक संरचना पर क्या प्रभाव पड़ा है।

डेटा स्त्रोत

इस अध्ययन में 2004 से 2024 तक की चुनावी भागीदारी के विश्लेषण हेतु द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त प्रामाणिक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। मुख्य रूप से निर्वाचन आयोग द्वारा प्रकाशित आधिकारिक चुनाव परिणाम, मतदाता सूची और मतदान प्रतिशत संबंधी रिपोर्टों को आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त भारत निर्वाचन आयोग की वेबसाइट पर उपलब्ध समय-श्रृंखला डेटा, महिला एवं पुरुष मतदाताओं की भागीदारी संबंधी विस्तृत आंकड़े, और विभिन्न राज्यों के निर्वाचन कार्यालयों से प्राप्त जानकारी को भी संकलित किया गया है।[3]

लिंग आधारित विश्लेषण के लिए प्रत्येक आम चुनाव (2004, 2009, 2014, 2019 और 2024) में पुरुष एवं महिला मतदाताओं के मतदान प्रतिशत का तुलनात्मक डेटा लिया गया है। साथ ही, स्थानिक विश्लेषण हेतु भारत के सभी राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों का मतदान प्रतिशत, शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भागीदारी के अंतर, और क्षेत्रीय असमानताओं को प्रदर्शित करने वाले आंकड़ों का उपयोग किया गया है। डेटा की प्रामाणिकता सुनिश्चित करने के लिए सांख्यिकीय रिपोर्टस, भारत निर्वाचन आयोग की वार्षिक रिपोर्ट, राष्ट्रीय सांख्यिकीय संगठन के प्रकाशन तथा विश्वसनीय शोध पत्रों एवं लेखों का भी संदर्भ लिया गया है।

विश्लेषण

भारत में 2004 से 2024 तक के चुनावी भागीदारी के अध्ययन से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में मतदाता सहभागिता में निरंतर वृद्धि देखी गई है। प्रारंभिक चरणों में जहाँ 2004 के आम चुनावों में कुल मतदान प्रतिशत 58.07% था, वहीं 2019 तक यह बढ़कर 67.40% हो गया और 2024 में अनुमानित रूप से 66-68% तक पहुँच सकता है। यह वृद्धि मात्र सांख्यिकीय नहीं, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, और तकनीकी कारकों के सम्मिलित प्रभाव का परिणाम है। मतदाताओं के बीच जागरूकता का प्रसार, महिला सशक्तिकरण, डिजिटल अभियान, और निर्वाचन आयोग द्वारा संचालित ैटम्म्च कार्यक्रम जैसी पहलों ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[4]

तालिका 1: *साल दर साल मतदान प्रतिशत*

वर्ष	*कुल मतदान %*	*पुरुष मतदान %*	*महिला मतदान %*
2004	58.07%	60.2%	55.4%
2009	58.21	59.7%	56.5%
2014	66.4%	67.0%	65.6%
2019	67.4%	67.2%	67.2%
2024	68.5% (अनुमान)	68.1%	68.9%

स्रोत: चुनाव आयोग, भारत

लिंग आधारित विश्लेषण

2004 से पहले और उसके बाद के वर्षों में महिला मतदाताओं की भागीदारी में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ है।

2004 में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरुषों की तुलना में 8-10% कम था। यह अंतर 2009 तक थोड़ा कम हुआ, किंतु वास्तविक बदलाव 2014 और 2019 में दिखाई देता है। 2019 के लोकसभा चुनावों में कई राज्यों में महिलाओं ने पुरुषों से अधिक मतदान किया। उदाहरण के लिए, बिहार में महिलाओं का मतदान प्रतिशत 59.5% जबकि पुरुषों का 54.7% था।[5]

इसी प्रकार, छत्तीसगढ़ और ओडिशा जैसे राज्यों में भी महिला मतदाताओं की संख्या पुरुषों से अधिक रही। यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से महिला मतदाताओं के राजनीतिक सशक्तिकरण को दर्शाती है। इसके पीछे महिला साक्षरता में वृद्धि, महिला-केंद्रित योजनाएँ (उज्ज्वला योजना, जनधन योजना), और मतदान केंद्रों पर सुरक्षा व्यवस्था में सुधार मुख्य कारण रहे।

स्थानिक विश्लेषण

भारत में चुनावी भागीदारी का भौगोलिक वितरण असमान है। पूर्वोत्तर भारत (नगालैंड, मणिपुर, त्रिपुरा) जैसे राज्यों में मतदान प्रतिशत औसतन 75-85% तक रहा, जबकि शहरी महानगरों जैसे मु बंई, दिल्ली और बेंगलुरु में यह 50-55% के बीच सीमित रहा। दक्षिण भारत के राज्यों, विशेषकर केरल और तमिलनाडु में मतदान प्रतिशत 70% से अधिक रहा[6], जो वहाँ की राजनीतिक चेतना और सामाजिक भागीदारी को दर्शाता है। इसके विपरीत उत्तर भारत के राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश और बिहार में औसत मतदान प्रतिशत 55-60% तक सीमित रहा। इन असमानताओं के पीछे कई कारक हैं, जिनमें प्रवासी श्रमिकों की अनुपस्थिति, शहरी उदासीनता, क्षेत्रीय राजनीतिक गतिशीलता, और सामाजिक संरचना शामिल हैं।

समय-श्रृंखला प्रवृत्तियाँ

2004 से 2024 तक के समय-क्रम में मतदान प्रतिशत की प्रवृत्तियों को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि शुरुआती दशक में वृद्धि धीमी रही, किंतु 2014 से इसमें तेजी आई।

- 2004% कुल मतदान प्रतिशत 58.07%, महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाकृत कम।
- 2009% मामूली वृद्धि के साथ 58.19%।
- 2014% उल्लेखनीय उछाल, मतदान प्रतिशत 66.44%, सोशल मीडिया और डिजिटलीकरण का प्रभाव।
- 2019% अब तक का उच्चतम स्तर 67.40%, महिला मतदाताओं की बढ़ती भूमिका।
- 2024% अनुमानित वृद्धि, महिला मतदाताओं का निर्णायक प्रभाव और मतदान प्रतिशत 66-68% के बीच।

शहरी-ग्रामीण असमानता

चुनावी भागीदारी में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच स्पष्ट अंतर देखा गया। ग्रामीण क्षेत्रों में मतदान प्रतिशत 65-75% तक रहा, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह 50-60% के बीच सीमित रहा। ग्रामीण समाज में सामुदायिक दबाव, सामाजिक नेटवर्क और स्थानीय राजनीतिक गतिशीलता मतदान को प्रोत्साहित करती है, जबकि शहरी क्षेत्रों में व्यस्त जीवनशैली, उदासीनता, और प्रवासी श्रमिकों की अनुपस्थिति मतदान प्रतिशत को कम करती है।[7]

राज्यवार लिंग आधारित डेटा और समय-श्रृंखला ट्रेंड्स का विश्लेषण

1. राष्ट्रीय लिंग अंतर- समय का प्रक्षेप

चुनाव आयोग के अनुसार, लोकसभा चुनावों में महिला-पुरुष वोटर टर्न आउट अंतर ने 2009 (4.42%) से 2024 (.0.23%) तक महत्वपूर्ण बदलाव दिखाए हैं। विशेष रूप से 2019 (.0.16%) और 2024 (.0.23%) के चुनावों में यह अंतर महिला पक्ष में बदल गया, जिससे महिला मतदाता पहले से कुछ प्रतिशत अंक अधिक मतदान करने लगे।[8]

2. राज्यवार लिंग अंतर - 2024 लोकसभा चुनाव

ECI के "Atlas 2024" रिपोर्ट के अनुसार, 20 में से 36 राज्य/संघ-क्षेत्रों में महिलाओं की वोटिंग पुरुषों से अधिक रही। प्रमुख उदाहरण-

बिहार- महिला 59.45%, पुरुष 53.00% ध घ6.45% अंतर

अरुणाचल, हिमाचल, झारखंड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल में भी महिला टर्न आउट 4-6% अधिक रहा गुजरात और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में पुरुष वोटर आगे रहे (अंतर 4-7%)[9]

तालिका: *सारणीबद्ध रूप में*

राज्य	*महिला(%)*	*पुरुष (%)*	*अतंर (महिला-पुरुष)*
बिहार	59.45	53.00	+6.45
झारखंड	68.66	63.58	+5.08
गुजरात	56.55	63.45	-6.90
मध्य प्रदेश	64.23	69.20	-4.97

यह दर्शाता है कि पारंपरिक रूप से पिछड़े प्रदेशों में महिला मतदान अधिक है, जबकि आर्थिक-राजनैतिक केंद्रों वाले महाराष्ट्र, गुजरात में पुरुष मतदान आगे रहा।

3. कुल और लिंग-विशिष्ट मतदान रुझान (2009-2024)

भारत में 2009 से 2024 तक के लोकसभा चुनावों में कुल और लिंग-विशिष्ट मतदान रुझानों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि मतदाता भागीदारी में समय के साथ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। 2009 में कुल मतदान प्रतिशत 58.21% था, जिसमें पुरुष मतदाताओं की भागीदारी 60.24% और महिला मतदाताओं की भागीदारी 55.82% रही[10], यानी पुरुषों के पक्ष में लगभग 4.42% का अंतर था। यह अंतर धीरे-धीरे कम हुआ और 2014 के चुनावों में कुल मतदान 66.44% तक पहुँच गया। इस अवधि में महिलाओं की भागीदारी 65.54% और पुरुषों की 67.00% रही, जिससे लिंग अंतर घटकर मात्र 1.46% रह गया। 2019 के चुनाव ऐतिहासिक रूप

से महत्वपूर्ण रहे क्योंकि पहली बार महिलाओं की भागीदारी (67.18%) पुरुषों (67.02%) के बराबर ही नहीं बल्कि थोड़ी अधिक रही, जिससे अंतर .0.16% महिला पक्ष में हो गया।

2024 के प्रारंभिक आंकड़ों के अनुसार, यह प्रवृत्ति और मजबूत हुई, जहाँ कुल मतदान लगभग 66.10% रहा, महिलाओं की भागीदारी 65.78% और पुरुषों की 65.55% रही, अर्थात् महिला मतदाताओं ने लगातार दूसरे चुनाव में पुरुषों को पीछे छोड़ा। यह समय-श्रृंखला रुझान न केवल महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण और जागरूकता में वृद्धि का प्रमाण है, बल्कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया में लैंगिक समानता के सुदृढ़ीकरण का भी संकेत देता है। इन परिवर्तनों के पीछे महिला शिक्षा, कल्याणकारी योजनाओं, राजनीतिक दलों की लक्षित रणनीतियों और सुरक्षित मतदान व्यवस्था जैसी नीतिगत पहलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।[11]

तालिका 4

वर्ष	*कुल टर्नआउट*	*महिला (%)*	*पुरुष (%)*	*अंतर*
2009	58.21%	55.82%	60.24%	+4.42
2014	66.44%	65.54%	67.00%	+1.46
2019	67.40%	67.18%	67.02%	−0.16
2024	66.10%	65.78%	65.55%	−0.23

प्रभावकारी कारक

इस अवधि में कई ऐसे कारक सामने आए जिन्होंने मतदान प्रतिशत को प्रभावित किया। इनमें महिला सशक्तिकरण योजनाएँ, साक्षरता में वृद्धि, सोशल मीडिया का प्रसार, डिजिटल अभियान, और निर्वाचन आयोग की ‘टम्च्’ पहल शामिल हैं। तकनीकी नवाचार जैसे ईवीएम, टटचज्, और ऑनलाइन मतदाता सूची ने मतदान प्रक्रिया को पारदर्शी और सरल बनाया। इसके अतिरिक्त, चुनाव आयोग द्वारा सुरक्षा और सुविधाओं को बेहतर बनाने के प्रयासों ने विशेषकर महिलाओं के लिए मतदान को सुरक्षित और सुगम बनाया।

भारत में 2004 से 2024 तक चुनावी भागीदारी में सकारात्मक प्रवृत्तियों के बावजूद कई चुनौतियाँ मौजूद हैं, जो लोकतांत्रिक प्रक्रिया की गहराई और समावेशिता को प्रभावित करती हैं। इन्हें विस्तार से निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है:

1. लिंग आधारित असमानता का अवशेष

हालांकि महिला मतदाताओं की भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, फिर भी कुछ राज्यों में यह पुरुषों से कम है। विशेषकर उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में सामाजिक बाधाएँ, पितृसत्तात्मक सोच और महिलाओं की राजनीतिक साक्षरता की कमी इस अंतर को बनाए रखती हैं।[12]

2. शहरी उदासीनता

महानगरों जैसे मुंबई, दिल्ली, बेंगलुरु में मतदान प्रतिशत लगातार 50-55% के आसपास सीमित रहता है। इसका कारण प्रवासी आबादी, व्यस्त जीवनशैली, और यह धारणा है कि 'एक वोट से क्या फर्क पड़ेगा'। इस प्रवृत्ति से शहरी मतदाता राजनीतिक प्रक्रिया से अलग होते जा रहे हैं।

3. क्षेत्रीय विषमता

पूर्वोत्तर भारत और दक्षिण भारत में मतदान प्रतिशत उच्च है, जबकि उत्तर भारत के कुछ हिस्सों में यह अपेक्षाकृत कम है। यह असमानता क्षेत्रीय राजनीतिक संस्कृति, सुरक्षा की स्थिति और बुनियादी ढाँचे की गुणवत्ता से जुड़ी है।

4. प्रवासी श्रमिकों की भागीदारी

भारत में बड़ी संख्या में प्रवासी श्रमिक चुनावों के दौरान अपने गृहनगर में मतदान करने नहीं पहुँच पाते, जिससे मतदाता सूची में नाम होने के बावजूद मतदान प्रतिशत प्रभावित होता है। अनुमानित रूप से 2024 के चुनाव में भी करोड़ों प्रवासी मतदाता अपने मतदान अधिकार का उपयोग नहीं कर पाए।[13]

5. नकली और नामांकित वोटर का मुद्दा

मतदाता सूची की सटीकता, मृत व्यक्तियों के नाम हटाने में देरी और डुप्लिकेट नाम जैसी समस्याएँ चुनावी पारदर्शिता के लिए चुनौती बनी हुई हैं।

6. महिला मतदाताओं के लिए सुरक्षा और स्वतंत्रता

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला मतदाताओं पर पारिवारिक दबाव या सामुदायिक प्रभाव के कारण स्वतंत्र मतदान नहीं कर पाने की समस्या अब भी मौज ूद है। साथ ही कुछ इलाकों में महिलाओं के लिए सुरक्षित मतदान केंद्रों की कमी भी चिंता का विषय है।[14]

7. डिजिटल डिवाइड और गलत सूचना

हालांकि सोशल मीडिया ने राजनीतिक जागरूकता बढ़ाई है, लेकिन फेक न्यूज और गलत सूचनाओं के प्रसार ने मतदाताओं के निर्णय को प्रभावित किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल डिवाइड के कारण सूचनाओं तक समान पहुँच नहीं है।

8. चुनावी खर्च और मतदाताओं पर प्रभाव

बढ़ते चुनावी खर्च और पैसों या वस्तुओं के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करने की प्रवृत्ति लोकतांत्रिक नैतिकता को कमजोर करती है।

सुझाव

1. शहरी मतदाता संलग्नता को प्राथमिकता

भारत के कई महानगरों- मुंबई, दिल्ली, पुणे, बेंगलुरु आदि में कुल मतदान दर राष्ट्रीय औसत से लगातार नीचे रहती है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में भागीदारी अधिक होती है। इस शहरी उदासीनता का लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, क्योंकि संसदीय सीटों में शहरी मतदाता संख्या बड़ी होने के बावजूद उनका प्रभाव कम हो जाता है।

समाधान के लिए निर्वाचन आयोग व राज्य निर्वाचन तंत्र को लक्षित शहरी अभियान चलाने चाहिए- आवासीय सोसायटी-आधारित पंजीकरण कैंप, कॉर्पोरेट ऑफिस मतदान प्रोत्साहन सप्ताह, सप्ताहांतध्कार्यदिवस सुविधा पर संचार, और मतदाता परिवहन सहायता (विशेषकर वृद्ध/विकलांग शहरी मतदाताओं हेतु) जैसी पहलें उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। महाराष्ट्र जैसे राज्यों में शहरी-ग्रामीण गैप कम करने के अनुभव से अन्य राज्यों को सीखना चाहिए। निगरानी के लिए शहर-वार पंजीकरण अनुपात, बूथ स्तर शहरी मतदान प्रतिशत परिवर्तन, और लक्षित वार्डों में पायलट-पूर्व व पायलट-पश्चात तुलना अपनाएँ।[15]

2. जेंडर-सेंसिटिव चुनावी पहुँच का संस्थानीकरण

दो लगातार आम चुनावों (2019, 2024) में महिलाओं ने पुरुषों की बराबरी या उससे अधिक मतदान दर दर्ज की, जिससे स्पष्ट है कि लक्षित पहलोंकृजैसे 'सखी बूथ', महिला बूथ एंबेसडर, सुरक्षित मतदान केंद्र, और कल्याणकारी योजनाओं से प्रेरित राजनीतिक सहभागकृने वास्तविक प्रभाव डाला है। इस गति को बनाए रखने हेतु निर्वाचन आयोग को महिला-केंद्रित सुविधाओं को स्थायी मानक संचालन प्रोटोकॉल में बदलना चाहिए: (i) हर विधानसभा खंड में न्यूनतम महिला-मैत्री बूथ, (ii) छोटे बच्चों के साथ आई महिलाओं के लिए प्रतीक्षा कक्ष/बाल-देखभाल सुविधा, (iii) मतदान दिवस से पूर्व 'महिला मतदाता सप्ताह', और (iv) स्वैच्छिक महिला स्वयंसेवक नेटवर्क। प्रभाव मापने हेतु महिला मतदाता पंजीकरण दर, बूथवार महिला मतदान प्रतिशत, और पिछड़े जिलों में जेंडर गैप परिवर्तनों का ट्रैक रखना चाहिए।[16]

3. निम्न-टर्नआउट क्षेत्रों के लिए लक्षित हस्तक्षेप

राज्यवार डेटा से स्पष्ट है कि कुछ संसदीय क्षेत्रों; विशेषकर बड़े महानगरों के चुनिंदा शहरी खंडों, सुरक्षा-संवेदनशील क्षेत्रों, और प्रवासी-प्रधान जिलों- में मतदान प्रतिशत लगातार कम रहता है। निर्वाचन प्रबंधन को "लो-टर्नआउट रिस्क मैट्रिक्स" तैयार करना चाहिए, जिसमें पिछले तीन आम चुनावों का औसत, पिछले दो विधानसभा चुनाव, और लिंग अंतर शामिल हों। जहाँ गिरावट लगातार दिखे वहाँ विशेष उपाय लागू करें। मोबाइल मतदाता शिक्षा वैन, स्थानीय एनजीओ और छात्र संगठनों के साथ 'वोट उत्सव', तथा मतदान से 7-10 दिन पूर्व घर-घर मतदाता सत्यापन। 2024 के लिए उपलब्ध सूक्ष्म म्ब् डेटा से ऐसे क्षेत्र चिन्हित करना अब पहले से आसान है।

4. प्रवासी मतदाताओं के लिए सुविधा तंत्र

देश के भीतर श्रमिक प्रवास के कारण बड़ी संख्या में पंजीकृत मतदाता मतदान के दिन अपने गृह निर्वाचन क्षेत्र में उपस्थित नहीं हो पाते, जिससे वास्तविक भागीदारी और लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व विकृत होता है। ECI ने पूर्व में "रिमोट वोटिंग मशीन" जैसी अवधारणाओं की परीक्षण-स्तरीय चर्चा की है। ऐसी तकनीकी पायलट पहलें व्यापक पैमाने पर विचार योग्य हैं। वैकल्पिक रूप से, प्रवासी श्रमिकों के लिए आसान मतदाता पंजीकरण अद्यतन, पूर्व-वोट या नियंत्रित केंद्र-बहु-परिवेशीय मॉडल पर अध्ययन शुरू किया जा सकता है। नीति प्रभाव के संकेतक होंगे- राज्य से बाहर कार्यरत पंजीकृत मतदाताओं का मतदान अनुपात, प्रवासी क्लस्टर जिलों में मतदान वृद्धि, और पंजीकरण परिवर्तन दर।[17]

5. मतदाता सूची शुद्धिकरण और डेटा एकीकरण

मतदाता सूची की गुणवत्ता चुनावी भागीदारी मापन की विश्वसनीयता के लिए केंद्रीय है। मृत मतदाताओं के नाम, डुप्लिकेट प्रविष्टियाँ, और पते में त्रुटियाँ मतदान प्रतिशत को कृत्रिम रूप से प्रभावित कर सकती हैं; विशेषत: जब लिंग विश्लेषण किया जाता है। म्ब् द्वारा जारी 2024 के सांख्यिकीय रिपोर्ट पैकेज ने डेटा पारदर्शिता को नई ऊँचाई दी है।

अगले चरण में मतदाता सूचियों का आधार, जनगणना व स्थानीय निकाय डाटाबेस से क्रॉस-वैलिडेशन उपयोगी हो सकता है (गोपनीयता-सुरक्षित प्रक्रियाओं सहित)। संकेतक: नाम-संशोधन अनुपात, हटाए गए डुप्लिकेट रिकॉर्ड, और बूथवार सक्रिय-पंजीकृत मतदाता सत्यापन दर।

6. डेटा-पारदर्शिता और सार्वजनिक उपयोग डैशबोर्ड

चुनावी भागीदारी पर नीति निर्माण तभी सटीक होगा जब उच्च-गुणवत्ता, मशीन-पठनीय, लिंग-विभेदित और स्थानिक रूप से संदर्भित डेटा नियमित रूप से सार्वजनिक हों। म्ब् ने 2024 लोकसभा चुनाव के लिए 42 विस्तृत सांख्यिकीय रिपोर्ट जारी कर उल्लेखनीय पारदर्शिता दिखाई है- इस मॉडल को संस्थानीकृत कर चुनावों के 90 दिनों के भीतर राज्यवार, संसदीय क्षेत्रवार, और जहाँ संभव हो वहाँ विधानसभा सेगमेंटवार जेंडर डेटा जारी किया जाना चाहिए।[18]

ओपन API, MkmuyksMscy CSV, और विजुअलाइजेशन पोर्टल से शोधकर्ताओं, मीडिया और नागरिक समाज को विश्लेषण में मदद मिलेगी। इससे शहरी-ग्रामीण व जेंडर गैप पर त्वरित निगरानी संभव होगी।

निष्कर्ष

भारत में 2004 से 2024 तक के चुनावी भागीदारी रुझानों का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि भारतीय लोकतंत्र समय के साथ अधिक समावेशी और सहभागी होता गया है। मतदान प्रतिशत में निरंतर वृद्धि- विशेषकर 2004 के 58. 07% से बढ़कर 2019 में 67. 40% और 2024 में अनुमानित 66-67% - इस बात का प्रमाण है कि लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रति नागरिकों की रुचि बढ़ी है। यह वृद्धि केवल संख्यात्मक नहीं है, बल्कि गुणात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें महिला मतदाताओं की सक्रियता निर्णायक भूमिका निभा रही है। 2004 में जहाँ महिलाओं की भागीदारी पुरुषों से 8-10% कम थी, वहीं 2019 और 2024 में कई राज्यों में महिलाओं ने पुरुषों को पीछे छोड़ दिया। यह बदलाव भारतीय समाज में बढ़ती लैंगिक समानता और राजनीतिक सशक्तिकरण का संकेतक है।

स्थानिक दृष्टिकोण से, क्षेत्रीय असमानताएँ अभी भी बनी हुई हैं। पूर्वोत्तर और दक्षिण भारत के राज्यों में मतदान दर लगातार उच्च (70-85%) रही, जबकि शहरी क्षेत्रोंकृविशेषकर महानगरोंकृमें यह औसतन 50-55% तक सीमित रही।

यह अंतर शहरी उदासीनता, प्रवासी मतदाताओं की अनुपस्थिति, और कार्य संस्कृति जैसे कारकों के कारण है। वहीं, ग्रामीण क्षेत्रों में मतदान प्रतिशत अधिक रहा, जो सामुदायिक नेटवर्क, सामाजिक दबाव और स्थानीय राजनीतिक जुड़ाव का परिणाम है।

इन रुझानों का लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व और नीति निर्माण पर गहरा प्रभाव है। उच्च महिला भागीदारी ने चुनावी एजेंडा को प्रभावित किया है, जिससे कल्याणकारी योजनाओं, सुरक्षा, शिक्षा और स्वास्थ्य से संबंधित नीतियों को अधिक महत्व मिला। साथ ही, निर्वाचन आयोग के SVEEP जैसे कार्यक्रमों, तकनीकी नवाचारों और मतदाता सूची के डिजिटलीकरण ने इस सकारात्मक परिवर्तन में योगदान दिया है।[19]

हालाँकि, कुछ चुनौतियाँ अभी भी शेष हैं- शहरी मतदाताओं की उदासीनता, प्रवासी मतदाताओं के मतदान अधिकार, गलत सूचना का खतरा, और डेटा पारदर्शिता की सीमाएँ। इन चुनौतियों के समाधान हेतु लक्षित नीति हस्तक्षेप, तकनीकी नवाचार और नागरिक शिक्षा अनिवार्य हैं।

अंतत:, यह अध्ययन न केवल अतीत और वर्तमान के चुनावी परिदृश्य को रेखांकित करता है, बल्कि भविष्य की रणनीतियों के लिए एक स्पष्ट मार्गदर्शन भी प्रस्तुत करता है। यदि इन नीतिगत सिफारिशों को लागू किया गया, तो भारत की चुनावी प्रक्रिया और अधिक समावेशी, पारदर्शी और सहभागितापूर्ण होगी, जिससे लोकतंत्र की जड़ें और मजबूत होंगी।

सन्दर्भ

1. आचार्य, के. (2018). भारतीय चुनाव और लोकतंत्र की चुनौतियाँ. नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान।
2. आयुक्त, भारत निर्वाचन आयोग. (2024). सामान्य निर्वाचन रिपोर्ट 2024. नई दिल्ली: भारत निर्वाचन आयोग।
3. इंडिया टुडे. (2024). लोकसभा चुनाव 2024% मतदाता भागीदारी का विश्लेषण. इंडिया टुडे ग्रुप।
4. इंडियन एक्सप्रेस. (2019). लोकसभा चुनाव 2019% महिला मतदाताओं की बढ़ती भागीदारी. नई दिल्ली।

5. कुमार, संजीव. (2019). भारतीय राजनीति में महिला मतदाताओं की भूमिका. नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन।
6. कुमार, अरविंद. (2021). भारत में मतदाता व्यवहार का क्षेत्रीय विश्लेषण. पटना: छात्र प्रकाशन।
7. चौधरी, पी. (2021). शहरी-ग्रामीण मतदान व्यवहार: एक तुलनात्मक अध्ययन. दिल्ली: मणिप्रकाशन।
8. निवेदीता, एस. (2022). महिला सशक्तिकरण और राजनीतिक सहभागिता. पटना: विद्यार्थी प्रकाशन।
9. नायडू, वी. (2020). भारतीय लोकतंत्र और चुनावी सुधार. हैदराबाद: यूनिवर्सिटी प्रेस।
10. पाठक, आर. (2020). भारतीय चुनावों का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य. जयपुर: रावत पब्लिकेशन।
11. पलट, ए. (2019). भारतीय लोकतंत्र में जनसंचार और चुनाव. भोपाल: ज्ञानदीप प्रकाशन।
12. भारत निर्वाचन आयोग. (2004-2019). सामान्य चुनाव परिणाम रिपोर्ट . नई दिल्ली: भारत निर्वाचन आयोग।
13. भारतीय जनगणना संगठन. (2011). जनगणना रिपोर्ट: साक्षरता और लिंग अनुपात. नई दिल्ली: भारत सरकार।
14. मिश्रा, डी. (2018). भारतीय लोकतंत्र और मतदाता व्यवहार. वाराणसी: भारती प्रकाशन।
15. मालवीय, वी. (2023). चुनावी रुझान और मतदाता सहभागिता. दिल्ली: प्रकाशन भवन।
16. लाल, आर. (2023). भारत में चुनाव सुधार और तकनीकी बदलाव. दिल्ली: ओम पब्लिकेशन।
17. शर्मा, वी. (2021). भारतीय लोकतंत्र का विकास और चुनौतियाँ. मुंबई: अटलांटिक पब्लिकेशन।
18. समाचार पत्र लेख. (2024). 2024 लोकसभा चुनाव का मतदान प्रतिशत: क्षेत्रवार विश्लेषण. दैनिक भास्कर।
19. हिंदुस्तान टाइम्स. (2019). लोकसभा चुनावों में लिंग आधारित मतदान पैटर्न. नई दिल्ली।

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण: एक मूल्यांकन

प्रकाश नारायण

शोधार्थी, स्नात्तकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, (बिहार)

सारांश

लगभग सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं ने अपने सामने आधुनिकीकरण का लक्ष्य रखा है। स्वतंत्रता के बाद से भारत में राजनीतिक रुझान मुख्यत: क्षेत्रीय हित समूहों द्वारा व्यक्त की गई माँगों के साथ सामंजस्य की एक श्रृंखला रहे हैं: राजनीतिक क्षेत्र में राज्यों का भाषाई गठन, आर्थिक नीति के क्षेत्र में मिश्रित अर्थव्यवस्था पर जोर, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में धर्मनिरपेक्षता और तटस्थता, ये सभी भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के मुख्यत: सामंजस्यकारी स्वरूप के प्रतिबिंब हैं।

राजनीति में पारंपरिक संस्थाओं की भूमिका के मामले में भी यही पैटर्न लागू होता है। जाति संघों, नातेदारी समूहों और जातीय एकजुटताओं ने आधुनिक लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्कृति की आवश्यकताओं के अनुरूप स्वयं को सफलतापूर्वक ढाल लिया है। आधुनिक शक्तियों के प्रभाव के कारण समाज के राजनीतिक क्षेत्र में कुछ परिवर्तन देखे गए हैं। न्यायालयीन कानूनों के नियमन, ग्राम पंचायतों की स्थापना और स्थानीय स्वायत्तता ने पारंपरिक भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को बदल दिया है। गाँवों में जाति पंचायतों का ह्रास हो रहा है और उनके कार्य न्यायालयों को हस्तांतरित किए जा रहे हैं।

दूसरी ओर, जाति राजनीतिक आधार पर विकसित हो रही है। नेतृत्व के स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। यह नेतृत्व अब निम्न आय वर्ग को भी उपलब्ध है। अखिल भारतीय दलों का प्रभुत्व दर्शाता है कि राजनीतिक एकता किस हद तक दृढ़ता से स्थापित है। संस्कृति और भाषा के क्षेत्रीय अंतरों ने राज्यों की संख्या और परिसीमन पर बहसों में राजनीतिक अभिव्यक्ति पाई है। विभिन्न स्रोतों से यह स्पष्ट है कि व्यापक अर्थों में बुद्धिजीवियों ने स्वतंत्रता के बाद से भारत के राजनीतिक जीवन पर अपना प्रभुत्व बनाए रखा है और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देखी गई व्यापक जनसंख्या द्वारा राजनीति में सक्रिय भागीदारी हाल ही में कुछ राज्यों में किसान आंदोलनों के उदय के साथ सीमित पैमाने पर पुनर्जीवित होने लगी है। छात्र राजनीतिक कार्यों में भर्ती का प्रमुख स्रोत हैं और यह प्रमुख दलों में गुटबाजी की व्यापकता को दर्शाता है। कुछ अध्ययनों में गुटबाजी की व्यापकता को पारंपरिक ग्रामीण संस्कृति की विशेषता पाया गया है। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण के कारण ऐसे दलों का उदय हुआ है जो विशेष रूप से समाज के इस वर्ग के लिए काम करते हैं। हाल के वर्षों में उन्होंने वोट शेयर और राष्ट्रीय राजनीति में भूमिका दोनों के मामले में भारी लाभ कमाया है। पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था, जाति व्यवस्था और धर्म तथा आर्थिक विकास द्वारा उत्पन्न नये रिश्तों के बीच संघर्ष हैं। इस शोध के माध्यम से भारत की राजनीतिक विकास प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है।

मूल शब्द: राजनीतिक विकास, लोकतांत्रिक संस्थाएं, संघीय संरचना, धार्मिक, जातिवाद, क्षेत्रवाद, आर्थिक-विषमता, आरक्षण, वर्ग राजनीति, सहभागिता, उच्च वर्ग, पिछड़ा वर्ग, मध्य वर्ग, पंचवर्षीय योजना, नारी शक्ति।

प्रस्तावना

राजनीतिक आधुनिकीकरण, आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संस्थाओं में होने वाले परिवर्तन को संदर्भित करता है। यह राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संस्थाओं में होने वाला परिवर्तन है जो एक साथ मिलकर एक ऐसी प्रक्रिया को गति प्रदान करता है जिसके माध्यम से कम विकसित समाजों द्वारा भी उच्च प्रदर्शन मानक और उपलब्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। राजनीतिक विकास की तरह, राजनीतिक आधुनिकीकरण की भी सटीक परिभाषा देना बहुत कठिन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर आधारित है जिसका उद्देश्य एक आधुनिक समाज की स्थापना करना है।[1]

आधुनिक समाज शब्द का अर्थ है एक ऐसा समाज जिसकी विशेषताएँ प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग, व्यापक सामाजिक परस्पर निर्भरता, शहरीकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता और ऐसे ही कई अन्य कारक हैं।[2] पश्चिमी समाजों के संदर्भ में, आधुनिकीकरण में पारंपरिक समाज का विघटन और उसकी राख पर एक बिल्कुल अलग समाज का उदय शामिल है। एक ऐसा समाज जो उन्नत प्रौद्योगिकी और विज्ञान की भावना, सामाजिक संबंधों के प्रति एक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण और सार्वजनिक मामलों में न्याय की भावना पर आधारित हो।

आधुनिक समाज की अवधारणा के अनुसार, एक आधुनिक व्यक्ति वह है जिसमें करुणा, मानवता और सार्वभौमिक विश्वदृष्टि जैसे गुण हों, जो धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण रखता हो और जो एकता, पारस्परिकता और सद्भाव के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध हो। इसे आधुनिकीकरण की मानवतावादी अवधारणा कहना सही होगा।[3] यह ईश्वर के पितृत्व और मानवजाति के भाईचारे में विश्वास करता है। आधुनिकीकरण की यह अवधारणा या ये मानवतावादी अवधारणाएँ आधुनिकीकरण की अन्य समान अवधारणाओं से भिन्न हैं। राजनीतिक आधुनिकीकरण का संबंध के वल व्यक्ति के राजनीतिक गुणों या आधुनिक समाज की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन से ही नहीं है, बल्कि इसका दायरा व्यापक है। यह हमारे सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को एक साथ समाहित करता है। इस प्रकार, यह एक ही समय में कई चीजों से जुड़ा होता है। यह व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन, राजनीतिक व्यवस्था के दर्शन, राजनीतिक संस्कृति और परिवेश में परिवर्तन से भी जुड़ा है और इस प्रकार अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और औद्योगीकरण के साथ-साथ ग्रामीण जीवन के शहरीकरण के क्षेत्र को भी अपने दायरे में शामिल करता है।[4]

राजनीतिक आधुनिकीकरण के कई आयाम हैं। इसे मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक परिप्रेक्ष्य से देखा गया है। आधुनिक मनुष्य का मानना है कि प्रकृति और समाज में परिवर्तन न के वल संभव है, बल्कि स्वयं मनुष्य द्वारा लाया भी जा सकता है। बौद्धिक स्तर पर, इसमें मनुष्य के अपने पर्यावरण के बारे में ज्ञान का व्यापक विस्तार और साक्षरता, जनसंचार एवं शिक्षा के माध्यम से समाज में इस ज्ञान का वितरण शामिल है। इस प्रकार आधुनिकीकरण को एक व्यापक परिघटना माना जाता है। आधुनिकीकरण की पश्चिमी अवधारणा उन्नत तकनीक और सामाजिक संबंधों के प्रति एक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण पर आधारित, समाज के पूर्ण त्याग द्वारा उसके प्रतिस्थापन की वकालत करती है।[5]

भारत, एक संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक देश है। भारत का राजनीतिक विकास स्वाधीनता के बाद से एक जटिल और गतिशील प्रक्रिया से गुजरा है।

भारत में, यह निरंतरता और परिवर्तन, अपनी गौरवशाली समृद्ध विरासत को नष्ट किए बिना एक नई पहचान के निर्माण की वकालत करता है। आधुनिकीकरण मूलत: लोकतांत्रिक आधार पर परंपरा का पुनर्गठन है। इसका अर्थ पुरानी व्यवस्था के ऊपर एक नई व्यवस्था का निर्माण करना है, न कि नई व्यवस्था का प्रतिस्थापन और पुरानी व्यवस्था का परित्याग।[6]

भारत के सन्दर्भ में राजनीतिक विकास

राजनीतिक विकास को साधारण तौर पर विकास की अवधारणा से संबंधित करके यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि राजनीति के क्षेत्र में आगे बढना ही राजनीतिक विकास है। अत: यह प्रगति का सूचक है इसे राजनीतिक परिवर्तन भी कहा जाता है। राजनीतिक विकास की अवधारणा को सबसे पहले व्यवस्थित व वैज्ञानिक विश्लेषण लूसियान पाई द्वारा अपनी पुस्तक "एस्पेक्ट्स ऑफ पोलिटिकल डेवलपमेंट 1966" में किया गया। लूसियान पाई- "राजनीतिक विकास, संस्कृति का विसरण और जीवन के पुराने प्रतिमानों को नई मांगों के अनुकूल बनाने, उन्हें उनके साथ मिलाने या उनके साथ तालमेल बैठना है।[7]

अल्फ्रेड डायमेंट- "राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक राजनीतिक व्यवस्था के नए प्रकार के लक्ष्यों को निरंतर सफल रूप में प्राप्त करने की क्षमता बनी रहती है।"[8]

भारत में समग्र स्तर पर विकास में नाटकीय वृद्धि के बावजूद, स्थानीय स्तर पर विकास के परिणामों में काफी भिन्नता है। सार्वजानिक वस्तुओं का वितरण भ्रष्टाचार और अकुशलता के कारण बाधित होती है, और कुछ गांवों में कुछ भी नहीं किया जाता है, जब तक अन्य में विकास परियोजनाएँ योजना के अनुसार कार्यान्वित की जाती हैं।[9]

कार्यान्वयन में इस भिन्नता का श्रेय राजनेताओं और नौकरशाहों को दिया जा सकता है, जो कुछ क्षेत्रों को दूसरों की तुलना में अधिक प्राथमिकता देते हैं। अक्सर यह माना जाता है तक भारत में राजनेता सह-जातीयता के लिए अधिक काम करते हैं।[10] असमान सार्वजानिक वस्तुओं का वितरण राजनीतिक प्रोत्साहनों से प्रेरित है, और राजनेता शायद उन गांवों के लिए कड़ी मेहनत कर रहे हैं जिन्होंने उन्हें वोट दिया है, जहां अधिक मतदान होता है, या प्रतिस्पर्धी हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका, भारत और नार्वे के तीन सहयोगी भागीदारों के डेटा प्रयासों को मिलाकर, हम भारत के ग्राम-स्तरीय डेटा पर इन दावों का परीक्षण करने का इरादा रखते हैं। पूरे भारत में विकास में भिन्नता और राजनीतिक अभिनेताओं को क्या प्रेरित करता है, इस पर चर्चा में योगदान देगा।[11]

महिलाओं की स्थिति और विकास

20 वीं शताब्दी में महिलाओं और समाज के दलित वर्गों ने समानता के लिए संघर्ष को अंतर्राष्ट्रीय रूप देकर लिंग भेद से सम्बंधित अन्य के खिलाफ आवाज उठाई। ये मुद्दे भारत में पहले राष्ट्रीय आंदोलन के एक भाग के रूप में और आजादी के बाद विकास के रूप में आए। महिलाओं का विकास करने और उन्हें न्याय दिलाने के लिए किए गए प्रयास के लिए कानून बनाने और कानून की उनके पक्ष में व्याख्या करने तक ही सीमित नहीं है इस बात को भी मान्यता दी गई है और महसूस किया गया है तक महिलाओं की शिक्षा

दक्षता-विकास प्रबंध जैसे निवेशों तक पहुँच भी होनी चाहिए। इसके लिए सरकार द्वारा महिला विकास को पंचवर्षीय योजनाओं में शामिल करने का प्रयास किया गया। महिलाओं के विकास से सम्बंधित दृष्टिकोण को प्रथम पंचवर्षीय योजनाओं में समुदाय विकास कार्यक्रम के अंतर्गत शामिल किया गया। तृतीय एवं चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में महिला शिक्षा कल्याण को उच्च प्राथमिकता दी गई। पांचवी पंचवर्षीय योजना में महिला कल्याण दृष्टिकोण से हटकर महिला विकास पर केन्द्रित किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना में महिला स्वास्थ्य, शिक्षा और रोजगार पर बल दिया गया।[12]

निष्कर्ष

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का मूल्यांकन जटिल है; यह पारंपरिक से आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन है, जिसमें सत्ता का युक्तिकरण, राजनीतिक कार्यों का विभेदीकरण और जन भागीदारी का विस्तार शामिल है। भारत ने संसदीय प्रणाली, वयस्क मताधिकार, पंचायती राज और विधायी सुधारों के माध्यम से महत्वपूर्ण प्रगति की है, जिससे राजनीतिक चेतना बढ़ी है। हालाँकि, जाति और आर्थिक असमानता जैसे कारक, जो क्षेत्रीय आंदोलनों में भी योगदान करते हैं, अभी भी चुनौतियाँ पेश करते हैं।

भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत प्रक्रिया है। इसने निश्चित रूप से लोकतांत्रिक संरचनाओं और राजनीतिक भागीदारी को मजबूत किया है, लेकिन सामाजिक-आर्थिक और पारंपरिक संरचनाओं से जुड़ी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। भविष्य में, राष्ट्रीय एकता और प्रगति के लिए इन चुनौतियों का समाधान करना और समावेशी विकास सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण होगा।

निष्कर्षत:, जहाँ एक ओर भारत की राजनीतिक विकास प्रक्रिया ने जीवंत लोकतंत्र के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति की है, वहीँ दूसरी ओर भ्रष्टाचार, सामाजिक-आर्थिक विषमताएँ और शासन की अक्षमताएँ जैसे मुद्दों के समाधान के लिए निरंतर प्रयासों की आवश्यकता है। लोकतांत्रिक संस्थाओं, समावेशी शासन और नागरिक भागीदारी को बढावा देकर भारत अधिक उत्तरदायी और बेहतर राजनीतिक व्यवस्था की ओर अपने मार्ग पर आगे बढ सकता है। राजनीतिक विकास के मामले में, विशेषकर विचारकों द्वारा किए गए समानता, क्षमता और विभेदीकरण के मॉडल अभी भी हमारी व्यवस्था में फिट नहीं बैठ रहे हैं। इस पर प्रयास किए जा रहे हैं। ऐसा लगता है तक इसे प्राप्त करने में हमें कई वर्ष लग जायेंगे। राजनीतिक व्यवस्था के तहत, कई मांगे उठाई जाती हैं। समथतन भी मिलता है, लेकिन निर्णय लेने और नीतियाँ बनाने में समय लगता है।

सन्दर्भ

1. डब्ल्यू0 एि0 मोररस जोन्स, दा गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया, बी0आई0 पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली
2. डी0डी0 बसु, 'एन इंट्रोडक्शन टू दा कान्स्टीट्यूशन ऑफ इंडिया', पैंटीश हॉल प्रैस, नई दिल्ली, 1994
3. रजनी कोठारी, 'पॉलिटिक्स इन इंडिया', ओरियण्ट लान्गमैन प्रा0लि0, नई दिल्ली, 1970
4. रजनी कोठारी, 'कॉस्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इंडिया, ओररयण्ट लान्गमैन प्रा0तल0, नई दिल्ली, 1970
5. वी0पी0 मेनन्, 'दा ट्रान्सफर ऑफ पॉवर इन इंडिया, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957
6. जे0आर0 सिवाच, डायनामिक्श ऑफ इण्डियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, स्टर्लिंग पविल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1985
7. रजनी कोठारी, स्टेट एण्ड नेशनल बिल्डिंग', एलाईड पब्लिशर्स, बाम्बे, 1976
8. सी0पी0 भाम्मरी, दा इण्डियन स्टेट फिफ्टी ईयरस, सिप्रा, नई दिल्ली, 1999
9. के 0आर0 बाम्बवाल, 'दा फाउंडेशन ऑफ इण्डियन फेडरेलिज्म, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बाम्बे, 1967
10. अतुल कोहली, 'डेमोक्रेशी एण्ड डिशकनटेन्ट इंडियाज ग्रोईग क्राईशिश ऑफ गोवेर्नेबिलिटी', कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रैस, कैंब्रिज, 1991
11. अब्बास, इण्डियन गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, पियरसन, नई दिल्ली, 2012
12. प्रवीन कुमार झा, तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में भारतीय राजनीति पियरसन, नई दिल्ली, 2012

भारत के राजनीतिक दलः दशा एवं दिशा

डॉ० संध्या कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (G. F.), राजनीति विज्ञान विभाग, बी. आर. बी. महाविद्यालय, समस्तीपुर, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार)

सारांश

भारत के संविधान निर्माताओं ने संसदात्मक लोकतंत्र को अपनाया। संसदीय लोकतंत्र के इस ढांचे में चुनावों को एक पवित्र पर्व या त्यौहार के रूप में स्वीकार किया गया। जनता द्वारा अपने प्रतिनिधियों के निर्वाचन और प्रतिनिधियों द्वारा शासन के संचालन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए राजनीतिक दल अनिवार्य है। प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय प्रजातंत्र में राजनीतिक दलों की इस भूमिका से संबंधित हैं। एक तरफ इन दलों के बिना प्रतिनिधि प्रजातंत्र संभव नहीं हैं तो दूसरी तरफ इन दलों में उत्पन्न नकारात्मक प्रवृत्तियाँ प्रजातंत्र के अस्तित्व को ही खतरा पैदा कर रही है। शोध में राजनीतिक दलों की भूमिका एवं उत्पन्न नकारात्मक प्रवृत्तियों का मूल्यांकन कर समाधान के सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

मूल शब्दः भारत, संविधान, प्रतिनिधि, लोकतंत्र, निर्वाचन, राजनीतिक दल

प्रस्तावना

भारत में लोकतंत्र की आरम्भिक अवस्था में एक दल की प्रधानता थी। लेकिन धीरे-धीरे विभिन्न चुनावों एवं असंगत राजनीतिक धुर्वीकरण ने अनेक राजनीतिक दलों को जन्म दिया। राजनीतिक अस्थिरता एवं क्षेत्रीयता के आधार पर नये-नये राजनीतिक दलों का निर्माण होने लगा और शासन में उनकी भागीदारी बढ़ने लगी। दलों की विविधता का ही परिणाम है कि भारत में केन्द्र तथा राज्य दोनों स्तरो पर गठबंधन सरकारे बनने लगी। इस प्रकार भारतीय दलीय व्यवस्था विविधता पर आधारित हैं। राष्ट्रीय दलों के साथ-साथ क्षेत्रीय दलों का भी तेजी से विकास हो रहा है।[1]

> ''संसदीय जनतंत्र की स्थापना का उद्देश्य एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना था और सरकार को उत्तरदायी रखने का दायित्व राजनीतिक दलों का होता हैं।''

राजनीतिक दल जनमत के निर्माण में नागरिकों का प्रशिक्षण देने तथा शासन के प्रति जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। राजनीतिक दलों के बिना न तो सिद्धान्तों की संगठित अभिव्यक्ति हो सकती है और न ही नीतियों का व्यवस्थित विकास। राजनीतिक दल कार्यक्रम के आधार पर जनता की स्वीकृतिप्राप्त कर शासन का संचालन करते हैं। विरोधी दल शासन करने वाले दल को मर्यादित करते हैं। ये सांवैधानिक तरीके से सत्ता परिवर्तन के साधन होते हैं। नागरिको को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते हैं साथ ही उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भी रक्षा करते हैं।[2] ये जनता और शासन के बीच मध्यस्थ की भूमिका अदा करते हैं। जैसा कि बार्कर ने कहां हैं कि

> ''राजनीतिक दल एक ऐसे पुल का काम करते हैं। जिसका एक छोर समाज को तथा दूसरा राज्य को छूता हैं।''
>
> ''राजनीतिक दल आधुनिकरण के उपकरण के रूप में भी समाज में सक्रिय रहते हैं। राजनीतिज्ञों के राजनीति में प्रवेश का एकमात्र संस्थागत साधन दल ही होते हैं।''
>
> ''इस तरह दल शासन को चलायमान, राजनीतिक प्रक्रिया को जोडने, सरल करने तथा स्थिर रखने का कार्य करते हैं।''

राजनीतिक दल और लोकतंत्र के इस अनिवार्य घनिष्ठ सम्बन्ध की वजह से ही इन्हें लोकतंत्र की प्राणवायु, जीवनरेखा तथा शासन का चतुर्थ अंग कहा जाता हैं अर्थात् बिना राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि प्रजातंत्र जीवित नहीं रह सकता है।

दलीय पद्धति में उत्पन्न नकारात्मक प्रवृत्तियाँ

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में एक स्वस्थ्य दलीय पद्धति का अभ्यूदय आज तक नहीं हुआ है। इनके संगठन, भूमिका तथा कार्य पद्धति में नकारात्मक प्रवृत्तियाँ/विकृतियां/बुराईयां परिलक्षित हो रही है। चुनावों की घोषणा के साथ ही सभी राजनीतिक दल अपना-अपना घोषणा पत्र जारी करते हैं। विभिन्न राजनीतिक दलों के घोषणा पत्र का विश्लेषण करने पर प्रतीत हुआ कि घोषणा पत्र विभिन्न दलों द्वारा सत्ताप्राप्ति के लिए, एक कम्पनी का जिस प्रकार उपभोक्ताओं को लुभावने विज्ञापन के माध्यम से जैसे अपने उत्पाद बेचना ही

उददे्श्य हैं, विज्ञापन की सच्चाई से नहीं, ठीक उसी प्रकार घोषणा पत्र महज एक विज्ञापन हैं, एक छलावा हैं। चुनावों में घोषणा पत्रों के माध्यम से लम्बे-चौड़े वादे करने वाले दल सत्ता में आने पर उसका पन्ना पलटना ही भूल जाते है। किसी विचारधारा, दर्शन और प्रतिबद्धता को स्पष्ट समर्थन हीं दिया जाता हैं। संकल्प गायब हो रहे हैं। सत्ता संस्कृति हावी हो रही है और चुनावी मुद्दों और दल से ज्यादा व्यक्ति विशेष को अहमियत दी जाती हैं। ''घोषणा पत्र अर्थ हीन होते हैं इनमें या तो अर्थहीन बाते होती है अथवा स्वयं की क्षमताओं को न देखकर वायदे किये जाते हैं।''[3]

केन्द्र एवं राज्य स्तर पर गठबंधन सरकार का दौर जारी है, लेकिन इनके पीछे राजनीतिक स्थायित्व, देशहित, लोकहित, नैतिकता, आदर्श एवं मूल्य कही नजर नहीं आते हैं। गठबंधन के दल सत्ता में हिस्सेदारी के लिए दबाव की राजनीति अपनाते हैं। मतभेद, टकराव आदि को टालने के लिए उन्हें मंत्री पद, आयोग का अध्यक्ष या अन्य लाभकारी हिस्सेदारी दे दी जाती हैं। निहित स्वार्थो के बने रहने तक समर्थन दिया जाता हैं अन्यथा समर्थन वापस लेकर सरकार गिरा दी जाती हैं। भारतीय राजनीति त्रिकोणात्मक रूप लेने के साथ-साथ क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रभावित की जा रही हैं। निर्दलीय व बागी सदस्य कभी सत्ता पक्ष तो कभी विपक्ष के साथ नजर आते हैं। ''सत्ता से बाहर रहकर समर्थन देने की घटिया राजनीति दल कर रहे हैं। सत्ता में शामिल होने का साहस नहीं करके पीछे से छूरा भोकने का अधिकार अपने पास रखते हैं।''[4]

न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर भी परस्पर विरोधी एवं नकारात्मक रूख अपनाया जाता हैं।

प्राय: सभी दल विघटन एवं फूट के शिकार हैं। ''52वां संविधान संशोधन 1985 के माध्यम से दल-बदल को रोकने के लिए अनुच्छेद 102 और 191 में संशोधन और 10 वी अनुसूची का समावेश'' एवं ''91 वां संविधान संशोधन अधिनियम 2003 केन्द्र एवं राज्यों में मंत्रीमंडल की संख्या सीमित करना'' इत्यादि प्रावधानों के बावजूद भी विभाजन एवं विलय के नाम पर दल-बदल की प्रवृत्ति जारी हैं। ''दल-बदल एक कैन्सर हैं जिसने राजनीतिक अस्थिरता को जन्म देकर भारतीय दल व्यवस्था का मखौल उड़ाया हैं।'' इस प्रवृत्ति के कारण आज ''प्रमुख राजनीतिक दलों की स्थिति उस बंद गोभी की तरह हो गई हैं जिसके इतने पत्ते उतर चुके हैं, इतना क्षरण हो चुका हैं कि उनका आकार प्याज जैसा हो गया हैं अर्थात् वे दल अपना मूल स्वरूप खो चुके है।[5]

जनप्रतिनिधियों के व्यवहार में गिरावट, संसद एवं विधानसभाओं का राजनीतिक दलों के अखाड़े में तब्दील होना, भ्रष्टाचार के आरोप, प्रचारात्मक हथकंडे, सांसदो व विधायको की खरीद फरोख्त आदि दृष्टान्त राजनीतिक दलों में सुचिता एवं शालीनता के अभाव को प्रकट करते हैं जो संसदीय शासन व्यवस्था पर कलंक है। दलीय राजनीति में आंतरिक गुटबंदी, अनैतिकता, अविश्वास और अनास्था जैसी प्रवृत्तियां घर करती प्रतीत हो रही हैं। परिपक्व चिंतन की अवहेलना हुई है। विचारधारा का प्रयोग स्लोगन के रूप में किया जाता हैं। अवसरवादिता की कोंइ बाउण्ड्री नहीं रही। धैर्य और धीरज को त्याग दिया गया हैं। धन और राज ही दलों के माई-बाप हो गये हैं। येन-केन प्रकारेण अपनी स्वार्थ-सिद्धि करना मूल ध्येय बन गया हैं। नैतिकता को ताक में रखकर एक-दूसरे पर कीचड़ उछालना आम बात हैं। झूठे, मनगढ़त आरोप तथा चरित्र हनन तक किया जाता हैं।[6]

लोकतंत्र की दुहाई देने वाले इन राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतंत्र मृगतृष्णा बन गया हैं।

राजनीतिक दल न तो स्वस्थ लोकतांत्रिक चेतना पैदा कर पाये और न ही संस्थागत मूल्यों को विकसित कर पाये।

केवल सत्ता की अंधी दौड़ में वे स्वयं टूटे बिखरे और विभाजित हुए। कुर्सी के लिए पार्टी का निर्माण एवं विघटन के कारण ही लार्ड ब्राइस ने इसे ''संगठित पाखण्ड (Organised Hypocracy) कहा हैं।''

दलो में प्रखर, निर्मल व स्वस्थ नेतृत्व का अभाव हैं। दलो की पहचान व्यक्ति से होने लगी हैं।

कार्यकर्ताओं की अपेक्षा से जन आधारित नेतृत्व उभर कर सामने नहीं आ पाता हैं। पार्टी अनुशासन के नाम पर आलाकमान की आवाज के साथ हाँ में हाँ (Yesmam) ठीक माना जा रहा हैं।

संसदीय और संवैधानिक मूल्य उपेक्षित होते जा रहे हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ये दल सांवैधानिक पदाधिकारियों एवं संस्थाओं तक का अनादर कर देते हैं। एक तरफ निर्वाचन में अपराधी या अपराध (आर्थिक अपराधों से जुड़े भी शामिल हैं) से जुड़े हुए व्यक्ति राजनीतिक दलों से जुड़कर सफलता प्राप्त कर रहे हैं वहीं दूसरी तरफ राजनीति को व्यवसाय ही नहीं बल्कि पारिवारिक व्यवसाय भी बनाते जा रहे हैं। दल निर्माण के आसान तरीका होने से एक ओर दलों का विशाल स्कोर खड़ा हो रहा हैं वहीं जन समर्थ न भी कई टुकड़ो में बंटा हैं।[7]

''सत्ता पक्ष मदमस्त हाथी हैं तो विपक्ष उसका महावत् अर्थात् वह विपक्ष ही हैं जो सत्ता पक्ष को अपने पक्ष से विचलित होने से बचाता हैं लेकिन हमारे यहाँ ऐसे विपक्ष का अभाव ही रहा हैं। विपक्ष केवल विरोध के लिए विरोध करते रहता हैं। विपक्ष ने तो हल्ला, शोरगुल, अव्यवस्था तथा अराजकता को अपना हथियार बना लिया हैं।[8]

विपक्ष सुनियोजित ढंग से संसद में शोरगुल, हंगामे व्यवधान करने तथा कार्यवाही नहीं चलने देने की राजनीति करता रहता हैं। दलों की कथनी व करनी में गम्भीर अंतर हैं।

आपसी सह-अस्तित्व की प्रवृत्ति का अभाव हैं। इनमें निष्ठा नीति एवं कार्यक्रम के लम्बे मार्ग पर चलने का साहस व धैर्य नहीं हैं। इनकी मानसिकता शार्टकट अपनाने की हैं। अत: दल लोक लुभावन नारे, खेमेबाजी के खेल, करप्शन, कास्टिज्म, व्यक्तिपूजा, राष्ट्रीय हितो की उपेक्षा, आत्मावलोकन का अभाव तथा वंशानुगत नेतृत्व इत्यादि से ग्रसित हैं।[9]

समाधान

अतीत की भूलो से सबक लेते हुए राजनीतिक दलों में उत्पन्न विकृतियों के निम्नलिखित समाधान के विकल्प ढूंढे जा सकते हैं। जिससे भारत में सशक्त, व्यावहारिक, ईमानदारीपूर्ण, मर्या दित तथा विकसित राजनीतिक दलीय पद्धति के भविष्य का आव्हान किया जा सके।

1. राजनीतिक दलों एवं राजनीतिज्ञों के लिए सर्व मान्य आचार संहिता का निर्धारण होना चाहिये। जिससे उनमें विकसित हो रही मूल्यहीनता तथा कुप्रवृत्तियों को रोका जा सके। दलों के व्यवहार को मर्यादित करने के लिए न केवल आचार संहिता बने वरन, उसके सुनिश्चित पालन का भी निर्धारण हो ।
2. राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतंत्र की भावना विकसित की जाये। दलों के कार्यकरण को पारदर्शी बनाया जाये।
3. घोषणा पत्र को वैधानिक मान्यता दी जाये। दल अपने-अपने घोषणा पत्र के प्रति जवाबदेय हो।
4. ''राजनीतिक दलों की मान्यता के नियमों में सशक्त बदलाव अपेक्षित है।'' मान्यता श्रेणीकृत करने के मापदंड और अधिक कठोर किये जाने चाहिये।[10]
5. राजनीतिक दलों की संख्या सीमित की जाये। राष्ट्रीय स्तर पर मान्यताप्राप्त राजनीतिक दलों का कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय स्तर तक सीमित हो। राज्य स्तरीय दलों का कार्यक्षेत्रप्रादेशिक राजनीति तक सीमित होना चाहिये। क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का अस्तित्व एवं कार्यक्षेत्र पंचायत स्तरीय राजनीति के लिए अधिकृत हो। दलीय व्यवस्था का त्रि-स्तरीय रूपान्तरण हो।
   दलों का ढांचा पिरामिडनुमा हो। यह दलीय ढांचा ही भारतीय दलीय व्यवस्था का परिमार्जित विकल्प हो सकता हैं। ऐसा होने पर पृथक राज्यों की मांग एवं क्षेत्रवाद से संबंधित अन्य मांगों के लिए संसद में होने वाले शोर-शराबे से मुक्ति मिलेगी।
6. जनता को नकारात्मक वोट देने का विकल्प हो। साथ ही नकारात्मक वोटों की गिनती करके उम्मीदवार के प्राप्तांक वोटों में से घटाया जावे।
7. चुनावी अपराधों की समयबद्ध एवं त्वरित सुनवाई के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना की जाये।
8. दल बदल विरोधी कानून का कड़ाई से पालन किया जाये। निर्वाचित सदस्यों की योग्यता निर्धा रित करने के लिए अलग से कानून बनाया जाये। दल-बदल व्यक्तिश: हो अथवा सामूहिक इसे गैर कानूनी मानते हुए सदस्य अथवा सदस्यो को सदन की सदस्यता से वंचित करने का प्रावधान किया जाना चाहिये। यही नहीं, जनमत के निर्णय का उल्लंघन करने के जुर्माने के रूप में, उस रिक्त स्थान को भरने हेतु उप चुनाव का समस्त खर्च भी सदस्य अथवा सदस्यों से वसूला जाना चाहिये। ऐसे ही प्रावधान बागी तथा निर्दलीय सदस्यों के लिए किये जा सकते हैं साथ ही दल-बदल करने वालों को 5 वर्ष तक किसी भी लाभ के पद पर नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।[11]
9. गठबंधन सरकारो का चुनाव पूर्व एजेण्डा हो। उसके न्यूनतम साझा कार्यक्रम पर सहमति हो ताकि सरकार के गठन के बाद विवाद पैदा नहीं हो।
10. दल के वित्तीय प्रबंधन हेतु केवल उसी दल के सदस्य ही अंशदान करे। भामाशाहों अथवा अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों अथवा कम्पनियों द्वारा दिया जाने वाला चंदा दलो के स्थान पर राष्ट्रीय सुरक्षा कोष, राष्ट्रीय आपदा कोष अथवा प्रधानमंत्री कोष में जमा किया जा सकता हैं।
11. ''सरकारी नौकरी में नियुक्ति से पूर्व अभ्यर्थी की पुलिस रिपोर्ट प्राप्त की जाती है। घरेलू नौकर अथवा किरायेदार रखने के पूर्व भी पुलिस तहकीकात अनिवार्य है तो फिर सरकार में अथवा उसे निर्मित करने वाले किसी सदन में प्रवेश से पूर्व ऐसी कोई व्यवस्था नहीं होना आश्चर्यजनक हैं। इसके लिए प्रत्येक राजनीतिक दल अपने इमानदार, राष्ट्र समर्पित एवं स्वच्छ छवि वाले कर्मठ सौ सदस्यों का एक-एक पैनल घोषित (प्रकाशित) कर देवे तथा चुनाव के समय अथवा अन्य आवश्यकताओं पर इसी पैनल से एक के बाद एक नामों को प्रस्तुत करें।[12]
    इससे चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशियों का चयन सरल होगा। एक दूसरे को नीचा दिखाने, तथा दबाव बनाने वाली गुटबंदियो पर स्वत: रोक लगने से दलीय अनुशासन सुधरेगा। पैनल में सम्मिलित नामो की पुलिस छानबीन तथा जनता द्वारा जुटाई गई जानकारियों के मध्यनजर अपराधिक पृष्ठभूमि के व्यक्ति अलग-थलग पड़ जायेगे तथा सदन को योग्य तथा राष्ट्र समर्पित प्रतिभाएँ उपलब्ध हो सकेगी।[13]

12. राजनीतिक दल अपना आत्मावलोकन करे। अपने विचारों को पहचाने और मूल्यों का पालन करे। क्षणिक या तात्कालीन लाभ तथा सत्ता प्राप्ति के पीछे कंगारू दौड़ छोड़कर समाज एवं राष्ट्रहित में कार्य करें। ''जब दल सत्ता में नहीं हो उन्हें जनहित में लिए रचनात्मक कार्यो से जोड़े रखना चाहिए। मानवीय मूल्य व उच्च जीवन दर्शन की केवल बाते न करे बल्कि उसका उदाहरण प्रस्तुत करे।'[14]
13. जिस प्रकार प्रत्याशी की जमानत जब्ती को बचाने हेतु, उसे एक निश्चित संख्या में मतप्राप्त करना आवश्यक हैं। उसी प्रकार उसके विजय होने के लिए भी कुल मतदाताओं की संख्या के आधार पर एक निश्चित संख्या में मतप्राप्त करना आवश्यक हैं। इस वांछनीयता से चुनाव लड़ने वाले प्रत्याशी भी मतदान प्रतिशत को अपने स्तर पर बढ़ाने का प्रयास करेंगे और जनता का स्पष्ट जनादेश प्राप्त होगा।
14. ऐसा वातावरण निर्मित किया जाना चाहिये कि चुनावों के दौरान सभी मतदाता निर्भीकता से मतदान कर सके। साथ ही मतदाताओं को शिक्षित, अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक बनाना और राजनीतिक चेतना का संचार इत्यादि के लिए आवश्यक कदम उठाये जा सकते है।[15]

निष्कर्ष

भारतीय राजनीति का कड़वा सच हैं कि दलीय व्यवस्था के क्षरण के लिए स्वयं राजनीतिक दल ही उत्तरदायी है। राजनीतिक दलों के साथ-साथ दलों के मुखिया भी उतने ही जिम्मेदार हैं क्योंकि वे राज्य और नीति के मूल्यों को भूल गये और अपने परिवार के लिए ही नहीं बल्कि सात पीढ़ियों के लिए स्थायी सत्ता और सम्पत्ति निर्मा ण के लिए जुगत में जुट गये हैं। अतः राजनीतिक दलों में अपने आत्मावलोकन एवं सुधार की इच्छा शक्ति से ही भारत की राजनैतिक दलीय व्यवस्था में अर्न्तनिहित जटिलताओं/विकृतियों का निराकरण हो सकता है।

राजनीतिक दलो, दलो के नेता और कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त निर्वाचन आयोग, संसद (कानून), केन्द्र एवं राज्यों का राजनीतिक नेतृत्व, सीमा तक न्यायपालिका तथा बुद्धिजीवी वर्ग इत्यादि पक्षों को सुधार हेतु प्रबल इच्छा शक्ति का परिचय देना होगा। दलीय स्वरूप आदर्श, अनुशासित एवं सुसंगठित होगा तो देश का राजनीतिक स्वरूप परिपक्व, प्रज्ञावान होगा अन्यथा भारतीय लोकतंत्र की पवित्रता मलीन होगी।

सन्दर्भ

1. डॉ रजनी कोठारी भारत में राजनीति 1990, ऑरियेन्ट लागमैन, नई दिल्ली
2. 52 वां संविधान संशोधन अधिनियम 1985, भारत सरकार नई दिल्ली
3. 91 वां संविधान संशोधन अधिनियम 2003, भारत सरकार नई दिल्ली
4. डॉ. सुभाष कश्यप- संविधानिक विकास एवं स्वतंत्रता संघर्ष तथा भारतीय राजनीति और संसद
5. गोस्वामी, भालचन्द्र 2013: भारतीय न्याय प्रणाली अभिषेक पब्लिकेशन्स, चण्डीगढ़
6. विप्लव, नरेश 2012: लोकतत्र के प्रमुख स्तम्भ, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ
7. सेंगर शैलेन्द्र 2015: भारतीय प्रशासन बदलते आयाम, कविता बुक सेंटर, दिल्ली
8. दुबे, एम.पी.: धर्मनिरपेक्षवाद और भारतीय प्रजातंत्र, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली
9. सिंह, महेश्वर 2000: भारतीय लोकतंत्र समस्याएं व समाधान, साहित्यगार, जयपुर
10. जैन, कमलेश 2001: न्यायपालिका कसौटी पर, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली
11. कश्यप, सुभाष 2010: हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली
12. टंडन, बिशन 2009: जनतंत्र और प्रशासन, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
13. गजराज, पदम सिंह 2014: चेतना गुजरात: भारतीय राजनीति राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे और चुनौतियां, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस,नई दिल्ली
14. सोमरा, कर्ण सिंह 1992: साम्प्रदायिक सदभाव एवं राजनीतिक चेतना, प्रिन्टवेल, जयपुर
15. त्रिपाठी, ममता मणि 2013: समकालीन भारतीय राजनीति के मुद्दे समस्या एवं समाधान, भारती पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, फैजाबाद

भारत की सुरक्षा में पड़ोस-नीति की भूमिका: एक अध्ययन

उज्जवल कुमार सिंह

शोधार्थी, स्नात्तकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, (बिहार)

सारांश

यह स्पष्ट रूप से भारत के हित में है कि उसकी निकटतम सीमाएँ स्थिर, सुरक्षित और उत्तरदायी हों। प्रतिस्पर्धी दुनिया में इसे सुनिश्चित करने के लिए, भारत को बड़े क्षेत्रों को शामिल करना होगा और संपर्क, सहयोग और कनेक्टिविटी में निवेश करना होगा, जिससे भूगोल अधिक सुसंगत हो। ष्पड़ोसी पहलेष् नीति का मूल यह है कि भारत अपने निकटतम पड़ोसियों को घनिष्ठ संबंधों के लाभों के बारे में समझाए और फिर उसे जमीनी स्तर पर लागू करे।

पिछले दशक में, भारत न के वल एक क्षेत्रीय महाशक्ति के रूप में उभरा है, बल्कि एक वैश्विक नेता के रूप में भी अपनी मजबूत दावेदारी पेश की है। इस भूमिका को मजबूत करने के लिए, भारत अपने निकटवर्ती पड़ोसी देशों की तर्ज पर अपने विस्तारित पड़ोसी देशों के साथ भी मजबूत संबंध बना रहा है।

स्वतंत्रता के बाद, 1950 और 1960 के दशक में भारत की विदेश नीति, विशेषकर पड़ोसी देशों के साथ, आदर्शवाद की विचारधारा से प्रेरित थी।

इसके तहत भारत ने अपने सुरक्षा हितों को ध्यान में रखते हुए अपने पड़ोसी देशों के साथ 'क्षेत्रीय ढांचे' के बजाय द्विपक्षीय वार्ता और संधियों के माध्यम से संबंध सुधारने का विकल्प चुना था।

उदाहरण के लिए, भूटान (1949) और नेपाल (1950) के साथ मैत्री संधियों पर हस्ताक्षर; भारत और चीन के बीच पंचशील समझौता (1954), आदि।

1990-2000 के बीच पड़ोसी देशों के प्रति भारत की विदेश नीति को 'बड़े भाई' की तरह व्यवहार करने वाला कहा जा सकता है।

1990 के दशक के आर्थिक सुधारों के बाद, भारत ने क्षेत्र के आर्थिक एकीकरण के लिए भी पहल शुरू की। वर्ष 2008 के बाद भारत के निकटवर्ती पड़ोसी देशों में चीन का प्रभाव बढ़ने लगा, जिसके जवाब में भारत ने 'गुजराल सिद्धांत' का अधिक सख्ती से पालन करना शुरू कर दिया।

वर्ष 2008 में पड़ोसी प्रथम नीति की अवधारणा भी अस्तित्व में आई। इसके अंतर्गत पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को 5 'एस' के रूप में रेखांकित किया गया: सम्मान, संवाद, शांति, समृद्धि और संस्कृति।

वर्ष 2014 से, नई दिल्ली ने अपने निकटतम पड़ोसियों (जिन देशों के साथ भारत स्थलीय या समुद्री सीमा साझा करता है) के साथ सहयोग पहलों और विस्तारित पड़ोसियों (हिंद महासागर क्षेत्र, दक्षिण पूर्व एशिया या पश्चिम एशिया के देश) के साथ व्यापक जुड़ाव पर ध्यान केंद्रित किया है।

दक्षिण एशिया की समग्र सुरक्षा और विकास के लिए स्थिर और शांतिपूर्ण क्षेत्रीय वातावरण का निर्माण पूर्व शर्त है। पड़ोस में स्थिरता भारत की अपनी सुरक्षा में योगदान देती है।

मूल शब्द: भारत, सुरक्षा, पड़ोस-नीति, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक संबंध, सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ), अफगानिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, मालदीव, पाकिस्तान, नेपाल।

प्रस्तावना

भारत के अपने पड़ोसियों के साथ ऐतिहासिक रूप से गहरे सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक संबंध रहे हैं। आजादी के बाद, भारत ने खुद को एक क्षेत्रीय नेता के रूप में स्थापित करने का लक्ष्य रखा। हालाँकि, ऐतिहासिक संघर्षों, भिन्न राजनीतिक विचारधाराओं और सीमा विवादों ने अक्सर इन संबंधों में तनाव पैदा किया। यह आधिकारिक रूप से 2008 में अस्तित्व में आया।[1]

भारत की 'पड़ोसी पहले' नीति, अपने पड़ोसी देशों को प्राथमिकता देने के भारत के दर्शन को दोहराती है। इस नीति के माध्यम से, भारत न के वल भारतीय उपमहाद्वीप में, बल्कि विस्तृत हिंद महासागर क्षेत्र में भी स्थायी शांति, स्थिरता और समृद्धि के लक्ष्य को प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है।[2]

'पड़ोसी प्रथम' की नीति 1947 से ही भारतीय विदेश नीति का अभिन्न अंग रही है। इसका उद्देश्य अपने निकटतम पड़ोसियों के साथ मजबूत संबंधों को बढ़ावा देना, क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ाना और साझा चिंताओं का समाधान करना है। यह नीति भारत के परामर्शात्मक, गैर-पारस्परिक और विकासोन्मुख दृष्टिकोण से प्रेरित है। गैर-पारस्परिक संबंधों का तात्पर्य पड़ोसी देशों के साथ समान विनिमय या पारस्परिकता की नीति के बजाय नि:स्वार्थ सहयोग की नीति से है।[3]

भारत का निकटतम पड़ोस

भारत की भौगोलिक सीमाएँ अफगानिस्तान, भूटान, बांग्लादेश, मालदीव, पाकिस्तान, नेपाल, चीन और श्रीलंका के साथ लगती हैं। इन देशों के साथ भारत के सभ्यतागत संबंध हैं। ये संबंध साझा इतिहास, साझा संस्कृति और लोगों के बीच आपसी संबंधों पर आधारित हैं। ये निकटतम पड़ोसी देश स्वतंत्रता के बाद से भारत की 'प्राथमिकता के प्रथम चक्र' का हिस्सा रहे हैं।[4]

भारत का विस्तारित पड़ोस

कुछ देश भौगोलिक दृष्टि से भारत से दूर स्थित हैं, लेकिन उनके भारत के साथ महत्वपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामरिक संबंध हैं। इन्हें विस्तारित पड़ोसी देशों के रूप में पहचाना जाता है। इनमें हिंद महासागर क्षेत्र के देश, दक्षिण-पूर्व एशिया के देश या पश्चिम एशिया के देश शामिल हैं।[5]

महत्व

- चीनी प्रभाव का प्रतिकार: पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ सहयोग करके भारत हिंद महासागर क्षेत्र में चीनी प्रभाव का प्रतिकार कर सकता है।
- बहुपक्षीय मंचों पर समर्थन: पड़ोसी साझेदारों के साथ काम करने से अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर वैश्विक दक्षिण के हितों का प्रतिनिधित्व करने में भारत की नेतृत्वकारी भूमिका मजबूत होती है। इससे वैश्विक मुद्दों पर बेहतर समझ और सहयोग को बढ़ावा मिलता है।
- क्षेत्रीय अखंडता सुनिश्चित करना : भारत के लिए अपनी क्षेत्रीय अखंडता की रक्षा करने और अलगाववादी खतरों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए पड़ोसी देशों के साथ सहयोग आवश्यक है।[6]
- समुद्री सुरक्षा में वृद्धि: पड़ोसियों के साथ प्रभावी सहयोग समुद्री सुरक्षा को मजबूत करने के लिए महत्वपूर्ण है, जो भारत को अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा चुनौतियों से अधिक प्रभावी ढंग से निपटने में सक्षम बनाता है।
- ऊर्जा सुरक्षा पर ध्यान देना : पड़ोसी देशों के साथ घनिष्ठ सहयोग भारत की ऊर्जा सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से समुद्री मार्गों के माध्यम से तेल और गैस के आयात के संबंध में।[7]
- विकास संबंधी कमियों को पाटना: पड़ोसी देशों के साथ सक्रिय रूप से जुड़ने से भारत के पूर्वोत्तर राज्यों के विकास में मदद मिलती है, जिससे क्षेत्र में विकास संबंधी असमानताएं कम होती हैं।
- सॉफ्ट पावर कूटनीति का लाभ उठाना: भारत के अपने पड़ोसियों के साथ गहरे सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संबंध लोगों से लोगों के बीच संबंधों को मजबूत करते हैं, तथा सॉफ्ट पावर कूटनीति के माध्यम से क्षेत्र में भारत के प्रभाव को मजबूत करते हैं।

चुनौतियां

- भू-राजनीतिक तनाव: सीमा विवाद और राजनीतिक असहमति जैसे मुद्दे रिश्तों को जटिल बना सकते हैं।
- कार्यान्वयन संबंधी मुद्दे : संभारतंत्रीय और नौकरशाही चुनौतियों के कारण सीमा पार परियोजनाओं के क्रियान्वयन में कठिनाइयां।
- आर्थिक अंतर: पड़ोसी देशों के बीच आर्थिक विकास के विभिन्न स्तर सहयोग के संतुलन और प्रभावशीलता को प्रभावित कर सकते हैं।[8]

द्विपक्षीय संबंध

- बांग्लादेश: भारत ने बांग्लादेश के साथ अपने संबंधों में उल्लेखनीय सुधार किया है, तथा सीमा मुद्दों के समाधान, व्यापार में सुधार और जल-बंटवारे के समझौतों पर सहयोग पर ध्यान केंद्रित किया है।
- नेपाल: ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंध मजबूत होने के बावजूद, भारत-नेपाल संबंधों को चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, खासकर राजनीतिक मुद्दों और सीमा विवादों के कारण। आर्थिक सहयोग और बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं के माध्यम से द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने के प्रयास जारी हैं।[9]
- श्रीलंका: श्रीलंका के साथ भारत के संबंधों में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं। समुद्री सुरक्षा जैसी साझा सुरक्षा चिंताओं को दूर करने और आर्थिक संबंधों को बेहतर बनाने पर जोर दिया जा रहा है।

- पाकिस्तान: ऐतिहासिक संघर्षों, आतंकवाद और सीमा विवादों के कारण भारत-पाकिस्तान संबंध तनावपूर्ण बने हुए हैं। हालाँकि नेबरहुड फर्स्ट का उद्देश्य क्षेत्रीय सहयोग है, लेकिन पाकिस्तान के साथ प्रगति सीमित रही है।
- म्यांमार: भारत ने म्यांमार के साथ मजबूत संबंधों को बढ़ावा दिया है, जिसमें विशेष रूप से पूर्वोत्तर क्षेत्र में कनेक्टिविटी परियोजनाओं, आर्थिक सहयोग और सुरक्षा सहयोग पर ध्यान केंद्रित किया गया है।[10]

प्रमुख पहल

- सार्क (दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ): क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारत ने सार्क में एक प्रमुख भूमिका निभाई है। हालाँकि, राजनीतिक मतभेदों, विशेष रूप से भारत और पाकिस्तान के बीच, के कारण सार्क की प्रभावशीलता सीमित रही है।
- बिम्सटेक (बहु-क्षेत्रीय तकनीकी और आर्थिक सहयोग के लिए बंगाल की खाड़ी पहल) : बिम्सटेक ने सार्क के विकल्प के रूप में प्रमुखता प्राप्त की है, जो बंगाल की खाड़ी से लगे देशों के बीच आर्थिक सहयोग, सुरक्षा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर ध्यान केंद्रित करता है।[11]

मूलढ़ांचा परियोजनाएं

- बीबीआईएन पहल (बांग्लादेश, भूटान, भारत, नेपाल): सड़क और रेल संपर्क में सुधार।
- कलादान मल्टी-मॉडल ट्रांजिट ट्रांसपोर्ट परियोजना: भारत को म्यांमार और आगे दक्षिण पूर्व एशिया से जोड़ना।
- चाबहार बंदरगाह : अफगानिस्तान और मध्य एशिया के साथ संपर्क में सुधार के लिए ईरान में एक रणनीतिक बंदरगाह का विकास करना।

विदेश मामलों की स्थायी समिति की रिपोर्ट

पड़ोसी पहले नीति की अवधारणा 2008 में अस्तित्व में आई। इसका उद्देश्य अफगानिस्तान, बांग्लादेश, मालदीव, म्यांमार, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका जैसे कुछ प्राथमिकता वाले देशों के साथ संबंधों को मजबूत करना था। प्रमुख अवलोकन और सिफारिशें इस प्रकार हैं:

- आतंकवाद और अवैध प्रवास: समिति ने टिप्पणी की कि पिछले तीन दशकों में भारत को अपने निकटवर्ती पड़ोस से खतरों, तनाव और आतंकवादी तथा उग्रवादी हमलों की संभावना का सामना करना पड़ा है। अवैध प्रवास और हथियारों व नशीले पदार्थों की तस्करी की चुनौतियों से निपटने के लिए सीमाओं पर बेहतर सुरक्षा ढाँचे की आवश्यकता है। समिति ने सीमावर्ती क्षेत्रों में अवैध प्रवास के कारण होने वाले जनसांख्यिकीय परिवर्तनों की निगरानी की सिफारिश की। विदेश मंत्रालय को अवैध प्रवास से निपटने के लिए गृह मंत्रालय और राज्य सरकारों के साथ मिलकर काम करना चाहिए।[12]
- चीन और पाकिस्तान के साथ संबंध: चीन और पाकिस्तान के साथ भारत के द्विपक्षीय संबंध विवादास्पद मुद्दों से ग्रस्त रहे हैं। पाकिस्तान से उत्पन्न आतंकवाद एक प्रमुख चिंता का विषय है। समिति ने क्षेत्रीय और बहुपक्षीय संगठनों के साथ मिलकर काम करने की सिफारिश की ताकि उन्हें आतंकवाद को बढ़ावा देने में पाकिस्तान की भूमिका के बारे में जागरूक किया जा सके। पड़ोसी प्रथम नीति के तहत आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए एक साझा मंच स्थापित करने के प्रयास किए जाने चाहिए। समिति ने यह भी सिफारिश की कि सरकार को पाकिस्तान के साथ आर्थिक संबंध स्थापित करने चाहिए।
- सीमावर्ती अवसंरचना में निवेश : समिति ने भारत के सीमावर्ती अवसंरचना में कमी और सीमावर्ती क्षेत्रों को स्थिर एवं विकसित करने की आवश्यकता पर ध्यान दिया। भारत के पड़ोसियों के साथ जुड़ाव के लिए, सीमा पार सड़कों, रेलमार्गों, अंतर्देशीय जलमार्गों और बंदरगाहों जैसे संपर्क अवसंरचना में सुधार की आवश्यकता है। समिति ने क्षेत्रीय ढाँचों के अंतर्गत संपर्क अवसंरचना के लिए एक क्षेत्रीय विकास कोष की स्थापना की व्यवहार्यता का पता लगाने की सिफारिश की।[13]
- भारत की ऋण सहायता (एलओसी) परियोजनाओं की निगरानी : भारत का अपने पड़ोसी देशों को दिया गया एलओसी 2014 में 3.3 अरब अमेरिकी डॉलर से बढ़कर 2020 में 14.7 अरब अमेरिकी डॉलर हो गया। समिति ने पाया कि भारत के वैश्विक रियायती ऋणों का 50% उसके पड़ोसी देशों को जाता है। इसने विदेश मंत्रालय को नियमित निगरानी के माध्यम से ऐसी एलओसी परियोजनाओं को समय पर पूरा करने के लिए प्रभावी कदम उठाने की सिफारिश की। संयुक्त परियोजना निगरानी समितियों और निगरानी तंत्र को मजबूत करके पड़ोसी देशों में विकास परियोजनाओं को समय पर पूरा किया जाना चाहिए।[14]
- रक्षा एवं समुद्री सुरक्षा:रक्षा सहयोग भारत के अपने पड़ोसी देशों के साथ द्विपक्षीय संबंधों के लिए महत्वपूर्ण है। मालदीव, म्यांमार और नेपाल जैसे विभिन्न देशों के साथ संयुक्त सैन्य अभ्यास किए जाते हैं। समिति ने सिफारिश की कि मंत्रालय को भारत के विस्तारित पड़ोस में समुद्री क्षेत्र जागरूकता बढ़ाने के लिए पहल करनी चाहिए।

- पूर्वोत्तर क्षेत्र में विकास: एक्ट ईस्ट नीति एशिया-प्रशांत क्षेत्र में विस्तारित पड़ोस पर केंद्रित है। भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र कई पड़ोसी देशों के साथ स्थलीय सीमा साझा करता है। पूर्वोत्तर राज्यों का आर्थिक विकास नेबरहुड फर्स्ट पॉलिसी और एक्ट ईस्ट पॉलिसी की सफलता के लिए अभिन्न अंग है। समिति ने मंत्रालय को इन दोनों नीतियों के बीच तालमेल बनाए रखने की सिफारिश की। इससे पूर्वोत्तर क्षेत्र में कनेक्टिविटी, आर्थिक विकास और सुरक्षा में सुधार हो सकता है।
- पर्यटन को बढ़ावा : 2020 से, भारत मालदीव में पर्यटकों के आगमन का सबसे बड़ा स्रोत रहा है। बांग्लादेश से बड़ी संख्या में पर्यटक इलाज के लिए भारत आते हैं। कई भारतीय धार्मिक पर्यटन के लिए नेपाल भी जाते हैं। समिति ने पड़ोसी प्रथम नीति के तहत चिकित्सा पर्यटन सहित पर्यटन में निवेश को बढ़ावा देने की सिफारिश की।[15]
- बहुपक्षीय संगठन: भारत का अपने पड़ोसियों के साथ जुड़ाव बहुपक्षीय और क्षेत्रीय तंत्रों द्वारा संचालित होता है। इसमें दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ और बहु-क्षेत्रीय तकनीकी एवं आर्थिक सहयोग के लिए बंगाल की खाड़ी पहल शामिल हैं। समिति ने कहा कि 'पड़ोसी पहले' नीति का प्रभाव जमीनी स्तर पर व्यापक रूप से महसूस किया जाना चाहिए। इसके लिए संस्थागत और बहुपक्षीय/क्षेत्रीय तंत्रों को मजबूत करने की आवश्यकता है। समिति ने द्विपक्षीय और बहुपक्षीय संबंधों के ढाँचे की समय-समय पर समीक्षा करने की सिफारिश की।

निष्कर्ष

भारत का पड़ोस अवसरों और अशांति दोनों का एक गतिशील रंगमंच बना हुआ है। SAGAR (क्षेत्र में सभी के लिये सुरक्षा और विकास) के दृष्टिकोण से निर्देशित, भारत के नेबरहुड-फर्स्ट दृष्टिकोण को अब नेबरहुड-स्मार्ट नीति में विकसित होना चाहिये। भारत का अधिकांश पड़ोस रिमलैंड सिद्धांत द्वारा परिभाषित रणनीतिक दायरे में आता है, जो यह मानता है कि 'जो रिमलैंड को नियंत्रित करता है, वह यूरेशिया पर शासन करता है, जो यूरेशिया पर शासन करता है, वह विश्व की नियति को नियंत्रित करता है।" यह भारत के लिये महत्त्वपूर्ण भागीदारी को रेखांकित करता है, जो न के वल क्षेत्रीय समुत्थानशक्ति बढ़ाने में, बल्कि तेजी से विकसित होते बहुध्रुवीय विश्व में स्वयं को विश्व मित्र के रूप में स्थापित करने में भी निहित है।

भारत के पड़ोसी क्षेत्र कई संकटों का सामना कर रहे हैं, जिनमें प्रमुख रूप से म्याँमार का भूकंप व गृह युद्ध, बांग्लादेश की राजनीतिक उथल-पुथल, नेपाल की लोकतांत्रिक चुनौतियाँ और श्रीलंका की नाजुक रिकवरी शामिल हैं। थाईलैंड में BIMSTEC नेताओं की बैठक के दौरान, भारत ने म्याँमार में 'ऑपरेशन ब्रह्मा' के माध्यम से नेतृत्व का प्रदर्शन किया है, जो आपात स्थितियों के दौरान पड़ोसियों की सहायता करने की भारत की बढ़ती क्षमता को दर्शाता है। अपनी भौगोलिक केंद्रीयता और आर्थिक संसाधनों के साथ, भारत क्षेत्रीय सहयोग के आधार के रूप में कार्य कर रहा है।

भारत की पड़ोसी प्रथम नीति, सम्मान, संवाद, शांति और समृद्धि द्वारा निर्देशित, चीन की नव-साम्राज्यवादी, ऋण-जाल कूटनीति के विपरीत है, जो सहयोगात्मक, टिकाऊ और पारस्परिक रूप से लाभकारी क्षेत्रीय संबंधों को बढ़ावा देती है।

सन्दर्भ

1. आहूजा, एन. (2021). क्या सीएए भारत और बांग्लादेश के बीच दरार पैदा कर रहा है? 13 फरवरी 2022 को https://www.theweek.in/news/india/2021/01/16/is-caa-causing-rift-between-india-and-bangladesh.html से लिया गया
2. अप्पादोराई, ए. (1982). भारत की विदेश नीति और संबंधों पर चुनिंदा दस्तावेज 1947-1972 . ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
3. आर्यल, एस.के. (2021). भारत की 'पड़ोसी पहले' नीति और बेल्ट एंड रोड पहल (बीआरआई)। एशियन जर्नल ऑफ कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स , 20578911211014282. https://doi.org/10.1177/20578911211014282
4. आर्यल, एस.के., और नायर, ए. (2021). सार्क की निष्क्रियता और दक्षिण एशिया के द्वार पर चीन का पैर। दक्षिण एशिया लोकतांत्रिक मंच (एसएडीएफ)। https://doi.org/10.48251/SADF.ISSN.2406.5633.F76
5. असवानी, टी. (2021). भारत की झुकी हुई विदेश नीति ने दक्षिण एशिया में चीन के लिए कैसे रास्ता बनाया। 13 फरवरी 2022 को https://blogs.lse.ac.uk/southasia/2021/09/20/how-indias-tilted-foreign-policy-paved-chinas-road-to-south-asia/ से लिया गया।
6. बेहुरिया, ए.के., पटनायक, एस.एस., और गुप्ता, ए. (2012). क्या भारत की कोई पड़ोस नीति है? रणनीतिक विश्लेषण, 36(2), 229-246.https://doi.org/10.1080/09700161.2012.646440.
7. भसीन, एम. (2008). दक्षिण एशिया में भारत की भूमिका: कथित आधिपत्य या अनिच्छुक नेतृत्व? इंडियन फॉरेन अफेयर्स जर्नल , 3 (4), 72-88. http://www.jstor.org/stable/45340757
8. भटनागर, एस., और अहमद, एसजेड (2021)। दक्षिण एशिया में स्थलरुद्ध राज्यों की भू-राजनीति: अफगानिस्तान और नेपाल का तुलनात्मक विश्लेषण। ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स , 75 (1), 60-79। https://doi.org/10.1080/10357718.2020.1793896।
9. भट्टाराई, जी., पुलामी, एमजे (2020). मोदी की पड़ोस नीति का नव-कौटिलीय पहलू: एक गैर-पश्चिमी परिप्रेक्ष्य. स्टोसुनकी मिद्जिनारोडोवे - अंतर्राष्ट्रीय संबंध, 56(2).https://doi.org/10.7366/020909612202003 .

10. भौमिक, ए. (2021). परिधि संकट में: प्रधानमंत्री मोदी की बहुप्रचारित 'पड़ोसी पहले' नीति अब तक कैसी रही है? 16 जनवरी 2022 को https://www.deccanherald.com/specials/sunday-spotlight/periphery-in-peril-how-has-pm-modis-much-hyped-neighbourhood-first-policy-fared-so-far-1043577.html से लिया गया।
11. बिस्वास, ए. (2020). दक्षिण एशिया में भारत की पड़ोस-प्रथम नीति: 21वीं सदी की साझेदारी के लिए एक रूपरेखा. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंस एंड रिसर्च , 9(8). https://doi.org/10.21275/SR20823121922.
12. ब्रूस्टर, डी. (2014). ऑपरेशन कैक्टस: मालदीव में भारत का 1988 का हस्तक्षेप। भारत का महासागर: क्षेत्रीय नेतृत्व के लिए भारत के प्रयास की कहानी। http://pragati.nationalinterest.in/2014/04/operation-cactus-indias-1988-intervention-in-the-maldives से लिया गया ।
13. चंद, बी. (2017). पेपर का शीर्षक: मोदी की पड़ोसी पहले नीति का आकलन: भारत-नेपाल संबंधों में चीन का कारक.
14. चट्टोपाध्याय, पी. (2011). दक्षिण एशिया में भारत की पड़ोस नीति की राजनीति। दक्षिण एशियाई सर्वेक्षण, 18(1), 93-108. https://doi.org/10.1177/0971523112469526 .
15. दास, ए. (2016). भारत की पड़ोस नीति: चुनौतियाँ और संभावनाएँ. जिंदल जर्नल ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स , 4 (1), 18-37
16. दीक्षित, जे.एन. (2001). भारत की विदेश नीति और उसके पड़ोसी . नई दिल्ली: ज्ञान बुक्स.

गीता में कर्म: एक कर्तव्य दृष्टि

डॉ० हरेराम कुमार उपाध्याय

पीएच. डी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

'श्रीमद्भगवद्गीता' महाभारत के भीष्म-पर्व का अंश है, जो कि अट्ठारह अध्यायों में संकलित है। भगवान श्रीकृष्ण तथा किंकर्त्तव्यविमूढ एवं मोह के कारण कर्त्तव्य-पथ से विचलित अर्जुन के संवाद-रूप में रचित 'श्रीमद्भगवद्गीता' भारतीय वाङ्मय की अमूल्य निधि है। गीता की प्रसिद्धि का मूल कारण यह है कि जिन दार्शनिक एवं गूढ सिद्धान्तों का प्रतिपादन वेदों, उपनिषदों, आरण्यको इत्यादि में श्लिष्ट-क्लिष्ट भाषा में हुआ है, गीता में उनका प्रतिपादन अत्यंत सरल, सहज रूप में हुआ है। यही कारण है कि गीता में प्रतिपादित जीवन-दर्शन को न केवल भारतीय जनमानस द्वारा अपितु वैश्विक स्तर पर भी अतयंत श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। जैसा कि पाश्चात्य विद्वान हम्बोल्ट ने गीता से प्रभावित होकर कहा है- किसी ज्ञात भाषा में उपलब्ध गीतों में सम्भवत: सबसे अधिक सुन्दर और दार्शनिक गीता है। गीता की महिमा एवं गुणवत्ता के कारण ही इसे मनुष्यमात्र के उद्धार के लिए रचित 'प्रस्थानत्रयी' में ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषद के साथ स्थान दिया गया है।

यद्दपि गीता में मानव जीवन से संबंधित अनेकानेक धार्मिक तथा दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है, किन्तु वास्तव में उसका उद्देश्य मनुष्य को उसके कर्त्तव्य का ज्ञान कराना ही है, जिसे गीता में 'कर्मयोग' के नाम से अभिहित किया गया है। लोकमान्यतिलक, अरविन्द प्रभृति विद्वान् गीता को कर्मयोग का शास्त्र मानते हैं। 'कर्मयोग' शब्द दो शब्दों के योग से बना है 'कर्म' एवं 'योग'। साधारणत: 'कर्म' का अर्थ है 'काम' एवं 'योग' का अर्थ है 'जोड़ना', किन्तु गीता के परिप्रेक्ष्य में इस 'कर्म' एवं 'योग' शब्द का विशेष अर्थ है। चूँकि गीता वर्ण-व्यवस्था में विश्वास करती है, इसलिए यहाँ 'कर्म' शब्द का अर्थ है, 'अपने वर्णाश्रम धर्म से संबंधित कर्म' एवं 'योग' शब्द का अर्थ है, 'उसमें अपने को नियुक्त करना'। इस प्रकार 'कर्मयोग' शब्द का अर्थ हुआ- 'अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कार्य करना। यहाँ यह ध्यातव्य है कि गीता में वर्णाश्रम व्यवस्था का विधान कर्म के आधार पर किया गया है, जन्म के आधार पर नहीं -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम्।।[1]

इस प्रकार गीता में कर्त्तव्य कर्म के विधिवत सम्पादन को मनुष्य की नि:श्रेयस सिद्धि के लिए अविवार्य माना गया है। गीता के अनुसार मनुष्य के जीवन में कर्म अनिवार्य है। कोई भी मनुष्य चाहे वह विद्वान हो, मूर्ख हो, सबल हो, निर्बल हो, उसे कर्म करना ही पड़ता है, एवं ऐसा वह प्रकृतिजन्य गुणो से वशीभूत होकर करता है-

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:।।[2]

अतएव गीता के अनुसार कर्म के बिना व्यक्ति एक क्षण भी नहीं रह सकता, ऐसा निश्चित मत है। अतएव ऐसी परिस्थिति में एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उपस्थित होता है, कि मनुष्य के द्वारा किस प्रकार का कर्म करना चाहिए 2 कर्म दो प्रकार के होते हैं - सकाम एवं निष्काम। इसमें सकाम कर्म करने से मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र में संसरण करता रहता है, उर्थात विभिन्न प्रकार की कामनाओं एवं इच्छाओं से युक्त होकर कार्य करता हुआ मनुष्य फल के रूप में पाप एवं पुण्य का भोग करता हुआ विभिन्न योनियों में संसरण करता रहता है। किन्तु 'निष्काम कर्म' के अनुष्ठान से मनुष्य को कर्म-बन्धन नहीं होता है, एवं न ही वह जन्म-मृत्यु के चक्रपाश में बँधता है। 'निष्काम कर्म' से तात्पर्य 'कामना' एवं 'फल की इच्छा' से रहित होकर कार्य करने से है। इस प्रकार कर्मफल का परित्याग करके निष्काम भाव से स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार किया गया कर्म ही 'निष्काम कर्म' है, जिसे गीता में 'कर्मयोग' की संज्ञा दी गई है। गीता में कर्मयोग का मूलमंत्र अधोलिखित श्लोक है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते स्ङ्गोस्त्वकर्मणि।।[3]

अर्थात् मनुष्य का अधिकार केवल कर्त्तव्य कर्म करने में है, कर्म के फल में नहीं, क्योंकि मनुष्य केवल अपने वर्णाश्रमधर्म के अनुसार ही कर्त्तत्य-कर्म करने को स्वतंत्र है फल तो ईश्वर के अधीन है। पुनः गीता यह भी कहती है कि मनुष्य को कर्मफल का हेतु भी नहीं बनना चाहिए अर्थात मनुष्य की शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि कर्म-उपादान के साथ किसी भी प्रकार की संलिप्तता नहीं होनी चाहिए। पुनः गीता मनुष्य को कर्म न करने में आसक्ति से वारित करती है, क्योंकि कर्म न करने से मनुष्य में आलस्य प्रमाद आदि तामसिक वृत्तियों का विकास होगा, एवं वह कभी संसारिक बन्धन से मुक्त नहीं हो सकेगा।

उपर्युक्त श्लोक के विवेचन से स्पष्ट है कि गीता जहाँ कर्मयोगी को कर्म-फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करने के लिए प्रवृत्त करती है, वहीं कर्म न करने के निवृत्ति-मार्ग से भी वारित करती हैं। अर्थात गीता कर्मयोग के माध्यम से प्रवृति एवं निवृति में सामंजस्य स्थापित कर कर्म-फल की इच्छा से रहित होकर स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार कर्त्तव्य-कर्म करने को प्रेरित करती है। इस प्रकार किए गए कर्म में फलोत्पादिका शक्ति का अभाव होता है। फलस्वरूप इन कर्मो से बन्धन नहीं होता है। जिस प्रकार भुँजे हुए बीज में वपन की शक्ति नहीं होती है, उसी प्रकार कामनारहित एवं कर्म-फल-इच्छारहित कर्म में बन्धन की शक्ति नहीं होती है। ऐसा कर्म बन्धन का साधक नहीं आपितु बाधक होता है।

अतएव गीता कर्मयोगी को निष्काम-कर्म करने के लिए कर्तृत्वाभिमान एवं आसक्ति से रहित होकर कार्य करने को प्रेरित करती है। सांधारणतः हम कर्म करते हैं, एवं अपने को कर्त्ता मान लेते हैं। हम ऐसा मान लेते हैं कि जो यह 'गृहीत' या 'विचारित' विषय है, इसको करने के लिए 'मैं' ही अधिकृत हूँ - यही कर्त्तृत्वाभिमान है। अतएव कर्मयोगी को ऐसे कर्त्तृत्वाभिमान से रहित होकर कर्म करना चाहिए। परन्तु साधारण मनुष्य के मन में यह संदेह होता है कि यदि मनुष्य में 'कर्त्तापन' न रहे, तो कर्म करने की प्रवति नहीं होगी। इसके निस्तारण हेतु गीता में कर्मयोगी को अकर्ता बताने के लिए कर्म के पाँच कारण बताए गए हैं -

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधश्च च पृथग्चेष्टा दैवं चात्र पञ्चमम्।।[4]

अर्थात् अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा एवं दैव- इन पाँचों के समूह से कार्य सम्पन्न होता है। यहाँ 'अधिष्ठान' से तात्पर्य 'शरीर' से है। 'कर्ता' से तात्पर्य प्रकृति एवं प्रकृति द्वारा किए जाने वाले कार्यो से है।

करण तेरह हैं- इनमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ-श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना एवं घ्राण हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ-पाणि, पाद वाक्, उपस्थ, पायु हैं, एवं 'मन', 'बुद्धि' तथा 'अहंकार', ये तीन अन्तःकरण है। इन तेरह करणों की पृथक्-पृथक् चेष्टाएँ हैं जैसे पाणि का कार्य है आदान-प्रदान करना, पाद का कार्य है गमन, वाक् का कार्य है बोलना, उपस्थ का कार्य है - मूत्र-विसर्जन, पायु का कार्य है मलत्याग। इन्हीं पंचज्ञानइन्द्रियों- श्रोत्र, चक्षु, त्वक्, रसना एवं घ्राण के क्रमशः श्रवण, दर्शन स्पर्श, स्वाद, सूँघना कार्य हैं। अन्तःकरण में उदित निश्चयात्मिका वृति का नाम 'बुद्धि' है। बुद्धि में जब 'मैं' एवं मेरा यह अहंभाव उतपन्न होता है, तब उसको 'अहंकार' कहा जाता है। अन्तःकरण की संकल्पात्मिका- विकल्पात्मिका वृत्ति का नाम 'मन' है। किसी कार्य को किया जाय या न किया जाय, उसको संकल्प-विकल्प कहते हैं। यहाँ दैव से तात्पर्य पूर्वजनित कर्मो के शुभाशुभ फलो के अनुसार मनुष्य की कर्म करने में प्रवृत्ति की क्रियात्मक तीव्रता से है। इस प्रकार जब इन पाँच कारणों के द्वारा किसी कार्य का सम्पादन होता है, तो एक कर्ता को ही कारण मान लेना केवल अभिमान या अहंकार के अतिरिक्त कुछ नहीं। अतएव इस कर्तृत्वाभिमान से शून्य होकर कर्म करना ही कर्म योग है -

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।[5]

साधारणतः हम सुख-प्राप्ति एवं दुःखपरिहार के लिए कर्म करते हैं, अतएव कर्म का मूल कारण आसक्ति ही है। इस आसक्ति के त्याग के लिए गीता भगवदर्थ कर्म करने का निर्देश देती है। अर्थात कर्मयोगी को यह समझना चाहिए कि 'मेरे द्वारा सम्पादित सभी कर्म भगवान के हैं', 'मैं ईश्वर के लिए भृत्यवत कर्म करता हूँ', इस प्रकार की विवेक-बुद्धि से सभी कर्मो का भार ईश्वर पर सौंप कर सब प्रकार से आशा-ममता, राग-द्वेष एवं हर्ष-शोक आदि विकारो से रहित होकर कार्य करना चाहिए-

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि।।[6]

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।।[7]

इस प्रकार कर्मयोगी को कर्तृत्वाभिमान एवं आसक्ति से रहित होकर स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार कर्म करना चाहिए। इस प्रकार कार्य करने वाले मनुष्य को कर्म-बन्धन किसी प्रकार प्रभावित नहीं करता। ऐसे जिष्काम-कर्म करते हुए कर्मयोगी को परमात्मा की प्राप्ति होती है, जो कि कर्मयोग के साधना की परिणति है -

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरूषः।।[8]

पुनः गीता कर्मयोग को मोक्ष या निःश्रेयस-सिद्धि के लिए केवल सैद्धान्तिक नहीं मानती। इसके अनुसार कर्मयोग बहुत पुरातन योग है, जिसके द्वारा राजा जनक जैसे अनेक कर्मयोगी महापुरूष परमात्मा को प्राप्त हो चुके हैं -

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन्कर्तुमर्हसि।।[9]

अतएव वर्तमान में या भविष्य में यदि कोई कर्म-योग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, तो उसके लिए निष्काम कर्मयोग का मार्ग सदैव प्रस्तुत है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कर्तृत्वभिमान एवं आसक्ति से रहित होकर निष्काम भाव से स्ववर्णाश्रमधर्म के अनुसार किया गया भगवदर्थ कर्म 'कर्मयोग' है। ऐसा 'कर्मयोगी' निश्चित रूप से परमात्मा को प्राप्त कर लेता है- इसमें कोई संदेह नहीं है। अतएव कर्मयोग का मार्ग सर्वथा प्रशंसनीय है।

संदर्भ-सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर 4/13
2. वही 3/5
3. वही 2/47
4. वही 18/14
5. वही 3/27
6. वही 2/28
7. वही 3/30
8. वही 3/19
9. वही 3/20

गुप्त एवं गुप्तोत्तर कालीन अभिलेखों में व्यापार-वाणिज्य-आलोचनात्मक अध्ययन

ललिता सिंह

शोधार्थी, प्राचीन इतिहास एवं सांस्कृतिक विभाग, एम.जे.पी. रुहेलखंड वि०वि०, बरेली, उत्तर प्रदेश

डॉ० पवन कुमार सिंह

सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास एवं सांस्कृतिक विभाग, एम.जे.पी. रुहेलखंड वि०वि०, बरेली, उत्तर प्रदेश

सारांश

यह शोध प्रस्ताव प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्गों, परिवहन, अभिलेख की सामाजिक-आर्थिक भूमिका पर केंद्रित है। शोध में भारतीय सभ्यता के उद्भव काल से व्यापार की अंतर्देशीय और विदेशी संरचनाओं के विकास, उनके आर्थिक-सांस्कृतिक प्रभाव और व्यापारिक संघों की भूमिका का विश्लेषण किया जाएगा। मुख्य शोध प्रश्न यह है कि व्यापारिक मार्गों और गिल्ड प्रणाली ने भारतीय समाज को किस प्रकार आर्थिक एकता, सांस्कृतिक आदान-प्रदान तथा शहरीकरण की ओर उन्नत किया। प्राथमिक उद्देश्य व्यापारिक मार्गों की ऐतिहासिकता, उनके द्वारा जुड़े क्षेत्रों की विविधता और मंदसौर अभिलेख जैसे स्रोतों से गुप्तकालीन सामाजिक-आर्थिक जीवन के स्वरूप का अध्ययन करना है।शोध में ऐतिहासिक-समीक्षात्मक पद्धति तथा अभिलेखीय स्रोतों के विश्लेषण का उपयोग किया जाएगा, जिसमें महाकाव्य,ग्रंथ,पुरातात्विक प्रमाण एवं अभिलेखों का समावेश होगा। उम्मीद है कि शोध से प्राचीन भारतीय व्यापार, मार्ग तथा संघों का बहुआयामी चरित्र उद्घाटित होगा,जो भारतीय आर्थिक इतिहास की गहन समझ को नवीन आयाम देगा। इस प्रकार, यह अध्ययन प्राचीन भारत के व्यापार और गुप्तकालीन संघों के ऐतिहासिक महत्व को समझने हेतु सार्थक शोध-नवाचार और नीतिगत दृष्टिकोण प्रदान करेगा।

की वर्डः व्यापार, गुप्त, गुप्तोत्तर, अभिलेख, परिवहन आदि।

प्रस्तावना

व्यापार देश की आर्थिक भलाई के महान निर्माताओं में से एक था और सिंधु घाटी सभ्यता के दिनों से ही दूर देशों के साथ व्यापार भारतीय आर्थिक जीवन की एक विशेषता थी। प्राचीन भारत में सभी प्रकार के अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार होते थे।व्यापारियो का देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में एक सम्मानित स्थान और महत्वपूर्ण स्थान था। व्यापार, उधोग का स्वाभाविक परिणाम है क्योंकि औद्योगिक उत्पाद को अपने निपटान के लिए बाजार की तलाश करनी पड़ती है। औद्योगिक प्रगति के साथ -साथ गहन अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार का विकास हुआ तथा साथ ही विदेशी व्यापार में भी वृद्धि हुई।भारत की समुद्री व्यापारिक गतिविधिया सिंधु घाटी जितनी है उसके बाद वैदिक पणी की समुद्री गतिविधिया है, वैदिक पणि एक व्यापारिक लोग थे। भारतीय अंतर्देशीय और स्थल मार्गो के साथ -साथ विदेशी जाति से दूसरी जाति ,एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र, एक देश से दूसरे देश और एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति को जोड़ने में एक बहुत शक्तिशाली कारक रहा होगा। वस्तुओं के आदान - प्रदान ने देश को घनिष्ठ आर्थिक एकता में बांध दिया। महाकाव्यों में व्यापारियों और उनके द्वारा लाये जाने वाले व्यापारिक वस्तुओं का खूब वर्णन मिलता है। आतंरिक व्यापार की मात्रा विदेशी व्यापार से अधिक थी। देश के विभिन्न भागों में वस्तुओं का आवागमन होता रहा तथा उत्पादन की विविधिता और आयाम भी समृद्ध रहे। व्यापार के ह्रास से नगरों के बुरे दिन आये। नगरों का उत्थान दक्कन, पश्चिम और उत्तर भारत में सातवाहन और कुषाणों के राज्यकाल में हुआ था कुछ नगर गुप्तकाल में तो फलते फूलते रहे, लेकिन गुप्तोत्तर काल में उत्तर भारत के बहुत सारे पुराने वाणिज्य नगर उजड़ गए उत्खननों से पता चलता है की हरियाणा और पूर्वी पंजाब के कई नगर, पुराण किला (दिल्ली, मथुरा हस्तिनापुर (मेरठ, श्रावस्ती, कौशाम्बी, राजघाट, चिरांद, वैशाली और पाटलिपुत्र गुप्तकाल में ही पतोन्मुख हो गए थे और गुप्तोत्तर हाल में ही अधिकांश लुप्त हो गए। चीनी यात्री हुएनसांग ने बुद्ध के जीवन से सम्बंधित कई नगरों में भ्रमण किया तो देखा की वे या तो उजड़ गए हैं या जीर्ण शीर्ण हो गए हैं[1] भारत के माल के लिए विदेशों में बहुत काम बाजार रह गया, इसलिए इन नगरों में रहने वाले शिल्पी और वणिक देहात में चले गए और वहां खेती करने लगे। 5वी सदी के उत्तरार्ध में रेशम बुनकरों टोली पश्चिमी समुद्रतट को छोड़कर मालवा के मंदसौर में आ बसी और वहां रेशम की बुनाई छोड़कर दूसरे पेशे को अपनाया। व्यापार और नगरों का ह्रास हो जाने पर गांव के लोगों को तेल, नमक, मसाला, कपडा आदि वस्तुओं के बारे में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति खुद ही करनी पड़ी। इससे उत्पादन की छोटी छोटी इकाइयां उभरी, हर इकाई अपनी आवश्यकता की पूर्ति करती थी।[2]

विभिन्न राज्यों के बीच एक-दूसरे के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे और व्यापार के उद्देश्य से पूर्व और पश्चिम के देशो के अंदर विभिन्न व्यापार मार्ग थे। भारत वर्ष में प्राचीन काल से चली आ रही व्यापारिक संस्थाओ , श्रेणी तथा निगम समूह ने अपने कारोबार को पूर्ववत रखा। रेशम का कारोबार उन्नत अवस्था कृषको से उपज कर लिया जाता था कृषि केवल वर्षा पर निर्भर थी। बाढ़ एवं सूखा - दोनों का प्रकोप कृषि पर पड़ता था।[3]

कौटिल्य 'और 'मनु' ने अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार की प्रकृति एवं महत्व की चर्चा की है व्यापार राष्ट्रीय समृद्धि का एक अभिन्न कारक था मनु ने व्यापार में नैतिकता के लिए निर्देश दिए है और स्वत: व्यापार के प्रमुख सिद्धांतों पर जोर दिया है।

व्यापारिक मार्ग

परिवहन व्यापार और उद्योग की जीवन रेखा है,परिवहन और संचार के साधन राष्ट्रीय जीव की तंत्रिकाएं है। 'ऋग्वेद' के एक श्लोक में परिवहन के विभिन्न साधनो की जरुरत एवं सार्वजानिक राजमार्गो रख रखाव और संरक्षण को राजा के कर्तव्यों में से एक बताया है रथ, गाड़ियां, बोझा उठाने वाले पशु (याक, बकरी, घोड़े, ऊँट एवं हाथी) का उपयोग विभिन्न क्षेत्रों में सुविधानुसार किया जाता था तथा राजमार्ग और राष्ट्रीय राजमार्गों का देखभाल किया जाता था और सड़को का उपयोग एवं गंतव्य के अनुसार वाँटा हुआ था, नदियां भी परिवहन के माध्यम के रूप में काम करती थी। व्यापार की बेहतर स्थिती न केवल सडकों और बाजारों पर अधिक ध्यान दिय जाने में देखी जाती है बल्कि विभिन्न व्यापार मार्गो के सापेक्ष मूल्यों की बुद्धिमत्तापूर्ण सराहना में देखी जा सकती है। 'कौटिल्य'द्वारा वहारत के बिभिन्न क्षेत्रों के कृषि, विनिर्माण और अन्य उत्पादों की उल्लेखनीय सूची से आतंरिक व्यापार मार्गो पर नियंत्रण किया बल्कि देश सभी के बहार पूर्व और पश्चिम की और जाने वॉर अधिकांश स्थलीय समुद्री मार्गो पर नियंत्रण किया। हेलेनिस्टिक राज्यों के साथ मित्रता ने पश्चिमी दुनिया के साथ भारत के व्यापार के विस्तार में भी योगदान दिया। बौद्ध ग्रंथो में बिभिन्न प्रकार के स्त्रोतों की कहानियां मिलती है जिन्होंने मोटे तौर पर एक जैसे मार्गो से यात्रा की होगी और उनकी यात्राओं के वृतांत, संचार और व्यापार के मार्गो का एक विचार देते है। पुरातात्विक साक्ष्य व्यापार मार्गों और अन्तरक्रियाएँ की पहचान करने में भी मदद करते है।

प्राचीन भारत के २ प्रमुख अंतर क्षेत्रीय मार्ग ज्ञात थे

1. उत्तरापथ
2. दक्षिणापथ

इन मार्गो का एक लम्बा और स्थाई इतिहास है जो कई शताब्दी तक फैला हुआ है

1. उत्तरापथ

उत्तरापथ की जानकारी हमें एहोल अभिलेख में प्राप्त होती है जो उत्तर में नीचे की और विन्ध्ये क्षेत्र से नर्मदा नदी तक का भाग है 'उत्तरापथ' कहलाता है, हर्षवर्धन को पुलकेशिन दिव्तीय द्वारा परास्त कर 'सकलोत्तरपथनाथ' नाम की उपाधि धारण किया है[4], उत्तरापथ (महान उत्तरी व्यापार मार्ग) उत्तर भारत का प्रमुख अंतर -क्षेत्रीय व्यापार मार्ग था। यह उत्तर - पश्चिम से लेकर सिंधु -गंगा के मैदानों से होते हुए बंगाल की खाड़ी में ताम्रलिप्ति बंदरगाह तक फैला हुआ था, अष्टाध्यायी में इसके किनारे स्थित विभिन्न राज्यों का उल्लेख है। मार्ग का विवरण विनयपिटक और जातक में संदर्भो के आधार पर तैयार किया जा सकता है। उत्तरापथ में उत्तरी और दक्षिणी क्षेत्र थे।

- उत्तरी क्षेत्र: उत्तरी क्षेत्र लाहौर, जालंधर, सहारनपुर से होते हुए गंगा के मैदानों के साथ बिजनौर तक और फिर गोरखपुर से होते हुए बिहार और बंगाल तक जाता था।
- दक्षिणी क्षेत्र: दक्षिणी क्षेत्र, लाहौर, रायपिण्ड, भटिंडा, दिल्ली, हस्तिनापुर, कानपुर, लखनऊ, वाराणसी और इलाहाबाद को जोड़ता था और फिर पाटलिपुत्र और राजगृह की और बढ़ता था। उत्तरापथ की मुख्य धमनी से कई पोषक मार्ग जुड़े हुए थे उदाहरण के लिए एक राजस्थान (जो धातु और खनिजों का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत था) से जुड़े थे ,दूसरा सिंध से और एक और उड़ीसा तट से।

उत्तरापथ एक स्थल नदी मार्ग था बौद्ध ग्रंथो में गंगा के किनारे व्यापारियों और वस्तुओं के नदी मार्ग से आवागमन का उल्लेख मिलता है। इस नदी, इसकी सहायक नदियों जैसे यमुना ,घाघरा और सरयू के किनारे कई प्राचीन नगरों के वितरण से पता चलता की नदियां प्रमुख संचार मार्ग थी।

2. दक्षिणापथ

दक्षिणापथ (महान दक्षिण व्यापार मार्ग) का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता हे किन्तु यह प्राचीन इतिहास काल से ही प्रचलन में था। यह मगध के पाटलिपुत्र से लेकर प्रतिष्ठान (पैठण)तक फैला हुआ था ,और पश्चिमी तट के बंदरगाहों से भी जुड़ा हुआ था। यद्यपि बौद्ध ग्रंथो में विशेषकर महाभारत और रामायण में विंध्य पार के क्षेत्रों का कई बार उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रंथो में पाटलिपुत्र और

कौशाम्बी से प्रतिष्ठान की यात्रा करने वाले व्यापारियों का उल्लेख है। सुत्त निपात में कौशल के एक गुरु बाबरी की कथा है, जिन्होंने अस्सक में गोदावरी के तट पर एक आश्रम बनाया और अपने शिष्यों को बुद्ध से मिलने के लिए भेजा। वे प्रतिष्ठान,उज्जैनी,विदिशा और श्रावस्ती होते हुए गए। चिकित्सक जीवक दक्षिणापथ के साथ अवन्ति की ओर बढ़े। विन्ध्य पर्वतों ने गंगा घाटी की बस्तियों को लोहा, तांबा और विभिन्न प्रकार के पत्थर उपलब्ध कराए, और वे कच्चे माल दक्षिणापथ के उत्तरी क्षेत्र से होकर गुजरे होगे। बाद की शताब्दियों में इस मार्ग से व्यापार और संपर्क बढ़ा। "बौद्ध ग्रन्थों" में 1000 गड़ियों वाले कारवों का उल्लेख है जो एक जनपद से दूसरे जनपद तक जाते थे और वर्णित क्षेत्रों से होकर गुजरते थे। और कारवा द्वारा राजा के आदमियों को चुंगी और कर देने का भी उल्लेख है सीमा शुल्क अधिकारी (कम्मिक)माल पर कर लगाते थे। बड़े शहरों को जोड़ने वाली सड़को पर चलते व्यापारियों और साधुओं को लुटेरों द्वारा लूटे जाने की कहानियां प्रचलित हैं। ऐसे यात्रियों के जीवन और संपत्ति की रक्षा करना राजभटटो नामक शाही अधिकारियों का काम था ।मौर्य शासन काल में सड़कों पर मोड़ और दूरियों के संकेत बोर्ड लगे होते थे।

नदी व्यापार मार्ग

नादियों के मार्ग बहुत शातिशाली होते थे गंगा, यमुना, सरयू, सो गण्डकी, कोशी, कृष्ण, तुंगभद्रा, महानदी, गोदावरी, कावेरी प्राय व्यापार और वाणिज्य के लिए प्रमुख थी। देश में महत्वपूर्ण नदी बन्दरगाह थे परिवहन मुख्यत नादियों के माध्यम से ही माल का परिवहन किया जाता था। मौर्यकाल में चुनार के बलुआ पत्थर के स्तम्भों का परिवहन नदियों के माध्यम से ही किया जाता था। पाणिनि ने विभिन्न प्रकार की नौकाओं और जहाजों का उल्लेख किया है। मौर्य एवं गुप्तकाल में नौवहन अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। गंगा सबसे महत्वपूर्ण जल मार्ग थी।

बाहरी व्यापार मार्ग

आन्तरिक व्यापार मार्ग बाहरी मार्गो से जुड़ते थे जो उपमहाद्वीप को अन्य क्षेत्रों से जोड़ते थे। तक्षशिला को उत्तरी अफगानिस्तान और ईरान से जोड़ने वाले स्थलीय मार्ग चाँदी, सोना, लाजवर्द जैसे-कच्चे माल प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण थे। भारत और मेसोपोटामिया के बीच उत्लम लकड़ी का लम्बी दूरी का व्यापार होता रहा होगा। मध्य एशिया मार्ग नवपाषाण काल से ही महत्वपूर्ण रहा है वोलन दर्रे और उत्तरी अफगानिस्तान से होकर जाने वाला मार्ग भी महत्वपूर्ण था। तक्षशिला जैसे शहर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापरिक केन्द्र थे और उन्होंने भारत और पश्चिमी दुनिया के बीच वाणिज्यिक संबंध स्थापित किए। उत्तर-पश्चिम से भारत में आने वाले मार्गो का अनुसरण न केवल व्यापरियों द्वारा किया जाता था, वल्कि फारसी और मैसडोनियन सेनाओं के साथ-साथ मध्य एशियाई जनजातियों द्वारा भी आक्रमण किया जाता था। बंगाल से म्यांमार तक मार्ग भी संभवत: महत्वपूर्ण था और संभवत: जेड का आयात म्यांमार से ही किया जाता था ।पाली ग्रंथों में समुद्री यात्रा और व्यापार का उल्लेख मिलता है अंगुत्तर निकाय में उन समुद्री व्यापारियों का उल्लेख है जो अपने जहाजों से जमीन की ओर प्रस्थान करते थे। जातकों में समुद्री यात्राओं के कई वृत्तांत मिलते है। दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ समुद्री व्यापार भी प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल में शुरू हुआ था व्यापार के विस्तार के कारण व्यापारियों का एक महत्वपूर्ण नगरीय समूह के रूप में उदय हुआ। निसंदेह ,उनकी आर्थिक समृद्धि के कारण ही बौद्ध ग्रंथो में वाणिज्य को उच्च व्यवसायों में से एक बताया गया। "मंदसौर अभिलेख "गुप्तकालीन समाज, व्यापार और संस्कृति समझने का प्रमुख स्रोत है।इसके माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन नगरों में व्यापारिक संघ, मंदिर निर्माण, व सामाजिक गतिविधियाँ प्रचलित थीं।अभिलेख में से प्रारंभ होकर शिव की स्तुति की गई है, फिर मंदिर निर्माण, नगर का वर्णन और रेशम बुनकरों के संघ की चर्चा, स्थानीय प्रशासक वत्सभट्ट और व्यापार संघों की भूमिका का उल्लेख मिलता हैइसमें सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक गतिविधियों के बारे में जानकारी मिलती है, जैसे रेशम बुनकरों के संघ (गिल्ड) का वर्णन, उनकी धार्मिक गतिविधियाँ और सूर्य मंदिर निर्माण का उल्लेख मिलता हैमंदसौर अभिलेख मध्य प्रदेश के मंदसौर में मिला था, जो प्राचीनकाल में दशपुर के नाम से प्रसिद्ध था ,यह अभिलेख संस्कृत भाषा और ब्राह्मी या गुप्त लिपि में लिखा गया

व्यापार से सम्बंधित अभिलेख-

1. यशोधर्मन का मंदसौर स्तम्भ अभिलेख: यह अभिलेख मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले (प्राचीन दशपुर)में पाया गया था और यह राजा यशोधर्मन द्वारा हूँण राजा मिहिरकुल पर प्राप्त विजय और उनकी वीरता का विस्तार से जानकारी दिया है यह अभिलेख से स्थानीयों लोग जो लाट (गुजरात) से कारण से मालवा राज्य (मध्य प्रदेश) में आ गए थे। इस अभिलेख से स्थानियों व्यापारिक संघो,विशेषकर रेशम, बुनकरों के संघ के बारे में जानकारी मिलती है। इस अभिलेख से गुप्तकालीन वस्त्र उद्योग के समृद्धि और संगठित व्यापार का पता चलता है। इससे विषयक संगठन,आर्थिक गतिविधियों और मंदिर निर्माण के लिए दान का भी उल्लेख है,जो वस्त्र व्यापार की सामाजिक और धार्मिक भूमिका दर्शाता है।[5]
2. पेहवा अभिलेख: यह एक महत्वपूर्ण स्तंभ अभिलेख है जो हरियाणा के कुरुक्षेत्र जिले स्थित पेहवा नगर में मिला था ,इसका सम्बन्ध गुर्जर प्रतिहार शाशक मिहिर भोज से है। यह अभिलेख 9 वी सदी के आसपास का है जो बताता है की इस काल में पेहवा घोड़े के व्यापार का एक प्रमुख केंद्र था और अश्व केंद्र यहाँ पर स्थापित था इस अभिलेख द्वारा पता चलता है पूरे भारत

से अश्व -व्यापारी यहाँ आते थे। अरब यात्रियों के विवरण से जानकारी मिलती है की पेहवा उस समय के प्रतिहार राजाओ घुड़ सैनिकों का प्रसिद्ध अड्डा था।[6] धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व पेहवा को श पृथुदक तीर्थ श भी कहा जाता है। यह अभिलेख भारत के मध्यकालीन इतिहास और व्यापारिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। लीन वस्त्र उद्योग सूती वस्त्र प्रमुख थे

3. इंदौर ताम्रपत्र अभिलेख: यह अभिलेख उत्तर प्रदेश के बुलंद शहर जिले के अनूपशहर तहसील के इंदौर ग्राम से मिला था इसका सम्बन्ध स्कंदगुप्त करीब (465 ईसवी)के शासन काल से माना जाता है इसमें संस्कृत भाषा और ब्राह्मी लिपि है और सूर्य मंदिर में दीपक जलने के लिए तेल की व्यवस्था और धनदान के विवरण का उल्लेख है। इस अभिलेख में तेल व्यापारियों के संघ का भी उल्लेख है जो गुप्तकाल के व्यापारिक पहलुओं को समझने में मदद करता है।[7]
4. सियोदनी अभिलेख -पीतल बर्तन बनाने वालों के संघ, मिष्ठान -विक्रेता, पान बेचने वाला, पत्थर तराशने वाले, शराब के व्यापारियों के संघों में संगठित होने से पता चलता है।
5. हर्ष प्रस्तर अभिलेख - घोड़े व्यापारियों के संघों का उल्लेख
6. चेदी लक्ष्मण राज का कार्तालाई स्टोन अभिलेख- जो शिकारियों की श्रेणी के बारे में जानकारी देते हैं
7. शेरगढ़ अभिलेख - तौलिकाराजा का उल्लेख करता है, जिसको ए०एस०अल्टेकर द्वारा तेल बनाने वालों की श्रेणी में अध्यक्ष के रूप में अनुवादित गया है।
8. वेलभट्ट स्वामिन का ग्वालियर अभिलेख- कुछ श्रोणियों का उल्लेख करता है,जैसे-तैलिका श्रेणी (तेल बनाने वालों का संघ), मलिका श्रेणी (मालियो का संघ) इन श्रेणियों के अपने- अपने अध्यक्ष भी थे, जो सम्मान पूर्वक जाने जाते थे जैसे - तैलिका-महानतक एवं मालिका महर'।
9. झालरपट्टन अभिलेख - तैलिका - पट्टाकिला नाम का या तैलीय श्रेणी के अध्यक का नाम उल्लिखित है।
10. परमार वंश की उदयपुर प्रशस्ति - नाविकों द्वारा भी अपने निजी संघ के बारे में प्राप्त होता है।
11. तीन ताम्रपत्र कोट्टयम और कोचीन से प्राप्त अंजुवारम और मणिग्रामम नामक व्यापारिक संघों का उल्लेख करते हैं।
12. कुलनेर अभिलेख -आर्थिक संस्थाओं ने बैंक के रूप में जनता की अतुलनीय सेवाश की।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में व्यापार और व्यापारिक मार्गों का देश की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समृद्धि में अतुलनीय योगदान रहा है। व्यापार ने न केवल उद्योगों को बाजार उपलब्ध कराए बल्कि विभिन्न क्षेत्रों, संस्कृतियों और देशों को जोड़कर आर्थिक एकता स्थापित की। उत्तरापथ और दक्षिणापथ जैसे प्रमुख स्थल मार्गों ने वस्तुओं के निर्बाध आवागमन को संभव बनाया और इन्हीं मार्गों के माध्यम से धातु, खनिज, कृषि एवं औद्योगिक उत्पादों का विविधता से आदान-प्रदान होता रहा। नदियाँ, जल मार्ग तथा बंदरगाह विदेशी और आंतरिक व्यापार को सशक्त बनाने वाले मुख्य परिवहन माध्यम थे।'मंदसौर अभिलेख' से यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन समाज में व्यापारिक संघ (गिल्ड) एवं स्थानीय प्रशासन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी, जो न केवल आर्थिक बल्कि सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों में भी सक्रिय थे। इस अभिलेख में व्यापारिक संघों के संगठन, मंदिर निर्माण और नगर जीवन की सूक्ष्म झलक मिलती है, जो उस काल की आर्थिक और सांस्कृतिक समृद्धि का प्रमाण है। अत: प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्ग और संघ राष्ट्रीय आर्थिक विकास में प्रमुख स्तंभ थे। उन्होंने न केवल वस्तुओं के आदान-प्रदान को सुगम बनाया, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों को भी मजबूती दी। यह प्रणाली भारतीय सभ्यता की वैश्विक संपर्कों और आर्थिक ताकत की नींव साबित होती है, जिसने इतिहास के विभिन्न कालों में भारत को विश्व के महत्वपूर्ण आर्थिक केंद्रों में शुमार किया। इस प्रकार, प्राचीन भारत के व्यापारिक मार्गों और मंदसौर अभिलेख के अध्ययन से हमें उस युग की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की गहन समझ प्राप्त होती है, जो आधुनिक समय के लिए भी प्रेरणादायक और ज्ञानवर्धक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, रामशरण: प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरिएण्टल ब्लैक स्वान, पृष्ठ सं-292
2. वही, पृष्ठ सं -293
3. सिंह, डॉव सुशील, (2003): प्राचीन पंजाब के अभिलेखों का अध्ययन, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, काशीराम मार्किट, दिल्ली, पृष्ठ सं -124
4. राजपुरोहित, बी. एल., 2007, प्राचीन भारतीय अभिलेख शिवालिक प्रकाशन, शक्तिनगर, दिल्ली, पृष्ठ सं-142
5. गोयल, श्री राम, (1932): प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह भाग-3, मौखरि -पुष्य भूति - युगीन अभिलेख, कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ, पृष्ठ -सं -243
6. सिंह, डॉव सुशील, (2003): प्राचीन पंजाब के अभिलेखों का अध्ययन, न्यू भारतीय बुक कारपोरेशन, काशीराम मार्किट, दिल्ली, पृष्ठ सं -122

अन्तः परिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन-एक अध्ययन

डॉ० मो० इरशादुल हक

प्राचार्य, ए0एन0जी0डिग्री कालेज, रानीगंज, प्रतापगढ़

समीक्षा (Abstract)

परिवार समाज का अभिन्न अंग है। क्योंकि परिवार के बिना समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए परिवार को सार्वभौमिक संस्था कहा जाता है। परिवार के अन्दर विभिन्न सदस्यों के बीच सम्बन्ध पाए जाते है। वर्तमान समय में परिवार के इन सम्बन्धों में परिवर्तन हो रहा है।

प्रस्तुत लेख का उद्देश्य अन्तःपारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तनशील प्रतिमानों का विश्लेषण करना है। लेख के माध्यम से यह ज्ञात करने काप्रयास रहा है, कि संयुक्त परिवार विकासशील नगरीय संरचना के संदर्भ में अपने अस्तित्व और निरन्तरता को किस रूप में बनाए हुए है। साथ ही यह देखने का प्रयास है कि भारतीय परिवेश में एकाकी परिवार अपने आदर्श-प्रारूप में कितने अधिक निकट है। संयुक्त परिवार की परम्परागत विशेषता केवल सीमित रूप में परिवर्तित हुई है। यह परिवर्तन संयुक्त परिवार की भौतिक प्रकृति अर्थात सदस्यों के सीमित संख्या से सम्बन्धित है। धार्मिक संस्कारों में एकता और सम्बन्धों की पारस्परिकता आज भी विद्यमान है। आज भी एकाकी परिवार में परम्परागत जीवन शैली की विशेषताएं विद्यमान है।

Keywords-पारिवारिक संरचना में परिवर्तन।

मानव समाज और संस्कृति का इतिहास परिवार का इतिहास है। समाज में जितने भी संगठन पाये जाते हैं उन सभी का आधार परविार ही है। यह ऐसा संगठन है जहाँ व्यक्ति स्वयं जन्म लेता है और बच्चों को जन्म देता है। मानव जाति के क्रम का आधार परिवार ही है। इसलिये कहा गया है-''परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है''। परिवार में सदस्यों के बीच सम्बन्ध पाया जाता है यह सम्बन्ध परम्परागत या संयुक्त परिवार में काफी सुदृढ़ होते हैं। लेकिन वर्तमान समय में इन सम्बन्धों मे व्यापक परिवर्तन देखने को मिला है।

भारत में परम्परागत या संयुक्त परिवार चारों ओरपाये जाने वाले विविध सम्बन्धों पर आधारित है। यह सम्बन्ध माता-पिता के बीच पति-पत्नी के बीच, सास श्वसुर, बहू के बीच, भाई-बहन के बीच सम्बन्धों पर आधारित है। परन्तु आज इन सम्बन्धों में व्यापक परिवर्तन हुआ है।

माता-पिता और बच्चों के मध्य सम्बन्ध-परम्परागत या संयुक्त परिवार में, पिता व पुत्र के मध्य सम्बन्ध स्नेह पर न आधारित होकर भय पर आधारित थे। परन्तु वर्तमान में इन सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ है और यह स्नेह पर आधारित हो गया है। इन परिवर्तनों को निम्न आधार पर समझा जा सकता है।

I. सत्ता-अधिकार
II. समस्याओं पर विचार की स्वतंत्रता
III. बच्चों द्वारा माता-पिता का विरोध
IV. दण्ड देने के तरीके

परम्परागत या संयुक्त परिवार में शक्ति व सत्ता लिंग पीढ़ी व सापेक्ष आयु पर आधारित था। सत्ता वृद्ध पुरुष के हाथ में होती थी। जो परिवार का मुखिया (कुलपिता) कहलाता था। वही सर्वशक्तिशाली होता था। वही यह निश्चित करता था कि बच्चों को शिक्षा कहाँ दी जाए। उसे कौन व्यवसाय चुनना है तथा जीवन साथी के चयन का अधिकार भी उसे ही होता था। कुलपिता, बच्चो से परामर्श लेने के लिए बाध्य नहीं था। बच्चों द्वारा बड़ों से बहस करना या जवाब लड़ाना, बुरा-व्यवहार समझा जाता था।

परन्तु वर्तमान समय में परिवार के इन परम्परागत स्वरूपों में परिवर्तन हो रहा है। आधुनिक युग में शक्ति व सत्ता योग्यता शिक्षा व बुद्धि पर आधारित है। वर्तमान समयमें कुलपिता की शक्ति में परिवर्तन हुआ है। वर्तमान शिक्षा, व्यवसाय व जीवन साथी चुनाव में बच्चों से परामर्श लेना अनिवार्य समझते है। आजकल बच्चे भी माता-पिता से खुलकर विचार-विमर्श करते है।

कैथलीन गफ ने 1952 में तंजोरग्राम एक परिवार के अध्ययन में पाया कि पितुवंशीय परिवार में सभी सदस्य पिता की आज्ञा मानते हैं।

''डेविड मेन्डलबाम'' ने भारतीय परिवार के अध्ययन में पाया कि दादा मृत्यु तक सिद्धान्त परिवार का मुखिया बना रहता था। उसे अपने नातिन, बच्चों, भाई-बहनों पर पूरा अधिकार था। दादा की मृत्यु के बाद परिवार की सत्ता सबसे बड़े पुरुष सदस्यों के हाथों में चली जाती थी।

परन्तु आज शहरी और शिक्षित परिवार में दादा की सत्ता कम होती जा रही है। अब परिवार का सबसे बड़ा सदस्य कुलपिता नहीं रहा जैसा दो पीढ़ी पूर्व था। सत्ता का हस्तान्तरण अब कुलपिता से बच्चों के पिता में होता जा रहा है जो हर मामले में निर्णय लेने से पूर्व बच्चों से परामर्श लेते है।

'ROSE' ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर पाया कि संयुक्त परिवार में कुलपिता (पितामह) का प्रभाव उतना नहीं रह पाया, जितना आशाकी जाती थी। उन्होंने 157 प्रकरणों का अध्ययन किया और पाया कि 6.3% दादा के हाथों में 59.2% पिता के 12.1% माँ के और 22.4% व्यस्कों के हाथों में सत्ता थी।

''एम0एस0गोरे'' ने 1961 में अपने उत्तरदाताओं से पूछा कि उनके परिवार में शिक्षा व्यवसाय व जीवन साथी चुनने में किसका निर्णय माना जाता है। इनमें से अधिकांश द्वारा दिये गये उत्तर के आधार पर पाया कि इस सम्बन्ध में बच्चे निर्णय लेने हेतु स्वतन्त्र नहीं थे। परन्तु फिर भी थोड़े से सदस्य निर्णय अपने हाथ में रखते थे। जिनके बारे में निर्णय लिया जाना है।

बच्चे अपनी समस्याओं पर माता-पिता से खुलकर विचार-विमर्श करते है। एम0एस0गोरे ने 100 उत्तरदाताओं द्वारा दिए गये उत्तर के आधार पर पाया कि 63% बच्चे खुलकर विचार-विमर्श करते हैं। 11% बिल्कुल नहीं करते, 19% बच्चे विचार-विमर्श करते हैं, परन्तु अंतिम निर्णय माता-पिता पर ही छोड़ देते हैं। समस्याओं पर विचार-विमश्र करने में ग्रामीण बच्चें की अपेक्षा शहरी क्षेत्र के बच्चों को स्वतन्त्रा अधिक है।

आज के बच्चे माता-पिता से खुलकर बोलते हैं। अपनी इच्छानुसार पैसे खर्च करते है। अपने वस्त्र स्वयं खरीदते हैं। वर्तमान युग में बच्चे माता-पिता से न केवल समस्याओं पर विचार विमर्श करते हैं, बल्कि कभी-कभी उनकी विचारधारा का टकराव भी हो जाता है और वे उनका विरोध भी करते हैं। इस सम्बन्ध में पाया गया कि 55% बच्चे माता-पिता का विरोध करते है। 6% अक्सर करते हैं तथा 33% नहीं करते।

''आई0पी0 देसाई'' (1953) ने पूना हाईस्कूल छात्रों के अध्ययन के आधार पर पाया कि समकालीन परिवार में माता-पिता व बच्चों के बीच सम्बन्ध तनावपूर्ण है। 168 छात्रों ने बताया कि उनकी इच्छा हुई कि वे अपना घर छोड़ दें, उनमें से 117 ने घर छोड़ भी दिया, और 64.1% ने घर छोड़ने का कारण यह बताया कि माता-पिता का व्यवहार उनके प्रति खराब व अपमानजनक है। 18.8% ने परिवारिक तनाव 10.2% ने पारिवारिक कलह को कारण माना 69% ने अन्य कारण को माना।

पुरानी व नई पीढ़ी के बीच संघर्ष के कई कारण है-

1. युवा पीढ़ी में यह विश्वास है कि बड़े लोग उनके साथ अनुचित अन्यायपूर्ण व अपमानजनक व्यवहार करते है।
2. युवा पीढ़ी में यह विश्वास है कि सांस्कृतिक रूप से वे माता-पिता से कहीं आगे हैं।
3. युवा पीढ़ी के इस विश्वास के कारण कि बड़ों की तुनकमिजाजी, बलप्रयोग तथा कठोरता के कारण उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का दबाया जा रहा है।
4. इस विश्वास के कारण की उनकी आकांक्षाएँ बड़े लोग पूरी नहीं होने देते।

माता पिता व बच्चों के बीच इन परिवर्तनों के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता है कि बच्चे माता-पिता के हितैषी नहीं है, बल्कि बच्चे का मानस ही इस प्रकार है कि वे अपने सुख शान्ति भलाई के बारे में सोचकर सम्पूर्ण परिवार की भलाई सोचता है। परन्तु माता-पिता व संतान के सम्बन्धों में जो परिवर्तन हुआ है उसका समाजशास्त्रीय संकेत व अर्थ यह है कि आज बच्चों की समाजीकरण की प्रक्रिया प्रभावित हुई है। दूसरा आज परिवार के बजाए व्यक्ति की योग्यता व दक्षता उसकी जीवन दिशा को निर्धारित करते है।

2. पति-पत्नी के बीच सम्बन्ध-पुरातन परिवार में पति-पत्नी के मध्य सम्बन्ध बड़े कमजोर होते थे। पत्नी को बाहरी समझ कर उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना, परिवार के लिये घातक समझा जाता था। परन्तु संतानों को जन्म देने के साथ-साथ धीरे-धीरे पत्नी परिवार में रूचि लेने लगी। वर्तमान युग में पति-पत्नी के सम्बन्ध में जो परिवर्तन आया है। उन सम्बन्धों को तीन बिन्दुओं के आधार पर विश्लेषित कर सकते हैं।

क. निर्णय लेने में शक्ति आवंटन

ख. पति-पत्नी के बीच निकटता

ग. पत्नी की मुक्ति व उद्धार

3 **सास-श्वसुर और बहू के बीच सम्बन्ध**-सास-श्वसुर व बहू के बीच सम्बन्धों में भी परिवर्तन हुआ है। परम्परागत परिवार में बहू श्वसुर के साथ मुक्त वार्तालाप करने से हिचकिचाती थी। अगर वार्तालाप करती भी थी तो कुछ स्त्रियाँ साड़ी को मुहँ पर ढक लेती थी। या दूसरी ओर देखने लगती थी या नीचे दृष्टि कर लेती थी, जो परदे का ही प्रतीक है। परन्तु आज इन सम्बन्धों में व्यापक परिवर्तन हुआ है। आज बहू अपने श्वसुर से कम परदा करती है। कुछ स्त्रियाँ अपने श्वसुर से मुख्य वार्तालाप भी करती है। जहाँ तक मुख्य वार्तालाप का सम्बन्ध है, शिक्षित परिवार की स्त्रियाँ मुक्त रूप से बात करती हैं, लेकिन ग्रामीण परम्परागत, परिवार में स्त्रियाँ आज भी पुराने तरीके से अपने श्वसुर के सामने मुहँ ढकती हैं। परिवार का स्वरूप भी इन सम्बन्धों को प्रभावित करता है। एकाकी परिवार में सम्बन्ध इतने रूढ़ीवादी नहीं होते जितने संयुक्त परिवार में होते है।

परम्परागत परिवार में सास-बहू का सम्बन्ध बड़ा प्रबल था। बहू के ऊपर सास की सत्ता निरंकुश थी। दो महिलाओं के बीच परस्पर प्रेम स्नेह का अभाव होने के कारण दोनों एक दूसरे को समझ नहीं पाती थी। बहू सास से घृणा करने लगती थी और सास बहू से। विवाह से पहले पुत्र सभी मामलों में माँ से परामर्श लेता था परन्तु विवाह के बाद माँ की अपेक्षा पत्नी को अधिक महत्व देना शुरू कर देता है। तब माँ को यह अनुभव होने लगता है कि पत्नी के कारण उसका बेटा उसकी उपेक्षा कर रहा है। अत: माँ अपनी बहू के प्रति विरोधी दृष्टिकोण रखने लगती है, दूसरी ओर बहू भी अपनी सास को कठोर, जालिक और झगड़ालू समझने लगती है। इस प्रकार दोनों महिलायें एक दूसरे को समझ नहीं पाती, जिससे दोनों में तनाव की स्थिति बनी रहती है। ऐसे तनाव सास, बहू के बीच अविश्वास खींचातानी परम्परागत परिवार में ही नहीं बल्कि आज के परिवार में भी विद्यमान है। परन्तु आज सास-बहू के बीच सम्बन्ध ों में परिवर्तन आया है। अधिकतर माताएँ अपनी बहुओं का चुनाव बहुत सावधानीपूर्वक करती है और अधिकतर समझौता करने वाली तथा समझदार होती है। अधिकतर नवविवाहित कन्या (बहू) भी विवाह को सफल बनाने की इच्छुक होती हैं। परम्परागत परिवार में ये जो परिवर्तन देखने को मिल रहा है। उसके लिये कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है बल्कि अनेक कारक उत्तरदायी हैं। व्यक्तिवाद के आदर्श समानता तथा स्वतंत्रता जैसे कारक के सम्मिलिन से ही परिवार का विघटन हुआ है। मिल्टन सिंग ने परिवर्तन लाने वाले पांच कारकों का वर्णन किया है। इन कारकों में-शिक्षा, नगरीयकरण, औद्योगिकरण, विवाह संस्था में परिवर्तन और वैज्ञानिक उपाय प्रमुख है। पारिवारिक विघटन एक ऐसी स्थिति है जिसमें परिवार क बीच पाये जाने वाले सामांजस्यपूर्ण और मधुर सम्बन्ध टूट जाते है। सदस्यों के मध्य सहयोग कम हो जाता है। और सामाजिक नियंत्रण कमजोर हो जाता है। इसके साथ-साथ परिवार में विघटन की स्थिति तब भी आती है जब सदस्यों के बीच भूमिकाओं में संघर्ष शुरू हो जाता है।

विलियम आगबर्न ने कहा है कि पारिवारिक विघटन की स्थिति परिवार के प्रकार्यो के कम या समाप्त होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है।

सन्दर्भ सूची

1. M.S. Gore - The Traditional Indian Family in Comparative Family Systemd.
2. Yogesh Atal - The Changing Frontiers of Caste
3. G.S. Ghurye - Family and Kingship in India - European Culture.
4. K.M. Kapadia - The Family in India - Sociological Bulletin
5. Irawati Karve - Hindu Society - An Interpretation
6. T.N. Madan- The Hindu Joint Family
7. P.H Prabhu - Hindi Social Organization
8. M.N. Srinivas - Marriage and Family in Mysore
9. Karl Zimerman - Family & Social Change
10. J.S. Yadav- Changing Family Structure in Delhi Village.

आधुनिक युग में संस्कृत काव्य

डॉ० राजीव कुमार

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

संस्कृत साहित्य की अनेक विशिष्टताओं में एक विशिष्टता है कि संस्कृत साहित्यकारों ने अपने समय में नवीन प्रवाहों का स्वागत किया है अत: इस प्रयोग के कारण संस्कृत साहित्य आज भी जीवन्त है। अर्वाचीन समकालीन इत्यादि संज्ञा केवल एक समय विशेष का उल्लेख करती है 'जबकि' आधुनिकता शब्द प्रयोग संवेदन और शैली दोनों की विशेषता को सूचित करता है। इसलिए ही आधुनिक संज्ञा समय से ही सापेक्ष है।

श्री रामजी उपाध्याय जगन्नाथोतर साहित्य को आधुनिक मानते है – संस्कृत साहित्य के पुनर्जागरण काल में उसका व्यापक महत्व है। इसके कारण पौरत्स्य पाश्चात्य विद्वानों का पारस्परिक विचारविनिमय माना जाता है विशेषत: आजादी के बाद जो सृजन कार्य हुआ है उसमें विचारनावीन्य शैली नावीन्य विषयनाविन्य अभिव्यक्ति की भिन्न-भिन्न प्रयुक्तियां इत्यादि दृष्टिगोचर होता है।

लेकिन यहाँ सवाल यह उठता है कि परंपरा में परिवर्तन या परिवर्द्धन को आखिर क्या माना जाय? विद्रोह या संवर्द्धन! प्रत्येक युग की रचना अपने कालखंड के हिसाब से किसी न किसी मायने में अपने विद्रोही तेवर के साथ ही लिखी जाती है और यह ध्यान रहे कि विद्रोह केवल राजनीतिगत ही नहीं बल्कि इसके समाजशास्त्र गत होता है। इस प्रकार हर युग की सर्जनता अपने अर्थों तथा मापदण्डों की नूतनता से सुशोभित रहती है आधुनिक कवि ने अपनी कविताओं के वर्णाविषय को जो सार्वभौमिक जामा पहनाया है उसे मिसाल के तौर पर लिया जाना चाहिए।

सांप्रत काल में जो आधुनिकता संस्कृत साहित्य में दृष्टिगोचर होती है उसका आगमन भारत में पाश्चात्य साहित्य के संपर्क से आया है। डॉ. अजित ठाकोर ने भी इस लक्षणों को स्पष्ट रूप से उजागर किया है। जैसे की अलग ही जीवनदर्शन परंपरा का विद्रोह प्रकृति प्रेम की जगह यांत्रिक प्रेम का आलेखन, यांत्रिक, जीवन, प्रदूषण नैतिक मूल्यों का पतन समाज में स्त्री अनेक विज्ञान कि वस्तु बनकर रह गई है। कृति में आधुनिकता की कलाग विभावना जैसे कि प्रतीक, कल्पन, पुराकल्पन, वास्तववाद इत्यादि का स्वीकार और आलेखन प्रबल प्रयोगवादी मानस छंद-लय इत्यादि का त्याग अस्तित्व के संघर्ष का वर्णन किया है।

आधुनिक: विभावना और अर्थ

अंग्रेजी भाषा में आधुनिक शब्द का पर्याय Modern है अंग्रेजी शब्दकोश में Modern शब्द के तीन अर्थ मिलते है।

(i) New Exiting
(ii) Of present and vecent time
(iii) New Fashioned

Modern शब्द से modernity, modernism तथा modernization इत्यादि शब्द बनते है।

Living Howe कहते है where the contemporary refer to time the modern refers to sensibility and style and where the contemporary is a term of neutral reference the modern is a term of critical placement and jugdment.[1]

आधुनिकता ने संस्कृत काव्य साहित्य के रचना शिल्प में अनेक परिवर्तन किया है नये रूप रंग के साथ प्रतिबिंबित किया है आधुनिक संस्कृत कवि ने जो महसूस किया है और जो जीया है उसे अपने शब्दों में ढ़ालकर अपने साहित्य और आत्मा को वफादार रखकर जो सर्जन करता है उस साहित्य को आधुनिक साहित्य कहते है।

विषय में नाविन्य

आधुनिक संस्कृत साहित्य की काव्य की संरचना बहुत भिन्न प्रतीत होती है इसमें विश्व के विभिन्न नगर भाषा व्यक्ति साहित्य, दंतकथा कला के अनेक संदर्भो को विक्षेप होता दिखाई देता है आधुनिक काव्य में प्रकृति का लुभावना सौन्दर्य बिखेरने वाली कविता है अब रामवतार शर्मा के 'मृदगरदुतम' जैसे काव्यों में नर्म-मर्म, कटाक्ष, हास्य व्यंग और विडम्बना प्राप्त होती है। नागार्जुन के 'लेनिनशतक्रम्' में पूंजीवाद के सामने आक्रोश है। डॉ० रमाकान्त शुक्ल के काव्यों में प्रचंड राष्ट्र प्रेम है। डॉ. राजेन्द्र मिश्र की 'मुद्रिका' भास्कराचार्य का 'मृत्कृटम्' डॉ. राजेन्द्र नाणावटी का 'मरीचिका', डॉ. शास्त्री का 'वक्रपद्यानि' डॉ० हर्षदय माधव का 'तव स्पर्श स्पर्श',

'भावस्थिराणि जननानीर सौहदानी' इत्यादि से अर्वाचीन साहित्य का चाहक आनंदित हो सके इतना विषय वैविध्य है।

आधुनिक कवि विषय पसंदगी के लिए प्राचीन परंपरा का सर्वथा उन्मूलन करता है मानव तो उसके काव्य का विषय था ही अब आधुनिकता के प्रभाव में कवि मानव की अद्यः चेतना में प्रविष्ट होकर उसके मनोप्रदेश को भवक तक अवगत करवाता है।

इस तरह आधुनिक संस्कृत साहित्य काव्य विषय काव्य स्वरूप काव्योपकरण एवं काव्यसरणि के विषय में प्रशिष्ट संस्कृत साहित्य से सर्वथा भिन्न दिखाई देता है।

नूतन प्रयोग और युगबोध

आधुनिकता ने संस्कृत काव्य साहित्य के रचना शिल्प में अनेक परिवर्तन किया है। मुक्तक, गजल, दोहा, चौपाई, सोनेट, मोनोझमेझ, सीजो, तान्का, इत्यादि का भेद आधुनिक साहित्य में प्राप्त है।

आधुनिक संस्कृत कवि के पास अब प्रतीक, कल्पन पुराकल्पन, यथार्थवाद, मोनोइमेज इत्यादि प्रयुक्तियाँ है जिसके माध्यम से वह अपना भावविश्व वाचक समक्ष रेखांकित कर सकता है। आधुनिक कवि का भावविश्व वैश्विक संदर्भ औद्योगिक जड़ता से क्षतिग्रस्त मानस पांडित्य प्रदर्शन की मनोवृत्ति का अभाव और भववाही भाषा और भावों की प्रवाहिता है अनेक अंग्रेजी भाषा शब्द उनकी काव्यसृष्टि में अस्तित्वमान है छंद के बन्धनों को यह काव्य कभी मान्य रखता है कभी नहीं रखता सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अब आधुनिक कवि के पास उनका अपना भाव विश्व है और कोई नियम उसे बांध नही सकता।

आधुनिक साहित्य प्रचंड युगबोध से व्याप्त है कवि स्वयं उस तात्कालीन घटनाओं को भलीभांति उजागर करता है उदाहरण तौर पर देखें तो हर्षदेव माधव का 'मृगया' निष्क्रान्ता सर्वा परमानन्द शास्त्री का 'जनविजय' डॉ. रमाकान्त शुक्ल का 'भाती में भारतम्' यह – सब में युगबोध की प्रचंड आवान श्रुति है।

आधुनिक संस्कृत काव्य सर्जन की सृष्टि में नजर डालते है। डॉ. हर्ष देव माधव का 'मृगया' काव्यसंग्रह की पहली कविता है मृगत्यं मृगत्य मनुष्य की लघुता का प्रतीक है। शिकारी के बाण के भय से भयभीत मृग की भीरूता दीनता वास्तव में वर्तमान मनुष्य की मनोग्रंथियों का पर्याय बन जाती है।

किन्तु भयात् – मृतोऽस्मि।
अधुनाहं न जीवितम् जीवामि
किंतु भयम् जीवामि,
न वने किन्तु फलैब्ये श्वसिमि
न तृणम् अक्षि अपि तु मम दैन्यमश्रि
कोऽपि मम मृगात्याय मृत्युं ददातु।।[2]

'मृगया' शीर्षक रचना में कवि ने हिंसा आतंकवाद पर्यावरण जैसी वैश्विक समस्याओं को मृगया का ही नवसंस्करण बतलाते हुए उसे मानवता के लिए घातक बताया है। दूसरा उदाहरण डॉ० राजेन्द्र नाणावटी के 'मरीचिका' काव्यसंग्रह का देखिए।

विरहवेदना बीजम
त्वया निक्षिप्तम् मयि।।[3]

विपरीत रति में यहाँ काव्यनायक को वेदना बीज स्वयं धारणा करते बताया गया है। अछांदस् काव्य में उच्च प्रकार की अध्यात्म की अनुभुति कितनी सहजता से दर्शाई है।

प्रकाशो भवतं दाहा
सोढव्यो बलात् प्रत्यणुम
स्वपरिद्यौ बन्धनं प्राप्य
चीत्कारं विना पिडा पातव्या
स्वास्तित्य भस्मसाद् भवेत्
तावत् पर्यनीम्।[4]

प्रकाश ही ब्रह्मा है पर आजकल का कवि स्वयं ब्रह्म की संज्ञा नहीं देता पर इस प्रकार के प्रकाश की अनुभूति कवि को होती है। कवि को गगन, सूर्य, पुष्प, चन्द्रमा, समुद्र, तारागण, देवगण, योगी, जीव, माया, आदि सब में प्रकाश का रूप दिखाई देता है पर इसी प्रकाश रूपों के पार भी एक प्रकाश है जिसमें हजारों प्रकाश रूपों का प्रकाश है जिसे शिव कहते हैं- 'सर्व खलु इदं ब्रह्म'। ऐसी कवि की संवेदना है- 'सर्व खलु अयं प्रकाशः'।

वस्तुतः संस्कृत एक भाषा भी है और धरोहर भी इसलिए संस्कृत साहित्य के रचनाकारों का दायित्व और भी बढ़ जाता है उनकी अभिव्यक्ति आधुनिक समस्याओं के साथ-साथ पारम्परिक साहित्य को सुरक्षित रखने का संकल्प लेकर चलती है यद्यपि कुछ साहित्य आंचलिकता को संस्कृत में उतारने का प्रयास कर रहे हैं परन्तु उनकी अनुभूति प्रवीणता का स्थान विवरण बहुलता ले रही है। परंतु फिर भी संस्कृत लेखन की दिशा कथ्य एवं शिल्प दोनों की ही दृष्टि से युगानुरूप चल रही है काव्य पौराणिक कथाएं कविताएं स्वतंत्र साहित्य आदि पर ही सब कुछ यथावत नहीं लिखा जा रहा है अपितु नये परिप्रेक्ष्य में नवीन विषय वस्तु पर भी लेखन हो रहा है।''[5]

आधुनिकता संस्कृत साहित्य में अनेक परिवर्तन किया है आधुनिक संस्कृत कवि के पास अब प्रतीक कल्पन, पुराकल्पन, यथार्थवाद इत्यादि प्रयुक्तियां है। आधुनिक संस्कृत कवि ने यह स्वीकार किया है कि गतिशील जीवन में कुछ परिवर्तनशील है तो साहित्य क्यूँ नहीं।

संदर्भ ग्रंथः

1. HoWe lrving literary modernism facet world library, काव्यार्थ डॉ. अजित ठाकोर, पृ.-60।
2. मृगया डॉ. हर्षदेव माधव (पृ. 7)
3. डॉ. राजेन्द्र नाणावटी 'मरीचिका', (पाना-21)
4. डॉ. हर्षदेव माधवः सुधासिन्धोर्मध्ये (पृ.-17)।
5. डॉ. मञ्जुलता शर्मा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य (यश एवं दिशा)। पृ. 79

धर्मशास्त्र और अभिज्ञान शाकुन्तलम्

कुमारी नीतू

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर) बिहार

महाकवि कालिदास को विद्वत्समुदाय साक्षात् भगवती सरस्वती का अवतार मानता है। परिणामस्वरूप ज्ञान क्षेत्र का ऐसा कोई विषय नहीं है, जो कालिदासीय साहित्य में उपलब्ध न हो। आद्य महाकवि कालिदास को परम्परागत विद्वान् ईसा की प्रथम शताब्दी का प्रमाणित करते हैं और उन्हें राजा विक्रमादित्य का सभासद एवं नवरत्नों में एक स्वीकार करते हैं। यद्यपि 'कालिदासत्रयी किमु' उक्ति के अनुसार तीन कालिदासों की चर्चा की जाती है, परंतु लोकविश्रुत कालिदास ही प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने दो महाकाव्य- कुमारसम्भव तथा रघुवंश, तीन नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्', 'विक्रमोर्वशीयाम्' तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' एवं दो खण्डकाव्यों 'ऋतुसंहार' एवं 'मेघदूत' की रचना कर संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में अमरता प्राप्त की।

विषय-विवेचन से पूर्व हमें विषयगत धर्मशास्त्रीय आधार शब्द पर चिंतन करना होगा। 'धर्मशास्त्र के विविध विषय' शीर्षक से चर्चा करते हुए भारतरत्न महामहोपाध्याय डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे ने धर्मशास्त्र के इतिहास (प्रथम खण्ड) के प्रथमाध्याय में लिखा है-

अतिप्राचीनकाल से ही धर्मशास्त्र के अंतर्गत बहुत से विषयों की चर्चा होती रही है। गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब एवं वशिष्ठों के धर्मसूत्रों में मुख्यत: निम्नलिखित विषयों का अधिकतया विवेचन होता रहा है - कतिपय वर्ण (वर्ग), आश्रम उनके विशेषाधिकार, कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व, गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक के संस्कार ब्रह्मचारी के कर्तव्य, (प्रथम आश्रय) अनध्याय, स्नातक के कर्तव्य, विवाह एवं तत्सम्बंधी अन्य बातें, गृहस्थ-कर्तव्य, शौच, पञ्च महायज्ञ, दान, भक्ष्याभक्ष्य, शुद्धि, श्राद्ध, स्त्रीधर्म, स्त्रीपुंधर्म, क्षत्रियों एवं राजाओं के धर्म, व्यवहार (कानून विधि, अपराध, दण्ड, साझा बंटवारा, दाय विभाग, दत्तक, द्यूत आदि, चार-प्रमुख वर्ण, वर्ण संकर तथा उनके व्यवसाय आपदधर्म, प्रायश्चित, कर्मविपाक, शांति, वानप्रस्थ कर्तव्य, सन्यास। धर्मशास्त्र संबंधी कुछ ग्रंथों के व्रतों, उत्सर्गों एवं प्रतिष्ठा (जनकल्याण के लिए मंदिरों, धर्मशालाओं पुष्करणी आदि के निर्माण), तीर्थों एवं काल आदि का सविस्तार वर्णन हुआ है।[1]

उपर्युक्त विषयों पर दृष्टिगत करने से विदित हो जाता है कि प्राचीनकाल में धर्मसंबंधी धारणा बहुत ही व्यापक थी और वह मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करती थी। धर्मशास्त्रकारों के मतानुसार धर्म किसी मत या सम्प्रदाय का द्योतक नहीं है, प्रत्युत वह जीवन का एक ढंग या आचरण संहिता है, जो समाज के किसी अंग एवं व्यक्ति के रूप में मनुष्य के कर्मों एवं कृत्यों को व्यवस्थित करता है तथा उसमें क्रमश: विकास लाता हुआ उसे मानवीय अस्तित्व के लक्ष्य तक पहुंचने के योग्य बनाता है। इसी दृष्टिकोण के आधार पर धर्म को दो भागों में बांटा गया - श्रौत एवं स्मार्त। श्रौत धर्मों में उन कृत्यों एवं संस्कारों का समावेश था, जिनका प्रमुख संबंध वैदिक संहिताओं एवं ब्राह्मण ग्रंथों से था, जैसे तीन अग्नियों - आहवनीय, दक्षिणाग्नि गार्हपत्याग्नि, दर्श-पौणमासेष्टि, सोमयाग अदि स्मार्त धर्म में उन विषयों का समावेश था, जो विशेषत: स्मृतियों में वर्णित है तथा वर्णाश्रम धर्म से सम्बद्ध है, जैसे मत्स्य एवं वाय पुराण का उल्लेख-'दाराग्नि होत्र सम्बंधमिज्याश्रौतस्य लक्षणम्। स्मार्तो वर्णाश्रमाचारों यमैश्च नियमैर्युत:।'[2]

'पराशर माधव' में उल्लेख है -

'अग्न्याधानादिपूर्वकोऽधीतप्रत्यक्षवेदमूलो दर्शपूर्णमासादि: श्रौत: अनुमितपरोक्षखाखामूल: शौचाचमनादि: स्मार्त। याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार श्री विज्ञानेश्वर के प्रथम पद्य में समागत धर्म शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है - 'अश्र धर्मशब्द षड्विधस्मार्तधर्मविषय:। तद्यथा-वर्णधर्म:, आश्रमधर्मो वर्णाश्रमधर्मो गुणधर्मो निमित्तधर्म: साधारणधर्मश्चेति।'

धर्म के ज्ञापक हेतुओं की चर्चा करते हुए सर्वप्रथम गौतम धर्म सूत्र वेद को धर्म का मूल स्वीकारता है। 'वेदों धर्ममूलम्' सूत्र का यही आशय है। सभी बुद्धिजीवी प्राणी वेद के ज्ञाता नहीं होते, अत: दूसरा सूत्र प्रस्तुत करना पड़ा - 'तद्विदां च स्मूतिशीले' अर्थात् वेदवेत्ता मन्वादि स्मृतिशास्त्रकारों की स्मृतियां तथा उनका शील (स्वभाव) भी धर्म में प्रमाण है। इसी विषय को महर्षि मनु ने यथावत् प्रस्तुत करते हुए कहा है -

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुश्टिरेव च।।

(मनुस्मृति 2/6)

इस पद्य का प्रचलित अर्थ है - सभी चारों वेद, उनके ज्ञाता मनु आदि की स्मृतियां और ब्राह्मणत्व आदि तेरह प्रकार के शील या राग-द्वेष शून्यता, महात्माओं का आचरण और अपने मन की प्रसन्नता, अर्थात् जिस पक्ष वाले विधान को स्वीकार करने में अपना मन प्रसन्न हो, ये सब धर्म के मूल हैं। इस प्रकार (1) वेद (2) स्मृतियां अर्थात् धर्मशास्त्रीय ग्रंथ (3) सदाचार तथा (4) आत्म संतुष्टि एवं प्रसन्नता का अनुभव हो) ये चारों धर्म के मूल स्रोत उत्पत्ति स्थल हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने इसमें वृद्धि करते हुए कहा है -

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्। (याज्ञः आचाराध्ययन)

इन्होंने मनूक्त चारों तत्वों के अतिरिक्त पांचवां और जोड़ा- 'सम्यक् संकल्पजः कामः' अर्थात् सम्यक् संकल्पाज्जातः कामः शास्त्राविरूद्धो यथा 'मया भोजनातिरेकेरण उदकं न पातव्यम्' इति।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के प्रथम अंक में जब नायक राजा दुष्यंत कुलपति कण्व के आश्रम में पहुंचकर शकुन्तला को देखता है तब उसके मन में कामभावना उत्पन्न होती है और वह कहता है -

'अपि नाम कुलपतेरियमसवर्णक्षेत्रसंभवा स्यात्' अथवा कृतं सन्देहेन -
असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषी में मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणाप्रवृत्तयः।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/19)
तथापि तत्त्वत एनामुपलप्स्ये।

राजा दुष्यंत जन्मना क्षत्रिय हैं। महर्षि कण्व ब्राह्मण हैं। उत्तम वर्ण (ब्राह्मण) की कन्या के निम्न वर्ण (क्षत्रिय) का पुरूष यदि विवाह करे तो वह प्रतिलोम विवाह होगा, जो शास्त्र (धर्मशास्त्र) सम्मत नहीं है, हेय है। उसे 'सर्वधर्मबहिष्कृत' कहा है -

ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतो वैश्याद् विदेहकस्तथा।
शूद्राज्जातस्तु चण्डालः सर्वधर्मबिहिष्कृत।।
(याज्ञवल्क्य आचा.93)

एवं

असत् सत्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः।। 95

सनातन वैदिक धर्म का पूर्णतः पालक राजा दुष्यंत शकुन्तला के प्रति अपने आकर्षण को धर्मशास्त्र सम्मत प्रमाणित किये बिना पूर्ण संतुष्टि प्राप्त नहीं कर पा रहा है। इसीलिए वह शकुन्तला संबंधी अन्वेषण जारी रखता है, यद्यपि उसका मन आश्वस्त है तथापि वह शकुन्तला की सखियों की वास्तविकता का पता लगाने तक निश्चय नहीं कर पाता अर्थात् सम्यक् संकल्पजः कामः की स्थिति के निर्णय तक किसी से भी चर्चा नहीं करता और आत्मसंगत कह उठता है -

भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।।
आशगंसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्।।
(अभि. शाकु. 1/27)

जहां तक परिभाषा का प्रश्न है, ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनकी परिभाषाएं विभिन्न पुराणों में प्राप्त है, जैसे 'कुलपति' शब्द है। महर्षि कण्व को कालिदास ने 'कुलपति' विशेषण के साथ ससम्मान किया है। जैसे-वैखानसः-एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। न चेदन्यकार्यातिपातः, प्रविश्य प्रतिगृह्यतामातिथेयः सत्कारः। अपि च -

रम्यास्तपोधनानां प्रतिहतविघ्नाः क्रियाः समवलोक्य।
ज्ञारस्यसि कियद् भुजो मे रक्षति मौर्वीकिणांक इति।।
(अभिज्ञानशाकुन्लतम् 1/13)

इस प्रसंग में तीन शब्द धर्मशास्त्र सम्मत है - (1) कुलपति (2) अतिथि सत्कार तथा (3) क्रिया। इनका विवेच्य है -

(1) कुलपति - आचार्यो बहुशिष्याणां मुनीनामग्रणीस्तु यः।

व्रतयज्ञादिकर्माढ्य स वै कुलपतिः स्मृतः।

'कुलपति' का यह लक्षण पद्मपुराण में उपलब्ध है, यों भी कुलपति उसे कहा जाता है, जो आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत दस हजार मुनियों को अपने आश्रम में रखकर उनके भोजनादि की व्यवस्था करता है तथा विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन कराता है।

मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नपानादिपोषणात्।
अध्यापयति विप्रर्षिरसौ, (स वै) कुलपतिः स्मृतः।।

(2) दूसरा पद है - अतिथि सत्कार। अतिथिदेवो भव भारतीय संस्कृति का मूल बीज है। अतिथि को देववत् पूजनीय माना गया है। मनु-याज्ञवल्क्यादि प्रमुख स्मृतिकार अतिथि सत्कार को अत्यंत महत्व देते हैं। याज्ञवल्क्य अतिथि का लक्षण बताते हैं-

अध्वनीनोऽतिथिज्ञेयः श्रोत्रियो वेदपारगः। (आचाराध्याय 111)
अध्वनीनः (अध्वनि वर्तमानः) अतिथिर्वेदितव्यः।
अतिथित्वेन वर्णानां देयं शक्त्यानुपूर्वशः।
अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणोदकैः।। 107

महर्षि मनु ने भी लिखा है-

तणानि भूमिरूदकं वाक्चतुर्थी च सूनता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचना।। 4/107

अतिथि को भोजन भी पहले करवाया जाता था -

याज्ञवल्क्य लिखते हैं -

बालस्ववासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः।
संभोज्यातिथिभृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम्।। 105

मनु भी कहते हैं - 'अतिथिभ्योऽग्र एवैतान्भोजयेदविचारयन्' (3/97)

जब राजा आश्रम में जाता है तो प्रियंवदा व अनुसूया शकुन्तला को कहती है- 'अनुसूया इदानीमतिथिविशेषलाभेन हला शकुन्तले। गच्छोटजम्। फलमिश्रमर्धमुपहर। इदं पादोदकं भविष्यति।'

राजा - भवतीनां सूनृतयैव गिरा कृतमातिथ्यम्।

प्रियवंदा - तेन ह्यस्यां प्रच्छायशीतलायां सप्तपर्णवेदिकायां मुहूर्तमुपविश्य परिश्रमविनोदं करोत्वार्यः। (प्रथम अंक) (अभिज्ञान शाकुन्तलम् का प्रथमं अंक)

इससे पूर्व भी वैखानस ने राजा से आतिथेय सत्कार ग्रहण करने का आग्रह किया है और कहा है-

'इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थ गतः।'

(3) क्रिया - यज्ञानुष्ठानादि क्रियायें। ये क्रियायें नौ प्रकार की कही गई हैं-

आरम्भो निष्कृतिः शिक्षा पूजनं सम्प्रधारणाम्।
उपायः कर्मचेष्टा व चिकित्सा नव क्रियाः। इत्यादि (भाव प्रकाश)

अतिथि पूजन न करने पर ही शकुन्तला को महर्षि दुर्वासा के शाप का शिकार बनना पड़ा था। उन्होंने स्वयं शाप देते समय जो संबोधन किया है- 'आः अतिथिपरिभाविनि' वह इसी का सूचक है।

'राजधर्म' भी धर्मशास्त्रीय विषय है। राजा दुष्यंत राजधर्म के विशिष्ट ज्ञाता के रूप में चित्रित किये गये हैं। राजा के रथ को पहचान कर वैखानस आदि ऋषिकुमार उसे आश्रममृग की हत्या से विरत होने की पुकार करते हैं। भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः और वह भी इस वचन को सुनकर राजा होते हुए भी नियमों का पालन करता है -

तत साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहार सायकम्।
आर्त्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/11)

चक्रवर्ती सम्राट होते हुए भी दुष्यंत राजा योग्य व्यवहार से सुपरिचित है। आश्रम प्रवेश के समय वह राजकीय वेश से आश्रम में प्रविष्ट नहीं होता। वह सूत को कहता है - सूत! विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनांनिनाम्। इदं तावत् गृह्यताम्। इति सूतस्य आभरणानि धनुश्च चोपनीयार्पयति।'

वह शकुन्तला की सखियों को अपना परिचय देते समय भी विनम्रता का परिचय देता है। स्वयं राजा घोषित न कर राजपुरुष बतलाता है -

भवति यः पौरवेण राजा धर्माधिकारे नियुक्तः सोऽहमविध्नक्रियोपलम्भाय धर्मारण्यमिदमायातः।

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' का पञ्चम अंक तो राजधर्म के विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। शिष्टाचार की व्याख्या धर्मशास्त्र का विषय है। धार्मिक कार्यों व अनुष्ठानों के प्रति वह सदा सजग है तथा उनका पालन भी प्राथमिकता से सम्पन्न करता है। इस बात को उसका कञ्चुकी भी जानता है। साथ ही वह लोकतंत्र का परिपालक है, क्योंकि षष्ठांश वृत्ति का उपभोक्ता है। कञ्चुकी कहता है –

'कामं धर्मकार्यमनिपात्यं देवस्य। तथापीदानीमेव धर्मासनाद्व्युत्थिताय पुनरूपरोधकारि कण्वशिष्यागमनमस्मै नोत्सहे निवेदितुम्। अथवाऽविश्रमोऽयं लोकतंत्राधिकारः। कुतः –'

भानुः सकृद्युक्ततुरड. एव रात्रिन्दिवं गंधवहः प्रयाति।
शेष सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।।
5/4 (अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/4)

कञ्चुकी से कण्वशिष्यों के शुभागमन को सुनकर वह शिष्टाचार वश जो आज्ञा देता है, वह राजधर्म के सर्वथा अनुकूल है–

राजा – तेन हि मद्वचनाद् विज्ञाप्यतामुपाध्यायः सोमरातः। अमूनाश्रमवासिनः श्रौतेन विधिना सत्कृत्य स्वयमेव प्रवेशयितुमर्हतीति। अहमप्यत्र तपस्विदर्शनोचिते प्रदेशे स्थितः प्रतिपालयामि।

वह अग्निशरण शला (यज्ञशाला) में उनसे भेंट करता है।

राज्याभिषेकादिगुणयुक्तस्य गृहस्थस्य धर्मान् आह–महर्षिः याज्ञवल्क्यः –

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो, वृद्धसेवकः।
विनीतः सत्वसंपन्नः कुलीकः सत्यावाक शुचिः।।
अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरूषस्तथा।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित्।
स्वरन्ध्रगोप्ताऽऽन्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च।
विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः।। (309–311)

एक राजा में जो गुण अपेक्षित हैं, वे सभी गुण राजा दुष्यंत में विद्यमान हैं।

'राजधर्म' की चर्चा करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं –

ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिह्मः क्रोधनोऽरिषु।
स्याद् राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता।। 334
पुण्यात् षड्भागमादत्ते न्यायेन परियालयन्।
सर्वदानाधिकं यस्मात् प्रजानां परिपालनम्।। 135
प्रजापीडनसंतापत् समुद्भूतों हुताशनः।
राज्ञः कुलं श्रियं प्राणांश्चादग्ध्वा न निवर्तते।। 342

राजा दुष्यंत महर्षि कण्व के सन्देशहारी शिष्यों के आगमन को सुनकर चिंतित हो उठता है तथा अपने प्रजापालन धर्म में वाली आशांकाओं से कह उठता है –

वेत्रवति! किमुद्दिश्य भगवता काश्यपेन मत्सकाशमृषयः प्रेषिताः स्युः?
किं तावद् व्रतिनामुपोढतपसां विघ्नैस्तपो दूषितं
धर्मारण्यचरेषु केनचिदुत प्राणिष्वसच्चेष्टितम्।
आहोस्वित् प्रसवो ममापचरितैर्विष्टम्भितो वीरूधा –
मित्यारूढबहुप्रतर्कमपरिच्छेदाकुलं मे मनः।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/9)

राजा दुष्यंत तपस्वियों के आगमन पर शिष्टाचारवश सिंहासन पर नहीं है। पुरोहित सोमरात कहता है – 'भो भो ! तपस्विनः, असावश्रभवान् वर्णाश्रमाणां रक्षिता प्रागेव मुक्तासनो प्रतिपालयति। पश्चतैनम्।'

राजा स्वाभाविक मानव स्वभाव के अनुकूल उन तपस्विजनों के साथ आई हुई शकुन्तला को देखकर कह तो उठता है –

कास्विदवगुण्ठनवती नातिपरिस्फुटशरीरलावण्या।

मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्।।

(अभिज्ञान शाकुन्लतम् 5/13)

परंतु फिर यह भी कहता है – 'अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम्।'

यद्यपि राजा दुष्यंत तथा शकुन्तला का संबंध 'गान्धर्व विविध' से सम्पन्न हुआ था, जो धर्म शास्त्रानुकूल था, तथापि गौतमी का यह कथन विचारणीय है –

नापेक्षितो गुरुजनोऽनया न खलु पृष्टश्क्ष बन्धुजनः।
एकैकमेव च चरिते भणामि किमेकमेक्सय।।

(अभिज्ञान शाकुल्नतम् 5/16)

शकुन्तला चाहते हुए भी जब राजा दुष्यंत को विनयपूर्ण व्यवहार के लिए कहती है –

शकु – 'पौरव, रक्षाविनयम्। मदनसंतप्तापि न खल्वात्मनः प्रभावामि।'

राजा – भीरू अलं गुरूजनभयेन। व दृष्टा ते विदितधर्मा तत्रभवानत्र तत्र दोषं ग्रहीष्यति कुलपतिः। अपि च –

'गान्धर्वेण विवाहेन बह्वयो राजर्षिकन्यकाः।
श्रूयन्ते परिणीतास्ता पितभिश्चाभिनन्दिताः।।'

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 3/20)

शापवश विस्मृत राजा को शिष्य शाड.रव जब धर्मशास्त्रीय व्यवस्था सुनाता है, तो वह किंकर्तव्यविमूढावस्था में उपन्यस्त प्रकरण को ही नहीं समझ पाता –

शाङर्गरवः – कथमिदं नाम! भवन्त एव सुतरां लोकवृत्तान्तनिष्णाताः।'

सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां,
जनोऽन्यथा भर्तुमतीं विशंड़क्ते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते
प्रियाप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/17)

राजा की किंकर्तव्यविमूढता कवि कालिदास ने सशक्त शब्दों में प्रस्तुत की है।

इदमुपनतमेवं रूपमक्लिष्ट कान्ति
प्रथमपरिगृहीतं स्यान्न वेति व्यवस्यन्।
भ्रमर इव विभाते कुन्दमन्तस्तुषारं
न च खलु परिभोक्तुं नैव शक्नोमि हातुम्।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/19)

इसे प्रतिहारी राजा की धर्मपेक्षिता बतलाती है। राजा द्वारा स्वयं क्षेत्री स्वीकार न करने पर शाङर्गरव का कठोर कथन वस्तुतः उसका साहसातिरेक ही है –

कृताभिमर्शामनुमन्यमानः
सुतां त्वया नाम मुनिर्विमान्यः+।
मुष्टं प्रतिग्राहयता स्वमर्थ
पात्रीकृतो दस्युरिवासि येन।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/20)

तीर्थ भी धर्मशास्त्रों की परिधि में परिगणित हैं। महाकवि कालिदास के सोमतीर्थ, फिर शचीतीर्थ तथा अंत में अप्सरस् तीर्थ का उल्लेख कर तीर्थों के प्रति अपनी धार्मिकता का प्रदर्शन किया है।

'स्त्रीपुंधर्म' विषयान्तर्गत धर्मशास्त्र चर्चा करता है कि मानव मात्र का यह प्रमुख कर्तव्य है, वह उनकी रक्षा करे। श्रीमद् भागवत में कहा गया है –

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारानभेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारेरपि धनैरपि।।

इसके परिप्रेक्ष्य में महाकवि कालिदास ने विशेष उद्देश्य से 'दार' शब्द का प्रयोग किया है। शब्द कोषकार कहते हैं - 'दारयन्ति भ्रातन् बन्धूनिति दारा:' अत: शारद्वत का यह कथन चिन्तनीय है -

तदेषा भवत: कान्ता त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/26)

राजा भी कहता है -

मूढ: स्यामहमेषा वा वदेन्मिथ्येति संशये।
दारत्यागी भवाम्याहो परस्त्रीस्पर्शपांसुल:।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/29)

पुरोहित सोमरात द्वारा प्रस्तुत धर्मशास्त्रीय व्यवस्था - 'त्वं साधुभिरादिष्टपूर्व: प्रथममेव चक्रवर्तिनं पुत्रं जनयिष्यसीति। स चेन्मुनिदौहित्रस्ल्लक्षणोपपन्नो भविष्यति, अभिनन्द्य शुद्धान्तमेनां प्रवेशयिष्यसि। विपर्यये तु पितुरस्या: समीपनयनमवस्थितनमेव।' भी राजा को स्वीकार करनी पड़ती है।

शकुन्तला के एक ज्योति द्वारा उठाकर ले जाने की घटना के सुनने पर राजा दुष्यंत का यह कथन धर्मशास्त्रीय दृष्टि से चिंतनीय है-सतां हि सन्देहपरेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त: करणप्रवृत्तय:-

'कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रंह मुनेस्तनयाम्।
बलवत्तु दूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम्।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 5/31)

पुनाति पित्रादीनिति-पुत्र:। अथ्वा - पितृन् पाति इति पुत्र:। अस्य निरूक्तिर्यथा-

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुत:।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त: स्वयमेव स्वयम्भुवा।।
(महाभारत 1)

अथवा

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुत:।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त: तिपृन् पाति सर्वत:।।
(इति मानवे नवमाध्यये)

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के षष्ठ अंक में सार्थवाह के वृत्तान्त से उद्विग्न राजा अपने अविवेक एवं अनपत्यता का चिन्तन करते हुए कहता है -

'संरोपितेऽप्यात्मनि धर्मपत्नी
त्यक्ता मया नाम कुलप्रतिष्ठा।
कल्पिष्यमाणा महते फलाय
वसुन्धरा काल इवोप्तबीजा।।'
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 6/24)

अधिक चिन्तित होने पर वह कह उठता है -

अस्मात्परं वत यथाश्रुति संभृतानि
को न: कुले निवपनानि नियच्छतीति।
नूनं प्रसूतिविकलेन मया प्रसिक्तं
धौताश्रुशेषमुदकं पितर: पिबन्ति।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 6/25)

यहां प्रयुक्त निवपन शब्द धर्मशास्त्रीय है। अमरकोष में कहा गया है - पितदानं निवाप:स्यात्। जल से सर्वप्रथम अपने आसूं धोते होंगे तथा बचे हुए जल को बाद में पीते होंगे। वह तर्पण का जल भी अपर्याप्त होगा।

जो परमादरणीय हैं, उनका सम्मान कर तदुपरान्त आगे बढ़ना चाहिये। अन्यथा कामधेनु की पुत्री का परिक्रमण किये जाने पर राजा दिलीप को नन्दिनी की सेवा कर वर प्राप्त करना पड़ा था। यहां भी 'मातलि' से जानकर कि स्वायंभुव मरीचि प्रजापति यहां सपत्नीक तप करते हैं। - राजा दुष्यंत कह उठता है - ''तेन ह्यनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि। प्रदक्षिणीकृत्य भगवन्तं गन्तुमिच्छामि'' और वह मरीचि के आश्रम में पहुंच जाता है। महाकवि कालिदास ज्योतिष शास्त्र, शकुनशास्त्र आदि के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। ये विषय भी धर्मशास्त्र के ही अंग माने गये हैं। प्रथम अंक में कण्वाश्रम प्रवेश के समय राजा की दक्षिण बाहु में स्पन्दन होता है -

शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरित च बाहु: कुत: फलमिहास्य।
अथवा भवितव्यतानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/16)

'वामेतरभुजस्पन्दो वरस्त्रीली सूचक:' शकुन्तला की प्राप्ति की पूर्व सूचना देता है।

पंचम अंक में भी जब शकुन्तला राजा के सम्मुख उपस्थित होता है, तब वह गौतमी से कहती है -

'अहो किं मे वामेतरं नयनं विस्फुरति?'

गौतमी-जाते, प्रतिहतमंगलम्। सुखानि ते भर्तुकुलदेवता वितरन्तु।

सप्तम अंक में भी मरीच के आश्रम में प्रवेश करते समय राजा दुष्यंत को शकुन होते हैं। उसकी वही दाहिनी भुजा फड़कती है, जैसा कि प्रथम अंक में हुआ था-

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा।
पूर्वाविधीरितश्रेयो दु:खं हि परिवर्तते।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 7/13)

शकुनशास्त्र में कहा गया है - 'वामभागस्तु नारीणां पुंसा श्रेष्ठस्तु दक्षिण:'।

सप्तम अंक में राजा दुष्यंत सर्वदमन बालक को देखकर कहता है - किं नु खलु बालेऽस्मित्रौरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मन:? नूनमनपत्यता मां वत्सलयति। इस वाक्य में औरस पद का प्रयोग नितान्त धर्मशास्त्रीय है। बारह प्रकार के पुत्रों में औरस प्रथम पुत्र है, जिसका मनूक्त लक्षण है -

स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धि यम्।
तमौरसं विजानीयात् पुत्रं प्रथमकल्पितम्।। (मनुस्मति, 9/166)

सामुद्रिक शास्त्र ज्योतिष शास्त्र का ही एक प्रामाणिक भाग है, जो धर्मशास्त्र के पूर्वोक्त 22 खण्डों में से एक है। चक्रवर्ती पद का प्रयोग महाकवि कालिदास ने अनेक बार किया है। सर्वप्रथम वैखानस ऋषि कुमार राजा को चक्रवर्ती पुत्र होने का आशीर्वाद देते हैं -

जन्म यस्य पुरोवंशे युक्तरूपमिदं तव।
पुत्रमेव गुणोपेतं चक्रवर्तिनमाप्नुहि।।

(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/12)

चक्रवर्ती का लक्षण है -

चक्रं पद्माकारशुभचिन्हं करे वर्तते यस्य समुद्रपरिवृताया: भूमे: ईश्वर:। (शब्दकल्पद्रुम पृ. 414)

यस्य पदातले पद्मं चक्रं वाप्यथ तोरणम्।
अंगशु कुलिशं वापि स राजा भवति ध्रुवम्।।
आज्ञाजानुलम्बिनौ बाहू वृत्तौ पीनौ नृपेश्वरे।।

यह भी सामूहिक शास्त्र का ही उद्धरण है। पञ्चम अंक में भी पुरोहित सोमरात शकुन्तला के पुत्रोत्पत्ति तक उसे अपने यहां संरक्षण का प्रस्ताव रखता है जिसे राजा स्वीकार कर लेता है।

लोक में धर्माचरण में तीन वस्तुओं की ही परम आवश्यकता प्रतिपादित की गई है। वे तीन हैं - श्रद्धा, वित्त तथा विधि। वस्तुत: यही शकुन्तला की रचना का कवि-अभीष्ट संदेश है, जिसमें शकुन्तला को श्रद्धा, सर्वदमन भरत को वित्त तथा राजा दुष्यंत को विधि रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के अवसान में महर्षि मारीच यही सूचित करते हैं -

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिद भवान्।
श्रद्ध वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत् समागतम्।।
(अभिज्ञान शाकुन्तलम् 7/29)

उपनिषद् में 'धर्म' के तीन स्कन्ध प्रतिपादित हैं - यज्ञ, अध्ययन एवं दान। इसके अतिरिक्त 'तपः' की महिमा से भारतीय साहित्य भरा पड़ा है। महाकवि कालिदास ने इन स्कन्धों का विवेचन स्थान-स्थान पर बड़ी ही मनोरम भाषा में प्रस्तुत किया है। यज्ञ के महत्व से वे सुपरिचित हैं। न केवल यज्ञ, सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति के वे कुशल चितेरे हैं और भारतीय संस्कृति ही दूसरे शब्दों में धर्मशास्त्र हैं। उनकी समस्त रचनाओं के आलोडन-विलोडन से यह तथ्य स्पष्टतः प्रतिभासित हो जाता है। वे अपनी अमर लेखिनी से कहीं भी संस्कृति का अपलाप नहीं करते। प्रत्येक लौकिक एवं अलौकिक विषयों के प्रतिपादन में वे अपने बुद्धि कौशल का प्रदर्शन करते हैं इसीलिए भारतीय मनीषी उन्हें- 'त्वं तु साक्षात् सरस्वती' कह कर अपने ह्रदयोद्गारों को अभिव्यक्त करते हैं।

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः।।

संदर्भ

1. धर्मशास्त्र का इतिहास - काणे प्रथम भाग, पृ. 101
2. मत्स्य पुराण - 144/30-39 वायुपुराण - 59/31-32 एवं 39

कामकाजी महिलाओ की पारिवारिक भूमिका और कार्य जीवन संतुलन

डॉ० रीना कुमारी

आधुनिक समाज में महिलाओं की भागीदारी केवल धरेलू दायित्वों तक सिमित नहीं रही है, बल्कि वे विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय योगदान दे रही है। कामकाजी महिलाओं को एक और कार्यस्थल की जिम्मेदारीयाँ का निर्वहन करना पड़ता है तो दुसरी ओर परिवार की देखभाल, बच्चों का पालन-पोषण और सामाजिक दायित्वों को भी निभाना होता है। इस दोहरी भूमिका के कारण उन्हें कार्य-जीवन संतुलन बनाये रखने में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

ऐसे परिवारों का उद्भव और विकास जहाँ पति-पत्नी दोनों कार्यरत है और आय बढ़ातें है, एक वैश्विक, सामाजिक घटना है, आज के आधुनिक कार्य वातावरण में महिलाओं के लिए कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखना आवश्यक है, क्योकि उनसे एक साथ कई कार्य करने और अधिकतम संतुलन बनाए रखने की उम्मीद की जाती है।

कामकाजी महिलाओं के सामने पारिवारिक और व्यावसायिक दायित्वों में किस प्रकार संतुलन स्थापित करना है यह उनके सामने आने वाली सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। आर्थिक परिस्थितियों और ससामाजिक माँगों के कारण दुनिया भर में कामकाजी महिलाओं की भूमिका बदल गई है। इसके परिणामस्वरूप एक ऐसा परिदृश्य सामने आया है जिसमें कामकाजी महिलाओं पर अपने पुरूष समकक्षों की तरह की मजबूत करियर बनाने और साथ ही निजी जीवन में सक्रिय रूप से संलग्न रहने का भारी दवाब है। लगातार बढ़ता काम का दबाब कामकाजी महिलाओं पर भारी पड़ रहा है और उनके पास अपने लिए कम समय बचता है। उन्नत मोबाईल फोन, नोटपैड आदि जैसी तकनीकी सुविधाओं के साथ-साथ व्यक्तिगत मोर्चे पर बढ़ती जिम्मेदारियों जो कामकाजी जीवन को निजी जीवन के साथ एकीकृत रखती है, इस ज्ञान युग में व्यक्तिगत और व्यावसायिक मोर्चो पर तनाव भी पैदा करती है। यह व्यक्ति के शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक कल्याण को प्रभावित करता है। इसलिए कामकाजी महिलाओं के लिए जीवन की अच्छी गुणवता बनाए रखने के लिए कार्य-जीवन संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। इस अध्ययन में ज्यादा विवाहित कामकाजी महिलाओं के कार्य-जीवन संतुलन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की जाँच की गई है।

कामकाजी महिलाओं को अतिरिक्त जिम्मेदारियाँ होती है। साथ ही साथ महिलाओं को घर एवं बाहर दोनो जगह सही ताल-मेल बनाये रखना पड़ता है।

आज का समय तेजी से बदल रहा है। समाज में महिलाओं की भूमिका अब केवल घर तक सीमित नही रह गई है, बल्कि वे शिक्षा, स्वास्थ्य, विज्ञान, राजनीति, व्यवसाय और लगभग हर क्षेत्र में अपनी पहचान बना रही है, कामकाजी महिलाएँ न केवल अपने परिवार को आर्थिक रूप से सहयोग दे रही है, बल्कि देश की प्रगति में भी महत्वपूर्ण योगदान कर रही है। किंतु परिवार और करियर के बीच संतुलन बनाना उनके सामने एक बड़ी चुनौती है।

कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक भूमिका भारतीय समाज में परिवार का विशेष महत्व है। कामकाजी महिला चाहें कितनी भी व्यस्त क्यों न हो घर और परिवार की जिम्मेदारियाँ उसके जीवन का अभिन्न हिस्सा बनी रहती है। बच्चों की देखभाल और परवरिश, बुजुर्गो की सेवा., पति का भावनात्मक सहारा बनना तथा घरेलू कार्यो को संभालना ये सभी जिम्मेदारियाँ प्रायः उसी पर रहती हैं। साथ ही रिश्तेदारों और सामाजिक दायित्वों को निभाना भी उसका कर्तव्य माना जाता है।

कार्य जीवन में भूमिका

पारिवारिक दायित्वों के साथ-साथ महिला अपने करियर को भी महत्व देती है, अपनी योग्यता और मेहनत के बल पर वह कार्य स्थल पर उत्कृष्ट योगदान देती है। कामकाजी महिलाओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती है, कार्यालय का तनाव, समय की कमी, सामाजिक अपेक्षाएँ और घरेलू दायित्वों के बीच संतुलन बनाये रखना।

इस संतुलन को बनाए रखने के लिए समय प्रबंधन, परिवार का सहयोग, कार्यो की प्राथमिकता और आत्म-देखभाल अत्यंत आवश्यक है। पति पत्नी यदि जिम्मेदारियाँ साझा करे तो महिला का बोझ हल्का हो सकता है। साथ ही आधुनिक तकनीक और सेवाएँ भी धरेलू कार्यो को आसान बनाने में सहायक है।

विकास में योगदान

विकास में योगदान करते हुए कामकाजी महिला न केवल परविार को आर्थिक रूप से मजबूत बनाती है बल्कि अपनी योग्यता और मेहनत से समाज और राष्ट्र के विकास में भी सक्रिय भागीदारी निभाती है। उसकी सफलता आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा बनती है।

जीवन संतुलन की चुनौती

कामकाजी महिलाओ के सामने सबसे बड़ी समस्या है। नौकरी और परिवार की दोहरी जिम्मेदारी को निभाते हुये, इसके अलावा समय की कमी, मानसिक दबाव, और सामाजिक अपेक्षाएँ उनके जीवन को कठिन बना देती है। इस संतुलन को पाने के लिए समय प्रबंधन, कार्यो की प्राथमिकता, परिवार का सहयोग और आत्म देखभाल आवश्यक है। बदलते समय में महिला की जिम्मेदारियाँ बढ़ी है, जिससे संतुलन की आवश्यकता और भी ज्यादा हो गई है।

परिवार की देखभाल, बच्चों का पालन-पोषण और बुजुर्गो का सम्मान

घर की परंपराओं और संस्कारों को आगे बढ़ाना।

परिवार के सदस्यों के बीच भावनात्मक जुड़ाव बनाए रखना।

समय की कमी और मानसिक दबाव।

आत्म-देखभाल की अनदेखी।

काम और परिवार की बीच स्पष्ट सीमाएँ।

निष्कर्षः-

महिला यदि संतुलन साध ले तो वह परिवार और समाज दोनो के लिए प्रेरणा बनती है।

संतुलन ही खुशहाल जीवन और सफल करियर की कुंजी है।

कामकाजी महिला अपने संतुलन, मेहनत और समर्पण से परिवार के विकास और समाज की प्रगति दोनो को संभव बनाती है। वास्तव में उसका संतुलित जीवन ही खुशहाल परिवार और सशक्त जीवन की नींव है।

संदर्भ सूचीः-

1. सरोजिनी नायडू भारत की नारी शक्ति, राष्ट्रीय प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. भारत सरकार-महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, महिला सशक्तिकरण रिपोर्ट 2023
3. The Hindu Working woman and Family challenges 2024 (समाचार पत्र लेख)
4. राष्ट्रीय महिला आयोग (2021)
5. डॉ. रमा शर्मा, भारतीय समाज में महिला की भूमिका राजकमल प्रकाशन, 2020
   केवल घर तक सीमित नहीं है गृह विज्ञान

आधुनिक भारत के निर्माण में बाबू जगजीवन राम का योगदान

डॉ० भानु प्रताप सिंह

पूर्व शोध छात्र, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्व विद्यालय आरा (भोजपुर), बिहार

सारांश

माननीय जगजीवन राम (5 अप्रैल 1908 – 6 जुलाई 1986) जिन्हें सम्मानपूर्वक बाबूजी भी कहा जाता था, एक महान स्वतंत्रता सेनानी, संविधान सभा के सदस्य, सफल नेतृत्वकर्ता, भारतीय राजनीतिज्ञ तथा भारत के प्रथम दलित उप-प्रधानमंत्री थे। इन्होंने दबे-कुचले एवं पिछड़े समाज के उत्थान के लिए अपना जीवन समर्पित किया। इन्होंने केन्द्रीय सरकार के मंत्रिमंडल में विभिन्न मंत्रालयों (श्रम, संचार, रेल, खाद्य, कृषि और प्रतिरक्षा मंत्रालय) को संभाला और उसके द्वारा इन्होंने अपने कार्यकाल में शोषित एवं पिछड़ों के लिए अनेक महत्वपूर्ण योजनाएं लागू की। बाबू जगजीवन राम ने सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना जागृत करने के लिए अनेकों धरातलीय कार्यक्रम आयोजित किया। बाबूजी को आधुनिक भारत निर्माण में उनके योगदान के लिए जाना जाता है।

मूल शब्द: बाबू जगजीवन राम, सामाजिक न्याय, दलित उत्थान, शिक्षा सुधार, राजनीतिक नेतृत्व, रेल मंत्री, रक्षा मंत्री, संवैधानिक अधिकार

प्रस्तावना

बाबू जगजीवन राम के जीवन के कई पहलू हैं। उनमें से ही एक रहा भारत में संसदीय लोकतंत्र के विकास में उनका अमूल्य योगदान। 28 साल की उम्र में ही 1936 में उन्हें बिहार विधान परिषद् का सदस्य नामांकित कर दिया गया था। जब गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के तहत 1937 में चुनाव हुए तो बाबूजी डिप्रेस्ड क्लास लीग के उम्मीदवार के रूप में निर्विरोध एमएलए चुने गए। अंग्रेज बिहार में अपनी पिट्ठू सरकार बनाने के प्रयास में थे। उनकी कोशिश थी कि जगजीवन राम को लालच देकर अपने साथ मिला लिया जाए। लेकिन जगजीवन राम ने अंग्रेजों का साथ देने से साफ इनकार कर दिया। उसके बाद ही बिहार में काग्रेस की सरकार बनी, जिसमें वह मत्री बने। साल भर के अंदर ही अंग्रेजों के गैरजिम्मेदार रुख के कारण महात्मा गांधी की सलाह पर काग्रेस सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। बाबूजी इस काम में सबसे आगे थे। पद का लालच उन्हें छू तक नहीं गया था। बाद में वह महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में जेल गए। जब मुंबई में 9 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी ने भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत की तो जगजीवन राम वहीं थे। तय योजना के अनुसार उन्हें बिहार में आंदोलन को तेज करना था, लेकिन दस दिन बाद ही उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया।

श्रम मंत्री के रूप में, आपने श्रमिकों के कल्याण हेतु अनुभव आधारित लोकप्रिय नीतियां और कानून बनाए। औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, भारतीय श्रमिक संघ (संशोधन) अधिनियम 1960, बोनस संदाय अधिनियम 1965 आदि जैसे कुछ महत्वपूर्ण श्रम विधानों के अधिनियमन में आपकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। आपने दो महत्वपूर्ण अधिनियमों: कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 और भविष्य निधि अधिनियम, 1952 अधिनियमित करा करके सामाजिक सुरक्षा की नींव रखी।[1]

संचार मंत्री के रूप में आपने निजी विमान कंपनियों का राष्ट्रीयकरण किया और दूर-दराज के गांवों में डाक सुविधाओं का प्रसार किया। बाबूजी ने परिवहन और संचार मंत्रालय का कार्यभार संभालते हुए अपने कार्यकाल के दौरान नागर विमानन निगम अधिनियम, 1953 को लागू करने में सफलता प्राप्त की जिसने नागर विमानन क्षेत्र को पर्याप्त मजबूती प्रदान की और जिसके परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय विमान वाहक के रूप में एयर इंडिया और इंडियन एयरलाइंस अस्तित्व में आए। नौवहन क्षेत्र की अपार क्षमता को पहचानते हुए, जगजीवन राम ने विश्व के सभी महत्वपूर्ण व्यापार मार्गों को कवर करने के लिए इसके बेड़े के विस्तार पर बल दिया जिसके परिणामस्वरूप, कुल माल ढुलाई में पर्याप्त वृद्धि हुई और जिससे विदेशी व्यापार में तेजी आई तथा विदेशी मुद्रा भंडार में वृद्धि हुई।

रेल मंत्री के रूप में आपने रेलवे का आधुनिकीकरण किया और रेल कर्मचारियों के कल्याण हेतु अनेक कल्याणकारी उपाय किए तथा लगातार पांच वर्षों तक यात्री किराए में कोई वृद्धि न करने का कीर्तिमान स्थपित किया। इस बात का उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि रेल मंत्री के रूप में बाबूजी के कार्यकाल के दौरान ब्रह्मपुत्र पुल का निर्माण किया गया जो अभियांत्रिकी उत्कृष्टता का अनुपम उदाहरण रहा। इस पुल के निर्माण से असम और अन्य पूर्वोत्तर सीमावर्ती राज्य देश की मुख्य भूमिका से जुड़ गए और इससे इस क्षेत्र के पूर्ण विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। राष्ट्रीय एकता और अखंडता के महत्वपूर्ण साधन के अतिरिक्त, इस पुल की सामरिक महत्ता

पूर्वोत्तर सीमावर्ती राज्यों के समक्ष पेश आ रही सुरक्षा संबंधी चुनौतियों को देखते हुए और बढ़ गयी। यह बाबूजी की दूरदर्शिता का एक उत्कृष्ट उदाहरण रहा।

खाद्य और कृषि मंत्री के रूप में आपने देश को भीषण सूखे की चपेट से बाहर निकाला और हरित क्रांति का सूत्रपात किया तथा पहली बार भारत को खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाया। आपने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को भी संगठित किया ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि लोगों को उचित मूल्य पर खाद्यान्न उपलब्ध हो सके।

रक्षा मंत्री के रूप में बाबू जगजीवन राम के प्रेरणादायी नेतृत्व ने संपूर्ण राष्ट्र और सशस्त्र बलों को पूर्वी पाकिस्तान (अब बंगला देश) में संकट का सामना करने के लिए प्रेरित किया। वस्तुतः, यह वीरता की एक ऐसी अप्रतिम गाथा थी जिसमें पाकिस्तानी सेना के लगभग एक लाख सैनिकों ने भारतीय सेना के सामने आत्मसमर्पण किया।[2]

उच्च शिक्षा

बाबूजी ने वर्ष 1920 में आरा स्थित अग्रवाल विद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु प्रवेश लिया। उनकी विदेशी भाषाओं को समझने व सीखने की जिज्ञासा के बल पर उन्होंने अंग्रेज़ी में निपुणता हासिल की, साथ ही माननीय श्री बंकिम चन्द्र चटर्जी द्वारा रचित 'आनन्द मठ' की मूल पुस्तक (जो बांगाली में लिखित रहा) को पढ़ने के लिए बांगाली तक सीख गए। वे अंग्रेज़ी व बांगाली के साथ-साथ हिन्दी व संस्कृत में भी माहिर थे। 1925 में पंडित मदन मोहन मालवीय जब आरा पधारे तो वे युवा जगजीवन के व्यापक ज्ञान व सभी क्षेत्रों में उत्कृष्ट प्रदर्शन को देखकर अचंभित रह गए तथा उन्हें तभी आभास हो गया कि ये किशोर भविष्य में देश की आजादी व राष्ट्र निर्माण में अहम भूमिका निभा सकता रहा। उन्होंने युवा जगजीवन से स्वयं मुलाकात की व बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय आने का निमंत्रण दिया। परन्तु जगजीवन राम को वहाँ जाति के आधार पर भेद भाव झेलना पड़ा। क्रांतिकारी स्वाभाव के जगजीवन ने इसका खुल कर विरोध किया और वे सफल भी हुए। आतंरिक विज्ञान परीक्षा में वे उत्तम अंकों से उत्तीर्ण हुए व वर्ष 1931 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से विज्ञान स्नातक में उच्चतम अंकों से उत्तीर्ण हुए।[3]

राजनीतिक जीवन का शंखनाद

बाबू जगजीवन राम के राजनीतिक जीवन की शुरुआत कलकत्ता से हुई। कलकत्ता आने के छः महीनों के भीतर ही उन्होंने विशाल मजदूर रैली का आयोजन किया जिसमें भारी तादाद में लोगों ने हिस्सा लिया। इस रैली से नेताजी सुभाष चन्द्र बोस जैसे महान स्वतंत्रता सेनानी को भी बाबूजी की कार्यक्षमता व नेतृत्वक्षमता का आभास हो गया। इस काल के दौरान बाबूजी ने वीर चन्द्रशेखर आजाद तथा सिद्धहस्त लेखक मन्मथनाथ गुप्त जैसे विख्यात स्वतंत्रता विचारकों के साथ काम किया। वर्ष 1934 में जब सम्पूर्ण बिहार भूकंप की तबाही से पीड़ित था तब बाबूजी ने बिहार की मदद व राहत कार्य के लिए अपने कदम बढ़ाए। बिहार में ही पहली बार उनकी मुलाकात उस काल के सबसे महत्त्वपूर्ण, प्रभावशाली व अहिंसावादी स्वतंत्रता सेनानी माननीय श्री मोहन दास करमचन्द गाँधी अर्थात् महात्मा गाँधी से हुई। महात्मा गाँधी ने बाबू जगजीवन राम के राजनीतिक जीवन में एक बहुत अहम भूमिका निभाई, क्योंकि बाबूजी यह जानते थे कि पूरे भारत वर्ष में केवल एक ही स्वतंत्रता सेनानी ऐसा था जो स्वतंत्रता व पिछड़े वर्गों के विकास, दोनों के लिए लड़ रहा था, और वे थे गांधीजी। जब अंग्रेज़ 'फूट डालो राज करो' नीति अपनाते हुए दलितों को सामूहिक धर्म-परिवर्तन करने पर मजबूर कर रहे थे तब बाबूजी ने इस अन्यायपूर्ण कर्म को रोका। इस घटनाक्रम के पश्चात् बाबूजी दलितों के सर्वमान्य राष्ट्रीय नेता के रूप में जाने गए व गांधीजी के विश्वसनीय एवं प्रिय पात्र बने व भारतीय राष्ट्रीय राजनीती की मुख्यधारा में प्रवेश कर गए। अपने विद्यार्थी जीवन में बाबूजी ने वर्ष 1934 में कलकत्ता के विभिन्न जिलों में संत रविदास जयन्ती मानाने के लिए अखिल भारतीय रविदास महासभा का गठन किया। उन्होंने दो अन्य संस्थानों का गठन किया - 1. खेतिहर मजदूर सभा 2. भारतीय दलित वर्ग संघ।

वर्ष 1935 में ही बाबूजी ने रहामंड कमिटी के समक्ष दलितों के मतदान करने की मांग की जिसे रहामंड कमिटी ने स्वीकार कर लिया।[4]

विरोध का काल

बाबूजी के लिए ये समय अत्यन्त परिश्रम का था और एक अनमोल मौका था भारतीय राजनीती में अपनी अमिट छाप छोड़ने का। वर्ष था 1936 व बाबूजी की आयु थी 28 वर्ष। अंग्रेज़ बिहार में कांग्रेस को हराने के लिए एकजुट होकर प्रयास कर रहे थे। उन्होंने मोहम्मद युनुस के नेतृत्व में कठपुतली सरकार बनाने का निष्फल प्रयत्न किया। इन चुनावों में बाबूजी सहित अन्य 14 भारतीय दलित वर्ग संघ के सदस्य निर्वाचित हुए। बाबूजी की बढ़ती राजनैतिक शक्ति व लोकप्रियता के कारण अंग्रेजों ने उनके समक्ष बड़ी रकम के बदले समर्थन देने की बात रखी जिसे बाबूजी ने क्षण भर की भी देर न करते हुए तुरन्त ही ठुकरा दिया। इस घटना का पता चलते ही गाँधी जी का विश्वास बाबूजी पर और अधिक बढ़ गया और उन्होंने बाबूजी के लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ कहीं - 'जगजीवन राम तपे कंचन की भांति खरे व सच्चे हैं। मेरा हृदय इनके प्रति आदरपूर्ण प्रशंसा से आपूरित रहा' कठपुतली सरकार का खेल ख़त्म हो चुका

था व कांग्रेस ने सरकार का गठन किया। बाबूजी को इस सरकार में कृषि मंत्रालय, सहकारी उद्योग व ग्रामीण विकास मंत्रालय में संसदीय सचिव के रूप में नियुक्त किया गया। वर्ष 1938 में अंदमान कैदियों के मुद्दे पर व द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेज़ सरकार द्वारा भारतीय सैनिकों के इस्तेमाल से महात्मा गाँधी अति क्रोधित हुए व उनके एक आवाह्न पर सभी कांग्रेस सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। तत्पश्चात गांधीजी ने 9 अगस्त 1942 से उनके विख्यात आन्दोलन 'भारत छोड़ो आन्दोलन' को प्रारम्भ किया। उन्होने बाबूजी को बिहार व उत्तर पूर्वी भारत में इस आन्दोलन के तेजी से प्रचार करने की जिम्मेदारी सौंपी जिसे बाबूजी ने बहतरीन रूप से निभाया। किन्तु प्रचार के दस दिन बाद ही बाबूजी गिरफ्तार कर लिए गए। 1943 में रिहा होने के पश्चात् बाबूजी ने भारत को आजाद करने के लिए पूरा जोर लगाया। बाबूजी उन बारह राष्ट्रीय नेताओं में से एक थे जिन्हें अंतरिम सरकार के गठन के लिए लार्ड वावेल ने अगस्त 1946 को आमंत्रित किया था। सितम्बर 1946 में जेने वा में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय श्रम सम्मलेन में हिस्सा लेने के उपरांत स्वदेश लौट रहे बाबूजी का विमान इराक स्थित बसरा के रेगिस्तान में दुर्घटनाग्रस्त हो गया। दुर्घटना में बाबूजी को ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचा।[5]

आजादी के पश्चात

वर्ष 1946 में पंडित जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में गठित प्रथम लोकसभा में बाबूजी ने श्रम मंत्री के रूप में देश की सेवा की व अगले तीन दशकों तक कांग्रेस मंत्रिमंडल की शोभा बढ़ाई। इस महान राजनीतिज्ञ ने भारतीय राजनीति को अपने जीवन के 50 वसंत से भी अधिक दान में दिए हैं। संविधान के निर्माणकर्ताओं में से एक बाबूजी ने सदैव सामाजिक न्याय को सर्वोपरि माना रहा। पंडित नेहरू का बाबूजी के लिए एक विख्यात कथन कुछ इस प्रकार रहा ख़ 'समाजवादी विचारधारा वाले व्यक्ति को, देश की साधारण जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाने में बड़े से बड़ा खतरा उठाने में कभी कोई हिचक नहीं होती। श्री जगजीवन राम उन में से एक ऐसे महान व्यक्ति हैं' श्रम, रेलवे, कृषि, संचार व रक्षा, जिस भी मंत्रालय का दायित्व बाबूजी को दिया गया हो उसका सदैव कल्याण ही हुआ रहा। बाबूजी ने हर मंत्रालय से देश को तरक्की पहुँचाने का अथक प्रयास किया रहा। स्वतंत्र देश घोषित होने के उपरान्त भारत के निर्माण की पूरी जिम्मेदारी नयी सरकार पर थी और इस जिम्मेदारी को पूरा करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान बाबूजी का रहा।[6]

श्रम मंत्री के रूप में

प्रथम सरकार में पूर्वी ग्रामीण शाहाबाद से निर्वाचित सांसद बाबू जगजीवन राम को श्रम मंत्रालय का दायित्व दिया गया। यह शुरु से ही उनका प्रिय क्षेत्र रहा। क्योंकि चांदवा की माटी में पले-बढ़े बाबूजी का जन्म एक खेतिहर मजदूर के घर हुआ था जहाँ उन्होंने उन विलक्षण भरी परिस्तिथियों को स्वयं झेला रहा व कलकत्ता में वे मिल-मजदूरों की परिस्तिथि से भी वाकिफ थे। श्रम मंत्री के रूप में बाबूजी ने समय द्वारा जांचे-परखे कुछ महत्त्वपूर्ण कानूनों को लागू करने का अहम फैसला लिया। ये कानून मजदूर वर्ग की सबसे बड़ी उम्मीद व आज के युग में सबसे बड़े हथियार के रूप में देखे जाते हैं। ये कानून कुछ इस प्रकार थे - 1. इंडस्ट्रियल डिसप्यूट्स एक्ट, 1947 2. मिनिमम वेजेज एक्ट, 1948 3. इंडियन ट्रेड यूनियन (संशोधन) एक्ट, 1960 4. पेमेंट ऑफ बोनस एक्ट, 1965

- दो अति आवश्यक कानून जिनके बिना आज का व्यापारिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता - 5. एम्प्लाइज स्टेट इंश्योरेंस एक्ट, 1948 6. प्रोविडेंट फण्ड एक्ट, 1952.

संचार मंत्री और संसद दूसरा घर

बाबूजी संसद भवन को अपना दूसरा घर मानते थे। वर्ष 1952 में पंडित जवाहरलाल नेहरु ने सासाराम से निर्वाचित बाबू जगजीवन राम को संचार मंत्री की उपाधि दी। उस समय संचार मंत्रालय में ही विमानन विभाग भी शामिल था। बाबूजी ने निजी विमान कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण की ओर कदम बढ़ाए। परिणामस्वरूप वायु सेना निगम, एयर इंडिया व इंडियन एयरलाइन्स की स्थापना हुई। इस राष्ट्रीयकरण योजना के प्रबल विरोध होने के कारण लौह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल भी इसे स्थगित करने के पक्ष में खड़े हो गए थे। परन्तु बाबूजी के समझाने पर वे मान गए व विरोध भी लगभग ख़त्म हो गया। गाँवों में डाकखानों का जाल बिछाने की बात भी उन्होंने कही व नेटवर्क के विस्तार का चुनौतीपूर्ण कार्य आरम्भ किया। बाबूजी के इस मेहनती अंदाज को भारत वर्ष के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेंद्र प्रसाद ने कुछ इस प्रकार बयान किया रहा - 'बाबू जगजीवन राम दृढ़ संकल्प कार्यकर्ता तो हैं ही, साथ ही त्याग में भी वे किसी से पीछे नहीं रहे हैं। इनमें धर्मोपासकों का सा उत्साह और लगन रहा'।

रेल मंत्री के रूप में

सासाराम से पुनर्निर्वाचित बाबूजी को वर्ष 1956-62 तक रेल मंत्रालय की जिम्मेदारी उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बाबूजी ने भारतीय रेलवेज को आधुनिक दुनिया के सन्दर्भ में आधुनिक रेलवेज के निर्माण की बात कही। उन्होंने ने पांच सालों तक रेलवे किराया एक रुपया भी नहीं बढाया जो कि एक ऐतिहासिक घटना थी। उन्होंने रेलवे अधिकारियों, अफसरों व कर्मचारियों के विकास पर अधिक बल दिया। अत: यह कहा जा सकता रहा कि वर्ष 1956-62 तक का रेलमार्ग निर्माण कार्य किसी और वर्ष की तुलना में अधिक रहा।

विविध मंत्रालयों में बाबूजी

1962 के आम चुनावों में सासाराम की जनता ने बाबूजी को पुनः विजय-वरदान दिया व उन्हें परिवहन एवं संचार मंत्रालय का दायित्व दिया गया। परन्तु बाबूजी ने कामराज योजना के तहत इस्तीफा दे दिया व कांग्रेस पार्टी को मजबूत करने में लग गए।

1966-67 के आम चुनावों में विजयी बाबू जगजीवन राम को उस सरकार में एक बार फिर श्रम मंत्रालय दिया गया। किन्तु एक वर्ष उपरांत ही उन्हें कृषि एवं खाद्य मंत्रालय का दायित्व दिया गया।

चीन व पाकिस्तान से जंग के पश्चात भारत में गरीबी व भुखमरी के हालात पैदा हो गए थे तथा अमेरिका से पीएल- 480 के तहत मिलने वाला गेहूं व ज्वार खाद्य आपूर्ति का मुख्य स्रोत था। ऐसी कठिन परिस्थिति में बाबूजी ने डॉ० नॉर्मन बोरलाग की सहायता से हरित क्रान्ति की और रखी व मात्र दो वर्षों के उपरान्त ही भारत फूड सरप्लस देश बन गया। कृषि एवं खाद्य मंत्रालय में रहते हुए बाबूजी ने देश को भीषण बाढ़ से भी राहत पहुँचाई व भारत को खाद्य संसाधनों में आत्मनिर्भर बनाया।

1970 के आम चुनावों में एक बार फिर बाबूजी की जीत हुई व उन्हें श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सरकार में इस बार रक्षा मंत्रालय जैसे अहम् मंत्रालय को अपनी सेवाएँ प्रदान करने का मौका मिला। बाबूजी ने सर्वप्रथम भारत के राजनैतिक मानचित्र को पूर्णतया परिवर्तित कर दिया। भारत-पाकिस्तान की उस अभूतपूर्व जंग में बाबूजी ने देश की जनता से वायदा किया कि ये जंग भारत भूमि के एक सूई की नोक के बराबर तक भाग पर भी नहीं लड़ी जायेगी, और वे इस वायदे पर कायम रहे।

उनकी इस महान सेवा के लिए श्री राजीव गाँधी ने कुछ इस प्रकार से अपने विचार व्यक्त किए हैं - 'राष्ट्र को आजाद करने में बाबूजी का योगदान बड़ा ही सराहनीय रहा रहा। देश को अनाज की दृष्टि से आत्म-निर्भर बनाने तथा बांग्लादेश की मुक्ति के युद्ध में उनका योगदान हमेशा याद रखा जायेगा' वर्ष 1974 में बाबूजी ने कृषि एवं सिंचाई विभाग की जिम्मेदारी ली व एक नयी प्रणाली 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली' की नीव रखी जिसके द्वारा यह सुनिश्चित किया गया कि देश की आम जनता को पर्याप्त मात्रा व कम दाम में खाद्य पदार्थ उपलब्ध हों।[7]

कांग्रेस के आधारस्तंभ

बाबूजी ने दिसंबर 1885 में बनी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को अपनी माँ के समान बताया रहा व इसकी सेवा में सदैव आगे रहे। बाबूजी वर्ष 1937-77 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति उपरान्त वे कांग्रेस के लिए अपरिहार्य हो गए थे। बाबू जगजीवन राम महात्मा गांधीजी के प्रिय तो थे ही साथ ही पंडित जवाहरलाल नेहरू एवं श्रीमती इन्दिरा गाँधी जी के सबसे अहम सलाहकारों में से भी एक थे। वर्ष 1966 में माननीय डॉ० राजेंद्र प्रसाद जी के निधनोपरांत कांग्रेस पार्टी का आपसी मतभेदों व सत्ता की लड़ाई के कारण बंटवारा हो गया। जहां एक तरफ नीलम संजीवा रेड्डी, मोरारजी देसाई व कुमारसामी कामराज जैसे दिग्गजों ने अपनी अलग पार्टी की रचना की वहीं श्रीमती इन्दिरा गाँधी, बाबू जगजीवन राम व फकरुद्दीन अली अहमद जैसे आधुनिक सोच के व्यक्ति कांग्रेस पार्टी के साथ खड़े रहे। वर्ष 1969 में बाबूजी निर्विरोध कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष के रूप में चुने गए व बाबूजी ने पूरे देश में कांग्रेस पार्टी को मजबूत करने व उसकी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए पूर्ण प्रयास किया, परिणामस्वरूप कांग्रेस पार्टी को 1971 के आम चुनावों में ऐतिहासिक व प्रचंड बहुमत के साथ सत्ता मिली। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने इस ऐतिहासिक घटना का श्रेय बाबूजी को देते हुए कहा - "बाबू जगजीवन राम भारत के प्रमुख निर्माताओं में से एक रहा। देश के करोड़ों हरिजन, आदिवासी, पिछड़े व अल्पसंख्यक लोग उन्हें अपना मुक्तिदाता मानते हैं"।[8]

आपातकाल व नयी शुरुआत

25 जून 1975 को श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा देश भर में आपातकाल की घोषणा कर दी गयी। इस आपातकाल ने संविधान के मौलिक अधिकारों को सवालों के घेरे में ला दिया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने 18 जनवरी 1977 को आम चुनाव की घोषणा तो कर दी थी किन्तु देश को आपातकाल का डर था। इस परिस्थिति से निपटने के लिए बाबूजी ने अपने पद का त्याग कर दिया व कांग्रेस पार्टी से भी इस्तीफा दे दिया। उन्होंने उसी दिवस 'कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' (सी.एफ.डी.) नामक एक नयी पार्टी की रचना की। वर्ष 1977 के आम चुनावों में बाबूजी की विजय हुई व उन्हें रक्षा मंत्रालय का दायित्व दिया गया। 25 मार्च 1977 को कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी, जनता पार्टी में सम्मिलित कर ली गयी। जनवरी 1979 में बाबूजी भारत वर्ष के उपप्रधानमंत्री के रूप में घोषित किये गए। वर्ष 1980 में जनता पार्टी का आपसी मनमुटावों के कारण बंटवारा हो गया एवं बाबूजी ने मार्च 1980 में अंततः कांग्रेस (जे) का निर्माण किया। वर्ष 1984 के आम चुनावों में सासाराम की जनता ने अपने विश्वनीय प्रतिनिधि बाबू जगजीवन राम के लिए एक बार पुनः लोकसभा के द्वार खोल दिए।[9]

अंतिम यात्रा

6 जुलाई 1986, को बाबूजी ने अपनी आखिरी श्वास ली। उन्होंने हमेशा निडरतापूर्वक अन्याय का सामना करते हुए साहस, ईमानदारी, ज्ञान व अपने अमूल्य अनुभव से देश की भलाई की। वे स्वतंत्र भारत के उन महान नेताओं में से एक थे जिन्होनें दलित समाज की

दशा बदल दी व एक नयी दिशा प्रदान की। इन्होनें सदा एक ही चुनाव क्षेत्र का प्रतिनिधित्व किया व सदा अपराजित ही रहे। बाबू जगजीवन रामजी ने वर्ष 1936 से वर्ष 1986 तक अर्थात आधी शताब्दी तक राजनीति में सक्रिय रहने का विश्व कीर्तिमान स्थापित किया।[10]

निष्कर्ष

बाबू जगजीवन राम को चार दशकों से भी अधिक समय (पहले आम चुनाव से लेकर आठवीं लोकसभा) तक लगातार अंतिम सांस तक आप लोकसभा के सदस्य रहे। बाबूजी को भारत सरकार में सबसे लंबे समय तक मंत्री के रूप में कार्य करने का गौरव प्राप्त था। जगजीवन राम संसदीय कार्यों को बहुत ही कुशलतापूर्वक निपटाने के लिए जाने जाते थे। आपकी वाकपटुता को संसद में भलीभांति स्वीकार्य थी और सराहनीय थी। केन्द्रीय मंत्री के रूप में आपने लोकसभा में अनेक विधेयक पेश किए और संसद में उन्हें पारित करवाया।

स्वातन्त्रयोत्तर भारत मे राष्ट्र निर्माण में बाबूजी के योगदान की अमिट छाप रहा। वर्ष 1946-52 तक आप श्रम मंत्री थे और बाद में वर्ष 1966-67 में आप पुनः इसी विभाग के मंत्री बने। श्रम मंत्रालय के अतिरिक्त आप संचार (1952-56), रेल (1956-1962), परिवहन और संचार (1962-63), खाद्य और कृषि (1967-70), रक्षा (1970-74) तथा कृषि और सिंचाई (1974-77) मंत्री रहे। जब, 1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार बनी तब जगजीवन राम केबिनेट मंत्री के रूप में उसमें शामिल हुए और रक्षा मंत्रालय का कार्यभार संभाला। आप उप-प्रधानमंत्री भी बने और 24 जनवरी, 1979 से 28 जुलाई, 1979 तक रक्षा मंत्री रहे।

वास्तत में एक नए राष्ट्र, बंगलादेश के निर्माण से दक्षिण एशियाई क्षेत्र की भू-राजनीति में एक नया मोड़ आया। 1971 की एतिहासिक और निर्णायक जीत बाबूजी के आत्मविश्वास, धैर्य और असीम साहस का प्रमाण रहा। रक्षा मंत्री के रूप में आपके कार्यकाल के दौरान ही भारत ने शांति, मैत्री और सहयोग की भारत-सोवियत संधि पर हस्ताक्षर किए थे।

बाबू जगजीवन राम दलित वर्गों की मुखरता, समानता और सशक्तिकरण के एक नए युग के उदय के प्रतीक थे। संविधान सभा के सदस्य के रूप में आपने अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों हेतु राज्य विधानमंडलों में सीटों के आरक्षण और सरकारी रोजगार में आरक्षण के माध्यम से सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान हेतु राज्य की ओर से हस्तक्षेप किए जाने संबंधी उपबंध के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाई। आपने सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आन्दोलन आपके दृढ़ समर्थन और निरंतर संघर्ष के कारण ही आपको 'दलितों का मसीहा' कहा जाता रहा।

समानता का संदेश देते हुए, बाबूजी ने 6 जुलाई, 1986 को नई दिल्ली में अंतिम सांस ली। एक राष्ट्रीय नेता के रूप में आपने महात्मा गांधी से राजीव गांधी तक अनेक पीढिघ्यों के साथ राजनीतिक जीवन साझा और एक सत्यनिष्ठ तथा समर्पित राजनीतिक नेता, प्रतिबद्ध लोक सेवक, स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक, क्रंतिकारी और सच्चे मानवतावादी की विरासत छोड़ गए।

सन्दर्भ

1. श्री के. एल. चंचरीक की 'दलित्स इन पोस्ट इंडिपेंडेंस एरा (अ न्यू आइडेंटिटी)', प्रकाशन वर्ष 2010, ISBN : 8183293464.
2. डॉ० संजय पासवान की 'राष्ट्रनिष्ठ बाबू जगजीवन राम', प्रकाशन वर्ष 2012, ISBN : 8192373827.
3. डॉ० अशोककुमार वर्मा की 'विजय के सूत्रधार : रक्षामंत्री श्री जगजीवन राम : व्यक्तिव एवं संस्मरण', प्रकाशन वर्ष 1972, ऑनलाइन पुस्तक कड़ी निम्नलिखित रहा : http://164.100.47.134/plibrary/ebooks/Jagjivan%20Ram/(sno%205)JJram5.pdf%5B
4. डॉ० राजेंद्र प्रसाद की 'श्री जगजीवन राम व उनके विचार', प्रकाशन वर्ष 1955
5. बाबू जगजीवन राम ने शनल फाउंडेशन, ऑनलाइन कड़ी निम्नलिखित रहा : https://web.archive.org/web/20160715104523/http://jagjivanramfoundation.nic.in/
6. सिंह, रविन्द्र; (1993) जगजीवन रामः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, इतिहास विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ की शोधगंगा पर प्रकाशित शोध प्रबंध।
7. कौल, पी. (1953) श्री जगजीवन राम और श्रम, बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित जगजीवन राम अभिनन्दन ग्रन्थ, नई दिल्ली।
8. फरवरी 1960 को लोकसभा में रेलमंत्री जगजीवन राम का भाषण।
9. जनवरी 1972 को काशी के नागरिकों के समक्ष भारत के रक्षा मंत्री श्री जगजीवन राम जी के दिये गए भाषण के कुछ अंश।
10. कुमार, (2014) भारतीय राजनीति में बाबूजगजीवन राम का योगदान, राजनीति विभाग, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर की शोधगंगा पर प्रकाशित शोध।

भारत की आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण

प्रो० दिबाकर गोप

नोवामुण्डी कॉलेज, नोवामुण्डी, प0 सिंहभूम, झारखण्ड

भारत 21वीं सदी की उभरती हुई आर्थिक शक्तियों में से एक है। तकनीकी प्रगति, सेवा क्षेत्र का विस्तार, वैश्वीकरण, उदारीकरण और डिजिटल नवाचार के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था अनेक संरचनात्मक चुनौतियों से घिरी हुई है। आर्थिक विकास की गति कभी तेज होती है, तो कभी धीमी। यह अस्थिरता बताती है कि भारत की आर्थिक समस्याएँ केवल अल्पकालिक नहीं, बल्कि दीर्घकालिक और संरचनात्मक स्वरूप की है।

इन समस्याओं का समाधान तभी संभव है जब उनके कारण, स्वरूप और प्रभाव का गहन विष्लेशण किया जाय।

1. बुनियादी ढ़ाँचे पर भार – जनसंख्या बढ़ने से बुनियादी ढ़ाँचे जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा एवं आवास सेवाओं पर भार पड़ता है। संसाधनों की सीमितता के कारण उपरोक्त सेवाओं की गुणवत्ता में गिरावट आती है और सभी आवश्यकताओं को पूरा करने में कठिनाई होती है।
2. आय तथा सम्पति की विषमता – देश की जनसंख्या बढ़ने से आय तथा सम्पति वितरण में वृद्धि होती है, क्योंकि अधिक लोग संसाधनों की कमी तथा अवसरों की कमी का अनुभव करते हैं।
3. पर्यावरण का ह्रास – किसी देश के स्वच्छ पर्यावरण को प्रदूषित करने वाले कारणें में बढ़ती हुई जनसंख्या भी प्रमुख है। बढ़ती जनसंख्या हेतु खाद्यान्नों एवं अन्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्यावरण के संसाधनों का तेजी से उपयोग हो रहा है जिसके फलस्वरूप देष में पर्यावरणीय असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई। देश में बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि भूमि का विस्तार किया गया। कृषि भूमि का विस्तार करने के लिए तेज गति से वनों का विनाश किया गया। वन विनाश से देश में पर्यावरणीय असंतुलन से ही सुखा, बाढ़, भूस्खलन, मौसम में परिवर्तन हो रहा है।
4. रोजगार की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव – विकासशील देशों में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण बड़े पैमाने पर बेरोजगारी या अल्पबेरोजगारी पायी जाती है, क्योंकि अर्थव्यवस्था के द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों का जितना विकास होना चाहिए उतना नहीं हो पाया है। इससे कृषि पर दबाव बढ़ता है तथा अदृश्य बेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न होती है। अतः श्रम अधिक्य वाले देशों में श्रम उत्पादकता कम हो जाती है।
5. प्रतिव्यक्ति आय जीवन स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव– तेजी से जनसंख्या बढ़ने के कारण प्रति व्यक्ति आय स्तर तथा जीवन स्तर पर सामान्य वृद्धि कर पाना कठिन हो जाता है। भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने के कारण कृषि उत्पादकता कम हो जाती है, जिससे आय में कमी आती है और जीपन स्तर में गिरावट आती है।
6. खाद्य–पदार्थ के आयात में वृद्धि – अधिकांश विकासशील देशों में गंभीर खाद्यान्न संकट, कम कृषि उत्पादकता खाद्यान्नों की आपूर्ति मांग की तुलना में कम होने से भूखमरी की समस्या बढ़ती जाती है। बड़ी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात बढ़ता है, जिस कारण औद्योगिकीकरण के कार्यक्रमों को धक्का लगता है।
7. बेरोजगारीः भारत की सबसे बड़ी आर्थिक चुनौती – बेरोजगारी भारत की अर्थव्यवस्था के सामने सबसे गंभीर और व्यापक समस्या है। इसके मुख्य कारण हैं – जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में रोजगार सृजन न होना, कृषि क्षेत्र में अर्ध–रोजगार, उद्योगों में ऑटोमेशन और तकनीकी बदलाव, कौषल तथा शिक्षा के बीच असंतुलन तथा संगठित क्षेत्र में सीमित अवसर आदि। इन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप युवाओं में असुरक्षा, उत्पादक क्षमता में कमी, सामाजिक अशांति में वृद्धि तथा गरीबी चक्र का पुनरूत्पादन देखने को मिलता है। भारत को हर वर्ष लाखों नई नौकरियों की आवश्यकता है, जबकि रोजगार सृजन की गति उससे काफि कम है।
8. गरीबी और असमानता – भारत विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाओं में है, फिर भी बड़ी आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन जीती है। गरीबी के प्रमुख कारणों में आय का क्षेत्रीय असमान वितरण, ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित आजीविका, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में कमी तथा अवसरों में असमानता आदि सम्मिलित है। असमानता के आयामों में शहरी–ग्रामीण असमानता, सामाजिक–जातीय समूहों में अंतर, डिजिटल असमानता तथा लैंगिक असमानता प्रमुख है। आर्थिक विकास का लाभ सभी तक समान रूप से नहीं पहुँच पाने से असमानता लागातार बढ़ रही है।
9. कृषि संकट और ग्रामीण समस्याएँ – भारत की लगभग 43 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या कृषि पर निर्भर है, परंतु कृषि का जीडीपी में योगदान घटता जा रहा है। कृषि संकट के प्रमुख कारणों में लागत में वृद्धि परन्तु एम.एस.पी. और आय में धीमी वृद्धि, सिंचाई

सुविधाओं की कमी, छोटे और सीमांत किसान, बाजार ढ़ाँचे में बिचौलियों की भूमिका तथा प्राकृतिक और जलवायु परिवर्तन आदि सम्मिलित है। इन संकटों के कारण कृषि ऋणग्रस्तता, किसानों की आय में कमी, शहरी पलायन तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ठहराव देखने को मिलता है।

10. मुद्रास्फीति और महँगाई का दबाव – भारत में मंहगाई विशेष रूप से खाद्यान्न, ईंधन और दैनिक उपयोग की वस्तुओं में अधिक दिखाई देती है। इसका मुख्य कारण है- आपूर्ति श्रृखंला में बाधाएँ, तेल की अंतर्राष्ट्रीय कीमते, करों का बोझ, कृषि उत्पादन में अस्थिरता, तथा वैश्विक आर्थिक उतार-चढ़ाव आदि। मुद्रास्फीति आम नागरिकों की क्रय शक्ति को कमजोर करती है और उपभोग में गिरावट लाती है, जिससे आर्थिक विकास प्रभावित होता है।
11. राजकोषीय घाटा और सार्वजनिक ऋण – सरकार की आय और व्यय में असंतुलन से भारत में हमेशा राजकोषीय घाटा बना रहता है। राजकोषीय घाटा का प्रमुख कारण है – सब्सिडी का भारी बोझ, बुनियादि ढ़ाँचे पर विशाल खर्च, कर उगाही में कमी तथा कर्ज पर ब्याज भुगतान आदि। इसका प्रभाव सरकारी निवेश पर दबाव, निजी क्षेत्र के लिए ऋण उपलब्धता में कमी तथा मुद्रास्फीति की आशंका के रूप में देखी जा सकती है।
12. औद्योगिक विकास में असमानता – भारत में औद्योगिक विकास कुछ राज्यों और शहरों तकम सीमित है। इसका प्रमुख कारण है – पूँजी का संकेन्द्रन, बुनियादी ढ़ाँचे की कमी, नीति निर्माण में असंतुलन तथा कौशलयुक्त श्रम की उपलब्धता में क्षेत्रीय अंतर। इसके कारण भारत की औद्योगिक क्षमता पूरी तरह सामने नहीं आ पा रही है।
13. अवसंरचना की कमी – परिवहन, ऊर्जा, स्वास्थ्य, षिक्षा, डिजिटल नेटवर्क और लॉजिस्टिक्स- इन सभी क्षेत्रों में सुधार की आवश्यकता है। भारत में अवसंरचना से सम्बन्धित समस्याओं में सड़क एवं रेल परियोजनाओं में विलंब, बिजली आपूर्ति में असमानता, ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल नेटवर्क की कमी तथा बंदरगाहों और लॉजिस्टिक लागतों पर उच्च व्यय प्रमुख है। अवसंरचना की कमजोर स्थिति भारत की उत्पादन क्षमता और वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा को प्रभावित करती है।
14. शिक्षा और कौशल अंतर – भारत में शिक्षा प्रणाली और उद्योग की आवश्यकताओं में बड़ा अंतर है। इसमें प्रमुख समस्याएँ है – कौशल आधारित शिक्षा का अभाव, तकनीकी प्रशिक्षण में कमी तथा अनुसंधान और नवाचार पर कम निवेश। परिणामरूवरूप, बड़ी संख्या में युवा डिग्री होने के वावजूद रोजगारयुक्त नहीं होते।
15. स्वास्थ्य क्षेत्र की चुनौतियाँ – कम निवेश और कमजोर स्वास्थ्य ढ़ाँचा आर्थिक विकास पर बड़ा बोझ डालता है। हमारे सामने समस्या यह है कि डाक्टर-जनयंख्या अनुपात बहुत कम है, ग्रामीण स्वास्थ्य ढ़ाँचे की कमजोर स्थिति है, स्वास्थ्य पर कम सरकारी व्यय किया जाता है तथा दवाओं और उपचार की लागत बहुत अधिक है। स्वास्थ्य खराब होने से श्रम उत्पादकता घटती है, जो आर्थिक विकास को धीमा करती है।
16. भ्रष्टाचार और नीति-क्रियान्वयन की समस्याएँ – भारत की आर्थिक समस्याओं में नीति स्तर पर भ्रष्टाचार, देरी और क्रियान्वयन की कमजोरी महत्वपूर्ण है। इसके पीछे कई कारण है – लाइसेंसिंग और रजिस्ट्री प्रक्रियाओं की जटिलता, पारदर्शिता की कमी, परियोजनाओं में देरी तथा संसाधनों का दुरूपयोग आदि। अथव्यवस्था में निवेश और विश्वास दोनो कम होते हैं।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि भारत आज विश्व की सबसे संभावनाषील अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, परंतु उसकी आर्थिक समस्याएँ गहरी और बहुआयामी है। बेरोजगारी, असमानता, कृषि संकट, महँगाई, शिक्षा और स्वास्थ्य की चुनौतियाँ आर्थिक विकास को बाधित करती है। इन समस्याओं के समाधान के लिए संरचनात्मक सुधार, कौशल आधारित शिक्षा, कृषि में आधुनिकीकरण, निवेश अनुकूल नीतियाँ, भ्रष्टाचार नियंत्रण और समावेशी विकास की रणनीतियाँ आवश्यक है। भारत की आर्थिक नीतियों को तभी सफलता मिलेगी जब विकास सभी वर्गों, क्षेत्रों और व्यक्तियों तक संतुलित और समान रूप से पहुँचे।

संदर्भ सूची:-

1. इण्डियन इकोनोमी – एस. चंद पब्लिकेशन
2. इण्डियन इकोनोमी – एस. के. मिश्रा
3. इण्डियन इकोनोमी – ए. एन. अग्रवाल
4. भारत सरकार, आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त मंत्रालय – विभिन्न वर्ष
5. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया का वार्षिक रिपोर्ट
6. जर्नल ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज – टेलर और फ्रांसिस

झारखण्ड की राजनीति और जनजातीय समाज

डॉ० मुकेश कुमार सिंह

विभागाध्यक्ष, राजनीति शास्त्र विभाग, नोवामुण्डी कॉलेज, नोवामुण्डी

Keyword:- जनजाति, आदिवासी, सरना धर्म, जल जंगल जमीन, पत्थलगड़ी, भूमि अधिग्रहण, पर्यावरण

भारत की कुल आबादी में आदिवासियों की हिस्सेदारी 8.6 फीसदी है। वर्श 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में अनुसूचित जनजाति के लोगों की संख्या 10 करोड़ 45 लाख से अधिक है। सबसे ज्यादा जनजातियों की जनसंख्या मध्यप्रदेश में है। यहां 1 करोड़ 53 लाख से अधिक आदिवासी निवास करते हैं। दूसरे नम्बर पर महाराष्ट्र आता है जहां 1 करोड़ 5 लाख से अधिक आदिवासी निवास करते हैं। इसके बाद ओडिशा, राजस्थान और गुजरात का स्थान आता है जहां क्रमशः 95.91 लाख, 92.39 लाख एवं 89.17 लाख अनुसूचित जनजाति के लोग निवास करते है। झारखण्ड में 86.45 लाख आदिवासी निवास करते हैं। झारखण्ड में जनजातियों का अदिवास पुरापाषाण काल से ही रहा है। विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों में भी जनजातियों की चर्चा मिलती है। यहाँ के जनजातियों को वनवासी, आदिवासी, आदिम जाति एवं गिरिजन जैसे शब्दों से पुकारा जाता है। आदिवासी शब्द का शाब्दिक अर्थ आदिकाल से रहने वाले लोग हैं।

झारखण्ड, जिसे 'वनांचल' और 'आदिवासियों की भूमि' कहा जाता है, भारत के उन राज्यों में से एक है जहाँ जनजातियाँ न केवल सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की धुरी है, बल्कि राजनीतिक परिदृश्य को भी गहराई से प्रभावित करती है। झारखण्ड की राजनीति में जनजातीय समुदायों की भूमिका ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण रही है। यह भूमिका संघर्ष, स्वशासन की मांग और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए हुई आंदोलनों से लेकर आज की लोकतांत्रिक राजनीति तक फैली हुई है। झारखण्ड का गठन 15 नवम्बर 2000 को बिहार से अलग होकर हुआ। यह अलग राज्य बनाने की मांग मुख्यतः जनजातीय समुदायों के नेतृत्व में हुई, जिनका मानना था कि बिहार की सरकार झारखण्ड की प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रही है और जनजातियों को हाशिये पर रखा जा रहा है। इस आंदोलन की जड़ें ब्रिटिश काल तक जाती है जब बिरसा मुण्डा जैसे जननायकों ने जल, जंगल, जमीन की रक्षा के लिए तथा आदिवासी अस्मिता को बचाने के लिए संघर्श किया। आज भी बिरसा मुण्डा को 'धरती आबा' के रूप में पूजा जाता है। झारखण्ड राज्य आंदोलन जनजातीय चेतना और आत्म सम्मान से प्रेरित था। यह आंदोलन सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से एक आदिवासी पहचान की पुर्नस्थापना का माध्यम बना। हलाँकि झारखण्ड की राजनीति में जनजातियों की सक्रिय भूमिका रही है और जनजातीय समुदाय के प्रतिनिधि काफी संख्या में मौजूद रहें है, इसके बावजूद उनके समक्ष कई चुनौतियाँ बनी हुई है। खनन और औद्यौगिकीकरण के कारण जनजातीय भूमि का अधिग्रहण एक प्रमुख मुद्दा है। जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं का अभाव है, कई जनजातीय इलाकों में नक्सली गतिविधियों का प्रभाव है, जिससे सामान्य जनजीवन प्रभावित होता है।

झारखण्ड एक आदिवासी बहुल राज्य है। इस राज्य की कुल जनसंख्या में 26 से 27 प्रतिशत जनसंख्या जनजाति समाज की है जिनमें मुंडा, संथाल, उरांव, हो, भुमिज, कोल, बिरहोर, खड़िया, गोंड, बिरजिया, चेरो, चिक-बड़ाइक के साथ-साथ 32 जनजाति समुदाय के लोग शामिल हैं। आदिम जनजातियों की अर्थव्यवस्था कृषि पूर्वकालीन है तथा इसका जीवन यापन आखेट शिकार और झूम कृषि पर आधारित है। झारखण्ड में खड़िया और बिरहोर जनजाति का आगमन कैमूर पहाड़ियों की तरफ से माना जाता है। मुंडा जनजाति के बारे में मान्यता है कि इस जनजाति ने रोहतास क्षेत्र से होकर छोटानागपुर क्षेत्र में प्रवेश किया। उराँव जनजाति दक्षिण भारत के निवासी थे जो विभिन्न स्थानों से होकर छोटानागपुर प्रदेश में आए। इनकी एक शाखा राजमहल क्षेत्र में जबकि दूसरी शाखा पलामू क्षेत्र में बस गई। झारखण्ड की जनजातियाँ श्रीलंका की बेड्डा तथा आस्ट्रेलिया के मूल निवासियों से साम्यता रखते हैं तथा यहाँ के आदिवासी प्रोटो-आस्ट्रोलॉयड प्रजाति से सम्बन्ध रखते हैं। जॉर्ज ग्रियर्सन (भाषा वैज्ञानिक) ने झारखण्ड क्षेत्र की जनजातियों को ऑस्ट्रिक एवं द्रविड़ दो समूह में विभाजित किया है। भाषायी आधार पर झारखण्ड की अधिकांश जनजातियाँ ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार तथा द्रविड़ियन /द्रविड़ भाषा परिवार से सम्बन्धित है। ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार का सम्बन्ध ऑस्ट्रिक महाभाषा परिवार से है। ऑस्ट्रिक महाभाषा परिवार के अंतर्गत ऑस्ट्रो- एशियाटिक भाषा परिवार के अलावा ऑस्ट्रोनिशियन भाषा परिवार (दक्षिण पूर्व एशिया) शामिल है। भाषायी विविधता के आधार पर उराँव जनजाति का सम्बन्ध 'कूडूख' भाषा से है, जबकि माल-पहाड़िया एवं सौरिया पहाड़िया जनजाति 'मालतो भाषा' (द्रविड़ समूह की भाषा) से सम्बन्धित है। शेष जनजातियों का सम्बन्ध ऑस्ट्रिक भाषा समूह से है। झारखण्ड का जनजातीय समाज मुख्यतः पितृसत्तात्मक है। यहाँ की जनजातियों में प्रायः एकल परिवार की व्यवस्था पाई जाती है। यहाँ के जनजातीय समाज में लिंग भेद की इजाजत नहीं होती है। यहाँ की जनजातियों में विभिन्न गोत्र पाए जाते हैं। गोत्र को किली, कुंदा, पारी आदि नामों से जाना जाता है। जनजातियों के प्रत्येक गोत्र का एक प्रतीक (गोत्रचिन्ह) होता है जिसे 'टोटम' कहा जाता है। प्रत्येक गोत्र से एक प्रतीक (गोत्रचिन्ह)

– प्राणी, वृक्ष या पदार्थ सम्बन्धित होता है जिसे हानि पहुँचाना या इसका प्रयोग सामाजिक नियमों द्वारा वर्जित होता है। जनजातियों के प्रत्येक गोत्र अपने-आप को एक विशिष्ट पूर्वज की संतान मानते हैं।

यह एक ऐसा राज्य है जहां पर जनजाति समाज की भूमिका राजनीति में अत्यंत महत्वपूर्ण है। झारखण्ड की राजनीति में जनजाति समाज का प्रभाव न केवल उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति पर बल्कि राज्य की विकास नीतियों और राजनीतिक गठबंधनों पर भी गहरा असर डालता है। 15 नवम्बर 2000 में झारखण्ड की स्थापना हुई और उस समय से लेकर अब तक रघुवर दास को छोड़कर सभी मुख्यमंत्री जनजातीय समाज से ही बने हैं।

झारखण्ड की राजनीति में जनजाति समाज के हितो को ध्यान में रखते हुए कई राजनीतिक दलों का निर्माण किया गया है, जिनमें झारखण्ड पार्टी, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, झारखण्ड दिशोम पार्टी, ऑल झारखण्ड स्टूडेन्ट्स यूनियन, अखिल भारतीय झारखण्ड पार्टी, डेमोक्रेटिक झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, झारखण्ड जन मोर्चा, झारखण्ड जनाधिकार मंच, झारखण्ड जनाधिकार पार्टी, झारखण्ड पीपुल्स पार्टी, आदि झारखण्ड में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही है। इन क्षेत्रीय दलों में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM) का झारखण्ड की राजनीति में महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। इस दल के नेतृत्व में कई बार झारखण्ड में गठबंधन की सरकार बनी है। वर्तमान में भी हेमंत सोरेन के नेत्त्व में (INDIA) गठबंधन की सरकार झारखण्ड में कायम है। झारखण्ड मुक्ति मोर्चा अपने राजनीतिक सफर में आदिवासी समाज के हितों के लिए कई कदम उठाए हैं, उन्होंनें जनजाति समाज को न केवल उनके जल, जंगल, जमीन के साथ-साथ धार्मिक और सांस्कृतिक अधिकारों की रक्षा की है, बल्कि उनके आर्थिक और सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए भी कई योजनाएं बनाई है। इसके अलावा भारतीय जनता पार्टी (BJP) और कांग्रेस जैसी राश्ट्रीय राजनीतिक पार्टियां भी अपनी राजनीतिक रणनीतियों में जनजाति समाज को अपने साथ रखने के लिए उनके विचारों और उनके विकास के लिए विचार करती है।

झारखण्ड की राजनीति में जनजाति की अकल्पनीय भूमिका का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक आदिवासी निर्दलीय विधायक ने कांग्रेस एवं भाजपा जैसे राष्ट्रीय राजनीतिक दल को अपने महत्वपूर्ण प्रभाव का अहसास दिलाते हुए 14 सितम्बर 2006 को झारखण्ड का पाँचवां मुख्यमंत्री बनने का गौरव प्राप्त किया। सितम्बर 2006 में आदिवासी हितों की अनदेखी करने एवं विकास योजनाओं को अविलम्ब लागू न करने के विरोध में श्री मधुकोड़ा ने 3 अन्य निर्दलीय विधायकों के साथ मिलकर अर्जून मुण्डा सरकार से अपना समर्थन वापस लेकर सरकार गिरा दी और राष्ट्रीय जनता दल, कांग्रेस, झामुमों तथा निर्दलीय विधायकों के समर्थन से सरकार बनाई जो 27 अगस्त 2008 तक 709 दिन चली। जनजातीय समाज से आने वाले श्री मधुकोड़ा भारतीय राजनीति के सुलझे हुए राजनितज्ञ एवं अद्भूत हीरे हैं जिन्होंने भारत का प्रथम निर्दलीय मुख्यमंत्री बनकर इतिहास रचा।

झारखण्ड मे किसी भी राजनीतिक दल की सरकार हो, सभी ने आदिवासी हितों को सर्वोपरी माना और इसे केन्द्र में रखकर ही अपनी नीतियों का निर्माण किया है। पंचायती राज व्यवस्थाओं के जरिए जनजाति समाज को अपने क्षेत्रीय विकास में योगदान देने का एक अवसर मिलता है। झारखण्ड में आदिवासी लोगों के लिए ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद में प्रतिनिधि के रूप में चुना जाना उनकी राजनीतिक पहचान को मजबूती प्रदान करता है। इसके माध्यम से जनजाति समाज के लोग अपने विचारों और सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए फैसले लेते हैं। ये जनजाति प्रतिनिधि अपने समाज की आवाज उठाकर उनके अधिकारों के लिए काम करते हैं।

झारखण्ड की राजनीति में जनजाति समाज के अधिकारों के लिए कई आंदोलन भी हुए हैं। सरना धर्म के लिए आंदोलन, जो जनजाति समाज के धार्मिक और सांस्क्तिक पहचान की रक्षा के लिए था, ने राजनीति में अपनी एक पहचान बनाई। सरना धर्म कोड की मांग सड़कों, विधानसभाओं, संसद और सरकारी दफ्तरों के बाहर की गई है। मौजूदा आंदोलन मे सबसे आगे रहने वाले समूह को आदिवासी सेंगेल अभियान (ASA) कहा जाता है, जिसका तात्पर्य आदिवासी सषक्तिकरण से है। ASA ने सरना धर्म कोड की मांग के लिए असम, झारखण्ड, बिहार, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा और अरूणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में लोंगो को संगठित किया है। वे राजधानी दिल्ली सहित कई जगहों पर विरोध प्रदर्शन के लिए लामबंद हुए और ट्रेनों को रोका है। उन्होंने 2021 की जनगणना का बहिष्कार करने और जनगणना से पहले सरना कोड को मंजूरी नहीं मिलने पर अहिंसक विरोध में शामिल होने की भी धमकी दी थी। हाल ही में उन्होंने 2024 के आम चुनावों से पहले 'कोड नहीं तो वोट नहीं' का नारा लगाया था। इसके अलावा, उन्होंने जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण के मौजूदा दौर में सरना विश्वास की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला। सरना जल, जंगल, जमीन की प्रार्थना करते हैं जो पर्यावरण की रक्षा करने वाले विश्व दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है। उन्होंने रणनीतिक अनिवार्यता का भी इस्तेमाल किया क्योंकि आदिवासियों के भीतर अनुमानित 83 धर्म है और सभी आदिवासी सरना धर्म को नहीं मानते हैं। इसीलिए 19 राज्यों के आदिवासी समूहों का सरना कोड की मांग के लिए एक साथ आना इन विभिन्न समूहों के बीच एक समझौते को दर्शाता है ताकि वे खुद को अन्य धर्मों से अलग करने का विकल्प रखने के अपने लक्ष्य के लिए एक साथ आ सके।

जनजातियों ने भूमि अधिकार और सामाजिक न्याय के लिए भी कई आंदोलन किए हैं, जिसमें जनजाति समाज ने अपने अधिकारों को लेकर राजनीतिक दलों पर अपना दबाव बनाया है। झारखण्ड में आदिवासियों की सक्रिय भूमिका के चलते ही इस राज्य में विकास

की जो योजनाएं बनाई जा रही है, उनमें जनजाति समाज को प्राथमिकता दी जा रही है। राज्य में आधुनिकीकरण के साथ-साथ, जनजाति समाज के लिए विशेष योजनाएं, जैसे की आदिवासी स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए योजनाएं, उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कृषि और ग्राम विकास की योजनाएं बनाई जा रही है। यह जनजाति समाज के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है, जो उनकी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति को सुधारने में मददगार है। वर्तमान समय में झारखण्ड में नौकरियों के लिए स्थानीय नीति को लेकर विवाद रहा है। आदिवासी और मूलवासी समूह की यह मांग है कि सरकारी नौकरियों और शिक्षा में स्थानीय लोगों को प्राथमिकता दी जाय। इसके अलावा औद्यौगिकीकरण और खनन परियोजनाओं के लिए जबरन भूमि अधिग्रहण के खिलाफ आदिवासी समाज विद्रोह कर रहे हैं। साथ ही साथ पत्थलगड़ी आंदोलन के रूप में कुछ क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की मांग और राज्य सरकार के अधिकारों को चुनौती दी गई। सरकारी भर्तियाँ समय पर न निकलने, प्रतियोगी परीक्षाओं में गड़बड़ियों और रिजल्ट में देरी को लेकर छात्र वर्ग आंदोलित हैं। छात्रों की प्रमुख मांगे पारदर्शी भर्ती प्रक्रिया, समय पर परीक्षा और प्रयाप्त रोजगार की व्यवस्था करने की रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सुविधा, बिजली, सड़क आदि मूलभमत सुविधाओं की मांग स्थानीय लोगों द्वारा की जाती रही है। झारखण्ड की सरकार ने हाल के वर्षो में विभिन्न आंदोलनों और जन मांगों के समाधान के लिए कई कदम उठाए हैं- जैसे सरकार ने 1932 के खतियान के आधार पर स्थानीय नीति, भूमि अधिग्रहण के मामलों में पारदर्शिता बढ़ाने और आदिवासी समुदायों के अधिकारों की रक्षा के लिए विशेष समितियों का गठन, विभिन्न विभागों में रिक्त पदों को भरने के लिए नियमित भर्तियाँ, प्रतियोगी परीक्षाओं की प्रक्रिया को पारदर्शी और समयबद्ध बनाने के लिए नई गाइडलाइंस तथा ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं के विकास के लिए विशेष याोजनाएँ शुरू की गई है। असके अंतर्गत 'हर घर जल' योजना ग्रामीण विद्युतीकरण परियोजनाएँ और प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना के तहत सड़क निर्माण का कार्य किया जा रहा है।

अंत में हम कह सकते हैं कि झारखण्ड की राजनीति में आदिवासियों की अहम भूमिका है। झारखण्ड की राजनीति में जनजाति समाज की भूमिका न केवल उनके सामाजिक और सांस्कृतिक हितों से जुड़ी हुई है, बल्कि उनके राजनीतिक और आर्थिक विकास के लिए भी एक मूलभूत तत्व है। यहां की राजनीति में जनजातीय राजनीतिक नेताओं का वर्चस्व रहा है। इनके योगदान के बिना झारखण्ड की राजनीति और विकास की नीति अधूरी होगी। आवश्यकता इस बात की है कि नेतागण आदिवासियों को अपना वोट बैंक न समझे। उनके विकास के लिए कार्य करें।

संदर्भः-

आलम एस. और नायक, के. वी. (2023) ''सरना आदिवासी धर्म संहिताः भारत में आदिवासियों की धार्मिक पहचान को प्रासांगिक बनाना'' सतत् विकास पर अंतःविशयक परिप्रेक्ष्य में, सी.आर.सी प्रेस।

ओरांव, डी. (2023) ''आदिवासियों द्वारा सरना कोड की मांग''

मरकाम, एस. (2019) ''आदिवासी अपने धार्मो के लिए मान्यता क्यों मांग रहे हैं।'' द वायर।

नवभारत टाइम्स Edited by Ravi Sinha आई.एन.एस. 11 फरवरी 2024

डिजिटल युग का अदृश्य खतराः साइबर अपराध

प्रो० नरेश कुमार पान

सहायक प्रोफेसर, नोवामुण्डी कॉलेज, नोवामुण्डी

साइबर अपराध आज विश्व के लिए एक अभिशाप बन चुका है। इस अपराध के चंगुल में हर दिन सैंकड़ों लोग फंस रहे हैं। साइबर अपराध का पहला केस 1981 में अमेरिका में आया था। इयान मर्फी जिन्हें कैप्टन जैप के नाम से जाना जाता है, साइबर अपराध के लिए दोशी ठहराए जाने वाले पहले व्यक्ति थे। इन्होंने अमेरिकी टेलीफोन कंपनी की आंतरिक घड़ी को हैक कर लिया ताकि उपयोगकर्त्ताओं को व्यस्त समय के दौरान मुफ्त कॉल करने की अनुमति मिल सके। 1981 से यह अपराध प्रारंभ होकर वर्तमान समय में विकराल स्वरूप धारण कर चुका है।

साइबर अपराध जिसे कम्प्यूटर अपराध भी कहा जाता है। गैर कानूनी गतिविधियों के लिए कम्प्यूटर और इसी तरह के इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का उपयोग करता है। धोखाधड़ी करना, चाइल्ड पोर्नोग्राफी की तस्करी, पहचान चोरी और गोपनीयता पर हमला साइबर अपराधों की कुछ उदाहरण है। साइबर अपराध विषेश रूप से इंटरनेट के माध्यम से किया जाता है। क्योंकि आज लगभग सभी लोग व्यवसाय, मनोरंजन के साधन, सरकारी एजेंसिया, बैंक, रेलवे, पोस्टऑफिस, बंदरगाह, हवाई अड्डे, कंपनियाँ, स्कूल, कॉलेज आदि इंटरनेट से जुड़े है। आए दिन समाचार पत्रों एवं सोशल मीडिया में यह देखने को मिलता है कि साइबर अपराधी ने लाखों रूपये का बैंक अकाउंट से सफाया कर दिया है। इस तरह के मामले दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

पहले अपराध केवल भौतिक सीमाओं तक सीमित थे, लेकिन आज यह एक ऐसे अदृश्य खतरे के रूप में हमारे सामने है जो बिना दरवाजा खटखटाये हमारे व्यक्तिगत संसार में प्रवेश कर सकता है। आज के आधुनिक डिजिटल जीवन में इंटरनेट की गति ने अपराधियों के हाथ में ऐसी शक्ति दे दी है, जिससे वह कुछ ही समय में किसी भी व्यक्ति की पहचान, वित्तीय लेन-देन, संवाद अथवा गोपनीय सूचना पर आक्रमण कर सकते है। साइबर अपराध केवल तकनीकी कौशल का परिणाम नहीं है बल्कि मनोवैज्ञानिक छल का भी उदाहरण है, जहाँ अपराधी व्यक्ति के विश्वास, जिज्ञासा अथवा भय का लाभ उठाते हैं। साइबर अपराध की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अपराधी को अनाम बनाकर रखता है, जिससे पीड़ित को यह भी ज्ञात नहीं होता कि किस क्षण उसकी सूचनाएँ किसी अजनबी के हाथों में चली गई।

साइबर अपराध के प्रकार-

भ्रामक संदेश अथवा झूठी वेवसाइट द्वारा धोखा - इस प्रकार के अपराध में नकली ई-मेल संदेश अथवा वेवसाइट बनाकर व्यक्ति से उसकी निजी अथवा बैंक से संबंधित जानकारी प्राप्त कर लेते हैं जैसे झूठा संदेश, ''आप का बैंक खाता अवरूद्ध हो जायेगा कृपया केवाईसी अद्यतन करें।''

पहचान की चोरी - इस प्रकार के साइबर अपराध में अपराधी किसी व्यक्ति का नाम, पता, आधार संख्या, पैन संख्या, फोटो अथवा मोबाइल नम्बर का दुरूपयोग कर सकता है जैसे अपराधी किसी की सोशल मीडिया प्रोफाइल की नकल बनाकर लोगों से धन माँग सकता है या किसी दूसरे व्यक्ति के पैन नम्बर से लोन ले सकता है।

अनाधिकृत रूप से डाटा या सिस्टम में प्रवेश करना- इसमें अपराधी ई-मेल अथवा सोशल मीडिया खाते को हैक कर लेते हैं।

ऑनलाइन वित्तीय धोखाधड़ी- इस प्रकार के साइबर अपराध में अपराधी इंटरनेट के माध्यम से किसी व्यक्ति से छल पूर्वक धन प्राप्त कर लेते हैं। (यू पी आई धोखाधड़ी, नकली नौकरी, निवेश या लॉटरी के नाम से ठगी), Ai~ का प्रयोग करके हमारे परचित की आवाज में हु-बहु बात करना और कोई भी आकस्मिक स्थिति बताकर राशि का हस्तांतरण किसी बैंक खाते में करवाना।

विशिंग - फोन पर बैंक कर्मचारी, पुलिस या किसी कम्पनी का अधिकारी बनकर हमारी जानकारी लेना या पैसे ठगना।

साइबर उत्पीड़न- इस प्रकार के अपराध में अपराधी इंटरनेट पर किसी व्यक्ति को मानसिक रूप से परेशान करता है, अपमानित करता है या धमकाता है जैसे- सोशल मीडिया पर अभ्रद टिप्पणी करना, किसी के साथ ऑनलाइन बदसुलकी या मजाक उड़ाना, किसी के बारे में झूठी अफवाह फैलाना यह सभी साइबर उत्पीड़न के उदाहरण हैं।

बच्चों के विरूद्ध साइबर अपराध - नकली पहचान बनाकर बच्चों से अनुचित बातचीत करना, ऑनलाइन खेलों के माध्यम से बच्चों को जाल में फसाना।

इन सबके अलावे साइबर अपराध के ऐसे कई प्रकार हैं जो हमें दिन-प्रतिदिन देखने और सुनने को मिल रहें हैं।

आज हर एक व्यक्ति अपने अधिकांश कार्यों को पूरा करने के लिए इंटरनेट का प्रयोग करता है और किसी एक कार्य को पूरा करने के लिए दस्तावेजों की आवश्यकता होती है, जिसमें नाम, आधार नम्बर, पैन नम्बर, जन्म तिथि, पता, फोटो आदि की आवश्यकता होती है। जिसे इंटरनेट पर प्रसारित कर दिया जाता है। इसके साथ ही मोबाइल नंबर, ओ.टी.पी., बैंक और वित्तीय जानकारी, ईमेल और पासवर्ड, सोशल मीडिया डाटा (फोटो, चौट, संपर्क, निजी जानकारी) यह ऐसे संवेदनशील व्यक्तिगत जानकारियाँ हैं, जिन्हें साइबर अपराधी सर्वाधिक चुरा लेते हैं।

भारत में साइबर कानून- साइबर अपराध और इंटरनेट के बढ़ते उपयोग, डिजिटल दस्तावेज और ई-कॉमर्स की वैधता को ध्यान में रखते हुए, उन्हें नियंत्रित करने के लिए अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार के समय भारत में सबसे महत्वपूर्ण साइबर कानून IT ACT 2000 (सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम) लाया गया। जिसमें किसी भी प्रकार के साइबर अपराध के मामले में जुर्माना, उम्र कैद की सजा आदि का अलग-अलग धाराओं के अंतर्गत पूर्ण विवरण है।

1930 हेल्पलाइन नंबर- भारत में साइबर अपराध की शिकायत दर्ज करने के लिए एक ठोस राष्ट्रीय टोल फ्री हेल्पलाइन नंबर 1930 है। जिसमें किसी भी प्रकार के वित्तीय धोखाधड़ी के लिए डायल किया जा सकता है। साथ ही भारत सरकार ने cybercrime.gov.in एक ऑनलाइन पोर्टल सथापित किया है। इस पोर्टल पर किसी भी प्रकार की साइबर शिकायत दर्ज की जा सकती है।

आज हम मोबाइल, टेलीविजन, इंटरनेट पर काफी समय बिताते हैं, साइबर अपराध पर कई फिल्में बन चुकी है। हम उन्हें मनोरंजन के लिए देखते हैं और भूल जाते हैं, पर यह फिल्में, कहानियाँ, समाचार आदि हमारे सामने क्यों प्रस्तुत किए जा रहें यह हमें एक पल के लिए सोंचने पर मजबूर करती है। कोई भी व्यक्ति चाहे अधिक आय कमाता हो या कम यह धन उसकी कड़ी मेहनत का फल होता है जिसे वह अपने आने वाले भविष्य के लिए इकट्ठा करता है। बात धन की हो या किसी के प्रतिष्ठा की, साइबर अपराध से एक पल में वर्तमान और भविष्य अंधकार में चला जाता है।

इस लेख का मुख्य उद्देश्य साइबर अपराध के जाल में फंसने से लोगों को बचाने के लिए जागरूक करना है। यह लेख साइबर अपराध की प्रकृति, इसके प्रकारों, इससे संबंधित कानूनों, सरकार द्वारा साइबर अपराध सुरक्षा में उठाए गए कदम आदि का विवरणात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही साथ यह लेख साइबर अपराध को रोकने एवं इससे बचने का उपाय ढूंढ़ने की कोशिष करने का एक प्रयास है।

संदर्भ सूची-

वेबसाइट ऑनलाइन स्रोत
नंदन कमलेश 2020 - साइबर क्राइम एण्ड लॉ इन इण्डिया

प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली और आज उनकी प्रासंगिकता

प्रो० परमानन्द महतो

विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र, नोवामुण्डी कॉलेज, नोवामुण्डी

प्राचीन भारतीय ज्ञान पद्धति हमारी संस्कृति और सभ्यता का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। हमारे देश के ऋषि-मुनी ज्ञान की खोज में अपना सम्पूर्ण जीवन न्योछावर कर देते थे। वे घोर जंगल में एकांत में रहकर ज्ञान की खोज करते थे। जंगल उनका अनुसंधान केन्द्र होता था। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत और गीता प्राचीन काल से ही ज्ञान के अक्षय श्रोत हैं। वेद शब्द की उत्पति संस्कृत के विद् धातु से बना है जिसका अर्थ होता है सुना हुआ या ज्ञान। हिन्दू धर्म में चार वेदों का वर्णन मिलता है-ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। अधिकांश लोगों का मत है कि वेद मानव निर्मित नहीं है। कुछ लोग यह भी मानते हैं देवताओं द्वारा वेद का ज्ञान मौखिक रूप से वेद व्यास को सुनाया गया। आगे चलकर वेद व्यास ने इसे संस्कृत भाषा में लिखा। सत्यता जो भी रहा हो लेकिन वेदों में अथाह ज्ञान भरा पड़ा है।

हिन्दू धर्म के चार वेदों में सबसे प्राचीन ऋग्वेद को माना गया है। यह संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इसमें 1028 भजन है। इन भजनों में देवताओं का गुणगान किया गया है। यजुर्वेद का उपयोग यज्ञों और अनुष्ठानों में किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के यज्ञों और मंत्रों का वर्णन है। तीसरे नम्बर में सामवेद का स्थान आता है। सामवेद शब्द का अर्थ गान है और इस वेद में 1875 मंत्र हैं। इसका प्रयोग मुख्य रूप यज्ञों और अनुष्ठानों के समय किया जाता है। यह यज्ञों और अनुष्ठानों के समय गाए जाने वाले मंत्रों का समूह है। हिन्दू धर्म के चार वेदों में अथर्वेद का स्थान चौथे नम्बर पर आता है। इस वेद में देवताओं की स्तूति, चिकित्सा विज्ञान और दर्शन से सम्बन्धित मंत्र हैं। इस वेद को शांति का प्रतीक समझा जाता है।

पुराण हिन्दू धर्म के प्रमुख धार्मिक ग्रंथ हैं। हिन्दू धर्म में 18 पुराणों का वर्णन मिलता है। ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, भागवत पुराण, नारद पुराण, मार्केण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण, बाराह पुराण, स्कंद पुराण, वामन पुरान, कूर्म पुराण, मत्स पुराण, गरूड़ पुराण, ब्रमांड पुराण। 18 पुराणों में व्यास की दो ही बातें हैं ''दूसरों का उपकार करने से पुण्य मिलता है और दूसरों को सताने से पाप मिलता है।'' पुराण हिन्दू धर्म का मार्गदर्शक है। पुराणों विभिन्न कथा और कहानियों का वर्णन किया गया है। इन कथा-कहानियों के माध्यम से शिक्षा दिया जाता है। पुराण हमारे सभ्यता और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। हिन्दू धर्मावलम्बी इन पुराणों में बताए गए नियमों का अनुसरण करते हैं और समाज का कल्याण करते हैं।

रामायण की रचना वाल्मीकी द्वारा की गई थी। यह एक महाकाव्य है। यह संस्कृत भाषा में लिखी गई है। भगवान राम अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र थे। भगवान राम को 14 वर्ष का वनवास मिलता है। इस महाकाव्य में सत्य के प्रति भगवान राम की अटूट निष्ठा को दिखलाया गया है। उनकी धर्मपत्नी का सीता था। वनवास के समय रावण रूप बदलकर सीता का हरण कर लेते हैं। भगवान राम वानर सेना के सहयोग से लंका पर आक्रमण कर सीता को सकुशल वापस ले आते हैं। रामायण में बुराइयों पर अच्छाईयों की विजय को दर्शाया गया है।

महाभारत युद्ध में कौरवों और पाण्डवों के बीच सिंहासन के लिए हुआ एक संघर्ष था। महाभारत युद्ध के अनेक कारण थे जिसमें मुख्य रूप से द्रौपदी का चीर हरण, जुआ, भीष्म की प्रतिज्ञा, धृतराष्ट्र के पुत्र मोह, शकुनी का छल आदि। यह युद्ध धर्म और अधर्म के बीच एक निर्णायक लड़ाई थी। श्रीकृष्ण पाण्डवों का मार्गदर्शन कर रहे थे। अंततः युद्ध में पाण्डवों का विजय हुई।

गीता भगवान कृष्ण के द्वारा अर्जून को दिया गया उपदेश है। इस ग्रंथ में बतलाया गया है कि मनुष्यों को सिर्फ अपने कर्म करते जाना है फल की आशा नहीं करनी चाहिए। फल देने वाले ईश्वर हैं। इस ग्रंथ में यह भी बतलाया गया है कि जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब भगवान स्वयं प्रकट होते हैं। अर्धमियों का नाश कर धर्म की रक्षा करते हैं। इस ग्रंथ में यह भी बतलाया गया है कि मनुष्य की आत्मा अजर-अमर है। इसका कभी नाश नहीं होता। जिस तरह मनुष्य अपने पुराने कपड़ों को त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है ठीक उसी प्रकार आत्मा भी शरीर के दुर्बल, असहाय हो जाने पर इस शरीर को त्याग कर दूसरे षरीर में प्रवेश कर जाती है। श्रीकृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में संकेत दिया है कि सब धर्मों को छोड़कर मेरे शरण में आओ तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। इस प्रकार गीता में कर्म, धर्म और मोक्ष का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है।

सदियों की गुलामी के बाद हमें 15 अगस्त 1947 को आजादी मिली। विरासत में मिला गरीबी, भूखमरी और बेरोजगारी। देश के सामने समस्या थी किस प्रकार हमारे देश के लोगों को शिक्षित किया जाय? किस प्रकार गरीबी और बेरोजगारी को दूर किया जाय?

आदि अनेक चुनौतियाँ देश के सामने थी। आजादी के बाद सर्वप्रथम हमारे देश में बुनियादी शिक्षा लाई गई। महात्मा गाँधी के अनुसार स्वावलम्बन बुनियादी शिक्षा की जीवनरेखा है। गाँधीजी का कहना था कि शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए कि छात्र आत्मनिर्भर बन सके। छात्र उत्पादन कर इतना आय प्राप्त कर सके अपना पढ़ाई-लिखाई कर सके। इस प्रकार शिक्षा के द्वारा उनका आर्थिक एवं शैक्षिक विकास हो सके। गाँधीजी का मत था कि पढ़ने-लिखने के बाद इस प्रकार बन कर घर लौटे कि वह समाज में एक उत्पादक व्यक्ति की पहचान बना सके। स्वावलम्बन के द्वारा 7 से 14 वर्ष के बच्चे के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाए और लोगों की बेरोजगारी की समस्या भी हल हो सके। बुनियादी षिक्षा किसी व्यक्ति और राष्ट्र की नींव होती है। यह बच्चों के विकास और बुद्धि के लिए आवश्यक है। बुनियादी षिक्षा के बाद देश में राधाकृष्णन आयोग प्रयोग में लाया गया। इसे विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग भी कहा जाता है। 1948 में डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया गया था। इसका मुख्य उद्देश्य भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा की स्थिति का परीक्षण करना और सुधार करना था। इसके बाद देश में मुदालियर कमीशन आया। मुदालियर कमीशन जिसे भारत में माध्यमिक शिक्षा आयोग के रूप में भी जाना जाता है 1952-53 में स्थापित किया गया था। यह आयोग भारत में माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए लाया गया था। इसके बाद देश में कोठारी कमीशन की नियुक्ति की गई। कोठारी कमीशन को राष्ट्रीय शिक्षा आयोग भी कहा जाता है। 1964-66 में भारत सरकार द्वारा इसे नियुक्त किया गया था। कोठारी आयोग के सुझाव के आधार पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति सारे देश की शिक्षा के लिए अपनाई गई। कोठारी कमीशन की नियुक्ति का मुख्य लक्ष्य एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की स्थापना करना था जो शिक्षा के प्रत्येक स्तर-प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा का मूल्यांकन कर सके। 10+2+3 पैटर्न को सम्पूर्ण देश में लागू किया गया। आयोग ने हिन्दी भाषी राज्यों में दो भाषाएँ (हिन्दी, अंग्रेजी) और एक क्षेत्रीय भाषा। गैर हिन्दी भाषी राज्यों में तीन भाषाएँ (हिन्दी, अंग्रेजी और एक क्षेत्रीय भाषा सिखाने की शिफारीश की।

प्राचीन काल में ज्ञान प्राप्त करने के लिए सबको गुरू के आश्रम में जाना पड़ता था। राजा और प्रजा के संतानों के बीच समान व्यवहार किया जाता था। कहीं कोई भेद-भाव नहीं था।

जब लिपि का अविष्कार नहीं हुआ था उस समय ज्ञान एक ऋषि से दूसरे ऋषि, दूसरे से तीसरे ऋषि तक मौखिक संचार के माध्यम से होता था। दुनिया में जब कहीं भी विश्वविद्यालय नहीं था उस समय हमारे देश में नालंदा और तक्षशिला विश्वविद्यालय थे। यहां ज्ञान और विज्ञान की पढ़ाई होती थी। देश विदेश से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से आते थे। कहा जाता है कि यहाँ दो हजार शिक्षक और दस हजार विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करते थे। प्राचीन काल में नालंदा विश्वविद्यालय ज्ञान का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। यह विश्वविद्यालय आठ सौ वर्षों तक सम्पूर्ण संसार को ज्ञान प्रदान करता रहा। बाद में मुस्लिम आक्रांता बख्तियार खिलजी नाम के लूटेरे ने इस विश्वविद्यालय को आग के हवाले कर दिया। हजारों वर्षों का संचित ज्ञान सदा-सदा के लिए समाप्त हो गया। तक्षशिला विश्वविद्यालय भी प्राचीन काल में शिक्षा का एक केन्द्र था। यों तो तक्षशिला विश्वविद्यालय में सभी विषयों की पढ़ाई होती थी पर विशेष रूप से यहाँ आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति पर जोर दिया जाता था।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र ज्ञान का खजाना है। कौटिल्य को चाणक्य के नाम से भी जाना जाता है। चाणक्य अर्थशास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। मानव का अस्तित्व और आत्मनिर्भर जीवन। चाणक्य अर्थशास्त्र से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं और उसे वर्तमान जीवन में अपनाकर स्वावलंबी बन सकते हैं। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में जीवन के हर पहलू पर विचार विमर्श किया है। वे तक्षशिक्षा विश्वविद्यालय के प्रकाण्ड अर्थशास्त्री एवं राजनीतिशास्त्री थे। चाणक्य चंद्रगुप्त के गुरू थे। वे चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार के प्रधानमंत्री और सलाहकार भी थे। चाणक्य के निर्देशन में चलकर चंद्रगुप्त मौर्य ने नंद वंश की सारी अव्यवस्था को उखाड़ फेंका। चाणक्य अर्थशास्त्र में आर्थिक नीति, सैनिक रणनीति और राजव्यवस्था पर विशेष जोड़ दिया गया है। चाणक्य के अर्थशास्त्र में कृषि, वाणिज्य, सामाजिक व्यवस्था और राजा के अधिकार आौर कतव्यों को विशेष रूप से बल दिया गया है। इस अर्थशास्त्र का मुख्य उद्देश्य यह था कि प्रजा का कल्याण और राज्य की समृद्धि थी। राज्य की समृद्धि और प्रजा का समाधान कैये होगा? आधुनिक समय में भी हम चाणक्य के अर्थशास्त्र को आधार स्तंभ मानकर उनकी अच्छे गुणों अपना सकतें है और जनता का कल्याण कर सकते हैं। चाणक्य के समय लोग पारंपरिक ढंग से खेती करते थे फिर भी लोग सम्पन्न थे। तत्कालीन समाज के लोगों की जरूरतें भी कम थी। अत: वे अपने जरूरतो के चीजों को स्वयं उत्पादन कर लेते थे। आज का युग तकनीकी का युग आज के लोगों की जरूरतें अधिक हैं। इन जरूरतों को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत देख सकतें हैं-

1. **कृषि के क्षेत्र में**- कृषि के क्षेत्र में अने अनुसंधान हो रहे हैं। हमारे देश के कृषि विश्वविद्यालय नये नये बीजों का अविष्कार कर रहें हैं। 1960 के दशक में हमारे देश में हरित क्रान्ति आई जिसमें कृषि के स्वरूप को बदल कर रख दिया। हमारे देश का छोटा सा राज्य पंजाब है। यहाँ के किसान ट्रैक्टर से खेतों की जुताई करते हैं, उन्नत बीजों का प्रयोग करते हैं, रसायनिक खादों का प्रयोग करते हैं, सिंचाई का उचित प्रबंध है जिसके कारण कृषि के क्षेत्र में अभुतपूर्व परिवर्तन हुआ। अब पंजाब अकेंले उत्पादन कर सम्पूर्ण राष्ट्र को अन्न का आपूर्ति कर सकता है। ऐसा ही यदि देश के सभी राज्यों में उत्पादन होगा तो निश्चय ही हमारा देश विकसित राष्ट्र कहलायेगा। अधिक उत्पादन होगा तो किसानों की आय बढ़ेगी, बचत और विनियोग बढ़ेगी और जीवन स्तर

ऊँचा होगा। आज विश्व में जहाँ भी अन्न का संकट होता है भारत अन्नदाता बनकर उसको अन्न का आपूर्ति करता है। चाणक्य कृषि को अर्थशास्त्र को रीढ़ मानते थे। आज भी कृषि हमारे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। ज्यादा उत्पादन होने के कारण हम दुनिया के अन्य देशों को अनाज का निर्यात कर पा रहें हैं। करोना काल में खाद्यान की कमी से जूझ रहे अनेक देशों को भारत ने अन्न का आपूर्ति किया। चाणक्य अपने अर्थशास्त्र में कृषि का वर्णन करते हुए निष्पक्ष कर प्रणाली और व्यापार को भी महत्व दिया है। आज भी हम चाणक्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र पुस्तक प्रेरणा लेकर अच्छे परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। हमारे देश की सरकार धनी व्यक्तियों से प्रगतिशील कर लगाकर आय प्राप्त करती है। प्राप्त आय को गरीबों को आर्थिक सहायता के रूप में दे रही है।

2. **सिंचाई**- चाणक्य ने सिंचाई के महत्व को समझा था। उन्होंने सुझाव दिया था कि सिंचाई की व्यवस्था कर कृषि के क्षेत्र में अच्छे उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। आज भी अधिकांश किसान कृषि पर निर्भर रहते है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में दर्शन, धर्म, ज्योतिशशास्त्र, विज्ञान, चिकित्सा, गणित और इंजिनियरिंग, भाषा, कृषि आदि अनेक विषयों का गहराई से अध्ययन कराया जाता था। आज भी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की प्रासंगिकता अनेक क्षेत्रों में देखी जा सकती है। शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय ज्ञान प्रणाली की प्रासंगिकता को आधुनिक काल में भी शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, विज्ञान, सामाजिक विकास, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र और नीति शास्त्र के रूप में नई शिक्षा नीति 2020 में देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची.-

भारतीय अर्थशास्त्र- डा0 सुमन
अर्थशास्त्र- कौटिल्य
राधाकृष्णन आयोग की रिपोर्ट
कोठारी कमीशन रिपोर्ट
रामायण- महर्षि वालमिकी
भागवत गीता - महर्षि वेद व्यास

रामचरितमानस की प्रासंगिकता - वर्तमान समाज के संदर्भ में

प्रो० साबिद हुसैन

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, नोवामुण्डी कॉलेज, नोवामुण्डी

रामचरितमानस भारतीय साहित्य का एक उत्कृष्ट और सार्वभौमिक ग्रंथ है। यह भारतीयता और भारतीय संस्कृति का पर्याय है। रामचरितमानस से पूर्व आदि काव्य के रूप में आदि कवि महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण की रामकथा सर्वमान्य और प्रचलित थी। उसी को आधार बनाकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने लगभग 400 वर्ष पूर्व अवधी भाषा में रामचरितमानस की रचना की।

यह ग्रंथ भारतीय संस्कृति की जड़ों में सर्वाधिक जीवंत एवं सक्रिय है। यह केवल धार्मिक आस्था का आधार नहीं, बल्कि भारतीय समाज की आत्मा, सांस्कृतिक चेतना और मानवीय जीवन-दर्शन का अमूल्य धरोहर है। तुलसीदास जी द्वारा प्रस्तुत राम के जीवंत आदर्श उस समय, वर्तमान और भविष्य- सभी के लिए अनुकरणीय रहे हैं और रहेंगे। वर्तमान समय में जब मानव जीवन अनेक उलझनों, विभाजनों, नैतिक संकटों, तकनीकी दबावों और सांस्कृतिक विस्मृति का शिकार हो रहा है, तब रामचरितमानस एक मार्गदर्शक के रूप में मूल्यबोध, सामाजिक समरसता और नैतिक आदर्शों का प्रकाश फैलाता है।

रामचरितमानस भारतीय एकता, अखंडता और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक है। राम के जन्म, विवाह, वनगमन, लंका विजय के साथ-साथ विभिन्न प्रान्तो, नदियों, नगरों, समुदायों, आश्रमों, ऋषियों, तप, कर्म और ज्ञान की गाथा इसमें वर्णित मिलती है।

राम सबसे जुड़े हैं- राम सबके हैं और सभी राम के हैं।

राम समस्त मानवता के आदर्श हैं।

राम के व्यक्तित्व में न्याय, दया, प्रेम, शौर्य और संयम की झलक मिलती है। इन्हीं आदर्श गुणों ने रामकथा को राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक गौरव और सामाजिक सदभाव का आधार बनाया है।

रामराज्य आदर्श शासन का प्रतीक है जिसमें- सभी सुखी, सुरक्षित और संतुष्ट हों।

राम का सुग्रीव और विभीषण से मित्रता कर धर्म के पक्ष में खड़ा होना, लंका विजय के बाद विभीषण को राज देना- यह सब राजनीतिक उदारता और नैतिक नेतृत्व का उदाहरण है।

निशादराज और शबरी से राम की प्रेमपूर्णता सामाजिक समरसता का संदेश देती है।

सीता, उर्मिला, कौशल्या, सुमित्रा, तारा, मंदोदरी जैसी स्त्री-चरित्र भारतीय आदर्ष नारी की गरिमा के प्रतीक हैं।

रामचरितमानस में दलित-आदिवासी समाज के मानवीय मूल्यों का संरक्षण का विशेष प्रभाव रहा। यह ग्रंथ जाति या जन्म से श्रेष्ठता नहीं, बल्कि कर्म और भाव की श्रेष्ठता का संदेश देता है। इसी कारण जनजातीय समाज में राम की कथा लोकगीतों, परंपराओं और उत्सवों के रूप में जीवित है। हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई- सभी समुदायों में रामकथा की भागीदारी भारतीय समाज की गंगा-जमुनी संस्कृति का प्रतीक है।

रामचरितमानस बच्चों में संस्कार, युवाओं में आदर्श जीवन और परिवार में सुख-शांति विकसित करता है। सौंदर्यशास्त्र, भाषा, साहित्य और नैतिक शिक्षा- इन सभी पक्षों से यह अत्यंत प्रभावशाली ग्रंथ है।

डिजिटल युग में भी धरावाहिकों, सोशल मीडिया, एनीमेशन, संगीत और वैश्विक मंचो पर रामचरितमानस पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षित हो रहा है।

भारत से बाहर रहने वाले भारतीयों के लिए यह सांस्कृतिक सेतु है-मॉरीशस, फीजी, इंडोनेशिया, कंबोडिया, सुरीनाम आदि देशों में इसका व्यापक प्रभाव है।

मानवता के लिए प्रेरणास्रोत

आज के वातावरण में जब जातीय संघर्ष, राजनीतिक स्वार्थ, पर्यावरण संकट, पारिवारिक विघटन आत्मघाती प्रवृतियाँ बढ़ रही है, तब तुलसीदास के सुभाषित मार्गदर्शन देते हैं।

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।'

'परहित सरिस धर्म नहीं भाई,
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'
'धरमु न दुसर सत्य समाना,
आगम निगम पुरान बखाना।'
'धीरज, धर्म, मित्र, अरू नारी-
आपद काल परखि अहिं चारी।'

तुलसीदास पर न केवल हिन्दी भाषा, बल्कि समूचे भारतवर्ष को गर्व है। उनकी कविता में लोकगीत की भावना इतनी प्रबल है कि उनकी रचना बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय बन गई है। उनका विश्वास है कि रावण-तत्व का विनाश और लोक-रंजन राम का अविर्भाव संभव है। रामचरितमानस उनका सर्वोत्तम महाकाव्य है जिसमें मानव जीवन की सारी समस्याओं का सचेत विवेचन गोस्वामी तुलसीदास ने किया है। वे एक ओर जहाँ सामाजिक एवं सांस्कृतिक मर्यादा की रक्षा करते हैं, वहीं दूसरी ओर पारस्परिक मतभेदों को दूर करके समन्वय स्थापित करते हैं। रामचरितमानस एक धार्मिक ग्रंथ होने के साथ-साथ सामाजिक मार्गदर्शक भी है, जो मानवीय रिश्तों, कर्त्तव्यों और आदर्श समाज के निर्माण में जीवनपर्यंत प्रासंगिक शिक्षाएँ प्रदान करता है। यह कर्म प्रधान विश्व की अवधारणा के माध्यम से जन्म और जाति के ऊपर कर्म को महत्त्व देता है, जो सामाजिक एकता को बढ़ावा देता है।

तुलसीकृत रामायण न्याय, धर्म और प्रजा कल्याण पर आधारित एक आदर्श राज्य की कल्पना करती है, जहाँ सभी सुखी और समृद्ध हो। यह ग्रंथ आज की राजनीतिज्ञों के लिए भी एक सीख है। यदि देश में राम जैसे गुणों वाला नेतृत्व हो, तो हमारा भारत विश्व में ऐसा इकलौता राष्ट्र बन सकता जहाँ केवल षांति और समृद्धि का वास होगा।

रामचरितमानस की प्रासंगिकता रामानंद सागर द्वारा बनाए गए टी.वी. धारावाहिक रामायण तथा कथा-वाचकों के प्रयासों से और भी अधिक बढ़ी है। इस धारावाहिक ने लोगों के भीतर छिपे सत्य, धर्म, न्याय, प्रेम, करूणा, त्याग और कर्त्तव्य-निष्ठा जैसे भावों को जागृत कर बाहर निकाला और लोगों को एक आदर्श जीवन जीना सिखाया। इसमें पति-पत्नी, भाई-बहन और पारिवारिक रिश्तों के आदर्श को प्रस्तुत किया गया जो आज के जटिल रिश्तों के दौर में भी अत्यंत प्रासंगिक है। सभी पात्रों ने इतना भावपूर्ण अभिनय किया कि यह धारावाहिक समाज के हर वर्ग का प्रभावित करके सबसे अधिक देखे जाने वाले कार्यक्रमों में शामिल हुआ।

लॉकडाउन के दौरान इसके पुनः प्रसारण पर नए दर्शक-रिकार्ड बने जो इसकी स्थायी प्रासंगिकता का प्रमाण है। शिक्षा, राजनीति और व्यापार जैसे क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार के बीच रामायण के सिद्धान्त आज भी मार्गदर्शक है।

'हरि अनंत हरि कथा अनंता'- रामकथा बहुत वर्शों से कही-सुनी जा रही है और विभिन्न प्रकार से कही जा रही है। भारत भर में कथा-वाचक रामकथा का प्रचार-प्रसार कर रहें हैं जिन्होंने रामकथा को शास्त्रों से निकालकर लोक-जीवन में स्थापित किया है। रामकथा वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास और फिर आज के कथा-वाचकों तक पहुँची है। रामकथा को प्रासंगिक बनाने में इन कथा-वाचकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

रामकथा किताबों से निकलकर आम जनता तक उनकी ही भाषा, बोली और उनके सामाजिक संस्कारों को दर्शाते हुए पहुँच रही है। रामचरितमानस की प्रासंगिकता इसीलिए भी बढ़ी है क्योंकि यह एक ऐसे आदर्श राज्य की कल्पना प्रस्तुत करता है जहाँ न्याय, शांति और समृद्धि हो, राजनीतिक गुणों में राष्ट्र-प्रेम कर्तव्य-निष्ठा की भावना हो। इसके संवाद और कथाएँ सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देती है, जिससे समाज के विभिन्न वर्गों के बीच प्रेम और सहयोग बढ़ाता है।

रामचरितमानस के दोहे जीवन के विभिन्न पहलुओं में प्रासंगिक है-

''वंदों गुरू पद पदुम परागा।
सुरूचि सुवास सरस अनुरागा।।''
''मातु-पिता गुरू स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।
लेहेउ लाभु तिनह जनम कर नतरू जनमु जग जायँ।।''
''जपहिं नामु जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होई सुखारी।।''
''दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुँहिं व्यापा।।''
''कामहिं नारी पियारी जिमी, लोभीहिं प्रिय जिमि दाम।
थ्तमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।''

''हाइहिं सोई जो राम रूची राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा।।''

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन के हर पक्ष को स्पर्श करने वाला जीवन-मार्गदर्शक है।

इसमें वर्णित दोहे और चौपाईयाँ आज भी मनुष्य को सदाचार, सामाजिक प्रेम, गुरूभक्ति, पारिवारिक मर्यादा और ईश्वर निष्ठा की ओर प्रेरित करती है। आज की व्यस्थ भौतिकतावादी दुनिया में भी गुरू की महता बनी हुई है। ये केवल ज्ञान ही नही व्यक्ति को सही दिशा देता है और गुरू-चरणों में समर्पण व्यक्ति को विनम्रता, अनुशासन और जीवन मूल्यों से जोड़ता है। यहाँ बताया गया है कि माता-पिता, गुरू और समाज का सम्मान करना ही सच्चा मानव धर्म है। आज जब रिश्ते स्वार्थ से प्रभावित हो रहें हैं तब यह संदेश सामाजिक ताने-बाने को मजबूत करने का मार्ग देता है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि रामचरितमानस में निहित आदर्श, जीवन-मूल्य और अध्यात्मिक संदेश समय और समाज के हर परिवर्तन से ऊपर है। गुरू-भक्ति, पारिवारिक मर्यादा, मानवीय प्रेम, सदाचार, धैर्य और ईश्वर में विश्वास जैसे सिद्धान्त आज भी उतने ही आवश्यक है, जितने तुलसीदास के युग में थे। आधुनिक जीवन जहाँ तनाव, प्रतिस्पर्द्धा और भैतिक आकांक्षाओं से भरा है, वहाँ रामचरितमानस मनुष्य को संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ सूची-

1. गोस्वामी तुलसीदास- रामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर
2. रामचरितमानस टीका और भावार्थ-गीता प्रेस गोरखपुर
3. रामनरेश त्रिपाठी- तुलसीदास और उनका काव्य

कृषि में रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग के कारण उत्पन्न किसानों की समस्या

चंदन कुमार

शोध-छात्र, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

प्रो० (डॉ०) विभा सिंह

पर्यवेक्षिका, विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, गया कॉलेज, गया

सारांश:-

प्रस्तुत शोध प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य नालंदा जिला के कृषि पद्धति में परिवर्तन को दर्शाना है। कृषि एक प्राथमिक क्रिया है फसलों, फलों, सब्जियों, फूलों को उगाना और पशुधन पालन इसमें शामिल है। विश्व में 50 प्रतिशत लोग कृषि से संबंधित क्रियाओं में संलग्न है। भारत की दो-तिहाई जनसंख्या अब तक कृषि पर निर्भर है। बिहार में 90 प्रतिशत लोग गाँव में रहते हैं और यहाँ की 80 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है। 1990-91 ई0 में यहाँ 48.88 प्रतिशत भूमि पर कृषि की जाती थी, 2005-06 ई0 में बढ़कर 59.37 प्रतिशत हो गया। नालंदा जिला ऐतिहासिक दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है उतना ही कृषि में भी है। इसका कुल क्षेत्रफल 2367 वर्ग किलोमीटर है। यह 24^0 15' 30 से 25^0 27' उत्तरी अक्षांष एवं 85^0 10' पूर्व से 85^0 56' पूर्वी देशांतर तक विस्तृत है।

पहले की अपेक्षा आज नालंदा जिला में कृषि भूमि की जुताई में हल-बैल के स्थान पर ट्रैक्टर का उपयोग सिंचाई में परंपरागत तरीके से जल निकासी का स्थान नवीन डीजल और विद्युत पंप सेटों ने ले लिया। तकनीकी विधि को अपनाकर सिंचित क्षेत्र का अधिकाधिक विस्तार किया गया। परंपरागत बीज के स्थान पर आधुनिक उन्नत एवं संश्लेषित बीजों का उपयोग, रसायनिक खाद एवं जैविक खाद का आदर्श उपयोग, कीटनाशक दवाईयों आदि का उपयोग करना, आधुनिक अनाज एवं पौधों के संरक्षण के अन्य सभी उपायों की वैज्ञानिक आधुनिक तकनीकों का प्रयोग किये जाने लगा। धान की खेती के लिए जीरो टीलेज, पैडी ट्रांसप्लांटर, श्री विधि व सीड ड्रम आदि से खेती की जा रही है। इसी का परिणाम है कि बिहार के अर्थव्यवस्था का 2019-20 में कृषि का 20 प्रतिशत योगदान है।

हरित क्रांति, केन्द्र सरकार और राज्य सरकार की कृषि योजनाओं जैसे- बिहार सरकार द्वारा एकीकृत बीज ग्राम योजना, जैविक खेती, कृषि यंत्रीकरण, ई-किसान, भवन निर्माण, वर्ष 2006 में नालंदा जिला के नूरसराय प्रखंड में उधान महाविद्यालय की स्थापना आदि से नालंदा जिला के कृषि पद्धति के स्वरूप में परिवर्तन आया है। जिला के बिहारशरीफ में सेंटर ऑफ एक्सीलेंस फॉर वेजिटेबल में इंडो-इजराइल पद्धति से ऑर्गेनिक सब्जी उगाया जाता है। जहाँ पर बीज रहित खीरा, हरा, लाल व पीला शिमला मिर्च सहित अन्य जैविक सब्जी का उत्पादन केन्द्र है साथ ही बिहार सरकार जैविक कॉरिडोर योजना के अंतर्गत गंगा से सटे 13 जिलों में जैविक खेती करवा रही है। इसमें नालंदा जिला भी सम्मिलित है। वहीं नालंदा जिला में 2021 में पहली बार 20 हेक्टेयर में काला धान की खेती की जा रही है जिसमें 468 किसान इस खेती में सम्मिलित है।

कूट शब्द: हरित क्रांति, कृषि पद्धति, जैविक खेती, ई-किसान, भवन निर्माण

परिचय

कृषि प्रागैतिहासिक काल से ही अर्थव्यवस्था की आधार रही है। यह भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 69 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं और कृषि उनका प्रमुख व्यवसाय है। इसी तरह बिहार भी कृषि प्रधान राज्य है। नालंदा जिला भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित और नियंत्रित होती है यहाँ की कृषि को बाढ़ एवं सुखाड़ जैसी बड़ी समस्या से कृषि को निपटाना होता है जिसके साथ यहाँ के किसानों को अन्य समस्याओं से गुजरना पड़ता है। पहले की अपेक्षा आज नालंदा जिले के कृषि पद्धति में परिवर्तन आया है। आज नालंदा जिला में कृषि भूमि की जुताई में हल बैल के स्थान पर ट्रैक्टर का उपयोग सिंचाई में परंपरागत तरीके से जल निकासी का स्थान, नवीन डीजल और विद्युत पंप सेटों ने लिया है। कई आधुनिक तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा है। जीरो टिलेज, पैडी ट्रांसप्लांटर, श्री विधि, इंडो इजरायल पद्धति आदि का प्रयोग किया जा रहा है जिसके अच्छे परिणाम हुआ। परंतु इसके कारण किसानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिसका निराकरण बहुत आवष्यक है।

अध्ययन क्षेत्र

प्रस्तुत अध्ययन बिहार राज्य के नालंदा जिला से संबंधित है। यह दक्षिण बिहार में बसा एक महत्वपूर्ण जिला है। भौगोलिक दृष्टि से इस जिले को दो भागों में विभाजित किया गया, उत्तर का मैदान और दक्षिण पूरब का पहाड़। यह प्रसिद्ध मगध की राजधानी थी और भगवान बुद्ध तथा महावीर के निवास स्थान के रूप में सीखने की जगह से है। जनगणना 2011 के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 28,77,653 है। यह 2367 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। नालंदा जिला में 3 अनुमंडल, 20 ब्लॉक, 249 ग्राम पंचायत तथा 1001 गांव में विभाजित है। यह 24 डिग्री 57 मिनट से 25 डिग्री 27 मिनट उत्तरी अक्षांष एवं 85 डिग्री 9 मिनट पूरब 85 डिग्री 56 मिनट पूर्वी देशांतर तक विस्तृत है।

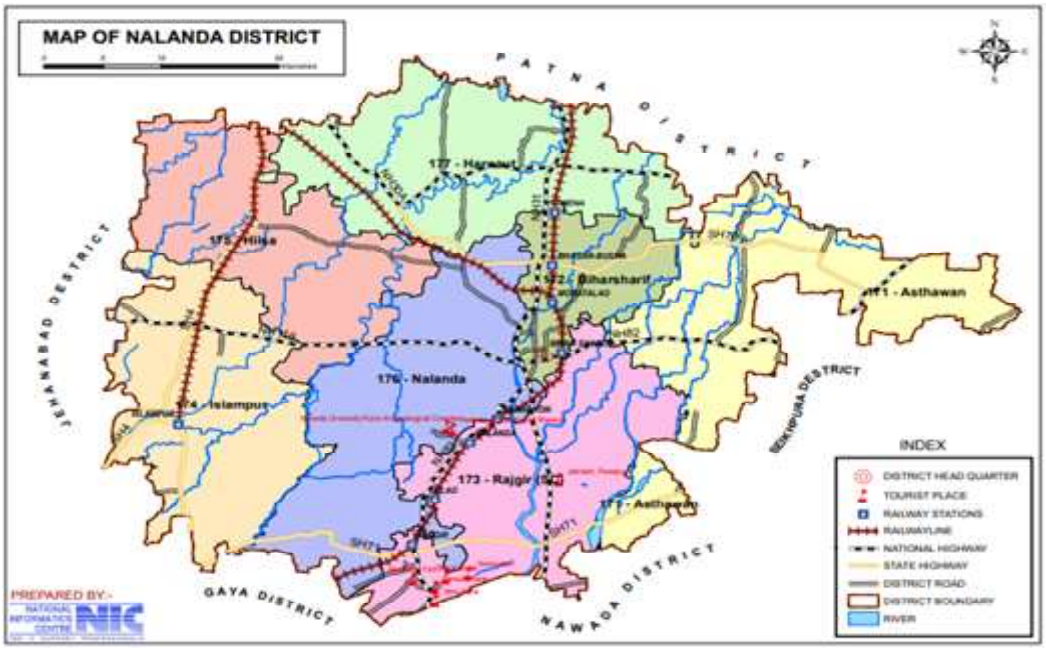

उद्देश्य

- जैविक खेती से संबंधित किसानों की समस्या का अध्ययन करना।
- कृषि से संबंधित किसानों की अन्य समस्याओं का अध्ययन करना।

विधि-तंत्र

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीय आंकड़ों का सहारा लिया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं तथा इंटरनेट द्वारा कुछ आंकड़ों को एकत्रित किया गया और साथ ही विभिन्न पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की सहायता ली गई है।

1) जैविक खेती से संबंधित किसानों की समस्या

नालंदा जिला में कृषि पद्धति ने अनेक परिवर्तन हुए इस परिवर्तन से किसानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। रसायनिक व कीटनाषकों के प्रयोग के बाद फसलों की उपज तो बढ़ी परंतु अब मिट्टी की उर्वरता में कमी तथा स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिसके कारण बिहार सरकार ने किसानों को जैविक कृषि करने के लिए प्रोत्साहित किया है। इसके अंतर्गत बिहार सरकार ने जैविक कॉरिडोर योजना का निर्माण किया है जिसके तहत गंगा से सटे 13 जिलों में सरकार जैविक खेती करवा रही है। नालंदा 13 जिलों में से एक है जैविक कॉरिडोर के लिए कम से कम 25 एकड़ खेत का क्लस्टर होना जरूरी है जिसमें कम से कम 25 किसान होना चाहिए परंतु इस जैविक पद्धति से किसानों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो निम्न है:-

1. जैविक उत्पादों का बाजार नहीं

जैविक उत्पादों के लिए अलग से कोई बाजार नहीं इसका नुकसान यह होता है कि किसानों को औने पौने दाम पर अपनी उपज को बेचना पड़ता है। जबकि खर्चा अधिक हो जाता है जैविक उत्पादों की बिक्री के लिए पंजीकृत जैविक मंडी की कमी है।

2.3 उपज कमजोर फसलों में लगते हैं ज्यादा कीड़े

उपज कम होना और बड़े स्तर पर जैविक फसलों में कीड़े मकोड़े लगना आम बात है। किसानों का कहना है कि कीड़े भगाने वाली जो भी जैविक दवाईयाँ है वह असर नहीं करती। नतीजा किसानों को मजबूरी में फसल बचाने के लिए रसायनिक कीटनाषकों का इस्तेमाल करना पड़ता है।

3. जैविक खेती के लिए अनुदान अपर्याप्त

जैविक खेती के लिए बिहार सरकार ने वित्त वर्ष 2020-2021 में 250 करोड़ रूपए आवंटित किए थे वही वर्ष 2021-2022 और 2022-2023 के बजट में बिहार सरकार ने जैविक खेती के लिए क्रमशः 145-145 करोड़ रूपए मंजूर किया जो कि जैविक खेती अनुदान के लिए कम राषि है।

2) कृषि से संबंधित किसानों की अन्य समस्याओं का अध्ययन करना

1. सिंचाई के लिए पानी की समस्या

आज जलवायु परिवर्तन का खतरा एक गंभीर समस्या कृषि के लिये बन रहा है। जलस्तर नीचे गिरता जा रहा है। अनियमित बारिष की समस्या जिसके कारण यहाँ के किसानों को फसलों के लिए पानी की उपलब्धता में कमी हो रही है जिससे फसलों की उपज प्रभावित हो रही है। छोटानागपुर पठार से पंचाने, सकारी, मोहना, गोड़थवन, नौनिया, दीवार और चिरैया जैसी कई छोटी धाराएँ निकलती है। सभी नदियाँ जिले को दक्षिण-पश्चिम से उत्तर पूरब की ओर काटती है लेकिन धोवा नदी जिले के उत्तर भाग में पश्चिम से पूरब की ओर बहती है। गर्मियों में ये नदियाँ का पानी सिकुड़ कर मात्र बुंद बन जाती है जिससे किसानों को सिंचाई की समस्या होती है।

2. बिखरी हुई छोटी जोते

कृषि पद्धति परिवर्तन के कारण कृषि उपकरणों को चलाने के लिए बड़े जोतों की आवश्यकता होती है परंतु यहाँ सामाजिक स्थिति के कारण किसानों की जोते छोटी है जिससे कृषि कार्य प्रभावित हो रही है इसलिए चकबंदी करने की आवष्यकता है।

3. नई पीढ़ी में कृषि के प्रति रुचि का अभाव

नालंदा में किसानों से बात करने से पता चलता है कि खेती से हो रहे घाटे और संसाधनों के अभाव के कारण नई पीढ़ी खेती का कार्य नहीं करना चाहती है तथा वह आजीविका के लिए दूसरे शहर प्रवास कर रहे हैं।

4. सरकारी योजनाओं की विफलता

सरकार द्वारा किसानों के लिए कई योजनाएँ बनाए गए हैं, पर उसका पूरा लाभ उन तक नहीं पहुँच पाता है। कारण किसानों में जागरूकता की कमी, यदि जागरूकता है भी तो भ्रष्ट अफसरों और कागजी झंझट का सामना भी करना पड़ता है। जैसे-नालंदा जिला में वित्तीय वर्ष 2022-23 में कृषि यंत्रीकरण योजना की राशि खर्च करने में विभाग फेल रहा है। धरती पुत्रों को यंत्र मुहैया कराने में नालंदा जिला पिछड़ गया है। यंत्र खरीदने के लिए 241 करोड़ का अनुदान किसानों को देना था लेकिन अब तक महज 1.21 करोड़ ही दिया गया है। इसके साथ ही डीजल अनुदान की समस्या व अन्य कृषि योजना का लाभ किसानों को नहीं मिल पाता है।

5. कृषि यंत्रों का अधिक मूल्य का होना

कृषि पद्धति परिवर्तन के कारण नए-नए कृषि यंत्रों का प्रयोग किए जाने लगा है। परंतु इन यंत्रों का प्रयोग छोटे किसानों के द्वारा करना संभव नहीं है कारण इन यंत्रों का मूल्य अधिक होना है जैसे -

	कृषि यंत्र	*मूल्य हजार में*
1.	डिस्क प्लव	2500
2.	पवार वीडर	70000
3.	रोटावेटर	90000
4.	धान थ्रेसर	150000
5.	गेहूँ थ्रेसर	150000

स्रोतः कृषि पूर्वी किरण, अंक 4, वर्ष 2018

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कृषि पद्धति परिवर्तन के कारण किसानों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में लाभ हुआ। परंतु किसानों को इस परिवर्तन के कारण अनेक समस्याओं का सामना भी करना पड़ा। यह समस्या छोटे किसानों में ज्यादा देखने को मिला इसका प्रमुख कारण सरकारी योजनाओं का लाभ न मिलना, साथ ही रसायनिक व उर्वरक के उपयोग से फसलों का उत्पादन तो बढ़ा परन्तु किसानों के सामने फसलों के भंडारण की समस्या, बाजार की समस्या, साथ ही साथ यांत्रिक उपकरणों की चलाने की समस्या, उपकरणें का महंगा होना तथा इन फसलों का स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा और मिट्टी की उर्वरता में कमी आई इसलिए इन समस्याओं का अगर समाधान कर लिया जाए तो किसानों को अप्रत्याषित लाभ मिलेगा।

संदर्भ-सूची

1. कुमार, अरूण (2014) नालंदा जिले के सतत कृषि विकास के बदलते फसल संयोजक का प्रभाव, पी-एच0डी0 थीसिस, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
2. कुमार, आलोक (2017) नालंदा जिला में कृषि का स्वरूप, इंटरनेशनल एजुकेषनल साइंटिफिक रिसर्च जर्नल, वॉल्यूम 3, पेज न0 62-63
3. गुप्ता, डॉ0 अनिल कुमार (2016) ए ज्योग्राफिकल एनालिसिस ऑफ नालंदा जिला बिहार, कला प्रकाशन, वाराणसी।
4. पंडित, डॉ0 बाडू (2010), बिहार का भौगोलिक अध्ययन, साहित्य भवन, आगरा
5. सिन्हा, विश्वनाथ प्रसाद एवं नाजिम, मोहम्मद (2016) बिहार का भूगोल, राजेश पब्लिकेषंस, नई दिल्ली।

बिहार में छात्र आन्दोलन की रूप रेखा 1942-1977

राजेश पासवान

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० अमित कुमार सांतकर

शोध-निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, एस.एन.एस. कॉलेज, मोतिहारी, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रसंग:- आधुनिक भारत के राजनीतिक इतिहास में 1942 की क्रांति के बाद संपूर्ण क्रांति ही एकमात्र क्रांति थी जिसने न सिर्फ देष की राजनीतिक की भाग रेखा बदली बल्कि उसे एक नयी दिश और दृष्टि दी। औपनिवेशिक विदेशी सत्ता के विरूद्ध लंबे रचनात्मक संघर्ष के बाद 'करो या मरो' का नारा देकर गाँधी ने सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन की खुले जन विद्रोह में बदल दिया था और अंग्रेज भारत छोड़ो की आवाज संपूर्ण भारत भूमि पर उस समय तक गूँजती रही जब तक अंग्रेजों ने भारत छोड़ने का निर्णय नहीं ले लिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की राजनीति में पनपे कांग्रेस की स्वदेशी उपनिवेशवाद के विरूद्ध संपूर्ण क्रांति का उद्घोष कर जयप्रकाश नारायण ने फासीवाद विरोधी एक नये आन्दोलन को जन्म दिया और यह आन्दोलन उस समय तक चला, जब तक लोकतंत्र पर हावी तानाषाही की समाप्ति नही हो गयी।

सन् 1974 जो पूर्णतः छात्र सक्रियता का वर्ष था, इसमें पहली बार भारत के छात्र समुदाय ने क्षणिक क्षेत्रीय तथा शुद्र मांग से ऊपर उठकर राष्ट्रीय समस्याओं को समझने की चेष्टा की और बुनियादी प्रश्नों को आन्दोलन के माध्यम से समाज और सरकार के समक्ष रखा। स्वातंत्रयोर कालीन भारत में सन् 1974 के छात्र आन्दोलन के पूर्व जितने भी छात्र आन्दोलन हुए उसकी समय-सीमा तथा सीमा विस्तार निश्चित हुआ करता था। सामान्यतः अगस्त से मार्च के मध्य महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयों के परिशर की परिधि में सीमित रहने वाले छात्र आन्दोलनों की मांगे मुख्यतः शिक्षण प्रणाली से संबद्ध होती थी, सन् 1974 में पहली बार छात्र सक्रियतावाद ने पहले युवा आन्दोलन तथा बाद में जन आन्दोलन स्वरूप प्रमुखता दी, जिसका प्रत्यक्ष संबंध राजकीय कार्य संस्कृति तथा चरित्र होता है कि यह अपनी परिधि को इतना व्यापक बना ले, जहाँ शहरी-देहाती, बड़े-छोटे, धनी-गरीब, साक्षर-निरक्षर सभी उसकी सीमा के अन्दर आ जाये। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बिहार में होने वाले परिवहन निगम के कर्मचारियों द्वारा छात्रों की पिटाई के विरोध-स्वरूप प्रारंभ हुआ था। अगस्त 1942 को हुए बिहार छात्र आन्दोलन स्मारक स्थल में श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने कॉलेज लौटे छात्रों से जब ज्ञात हुआ कि बिहार पथ-परिवहन के कर्मचारियों ने गांधी मैदान के बस डिपो में कुछ छात्रों की बेरहमी से मारा-पीटा है, तब बी.एन. कॉलेज के कई छात्र घायल छात्रों को छुड़ाने के लिए बस डिपो पहुँच गए। समय पर पुलिस को आ जाने के कारण कर्मचारियों और छात्रों के बीच होनेवाले टकराव तो टल गया किंतु तनाव ज्यों का त्यों बना रहा। छात्रों के पिटाई के विरोध में 12 अगस्त 1955 को छात्रों का जुलूस निकला। पटना कॉलेज से निकटा, यह जुलूस जैसे ही बी.एन. कॉलेज के पास पहुँचा निरोधात्मक दृष्टिकोण से तैनात स्थानीय पुलिस ने अपनी तांडली लीला प्रारंभ कर दी और मजिस्ट्रेट द्वारा बिना किसी चेतावनी के गोली चलाने के आदशोप्रांत अंधाधुन चली गोलियों ने साइंस कॉलेज के तृतीय वर्ष के अध्ययनरत छात्र दीनानाथ पाण्डेय की छाती छलली कर दी। इस गोलीकांड की गूँज पूरे राज्य में फैल गई।

लंबे समय से सुषुप्तावस्था में पड़ी छात्र सक्रियता अचानक मुखर हो गयी तथा तात्कालीन सरकार के खिलाफ चारो तरफ आन्दोलन का वातावारण निर्मित होने लगा। अगस्त 1955 का छात्र आन्दोलन अगस्त 1942 के बिहार छात्र आन्दोलन को याद दिलाता है। दोनों घटनाओं में फर्क मात्र इतना था कि 1942 में छात्रों ने देश की आजादी के लिए आन्दोलन किया था और सचिवालय पर झंडा फहराने के प्रयास में ब्रिटिश शासन की पुलिस को गोली का निशाना बने थे जबकि 1955 में स्वतंत्र भारत द्वारा चुनी गयी लोकतांत्रिक सरकार की पुलिस ने ब्रिटिश शासन की तर्पूत पर छात्रों की जायज तथा साधारण मांगों को दबाने के लिए छात्रों पर गोलियाँ चलाकर अपनी बर्बरता का परिचय दिया था। अतीत में घटित घटनाओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि सामान्यतः छात्र समुदाय अपनी जायद मांगों की पूर्ति के लिए शांतिपूर्ण प्रदर्शनों का समर्थक होता है। परंतु बहुधा पुलिस हस्तक्षेप तथा प्रशासनिक विमुखता के कारण शांतिपूर्ण आन्दोलन हिंसात्मक हो जाता है। 1955 तथा 1967 के छात्र आन्दोलन के समय सरकार ने छात्रों के समक्ष उपस्थित होने वाली समस्याओं को जिस उपेक्षा भाव से देखा, वही कालांतर में 1974 के बिहार आन्दोलन का बीच तत्व बना। महँगाई, बेकारी और भ्रष्टाचार

सामाजिक जीवन को प्रभावित करनेवाली बुनियादी समस्याओं के समाधान को मांग को लेकर गुजरात की छात्रों ने वहाँ की राज्य सरकार की निष्क्रियता के विरुद्ध 1974 में क्रांति का शंखनाद किया। नौजवानों ने गुजरात आन्दोलन को नवनिर्माण आन्दोलन का नाम दिया था। गुजरात के छात्रों को व्यापक जन समर्थन तथा मनोवांछित सफलता मिली और उसने पूरे देश की युवा पीढ़ी को नवजागृति आन्दोलन से प्रेरणा प्राप्त कर बिहार के छात्र समुदाय ने आसमान छूती कीमतों, भ्रष्टाचार, दूराचार, अनैकतिकता, बेरोजगारी, भाई-भतीजावाद तथा दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के ज्लवंत मुद्दों पर आधारित एक वृहत आन्दोलन को प्रारंभ करने की आवश्यकता समझी। राजनीतिक दृष्टि से अनुभवहीन किंतु मानसिक रूप से अति संवेदनशील छात्र ने केन-प्रकारेण तात्कालिन राजकीय व्यवस्था के समक्ष अपना सार्थक विरोध दर्ज करना चाहते थे। संगठित रूप से अस्त-व्यस्त होने के बावजूद अधिकांश छात्रों की मनोदशा एक थी। छात्र समुदाय के व्यापक विरोध भाव तथा अकुलाहट का लाभ विभिन्न राजनीतिक दलों ने उठाया। परिणामस्वरूप सक्रिय छात्रों का वर्ग वामपथ तथा दक्षिणापंथ के राजनीतिक चक्रव्यूह में उलझ गया। वहाँ यह वामपंथी अथवा दक्षिणापंथी पार्टियों के साथ संबंध जोड़ा था वे मात्र राजनीतिक स्वीकृति हेतु अलग-अलग राजनीतिक दलों से जुड़ रहे थे।

बिहार के छात्र समुदाय, जिसका प्रत्यक्ष संबंध शिक्षण संस्था से था, इसने राज्य के शैक्षिक जगत में व्याप्त अराजकता तथा अनिश्चितता के खिलाफ सशक्त आन्दोलन प्रारंभ करने के उद्देश्य से 1974 के फरवरी मास में सभी छात्र संगठनों का एक महासम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत सत्तालोलूप राजनेताओं की मूल्यहीन राजनीति तथा अमर्यादित आचार-व्यवस्था से दुखी होकर सन् सन्तावन में समाजवादी पार्टी और बाद में सक्रिय राजनीति से सन्यास हो चुके जयप्रकाश नारायण ने समाज के अंदर सुलगते जनआन्दोलन की उष्णता महसूस की। राजनीति को लोकनीति बनाने में आस्था रखनेवाले जयप्रकाश चाहते थे कि राष्ट्र निर्माण के लिए समर्पित सर्वोच्च नेता मनोवैज्ञानिक सामाजिक क्रांति के लिए जन शक्ति को पुनजीर्वित करें तथा युवा छात्रों के विशाल मानव बल को इस पुनित कार्य हेतु प्रेरित करें। सन् 1973 के अन्त में ही पवतार स्थित विनोबा जी के आश्रम से देश के युवकों के नाम जनतंत्र के लिए युवक नाम से अपील जारी करते हुए उन्होंने कहा था कि ''देश उद्धार तभी होगा या क्रांति होगी, जब उस क्रांति के अगुआ छात्र और युवक होंगे।'' जब सत्ता लोलूप राजनेताओं को यह वेतुका राग लगा था, पर पटना विश्वविद्यालय के सीनेट हॉल में 22 जनवरी 1974 को और पटना कॉलेज मैदान में 1 जनवरी 1974 को पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ व तरूण क्रांति सेना संयुक्त तत्वाधान में आयोजित बैठक में ''युवा फॉर डेमोक्रेसी'' विषय पर उनके भाषण को सुनने के बाद उन्हें इसका पूर्वाभास हो गया कि शीघ्र ही कोई बड़ी क्रांति होने वाली है। इसी वर्ष जनवरी के अंत में सहरसा के राघोपुर प्रखंड में भाषण देते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा था कि ''हम एक दूसरे सन् व्यालिस के कगार पर खड़े हैं। एक दूसरी क्रांति होने जा रही है। विद्यार्थियों के उपद्रव और कई दूसरे प्रकार से जनता का असंतोष प्रकट हो रहा है। देहातों में भी लोगों के मानस में परेषानी है ये चिन्ह आने वाली क्रांति के सूचक है।

यह वह काल था जब बिहार की जनता कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक पार्टी के नेताओं को घृणित लोलुपता तथा प्रशासनिक तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार से बुरी तरह खर खाए बैठी थी। लोगों का अवस्था न तो कार्यपालिका में शेष थी न विधायिका में महँगाई, भ्रष्टाचार तथा अनुपयोगी हो चुकी शिक्षा व्यवस्था से बेरोजगार छात्रों के लिए वर्तमान कष्टदायक और भविष्य अंधकारमय था। निराषा के वातावरण में मुजफ्फरपुर के छात्रों ने सखगरी संरक्षण में आवश्यक वस्तुओं की होनेवाली चोरबजारी तथा भ्रष्टाचार को रोकने के लिए छात्र उड़नदस्तरों का गठन करना प्रारंभ किया और इसमें उन्हें आशातीत सफलता भी मिली। 1970 के दशक के प्रारंभिक वर्षों से ही छात्रों का असंतोष बढ़ता जा रहा था और अलग-अलग मांगों को लेकर वे छोटे-छोटे आन्दोलन कर रहे थे। दिसंबर 1972 में छात्रों ने राज्य पथ परिवहन कर्मचारियों से उनकी भिड़ंत हो गयी।

इससे पटना विश्वविद्यालय के छात्रों और गैर शिक्षण कर्मचारियों ने आनरदमात्रिंयो के साथ मिलकर पटना सचिवालय के समक्ष प्रदर्शन किया। उन्हें तितर-बितर करने के लिए पुलिस को 19 चक्र गोलियाँ चलानी पड़ी।

7-8 जनवरी 1974 को दिल्ली में छात्र संघों के निर्वाचित प्रतिनिधियों का अखिल भारतीय सम्मेलन हुआ जिससे भ्रष्टाचार, महँगाई, बेरोजगारी, शिक्षा में आमुल परिवर्तन एवं विश्वविद्यालय प्रशासन में लोकतांत्रिक मूल्यों की निरंतर ह्रास के मुद्दों देशव्यापी आन्दोलन शुरू करने की योजना बनायी गयी। सितम्बर 1973 में पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ के चुनाव में विधार्थी परिषद् तथा युवजन सभा ने मिलकर चुनाव में हिस्सा लिया। युवजन सभा की ओर से लालू प्रसाद पद के उम्मीदवार बने और विद्यार्थी परिषद की ओर से सुशील कुमार मोदी महासचिव के लिए खड़े किये गये। युवजन सभा और विधार्थी परिषद के उम्मीदवार निर्वाचित हुए।

22 जनवरी को पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ का उद्घाटन समारोह आयोजित किया गया। पत्रकार कुलदीप नय्यर ने उद्घाटन भाषण में छात्रों के राष्ट्रीय सरकार और संघ की आवश्यकता पर अपने विचार रखें। इस समारोह में बिहार स्टूडेन्ट एसोसिएशन के छात्रों ने तथाकथित रूप से उपद्रव किया, फिर छात्र संघ के तत्वाधान में उसी दिन शाम को पटना विश्वविद्यालय के व्हीलर सीनेट हॉल में लोकतंत्र के लिए युवा विषय पर जे.पी. का भाषण हुआ। बस कार्यक्रम में उन लोगों ने फिर से व्यावधान उत्पन्न किया और दुखी होकर जे.पी. ने 15 मिनट में ही अपना भाषण समाप्त कर दिया। जे.पी. के इस भाषण के आयोजन के लिए भवेश चन्द्र प्रसाद ने सुशील कुमार

मोदी को सलाह दी थी और तब सुशील मोदी ने जे.पी. को बोलने के लिए आमंत्रित किया। भवेश चन्द्र प्रसाद सर्वोदय एवं गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान से जुड़े थे, और गाँधी से मिल कर विचारों को विश्वविद्यालयों छात्रों के बीच ले जाने का काम करते थे। 22 जनवरी के बाद 1 फरवरी को जे.पी. का दूसरा कार्यक्रम पटना कॉलेज के प्रशिक्षण में हुआ। अपने भाषण में उन्होंने गुजरात के नवनिर्माण आन्दोलन की विस्तार में चर्चा की और कहा कि देष में फिर से सन् 1942 की स्थिति आ गयी है। इस भाषण के बाद जे.पी. पुनः शान्त हो गये, लेकिन छात्रों ने अपनी गतिविधियाँ जारी रखा।

वस्तुतः छात्र सक्रियतावाद की पहली किरण मुजफ्फरपुर से फूटी, जब महँगाई से ग्रस्त स्थानीय महाविश्वविद्यालयों के छात्र नेताओं ने स्थानीय धर्म समाज संस्कृति, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि मुजफ्फरपुर शहर में सरकारी गल्ले की चोरबजारी रोकने, नागरिक में सस्ते गल्ले दुकानों से गेहूँ, चीनी आदि को बँटवाने तथा जमाखोरी और मुनाफाखोरी को रोकने के उद्देश्य से छात्र समुदायों को इस आन्दोलन की प्रेरणा 21 जनवरी 1974 के बिहार बंद से मिली थी, जिसका आह्वान विभिन्न कामगर संघों के दबाव पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की बिहार इकाई ने किया था। बढ़ती महँगाई, भ्रष्टाचार तथा बेरोजगारी से त्रस्त जनता के व्यापक जनसमर्थन समूहों, दलों तथा वर्ग ने मुनाफाखोरी के विरुद्ध अभियान शुरू किया।

17-18 फरवरी को पटना में पटना विश्वविद्यालय छात्र संघ ने बिहार के सभी छात्र संघों और छात्र संगठनों का सम्मेलन आयोजित किया, सम्मेलन लाइब्रेरी हॉल में हुआ। इसमें राज्यभर के 70 महाविद्यालयों के लगभग 250 प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। पटना में प्रकाषित होने वाले देवीक प्रदीप के संपादन थी, रामसिंह भारतीय ने सम्मेलन का उद्घाटन किया और इसके मुख्य अतिथि में पटना विश्वविद्यालय के सम्मेलन में निष्चित हुआ कि छात्रों की ओर से 8 सूत्री मांगे सरकार के समक्ष रखी जाए और इनके लिए संघर्ष किया जाए।

ये मांगे थीः-

1. बिहार के सभी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में छात्रों का गठन हो और उसकी सदस्यता अनिवार्य हो।
2. शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाने के लिए उसमें आमूल परिवर्तन किया जाए।
3. शिक्षित बेरोजगार युवकों को अपना व्यवस्था शुरू करने के लिए राष्ट्रीयकृत बैंकों से ऋण दिये जाने का प्रावधान हो।
4. शिक्षित बेरोजगारों के लिए रोजगार की व्यवस्था या बेरोजगारी भत्ते का प्रावधान हो।
5. महँगाई पर तुरंत रोक लगे, कालाबजारी एवं जमाखोरी के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाए तथा छात्रों को कम कीमत पर राषन, पुस्तक एवं स्टेषनरी सामग्री मुहैया की जाए।
6. बिहार के सभी कॉलेजों में छात्रावास की व्यवस्था हो।
7. छात्रवृत्तियों की संख्या में बढ़ोतरी हो और मूल्य सूचकांक के अनुरूप उनकी राशि बढ़ायी जाये।
8. सीनेट, सिंडीकेट तथा अकादमिक काउंसिल में छात्रों का प्रतिनिधित्व हो।

इसी सम्मेलन में वारस संधि की निन्दा की गयी। परिणामतः वामपंथी छात्रों ने सम्मेलन का बहिष्कार किया और छात्र समुदाय में फूट पड़ गयी। छात्र दो वर्गों में विभाजन हो गए। गैर वामपंथी छात्र संगठनों ने ''बिहार प्रदेश छात्र संघर्ष समिति'' ने गठन की घोषणा की, वामपंथी छात्रों ने ''बिहार राज्य छात्र नौजवान मोर्चा'' का गठन किया। दोनों गुटों ने अलग-अलग काम करना शुरू किया। बिहार प्रदेष छात्र समिति ने फेसला किया।

संदर्भ-सूची

1. श्रीवास्तव शैलेन्द्रनाथ, ''लोकनायक जयप्रकाश नारायण'' प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या-115
2. रंजन सुधांशु, 'जयप्रकाश नारायण', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 1974, पृष्ठ संख्या-191
3. श्रीवास्तव शैलेन्द्रनाथ, ''लोकनायक जयप्रकाश नारायण'' प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या-115
4. डॉ0 कुमार अजीत, सुमीत रंजन, 'छात्र आंदोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-87
5. रंजन सुधांशु, 'जयप्रकाश नारायण', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 1974, पृष्ठ संख्या-189
6. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-12-13
7. रंजन सुधांशु, 'जयप्रकाश नारायण', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 1974, पृष्ठ संख्या-188
8. श्रीवास्तव शैलेन्द्रनाथ, ''लोकनायक जयप्रकाश नारायण'' प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या-84
9. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-26
10. रंजन सुधांशु, 'जयप्रकाश नारायण', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 1974, पृष्ठ संख्या-194
11. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-20

12. वही, पृष्ठ संख्या-21
13. रंजन सुधांशु, 'जयप्रकाश नारायण', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 1974, पृष्ठ संख्या-199
14. वही, पृष्ठ संख्या-199
15. श्रीवास्तव शैलेन्द्रनाथ, ''लोकनायक जयप्रकाश नारायण'' प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या-135
16. द्विवेदी आर.एन., 'गिलम्ससेज नारायण' नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 1994, पृष्ठ संख्या-205
17. रंजन सुधांशु, 'जयप्रकाश नारायण', नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, दिल्ली, 1974, पृष्ठ संख्या-205
18. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-24
19. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-44
20. श्रीवास्तव शैलेन्द्रनाथ, ''लोकनायक जयप्रकाश नारायण'' प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 2002, पृष्ठ संख्या-137
21. डॉ0 कुमार अजीत, सुमीत रंजन, 'छात्र आन्दोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-95
22. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-44
23. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-42-44
24. डॉ0 कुमार अजीत, सुमीत रंजन, 'छात्र आन्दोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-95
25. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-42-44
26. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-23-24
27. डॉ0 कुमार अजीत, सुमीत रंजन, 'छात्र आन्दोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-23-24
28. नारायण जयप्रकाश, 'सम्पूर्ण क्रांति की खोज में' मेरी विचार यात्रा, भाग-2, सर्व शिक्षा प्रकाशन, वाराणसी, 2006, पृष्ठ संख्या-101
29. शर्मा नागेश्वर प्रसाद, 'बिहार के ठहरे विश्वविद्यालय' पटना 1997, पृष्ठ संख्या-95
30. डॉ0 कुमार अजीत, सुमीत रंजन, 'छात्र आन्दोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-104

कृषि पद्धति में परिवर्तन का सामाजिक प्रभाव: नालंदा जिला का एक भौगोलिक अध्ययन

सोनू कुमार

शोध-छात्र, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

प्रो० (डॉ०) विभा सिंह

पर्यवेक्षिका, भूगोल विभाग, गया कॉलेज, गया

सारांश

दुनिया के किसी भी भाग में कृषि क्रियाकलाप समाज में कल्याण के प्रवर्तक के रूप में भूमिका निभाती है। चाहे यह जनता, विशेष रूप से गरीबों को रोजगार प्रदाता के रूप में हो, भोजन, सामग्री और कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता आदि के रूप में हो। भारत में कृषि अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। वर्ष 2011 जनगणना के अनुसार 69 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है साथ ही बिहार में 90 प्रतिशत लोग गांव में निवास करती है और 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य पर निर्भर है। नालंदा जिला विश्व पटल पर ऐतिहासिक दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है उतना ही कृषि कार्य के क्षेत्र में भी भारत के लिए महत्वपूर्ण है। इसका कुल क्षेत्रफल 2367 वर्ग किलोमीटर है। इस जिले में 03 अनुमंडल, 20 ब्लॉक, 149 ग्राम पंचायत तथा 101 गांव में यह विभाजित है। यह 24 डिग्री 57 मिनट से 25 डिग्री 27 मिनट उत्तरी अक्षांश, 85 डिग्री 9 मिनट पूरब से 85 डिग्री 56 मिनट पूर्वी देषांतर तक विस्तृत है।

नालंदा जिला में कृषि पद्धति के परिवर्तन का सामाजिक प्रभाव पड़ा है। आज नालंदा जिला में कृषि भूमि की जुताई, फसलों की सिंचाई, कटाई आदि सभी प्रकार के कृषि क्रियाकलापों में परंपरागत उपकरणों की जगह आधुनिक कृषि यंत्रों ने ले लिया है। उदाहरण स्वरूप ट्रैक्टर, पावर ट्रेलर, थ्रेसर, डिस्क हल, एम बी हल आदि। सरकार द्वारा भी कृषि उपकरणों के खरीद पर सब्सिडी तथा किसानों को व्यापारिक कृषि के लिए प्रोत्साहन व प्रशिक्षण दिया जा रहा है जिससे यहाँ के किसानों की आमदन बढ़ी है साथ ही कृषि क्षेत्र में रोजगार का सृजन हुआ है जिसका सामाजिक प्रभाव भी पड़ा है जिसके कारण रोजगार में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या का प्रवास में कमी आना, आमदनी बढ़ना, षिक्षा के स्तर में सुधार, जीवन स्तर में वृद्धि आदि। इसी का परिणाम है कि बिहार के अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र का योगदान 2021-2022 में 21.1 प्रतिशत रहा है।

कूट शब्दः- कृषि पद्धति, सामाजिक प्रभाव, आधुनिक तकनीक

परिचयः-

कृषि किसी भी देष की आर्थिक व्यवस्था का एक अंग है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 69 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं और कृषि उनका प्रमुख व्यवसाय है। इसी तरह बिहार भी कृषि प्रधान राज्य है। नालंदा की कृषि यहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित और नियंत्रित होती है। इस जिला में जहाँ उपजाऊ भूमि, मानसून वर्षा, गर्म जलवायु प्राप्त है। साथ ही साथ यहाँ बाढ़ एवं सुखाड़ जैसी बड़ी समस्या से यहाँ के कृषि को निपटना होता है। पहले की अपेक्षा आज नालन्दा जिला में कृषि भूमि की जुताई में हल बैल के स्थान पर ट्रैक्टर का उपयोग, सिंचाई में परम्परागत तरीके से जल निकासी का स्थान, नवीन डीजल और विद्युत पम्प सेटों ने लिया है। तकनीकी विधि को अपनाकर सिंचाई क्षेत्र का अधिकाधिक विस्तार किया गया है। परम्परागत बीज के स्थान पर आधुनिक उन्नत एवं संष्लेषित बीजों का उपयोग करना, आधुनिक अनाज एवं पौधों के संरक्षण के अन्य सभी उपयोगों की आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग किये जाने लगा। धान की खेती के लिए जीरो टिलेज, पैडी ट्रांसप्लांटर, श्री विधि व सीड आदि से खेती की जा रही है। इसी का परिणाम है कि बिहार के अर्थव्यवस्था का 2019-20 में कृषि का 20 प्रतिशत योगदान है।

अध्ययन क्षेत्रः-

प्रस्तुत अध्ययन बिहार राज्य के नालन्दा जिला से संबंधित है। यह दक्षिण बिहार के मैदानी भाग में बसा एक महत्वपूर्ण जिला है। भौगोलिक दृष्टि से इस जिला को दो भागों में बाँटा गया है। उत्तर का मैदान और दक्षिण-पूरब का पहाड़ी भाग। नालन्दा जिला दक्षिण

बिहार क्षेत्र की उपजाऊ भूमि है। इसे सीखने की प्राचीन भूमि के रूप में भी जाना जाता है जिसकी स्थापना पाँचवी शताब्दी ई0 में हुई थी। यह प्रचीन मगध की राजधानी थी और भगवान बुद्ध और महावीर के निवास स्थान के रूप में सीखने की जगह थी। इसलिए इसे जैन और बुद्ध धर्म ग्रन्थों में बार-बार संदर्भित है। जनगणना 2011 के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 28,77,653 है जिसमें पुरूषों की संख्या 14,97,060 एवं महिलाओं की जनसंख्या 13,80,593 है, जो 2367 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है। यह उत्तर में पटना जिला, दक्षिण में गया और नवादा जिला, पूरब में लखीसराय जिला तथा पष्चिम में जहानाबाद जिला से घिरा हुआ है। नालन्दा जिला में 03 अनुमण्डल, 20 ब्लॉक, 249 ग्राम पंचायत तथा 1001 गांवों में विभाजित है। यह 24 डिग्री 57 मिनट से 25 डिग्री 27 मिनट उत्तरी अक्षांष एवं 85 डिग्री 9 मिनट पूरब से 85 डिग्री 56 मिनट पूरबी देशान्तर तक विस्तृत है।

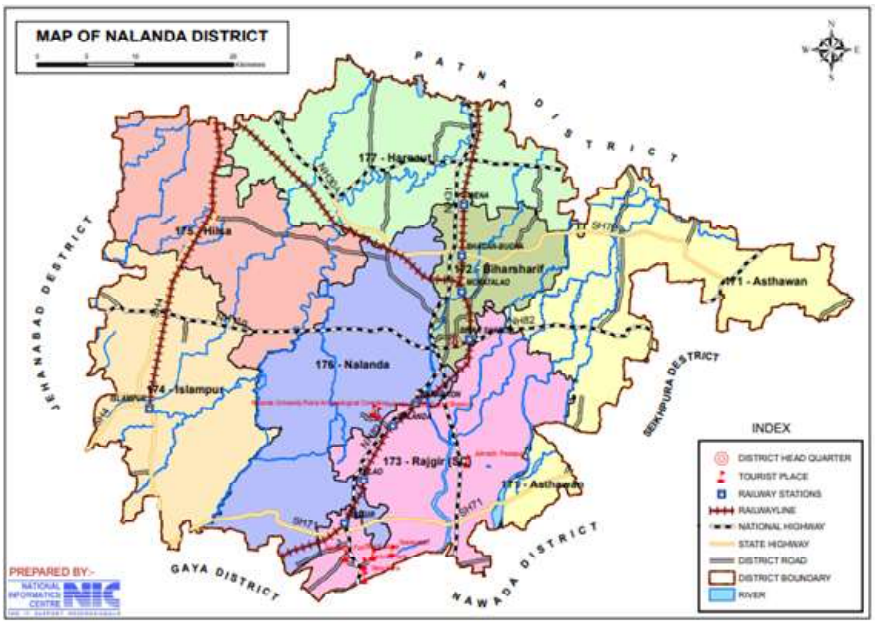

उद्देश्यः-

1. नालन्दा में कृषि पद्धति में परिवर्तन में आधुनिक खेती का अध्ययन करना।
2. कृषि पद्धति में परिवर्तन में नवीन तकनीकों का अध्ययन करना।
3. कृषि से संबंधित उद्योगों की स्थापना की संभावनाओं का अध्ययन करना।
4. कृषि से संबंधित कार्य योजना का अध्ययन।
5. नालन्दा में कृषि से संबंधित समस्याओं का विष्लेषण करना।

विधि-तंत्रः-

प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों का सहारा लिया गया है। कृषि पद्धति में परिवर्तन नालन्दा जिला का एक भौगोलिक का विष्लेषण इन्हीं आंकड़ों को एकत्रीकरण पर आधारित है। इसके अतिरिक्त विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं तथा इंटरनेट द्वारा भी कुछ आंकड़ा इक्ट्ठा किया गया है। विभिन्न पुस्तकों तथा पत्रिकाओं की भी सहायता ली गई है एवं स्थानीय लोगों का सम्पर्क करके आंकड़ा इक्ट्ठा किया गया है।

नालन्दा में कृषि पद्धति में परिवर्तन में आधुनिक खेती व तकनीकः-

नालन्दा जिला में कृषि पद्धति में अनेक परिवर्तन हुए हैं जिसमें मुख्य रूप से आधुनिक खेती व नवीन तकनीक है। मिट्टी की जाँच से लेकर आधुनिक पटवन की व्यवस्था सरकार द्वारा किया गया है जिसका लाभ यहाँ के किसानों को मिला है साथ ही नवीन तकनीक जिसमें यहाँ के किसान श्री विधि, जीरो टिलेज, जैविक खेती, इंडो इजरायली पद्धति से आर्गेनिक सब्जी की खेती, पैडी, ट्रांसप्लांटर, सीड ड्रम आदि का उपयोग कर रहे हैं जिसमें किसानों की आमदनी बढ़ी है। यहाँ की भूमि उपजाऊ है। जनसंख्या के दबाव में तथा कृषि के बुनियादी ढ़ाँचे के परिवर्तन में किसानों ने कृषि पद्धति में परिवर्तन किया है। अब पारंपरिक फसलों की जगह किसानों ने व्यवसायिक फसलों का उत्पादन करना शुरू कर दिया है। जैसे प्याज, पान, बागवानी, फूल आदि। फिर भी जिले में मुख्य फसल के रूप में धान, गेहूँ, दाल प्रमुख है। वहीं नालन्दा में श्रीविधि के द्वारा धान की खेती की जा रही है। इसमें पारंपरिक पद्धति की तुलना

में श्रम की कम लागत है। नालन्दा जिले के 57 किसानों के लिए यह आंकड़ा कृषि विभाग ने जारी किया था। औसत उपज 9.34 टन प्रति हेक्टेयर थी।

तालिका-1

Sl.No.	*Variety*	*No. of Farmer*	*Average SRI Yield (T/ha)*
1	Synqnenta 6032	04	17.85
2	Arise 6444	08	12.82
3	Loknath 505	01	12.75
4	Dhaniya 775	03	7.66
5	VNR	01	7.62
6	Basmati Kohinoor	01	6.75
7	Pushpa 44	39	7.90
8	All Varieties	57	9.34

Lead: Nalanda Dist., Bihar World Record SRI Yields

कृषि पद्धति में परिवर्तन के कारण फसलों की उपज और किसानों की आमदनी में लाभ हुआ है।

तालिका-2

विभिन्न फसलों द्वारा क्षेत्रफल व लाभ/एकड़ में

फसले	*वैज्ञानिक नाम*	*क्षेत्र (एकड़)*	*कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत*	*पारिवारिक वरीयताँ प्रतिशत*	*लाख एकड़ (रू0)*
गेहूँ	ट्रिटिकम ऐस्टिवम	28.99	28.99	82.1	9000
चावल	टोरइजा सैरिवा	35.70	35.70	88.5	8000
काबली चना	सिसर एरीसिम	11.58	11.58	32.1	24000
असली का बीज	लइनम यूजिटेटिसिमम	7.18	7.18	36.4	14000
धनिया	धनिया सटीवम	6.31	6.31	12.1	39800
सरसो	ब्रसिका नाइग्रा	6.22	6.22	16.4	14000
मूंगफली	अर्शचस हाइपोगिया	0.43	0.43	0.71	5000
मक्का	जिया मेयर्स	0.21	0.21	0.71	15000
लहसुन	एलिवम सैटिवम	0.1	0.1	2.80	11000
मेथी	ट्राइगोनेला फोनम	0.49	0.49	20.71	5000
पत्तागोभी	ब्रासिका ओलेरासिया	0.1	0.1	0.71	12000
मटर	पिसम सैटिवम	2.6	2.6	10.70	5000

Source: Int to curr. microbiol.app.sci(2020)9(2): 1899-1904

कृषि से संबंधित उद्योगों का स्थापना की संभावनाएँः-

नालन्दा जिला में कृषि पद्धति में परिवर्तन के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में रोजगार का सृजन हुआ जिसका प्रमुख कारण कृषि संबंधित उद्योगों की स्थापना जिसमें सरकार की नीतियों व योजनाओं का योगदान तथा नवीन तकनीकों का प्रयोग है। नालन्दा में कृषि आधारित उद्योगों का हिस्सा राज्य स्तर पर कम है। इसका वास्तव में अर्थ यह हुआ कि कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना की काफी संभावनाएँ हैं। फिर भी कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना जिला में हुआ है। जैसे रेशमी वस्त्र उद्योग, जूट मिल्स, खाद्य प्रसंस्करण केन्द्र, जैविक खाद्य कारखाना, आदि। इसके साथ ही जिला में मशरूम, बागवानी, सब्जी उत्पादन, पान, दलहन, तिलहन, मछलीपालन, फूड प्रोसेसिंग और डेयरी तथा जैविक फसलों पर आधारित उद्योगों की संभावनाएँ है।

तालिका-3: 2014 में निबंधित अतिलघु/लघु/मध्यम उद्योगों के उद्यम

जिला	अतिलघु	लघु	मध्यम	योग
नालन्दा	54	0	1	55

स्रोतः DIC नालन्दा, बिहार

तालिका-4: 2012 के अनुसार कृषि से संबंधित उद्योगों की स्थिति

क्रम संख्या	*उद्योगों के प्रकार*	*इकाई*	*निवेश लाखों रू0 में*	*रोजगार*
01	कृषि आधारित	385	578.76	1339
02	सूती कपड़ा	31	17.20	99
03	लकड़ी, रेशम और कृत्रिम धागा	01	0.50	03
04	जूट आधारित	04	0.50	30

स्रोतः DIC नालन्दा, बिहार

कृषि से संबंधित कार्य योजना का अध्ययनः-

इसके अन्तर्गत नालन्दा जिला में हरित क्रांति केन्द्र सरकार और राज्य सरकार की कृषि योजनाओं जैसे बिहार सरकार द्वारा एकीकृत बीज ग्राम योजना, जैविक खेती, कृषि यंत्रीकरण, ई-किसान, भवन निर्माण, वर्ष 2006 में जिला के नूरसराय प्रखण्ड में उद्यान महाविद्यालय की स्थापना, साथ ही बिहार सरकार जैविक कोरिडोर योजना के अंतर्गत गंगा से सटे 13 जिलों में जैविक खेती करवा रही है, इसमें नालन्दा जिला भी सम्मिलित है। वहीं नालन्दा जिले में सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं को चलाये जा रहे है जिससे जिले के अनेक किसान लाभान्वित हुए है तथा कृषि पद्धति परिवर्तन में सहायक हुआ है।

तालिका-5: वित्तीय वर्ष 2015 तक जैविक कृषि संवर्द्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या, जिला नालन्दा

क्र.सं.	*विशिष्ट परियोजना का नाम*	*वर्ष 2010-11*	*वर्ष 2011-12*	*वर्ष 2012-13*	*वर्ष 2013-14*	*वर्ष 2014-15*
01	वर्मी कम्पोस्ट इकाई	1049	908	847	1208	1200
02	वर्मी वेड	349	400	658	837	00
03	बायो गैस	00	00	28	11	26

स्रोतः कृषि कार्यालय बिहारशरीफ, नालन्दा, 2014-15

तालिका-6: विभिन्न प्रकार के उपकरणों के तहत लाभान्वित व्यक्तियों की संख्या वित्तीय वर्ष 2015-16 में सब्सिडी

क्र.सं.	*उपकरणों का नाम*	*वर्ष 2010-11*	*वर्ष 2011-12*	*वर्ष 2012-13*	*वर्ष 2013-14*	*वर्ष 2014-15*	*वर्ष 2015-16*
01	पॉवर ट्रेलर	1983	2600	1824	1270	658	453
02	ट्रैक्टर	131	174	349	340	594	00
03	सभी प्रकार के उपकरण जिसपर सब्सिडी प्राप्त हुआ	2875	4286	4600	3452	3684	00

स्रोतः कृषि कार्यालय बिहारशरीफ, नालन्दा, 2015-16

नालन्दा जिला में कृषि से संबंधित समस्याओं का विश्लेषणः-

1. कृषि यांत्रिकीकरण की समस्याएँ।
2. सिंचाई के लिए मौसम व निजी महंगी सिंचाई स्रोतों पर निर्भर।
3. खेती के आकार या जोतों का छोटा होना।
4. मंडी तथा बाजार समितियों की कोई व्यवस्था नहीं।
5. कृषि के महत्वपूर्ण सहायक पूंजी का आभाव।
6. सभी किसानों तक के0सी0सी0 की पहुँच नहीं।
7. वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन में कमी।
8. उर्वरक, कीटनाषक व अन्य रसायनों की उपलब्धता में कमी।
9. खेतों का चकबन्दी न होना।
10. किसानों के खेतों तक बिजली का उचित प्रबंध का न होना

सुझावः-

1. कृषि से संबंधित सरकारी योजनाओं में सभी किसानों की भागीदारी सुनिश्चित हो उसके लिए पंचायत स्तर पर कार्यक्रम का आयोजन हो।
2. खेतों के जोतों का बड़ा आकार हो। इसके लिए चकबंदी करना।
3. किसानों को बैंकों से ऋण की सुविधा कम से कम ब्याज आसानी से प्राप्त हो, की व्यवस्था करना।
4. आधुनिक तकनीकियों के खरीद पर सरकार द्वारा किसानों के लिए सब्सिडी की व्यवस्था करना।
5. उर्वरक, कीटनाषक तथा बीजों को बाजार में आसानी से उपलब्ध करवाना।
6. किसानों को आधुनिक पद्धति से कृषि करने के लिए प्रशिक्षण देना।
7. सिंचाई के लिए खेतों में बिजली की व्यवस्था कम दर पर करना।
8. किसानों के कृषि उत्पादित वस्तुओं के बिक्रय के लिए बाजार की व्यवस्था करना।
9. बागवानी जैविक कृषि पशुपालन आधुनिक कृषि करने के लिए किसानों को प्रोत्साहन देना।

निष्कर्ष-

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि नालन्दा कृषि प्रधान जिला है। यहाँ के लोगों का मुख्य पेशा कृषि है। यहाँ की भौगोलिक स्थिति भी कृषि के लिए सहायक है। परन्तु यहाँ की कृषि में नई तकनीक, रासायनिक उर्वरकों, आधुनिक कृषि उपकरण, खर पतवार एवं कीटनाशक दवाओं के उपयोग के अलावे, बाजार की व्यवस्था कराना ताकि कृषि पद्धति में परिवर्तन तीव्र गति से हो। कृषि पद्धति में बदलाव के साथ ही नालन्दा का विकास संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. कुमार, अरूण (2014) नालन्दा जिले के सतत् कृषि विकास में बदलते फसल संयोजक का प्रभाव, पी-एच0डी0 थीसिस, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
2. कुमार, आलोक (2017) नालन्दा जिला में कृषि का स्वरूप, इंटरनेशनल एजुकेशनल साइंटिफिक रिसर्च जर्नलस, वॉल्यूम-3, पेज न0 62-63
3. कुमारी, डॉ0 सरिता एवं ठाकुर दीनानाथ (2018) कृषि भूगोल, राजेश पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. कपूर, सुदर्शन कुमार (1974) भारतीय कृषि अर्थव्यवस्था, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
5. गुप्ता, डॉ0 अनिल कुमार (2016) ए ज्योग्राफिकल एनालिसिस ऑफ नालन्दा जिला बिहार कला प्रकाशन, वाराणसी।
6. तिवारी आर0सी0 एवं सिंह, बी0एन0 (2000) कृषि भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. पंडित, डॉ0 बाढ (2010): बिहार का भौगोलिक अध्ययन, साहित्य भवन, आगरा।
8. बिहार एग्रीकलचर एंड डेवलपमेन्ट (2017): बिहार में बंधुआ मजदूरी की प्रथा।
9. शर्मा, बी0एल0 (1987): कृषि भूगोल, साहित्य भवन, आगरा।
10. सिन्हा, विश्वनाथ प्रसाद एवं नाजिम, मोहम्मद (2016): बिहार का भूगोल, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

आत्माः एक अविनाशी तत्व

डॉ० डी०एन० सिंह

प्रोफोसर, दर्शनशास्त्र विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ

अंकित कुमार

(शोधार्थी), मेरठ कॉलिज, मेरठ

आत्मा की अमरता के विचार से पहले बन्धन और मोक्ष के विषय में जान लेना आवश्यक हो जाता है। मौक्ष में भौतिक शरीर व इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते है, जब कोई सुनना चाहता है, तब क्षेत्र, अगर स्पर्श करना चाहता है, तब त्वचा, देखना चाहता है तो चक्षु, अगर स्वाद लेना है तो रसना, गन्ध के लिये घ्राण, संकल्प विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त और अहंकार के अर्थ अहंकार रूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति को प्राप्त करता है और शरीर संकल्प मात्र होता है, जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य करता है, वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द का भोग लेता है।

जो परमात्मा अपहतपाप्मा सर्व पाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा से रहित, सत्काम, सत्य संकल्प है, उसकी खोज और उसी को जानने की इच्छा करनी चाहिये, जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोको और सब कामो को प्राप्त होता है, जो परमात्मा को जान के मोक्ष के साधन और अपने को शुद्ध करना जनता है, तो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से कामों को देखता, प्राप्त होता हुआ रमण करता है।[1]

जो यह ब्रह्मलोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होकर मोक्ष सुख को भोगते हैं और इसी परमात्मा का जो कि सब का अन्तर्यामी आत्मा है, उस की उपासना मुक्ति की प्राप्ति करने वाले विद्वान लोग करते है, उससे उनको सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात् जो-जो संकल्प करते है, वह लोक और वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में समावेशित हो जाते हैं, क्योंकि जो शरीर वाले होते है, वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते।

जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा कि हे परमपूजित धनयुक्त पुरुष। यह स्थूल शरीर नश्वर है और जैसे सिंह के मुँह में बकरी होती है, वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच है, यह शरीर इस मरण और शरीर रहित जीवात्मा का निवास स्थान है, इसलिये यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती ही है और जो शरीर रहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख-दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

दयानन्द कहते है कि जीव की तीन अवस्थाये होती है- एक 'जाग्रत' दूसरी 'स्वप्न' और तीसरी सुषुप्ति अवस्था कहलाती है और जीव के तीन शरीर है- एक 'स्थूल' जो यह दिखता है, दूसरा पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच सूक्ष्म भूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्वों का समुदाय 'सूक्ष्म शरीर' कहलाता है। यह सूक्ष्म शरीर जन्म मरणादि में जीव के साथ रहता है। इसके दो भेद हैं- एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्म भूतो के अंशों से बना है। दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप हैं। यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है, इसी से जीव मुक्ति में सुख भोगता है, तीसरा कारण जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ निद्रा होती है, वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु ओर सब जीवों के लिये एक है, चौथा तुरीय शरीर वह कहलाता है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्द स्वरूप में मग्न जीव होते हैं, इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है।[2]

इन सब कोष, अवस्थाओं से जीव पृथक है क्योंकि यह सब को विदित है कि अवस्थाओं से जीव पृथक है, क्योंकि जब मृत्यु होती है, तब सब कहते हैं कि जीव निकल गया, यहीं जीव सब का प्रेरक, सब का कर्ता, साक्षीकर्ता व भोक्ता कहलाता है, जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्ता-भोक्ता नहीं तो उसको समझो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है, क्योंकि बिना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं, इनका सुख-दुःख का भोग व पाप-पुण्य कभी नहीं हो सकता, हाँ इनके सम्बन्ध से जीव पाप-पुण्य का कर्तृता और सुख-दुःखों का भोक्ता है।

जब इन्द्रियाँ अर्थो में मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे व बुरे कर्मों में लगाता है, तभी वह बहिर्मुख हो जाता है, उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कामों से भय, शंका व लज्जा उत्पन्न होती है। वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है, जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्तता है, वहीं मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो विपरीत वर्तता है, वह बन्ध्रजन्य दुःख भोगता है। दयानन्द कहते हैं कि शरीर के रहते सब क्रियाये होती है, शरीर के नहीं रहने पर क्रियाएँ नहीं होती, लेकिन दृष्टव्य है कि शरीर के मरने पर सब क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं, यदि शरीर ही सब क्रियाएँ करने में सर्मा होता तो मरने

पर ीाी देखना, सुनना, खाना व पीना आदि क्रियाये कर सकता था, परन्तु नहीं करता, इसका कारा यह है कि क्रियाये कर सकता था परन्तु नहीं करता, इसका कारण यह है कि क्रियाओं को कराने वाला 'आत्मा' शरीर को त्यागकर जा चुका होता है, इसी प्रकार दीपक का दृष्टान्त है, क्योंकि कोई भी यह नहीं मानता कि देखने वाला दीपक हे, दीपक तो प्रकाश करने का एक उपकरण है, इसी प्रकार शरीर भी आत्मा का उपकरण है।

''निद्रा समाधि, किसी आघात, मदाधिक्य या अचेतावस्था के कारण प्राणी को अपने शरीर का कोई ज्ञान नहीं रहता, परन्तु ऐसी अवस्था को प्राप्त प्राणी का शरीर अन्य जीवित प्राणियों के शरीर की भाँति श्वास लेता रहता है, सभी अंग प्रत्यंक भीतर ही भीतर अपने-अपने कार्य सुचारू रूप से करते रहते हैं, शरीर न गलता है, न सड़ता है, ऐसी अवस्था में मन, बुद्धि और इन्द्रियों से भिन्न कोई और शक्ति ही है, जिसके कारण शरीर सुरक्षित व संचालित रहता है। ऐसी अवस्था में भी शरीर को संचालित तथा सुरक्षित रखने वाली शक्ति ही 'आत्मा' है। यहाँ कुछ लोग यह कह सकते हैं कि शरीर को अचेत कर देने पर वह स्वतन्त्र सत्ता 'आत्मा' स्वयं कार्य क्यों नहीं करती। इसका उत्तर यह है कि मस्तिष्क आत्मा का उपकरण है, आत्मा मस्तिष्क और इन्द्रियों के द्वारा ही शारीरिक कार्य करता है, जब उपकरण ही विकृत हो यगा तो वह अपना वह कार्य करने में असमर्थ है, जो मस्तिष्क द्वारा ही हो सकता है, इस प्रश्न में उपकरण के स्वामी की सत्ता तो समाप्त नहीं होती, अचेतावस्था में मस्तिष्क ही तो निष्क्रिय हो जाता है, आत्मा का अस्तित्व तो फिर भी बना रहता है, क्योंकि शरीर जीवति है।[3] जब हम कभी थक कर प्रगाढ़ निद्रा में सो जाते हैं तो हमारे मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ तो अचेतावस्था में रहते हैं, उस समय उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, न ही उनमें कोई शक्ति रहती है, नेत्र न देखते हैं, कान न सुनते हैं, हाथ-पैर शान्त पड़े रहते हैं, जागने पर वह व्यक्ति कहता या अनुभव करता है कि मैं तो बड़े सुख से सोया इस विश्राम-सुख का अनुभव करने वाला कोई शरीर नहीं, वरन् आत्मा है।

एक ही माता के गर्भ से जन्म तथा एक ही वातावरण में पले हुए एक-सी शिक्षा पाने वाले दो भाइयों के आचरण भिन्न-भिनन होते हैं, उनमें एक सदाचारी होता है और एक दुराचारी, एक दानी होता है और एक कृपण, एक विद्वान होता है ओर एक विद्या-विरोधी, एक ईश्वर भक्त बनता है और एक नास्तिक, एक शान्त स्वभाव का होता है और एक झगड़ा करने वाला, उन दोनों में यह अन्तर जन्म से ही स्पष्टत: देखा जा सकता है, इस अन्तर का कारण पूर्व जन्म के कर्मो का फल होता है। इसलिये इस जनम में पिछले कर्मों के अनुससार ही आत्मा का स्वभाव बनता है, आत्मा में ही वे पिछले संस्कार बसते है, इसलिये दोनों भाईयों के स्वभाव भिन्न-भिन्न रहते हैं।

''जब भी मनुष्य किसी निर्दोष को शारीरिक, मानसिक या आर्थिक कष्ट पहुँचाता है अथवा जब भी वह कोई पाप-कर्म करता है, तो उसके मन में पाप-कर्म न करने की प्रेरणा होती है, यह प्रेरणा उत्पन्न करने वाली सत्ता ही आत्मा है।

मनुष्य का शरीर कुछ वर्षों के बाद पूर्णत: बदल जाता है, परन्तु उसकी स्मृति पूर्ववत् बनी रहती है, अर्थात् वृद्धावस्था में भी उसे अपने बाल्यकाल या युवावस्था की घटनाएँ ज्यों-की-त्यों स्मरण रहती है, इस स्मृति को सँवारकर रखने वाला यह शरीर नहीं वरन् आत्मा है। संसार में प्रत्येक प्राणी मृत्यु तथा शरीर की क्षति से भय ग्रस्त रहता है, परन्तु जब उसे आत्मा ज्ञान हो जाता है, तो वह मृत्यु तथा शारीरिक-क्षति के भय से मुक्त हो जाता है, इस प्रकार पहले भय मानना और फिर भय-रहित हो जाना आत्मा की सत्ता को सिद्ध करते हैं। वेद से लेकर आज तक का विज्ञान यह मानता है कि संसार में कोई भी तत्व नष्ट नहीं होता, वह केवल रूप परिवर्तित करता है, इसी प्रकार शरीर के प्राकृतिक तत्व भी नष्ट नहीं होते, शरीर मृत्यु के पश्चात् वे तत्व भी केवल रूप परिवर्तित करते है, इस प्रकार जब इतने स्थूल भौतिक तत्व नष्ट नहीं होते, तो अति सूक्ष्म आत्मा कैसे नष्ट हो सकता है, अत: उसका अस्तित्व सदैव रहता है।[4] सम्पूर्ण विश्व में प्राणियों की जातियों के अनुसार ही उनके स्वभाव होते हैं, जैसे- पशुओं में- सिंह, भेडिया, चीता आदि का स्वभाव हिंसक है परन्तु गाय, घोड़ा, भैंस व बकरी आदि का स्वभाव अहिंसक है, पक्षियों में- बाज, चील व कौआ आदि का स्वभाव हिंसक है परन्तु तोता, कबूतर आदि का स्वभाव अहिंसक है, पशु-पक्षियों के ये स्वभाव उनके पिछले कर्मों के अनुसार हैं, जो उनके शरीरों में नहीं वरन् उनके आत्मा में बसते हैं। मनुष्य के जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब उसे समाधि, स्वप्न अथवा जाग्रतावस्था में ही किसी भावी घटना का पूर्णाभास हो जाता है और वह पूर्वानुमान सत्य सिद्ध होता है, यह शक्ति मन, बुद्धि या शरीर में नहीं वरन् आत्मा में ही रहती है।

''अमर होने के कारण आत्मा को अनेक शरीर धारण करने पड़ते हैं, इस कथन पर कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि आत्मा को पूर्व जन्म की घटनाएँ स्मरण क्यों नहीं रहती? इसके उत्तर में यहाँ यह समझना चाहिये कि यदि मनुष्य ध्यानावस्थित होकर अभ्यास करें तो वह अपने पूर्व जन्मों की घटनाओं को भी देख और जान सकता है, क्योंकि पूर्वजन्म के कार्यों की स्मृति आत्मा के साथ ही दूसरे शरीर में चली जाती है, इसके साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि अनेक बालको को अपने पूर्व जन्म की स्मृति कुछ काल तक रहती है, अनेक घटनाओं की जाँच करने पर वे सत्य सिद्ध हुई हैं। यह पूर्व स्मृति शरीर के अन्दर नहीं वरन् शरीस्थ आत्मा के अन्दर स्थित रहती है।[5]

जब भी हम किसी विशेष व्यक्ति, दृश्य या घटना को देखते हैं तो उसके पास से हटने पर भी उसकी स्मृति हमारे अन्दर बनी रहती है; कई बार हम उसे भूल जाते हैं, परन्तु किसी कारणवश हमें उसकी स्मृति ज्यों की त्यों आ जाती है, यह स्मृति या विस्मृति किसे होती है? उस व्यक्ति, वस्तु, दृश्य या घटना को तो आँखों ने देखा था, उसकी ध्वनि को कानों ने सुनी थी, परन्तु वहाँ से हटने के बाद आँखें ओर कान उसे देखने में असमर्थ हो गये, उनके पास वह दृश्य व ध्वनि अब नहीं रहे, उन्होंने अपना-अपना वह ज्ञान किसी और शक्ति को सौंप दिया और उस शक्ति द्वारा यह ज्ञान अपने पास रख लिया। कई लोग समझते हैं कि वह शक्ति मन या बुद्धि में, परन्तु मन और बुद्धि में इतना सामर्थ्य नहीं कि वे स्मृतियों को अपने अन्दर समाहित कर सकें क्योंकि मन का कार्य संकल्प-विकल्प करना है तथा बुद्धि का कार्य किसी कार्य को करने की विधि को जानना है, स्मृति को अपने पास में रखने वाली आत्मा है। ऊपर दिये गये कुछ तथ्य, उदाहरण और विचारों को जानने के बाद यह पूर्ण रूप से निश्चित हो जाता है कि शरीर में आत्म का अस्तित्व निःसंदेह है, आत्मा अविनाशी और अजर अमर है। ''कुछ व्यक्ति यह प्रश्न भी करते हैं कि क्या आत्मा विज्ञान की पकड़ से बाहर है? इसका उत्तर यह है कि वर्तमान यन्त्र विज्ञान केवल प्राकृतिक पदार्थों को ही जान सकता है जबकि आत्मा में पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश ये प्राकृतिक तत्व होते ही नहीं, आत्मा तो अप्राकृतिक है, इसलिये वैज्ञानिक उपकरणों से आत्मा को नहीं जाना जा सकता, आत्मा को जानने के लिये वैदिक आत्म-विज्ञान का आश्रय लेना होगा तथा उसके नियमानुसार कार्य करने से ही हम आत्मा को जान सकते हैं।[6]

''प्रत्येक आत्मा का विश्व में कोई लक्ष्य है, जब तक अपने लक्ष्य को सिद्धि नहीं हो जाती है, तब तक इसका अस्तित्व मिट नहीं सकता, इस क्षणभंगुर जीवन में कोई आत्मा अपने लक्ष्य की सिद्धि पूर्ण नहीं कर सकती। मृत्यु के बाद भी आत्मा का अस्तित्व मिट्ता नहीं है। मनुष्य की नैतिक तथा बौद्धिक रचना से आत्मा के असरत्व होने का संकेत मिलता है, मनुष्य की बुद्धि देश और काल से सीमित है, जैसे-जैसे बुद्धि का विकास होता है, देश और काल की सीमाएँ समाप्त होती जाती हैं। जहाँ बाल्यकाल में भूत और भविष्य की सुधि रहती है, वहाँ बुद्धि का विकास होने पर भूत और भविष्य में भी हमारी पैठ होने लगती है, लेकिन तो भी जीवन का अनुमान किया जा सकता है जबकि बुद्धि का पूर्ण विकास सम्भव है, जिससे देश और काल की सीमाएँ बिल्कुल मिट जाये। नैतिक आदर्श असीमित हैं, सीमित देश और काल में इसकी सिद्धि सम्भव नहीं है, असीमित आदर्श की सिद्ध अनन्त काल में ही सम्भव है। आत्मा अवश्य अमर होगी, सेद ने इसी युक्ति से आत्मा के अमरत्व को सिद्ध किया है, आत्मा की असीमित शक्तियाँ है, मनुष्य के छोटे से शारीरिक जीवन में उसका विकास सम्भव नहीं है, उसके पूर्ण विकास के लिये आत्मा का अमर होना आवश्यक है।[7]

संदर्भ सूची

1. शारदा श्री हर विलास, स्वामी दयानन्द सरस्वती: एक तुलनात्मक अध्ययन, आचार्य विश्वबन्धु मानव सेवार्थ न्यास, अलीपुर कलाँ, मुजफ्फरनगर, पृ0सं0-31
2. सरस्वती दयानन्द, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वर्णाश्रम विषय, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427, गली मंदिर वाली, नया बांस, दिल्ली-110006, पृ0सं0-190
3. प्रभुपाद ए0सी0 भक्ति वेदान्त स्वामी, श्रीमद् भगवद्गीता, कर्मयोग, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई-400049, पृ0सं0-202
4. वर्मा अशोक कुमार, नीति शास्त्र की रूपरेखा पाश्चात्य और भारतीय, मोती लाल बनारसी दास 49 यू0एस0 बंगला रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, पृ0सं0-331
5. सरस्वती दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, नवम समुल्लास, आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 427, गली मंदिर वाली, नया बांस, दिल्ली-110006, पृ0सं0-197
6. डॉ0 वेद प्रकाश, ईश्वर उपासना क्यों और कैसे, मानव जीवन का रहस्य, वैदिक प्रकाशन, एन0एच0-17, पल्लवपुरम,-2 मेरठ (उ0प्र0) 250110, पृ0सं0-18
7. वर्मा अशोक कुमार, नीतिशास्त्र की रूपरेखा, पाश्चात्मय और भारतीय मोतीलाल, बनारसी दास, 41 यू0ए0 बंगला रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-110007, पृ0सं0-90

फुटनोट

1 सरस्वती दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, नवमसमुल्लास, पृ0सं0-197
2 सरस्वती दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, नवमसमुल्लास, पृ0सं0-201
3 डॉ0 वेद प्रकाश, ईश्वर उपासना क्योंकि और कैसे, मानव जीवन का रहस्य, पृ0सं0-18
4 वदे प्रकाश, ईश्वर उपासना, क्यों और कैसे, मानव जीवन का रहस्य, पृ0सं0-20
5 डा0 वेद प्रकाश, ईश्वर उपासना, क्यों और कैसे मानव जीवन का रहस्य, पृ0सं0-21
6 डॉ0 वेद प्रकाश, ईश्वर उपासना क्यों और कैसे, मानव जीवन का रहस्य, पृ0सं0-22
7 वर्मा अशोक कुमार, नीतिशास्त्र की रूपरेखा, पाश्चात्य और भारतीय, पृ0सं0-90

बैगा जनजाति के प्रमुख तीज त्यौहार एवं बदलते प्रतिमान का एक नृजातीय अध्ययन (कबीरधाम एवं मुंगेली जिला के विशेष संदर्भ में)

चम्पा साहू

शोधार्थी समाजशास्त्र एवं समाज कार्य अध्ययन शाला पं.रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर छत्तीसगढ़

डॉ० रश्मि कुजूर

सहायक प्राध्यापक शास.प.श्यामाचरण शुक्ल महाविद्यालय धरसींवा रायपुर छत्तीसगढ़

डॉ० एन. कुजूर

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययन शाला प.रविशंकर शुक्ल वि.वि. रायपुर (छ.ग.)

सरांश :- प्रस्तुत शोध अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के विशेष पिछड़ी जनजाति बैगा के प्रमुख तीज-त्यौहार एवं बदलते प्रतिमान का एक नृजातीय अध्ययन पर आधारित है। जिसके अंतर्गत बैगा जनजाति की प्रमुख पारंपरिक सांस्कृतिक तीज-त्योहारों का अध्ययन कर उसमें होने वाले वर्तमान परिवर्तन को भी दर्शाया गया है। प्रस्तुत अध्ययन कबीरधाम एवं मुंगेली जिले के बोड़ला एवं लोरमी विकासखण्ड के बैगा निवासरत गाँव बोदलपानी, सोनवाही, टिंगीपुर, एवं सुरहीगाँव के अध्ययन पर आधारित है। अध्ययन में तथ्य संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का संकलन किया गया है प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार निर्देशिका, डायरी, समूह वार्ता तथा द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु विभिन्न पूर्व में किये गये शोध पत्र-पत्रिकाए ,पुस्तक एवं इंटरनेट का उपयोग किया गया है। शोध अध्ययन से प्राप्त जानकारी के अनुसार बैगा जनजाति विभिन्न सांस्कृतिक तीज-त्योहारों जैसे, बिदरी, छेरता, फाग, छाया ढरना, नवाखाई (धान नवाखाई, मक्का नवाखाई, भाजी नवाखाई) आठ साल नौ कार्तिक, रोपाओसराना आदि पारंपरिक पर्वो का आयोजन करते है, जिसमें कुछ आंशिक परिवर्तन भी दिखाई दे रहा है जो इनके जीवन में विशेष महत्त्व रखते है।

शब्द कुंजी :- बैगा जनजाति, प्रमुख सांस्कृतिक तीज-त्यौहार एवं परिवर्तन

प्रस्तावना :-

Kaufmann W. (1941). Folk-Songs of the Gond and Baiga. The Musical Quarterly[1] में बैगा जनजाति को मध्य भारत की जनजाति बताया है जिसका निवास स्थान सतपुड़ा पर्वत के पूर्वी छोर मैकाल श्रेणी है बैगा जनजाति देश के मुल निवासी है जो आक्रमणकारियों के भय के कारण पहाड़ो एवं जंगलो में शरण ले लियां वर्तमान में बैगा जनजाति अपनी सभी प्राचीन आदतों को बरकरार रखते हुए हिन्दू धर्म को भी अपनाते जा रहें है लेकिन अपनी प्राचीन रीति-रिवाजों को संरक्षित रखे हुए है। वर्तमान में बैगा जनजाति भारत देश के विभिन्न राज्यों मध्य प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल, एवं छत्तीसगढ़ में निवास करते है, जो एक अत्यंत पिछड़ी एवं विलुप्तप्राय जनजाति है। एल्विन (1939)[2] ने अपने अध्ययन में बताया कि छत्तीसगढ़ में बैगा जनजाति सबसे पहले छोटा नागपुर के रास्ते से प्रवेश किया जो वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य के विभिन्न जिलो कबीरधाम, मुंगेली, बिलासपुर, गौरेलापेंड्रामारवाही, राजनांदगांव, कोरिया, आदि क्षेत्रो में निवास करती है। बैगा आधुनिकता से दूर दुर्गम स्थनों जंगलो पहाड़ो में निवास करती है जो संस्कृति रूप से समृद्ध मानी जाती है जिनकी जीवन शैली संस्कार, कला, परम्परा एवं तीज-त्योंहारो, नीति नियम आदि अलग विशिष्ट होते हैं। जो बैगा जनजाति को एक अलग पहचान दिलाती है। प्रत्येक समाज का अपना एक सांस्कृतिक पक्ष होता है जिसके द्वारा हम किसी भी समाज को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं, और इन्ही सांस्कृतिक पक्षों का एक विशिष्ट अंग होता है तीज -त्यौहार। सांस्कृतिक पक्ष किसी भी समाज की प्रतिबिम्ब को दर्शाता है। बैगा जनजाति की संस्कृति परम्परागत एवं प्राचीन है जो बैगा जनजाति को एक विशिष्ट पहचान दिलाती है, वर्तमान में हम अपनी प्राचीन परम्पराओ एवं संस्कारो में आधुनिकता को समाहित करते जा रहे हैं वैसे ही बैगा जनजाति के लोग आज भी अपनी परम्परा एवं प्राचीनता को बनाये हुए आधुनिक एवं हिन्दू परम्पराओं को आंशिक मात्रा में सम्मिलित करते जा रहें है। चौरसिया (2009)[3] बैगा जनजाति को प्राकृतिक पुत्र कहा है क्योंकि बैगा जनजाति प्राकृतिक के बहुत करीब होते है तथा पृथ्वी को अपनी माँ कहते है, और पृथ्वी पर हल नहीं चलाते हैं। क्योंकि इनकी मान्यता है की हम अपनी माँ के सीने पर हल नहीं चलाते

हैं, इसके साथ ही बैगा जनजाति प्राकृतिक औषधियों जड़ी -बूटियों के बारे में अधिक जानकारी रखते हैं। बैगा जनजाति के लोग अपने स्वास्थ्य से सम्बंधित समस्यों का उपचार जड़ी -बूटियों एवं झाड़ ख्रफुक से करते हैं।

शोध अध्ययनों की समीक्षा :- जैसा की हमें ज्ञात है की बैगा जनजाति देश की एक अत्यंत पिछड़ी जनजाति है, इनका रहनख्र सहन, स्वास्थ्य, शिक्षा पेयजल की समस्या, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, परम्परागत चिकित्सकीय ज्ञान ने कई शोधार्थियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है जिसमें मानवशास्त्री, समाजशास्त्री, अर्थशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक के द्वारा शोध अध्ययन किये है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में पूर्व में किये गये शोध साहित्यों का पुनरावलोकन करने का प्रयास किया गया है जो निम्न है-

1). भागवत डी. (1957)[4] ने द करमा में करमा अनुष्ठान, नृत्य, गीत के साथ करमा नृत्य के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है जिसमें इन्होंने करमा को गोंड संस्कृति का स्वदेशी हिस्सा नहीं माना है बल्कि कोलारियान या मुंडा संस्कृति का उत्पाद माना है। इन्होंने अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है की बैगा,मझवार और सावर वे लोग है जो मुख्य रूप से करमा का अभ्यास करते है और बाकि जनजातियों ने उनकी नकल की है, इसके साथ ही यह भी कहा है की करमा नृत्य केवल बिलासपुर कि जनजातियों द्वारा मनाया जाता है जिसे पूर्वी अनुष्ठानों के साथ मिला दिया गया है। यह नृत्य पुरे प्रान्त एवं हिन्दुओं में बहुत ही लोगप्रिय है जिसे गोलाकार प्रदर्शन की तकनीक के आकार में भिन्न-भिन्न चरण में प्रदर्शन करते हैं।

2). भागवत डी. (1968)[5] ने जनजाति त्यौहार का उल्लेख करते हुए कहा की जनजातियां त्योहारों के लिए उतने ही शौकीन है जितनी हम है फिर भी वे हमसे कहीं अधिक बेहतर त्योहारों के बारे में जानते हैं कि उनका आनंद कैसे लेना है। जनजातियों में त्यौहार के अवसरों पर मदिरा अपरिहार्य है। वहां रात भर नाच-गाना चलता रहता है और स्त्री -पुरुष व्यवहार प्राय:असंमित रहता है जहाँ इनके त्योहारों का हिस्सा अश्लील इशारे और अश्लील गाने भी होते हैं। इनके कई अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों जैसे विवाह, अत्येष्टि संस्कारों, फसल उत्सव फाग और सुअर बलि आदि में ऐसे औपचारिक दुरुपयोग अपरिहार्य है। इसके साथ ही साथ जनजाति अपने समारोहों एवं त्यौहार में अपने कुल देवी-देवताओं को रक्त और शराब अर्पित करते है, सभी जनजाति अपने इष्ट देवताओं को सुअर, बकरे, मुर्गी आदि चढ़ाते है।

3). रसेल एवं हीरा लाल(1916)[6] ने अपने अध्ययन में बैगा जनजाति के अनेक उपसमूहों भतोरिया, बिंझवार, गोडवानिया, खतभानिया, कोंधि, नरोतिया, नहार या रायबनिया और छ; गोत्र समूह घुघरिया, लेपिया, मरकाम, मरावी, नेताम एवं टेकाम का उल्लेख किया है

4). एल्विन (1939)[7] ने ''द बैगा'' में बैगा जनजाति को मिडिसीन में कहा है। उन्होंने बैगा जनजाति के वंश गोत्र समूह उत्पत्ति एवं सम्पूर्ण जीवन शैली का गहन अध्यन कर बताया की बैगा जनजाति जो है छत्तीसगढ़ में सबसे पहले छोटा नागपुर के रास्ते से प्रवेश किया था। जो वर्तमान में छत्तीसगढ़ राज्य के विभिन्न जिलो कबीरधाम, बिलासपुर, राजनांदगांव, कोरिया, मुंगेली आदि क्षेत्रो में निवास करती है

5). कोठारी सी.आर.रिसेर्च मेथेडोलोजी (2004)[8] न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिकेशन न्यु दिल्ली शोध अध्ययन को सुगम बनाने के लिए शोध से सम्बंधित विभिन्न आयाम एवं विषय से सम्बंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त किया गया है।

6). अली सी.ए. (2011)[9] .ने FESTIVAL AS A SOURCE FOR RECONSTRUCTING TRIBAL ETHNOHISTORY: "THE NILAMBUR PAATTU. में केरल के मलपुरम जिले की नीलाम्बुर जनजाति जो नीलाम्बुर पश्चिमी घाटी में निवास करती है के द्वारा मनाये जाने वाले प्रसिद्ध त्यौहार नीलाम्बुर पाट्टू के अध्ययन के आधार पर स्पष्ट किया की स्थानीय त्यौहार को केवल मनोरंजन और पुजा का साधन न मानकर इसका उपयोग किसी क्षेत्र एवं उसके लोगों के जातीय इतिहास का पता लगाने के स्रोत में किया जा सकता है इन्होंने बताया की नीलाम्बुर पाट्टू त्यौहार नीलाम्बुर जनजाति की संस्कृति और परम्पराओं के कुछ पहलुओ को उजागर करने में सहायक है।

7). गुप्ता पारुल एवं डेविड अल्का (2017)[10] के शोध अध्ययन से बैगा जनजाति के पर्व -त्योहारों के महत्व एवं उनमें होने वाले परिवर्तन के बारे में प्राप्त हुई है।

8). कुमार गजेन्द्र (2020)[11] का बैगा जनजाति के सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक अध्ययन से बैगा जनजाति की परम्पराओ, सामाजिक व्यवस्था, शिक्षा की स्तर, औषधि ज्ञान आदि की जानकारी प्राप्त होती है

अध्ययन का उद्देश्य :-

1. बैगा जनजाति की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. बैगा जनजाति के प्रमुख तीज-त्योहारों का अध्ययन करना।
3. बैगा जनजाति के तीज-त्यौहार एवं बदलते प्रतिमान का अध्ययन करना

शोध पद्धति एवं उतरदाताओ का चयन। छत्तीसगढ़ राज्य में वर्तमान में कुल 33 जिलें हैं, इनमें से 06 जिलों कबीरधाम, बिलासपुर, कोरिया, राजनांदगांव मुंगेली एवं गौरेला पेंड्रा मारवाही में बैगा जनजाति निवास करती है। बैगा जनजाति निवासरत जिलो में से दो जिले कबीरधाम एवं मुंगेली का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया है। चयनित जिलो में कुल 07 विकासखण्ड है इसमें बोडला, पंडरिया, कबीरधाम, सहस-लोहरा, मुंगेली, लोरमी तथा पथरिया प्रमुख है इसमें से 2 विकास खण्ड का उद्देश्यपूर्ण निर्दशन के द्वारा चयन किया गया है इनमें कबीरधाम से बोडला और मुंगेली जिला से लोरमी विकासखण्ड का चुनाव किया गया है। बोडला विकासखंड में कुल 182 गाँव और लोरमी विकासखंड में कुल 41 गाँव है जिसमें से दो गाँवो का चयन दूरी को आधार मानकर उद्देश्य पूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया है। जिसमें दो गाँवो की दूरी विकासखंड मुख्यालय से 20-30 किलोमीटर तक एवं दो गाँवो की दूरी 30-50 किलोमीटर की दूरी तक लिया जाएगा। चयनित गाँवो में कुल 379 परिवार है जिसमें से अध्ययन हेतु Krejcie and Morgan सूची का प्रयोग करते हुए अधिकतम 265 परिवारों का चयन किया गया एवं उत्तरदाताओं का चयन दैवनिदर्शन की लॉटरी प्रणाली से किया जाएगा। चयनित परिवार के मुखिया को अध्ययन इकाई के रूप में लिया गया है।

उतरदाताओ का चयन विवरण निम्नानुसार है-

क्रमांक	ज़िले का नाम	विकासखंड का नाम	वि.ख.से गाँव की दुरी	ग्राम का नाम	कुल परिवार की संख्या	चयनित परिवार की संख्या 70 प्रतिशत
1.	कबीरधाम	बोडला	20-30 कि.मी. तक	बोदलपानी	88	62
			30-50 कि.मी. तक	सोनवाही	124	86
2.	मुंगेली	लोरमी	20-30 कि.मी. तक	टिंगीपुर	74	52
			30-50 कि.मी. तक	सुरही	93	65
योग	02	02		04	379	265

तथ्यों का संकलन एवं उपकरण :- तथ्यों के संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार निर्देशिका, डायरी का उपकरण के रूप में प्रयोग किया गया है, इसके साथ ही समूहवार्ता, अवलोकन पद्धति का भी प्रयोग हुआ है। द्वितीयक तथ्यों के संकलन हेतु विभिन्न शोध अध्ययन, पत्र -पत्रिका, शोध आलेख, शासन द्वारा प्रसारित सूचनाओं, इन्टरनेट आदि का प्रयोग किया गया है।

बैगा जनजाति की सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन :-बैगा का अर्थ ओझा या शमन होता है, बैगा जनजाति के लोग झाड़ -फुक और अंध विश्वश जैसी परम्पराओं में अधिक विश्वाश करते हैं। बैगा जनजाति दुर्गम क्षेत्रो पहाड़ो जंगलो में प्राकृतिक के करीब निवास करते हैं, जो सामान्यत सावले रंग, मध्यम कद और गठिला शारीरिक बनावट के होते हैं, इनकी उत्पति से सम्बंधित कोई विशेष प्रमाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। बैगा जनजाति के लोग परम्परागत रूप से संयुक्त परिवार में रहना पसंद करते हैं, लेकिन वर्तमान में सरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित होने के डर से स्वयं को एकाकी परिवार बताते है परन्तु वास्तविक रूप में वे वर्तमान समय में भी ज्यादातर संयुक्त परिवार में ही रहते हैं एक परिवार में करीब 8-10 सदस्य होते हैं जिसमें औसतन एक परिवार में 3-4 बच्चे होते है। बैगा जनजातियो में गाँव के मुखिया को मुक्कदम, दीवान या समरथ कहा जाता है, जो अनुभवी और वृद्ध व्यक्ति होते हैं इनकी स्थिति समाज में ऊच्च होते हैं जिनका सभी लोग सम्मान करते हैं। गाँव में किसी भी प्रकार के सामाजिक, पारिवारिक विवादों का निपटारा मुक्कदम द्वारा किया जाता है। बैगा जनजाति के परम्परागत मकान का स्वरूप कच्चा होता है जो प्राय: लकड़ी, बांस घास और मिट्टी के बने होते हैं, वर्तमान में आधुनिकता के कारण या सरकारी योजनाओं के कारण कुछ लोगो की मकान का स्वरुप पक्के भी देखने को मिलता है। बैगा जनजाति की व्यवसाय मुख्य रूप से झूम खेती एवं शिकार करना है, इसके साथ -साथ वनोपाज संग्रह, पशुपालन तथा ओझा का कार्य करते है। बैगा जनजाति की प्रमुख भाषा बैगानी है, भाषा की दृष्टि से बैगाओ, में एकरूपता नहीं पाई जाती है, अनेक भाषा समूह से सम्बंधित होने के कारण बैगा जनजाति के लोगो द्वारा अपनी मूल भाषा बैगनी के साथ -साथ छत्तीसगढ़ी, बघेली, गोड्वानी, मराठी आदि भाषाओं का भी प्रयोग करते है, बैगा जनजाति द्रविड़ भाषायी परिवार में आते हैं।

बैगा जनजाति सामाजिक रूप से अत्यंत पिछड़ी जनजाति मानी जाती है,लेकिन सांस्कृतिक रूप से इन्हें समृद्ध मन जाता है। बैगा जनजाति की संस्कृति बहुत ही प्राचीन एवं परम्परागत है जो इन्हें एक विशेष पहचान दिलाती है, बैगा जनजाति एक गोदना प्रिय जनजाति है जो श्रृगार के तौर पर बैगा महिलाए अपने शारीर पर गोदना बनवाते है गोदना को लेकर इनकी मान्यता होती है यदि हम जीते जी अपने जीवन में गोदना न गोदवाये तो मरने क बाद भगवान सबल से गोदना गोदते है बैगा जनजाति द्वारा विभिन्न अवसरों जन्म, विवाह,

उत्सव आदि में नृत्य करते है। बैगा जनजाति द्वारा की जाने वाली प्रमुख नृत्यों में करमा नृत्य, (करमा पहाड़ी, करमा झुलनी, करमा लहकी) बिल्मा आदि है, बिल्मा नृत्य बैगा जनजाति के युवा ख्रयुवतियों द्वारा टोली बनाकर दशहरे के दिन से प्रारंभ करते है जिसे 02-03 माह तक किया जाता है।

बैगा जनजाति त्यौहार :-

Bhagvat, D. (1968)[12] . Tribal Gods and Festivals in Central India. Asian Folklore Studies, में जनजाति त्यौहार का उल्लेख करते हुए कहा की जनजातियां त्योहारों के लिए उतने ही शौकीन है जितनी हम है फिर भी वे हमसे कहीं अधिक बेहतर त्योहारों के बारे में जानते हैं कि उनका आनंद कैसे लेना है। जनजातियों में त्यौहार के अवसरों पर मदिरा अपरिहार्य है द्यवहां रात भर नाच-गाना चलता रहता है और स्त्री -पुरुष व्यवहार प्राय:असंमित रहता है जहाँ इनके त्योहारों का हिस्सा अश्लील इशारे और अश्लील गाने भी होते हैं। इनके कई अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों जैसे विवाह, अत्येष्टि संस्कारों, फसल उत्सव फाग और सुअर बलि आदि में ऐसे औपचारिक दुरुपयोग अपरिहार्य है। इसके साथ ही साथ जनजाति अपने समारोहों एवं त्यौहार में अपने कुल देवी-देवताओं को रक्त और शराब अर्पित करते है, सभी जनजाति अपने इष्ट देवताओं को सुअर, बकरे, मुर्गी आदि चढ़ाते है।

बैगा जनजाति के प्रमुख त्यौहार:-

1). आठ साल नौ कार्तिक या रसनवा:- बैगा जनजाति में यह त्यौहार आठ साल में एक बार मनाया जाता है। आठ कुवांर गुजरने के बाद नौवे कार्तिक माह में मोहती की पौधा उगने की खुशी में यह पर्व मनाया जाता है, इनकी मान्यता है की मोहती का पौधा आठ साल में एक बार उगता है। इस त्यौहार को मनाने के लिए इस दिन जंगल से मोहती डाल को कटकर लाया जाता है और इसे आँगन में गाडा कर छोटे -छोटे 3-4 कमरे बनाते है, जिसमे विशेष पूजा की जाती है। और साथ में बांस भी काट कर लाते है जिसका बर्तन बनाते है और उसी बर्तन में कुटगी को मधुरस के साथ मिला कर खीर बनाते है जिसे मोहती पत्ते के बने दोने से रखते है जिसका पूजा करते है। पूजा करने के बाद इस खीर को केवल कुंवारी -कुंवारा युवा युवती खाते है, तथा इस पूजा में नौव लड़के लड़की की आवश्यकता होती है लेकिन बने खीर जिसे केनवा कहा जाता है, को सभी अविवाहित लोग खाते है।

2). जवारा पर्व :- जवारा पर्व को बैगा जनजाति में देवी पर्व के रूप में मनाया जाता है। इस त्यौहार या पर्व को चौत से जेठ माह तक और कुवार माह में मनाया जाता है, इस पर्व में खैर माई की पूजा की जाती है प्रारम्भ में नई टोकनी या खप्पर में गेहूं के बीज को बोये जाते है जिसे जवारा बोना कहते है। जवारा जो है खैर माई के पूजा स्थल के साथ - साथ, अपने - अपने निजी घरो में भी बोये जाते है, नवे दिन नाचते - गाते नाकड़ा ढोल जुलुस के साथ जवारे को नदी में विसर्जन करते है। उसके बाद देवी - देवताओ को बकरा, काली मुर्गी, नारियल आदि की बलि देते है, और बलि स्वरुप दी गई बकरा, मुर्गी आदि को आपस में बाटकर खाते है।

3). छाया धरना :- हिन्दू धर्म में पितृ मोक्ष के लिए पितृ विसर्जन का त्यौहार मनाया जाता है वैसे ही बैगा जनजाति में भी साल में एक बार अपने पितरो का स्मरण किया जाता है। यह त्यौहार बैगा जनजाति द्वारा जेठ माह के शुक्ल पक्ष के सोमवार, बुधवार और शुक्रवार को मनाया जाता है इस दिन बैगाओ के देवी - देवताओं के लिए विशेष दिन होता है। सभी समान गोत्र के बैगा परिवार एक - एक मुर्गी इकट्ठे करते है और उसे अपने पूर्वजो को बलि के रूप में अर्पित करते है जिसे उसी गोत्र के लोग आपस में बाटकर खाते है।

4). बिदरी :- यह त्यौहार अक्ती (अक्षय तृतीया) के दिन मनाया जाता है इस पर्व में बीज बोने से पहले अच्छी फसल की कामना से बीजो की पूजा की जाती है जिसे बिदरी कहा जाता है, इस दिन अच्छी फसल के कामना के साथ इनके फसलो को कोई भी पशु - पक्षी नष्ट न करे इस कामना से बिदरी पर्व का आयोजन करते है बीज बोने से पहले प्रत्येक घर में जो मुखिया होता है वह महलोंन के पते से बने दोने मे बोये जाने वाले बीज को ठाकुर देव के स्थान पर लेकर जाते है। जिसका देवार (पुजारी) पूजा करता है पूजा स्थान पर सभी लोग अपने द्वारा लेकर गए अनाज / बीज को इक्कठा करते हैं उसके बाद ठाकुर देव में मुर्गी की बली दी जाती है और उसी मुर्गी के खून को अनाज / बीज में मिला दिया जाता है उसके बाद खून से सनी बिज को सभी बैगा कृषक को दिया जाता है जो घर आने के बाद उसमें बोये जाने वाले बीजों को और मिला देते हैं। इस त्यौहार में महिलाये भाग नहीं लेती है।

5). हरेली :- यह पर्व हिन्दू धर्म के अमुरूप सावन अमावस्या के दिन बैगा जनजाति द्वारा मनाया जाता है इस दिन घर की लिपा - पोती की जाती है तथा घर का मुखिया या बुजुर्ग व्यक्ति सबेरे उठकर जंगल से भीलवा की डाल, जोगी लटी, हसिया डाफर

तथा भवर माल की डालिया को काटकर लाते है नहाने के बाद सभी को मिलाकर छोटे - छोटे डंठल घर के दरवाजे और जानवर रखने के स्थान, खेत आदि में डाल को खोसता है तथा नेक भी लेता है। यह त्यौहार अच्छी भरपूर फसल के लिए होती है, बैगा जनजाति द्वारा इस दिन अच्छा भोजन तेल रोटी, बाजरा बनाते है तथा खेत में ले जा कर अपने खेति डोली से सम्बंधित देवी देवताओं की अच्छी फसल की कामना से पुजा आराधना करते हैं। परम्परागत रूप से बैगा जनजाति द्वारा इस दिन गेड़ी भी बनाया जाता था किन्तु वर्तमान में बास उपलब्ध न होने के कारण अब गेड़ी बनाने की परम्परा विलुप्त होती जा रही है द्य

6). रोपा ओसराना :-यह त्यौहार कृषि से सम्बंधित प्रमुख त्यौहार है जिसे बैगा समुदाय द्वारा परम्परागत रूप से रोपा लगने की खुशी में रोपा लगने के बाद मनाया जाता है। इस पर्व में बैगा किसान अपने खेतों में काम करने वाली महिलाओं को खाने पर निमंत्रण देते तथा इसी दिन मिट्टी की कोठी बनाते है और इस कोठी को ढकने के लिए पिहना (ढक्कन) बनाया जाता है तथा इस कोठी में रखने के लिए घर से धान लाया जाता है उसके बाद नारियल, अगरबत्ती एवं फुल से खैर माता एवं अन्नपूर्णा माता की पुजा आराधना कर धन-धान्य की समृद्धि के लिए कामना की जाती है। पुजा आराधना के पश्चात महिलाओं को खाना खिलाया जाता है फिर सभी महिलाए आँगन में गोल घूम-घूम कर सुवा नृत्य करती है।

7). नवाखाई / नवफसल :- नवाखानी फसल कटाई का पर्व है, बैगा जनजाति के लोगो द्वारा अपने देवी - देवताओ की कृत्यज्ञता के लिए इस पर्व को मनाते है। बैगा जनजाति में मान्यता है की वे नई फसल का भोग पहले अपने देवी ख्र देवताओं और पितरो को लगाते है। उसके बाद ही नई फसल का उपभोग करते हैं, यह पर्व खरीफ (स्याली फसल) में मनाई जाती है। नवाखाई पर्व मनाने के एक दिन पहले घर का बुजुर्ग व्यक्ति अपने सभी देवी - देवताओं एवं पूर्वजो को नवा खाने का निमंत्रण देते हैं, तथा उनके स्वागत के नाम पर ककड़ी फूल या तिराइ (तोरई) फूल आदि को तोड़कर डेहनी एवं चौका (पूजा करने का स्थान) में रखते है। इस दिन बने भोजन में नया अनाज मिलकर बनाते है। इस दिन घर में आटे का चौक पुरकर दिया अगरबत्ती कर बने भोजन का देवताओं एवं पूर्वजो को अर्पित करते है। बैगा जनजाति द्वारा नवाखाई त्यौहार को मक्का नवाखाई,रवास नवाखाई,भाजी नवाखाई, कांग नवाखाई (कोदो, कुटकी, सांवा) आदि विभिन्न स्वरूपों में मनाया जाता है।

8). दशहरा :- बैगा जनजाति द्वारा दशहरा का त्यौहार हिन्दू धर्म के अनुरूप कुवार शुक्ल दशमी को मनाया जाता है द्यदशहरा पर्व को बैगाओ का नृत्य आरम्भ करने का पर्व कहा जाता है हिन्दू दशहरा का दिन तिथि समान है लेकिन इनका आपस में कोई संबंध नहीं होता है। दशहरा पर्व के रूप में बैगा जनजाति अपनी रक्षा की देवी खैर माता की नारियल अगरबती एवं धुप से पुजा आराधना करने के बाद रमतिला का फुल अर्पित करते है जिसे फुल चढ़ाना कहा जाता है इस दिन के बाद से बैगा जनजाती में कर्मा नृत्य प्रारम्भ होता है तथा इसी दिन से बैगा समुदाय के लोग कोठार बनाना प्रारंभ करते है खैर माता से फसल की सुरक्षा की आशीर्वाद लेकर। वर्तमान में बैगा समुदाय द्वारा दशहरे के दिन दशहरा देखने के लिए आस-पास के गाँवो में जाया जाता है और वहा से विभिन्न प्रकार के खाने के समान एवं बच्चों के लिए खिलौने लेते है।

9). देवारी :- बैगा जनजाति की परम्परागत पर्व नहीं है, बल्कि यह हिन्दू समाज के देखा-देखि मनाने वाला पर्व है जिसे कार्तिक अमावश्या के दिन मनाया जाता है। इस दिन बैगा समुदाय के लोग मिट्टी या चावल आटे का दीया बनाते है चावल आटे के बने दिया को भाप में पकाते है तथा उसमें तेल या घी डाल कर प्रज्वल्लित कर अपने देवी-देवताओं के सामने रखते है एवं आटे से बने दीया को खाया जाता है। इसी दिन बैगा जनजाति के लोग बच्चे की अच्छी स्वास्थ्य की कामना से घी के दिए से बच्चों के पेट को डाभा जाता है। तथा दिवाली के दिन बैगा जनजाति अपने पालतू पशु गाय एवं बैलो को कुम्हड़ा भात या खिचड़ी भात खिलाते है, शाम को जंगल से लौटी गाय एवं बैलो का मुंह धुलाते है, उसके बाद गायो को कुम्हड़ा भात नई सुपा में खिलते है, यदि गाय -बैलो की संख्या अधिक होती है तो खाट में केला पान बिछा कर खिलाया जाता है और रात में परिवार के सभी लोग दाल-भात खाते है।

10). छेरता :-यह पर्व बैगा जनजाति द्वारा भी पौष पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है जो विशेष रूप से बच्चो का पर्व है। परन्तु इस त्यौहार को मनाने के तौर तरीके बैगा समुदाय में अलग है पौष पूर्णिमा के दो - तीन दिन पहले से बैगा जनजाति के बच्चे घर - घर जा कर अनाज, नमक, मिर्जी आदि खाद्य सामग्री का मांग करते है जिसे छेरता कहते है। छेरता से प्राप्त सभी सामग्री को नदी किनारे झिरिया किनारे या घर के बहार बाड़ी में जा कर पकाते है, और वही से खाना पीना करके वापस घर लौट आते है। वर्तमान में बैगा बच्चों द्वारा छेरता से प्राप्त अनाज को कुछ मात्रा में दुकानों में बेचा जाता है और जरुरत की समान खरीदा जाता है।

11). फाग :-होली पर्व को बैगा जनजाति फाग पर्व के रूप में फागुन पूर्णिमा के दिन मनाते हैं। पूर्णिमा के दो ख्चार दिन पहले जंगल से लकड़ी कट कर लाते है और गाँव के बहार स्थान पर गाडा जाता है लकड़ी गाड़ने से पहले गड्ढ़े में मुर्गी का अंडा, अगुली

का छल्ला तांबे का और पैसा डाला जाता है उसके बाद रात भर गाड़े गए लकड़ी के चारो -ओर फाग गीत गाकर नाचते है और मदिरा का सेवन करते है उसके बाद सुबह चार बजे पूर्णिमा की रात अंतिम पहर में गाँव का मुखिया होली दहन करता है। होली के दिन एक छोटा बैल गाड़ी बनाया जाता जिसमें लाल,काला और सफेद रंग का ध्वजा लगाया जाता है तथा गाँव के पटेल द्वारा पूजा-पाठ इस उद्देश्य से किया जाता है गाँव एवं घरो में जो भी बीमारी है वह दूर हो जाये और गाँव में ऐसी बीमारी फिर न आये इसी उद्देश्य बैलगाड़ी और एक जीवित मुर्गी गाँव से बहार सूर्य उदय से पहले पूर्व दिशा में छोड़ा जाता है और पांच मुर्गी की बलि दिया जाता है। होली का प्रारंभ होली दहन की राख को एक दुसरे को लगा कर करते है। बैगा जनजाति के लोग परम्परागत रूप से रंग के रूप में पलास फुल को पानी में उबाल कर करते थे, वर्तमान में विभिन्न प्रकार के रंग एवं गुलाल का प्रयोग किया जाता है।

बैगा जनजाति के तीज-त्यौहार एवं बदलते प्रतिमान

बैगा जनजाति उत्सव धर्मी एवं प्राकृतिक प्रेमी होते है इनके समुदाय से सम्बंधित विभिन्न त्यौहार प्राकृतिक से सम्बंधित होते है अपने जीवन से जुड़े प्रत्येक त्यौहार को प्राकृतिक के संदर्भ में मानते है और अपने जीवन को खुशियों से उत्साहित करते है फसल बोवाई से लेकर फसल कटाई तक इनके समुदाय में विभिन्न त्योहारों जैसे बिदरी, नवाखाई, रसनवा, छेरता रोपा ओसराना आदि का आयोजन करते है और इनके माध्यम से अपनी समुदाय की परम्परागत सांस्कृतिक व्यवहारों को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित कर संरक्षित करते है तथा नई पीढ़ी को इन व्यवहारों से अवगत कराते है। बैगा समुदाय का इन त्यौहारो के वजह से एक अलग अस्तित्व है जो इन्हें सांस्कृतिक रूप से समृद्ध बनती है, तथा इनके समुदाय के लोगो में प्राकृतिक के प्रति आदर की भावना को जागृत करती है जो पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देती है। बैगा जनजाति समुदाय के लोग वर्त्तमान में आधुनिकता और नगरीकरण के प्रभाव तथा बाहय लोगो के संपर्क में आने के कारण अपनी परम्परागत सांस्कृतिक व्यवहारों, तीज-त्योहारों, खान-पान, रहन-सहन आदि में बाहय लोगो की संस्कृति को आत्मसात करते जा रहे है। जिसके कारण से इनकी परम्परागतगत संस्कृति के साथ साथ जन सामान्य की संस्कृति भी सम्मिलित होती जा रही है। एम.एन.श्रीनिवास ने अपने संस्कृतिकरण की अवधारणा में बताया की निम्न जाति के लोग उच्च जाति की जीवन शैली एवं कर्म कांड को अपनाते है वैसे ही बैगा जनजाति समुदाय के लोगो द्वारा अपने सांस्कृतिक रीति-रिवाज कर्म-कांड आदि में जन सामान्य की संस्कृति को अपनाते जा रहे है जिससे बैगा जनजाति समुदाय की परम्परागत सांस्कृतिक अस्तित्व संक्रमित हो रही है और इनकी सांस्कृतिक समृद्धि में कुछ मात्रा में परिवर्तन हो रहा है। अध्ययन में कुछ बैगा जनजातिय के नौकरी प्राप्त युवा जो निकटस्थ क्षेत्रो में निवासरत है के साक्षात्कार उपरांत यह तथ्य प्राप्त हुआ की आर्थिक रूप से सक्षम होने के उपरांत एवं अपने समुदाय से दूर रहने के कारण ये अब अपने सामुदायिक पर्वो में उपस्थित नहीं हो पा रहें है और कुछ त्योहारों की मुलभुत मान्यताओ जिसे हम इथोज कहते है को वे भूलते जा रहें है। हालांकि बैगा जनजाति विशेष पिछड़ी जनजाति है एवं समुदाय में साक्षरता एवं आर्थिक रूप से सक्षम लोगो की कमी है परन्तु इनमें से जो भी युवा अपने समुदाय से रोजगार हेतु दूर होते हैं उनमें इस प्रकार की जानकारी प्राप्त हुई है। अत:वर्त्तमान परिपेक्ष्य में बैगा जनजाति के सांस्कृतिक विशेषता को बनाये रखने हेतु परम्परागत पर्वो का आयोजन निरंतर होना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत शोध पत्र छ.ग.राज्य की विशेष रूप से पिछड़ी जनजाति बैगा के प्रमुख तीज त्यौहार एवं बदलते प्रतिमान का एक नृजातीय अध्ययन पर आधारित है। बैगा जनजाति छ.ग.में मुख्य रूप से छः जिलो कवर्धा, कोरिया, मुंगेली, बिलासपुर गौरेला पेंड्रा मरवाही एवं राजनान्दगावं में निवास करती है। बैगा जनजाति समुदाय में परम्परागत पर्वो का अत्यंत महत्त्व है वर्ष भर बैगा जनजाति के लोग विभिन्न अवसरों पर पर्वो को परम्परागत रूप से मनाते है बैगा जनजाति के प्रमुख पर्वो के नाम जवारा पर्व, रसनवा, बिदरी, छेरता, फाग, नवाखाई, देवारी दसहरा, हरेली, छाया धरना आदि है। बैगा जनजाति समुदाय में विभिन्न पर्वो के मनाये जाने के पीछे कुछ विशेष मान्यताये होती है जिसे वैज्ञानिक रूप से इथोज की संज्ञा दी गई है। इथोज संस्कृति के भावनात्मक अथवा सैद्धान्तिक पक्ष को कहा जाता है। इस शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग प्रो.A.L.क्रोबर ने किया था। प्रत्येक जनजातिय पर्वो को मनाये जाने के पीछे कुछ मान्यताये होते है एवं जनजातिया इन्ही मान्यताओ के अनुरूप परम्परागत रूप से विभिन्न पर्वो को मनाते है। बैगा जनजाति के विभिन्न पर्व नियत तिथियों पर आयोजित होते है एवं सभी पर्वो के मनाये जाने की विधिया एवं देवी-देवता भी पर्व के अनुसार अलग-अलग होते है। जनजाति पर्व भी जनजातिय समुदाय की संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है एवं इनके मनाए जाने के तरीके एवं रीतिरिवाज पर्वो के अवसरो पर गाए जाने वाले गीत एवं नृत्य तथा वाद यंत्र भी अवसर अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार के होते है। बैगा जनजाति में भी विभिन्न पर्वो के लिए पृथक-पृथक गीत, नृत्य एवं व्यंजन आदि का विशेष महत्त्व होता है क्रोबर के अनुसार संस्कृति के व्यवहारिक एवं बाहय पक्ष को इडोज कहा जाता है तथा इडोज का संचालन एथोज (भावनात्मक पक्ष)के अनुरूप होते है। बैगा जनजाति समुदाय में भी विभिन्न पर्वो के आयोजन में एथोस एवं एडोस गुण परिलक्षित होते है एवं वर्तमान परिपेक्ष्य में बैगा जनजाति के सांस्कृतिक विशेषता को पृथक पहचान दिलाने में

इन परम्परागत पर्वो का विशेष महत्त्व दिखाई पड़ता है। ये पर्व समुदाय के अस्तित्व को बनाये रखने में सहयोग प्रदान करते है। प्रस्तुत अध्ययन में यह भी पाया गया है की बैगा समुदाय के कुछ लोग जिनकी संख्या नगण्य के समान है जब अपने समुदाय से पृथक रोजगार हेतु अन्यत्र निवासरत रहते है तो वे सभी प्रकार के सामुदायिक पर्वो में उपस्थित नहीं हो पाते एवं साथ ही वे धीरे-धीरे उन पर्वो की मान्यताओ को भी भूलते जा रहे हैं। अध्ययन में यह तथ्य भी पाया गया की बैगा समुदाय के निकटवर्ती हिन्दू समुदायों के साथ संपर्क होने के कारण हिन्दू पर्वो जैसे दिपावली एवं होली, रक्षा बंधन, दशहरा आदि पर्वो का आयोजन बैगा जनजाति समुदाय द्वारा किया जाता है तथा वे अपने परम्परागत पर्वो को भी यथावत मना रहे है।

अत:प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है चुकी मानवीय समुदाय के अस्तित्व के लिए संस्कृति का संरक्षण अत्यंत आवश्यक है उसी प्रकार बैगा जनजाति की भी विशेष पहचान उसकी पृथक संस्कृति के कारण दिखाई पड़ती है एवं बैगा जनजाति के परम्परागत पर्व इस जनजातिय समुदाय की संस्कृति के हस्तांतरण में अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहें है। यह पेपर डी. बी. गर्ल्स कॉलेज में आयोजित दो दिवसीय नेशनल सेमीनार में पढ़ा गया है।

संदर्भ सूची :-

1. Russel & Heeralal. (1916). The Trible And Cast Of The Central Probation Of India. Landan: Macmillan Publication.pp.323-331
2. Elvin, V. (1939). The Baiga. New Delhi: Gyan Publication.pp519
3. Kaufmann, W. (1941). Folk-Songs of the Gond and Baiga. The Musical Quarterly, p.280-288.
4. Bhagvat, D. (1957). The Karma. Anthropos, 52(3/4), 581-602. http://www.jstor.org/stable/40454083
5. Krober,A.L.. (1948). Anthropology. New York: Harcourt Brace & Co.pp.255
6. Bhagvat, D. (1968). Tribal Gods and Festivals in Central India. Asian Folklore Studies, p.27-106.
7. कोठारी सी .आर .रिसर्च मेथटोलोजी (2004) न्यु एज इंटरनेशनल पब्लिकेशन न्यु दिल्ली
8. चौरसिया वि.कु. प्राकृतिक पुत्र बैगा (2009)हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल पृ.1-8
9. Ali C.A., F. (2011). FESTIVAL AS A SOURCE FOR RECONSTRUCTING TRIBAL ETHNOHISTORY: "THE NILAMBUR PAATTU." Proceedings of the Indian History Congress, p.1377-1386
10. गुप्ता पारुल एवं डेविड अलका (2017) इंटरनेशनल जनरल आफ अकादमिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट।

पारिस्थितिक चिंतनः हिंदी कविता के आईने में

डॉ० सुप्रिया पी०

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड़, केरल

रचना तनवर

शोधार्थी, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, केरल

कविता अंतस के द्वार खोल कर शब्द रूप के माध्यम से विचारों का संप्रेषण करती है। हिंदी साहित्य के आधुनिक काल से पूर्व, कविता ही मनुष्य की संपूर्ण विवक्षा का संप्रेषण करने का साधन थी। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक काव्य में प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंधों को गहराई से अभिव्यक्त किया गया है। कविता मनुष्य के विचारों की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति करती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने निबंध 'कविता क्या है?' में लिखते है "कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।" समकालीन दौर की कविता भी आज के दौर की अभिव्यक्ति बेहद सरलता से कर रही है।

पारिस्थितिवाद के सिद्धांत को सर्वप्रथम जर्मन दार्शनिक अर्नेस्ट हैकिल ने दुनिया के समक्ष रखा। अर्नेस्ट हैकिल ने सन् 1866 में पारिस्थितिवाद की परिभाषा देते हुए कहा –

> "Entire science of the relations of the organism to the surrounding exterior world, to which relations we can count in the broader sense all the conditions of existence- These are partly of organic, partly of inorganic nature-"[1]

यह परिभाषा संकेत करती है कि पारिस्थितिकी केवल जीव और उसके परिवेश के साधारण संबंध का अध्ययन नहीं है, बल्कि अस्तित्व के उन सभी कारकों का समग्र विज्ञान है जो किसी जीव के जीवन को संभव बनाते हैं। हैकिल इस संबंध को एक व्यापक जीवन-तंत्र के रूप में देखते हैं जहाँ जीव अपने परिवेश से निरंतर क्रिया-प्रतिक्रिया करता है।

किंग और रुस्सेल (1909) ने पारिस्थितिवाद को परिभाषित करते हुए कहा –

> "The study of the relations between animals and their environment, both animate and inanimate."[2]

इस परिभाषा का मुख्य बिंदु यह है कि जीवों का पर्यावरण दो प्रकार का होता है- सजीव और निर्जीव, और दोनों ही मिलकर जीवों के व्यवहार, अनुकूलन और अस्तित्व को प्रभावित करते है। इन दोनों परिभाषाओं में प्रकृति-मानव/जीव के संबंध को एक सक्रिय, परस्पर-निर्भर प्रक्रिया के रूप में देखा गया है। हैकिल का दृष्टिकोण अधिक व्यापक और दार्शनिक है, जबकि किंग और रुस्सेल संबंध को व्यवहारिक पर्यावरणीय अध्ययन के रूप में स्पष्ट करते हैं। दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति जीवों के अस्तित्व की मूलभूत शर्तें प्रदान करती है और जीव उन्हीं परिस्थितियों में अपने जीवन-चक्र को विकसित करता है। यही कारण है कि पारिस्थितिवाद केवल प्राकृतिक संसाधनों के अध्ययन तक सीमित नहीं, बल्कि उस व्यापक जीवन-जाल की समझ है जिसमें मनुष्य और प्रकृति सहअस्तित्व की प्रक्रिया में जुड़े रहते हैं। यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानव को पर्यावरण का स्वामी नहीं, बल्कि उसका एक अविभाज्य अंग मानने की चेतना प्रदान करता है।

मनुष्य का प्रकृति के साथ गहरा संबंध है। इसी संबंध को पारिस्थितिवाद का नाम दिया गया है। पारिस्थितिवाद मनुष्य और प्रकृति के गहन संबंधों की व्याख्या करता है। अनादिकाल से ही प्रकृति और मनुष्य सहचर रहे है। मनुष्य ने प्रकृति के विभिन्न रूपों को पूजनीय मानकर उसे सदियों से संरक्षित किया है। बिहार में मनाए जाने वाला छठ पर्व हो या हिमाचल में मनाई जाने वाली माल पुन्या हो, यह त्योहार प्रकृति के साथ मनुष्य के सौहार्द संबंधों की अभिव्यक्ति करते है। परन्तु औद्योगीकरण व तकनीक के इस उत्तराधुनिक दौर में मनुष्य ने प्रकृति का दोहन धड़ल्ले से करना शुरू कर दिया। 20 वीं शताब्दी में 'इंपीरियल इकोलॉजी' जैसे सिद्धांतों ने प्रकृति को मनुष्य के भोग की वस्तु माना। इस सिद्धांत ने कहीं न कहीं पूँजीवादी शक्तियों के हौंसलों को बुलंद किया। इसी के फलस्वरूप आज विश्व के तथाकथित विकसित पूँजीवादी देश पेरिस समझौते से पीछे हटकर प्लास्टिक से बनी स्ट्रा को इसलिए बाजार में पहुँचा रहे है क्योंकि प्लास्टिक स्ट्रा निर्माण के रुकने की वजह से बहुत से निर्माता कंपनियों को नुकसान हुआ है। राग तैलंग अपनी कविता 'प्लास्टिक' में लिखते है-

"काँच और धातु के/ सारे नक्काशीदार बर्तनों को गलाकर/
जाने कहाँ से सामने आ गया यह प्लास्टिक/
हर आँच से बचते-बचाते/ ये सारी की सारी ताजी हवा/

अपने पारदर्शी थैले में बन्द किए/
कहाँ भागे चला जा रहा है प्लास्टिक
तमाम किताबों तस्वीरों के बाद अब/
संसार के नक्शे को भी मढ़ लिया प्लास्टिक ने/
बहने लगा इसका समुद्र तो सारी जमीन पर प्लास्टिक के पेड़, प्लास्टिक के फूल,/
प्लास्टिक के चेहरे, प्लास्टिक के रिश्ते,/
प्लास्टिक की भाषा, प्लास्टिक की बोली,/
और तो और प्यार भी हुआ प्लास्टिक का/
प्लास्टिक है सब प्लास्टिक"[3]

आज पहाड़ी प्रदेशों के पर्यटक स्थलों में हर ओर प्लास्टिक के ढेर देखने को मिलते है। प्लास्टिक ने हमारे जीवन पर कब्जा कर लिया है। प्लास्टिक के टूथ ब्रश से लेकर प्लास्टिक के बर्तनों ने हमारे घरों में अपनी पैठ हर तरफ बना दी है। यह प्लास्टिक का कचरा समुद्रों में जब फेंका जाता है तो असंख्य जलीय जीव अकाल मौत का ग्रास बन जाते आज की हिंदी कविता पारिस्थितिक संरक्षण की दिशा में अपनी आवाज उठाते हुए उन पूंजीवादी शक्तियों का जमकर विरोध करती है। रमेश प्रजापति द्वारा रचित कविता 'खौफजदा' में कवि कहते है –

"बाँहें फैलाये बुलाता हैं हमें जादूगर/की तरह बाजार चमचमाती चीजों में/
तलाशने दौड़ते हैं वे खुशियाँ छोड़/ आये हैं जिन्हें हम बहुत पीछे/"[4]

बाजार का यह आकर्षण जो पूँजी पर टिका है और जिसके मूल में प्रकृति का दोहन छिपा है। आज बाजार हमें वह सब वस्तुएँ खरीदने को विवश कर रहा है जिसकी हमें जरूरत ही नहीं है। वंदना शिवा अपनी पुस्तक 'Ecofeminism' में लिखती है–

"Commercial capitalism is based on specialized commodity production and therefore demands uniformity in production, and the unfunctional use of natural resources. Reductionism thus reduces complex ecosystems to a single component, and a single component to a single function. Further, it allows for the manipulation of the ecosystem in a way that maximizes the single-function, single-component exploitationd"[5]

बाजार की इस चकाचौंध ने मनुष्य से उसकी संवेदनशीलता छीन ली है। बाजार में आज सब कुछ उपलब्ध है। भ्रामक विज्ञापनों ने वस्तुओं की खपत को बढ़ा दिया है जिससे जंगली जीवों का अवैध शिकार भी बहुत बढ़ा है। विष्णु नागर द्वारा रचित कविता 'बेचो-बेचो-बेचो' में लिखते है –

"दिल पहले बिक चुका हो तो दिमाग भी बेचो /
आग बिक चुकी है तो नमी को क्यों सँभालकर रखे हुए हो/
बादल जब बेच दिये तो आकाश बेचने में देरी क्यों/
मुस्कुराहट बेचते-बेचते थक झुके हो/ तो क्रोध बेचो, मजबूरी बेचो।"[6]

विकास की इस अंधी दौड़ में सब शामिल है। जिस कुटीर उद्योग के संरक्षण की वकालत गांधी जी आजादी के आंदोलन में करते थे, वह आज पूरी तरह ध्वस्त हो चुका है। प्राचीन जीवनशैली गांधी जी के सतत विकास की अवधारणा पर आधारित थी। ऐसे अनेक उदाहरण है। आज हमारे घरों से हर रोज बड़ी संख्या में प्लास्टिक कूड़ा निकल रहा है। आज संतोषजनक पारंपरिक जीवन शैली के स्थान पर संसाधन संपन्न उदासीन जीवन शैली आ गई है। तकनीक के इस दौर में एक क्लिक पर सब उपलब्ध होने के बावजूद भी उदासीनता और उदासी हर तरफ दिखती है। जसबीर चावला अपनी कविता 'जिजीविषा' में लिखते है –

"वोट... रिमोट... रॉकेट... सेटेलाइट हजारों तरह के उपकरण काम के लिए।
नहीं प्रदूषण का डर नहीं खोज ही लोगे कोई नया उपाय
डर है तो बस होगी इच्छाशक्ति और जीने की इच्छा?
कुछ होगा और सुख जीने का नहीं होगी तो जिजीविषा।"[7]

भारत को ग्रामीण देश कहा जाता है। परन्तु आज भारत के गाँव शहरों में तब्दील हो रहे है। ये बदलाव बड़े स्तर पर देखने को मिल रहे है। इंदु सिंह द्वारा रचित कविता 'कहाँ है मेरा गाँव' में वो लिखती है –

"खरीद लिया बगीचे को उन लोगों ने जिन्हें 'बिल्डर्स' कहते हैं।
बनाया एक से एक मकान, मंजिल शैवाले, संगमरमर के टाइल्स वाले।
चौड़ी-चौड़ी सड़कों से पाट दिया पगडण्डियों को, बगीचों को, खेतों को।

मकानों का जंगल उग आया है गाँव में कॉलोनियाँ बन गयी हैं यहाँ रेत, सीमेण्ट, छड़ से अटी पडी हैं सारी जगहें
खेत, खलिहान और बगीचे
सुना है कॉलोनियों में बड़े-बड़े लोग रहे हैं।
..... कहाँ है वह जीवन देने वाली हरियाली, कहाँ है फूलों से लदी डालियों वाले-कचनार, अमलतास और गुलमोहर
के पेड़ कहाँ खो गया आम का बौराया पेड़
उस पर झूला झूलने वाले बच्चे।"[8]

वहीं दूसरी ओर कुमार कृष्ण अपनी कविता 'गाँव किधर है' में कहते है -

"पहली बार बच्चे ने शहर आकर पूछा - 'गाँव किधर है बापू !'
मैंने सामने उड़ते पक्षी की ओर इशारा किया -
'वह देखो पक्षी की चोंच के दाने में उड़ रहा है गाँव'
बच्चा बड़ा होता गया बड़े होते गये उसके सवाल वह भूलता चला गया
वह भूल गया - गाय और माँ के दूध का अन्तर
जूता खोलने और पहनने का फर्क
अट्ठारह साल बीत जाने पर
मैंने एक दिन बच्चे से पूछा -
'क्या तुम आज भी बोल सकते हो दादी की भाषा?' भाषा?"[9]

विकास की कीमत आज हमें अपनी भाषा को गवां कर चुकानी पड़ रही है। गाँव इतिहास के पन्नों में दर्ज हो जाएंगे। गाँव भारतीय चिंतन परंपरा के संरक्षक है, ग्रामीण जीवनशैली सतत विकास पर टिकी है। गाँवों की स्त्रियाँ ही थी जो वृक्षों के कटान को रोकने के लिए चिपको आंदोलन की शुरुआत करती है।

भारत विविधता से भरा देश है। अफसोस, आज गाँव से लेकर शहरों तक गौरैया गायब हो गई है। राजेंद्र नागदेव अपनी कविता 'गौरैया नहीं आती अब' में कहते है -

"हमने गौरैयों के घोंसले रोशनदानों में देखे थे
हमने गौरैयों के घोंसले लकड़ी की पुरानी अलमारी पर देखे थे
हमने वहाँ गौरैयों के अंडे पंखों तिनकों और सुतलियों के बीच रखे देखे थे,
हमने अंडों को चुपचाप छूकर देखा था
हम छूते ही अजीब रोमांच से भर गये वह रोमांच,
आनेवाली पीढ़ियों को किस तरह से समझाएँगे हम?"[10]

तकनीक के फैले इस जाल ने गौरैया को अपना शिकार बना दिया। हर घर के आँगन की शान गौरैया आज घरों से गायब है। नदियाँ गायब हो रही है। बांध बनाए जा रहे है। परन्तु यह विकास एकतरफा सा प्रतीत होता है। इस विकास में असंख्य जीवों की बलि चढ़ रही है। हंसदेव का जंगल हो या फिर हैदराबाद विश्वविद्यालय से सटा 400 एकड़ तक फैला घना जंगल हो, आज सब विकास की बलि चढ़ रहे है। विश्वनाथ त्रिपाठी अपनी कविता 'आरा मशीन' में व्यंग्य कसते हुए लिखते है-

"मेरा बच्चा देख रहा है अचरज से अपने समय का सबसे बड़ा चमत्कार
तेज नुकीले दाँत घूमता हुआ पहिया और पट्टा
बच्चा किलकता है ताली बजाकर मैं सिहर जाता हूँ
अभी वह मेरे सीने से गुजरेगी
मेरे भीतर से एक कुर्सी निकालेगी राजा के बैठने के लिए
राजा बैठेगा सिंहासन पर और वन-महोत्सव मनायेगा।"[11]

जंगल कटान के दारुण दृश्य का वर्णन कवि महादेव टोप्पो विद्रोही स्वर में अपनी कविता 'जंगल का कवि' में करते हुए कहते है-

"जब जंगल की सारी विद्रोही आवाजों को,
हरे-भरे होकर सीना-तान पहाड़ों पर,

घाटियों में उगाने लहराने की उनकी आकांक्षा को
महुए की बोतल में डूबने की हो साजिश
इस जंगल का कवि रहेगा भला कैसे चुप
वह धनुष उठायेगा प्रत्यंचा पर कलम चढ़ायेगा
साथ ही बांसुरी और मांदर भी जरूर उठायेगा
जंगल के हरेपन को बचाने की खघतिर जंगल का कवि मांदर बजायेगा
बाँसुरी बजायेगा चढ़ाकर प्रत्यंचा पर कलम कलम"[12]

पिघलते ग्लेशियर, सूखा, बाढ़ आदि सभी मानव जनित आपदाएँ है। मनुष्य के लालच ने इन सभी आपदाओं को जन्म दिया है। यह लालच निर्बाध बढ़ता ही चला जा रहा है। कवि विमल कुमार अपनी कविता 'एक जलते हुए शहर की यात्रा' में ऐसे शहर का जिक्र कर रहे है जो अपने लालच के कारण तबाह हो गया है। कवि कविता में जनमानस को आगाह करते हुए कहते है –

"इस जलते हुए और शीशे की तरह हर रोज थोड़ा पिघलते हुए
इस मरते हुए और मरने से पहले थोड़ा पानी माँगते हुए शहर में आपका स्वागत है।
किस तरह नुचे हैं तितलियों के पंख यहाँ किस कदर कुचली गयी है
घास पार्कों में किस तरह ढहाई गयी है दीवार
किस कदर लगाई गयी है आग लूटा गया है यहाँ किस तरह सबका विश्वास
चीखते हुए पेड़ों और रोती हुई नदियों वाले शहर में आपका स्वागत है
कितनी अच्छी बात है आप टूटे हुए सपने देखने आये हैं
मासूम बच्चों के आँसू पोंछने आये हैं
विलाप करती स्त्रियों को चुप कराने आये हैं"[13]

विकास अपने साथ तबाही लेकर आता है और उस तबाही का सर्वाधिक शिकार मासूम बच्चे और महिलाएँ बड़ी संख्या में होती है। आचार्य शुक्ल अपने निबंध 'कविता क्या है?' में लिखते है – "मनुष्य सारी पृथ्वी छेंकता चला जा रहा है। जंगल कट-कटकर खेत, गाँव और नगर बनते जा रहे हैं। पशु-पक्षियों का भाग छीनता चला जा रहा है। उनके सब ठिकानों पर हमारा निष्ठुर अधिकार होता चला जा रहा है। कुछ हमारी बस्ती के भीतर या आसपास रहते हैं और छीन-झपटकर अपना हक ले जाते हैं। हम उनके साथ बराबर ऐसा ही व्यवहार करते हैं मानो इन्हें जीने का कोई अधिकार ही नहीं है।"[14]

राजेन्द्र अनुरागी की कविता 'भोपाल गैस-त्रासदी' भोपाल गैस आपदा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है –

"चिकित्सा-संबंधी शोधों के नाम पर
वे हमसे बंदर और चूहे मंगाते थे
हम खुशी-खुशी भेजते थे
मुनाफा कमाते थे।
आज वे कीटनाशक के नाम पर
आदमखोर गैस बना रहे हैं
और हम इसमें भी मुनाफा कमा रहे हैं।
हाय री, मुनाफे की हवस!
काले पैसे का कफस!
जहर के सौदागर
और आठ लाख आबादी का एक शहर..."।[15]

चिकित्सा संबंधी शोध एक समय में बंदरों और चूहे पर किए जाते रहे। इसी तर्ज पर विकसित देश विकासशील देशों पर चूहे और बंदरों की तरह शोध करते आए है। भोपाल गैस त्रासदी भी इसी कथन को चरितार्थ करती है। पश्चिमी देश अफ्रीकी और एशियाई देशों में हानिकारक केमिकल फैक्ट्रियाँ लगा कर खूब मुनाफा कमाते है। इस मुनाफे की कीमत गरीब मजूदर पानी जान देकर गंवाता है। भोपाल गैस त्रासदी के इतने वर्षों बाद भी पीड़ितों को न्याय नहीं मिल पाया है। विकसित देशों ने विकासशील देशों को अपनी डंपिंग साइट बना दिया है।

विकास की यह आंधी दौड़ यदि इसी रफ्तार से आगे बढ़ती रही तो आज से पच्चास वर्षों बाद की दुनिया कैसी होगी? स्वच्छ वायु और निर्मल जल को क्या लग्जरी माना जाएगा? स्वच्छ वायु एक स्टेटस सिंबल होगा ? आने वाली पीढ़ियों के लिए हम एक ऐसी दुनिया छोड़ कर जाएंगे जहां सिर्फ धुआं ही धुंआ होगा। साहित्य हित से जुड़ा है, साहित्य समाज को सही दिशा देने का काम बखूबी करता है। साहित्यकार अपनी कलम से समाज को जागृत करने का प्रयास कर रहा है परंतु राजनीतिक इच्छाशक्ति से यह सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए जरूरी है कि वर्तमान समय में सरकारों को इस विषय पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1 Friederichs, K. (1958), A Definition of Ecology and Some Thoughts About Basic Concepts. Ecology, 39: 154-159. https://doi.org/10.2307/1929981
2 Friederichs, K. (1958), A Definition of Ecology and Some Thoughts About Basic Concepts.
3 तैलंग राग, प्लास्टिक, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.183
4 प्रजापति रमेश, खौफजदा चिड़िया, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.108
5 Mies maria & Shiva Vandana, Ecofeminism, Rawat Publications, New Delhi, 2010, Page No 25
6 नागर विष्णु, बेचो-बेचो-बेचो ....., हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.198
7 चावला जसबीर, जिजीविषा,
7 नागर विष्णु, बेचो-बेचो-बेचो ....., हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.135
8 सिंह इन्दु, कहाँ है मेरा गाँव, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.96
9 कृष्ण कुमार, गाँव किधर है, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.111
10 नगदेव राजेन्द्र, गौरैया नहीं आती अब, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.116
11 त्रिपाठी विश्वनाथ, आरा मशीन, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.69
12 महादेव टोप्पो, जंगल का महाकवि, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.126
13 कुमार विमल, एक जलते हुए शहर की यात्रा, हरित कविता, सं. प्रभाकरन हेब्बार इल्लत, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2022, पृ. सं.79
14 शुक्ल रामचन्द्र, कविता क्या है? चिंतामणि, भाग 4, सं. कुसुम चतुर्वेदी और ओमप्रकाश सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. सं.122
15 भोपाल गैस त्रासदी और मीडिया, सत्य सिंह राठौर, पृ. सं.185

ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना: बिहार के पंचायती राज सिस्टम में डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन का असर - गया ज़िले की एक खास केस स्टडी

सुमित कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया, बिहार

अमूर्त

यह स्टडी बिहार के पंचायती राज सिस्टम के जरिए ग्रामीण महिलाओं के एम्पावरमेंट पर डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन के बदलाव लाने वाले असर की जांच करती है, जिसमें गया जिला एक केस स्टडी के तौर पर काम करता है। मिक्स्ड.मेथड रिसर्च के आधार पर - जिसमें चुनाव डेटा का क्वांटिटेटिव एनालिसिस और महिला प्रतिनिधियों के साथ क्वालिटेटिव इंटरव्यू शामिल हैं - यह आर्टिकल बताता है कि लोकल गवर्नेंस में महिलाओं के लिए 50% रिजर्वेशन पॉलिसी ने पॉलिटिकल, इकोनॉमिक और सोशल एम्पावरमेंट को कैसे बढ़ावा दिया है। नतीजों से पता चलता है कि जहां डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन ने महिलाओं के रिप्रेजेंटेशन को काफी बढ़ाया है और लीडरशिप के लिए नए मौके बनाए हैं, वहीं असली एम्पावरमेंट पेट्रियार्कल नॉर्म्स, कैपेसिटी लिमिटेशन और प्रॉक्सी रिप्रेजेंटेशन के मामलों जैसी स्ट्रक्चरल रुकावटों से रुका हुआ है। गया जिले का मामला जेंडर इक्वालिटी को आगे बढ़ाने में ग्रासरूट डेमोक्रेसी के वादे और चुनौतियों, दोनों को दिखाता है, जिसमें महिलाओं के नेतृत्व वाले एंटरप्राइज और महिला सभाओं जैसी इनोवेटिव पहलों पर रोशनी डाली गई है, जिन्होंने कलेक्टिव आवाज और इकोनॉमिक एजेंसी को बढ़ाया है। यह रिसर्च ग्रामीण भारत में इंस्टीट्यूशनल डिजाइन, कल्चरल कॉन्टेक्स्ट और एम्पावरमेंट नतीजों के बीच कॉम्प्लेक्स इंटरप्ले का एंपिरिकल सबूत देकर डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन और महिला एम्पावरमेंट पर लिटरेचर में योगदान देती है।

परिचय

डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन-जिसमें लोकल गवर्नेंस को अधिकार और रिसोर्स का ट्रांसफर शामिल है-भारत में इनक्लूसिव और पार्टिसिपेटरी डेवलपमेंट के लिए बुनियादी बन गया है। यह बिहार से ज्यादा कहीं और साफ नहीं है, जहाँ 73वें कॉन्स्टिट्यूशनल अमेंडमेंट (फागेट, 2021, पेज 4) के बाद से पंचायती राज सिस्टम में बड़े बदलाव हुए हैं। खास तौर पर, जरूरी रिजर्वेशन के जरिए महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने से बिहार लोकल गवर्नेंस के जरिए ग्रामीण महिलाओं के एम्पावरमेंट पोटेंशियल की जाँच करने के लिए एक अच्छा मामला बन गया है। राज्य का सभी पंचायत सीटों में से 50% महिलाओं के लिए रिजर्व करने का बड़ा कदम, जो एक-तिहाई के नेशनल मैंडेट से ज्यादा है, जेंडर डायनामिक्स में सिंबॉलिक और असल दोनों तरह के बदलावों का इशारा देता है (कुमार और सिंह, 2012, पेज 137)।

यह चर्चा बताती है कि कैसे डिसेंट्रलाइज्ड गवर्नेंस ने, फैसले लेने की प्रक्रिया को गांव की असलियत में शामिल करके, महिलाओं को लीड करने, पॉलिसी पर असर डालने और कम्युनिटी के नतीजों को बदलने के मौके दिए हैं। स्ट्रक्चरल रुकावटों की लगातार चली आ रही विरासत को पहचानते हुएए यह आर्टिकल असल में हुई तरक्की और अभी तक दूर नहीं हुई चुनौतियों को देखता है। एंपिरिकल रिसर्च, जिंदगी के अनुभवों और पॉलिसी की समझ को मिलाकर, यह नीचे दी गई बातों पर एक पूरा एनालिसिस देता है। गया जिले में गांव की महिलाओं के एम्पावरमेंट के लिए डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन का क्या मतलब है। पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) ने महिलाओं के बीच ज्यादा लीडरशिप, आवाज और एजेंसी कैसे बनाई है। इस एम्पावरमेंट को बनाए रखने और गहरा करने के लिए क्या सुझाव सामने आते हैं।

साहित्य की समीक्षा

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण और पंचायती राज

जानकार डेमोक्रेसी को मजबूत करने, पब्लिक अकाउंटेबिलिटी बढ़ाने और कॉन्टेक्स्ट-स्पेसिफिक डेवलपमेंट को बढ़ावा देने में डीसेंट्रलाइजेशन के थ्योरेटिकल और प्रैक्टिकल महत्व को बड़े पैमाने पर मानते हैं (फागुएट, 2021, पेज 2-3)। भारत में, 73वें

कॉन्स्टिट्यूशनल अमेंडमेंट एक्ट (1992) ने PRIs के जरिए डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन को इंस्टीट्यूशनल बनाया, जिसमें गाँव, ब्लॉक और जिला लेवल पर तीन-लेवल का गवर्नेंस स्ट्रक्चर जरूरी किया गया (बिहार पंचायत राज एक्ट, 2006, 11)। इस कानून ने महिलाओं के लिए सभी सीटों में से कम से कम एक-तिहाई सीटें रिजर्व कीं, जिससे गवर्नेंस में उनकी सीधी भागीदारी का रास्ता साफ हुआ (कुमार और सिंह, 2012, पेज 145)। बिहार ने अनुसूचित जातियोंए अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs) को मिलाकर महिलाओं के लिए 50% रिजर्वेशन लागू करके और आगे बढ़कर रिप्रेजेंटेशनल बराबरी को बढ़ाया (सुप्रिया, 2024, पेज 2)।

डीसेंट्रलाइजेशन की बहस अक्सर सर्विस डिलीवरी के असरदार होने और पार्टिसिपेटरी गवर्नेंस के मामले में होती है। स्टडीज से पता चलता है कि लोकल बॉडीजए जब ठीक से एम्पावर्ड होती हैं, तो वे डेवलपमेंट के कामों को लोकल जरूरतों के साथ बेहतर तरीके से अलाइन करने की स्थिति में होती हैं (वर्ल्ड बैंक, 2000, पेज 12; राय, 2013, पेज 18)। बिहार के मामले में, डीसेंट्रलाइजेशन और एम्पावरमेंट के बीच तालमेल संवैधानिक हकों को असल क्षमताओं में बदलने पर निर्भर करता है-खासकर उन महिलाओं के लिए जो लंबे समय से गवर्नेंस में हाशिए पर हैं (राय, 2013, पेज 22)।

पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण महिला सशक्तिकरण

PRIs में महिलाओं को शामिल करना जेंडर इक्वालिटी की दिशा में एक बड़ा कदम है, जिसका सीधा असर डेवलपमेंट प्रायोरिटी, गवर्नेंस क्वालिटी और सोशल नॉर्म्स पर पड़ता है (चट्टोपाध्याय और डुफ्लो, 2004, पेज 1412)। कई स्टडीज से पता चलता है कि महिला रिप्रेजेंटेटिव महिलाओं और बच्चों से जुड़े सेंट्रल मुद्दों, जैसे हेल्थ, सैनिटेशन और एजुकेशन को ज्यादा प्रायोरिटी देती हैं (सुप्रिया, 2024, पेज 5; सुप्रिया, 2024, पेज 8)। यह प्रोसेस न सिर्फ एजेंसी की भावना को बढ़ावा देता है बल्कि घर के जेंडर डायनामिक्स में भी बदलाव को बढ़ावा देता है, क्योंकि महिलाएं ट्रेडिशनल रोल से पब्लिक डिसीजन-मेकिंग स्पेस में आती हैं (बटलीवाला, 1993, पेज 45; सुप्रिया, 2024, पेज 7)।

एम्पावरमेंट को एक मल्टीडाइमेंशनल प्रोसेस के तौर पर देखा जाता है जिसमें पावर डायनामिक्स को बदलना और यह पहचानना शामिल है कि कुछ पावर स्ट्रक्चर में लोग डिसएम्पावरमेंट महसूस कर सकते हैं, जबकि दूसरों के बीच स्ट्रेटेजिक लाइफ चॉइस लेने की क्षमता हासिल कर सकते हैं (बटलीवाला, 1993, पेज 52)। नॉर्थ इंडिया की एंपिरिकल रिसर्च इन नतीजों को कन्फर्म करती है, जिसमें बताया गया है कि महिलाओं का पॉलिटिकल एम्पावरमेंट सीधे डेवलपमेंटल नतीजे और इनडायरेक्ट कल्चरल ट्रांसफॉर्मेशन, दोनों देता है (बीमन एट अल., 2012, पेज 584; बेस्ली एंड केस, 2003, पेज 15)। हालांकि, लगातार चुनौतियां बनी हुई हैं: गहरी पैट्रियार्कल नॉर्म्स, लिमिटेड कैपेसिटी और लिटरेसी, पुरुष रिश्तेदारों द्वारा प्रॉक्सी लीडरशिप के उदाहरण, और इंस्टीट्यूशनल सपोर्ट की कमी (राय, 2013, पेज 24; कुमार एंड सिंह, 2012, पेज 153)।

बिहार मॉडल: रुझान, उपलब्धियां और चुनौतियां

बिहार PRIs के जरिए महिलाओं के पॉलिटिकल एम्पावरमेंट में उम्मीद और मुश्किल दोनों दिखाता है। रिसर्च से पता चलता है कि महिलाओं के लिए रिजर्वेशन गांव लेवल पर महिलाओं के एम्पावरमेंट के लिए एक जरूरी बढ़ावा हो सकता है, लेकिन यह चुनी हुई महिलाओं की हिस्सेदारी की गारंटी नहीं है (राय, 2013, पेज 28)। जबकि एम्पावरमेंट इंडिकेटर्स में सुधार दिख रहा है-जैसे कि लिटरेसी में बढ़ोतरी, कुछ इलाकों में बाल विवाह की दर में कमी, और घर के फैसले लेने में भागीदारी में बढ़ोतरी-राज्य को नेशनल एवरेज के मुकाबले काफी कमियों का भी सामना करना पड़ रहा है (सुप्रिया, 2024, पेज 11)।

स्टडीज से मिले-जुले नतीजे सामने आए हैं: महिलाएँ अपनी भूमिकाओं में ज्यादा दिखने लगी हैं और कॉन्फिडेंट हो गई हैं, महिला प्रतिनिधियों में सेल्फ-इफिकेसी बढ़ी है, फिर भी इंस्टीट्यूशनल प्रायोरिटीज और स्टेट अकाउंटेबिलिटी में बड़े बदलाव की पुष्टि करना मुश्किल है क्योंकि महिलाओं को अभी भी दूसरे गाँव वालों और पंचायतों में उनके पुरुष साथियों से विरोध का सामना करना पड़ता है (राय, 2013, पेज 30; कुमार और सिंह, 2012, पेज 150)। फिर भी, लोकल गवर्नेंस में महिलाओं की बढ़ती मौजूदगी महिलाओं की जरूरतों के प्रति ज्यादा रिस्पॉन्सिवनेस, हकों तक बेहतर पहुँच और पॉलिसी डिस्कोर्स में जेंडर इश्यूज की ज्यादा विजिबिलिटी से जुड़ी है (चट्टोपाध्याय और डुफ्लो, 2004, पेज 1420; सुप्रिया, 2024, पेज 9)।

क्रियाविधि

इस स्टडी में मिक्स्ड-मेथड रिसर्च डिजाइन अपनाया गया है, जिसमें क्वालिटेटिव और क्वांटिटेटिव दोनों तरह के डेटा को मिलाकर गया जिले में महिलाओं के एम्पावरमेंट पर डेमोक्रेटिक डीसेंट्रलाइजेशन के असर का पता लगाया गया है। मेथडोलॉजिकल ट्रायंगुलेशन इस तरह किया गया:

1. गया और बिहार राज्य में महिलाओं के प्रतिनिधित्व और विकास संकेतकों से संबंधित चुनाव आंकड़ों, जनसांख्यिकीय डेटा और NFHS रिपोर्ट का मात्रात्मक डेटा विश्लेषण (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, 2021, पृष्ठ 45; सुप्रिया, 2024, पृष्ठ 44)।
2. गया में चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों (मुखिया, वार्ड सदस्य), सेल्फ-हेल्प ग्रुप (SHG) के सदस्यों और लोकल कम्युनिटी लीडर्स के साथ सेमी-स्ट्रक्चर्ड इंटरव्यू और फोकस ग्रुप (राय, 2013, पेज 34)।
3. महिला सभाओंए महिलाओं के नेतृत्व वाले उद्यमों (जैसे, फोर्टिफाइड टेक-होम राशन प्लांट), और भागीदारी वाली प्लानिंग की कोशिशों (निदान, 2025, पैरा 4; PCI ग्लोबल, 2024, पैरा 10) जैसी पहलों का ब्यौरा देने वाली केस स्टडीज।
4. व्यापक सामाजिक-राजनीतिक रुझानों के भीतर व्यक्तिगत कथाओं को संदर्भित करने के लिए रिपोर्टों, नीति संक्षिप्त विवरणों और मीडिया प्रलेखन का विषयगत सामग्री विश्लेषण (सक्षमा, 2021, पृष्ठ 2; प्रिलमन और फिलिप्स, 2021, पृष्ठ 3)।

एथिकल प्रोटोकॉल ने अपनी मर्जी से हिस्सा लेने और जवाब देने वालों की गोपनीयता पक्का की।

गया जिले का केस स्टडी

ऐतिहासिक और सामाजिक-आर्थिक संदर्भ

बिहार के सबसे बड़े जिलों में से एक, गया जिले में काफी सामाजिक और आर्थिक विविधता है, जिसमें ग्रामीण खेती-बाड़ी करने वाले समुदाय शामिल हैं, अनुसूचित जातियों और OBC के बीच भेदभाव की दर ज्यादा है, और सरकारी चीजों तक पहुँच में लगातार जेंडर असमानता है (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, 2021, पेज 18)। पंचायती राज सुधारों और महिलाओं के लिए 50% आरक्षण को लागू करने से राज्य में महिलाओं की चुनावी भागीदारी की दर सबसे ज्यादा रही है (सक्षमा, 2021, पेज 5)।

भागीदारी और नेतृत्व

गया में PRIs में महिलाओं का रिप्रेजेंटेशन कानूनी तौर पर तय न्यूनतम सीमा से ज्यादा है, 2006 से लगातार हुए चुनावों के बाद अब मुखिया और वार्ड मेंबर के आधे से ज्यादा पदों पर महिलाएं हैं (सुप्रिया, 2024, पेज 46)। महिला सभाओं जैसे तरीकों ने मिलकर मोलभाव करने के लिए प्लेटफॉर्म दिए हैं और महिलाओं की पॉलिसी से जुड़ी मांगों को सही ठहराया है (PCI ग्लोबल, 2024, पैरा 12)।

महिला-नेतृत्व वाले उद्यम और आर्थिक सशक्तिकरण

महिलाओं द्वारा मैनेज किया जाने वाला फोर्टिफाइड टेक-होम राशन (THR) प्रोडक्शन प्लांट-जिसे JEEVIKA और GAIN के साथ पार्टनरशिप में बनाया गया था-एक मजबूत कम्युनिटी द्वारा चलाया जाने वाला एंटरप्राइज बन गया है, जो डीसेंट्रलाइज्ड गवर्नेंस, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सस्टेनेबल कम्युनिटीज (निदान, 2025, पैरा 6) के मेल को दिखाता है। ऐसी पहल महिलाओं की कलेक्टिव एजेंसी को मजबूत करती हैं और बिहार में दूसरी जगहों पर भी ऐसे मॉडल पेश करती हैं जिन्हें अपनाया जा सकता है।

चुनौतियाँ और अनुकूली प्रतिक्रियाएँ

क्वांटिटेटिव फायदों के बावजूद, क्वालिटेटिव नतीजों से लगातार रुकावटें सामने आती हैं। महिला प्रतिनिधियों को पुरुष साथियों से विरोध का सामना करना पड़ता है और पूरी आजादी का इस्तेमाल करने में दिक्कतों का सामना करना पड़ता है (राय, 2013, पेज 31)। 'प्रॉक्सी' लीडरशिप के उदाहरण बने हुए हैं, जिसमें पुरुष रिश्तेदार चुनी हुई महिलाओं के कामों पर असर डालते हैं (कुमार और सिंह, 2012, पेज 153)। फिर भी, ट्रेनिंग और मेंटरशिप प्रोग्राम ने समय के साथ जरूरी हिस्सेदारी बढ़ाने का काम किया है (सक्षमा, 2021, पेज 7)।

विश्लेषण और चर्चा

गया जिले में डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन के नतीजे ये हैं:

- पॉलिटिकल एम्पावरमेंट: चुनावी सफलता और लीडरशिप रोल में बढ़ोतरी ने समाज का नजरिया बदल दिया है और पब्लिक लाइफ में महिलाओं की अथॉरिटी को नॉर्मल बना दिया है (बीमन एट अल., 2012, पेज 583)।
- सामूहिक आवाज: महिला सभाओं ने विकास योजनाओं में महिलाओं के हितों की बेहतर अभिव्यक्ति की है (चट्टोपाध्याय और डुफ्लो, 2004, पेज 1423)।
- इकोनॉमिक एजेंसी: महिलाओं के नेतृत्व वाले SHGs और एंटरप्राइज ने घरेलू इनकम और रिसोर्स एलोकेशन रोल को बढ़ाया है (निदान, 2025, पैरा 6)।

- सामाजिक बदलाव: लीडरशिप में महिलाओं की मौजूदगी, पुरुष-प्रधान सोच को चुनौती देती है और दूसरी ग्रामीण महिलाओं को प्रेरित करती है (राय, 2013, पेज 29)।

लेकिन, स्ट्रक्चरल रुकावटें, प्रॉक्सी पार्टिसिपेशन, और मिले-जुले डेवलपमेंट के नतीजे लगातार कैपेसिटी बिल्डिंग और कल्चरल बदलाव की कोशिशों की जरूरत को दिखाते हैं (कुमार और सिंह, 2012, पेज 150; सुप्रिया, 2024, पेज 11)।

निष्कर्ष

गया का अनुभव ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए समावेशी लोकल गवर्नेंस की बदलाव लाने की क्षमता को दिखाता है। रिजर्वेशन ने रिप्रेजेंटेशन को बढ़ाया है और अहम पहलों को बढ़ावा दिया हैए फिर भी सप्लीमेंट्री पॉलिसी-जैसे कैपेसिटी बिल्डिंग, मेंटरशिप और इंफ्रास्ट्रक्चर में सुधार-मजबूती बढ़ाने के लिए जरूरी हैं (बटलीवाला, 1993, पेज 54; फागुएट, 2021, पेज 6)। गया के इनोवेशन दूसरे इलाकों के लिए सीखने लायक सबक देते हैं जो जमीनी स्तर पर डेमोक्रेसी के जरिए महिलाओं को मजबूत बनाना चाहते हैं।

संदर्भ

बटलीवाला, एस. (1993). दक्षिण एशिया में महिला सशक्तिकरण: अवधारणाएँ और अभ्यास। नई दिल्ली, भारत: यूएनडीपी।

बीमन, एल., डुफ्लो, ई., पांडे, आर., और टोपालोवा , पी. (2012). महिला लीडरशिप लड़कियों की उम्मीदों और पढ़ाई-लिखाई को बढ़ाती है: भारत में एक पॉलिसी एक्सपेरिमेंट। साइंस, 335 (6068), 582-586.

बेस्ले, टी., और केस, ए. (2003). राजनीतिक संस्थाएं और नीति विकल्प: संयुक्त राज्य अमेरिका से साक्ष्य. जर्नल ऑफ इकोनॉमिक लिटरेचर, 41 (1), 7-73.

चट्टोपाध्याय, आर., और डुफ्लो, ई. (2004). पॉलिसी मेकर के तौर पर महिलाएं: भारत में एक रैंडम पॉलिसी एक्सपेरिमेंट से सबूत. इकोनॉमेट्रिका , 72 (5), 1409-1443.

फागुएट, जेपी (2021). डिसेंट्रलाइजेशन को समझना: थ्योरी, सबूत और तरीका, कम विकसित देशों पर फोकस के साथ (वर्ल्ड बैंक पॉलिसी रिसर्च वर्किंग पेपर नंबर 9541).

बिहार में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी पर अध्ययन। इंडियन रिसर्च जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन, 12 (2), 136ख्र140।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय. (2021). नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (NFHS-5), 2019-21: बिहार. भारत सरकार.

विकास का रास्ता भारत. https://nidan-in/women-led-take-home-ration-production-in-gaya से लिया गया

PCI ग्लोबल. (2024). पार्टिसिपेटरी गवर्नेंस के जरिए महिलाओं को सशक्त बनाना. PCI इंडिया. https://www.pciglobal.in/empowering-women-through-participatory-governance/ से लिया गया

प्रिलमन, एस., और फिलिप्स, ए. (2021). बिहार में महिलाएं राजनीति में कब और कैसे भाग लेती हैं? इंटरनेशनल ग्रोथ सेंटर पॉलिसी ब्रीफ।

राय, पी. (2013). बिहार, भारत में स्थानीय सरकारी संस्थानों में महिलाएं (डॉक्टरल शोध प्रबंध)। स्टॉकहोम यूनिवर्सिटी।

सुप्रिया, एस. (2024). बिहार में पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण के परिणाम। इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 6 (3), 1-12।

बिहार पंचायत राज एक्ट (2006). बिहार सरकार. http://www.bareactslive.com/BIH/BH291.HTM से लिया गया

वर्ल्ड बैंक. (2000). डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलाइजेशन . इंडिपेंडेंट इवैल्यूएशन ग्रुप. https://ieg.worldbankgroup.org/reports/democratic-decentralization से लिया गया

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में प्रभावती देवी का योगदान

प्रिया कुमारी

(शोधार्थी) इतिहास विभाग, वाई.बी.एन. यूनिवर्सिटी, रॉची, झारखंड

प्रो० (डॉ०) श्रवण कुमार सिंह

(शोध पर्यवेक्षक), इतिहास विभाग, वाई.बी.एन यूनिवर्सिटी, राँची (झारखंड)

शोध आलेख का एब्स्ट्रेक्ट :

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्रभावती देवी का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक रहा है। बिहार में जन्मी प्रभावती देवी गांध ीवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थीं। महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा, स्वदेशी और चरखा आंदोलन जैसे सिद्धांतों ने उनके व्यक्तित्व और राजनीतिक चेतना को गहराई से रूपांतरित किया। प्रारम्भिक जीवन से ही वे सामाजिक सेवा और महिला जागृति से जुड़ी रहीं, जिसने उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के लिए तैयार किया। सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक सत्याग्रह तथा भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान प्रभावती देवी ने महिलाओं को संगठित कर स्वतंत्रता संग्राम में उनके प्रभावी योगदान का मार्ग प्रशस्त किया। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में उन्होंने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, जनसभाओं के आयोजन तथा विरोध प्रदर्शनों में अग्रणी भूमिका निभाई। अनेक बार के कारावास और कठोर दमन के बावजूद उनकी दृढ़ता और राष्ट्रभक्ति में कोई कमी नहीं आई।राष्ट्रीय आंदोलन के अतिरिक्त, प्रभावती देवी का योगदान सामाजिक सुधार और महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय रहा। उन्होंने शिक्षा, ग्रामोदय, स्वावलंबन तथा सामाजिक न्याय के प्रसार में सक्रिय भूमिका निभाई। जयप्रकाश नारायण के जन आंदोलनों तथा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी ने उनके कार्य को और अधिक व्यापक और प्रभावशाली बनाया।ऐतिहासिक दृष्टि से प्रभावती देवी का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिला नेतृत्व के विकास, जनसहभागिता के विस्तार और सामाजिक चेतना के उन्नयन का प्रतिनिधित्व करता है। उनकी भूमिका भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की उस विरासत को चिह्नित करती है, जिसमें महिलाओं ने साहस, त्याग और समर्पण के साथ राष्ट्रनिर्माण की दिशा को सशक्त बनाया।

शोध आलेख में कीवर्ड्स :

प्रभावती देवी, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, गांधीवादी विचारधारा, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन, महिला सशक्तिकरण, बिहार का राष्ट्रीय आंदोलन, ग्रामीण महिला मोबिलाइजेशन, विदेशी वस्त्र बहिष्कार, चरखा आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन, सामाजिक सुधार, महिला नेतृत्व, कारावास और त्याग, राष्ट्रवादी चेतना, जन आंदोलन, गांधी-जयप्रकाश परंपरा, रचनात्मक कार्यक्रम, शिक्षा प्रसार, ग्रामोदय, स्वतंत्रता सेनानी, सामाजिक न्याय, राजनीतिक भागीदारी, राष्ट्रीय पुनर्जागरण आदि।

प्रस्तावना :

प्रभावती देवी का प्रारंभिक जीवन भारतीय समाज में स्त्रियों की पारंपरिक भूमिकाओं, सामाजिक बंधनों और सीमित सार्वजनिक भागीदारी के समय में बीता, परंतु वे बचपन से ही ऐसे पारिवारिक वातावरण में पली-बढ़ीं जहाँ राष्ट्रीय चेतना का प्रवाह था। बिहार के जिस सामाजिक परिवेश में प्रभावती देवी ने जन्म लिया, वह उस समय राजनीतिक उथल-पुथल और नव जागरण का केंद्र बन चुका था। 19वीं और 20वीं सदी के संधिकाल में बिहार में स्वदेशी आंदोलन, शिक्षा सुधार, सामाजिक परिवर्तन, और राष्ट्रवादी गतिविधियों का तीव्र विस्तार हो रहा था।[1] इस पृष्ठभूमि ने प्रभावती देवी के मन में आरंभिक आयु से ही देशहित और जनसेवा की भावना को पोषित किया। उनका परिवार सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित और राष्ट्रवादी विचारों से प्रभावित था। यद्यपि भारतीय समाज में उस समय महिलाओं की शिक्षा और स्वतंत्र गतिविधियाँ सीमित थीं, फिर भी प्रभावती देवी को प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। परिवार में व्याप्त लोकसेवा का वातावरण उनके व्यक्तित्व को आकार देने में अत्यंत प्रभावी रहा। उनकी रुचि केवल पारिवारिक दायित्वों तक सीमित नहीं रही, बल्कि समाज, राजनीति और राष्ट्रीय चिंतन के प्रति भी विकसित होती गई।

महात्मा गांधी के विचारों से परिचय ने उनके जीवन में एक निर्णायक मोड़ लाया। गांधी जिस प्रकार सत्य, अहिंसा और स्वदेशी की शक्ति से समाज में परिवर्तन लाना चाहते थे, वह प्रभावती देवी को भीतर तक प्रभावित करता था। चरखा कातना, विदेशी वस्त्रों का

बहिष्कार, ग्रामोदय और नैतिक शुचिता जैसे गांधीवादी सिद्धांतों ने उनके जीवन-दर्शन को बदला। गांधीजी की 'साध्य और साधन की एकरूपता' की अवधारणा और उनका यह कथन कि "जो परिवर्तन आप समाज में चाहते हैं, वह पहले अपने जीवन में लाना आवश्यक है"-प्रभावती देवी के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत बन गया।[2]

प्रभावती देवी विवाह के पश्चात जयप्रकाश नारायण से भी वैचारिक रूप से जुड़ीं, जो स्वयं गांधीवाद और समाजवादी विचारधारा के महत्वपूर्ण स्तंभ थे। जयप्रकाश नारायण का व्यक्तित्व, उनका त्यागमय जीवन और सामाजिक न्याय की अवधारणा प्रभावती देवी पर गहरा प्रभाव छोड़ते थे। उनके जीवन में वैचारिक रूप से स्वतंत्रता संग्राम की राजनीति, गांधीवादी कार्यक्रम और समाजवादी प्रवृत्तियों का समन्वय स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रभावती देवी ने केवल विचारों को आत्मसात ही नहीं किया, बल्कि अपने जीवन में उन्हें व्यवहारिक रूप भी दिया। उन्होंने चरखा चलाना एक राजनीतिक और नैतिक कर्तव्य के रूप में अपनाया, और ग्रामीण महिलाओं में इस कार्य का व्यापक प्रसार किया।[3] स्वदेशी की भावना उनके लिए केवल आर्थिक स्वतंत्रता का संकेत नहीं थी, बल्कि वह आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और नैतिक अनुशासन का प्रतीक थी।

महात्मा गांधी के आश्रमों में रहने के दौरान प्रभावती देवी का व्यक्तित्व और अधिक परिष्कृत हुआ। आश्रम जीवन में सादगी, श्रम, सामूहिकता और आत्मसंयम के जो मूल्य अपनाए जाते थे, वे उनके व्यक्तित्व का स्थायी अंग बन गए। गांधी से प्रत्यक्ष संवाद ने उन्हें राष्ट्रीय आंदोलन की रणनीतियों, जनसंगठन और सत्याग्रह की शक्ति के बारे में गहन समझ दी। इस प्रकार, प्रभावती देवी का प्रारंभिक जीवन केवल भौतिक परिवेश का परिणाम नहीं था, बल्कि वैचारिक उत्कर्ष, नैतिक दृढ़ता और राष्ट्रसेवा की गहरी जड़ें इसमें निहित थीं। गांधीवादी विचारों ने उन्हें न केवल एक स्वतंत्रता सेनानी बनाया, बल्कि एक ऐसी महिला नेता के रूप में स्थापित किया जिसने पुरुष-प्रधान राजनीतिक संसार में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के तीन प्रमुख चरण-असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन-प्रभावती देवी के राजनीतिक जीवन और योगदान के मुख्य आधार रहे। इन तीनों आंदोलनों में उन्होंने उस समय के सामाजिक बंधनों को तोड़ते हुए सक्रिय भागीदारी दी और बिहार में महिला लामबंदी का एक नई दिशा प्रदान की।असहयोग आंदोलन के समय, जब ब्रिटिश शासन के विरुद्ध देशभर में जन-आक्रोश उभरने लगा था, प्रभावती देवी ने राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उस समय महिलाओं की सार्वजनिक सहभागिता बहुत कम थी, किन्तु प्रभावती देवी ने पुरुष नेताओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सभाओं, रैलियों और स्वदेशी प्रचार में भाग लिया।[4] उन्होंने अनेक स्थानों पर महिलाओं को जागरूक कर विदेशी कपड़ों के बहिष्कार और चरखा अपनाने के लिए प्रेरित किया। उनकी संगठित कार्यशैली और धैर्यपूर्ण प्रयासों से बिहार में महिला राष्ट्रीयता की एक नई लहर उत्पन्न हुई।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में प्रभावती जी की भूमिका और भी महत्वपूर्ण रही। इस आंदोलन में उन्होंने शराब की दुकानों के सामने धरना, नमक कानून के विरोध में सत्याग्रह, और ब्रिटिश शासन के दमनकारी कानूनों का उल्लंघन किया। उन्होंने महिला स्वयंसेविकाओं का दल गठित कर उन्हें सत्याग्रह और प्रतिरोध के लिए प्रशिक्षित किया। उस समय ग्रामीण महिलाएँ सामाजिक संकोच और पारिवारिक परंपराओं के कारण राजनीति से दूर रहती थीं, परंतु प्रभावती देवी की प्रेरणा से हजारों महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भागीदारी की। उनके नेतृत्व में महिलाओं ने बड़े पैमाने पर सभाएँ संगठित कीं, जुलूस निकाले, और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असहयोग का प्रभावी वातावरण बनाया। ब्रिटिश अधिकारियों ने उनकी इन गतिविधियों को अत्यधिक प्रभावशाली मानते हुए उन्हें कई बार गिरफ्तार किया। जेल में भी उन्होंने अन्य महिला कैदियों के बीच अनुशासन, साहस और संगठनात्मक क्षमता का उदाहरण प्रस्तुत किया।[5] उनके कारावास से आंदोलन की महिलाओं में भय नहीं, बल्कि और अधिक साहस उत्पन्न होता था।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान प्रभावती देवी का संघर्ष चरम पर पहुँचा। 1942 में जब गांधीजी ने "करो या मरो" का इतिहास-प्रसिद्ध आह्वान किया, प्रभावती देवी बिहार में महिला मोर्चे की अग्रिम पंक्ति में थीं। ब्रिटिश शासन ने जैसे ही राष्ट्रवादी नेताओं की गिरफ्तारी शुरू की, प्रभावती देवी भूमिगत गतिविधियों में सम्मिलित हो गईं। उन्होंने संदेशों के आदान-प्रदान, गुप्त बैठकों के आयोजन, और आंदोलनों की योजनाओं को ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँचाने में निर्णायक भूमिका निभाई। उनकी सक्रियता से भयभीत ब्रिटिश सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर कठोर दंड दिया।[6] जेल में उन्हें प्रताड़ित किया गया, किन्तु उन्होंने अपने उद्देश्य से कदम पीछे नहीं हटाया। उनके संघर्ष का मूल्यांकन करते हुए इतिहासकारों ने लिखा है कि महिलाओं में जो साहस, नेतृत्व और संगठन शक्ति भारत छोड़ो आंदोलन में दिखाई दी, उसमें प्रभावती देवी जैसी महिलाओं का योगदान केंद्रीय था। इन तीनों आंदोलनों के दौरान उनकी राजनीतिक भूमिका केवल एक कार्यकर्ता तक सीमित नहीं थी, बल्कि वे नेतृत्व, संगठन और दृष्टि-तीनों स्तरों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थीं। उनकी कार्यशैली में नैतिक दृढ़ता, गांधीवादी अनुशासन और जनसंपर्क की अद्‌भुत शक्ति दिखाई देती थी।

प्रभावती देवी का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान, विशेषकर इन तीन प्रमुख राष्ट्रीय आंदोलनों में, भारतीय महिला नेतृत्व के उभार, जनसंगठन की शक्ति और राष्ट्रवादी चेतना के गहन विस्तार का प्रमाण है। उनकी भूमिका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिला भागीदारी के स्वर्णिम अध्याय के रूप में सदैव स्मरणीय रहेगी।

प्रभावती देवी केवल एक स्वतंत्रता सेनानी ही नहीं थीं, बल्कि बिहार में महिला सशक्तिकरण के इतिहास की एक प्रमुख अध्याय-निर्माता भी थीं। उनके नेतृत्व में बिहार में महिलाओं की राजनीतिक चेतना, सामाजिक जागरूकता और संगठनात्मक क्षमता का उल्लेखनीय विस्तार हुआ।[7] उनके कार्यों की सबसे विशेष बात यह थी कि उन्होंने महिलाओं को केवल राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल नहीं किया, बल्कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक रूप से सशक्त बनाने का अभियान चलाया। ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा, आत्मनिर्भरता और सामाजिक सहभागिता उनके प्रमुख लक्ष्य थे।

बिहार के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में उस समय महिलाएँ पर्दा प्रथा, लैंगिक भेदभाव, घरेलू हिंसा और सामाजिक रूढ़ियों से जकड़ी हुई थीं। ऐसे समय में प्रभावती देवी ने गाँव-गाँव जाकर महिलाओं से संपर्क स्थापित किया। उन्होंने महिलाओं के समूह बनाए और उन्हें बताया कि स्वतंत्रता केवल पुरुषों के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि यह महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की पुनर्स्थापना का भी माध्यम है।उनके नेतृत्व में बड़े पैमाने पर महिला स्वयं सेविकाएँ तैयार हुई, जिन्होंने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार, चरखा चलाने, स्वदेशी को अपनाने, जनसभाओं में भाग लेने, संदेश पहुँचाने और ब्रिटिश शासन के विरुद्ध प्रतिरोध में सक्रिय योगदान दिया।[8]

यह बिहार के राजनीतिक इतिहास का वह दौर था, जब पहली बार ग्रामीण महिलाओं ने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया।

प्रभावती देवी ने महिलाओं को यह विश्वास दिलाया कि वे केवल घर और परिवार तक सीमित न रहकर समाज और राष्ट्र के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभा सकती हैं। उन्होंने सैकड़ों महिलाओं को पढ़ने-लिखने के लिए प्रेरित किया, और अनेक स्थानों पर महिला शिक्षा केंद्रों की स्थापना कराई।सामाजिक कुरीतियों-जैसे दहेज प्रथा, बाल विवाह, अस्पृश्यता, दारूबंदी और घरेलू हिंसा-के विरुद्ध उन्होंने अभियान चलाया।[9] वे केवल राजनीतिक स्वतंत्रता की पक्षधर नहीं थीं, बल्कि सामाजिक मुक्ति को भी स्वतंत्रता का अनिवार्य तत्व मानती थीं। महिलाओं को वे यह कहकर प्रेरित करती थीं कि "सच्ची आजादी वही है, जो जीवन के सभी क्षेत्रों में समानता और गरिमा का अधिकार प्रदान करे।"उनके द्वारा गठित महिला दल न केवल स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहे, बल्कि स्वतंत्रता के बाद भी कई स्थानों पर सामाजिक सुधार और शिक्षा प्रसार के लिए कार्य करते रहे।

स्वतंत्रता के बाद प्रभावती देवी ने राजनीतिक पदों की ओर आकर्षित होने के बजाय समाजसेवा, शिक्षा और ग्रामीण विकास को अपना मुख्य कार्यक्षेत्र बनाया।[10] वे मानती थीं कि राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है जब समाज में शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक समानता स्थापित हो। उन्होंने महिला शिक्षा को प्राथमिकता दी और अनेक स्थानों पर महिला विद्यालयों, प्रशिक्षण केंद्रों और ग्रामोद्योग संस्थानों की स्थापना में सहयोग किया। उनका मानना था कि शिक्षित महिला ही सशक्त महिला बन सकती है और शिक्षित महिलाएँ ही एक न्यायपूर्ण और प्रगतिशील समाज का निर्माण कर सकती है। वे ग्रामोद्योग और स्वावलंबन को सामाजिक परिवर्तन का आधार मानती थीं। चरखा, खादी और कुटीर उद्योगों का प्रसार उन्होंने केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना।[11] उन्होंने कहा था कि "स्वावलंबन का अर्थ केवल आर्थिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि आत्मसम्मान का विकास भी है।"

विनोबा भावे के भूदान आंदोलन में भी उनका योगदान उल्लेखनीय रहा। उन्होंने गाँवों में जाकर भूदान, समाज-सुधार और गरीबी निवारण के लिए जनता को प्रेरित किया।[12] जयप्रकाश नारायण के समाजवादी जन आंदोलनों में भी उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई, विशेषकर शिक्षा, नैतिकता और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में। सरदार पटेल, जयप्रकाश नारायण और अन्य नेताओं के साथ उनके घनिष्ठ संबंध और सहयोग ने उन्हें भारत के सामाजिक-राजनीतिक विमर्श में एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

प्रभावती देवी का योगदान ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट और बहुआयामी है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महिलाओं की भूमिका का विश्लेषण करते समय प्रभावती देवी का नाम उन चुनिंदा नेताओं में आता है जिन्होंने न केवल आंदोलन में भाग लिया, बल्कि उसके स्वरूप, विस्तार और दिशा को प्रभावित किया।पुरुष-प्रधान राजनीतिक वातावरण में एक महिला के लिए नेतृत्व की भूमिकाएँ निभाना आसान नहीं था, परंतु प्रभावती देवी ने अपने साहस, तप, नैतिकता और संगठन शक्ति के बल पर अपनी अद्वितीय पहचान बनाई। बिहार में महिला चेतना के विकास में उनकी भूमिका इतनी व्यापक थी कि इतिहासकार उन्हें ष्बिहार महिला आंदोलन की आधारशिलाष् कहते हैं।

स्वतंत्रता आंदोलन की रणनीतियों में उनकी भागीदारी, रचनात्मक कार्यक्रमों में सक्रियता, और सामाजिक सुधारों में योगदान उन्हें एक समग्र नेता के रूप में स्थापित करता है। उनका संघर्ष दर्शाता है कि स्वतंत्रता के लिए केवल राजनीतिक नेतृत्व ही नहीं, बल्कि सामाजिक नेतृत्व भी आवश्यक था। उनके कार्यों ने महिलाओं में आत्मविश्वास जगाया, राजनीतिक संवाद का विस्तार किया और सामाजिक न्याय के लिए सक्रियता का वातावरण निर्मित किया।

आज जब भारत की स्वतंत्रता के इतिहास का पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है, प्रभावती देवी का योगदान यह याद दिलाता है कि स्वतंत्रता केवल पुरुषों की लड़ाई नहीं थी, बल्कि महिलाओं की अदम्य इच्छाशक्ति, त्याग और नेतृत्व की भी गाथा थी।[13] उनकी विरासत आधुनिक भारत में महिला अधिकार आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई है।

निष्कर्ष :

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्रभावती देवी का योगदान केवल राष्ट्रवादी संघर्ष तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उन्होंने सामाजिक, शैक्षिक और महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में भी गहरा प्रभाव छोड़ा। उनके जीवन का समग्र मूल्यांकन यह दर्शाता है कि वे एक ऐसी नेतृत्वकर्ता थीं, जिन्होंने गांधीवादी मूल्यों-सत्य, अहिंसा, स्वदेशी और आत्मनिर्भरता-को न केवल अपनाया, बल्कि उसे जन-जन तक पहुँचाया। असहयोग, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो आंदोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी ने यह सिद्ध किया कि महिलाओं की राजनीतिक चेतना और विपक्षी संघर्ष में भागीदारी किसी भी बड़े आंदोलन का निर्णायक आधार बन सकती है।बिहार में महिला जागरण के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयास ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने ग्रामीण और शहरी सभी वर्गों की महिलाओं में स्वतंत्रता और समानता की भावना जगाई, उन्हें सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संगठित किया और राष्ट्रीय आंदोलन में उन्हें अग्रिम पंक्ति में खड़ा किया। स्वतंत्रता के बाद भी प्रभावती देवी का योगदान रुक नहीं गया। उन्होंने शिक्षा प्रसार, ग्रामीण उन्नयन, ग्रामोद्योग, सामाजिक न्याय और नैतिक उत्थान के क्षेत्र में निरंतर कार्य किया। भूदान आंदोलन और जेपी आंदोलन में उनकी भूमिका उनके सामाजिक दायित्वबोध और देशप्रेम को और स्पष्ट करती है।इतिहास में उनका स्थान एक ऐसी महिला नेता के रूप में स्थापित है जिसने अपने विचार, संघर्ष और सेवा के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एवं सामाजिक पुनर्निर्माण दोनों को सशक्त दिशा दी। प्रभावती देवी का योगदान भारतीय महिलाओं की सहभागिता, नेतृत्व और जागरूकता के विकास का एक अमिट अध्याय बनकर सदैव स्मरणीय रहेगा।

सन्दर्भ सूची :

1 शर्मा, रामकुमार (2018), भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और महिला सहभागिता, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन्स, पृ. 98
2 गांधी, मोहनदास करमचंद (2011), सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन, पृ. 312
3 गांधी, मोहनदास करमचंद (2009), हिंद स्वराज, अहमदाबाद, नवजीवन प्रकाशन, पृ. 55
4 देसाई, नीरजा एवं कृष्णराज, मैत्रेयी (2011), भारत में महिलाएँ और शासन, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 121
5 सिंह, मीना (2017), स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय महिलाओं की भूमिका, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन्स इंडिया, पृ. 65
6 शुक्ल, रामाशंकर (2015), बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन, पटना, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ. 154
7 कुमार, अरुण (2014), बिहार का स्वतंत्रता संघर्ष, पटना, ज्ञानदा प्रकाशन, पृ. 210
8 सिंह, अंजली (2019), महिला सशक्तिकरण और भारतीय राजनीति, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशन्स, पृ. 88
9 पांडेय, बिपिन चंद्र (2008), आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ. 287
10 चंद्र, बिपिन; मुखर्जी, मृदुला; मुखर्जी, आदित्य (2016), भारत का स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली, पेंगुइन इंडिया, पृ. 402
11 शर्मा, सुरेंद्र कुमार (2013), गांधी और रचनात्मक कार्यक्रम, नई दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृ. 101
12 भावे, विनोबा (2005), भूदान आंदोलन का दर्शन, वाराणसी, सर्वोदय साहित्य प्रकाशन, पृ. 35
13 वर्मा, राधाकृष्ण (2016), भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधीवादी आंदोलन, नई दिल्ली, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स, पृ. 176

वर्तमान विश्व व्यवस्था में संयुक्त राष्ट्र संघ का भविष्यः एक अवलोकन

डॉ० अशोक कुमार

(असिस्टेंट प्रोफेसर) एम.ए. (राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन), पीएच-डी.,पटना विश्वविद्यालय, पटना

शोध आलेख का सारतत्वः

वर्तमान विश्व व्यवस्था तेजी से परिवर्तनशील चरण से गुजर रही है, जहाँ बहुध्रुवीयता, क्षेत्रीय शक्ति-संतुलन, उभरती अर्थव्यवस्थाओं का प्रभाव, तकनीकी प्रतिस्पर्धा और भू-राजनीतिक तनाव अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक ढाँचे को पुनर्गठित कर रहे हैं। इस परिवर्तित परिदृश्य में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका और भविष्य गहन विमर्श का विषय बन गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थापित UN ने वैश्विक शांति, सुरक्षा, मानवाधिकार संरक्षण, विकास सहयोग और बहुपक्षीय संवाद को संस्थागत रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, परंतु 21वीं सदी की नई चुनौतियों का सामना करने में उसकी प्रभावशीलता पर प्रश्न उठ रहे हैं। रूस-यूक्रेन युद्ध, गाजा संकट, दक्षिण चीन सागर विवाद, महामारी और जलवायु आपातकाल जैसी जटिल परिस्थितियों में संयुक्त राष्ट्र की सीमाएँ स्पष्ट रूप से सामने आई हैं, विशेषकर सुरक्षा परिषद में राजनीतिक ध्रुवीकरण और वीटो शक्ति के कारण निर्णय प्रक्रिया बाधित होती रही है। वैश्विक दक्षिण का उदय, एशिया की बढ़ती रणनीतिक शक्ति, डिजिटल और साइबर खतरों का विस्तार तथा गैर-राज्यीय अभिनेताओं की बढ़ती भूमिका यह संकेत देती है कि न्छ को अपने ढाँचों, प्रक्रियाओं और प्राथमिकताओं को पुनर्परिभाषित करना आवश्यक है। सुरक्षा परिषद में सुधार, वित्तीय ढाँचे को सुदृढ़ करने, वैश्विक स्वास्थ्य और जलवायु शासन को अधिक समावेशी बनाने तथा तकनीकी युग की जटिलताओं से निपटने के लिए नई नीतियों की आवश्यकता बढ़ रही है। स्पष्टतः संयुक्त राष्ट्र संघ का भविष्य उसकी सुधार-क्षमता, सदस्य देशों की राजनीतिक प्रतिबद्धता और वैश्विक सहयोग की दिशा पर निर्भर करता है। यदि वह बदलती विश्व व्यवस्था के अनुरूप अपने आप को आधुनिक बनाए, तो वह आने वाले दशकों में भी वैश्विक शांति और बहुपक्षीयता का प्रमुख स्तंभ बना रह सकता है।

की-वर्ड्स : संयुक्त राष्ट्र, वैश्विक शासन, बहुपक्षवाद, विश्व व्यवस्था, सुरक्षा परिषद् सुधार, शांतिरक्षण, भू-राजनीतिक प्रतिस्पधर्ा, वैश्विक दक्षिण, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, बहुध्रुवीयता, मानवाधिकार, सतत विकास लक्ष्य, सामूहिक सुरक्षा, वैश्विक चुनौतियाँ, अंतरराष्ट्रीय कानून, संस्थागत सुधार, कूटनीति, संघर्ष-समाधान, वैश्विक स्थिरता, संयुक्त राष्ट्र का भविष्य आदि।

प्रस्तावना :

21वीं सदी की बदलती वैश्विक व्यवस्था ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति की दिशा, शक्ति-संतुलन के स्वरूप और बहुपक्षीय संस्थाओं की उपयोगिता पर गहरा प्रभाव डाला है। संयुक्त राष्ट्र संघ, जो कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद वैश्विक शांति, सुरक्षा और सहयोग को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से स्थापित हुआ था,[1] आज एक ऐसे दौर से गुजर रहा है जहाँ उसकी प्रासंगिकता, क्षमता और भविष्य को लेकर व्यापक बहसें हो रही हैं। शीत युद्ध के अंत के बाद एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था का दौर अपेक्षाकृत स्थिर दिखा, लेकिन 21वीं सदी में चीन के तेज उदय, रूस की आक्रामक विदेश नीति, वैश्विक दक्षिण के पुनरुत्थान, क्षेत्रीय शक्तियों की बढ़ती सक्रियता और बहुध्रुवीयता की पुनर्वापसी ने अंतरराष्ट्रीय प्रणाली को अधिक जटिल और प्रतिस्पर्धात्मक बना दिया है। इस बदलती विश्व संरचना के बीच संयुक्त राष्ट्र की भूमिका स्वयं एक पुनर्मूल्यांकन की स्थिति में है, क्योंकि वह पुराने ढाँचों के साथ नए यथार्थों का सामना कर रहा है।

अमेरिका और चीन के बीच उभरती नई शक्ति प्रतिस्पर्धा 21वीं सदी की सबसे महत्त्वपूर्ण भू-राजनीतिक वास्तविकता है। आर्थिक, तकनीकी, सैन्य और वैचारिक सभी स्तरों पर यह प्रतियोगिता अंतरराष्ट्रीय संस्थानों, नियमों और प्रक्रियाओं को प्रभावित कर रही है।[2] संयुक्त राष्ट्र संघ इस प्रतिस्पर्धा के प्रभाव से अछूता नहीं है; बल्कि उसके निर्णय, प्रस्ताव, वित्तीय संरचना और नेतृत्व तक इन दोनों शक्तियों की खींचतान स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। अमेरिका ने लंबे समय तक संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था को अपने नेतृत्व में आकार देने का प्रयास किया, जबकि चीन आज UN के भीतर अपने प्रभाव को लगातार बढ़ा रहा है। यह शक्ति-संघर्ष संयुक्त राष्ट्र की निष्पक्षता, स्वायत्तता और प्रभावशीलता के लिए नई चुनौतियाँ लेकर आया है।

विश्व राजनीति में बहुध्रुवीयता का उभार संयुक्त राष्ट्र के लिए एक अवसर भी है और चुनौती भी। एक ओर, विविध शक्ति-केन्द्र बहुपक्षीय संस्थाओं की उपयोगिता बढ़ाते हैं ताकि सभी पक्षों को संवाद और सहयोग के मंच मिल सकें। दूसरी ओर, बहुध्रुवीय प्रतिस्पधर्ा निर्णय-निर्माण को जटिल बनाती है, क्योंकि सुरक्षा परिषद से लेकर अन्य निकायों में सहमति बनाना कठिन होता जाता है। यही कारण

है कि रूस-यूक्रेन युद्ध, गाजा संघर्ष, सीरिया संकट या यमन की स्थिति-कई स्थानों पर संयुक्त राष्ट्र एक प्रभावी समाधान या निर्णायक हस्तक्षेप करने में विफल दिखाई देता है। जब बड़े शक्ति-हित आपस में टकराते हैं, तो संयुक्त राष्ट्र के मौजूदा ढाँचे में ठहराव स्पष्ट दिखाई देता है।

21वीं सदी में वैश्विक दक्षिण का उभार भी संयुक्त राष्ट्र के भविष्य को नई दिशा दे रहा है। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका की अर्थव्यवस्थाओं का तेज विकास, जनसंख्या विस्तार, संसाधनों की बढ़ती भूमिका और राजनीतिक दावेदारी ने अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था में शक्ति-संतुलन को बदल दिया है। भारत, ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका, इंडोनेशिया, नाइजीरिया जैसे देश अब वैश्विक एजेंडा-निर्धारण में अधिक सक्रिय भूमिका की मांग कर रहे हैं।[3]

वैश्विक दक्षिण की यह ेमतजपअमदमे संयुक्त राष्ट्र में प्रतिनिधित्व के सवाल को और तीव्र बनाती है, क्योंकि वर्तमान संरचना द्वितीय विश्व युद्ध के समय की भू-राजनीतिक वास्तविकताओं पर आधारित है। सुरक्षा परिषद में सुधार की मांग इसलिए भी बढ़ी है क्योंकि संयुक्त राष्ट्र की वैधता तभी सुदृढ़ होगी, जब उसका ढाँचा अधिक न्यायसंगत और समावेशी हो।

पर्यावरण, स्वास्थ्य, आर्थिक असमानता, साइबर सुरक्षा और तकनीकी शासन 21वीं सदी की नई वैश्विक चुनौतियाँ हैं, जिनके समाध ान के लिए बहुपक्षीय सहयोग अनिवार्य है। संयुक्त राष्ट्र महासभा, सुरक्षा परिषद और अन्य निकायों को इन क्षेत्रों में अपनी भूमिका को अधिक प्रासंगिक और प्रभावी बनाना होगा। जलवायु परिवर्तन जैसे विषयों पर न्छ की भूमिका महत्वपूर्ण तो है, लेकिन अक्सर बड़े देशों के हितों के कारण वैश्विक प्रयासों में अपेक्षित प्रगति नहीं हो पाती। उदाहरण के लिए, पेरिस समझौते जैसी उपलब्धियों के बावजूद कार्बन उत्सर्जन कम करने की राजनैतिक प्रतिबद्धता कमजोर बनी हुई है। महामारी के दौरान WHO की सीमाएँ भी उजागर हुईं,[4] जिससे यह स्पष्ट हुआ कि संयुक्त राष्ट्र को स्वास्थ्य सुरक्षा ढाँचे को अधिक पारदर्शी, सशक्त और स्वतंत्र बनाना पड़ेगा।

डिजिटल तकनीक, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और साइबर गवर्नेंस नए वैश्विक जोखिम और अवसर दोनों उत्पन्न कर रहे हैं। वर्तमान समय में इन विषयों पर कोई एकीकृत वैश्विक नियम नहीं है और शक्तिशाली देश अपने-अपने नियम स्थापित करने की दिशा में बढ़ रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र के लिए यह अवसर है कि वह एक निष्पक्ष, सार्वभौमिक और संतुलित डिजिटल गवर्नेंस ढाँचा विकसित करने में नेतृत्व करे। यदि ऐसा नहीं होता, तो भविष्य की वैश्विक व्यवस्था दो या अधिक तकनीकी-ध्रुवों में विभाजित हो सकती है, जिसका प्रभाव विश्व अर्थव्यवस्था और अंतरराष्ट्रीय स्थिरता दोनों पर पड़ेगा।

मानवाधिकार संरक्षण संयुक्त राष्ट्र की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक रहा है, लेकिन 21वीं सदी में इस क्षेत्र में भी नए तनाव उभर रहे हैं। कई देशों में राष्ट्रवाद, अधिनायकवाद, सैन्य शासन की वापसी और लोकतांत्रिक संस्थाओं के क्षरण ने मानवाधिकार व्यवस्था को चुनौती दी है। संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद पर पक्षपात और राजनीतिकरण के आरोप भी लगाए जाते हैं, जिससे उसकी विश्वसनीयता प्रभावित होती है। फिर भी, अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों और संधियों का अस्तित्व आज भी वैश्विक समुदाय के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक वैश्वीकरण की गति धीमी होने, संरक्षणवाद बढ़ने, आपूर्ति शृंखलाओं के पुनर्गठन और क्षेत्रीय व्यापार समूहों के उदय ने विश्व अर्थव्यवस्था को खंडित रूप में विकसित किया है।[5] इस खंडित वैश्विक आर्थिक व्यवस्था में संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों-जैसे UNCTAD, UNDP, UNEP-की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि वे विकास, समावेशन और पर्यावरण संरक्षण के लिए साझा लक्ष्यों और मानकों को बढ़ावा देती हैं। सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) ने वैश्विक स्तर पर विकास की एक साझा भाषा दी है, लेकिन उनकी उपलब्धि वित्तीय संकट, राजनीतिक अस्थिरता और वैश्विक नेतृत्व की कमी के कारण धीमी पड़ रही है।उसी समय, क्षेत्रीय संगठनो, G20, ASEAN, BRICS, QUAD, अफ्रीकी संघ-की भूमिका बढ़ रही है,[6] जो अंतरराष्ट्रीय सहयोग के समानांतर ढाँचों का निर्माण कर रहे हैं। इन संगठनों का उभार संयुक्त राष्ट्र के लिए चुनौती भी है और अवसर भी। चुनौती इसलिए क्योंकि इससे वैश्विक एजेंडा विभाजित होता है; और अवसर इसलिए क्योंकि संयुक्त राष्ट्र इन संगठनों के साथ साझेदारी बनाकर अपनी वैधता और प्रभाव को बढ़ा सकता है।इन सभी परिवर्तनों के बीच यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि 21वीं सदी में संयुक्त राष्ट्र का भविष्य किस दिशा में जाएगा। संयुक्त राष्ट्र की प्रासंगिकता तभी बनी रह सकती है जब वह बदलते शक्ति-संतुलन, तकनीकी क्रांति, वैश्विक दक्षिण की आकांक्षाओं और बहुध्रुवीयता की चुनौतियों के अनुरूप स्वयं को पुनर्संरचित करे। दुनिया को अभी भी एक ऐसी संस्था की आवश्यकता है जो युद्ध रोकने, संवाद स्थापित करने, अंतरराष्ट्रीय नियम बनाने, मानवाधिकारों की रक्षा करने और विकास व मानवीय सहायता प्रदान करने में सक्षम हो। लेकिन यह तभी संभव होगा जब संयुक्त राष्ट्र आंतरिक सुधार, संरचनात्मक आधुनिकीकरण और अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण वैश्विक शासन के मार्ग पर आगे बढ़े। इस व्यापक परिवर्तनशील अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति में संयुक्त राष्ट्र का भविष्य इसकी अनुकूलन क्षमता, बड़े देशों की राजनीतिक इच्छाशक्ति और वैश्विक सहयोग के नए स्वरूपों के साथ तालमेल पर निर्भर करेगा। यदि वह इन चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक करता है, तो 21वीं सदी में भी संयुक्त राष्ट्र विश्व व्यवस्था का केंद्रीय स्तंभ बना रह सकता है; अन्यथा वह एक ऐतिहासिक संस्था भर बनकर सीमित प्रभाव वाला संगठन रह जाएगा।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद जिस अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की संरचना की गई थी, वह उस समय की भू-राजनीतिक वास्तविकताओं, शक्ति-संतुलन और वैश्विक प्राथमिकताओं पर आधारित थी।[7] संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की वर्तमान संरचना-P5 की

स्थायी सदस्यता, उनके वीटो अधिकार और संरचनात्मक असमानताएँ-आज के वैश्विक संदर्भ में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं करतीं। बीसवीं सदी की मध्य का शक्ति-संतुलन 21वीं सदी में पूरी तरह बदल चुका है, लेकिन सुरक्षा परिषद का ढाँचा लगभग अपरिवर्तित बना हुआ है। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार की माँग लगातार बढ़ रही है। सुधार की आवश्यकता केवल प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं है, बल्कि यह वैश्विक शांति, सुरक्षा और बहुपक्षीयता की प्रभावशीलता से गहराई से जुड़ी है।

सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता पाँच देशों-अमेरिका, रूस, चीन, ब्रिटेन और फ्रांस तक सीमित है, जो द्वितीय विश्व युद्ध के विजेता देशों के रूप में स्थापित किए गए थे।[8] इन देशों को स्थायी रूप से वीटो का विशेषाधिकार प्राप्त है, जो उन्हें वैश्विक शांति और सुरक्षा से जुड़े किसी भी प्रस्ताव को रोकने की शक्ति देता है। यह संरचना एक ऐसी असंतुलनपूर्ण व्यवस्था पैदा करती है, जिसमें 193 सदस्य देशों की सामूहिक इच्छा अक्सर पाँच स्थायी देशों की राजनीतिक प्राथमिकताओं या रणनीतिक हितों के नीचे दब जाती है। उदाहरण के लिए, रूस-यूक्रेन युद्ध, गाजा संघर्ष या सीरिया संकट जैसे मुद्दों पर सुरक्षा परिषद कई बार वीटो के कारण कोई निर्णायक कदम नहीं उठा पाती, जिससे उसकी विश्वसनीयता कमजोर पड़ती है।

आज एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और वैश्विक दक्षिण के अनेक राष्ट्र अंतरराष्ट्रीय निर्णय-निर्माण में अधिक प्रतिनिधित्व की मांग कर रहे हैं। यह तर्क दिया जाता है कि सुरक्षा परिषद का स्थायी ढाँचा उस दौर की स्मृति है जब यूरोप और अमेरिका का राजनीतिक प्रभाव अधिक था, जबकि आज आर्थिक शक्ति, जनसंख्या आकार, सैन्य क्षमता और भू-राजनीतिक प्रभाव नए क्षेत्रों में स्थानांतरित हो चुका है। उदाहरण के लिए, भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र, जनसंख्या में अग्रणी, वैश्विक अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख केंद्र और शांति मिशनों में सर्वाधिक योगदान देने वाले देशों में से है। इसके बावजूद भारत सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य नहीं है, जो वर्तमान संरचना की असंगतियों को उजागर करता है। इसी प्रकार, जापान दुनिया के सबसे बड़े आर्थिक योगदानकर्ताओं में से एक है, ब्राजील दक्षिण अमेरिका की सबसे शक्तिशाली अर्थव्यवस्था है, और जर्मनी यूरोप की आर्थिक रीढ़ है, लेकिन ये चारों G4 देश अब तक सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता से बाहर हैं।[9]

सुरक्षा परिषद में सुधार को लेकर कई मॉडल प्रस्तुत किए गए हैं, जिनमें से सबसे अधिक चर्चा G4 (भारत, जापान, जर्मनी, ब्राजील) के प्रस्ताव, अफ्रीका समूह का एजूलविनी कॉन्सेसूस, और यूनाइटिंग फॉर कॉन्सेसूस समूह के मॉडल की होती है। G4 देशों का तर्क है कि उनकी आर्थिक, जनसांख्यिकीय, राजनीतिक और रणनीतिक महत्ता उन्हें स्थायी सदस्यता का वैध दावा देती है।[10] दूसरी ओर, अफ्रीकी देशों का कहना है कि सुरक्षा परिषद की स्थापना के समय वे औपनिवेशिक शासन के अधीन थे, इसलिए उनके महाद्वीप को आज एक स्थायी सीट और वीटो की समान शक्ति मिलनी चाहिए। यह मुद्दा वैश्विक न्याय और उपनिवेश-उन्मूलन से जुड़े नैतिक तर्कों को भी जन्म देता है। लेकिन इन वैध मांगों के बावजूद सुरक्षा परिषद में सुधार अत्यंत कठिन है। सबसे बड़ी चुनौती P5 देशों की राजनीतिक इच्छा से जुड़ी है, क्योंकि कोई भी सुधार तभी संभव है जब ये पाँचों देश उसे स्वीकार करें। सुधार के लिए संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन आवश्यक है, जिसके लिए दो-तिहाई महासभा का समर्थन और सभी स्थायी सदस्यों की स्वीकृति अनिवार्य है। इसका अर्थ है कि कोई भी एक स्थायी सदस्य सुधार को रोक सकता है। उदाहरण के लिए, चीन भारत की स्थायी सदस्यता को रोकना चाहता है, जबकि पाकिस्तान इस ओर चीन को प्रभावित करता है। वहीं, अमेरिका और ब्रिटेन भारत का समर्थन करते हैं, लेकिन जापान की सदस्यता पर चीन और दक्षिण कोरिया आपत्ति जताते हैं। जर्मनी की सदस्यता पर फ्रांस और अमेरिका अनुकूल हैं, लेकिन इटली, स्पेन और यूरोपीय संघ के कुछ सदस्य यूनाइटिंग फॉर कॉन्सेसूस समूह के माध्यम से इसका विरोध करते हैं। इसी तरह अफ्रीका में भी यह तय नहीं हो पाया कि स्थायी सदस्यता किस देश को मिले, क्योंकि नाइजीरिया, दक्षिण अफ्रीका और मिस्र तीनों मजबूत दावेदार हैं।[11]

वीटो अधिकार का प्रश्न सुधार की सबसे जटिल बाधा है। कई देश वीटो समाप्त करने या कम से कम उसे सीमित करने की मांग कर रहे हैं। कुछ प्रस्तावों के अनुसार वीटो का उपयोग मानवतावादी संकटों, नरसंहार या बड़े पैमाने के अत्याचारों में रोक दिया जाना चाहिए। लेकिन P5 देश अपने विशेषाधिकार छोड़ने को तैयार नहीं हैं, क्योंकि इससे उनकी वैश्विक शक्ति का आधार कमजोर होगा। रूस और चीन वीटो सुधार के सबसे बड़े विरोधी माने जाते हैं, जबकि अमेरिका भी अपने सामरिक हितों की रक्षा के लिए वीटो को आवश्यक मानता है। सुरक्षा परिषद में सुधार के विरोधी यह तर्क देते हैं कि स्थायी सदस्यता का विस्तार शक्ति-संतुलन को और जटिल बना देगा, निर्णय-निर्माण में ठहराव बढ़ेगा और वैश्विक व्यवस्था अधिक अस्थिर हो सकती है। लेकिन यह तर्क इस वास्तविकता की अनदेखी करता है कि मौजूदा संरचना पहले से ही अप्रभावी है और वीटो के कारण बार-बार निष्क्रिय हो जाती है। सुधार समर्थक यह मानते हैं कि यदि सुरक्षा परिषद को वैश्विक विश्वसनीयता बनाए रखनी है तो उसे अधिक प्रतिनिधिक, पारदर्शी और लोकतांत्रिक बनाना ही होगा। इसके अतिरिक्त, क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व भी एक बड़ा मुद्दा है। अफ्रीका महाद्वीप, जहाँ 54 सदस्य देश हैं,[12] उसकी स्थायी सदस्यता का पूर्ण अभाव है। इसी प्रकार, लैटिन अमेरिका और मध्य पूर्व को भी वैश्विक सुरक्षा संरचना में अपेक्षित स्थान नहीं मिला है। यह असंतुलन वैश्विक निर्णयों की वैधता पर प्रश्न खड़ा करता है, क्योंकि शांति, सुरक्षा और विकास से जुड़े अनेक मुद्दे उन्हीं क्षेत्रों में केंद्रित हैं, जिन्हें सुरक्षा परिषद में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला।एक और चुनौती यह है कि सुरक्षा परिषद के सुधार का मुद्दा भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धाओं का हिस्सा बन चुका है। शक्ति-संतुलन की राजनीति में कोई भी देश ऐसा सुधार नहीं चाहता जिससे उसके प्रतिद्वंद्वी की स्थिति मजबूत हो। उदाहरण के लिए, चीन भारत को रोकना चाहता है, पाकिस्तान भारत का विरोध करता है, इटली जर्मनी का विरोध

करता है, मेक्सिको ब्राजील का और दक्षिण कोरिया जापान का। इस स्थिति में वैश्विक सहमति बनना अत्यंत कठिन हो जाता है। इन जटिलताओं के बावजूद, सुधार की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता। एक ऐसी दुनिया में जहाँ नए सुरक्षा खतरे–साइबर युद्ध, आतंकवाद, जलवायु–संकट, महामारी, कृत्रिम बुद्धिमत्ता–तेजी से उभर रहे हैं, सुरक्षा परिषद को अधिक सक्षम और संवेदनशील ढाँचा बनना होगा। प्रतिनिधित्व के अभाव, वीटो के अत्यधिक प्रयोग, क्षेत्रीय असंतुलन और वैश्विक दक्षिण की उपेक्षा के कारण सुरक्षा परिषद की वैधता क्षीण हो रही है। यदि सुधार नहीं किया गया, तो यह संस्था धीरे–धीरे अप्रासंगिक होने का जोखिम उठा सकती है। सुधार की दिशा में कुछ सकारात्मक प्रयास भी हुए हैं। उदाहरण के लिए, अफ्रीकन यूनियन, G4 देशों और कई मध्यम शक्तियों ने महासभा में सुधार एजेंडा को लगातार आगे बढ़ाया है। फ्रांस ने सीमित परिस्थितियों में वीटो के उपयोग को रोकने का समर्थन व्यक्त किया है। भारत ने कई अंतरराष्ट्रीय मंचों पर सुरक्षा परिषद को "21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप" बनाने की आवश्यकता को उठाया है।[13] फिर भी, सुधार को वास्तविकता में बदलना सरल नहीं है। यह केवल तकनीकी या प्रक्रियात्मक मुद्दा नहीं, बल्कि गहरी राजनीतिक इच्छाशक्ति, शक्ति–संतुलन और वैश्विक नेतृत्व का प्रश्न है। यदि वैश्विक शक्तियाँ अपने संकीर्ण हितों से ऊपर उठकर अधिक न्यायसंगत और प्रतिनिधिक ढाँचा स्वीकार करें, तभी सुरक्षा परिषद वास्तव में वैश्विक समुदाय की आकांक्षाओं को पूरा कर सकेगी।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाए रखना था, जिससे विश्व को दो विनाशकारी विश्व युद्धों जैसे मानवीय संकटों से बचाया जा सके। प्रारंभिक दशकों में यह संस्था अनेक संघर्षों को रोकने, मध्यस्थता करने और विश्व के विभिन्न हिस्सों में स्थिरता स्थापित करने में सीमित रूप से ही सही, लेकिन प्रभावी भूमिका निभाने में सक्षम रही। किंतु 21वीं सदी में अंतरराष्ट्रीय राजनीति की जटिलताओं, भू–राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, क्षेत्रीय तनावों और महाशक्तियों के हित–आधारित दृष्टिकोण ने संयुक्त राष्ट्र की प्रभावशीलता को धीरे–धीरे कम किया है। विशेषकर शांति स्थापना, संघर्ष समाधान, मानवाधिकार संरक्षण और युद्धग्रस्त क्षेत्रों में स्थिरता बहाल करने जैसे उसके मुख्य कार्य आज गंभीर चुनौतियों से घिरे हैं। शांति स्थापना मिशनों की घटती विश्वसनीयता का पहला कारण यह है कि संयुक्त राष्ट्र की कार्रवाई अक्सर सुरक्षा परिषद की सामूहिक सहमति पर निर्भर करती है, जहाँ पाँच स्थायी सदस्य अपने–अपने भू–राजनीतिक हितों के अनुसार निर्णय लेते हैं। वीटो शक्ति इस संस्था की सबसे बड़ी कमजोरी बन चुकी है, क्योंकि इसकी वजह से कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित नहीं हो पाते, भले ही उनसे वैश्विक स्थिरता को लाभ मिलता।

विश्व राजनीति में शक्ति–संतुलन में आए बदलावों ने भी संयुक्त राष्ट्र की क्षमता को सीमित किया है। शीत युद्ध के बाद उभरे एकध ुवीय युग ने अमेरिका की वैश्विक भूमिका को अत्यधिक बढ़ाया, और इस अवधि में संयुक्त राष्ट्र ने कुछ महत्त्वपूर्ण सफलताएँ अर्जित कीं, जैसे कि कंबोडिया, सिएरा लियोन और कोसोवो में शांति मिशन।[14] किंतु 21वीं सदी में बहुध्रुवीयता के उभार, चीन की शक्ति वृद्धि, रूस के पुनरुत्थान और पश्चिमी देशों की घटती सामूहिकता के कारण संयुक्त राष्ट्र की कार्रवाई कई बार विरोधाभासी हितों के बीच फँसकर निष्क्रिय हो जाती है। खासकर रूस और चीन का वीटो शक्ति का अधिकाधिक उपयोग पश्चिमी देशों के प्रस्तावों को रोकने तथा अपनी रणनीतिक प्राथमिकताओं को आगे बढ़ाने के साधन के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार सुरक्षा परिषद का ध्रुवीकरण संयुक्त राष्ट्र की निर्णय–प्रक्रिया को लगभग पंगु बना देता है।

शांति स्थापना मिशनों की दूसरी प्रमुख चुनौती मिशन के जनादेश, संसाधन और सैन्य क्षमता की सीमाएँ हैं। संयुक्त राष्ट्र के सैनिक प्रायः विकासशील देशों से आते हैं, जिनकी प्रशिक्षण क्षमता, सैन्य उपकरण और लॉजिस्टिक समर्थन कमजोर होता है। इसके अतिरिक्त, शांति सैनिकों को अक्सर लड़ाकू कार्रवाई की अनुमति नहीं होती, बल्कि वे पर्यवेक्षक, निगरानीकर्ता या मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं। ऐसे में जब वे किसी सक्रिय संघर्ष क्षेत्र में पहुँचते हैं, तो उनके पास कई बार हिंसा रोकने या नागरिकों की रक्षा करने की प्रभावी क्षमता ही नहीं होती। शांति स्थापना की यह "निष्क्रिय" प्रकृति आज के जटिल संघर्षों में अप्रभावी साबित हो रही है।

रूस–यूक्रेन युद्ध संयुक्त राष्ट्र की विफलता का सबसे बड़ा समकालीन उदाहरण है। फरवरी 2022 में रूस द्वारा यूक्रेन पर आक्रमण ने अंतरराष्ट्रीय कानून, संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता की अवधारणा को खुली चुनौती दी। संयुक्त राष्ट्र महासभा और सुरक्षा परिषद दोनों ने इस घटना की निंदा करने की कोशिश की, परंतु रूस ने अपने वीटो उपयोग करके किसी भी कठोर प्रस्ताव को पारित नहीं होने दिया।[15] नतीजतन, सुरक्षा परिषद दुनिया की सबसे बड़ी सैन्य आक्रामकता के सामने निष्क्रिय खड़ी रह गई। इससे न केवल संयुक्त राष्ट्र की विश्वसनीयता को गहरा आघात पहुँचा, बल्कि यह संदेश भी गया कि जब आक्रमणकारी देश स्थायी सदस्य हो, तो संस्था कुछ भी नहीं कर सकती। गाजा संकट ने भी संयुक्त राष्ट्र की कमजोरी को उजागर किया है। फिलिस्तीन–इजरायल संघर्ष लंबे समय से अंतरराष्ट्रीय राजनीति का केंद्र रहा है, लेकिन 2023–2024 के युद्ध में नागरिकों की बड़े पैमाने पर मृत्यु और विनाश के बावजूद संयुक्त राष्ट्र तत्काल प्रभावशाली हस्तक्षेप करने में असक्षम रहा। अमेरिका द्वारा लगातार वीटो का उपयोग संयुक्त राष्ट्र को पक्षपाती और असंतुलित दिखाता है, और यह कि वैश्विक दक्षिण के देशों के मानवीय दृष्टिकोण को अक्सर महाशक्तियों के हितों के सामने नजरअंदाज कर दिया जाता है। इस विफलता ने वैश्विक मानवाधिकार संरक्षण की सर्वाधिक आलोचना पैदा की है।सीरिया में दशकभर से जारी गृहयुद्ध में भी संयुक्त राष्ट्र पूरी तरह असफल रहा। रूस और चीन के वीटो के कारण किसी निर्णायक अंतरराष्ट्रीय हस्तक्षेप को मंजूरी नहीं मिल सकी। परिणामस्वरूप लाखों लोग मारे गए, करोड़ों विस्थापित हुए, लेकिन संयुक्त राष्ट्र केवल मानवीय सहायता

तक ही सीमित रह गया। इसके अलावा, सीरिया में रासायनिक हथियारों के उपयोग की पुष्टि के बाद भी कोई ठोस दंडात्मक कार्रवाई नहीं हो सकी, जिससे अंतरराष्ट्रीय मानकों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिह्न लग गया।

मानवाधिकार संरक्षण के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र की गिरती प्रतिष्ठा और प्रभावशीलता भी चिंताजनक है। मानवाधिकार परिषद में भी कई ऐसे देश शामिल हैं जिनका स्वयं का मानवाधिकार रिकॉर्ड बेहद खराब है, इस कारण इस संस्था की नैतिक वैधता पर प्रश्न उठते हैं। कई बार इस मंच का उपयोग राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता, आरोप-प्रत्यारोप और कूटनीतिक दबाव के साधन के रूप में किया जाता है, जिससे मानवाधिकार संरक्षण का उद्देश्य गौण हो जाता है।

आतंकवाद, साइबर सुरक्षा, महाशक्ति प्रतिस्पर्धा, हाइब्रिड युद्ध, निजी सुरक्षा कंपनियाँ और गैर-राज्य अभिनेताओं की बढ़ती भूमिका जैसी नई सुरक्षा चुनौतियों ने भी संयुक्त राष्ट्र की सीमा को उजागर किया है।[16]

पारंपरिक संघर्षों के समाधान के लिए बनी संस्था आज की जटिल और बहुआयामी सुरक्षा संरचना के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित करने में धीमी रही है। विशेष रूप से आतंकवाद के मुद्दे पर वैश्विक सहमति नहीं बन पाती, क्योंकि अलग-अलग देश अपने राजनीतिक हितों के अनुसार आतंक की परिभाषा निर्धारित करते हैं। इन सभी कारकों के बावजूद संयुक्त राष्ट्र पूरी तरह अप्रासंगिक नहीं हुआ है। अभी भी उसके शांति मिशन अनेक संघर्ष क्षेत्रों में कम से कम अस्थायी स्थिरता बनाए रखने में योगदान दे रहे हैं। यद्यपि उनकी सीमाएँ गंभीर हैं, फिर भी अफ्रीका, मध्य एशिया और कैरेबियन के कई देशों में UN मिशन नागरिकों की रक्षा, चुनावों की निगरानी और मानवीय राहत वितरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। किंतु यह स्पष्ट है कि यदि संयुक्त राष्ट्र को 21वीं सदी में प्रासंगिक बने रहना है, तो उसे सुरक्षा परिषद में सुधार, वीटो अधिकार में पारदर्शिता, शांति मिशनों की क्षमता वृद्धि और नई सुरक्षा चुनौतियों की समझ विकसित करनी होगी।

वैश्विक विकास, स्वास्थ्य और मानवीय सहायता के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की सबसे महत्वपूर्ण नींवों में से एक रही है। इस संस्था ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आर्थिक पुनर्निर्माण, स्वास्थ्य सुरक्षा, मानव कल्याण और गरीब देशों को सामाजिक-आर्थिक स्थिरता प्रदान करने जैसे कार्यों में निर्णायक भूमिका निभाई। किंतु 21वीं सदी की बदलती चुनौतियों-जैसे जलवायु संकट, महामारी, आर्थिक असमानता, नई तकनीकों का उदय, संसाधनों की असुरक्षा और राजनीतिक विभाजन-ने संयुक्त राष्ट्र के इन प्रयासों की दिशा, प्रभावशीलता और व्यापकता को पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता में धकेल दिया है। आज यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो गया है कि क्या संयुक्त राष्ट्र वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में विकास और मानवीय सहायता का प्रभावी नेतृत्व देने में सक्षम है, और क्या उसकी संस्थागत व्यवस्था आधुनिक जटिलताओं के अनुरूप स्वयं को ढाल पा रही है।

सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) ने 2015 के बाद वैश्विक विकास की दिशा को नई दिशा दी। यह लक्ष्य केवल आर्थिक वृद्धि तक सीमित नहीं थे, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता, गरीबी उन्मूलन, पर्यावरण संरक्षण, स्वच्छ ऊर्जा, जलवायु कार्रवाई और सामाजिक न्याय तक फैले हुए थे। संयुक्त राष्ट्र ने SDGs को वैश्विक विकास के "साझा रोडमैप" के रूप में प्रस्तुत किया, परंतु इन लक्ष्यों की प्राप्ति गहरी असमानताओं और राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है।[17] अनेक विकासशील देशों में वित्तीय संसाधनों की कमी, अंतरराष्ट्रीय ऋण का बढ़ता बोझ, वैश्विक बाजारों की अस्थिरता और जलवायु आपदाओं की बढ़ती आवृत्ति ने SDGs की प्रगति को धीमा कर दिया। कोविड-19 महामारी के कारण कई देशों में स्वास्थ्य, शिक्षा और आर्थिक विकास में दशकों पीछे जाने का संकट उत्पन्न हुआ, जिससे SDGs की दिशा और भी प्रभावित हुई। इस पृष्ठभूमि में संयुक्त राष्ट्र पर यह दबाव बढ़ा है कि वह वित्तीय संसाधनों, तकनीकी सहायता और अंतरराष्ट्रीय सहयोग के नए मॉडल विकसित करे।

वैश्विक स्वास्थ्य सुरक्षा में विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) संयुक्त राष्ट्र प्रणाली का प्रमुख स्तंभ है। कोविड-19 महामारी ने WHO की भूमिका, क्षमताओं और सीमाओं को व्यापक रूप से उजागर किया। प्रारंभिक चरणों में सूचना साझा करने में देरी, सदस्य देशों के बीच समन्वय की कमी, वैक्सीन वितरण में असमानता और महामारी प्रबंधन के राजनीतिकरण ने WHO की विश्वसनीयता पर प्रश्न खड़े किए। वैश्विक दक्षिण के देशों को वैक्सीन प्राप्त करने में भारी कठिनाइयाँ हुईं, जबकि संपन्न राष्ट्रों ने वैक्सीन जमा करने की नीति अपनाई। इससे वैश्विक स्वास्थ्य को एक सामान्य 'मानवाधिकार' के रूप में स्थापित करने की UN की क्षमता संदिग्ध हुई। महामारी के बाद यह आवश्यकता और स्पष्ट हुई कि WHO को अधिक वित्तीय स्वतंत्रता, राजनीतिक स्वतंत्रता और वैज्ञानिक अनुसंधान क्षमता प्रदान की जाए। साथ ही, वैश्विक स्वास्थ्य आपात स्थितियों में त्वरित कार्रवाई करने के लिए नई संस्थागत व्यवस्था विकसित की जाए।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) ने गरीबी उन्मूलन, लोकतांत्रिक शासन, आपदा प्रबंधन और मानव विकास को बढ़ावा देने में व्यापक योगदान दिया है। किंतु यह भी सच है कि UNDP के कार्यक्रम कई बार धीमी प्रक्रियाओं, अपर्याप्त फंडिंग और स्थानीय राजनीतिक जटिलताओं के कारण अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाए।[18] विभिन्न देशों की सरकारों के साथ साझेदारी में पारदर्शिता और जवाबदेही की कमी ने भी इसकी प्रभावशीलता को कई बार कम किया है। आज UNDP को अपने कार्यक्रमों को अधिक स्थानीयकृत, तकनीकी-आधारित और परिणामोन्मुख बनाने की आवश्यकता है।

पर्यावरण संरक्षण में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) की भूमिका 21वीं सदी में अधिक महत्त्वपूर्ण हो गई है। जलवायु परिवर्तन ने पूरी दुनिया को प्रभावित किया है, और तापमान वृद्धि, हिमनदों का पिघलना, समुद्र-स्तर में वृद्धि और चरम मौसम घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति ने जीवन, स्वास्थ्य और अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला है। UNEP द्वारा जारी रिपोर्टें वैज्ञानिक प्रमाणों को सशक्त रूप से प्रस्तुत करती हैं, परंतु जलवायु कार्रवाई के स्तर पर देशों की प्रतिबद्धता कमजोर रहती है। विकसित और विकासशील देशों के बीच जलवायु वित्त, तकनीकी हस्तांतरण और उत्सर्जन नियंत्रण पर सहमति का अभाव संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों में बाधा उत्पन्न करता है। पेरिस समझौता एक महत्वपूर्ण उपलब्धि था, परंतु उसकी क्रियान्वयन रणनीति में अभी भी बहुत अधिक सुधार की आवश्यकता है।

बाल अधिकारों और मानव कल्याण में यूनिसेफ (UNICEF) का योगदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यह संघर्ष-ग्रस्त क्षेत्रों में बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य करता है। किंतु आज भी दुनिया के करोड़ों बच्चे कुपोषण, गरीबी, बाल श्रम और युद्ध के दुष्प्रभावों से प्रभावित हैं। मानवीय संकटों-जैसे अफगानिस्तान, सीरिया, यमन और गाजा-में बच्चों की सुरक्षा सबसे गंभीर मुद्दा बनकर उभरी है। न्छप्ब्म्थ् को अपने कार्यक्रमों में और अधिक संसाधनों, तेज प्रतिक्रिया क्षमता और स्थानीय एजेंसियों के साथ सघन सहयोग की आवश्यकता है।

मानवीय सहायता के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका जटिल और बहुआयामी है। विश्व खाद्य कार्यक्रम (WFP) ने भूख और खाद्य असुरक्षा से लड़ने में कई देशों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, और इसे इसी कार्य के लिए नोबेल शांति पुरस्कार भी मिला। किंतु वैश्विक आर्थिक संकट, युद्ध, जलवायु परिवर्तन और महामारी ने खाद्य सुरक्षा को नया खतरा पहुँचा दिया। संसाधन-संकट के कारण WFP कई क्षेत्रों में पूर्ण सहायता प्रदान करने में असमर्थ हो रहा है। मानवीय राहत आज राजनीति से गहराई से प्रभावित होती जा रही है, जिससे सहायता वितरण की निष्पक्षता प्रभावित होती है।

संयुक्त राष्ट्र की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वैश्विक विकास और मानवीय सहायता का परिदृश्य अब पहले की तुलना में कहीं अधिक जटिल हो गया है। निजी कंपनियाँ, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ, क्षेत्रीय संगठन और गैर-सरकारी संस्थाएँ बड़े पैमाने पर अंतरराष्ट्रीय विकास में सक्रिय हैं। ऐसे में संयुक्त राष्ट्र को अपनी संस्थागत संरचना, साझेदारी मॉडल और कार्य-प्रणाली को अधिक पारदर्शी, कुशल और आधुनिक बनाना होगा। दूसरे शब्दों में, संयुक्त राष्ट्र अब भी वैश्विक विकास, स्वास्थ्य और मानवीय सहायता का सबसे बड़ा और वैध अंतरराष्ट्रीय मंच है, पर इसकी प्रभावशीलता इस बात पर निर्भर करेगी कि यह संस्था आधुनिक वैश्विक चुनौतियों के अनुरूप अपने कार्यों का पुनर्मूल्यांकन कितनी गंभीरता से करती है, और अपनी संरचनात्मक कमजोरियों को कितनी दूर करने में सक्षम होती है।

संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का मूल उद्देश्य यह था कि वैश्विक निर्णय-निर्माण किसी एक शक्ति के प्रभुत्व में न रहे, बल्कि सामूहिकता, बहुपक्षीयता और न्यायपूर्ण वैश्विक व्यवस्था के आधार पर संचालित हो। किंतु 21वीं सदी में संयुक्त राष्ट्र के निर्णय-निर्माण पर महाशक्तियों का प्रभाव इस संस्था की सबसे बड़ी कमजोरी माना जाता है। अमेरिका, चीन, रूस, फ्रांस और ब्रिटेन जैसे स्थायी सदस्य अपने-अपने रणनीतिक, आर्थिक और भू-राजनीतिक हितों के अनुसार सुरक्षा परिषद के निर्णयों को प्रभावित करते हैं, और कई बार पूरी संस्था को निष्क्रिय बना देते हैं।

सुरक्षा परिषद में वीटो शक्ति महाशक्तियों के प्रभुत्व का सबसे स्पष्ट उदाहरण है। यह शक्ति संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के समय वैश्विक संतुलन बनाए रखने के उद्देश्य से दी गई थी, परंतु समय के साथ यह बड़े देशों के राष्ट्रीयहितों को सुरक्षित रखने का साध न बन गई।[19] अमेरिका इजरायल से जुड़े प्रस्तावों पर, रूस सीरिया और यूक्रेन से जुड़े मुद्दों पर, चीन ताइवान और भू-राजनीतिक हितों से संबंधित विषयों पर लगातार वीटो का प्रयोग करता है। इस कारण कई महत्वपूर्ण संकटों में संयुक्त राष्ट्र ठोस कार्रवाई नहीं कर पाता।

अमेरिका लंबे समय से अंतरराष्ट्रीय राजनीति में प्रभावशाली शक्ति रहा है। संयुक्त राष्ट्र की वित्तीय व्यवस्था में भी अमेरिका प्रमुख योगदानकर्ता है, जिसके कारण वह संस्था की कई नीतियों को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। लोकतंत्र, मानवाधिकार और मुक्त व्यापार जैसे अमेरिकी मूल्यों को बढ़ावा देने के नाम पर कई बार संयुक्त राष्ट्र एजेंसियाँ उन कार्यक्रमों की ओर झुक जाती हैं जो अमेरिका के व्यापक हितों को साधते हैं। इसके विपरीत, जब संयुक्त राष्ट्र अमेरिकी हितों के प्रतिकूल कोई रुख अपनाता है, तब अमेरिका उसका वित्तीय समर्थन कम कर देता है, जैसा कि उसने ट्रम्प प्रशासन के दौरान WHO और UNESCO के मामले में किया।

चीन 21वीं सदी की सबसे तेजी से उभरती शक्ति है, और संयुक्त राष्ट्र में उसकी सक्रियता उल्लेखनीय रूप से बढ़ी है। चीन शांति स्थापना मिशनों में सैनिक भेजने वाले शीर्ष देशों में शामिल है और कई विकासशील देशों में उसकी आर्थिक सहायता न्छ एजेंसियों के कार्यक्रमों को प्रभावित करती है। साथ ही, चीन ने अपने नौकरशाहों को संयुक्त राष्ट्र की विभिन्न एजेंसियों के महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया है, जिससे वह अंतरराष्ट्रीय संस्थागत व्यवस्था में अपनी वैचारिक और रणनीतिक प्राथमिकताओं को आगे बढ़ाने का प्रयास करता है।

रूस भी संयुक्त राष्ट्र में अपने प्रभाव का उपयोग भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के लिए करता है। रूस का सबसे बड़ा हथियार उसका वीटो है, जिसे वह पश्चिमी प्रस्तावों को रोकने के लिए उपयोग करता है। रूस-यूक्रेन युद्ध में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक स्पष्ट हुई, जहाँ रूस ने अपने खिलाफ प्रस्ताव पारित होने से रोक दिया। इसने निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को बुरी तरह बाधित किया। संयुक्त राष्ट्र के निर्णय-निर्माण पर महाशक्तियों के प्रभाव का एक और पहलू "संस्थागत निष्पक्षता" का संकट है। कई विकासशील देश मानते हैं कि

संयुक्त राष्ट्र की संस्थाएँ पश्चिमी देशों के नेतृत्व में चलती हैं और उनके एजेंडे पर आधारित होती हैं। उदाहरणार्थ, मानवाधिकार परिषद में राजनीतिक पक्षपात, आर्थिक संस्थाओं में पश्चिमी प्रभाव, और सुरक्षा परिषद में शक्ति असंतुलन विकासशील देशों के विश्वास को कमजोर करता है। यह असमानता वैश्विक दक्षिण के उदय के साथ और अधिक चुनौतीपूर्ण होती जा रही है, जो अधिक प्रतिनिधित्व और अधिक निष्पक्ष निर्णय-निर्माण की मांग करता है।

भू-राजनीतिक ध्रुवीकरण ने बहुपक्षीयता के संकट को भी बढ़ा दिया है। अमेरिका-चीन प्रतिस्पर्धा, रूस-पश्चिम तनाव, मध्य-पूर्व में क्षेत्रीय शक्तियों की प्रतिस्पर्धा और एशिया-प्रशांत में रणनीतिक ध्रुवीकरण ने वैश्विक सहमति को लगभग असंभव बना दिया है। संयुक्त राष्ट्र में निर्णय अब "सहमति" से कम, और "विभाजित ब्लॉकों" के आधार पर अधिक लिए जाते हैं। परिणामस्वरूप, वैश्विक समस्याओं-जैसे महामारी, जलवायु परिवर्तन, वैश्विक व्यापार संकट, साइबर सुरक्षा और प्रवास-पर सामूहिक निर्णय में बार-बार देरी होती है।

महाशक्तियों की राजनीति संयुक्त राष्ट्र की विश्वसनीयता को भी प्रभावित करती है। जब बड़े देशों को अपने हितों के अनुसार अंतरराष्ट्रीय कानून तोड़ने की अनुमति मिलती है, जबकि छोटे देशों को कठोर प्रतिबंधों और नियमों का पालन करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो एक "दोहरे मानक" की धारणा पैदा होती है। यह स्थिति अंतरराष्ट्रीय न्याय व्यवस्था में असंतुलन को और गहरा करती है। इन सभी चुनौतियों के बीच भी संयुक्त राष्ट्र पूरी तरह अप्रासंगिक नहीं है। यह अभी भी वैश्विक संवाद, संघर्ष समाधान, मानवाधिकार संरक्षण और विकास सहयोग का प्रमुख मंच है। किंतु यह तभी प्रभावी हो सकता है जब महाशक्तियों की राजनीति सीमित हो, शक्ति-संतुलन न्यायसंगत हो और निर्णय-निर्माण अधिक लोकतांत्रिक बने।

संयुक्त राष्ट्र का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि यह संस्था किस प्रकार बदलती वैश्विक व्यवस्था, उभरती तकनीकों, नए सुरक्षा जोखिमों, आर्थिक असमानताओं, जलवायु संकट और भू-राजनीतिक तनावों के प्रति स्वयं को अनुकूलित करती है। 21वीं सदी का विश्व पहले की तुलना में कहीं अधिक जटिल, बहुध्रुवीय और परस्पर निर्भर हो चुका है।[20] ऐसे में एक ऐसी वैश्विक संस्था की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है जो बहुपक्षीय संवाद, सामूहिक कार्रवाई और न्यायपूर्ण व्यवस्था का आधार बन सके। परंतु संयुक्त राष्ट्र अपनी वर्तमान संरचना के साथ यह भूमिका सीमित रूप से ही निभा पा रहा है। यही कारण है कि उसके भविष्य की संभावनाओं को समझने के लिए सुधार, आधुनिकीकरण और वैश्विक शासन के वैकल्पिक मॉडलों पर गंभीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक है।

सुरक्षा परिषद में सुधार संयुक्त राष्ट्र के भविष्य का सबसे केंद्रीय मुद्दा है। वर्तमान संरचना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की शक्ति-संतुलन को दर्शाती है, जबकि आज की दुनिया पूरी तरह भिन्न है। भारत जैसे बड़े लोकतंत्र, ब्राजील जैसे उभरते आर्थिक शक्ति, जर्मनी और जापान जैसे अग्रणी आर्थिक राष्ट्र तथा अफ्रीका का प्रतिनिधित्व न होना इस संस्था की विश्वसनीयता को कमजोर करता है। सुधार की सबसे बड़ी बाधा P5 देशों की राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव है, क्योंकि वे नहीं चाहते कि अपने विशेषाधिकार साझा करें। यदि संयुक्त राष्ट्र को भविष्य में प्रभावी बनना है, तो स्थायी सदस्यों की संख्या बढ़ाने और वीटो अधिकार को सीमित या चरणबद्ध रूप से समाप्त करने पर वैश्विक सहमति बनानी होगी।

डिजिटल गवर्नेंस 21वीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता बन चुका है। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बिग डेटा, साइबर सुरक्षा, सोशल मीडिया और डिजिटल निगरानी ने वैश्विक राजनीति की प्रकृति बदल दी है। इससे गोपनीयता, सुरक्षा, नैतिकता, गलत सूचना और मानवाधिकार से जुड़े नए प्रश्न पैदा हुए हैं। संयुक्त राष्ट्र अब तक इन मुद्दों पर व्यवस्थित और ठोस वैश्विक नियम बनाने में सफल नहीं हो पाया है। AI और डिजिटल तकनीक पर वैश्विक शासन की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, क्योंकि यह तकनीक भविष्य की शक्ति-संरचना को निर्धारित करेगी। संयुक्त राष्ट्र को एक वैश्विक डिजिटल समझौता (Global Digital Compact) की ओर कदम बढ़ाने की तत्काल आवश्यकता है।कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में वैश्विक प्रतिस्पर्धा तेज हो चुकी है। अमेरिका, चीन और यूरोप AI तकनीक में अग्रणी हैं, और उनके बीच रणनीतिक प्रतिस्पर्धा वैश्विक राजनीति को प्रभावित कर रही है। AI का दुरुपयोग-जैसे सैन्य स्वचालन, निगरानी, डीप फेक, साइबर युद्ध और पक्षपाती एल्गोरिदम-वैश्विक जोखिमों को बढ़ा रहा है। इस क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका तभी प्रभावी हो सकती है जब वह तकनीकी विशेषज्ञता, नैतिक दिशानिर्देश और अंतरराष्ट्रीय नियमन के विकास में सक्रिय भूमिका निभाए।

साइबर सुरक्षा संयुक्त राष्ट्र के लिए एक और बड़ा चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है। राज्य प्रायोजित साइबर हमले, हैकिंग, डेटा चोरी, महत्वपूर्ण अवसंरचनाओं पर डिजिटल हमले और साइबर आतंकवाद नए प्रकार के संघर्षों को जन्म दे रहे हैं। पारंपरिक युद्ध के विपरीत, साइबर युद्ध बिना किसी स्पष्ट हमलावर के भी हो सकता है, जिससे जिम्मेदारी तय करना कठिन हो जाता है। संयुक्त राष्ट्र अब तक एक व्यापक साइबर शांति ढाँचा (साइबर पीस फ्रेमवर्क) विकसित नहीं कर पाया है। भविष्य की वैश्विक सुरक्षा साइबर-सुरक्षा के नियमों और जिम्मेदारियों के निर्धारण पर निर्भर करेगी। जलवायु संकट संयुक्त राष्ट्र के भविष्य को निर्धारित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है। जलवायु परिवर्तन को रोकने और अनुकूलन में वैश्विक असफलता दुनिया भर में आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक अस्थिरता को बढ़ा रही है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित ब्ब्च सम्मेलनों में वैज्ञानिक चेतावनियों, समाधान योजनाओं और वित्तीय सहयोग पर चर्चा होती है, किंतु इनका क्रियान्वयन अक्सर राजनीतिक इच्छाशक्ति और आर्थिक प्रतिस्पर्धा के कारण धीमा पड़ जाता है। यदि पेरिस समझौते के लक्ष्य पूरे नहीं हुए, तो वैश्विक तापमान में बढ़ोतरी मानव सभ्यता के लिए गंभीर खतरा बन सकती है।

21वीं सदी में नए वैश्विक संस्थानों का उभार संयुक्त राष्ट्र की प्रभावशीलता को चुनौती दे रहा है। G20, BRICS, SCO, AIIB, ASEAN और अफ्रीकी संघ जैसी संस्थाएँ वैश्विक शासन में नई भूमिकाएँ निभा रही हैं। ये संस्थाएँ अधिक क्षेत्रीय और आर्थिक हितों पर आध

ारित हैं, और कई मामलों में संयुक्त राष्ट्र की तुलना में अधिक तेज और व्यवहारिक निर्णय लेती हैं। विशेष रूप से G20 की बढ़ती भूमिका ने यह प्रश्न खड़ा किया है कि क्या संयुक्त राष्ट्र वैश्विक नेतृत्व के केंद्र में बना रहेगा या नहीं। यदि संयुक्त राष्ट्र स्वयं को सुधार नहीं करता, तो वैश्विक शासन का केंद्र धीरे-धीरे क्षेत्रीय और वैकल्पिक मंचों की तरफ खिसक सकता है। मानवीय संकटों के बढ़ते स्वरूप जैसे शरणार्थी संकट, महामारी, युद्ध, जलवायु आपदाएँ और आर्थिक गिरावट ने संयुक्त राष्ट्र को अधिक लचीला, प्रभावी और त्वरित प्रतिक्रिया वाली संस्था बनने की चुनौती दी है। आज आवश्यकता है कि संयुक्त राष्ट्र पूर्व चेतावनी प्रणाली, आपदा प्रतिक्रिया तंत्र, और मानवीय सहायता संरचना को तकनीक-सक्षम और संसाधन-संपन्न बनाए।संयुक्त राष्ट्र का भविष्य आशा और चुनौतियों के मिश्रण से भरा है। यह संस्था अभी भी वैश्विक वैधता, संसाधनों और संस्थागत अनुभव के आधार पर सबसे महत्त्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय संगठन है। किंतु यदि यह सुधार नहीं करता, तो इसका महत्व घटता जाएगा। सुधार, आधुनिकीकरण और बहुपक्षीय सहयोग के नए मॉडल संयुक्त राष्ट्र को जीवंत और प्रासंगिक बनाए रखने के लिए अनिवार्य हैं।

निष्कर्ष :

वर्तमान विश्व व्यवस्था निरंतर परिवर्तन, तकनीकी प्रगति, भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, आर्थिक असमानता और बढ़ते वैश्विक संकटों से घिरी हुई है। ऐसे समय में संयुक्त राष्ट्र संघ का भविष्य विश्व समुदाय की सामूहिक इच्छाशक्ति, संरचनात्मक सुधारों की तत्परता और बहुपक्षीय सहयोग पर निर्भर करता है। शांति स्थापना, वैश्विक सुरक्षा, मानवाधिकार संरक्षण और संघर्ष समाधान में UN की पारंपरिक भूमिका आज गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है विशेषकर सुरक्षा परिषद की निष्क्रियता और बड़ी शक्तियों के वर्चस्व के कारण। रूस - यूक्रेन युद्ध, गाजा संकट, सीरिया और सूडान जैसे मामलों में इसकी सीमाएँ स्पष्ट दिखाई देती है।इसके विपरीत, सतत विकास, जलवायु कार्रवाई, वैश्विक स्वास्थ्य सुरक्षा, मानवीय सहायता और शिक्षा-बाल संरक्षण के क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र अभी भी सबसे प्रभावी वैश्विक मंच है। SDGs, WHO, UNICEF, UNEP और UNDP की पहलकदमियाँ यह संकेत देती हैं कि विकास और मानवीय मुद्दों में न्छ की भूमिका भविष्य में और भी अधिक महत्वपूर्ण होगी। 21वीं सदी की नई चुनौतियाँ जैसे साइबर सुरक्षा, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, डिजिटल गवर्नेंस, जैविक जोखिम और क्षेत्रीय संगठनों का उभार-संयुक्त राष्ट्र के व्यापक आधुनिकीकरण की माँग करते हैं। यदि यह संस्था निर्णय-प्रक्रिया को अधिक लोकतांत्रिक बनाते हुए सुरक्षा परिषद का पुनर्गठन, वेटो सुधार और वैश्विक दक्षिण की बढ़ती भूमिका को स्वीकार करती है, तो उसका भविष्य मजबूत और प्रासंगिक रहेगा। सार रूप से, संयुक्त राष्ट्र का भविष्य उसके अनुकूलन, सुध ार और वैश्विक विश्वास को पुनः स्थापित करने की क्षमता पर निर्भर करता है।

सन्दर्भ सूची :

1 शेखर, सी.(2018), अंतरराष्ट्रीय राजनीति : सिद्धांत एवं व्यवहार, मैकमिलन इंडिया, नई दिल्ली, , पृ. 412-415
2 पाल्मर, एन. डी. एवं पर्किन्स, एच. सी. (2016),अंतरराष्ट्रीय संबंध (हिंदी अनुवाद), पीयरसन, नई दिल्ली, पृ. 528
3 बोस, सुधीर (2019),वैश्विक राजनीति एवं संयुक्त राष्ट्र,नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 145
4 बोस, सुधीर (2019), वैश्विक राजनीति एवं संयुक्त राष्ट्र, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 233-235
5 शेखर, सी. (2020), अंतरराष्ट्रीय राजनीति : बदलती वैश्विक व्यवस्था, नई दिल्ली, मैकमिलन इंडिया, पृ. 301-303
6 खुराना, वी. एन. (2021), संयुक्त राष्ट्र एवं समकालीन वैश्विक चुनौतियाँ, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस, पृ. 172
7 बोस, सुधीर (2019), वैश्विक राजनीति एवं संयुक्त राष्ट्र, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 32-33
8 तथैव,पृ. 78-79
9 तथैव,पृ. 104
10 थरूर, शशि (2018), संयुक्त राष्ट्र में भारत की भूमिका, नई दिल्ली, पेंगुइन पब्लिकेशंस, पृ. 112-115
11 कुमार, सतीश (2017), वैश्विक राजनीति और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 89
12 कुमार, सतीश (2017), संयुक्त राष्ट्र और सुरक्षा परिषद में सुधार, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 102-105
13 अफ्रीकी संघ (2005), यूनाइटेड नेशन्स सुरक्षा परिषद में सुधार पर एजुलविनी सर्वसम्मति, अदीस अबाबा, अफ्रीकी संघ दस्तावेज
14 कुमार, सतीश (2017), संयुक्त राष्ट्र प्रणाली एवं सुरक्षा परिषद सुधार, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 110
15 शर्मा, राजीव (2020), वर्तमान वैश्विक व्यवस्था और संयुक्त राष्ट्र की चुनौतियाँ, नई दिल्ली, ज्ञानदीप प्रकाशन, पृ. 45
16 सिंह, अनुराधा (2021), 21वीं सदी में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका, वाराणसी, लोकवाणी प्रकाशन, पृ. 88
17 वर्मा, अजय कुमार (2019), अंतरराष्ट्रीय संगठन और बदलती विश्व राजनीति, जयपुर, नवभारत पब्लिशर्स, पृ. 121
18 संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (2015), मानव विकास रिपोर्ट, न्यूयॉर्क, UNDP, पृ. 21-27
19 संयुक्त राष्ट्र (1945), संयुक्त राष्ट्र चार्टर, अध्याय पाँच, अनुच्छेद 27
20 मिश्रा, दीपक (2021), नव-विश्व व्यवस्था, बहुध्रुवीयता और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ, लखनऊ, प्रगतिशील प्रकाशन, पृ. 88

ई.- गवर्नेंस और नागरिक सेवा वितरण में पारदर्शिता की भूमिका

स्वीटी गुप्ता

(असिस्टेंट प्रोफेसर) राजनीति विज्ञान विभाग, गया कॉलेज, गया जी, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

शोध आलेख का सारतत्व :

ई-गवर्नेंस आज भारत में प्रशासनिक सुधारों का प्रमुख आधार बन चुका है। यह केवल तकनीकी परिवर्तन नहीं बल्कि शासन में पारदर्शिता, जवाबदेही और दक्षता बढ़ाने की एक संरचनात्मक प्रक्रिया है। डिजिटल इंडिया अभियान, ऑनलाइन सेवा पोर्टल, मोबाइल एप्लिकेशन, आधार आधारित प्रमाणीकरण तथा सार्वजनिक शिकायत निवारण प्रणालियाँ नागरिक सेवा वितरण को अधिक सरल और पारदर्शी बना रही हैं। पहले जहाँ सेवाएँ प्राप्त करने में समय, श्रम और भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ आम थीं, वहीं अब डिजिटल प्लेटफॉर्म इन चुनौतियों को काफी हद तक कम कर रहे हैं। ई-गवर्नेंस का सबसे बड़ा प्रभाव पारदर्शिता में वृद्धि के रूप में दिखाई देता है। सेवा संबंधी सभी चरण-आवेदन, दस्तावेज सत्यापन, स्थिति ट्रैकिंग और सेवा प्राप्ति-ऑनलाइन होने से अधिकारी के मनमाने हस्तक्षेप की संभावना घटती है। इसके साथ ही ट्रू पोर्टल, ऑनलाइन भुगतान, डिजिटल रिकॉर्ड और स्वतः उत्पन्न रसीदें नागरिकों को सेवा प्रक्रिया का स्पष्ट डिजिटल प्रमाण प्रदान करती है। नागरिक सेवा वितरण में पारदर्शिता से सरकार के प्रति जनता के भरोसे में वृद्धि होती है। इससे प्रशासनिक निर्णय अधिक तर्कसंगत और डेटा-आधारित होते हैं। डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट पहुंच, साइबर सुरक्षा और डेटा गोपनीयता जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, परंतु इनके समाधान हेतु सरकार निरंतर सुधार की दिशा में कार्य कर रही है। समग्र रूप से देखा जाए तो ई-गवर्नेंस पारदर्शी, उत्तरदायी और नागरिक-केंद्रित प्रशासन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

कीवर्ड्स : ई-गवर्नेंस, पारदर्शिता, नागरिक सेवा, डिजिटल इंडिया, ऑनलाइन पोर्टल, RTI, जवाबदेही, डिजिटल रिकॉर्ड, शिकायत निवारण, तकनीकी सुधार, सेवा वितरण, डेटा आधारित निर्णय, साइबर सुरक्षा, इंटरनेट पहुंच, मोबाइल एप्स, आधार प्रमाणीकरण, सार्वजनिक प्रशासन, डिजिटल प्रमाण, भ्रष्टाचार नियंत्रण, ई-सेवाएँ, सुशासन, दक्षता, प्रशासनिक सुधार, नागरिक सहभागिता, उत्तरदायित्व आदि।

प्रस्तावना :

ई-गवर्नेंस आधुनिक प्रशासनिक ढांचे का वह रूप है जिसमें सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का उपयोग करते हुए शासन की पारंपरिक प्रक्रियाओं को तेज, सरल, पारदर्शी और नागरिक-केंद्रित बनाया जाता है। इंटरनेट, कंप्यूटर, मोबाइल, डेटा प्रबंधन प्रणाली और डिजिटल पहचान जैसे साधन इसमें केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। ई-गवर्नेंस का मूल भाव यह है कि शासन और नागरिक के बीच की दूरी कम हो, सेवाएँ नागरिक तक बिना बाधा और बिना बिचौलिए के पहुँचें और सरकारी कामकाज में दक्षता, ईमानदारी और उत्तरदायित्व स्थापित हो। यह केवल तकनीकी बदलाव का माध्यम नहीं है, बल्कि शासन की सोच और उसकी कार्यप्रणाली में व्यापक परिवर्तन का प्रतीक है, जहाँ पारंपरिक कागजी व कार्यालय-आधारित प्रक्रिया की जगह डिजिटल और त्वरित प्रक्रिया अपनाई जाती है।

ई-गवर्नेंस की अवधारणा विश्व में 1990 के दशक के बाद तेजी से उभरी जब इंटरनेट का प्रसार बढ़ा और सूचना प्रौद्योगिकी को शासन सुधार के साथ जोड़कर देखने की आवश्यकता महसूस की गई। विकसित देशों में यह परिवर्तन तुलनात्मक रूप से जल्दी आया, परंतु विकासशील देशों ने भी शीघ्र ही समझ लिया कि प्रशासनिक अक्षमता को दूर करने और जनता तक सेवाओं को कुशलतापूर्वक पहुँचाने में डिजिटल तकनीक अत्यंत प्रभावी भूमिका निभा सकती है। भारत में ई-गवर्नेंस का विचार 1980 के दशक में कंप्यूटराइजेशन की शुरुआती पहल के साथ उभरना शुरू हुआ।[1] प्रारंभिक चरण में सरकारी विभागों में कंप्यूटरों का उपयोग आंकड़े तैयार करने, रिकॉर्ड सुरक्षित रखने और कार्यालयीन दस्तावेजों को डिजिटाइज करने तक सीमित था, परंतु क्रमशः यह समझ बढ़ी कि तकनीक के माध्यम से शासन की संरचना को व्यापक रूप से परिवर्तित किया जा सकता है। कंप्यूटराइज्ड रेलवे रिजर्वेशन सिस्टम जैसे उदाहरणों ने यह दिखाया कि प्रशासनिक जटिलताओं को डिजिटल माध्यम से सरल बनाया जा सकता है और जनता तक सेवाएँ तेजी से पहुँचाई जा सकती हैं।

1990 के दशक के अंत और 2000 के दशक में ई-गवर्नेंस की दिशा में भारत ने कई संगठित कदम उठाए। राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र ने विभिन्न राज्यों में कंप्यूटर नेटवर्क स्थापित किए और सरकारी विभागों को तकनीकी सहायता प्रदान की। इसी दौरान कई राज्यों ने अपने स्तर पर ई-गवर्नेंस परियोजनाएँ प्रारंभ कीं, जैसे आंध्र प्रदेश का CARD प्रोजेक्ट, कर्नाटक का 'बोर्न' प्रोजेक्ट, गुजरात का 'स्वर्णिम गुजरात नेटवर्क', राजस्थान का 'ई-मित्र', और मध्य प्रदेश का 'ग्यारोह' मॉडल।[2] ये सभी परियोजनाएँ इस बात के उदाहरण बनीं कि राज्य किस प्रकार नवाचार के आधार पर ई-गवर्नेंस को आगे बढ़ा सकते हैं। वर्ष 2006 में भारत सरकार ने राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना

की शुरुआत की, जो देश भर में ई-गवर्नेंस को एक समान ढांचे में लागू करने की निर्णायक पहल थी। इस योजना के अंतर्गत विभिन्न मिशन मोड प्रोजेक्ट तैयार किए गए, जिनमें भूमि रिकॉर्ड संशोधन, पंचायती राज प्रणाली, पासपोर्ट सेवाएँ, आयकर, बैंकिंग, पोस्टल सेवाएँ, नगरपालिका व्यवस्था और परिवहन व्यवस्था जैसी सेवाओं का डिजिटलीकरण शामिल था। इसका उद्देश्य था कि राज्यों और केंद्र सरकार में तकनीकी क्षमताओं को मजबूती मिले और नागरिकों के लिए सेवाओं का एकीकृत डिजिटल इकोसिस्टम विकसित हो।

भारत में ई-गवर्नेंस को सबसे बड़ी गति वर्ष 2014 के बाद मिली जब 'डिजिटल इंडिया' कार्यक्रम को व्यापक स्तर पर लागू किया गया।[3]

इस कार्यक्रम ने ई-गवर्नेंस को केवल सरकारी विभागों तक सीमित रखने के बजाय इसे जन-सहभागिता वाले डिजिटल परिवर्तन के रूप में प्रस्तुत किया। डिजिटल इंडिया ने तीन प्रमुख उद्देश्यों को सामने रखा-डिजिटल अवसंरचना को हर नागरिक तक पहुँचाना, सरकारी सेवाओं को ऑनलाइन उपलब्ध कराना और नागरिकों को डिजिटल रूप से सशक्त बनाना। इस अभियान के अंतर्गत भारत नेट परियोजना द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों तक ब्रॉडबैंड पहुँच बढ़ाई गई, कॉमन सर्विस सेंटरों की संख्या में विस्तार किया गया, डिजिटल भुगतान को बढ़ावा दिया गया, और मोबाइल सेवाओं के माध्यम से नागरिकों तक महत्वपूर्ण सूचनाएँ पहुँचाने की व्यवस्था सुदृढ़ की गई। आधार आधारित प्रमाणीकरण ने ई-गवर्नेंस को नई विश्वसनीयता प्रदान की, क्योंकि इसके माध्यम से नागरिकों की पहचान सत्यापित करना और लाभों का प्रत्यक्ष हस्तांतरण संभव हुआ।

डिजिटल इंडिया के अंतर्गत डिजिलॉकर, ई-हॉस्पिटल, ई-वे बिल, उमंग ऐप, ई-नाम, भीम-यूपीआई और आधार आधारित सेवाओं की व्यापकता ने प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल किया। सरकारी फाइलों को निपटाने के लिए ई-ऑफिस प्रणाली शुरू की गई जिससे कागजी कार्यवाही का समय घटा और निर्णय लेने की गति में वृद्धि हुई। शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, बैंकिंग, सामाजिक कल्याण, कराधान और परिवहन जैसे क्षेत्रों में ई-गवर्नेंस ने पारदर्शिता और दक्षता सुनिश्चित की। आज नागरिक मोबाइल फोन या कंप्यूटर से विभिन्न प्रकार की सेवाओं का लाभ उठा सकते हैं, चाहे वह राशन कार्ड की स्थिति जानना हो, ऑनलाइन आवेदन करना हो या डिजिटल भुगतान करना हो।[4]

ई-गवर्नेंस की इस विकास यात्रा ने भारत में शासन के स्वरूप को गहराई से बदल दिया है। यह केवल सरकारी तंत्र का तकनीकी आधुनिकीकरण नहीं, बल्कि प्रशासन की मानसिकता में बदलाव की प्रक्रिया है। इसका केंद्रीय लक्ष्य नागरिकों को सेवाओं का अधिकारसंपन्न, सरल और समयबद्ध लाभ उपलब्ध कराना है। भारत में ई-गवर्नेंस की निरंतर प्रगति यह संकेत देती है कि आने वाले वर्षों में शासन व्यवस्था और अधिक डिजिटल, नागरिकोन्मुख और डेटा-संचालित होगी।

भारत में नागरिक सेवा वितरण की पारंपरिक व्यवस्था लंबे समय तक मैनुअल और कार्यालय-आधारित ढांचे पर निर्भर रही, जिसमें प्रक्रियाएँ जटिल, समय-साध्य और अपारदर्शी थीं। इस व्यवस्था की मूल समस्या यह थी कि सेवाओं तक पहुँच नागरिकों के लिए अत्यंत कठिन थी और सरकारी विभागों के बीच समन्वय की कमी के कारण सामान्य कार्य भी लंबे समय तक लंबित रहते थे। नागरिक को किसी भी साधारण सेवा-जैसे प्रमाण पत्र, लाइसेंस, राशन कार्ड, पेंशन, आय प्रमाणपत्र, भूमि रिकॉर्ड की प्रति या किसी योजना के लिए आवेदन-के लिए सरकारी कार्यालयों के चक्कर लगाने पड़ते थे।[5] कई बार उन्हें विभिन्न काउंटरों पर अलग-अलग अधिकारियों से अनुमोदन लेना पड़ता था, जिसके कारण न केवल समय नष्ट होता था, बल्कि आर्थिक और मानसिक दोनों प्रकार की परेशानियाँ बढ़ती थीं।पारंपरिक प्रणाली में सूचनाओं और दस्तावेजों का आदान-प्रदान कागजी फाइलों के माध्यम से होता था। फाइलें एक टेबल से दूसरी टेबल तक पहुंचने में कई दिन लगा देती थीं। यदि अधिकारी अनुपस्थित हो जाते, तब प्रक्रिया और अधिक लंबी हो जाती। इस व्यवस्था में व्यक्तिगत विवेक, हस्तलिखित अनुमोदन और मानवीय त्रुटियों की संभावना अधिक होती थी। कई बार रिकॉर्ड गुम हो जाते थे, गलत प्रविष्टियाँ हो जाती थीं, या दस्तावेजों की प्रतियां उपलब्ध नहीं रहती थीं, जिससे नागरिक को नई प्रक्रिया शुरू करनी पड़ जाती थी। इस प्रकार की जटिलता दबाव, भ्रांतियाँ और अनावश्यक देरी को बढ़ावा देती थी।पारंपरिक नागरिक सेवा वितरण व्यवस्था में एक बड़ी चुनौती भ्रष्टाचार की व्यापकता थी। चूँकि प्रक्रिया मैनुअल थी और नागरिक को सेवा प्राप्त करने के लिए कई स्तरों पर निर्भर रहना पड़ता था,[6] इसलिए बिचौलियों का प्रभाव बढ़ गया। कई मामलों में लोग काम को जल्दी कराने के लिए रिश्वत देने को मजबूर होते थे या बिचौलियों की सेवाओं का उपयोग करते थे। इससे न केवल प्रशासन की विश्वसनीयता कम होती थी, बल्कि नागरिक और शासन के बीच विश्वास का संकट भी उत्पन्न होता था। प्रशासन में जवाबदेही की कमी के कारण नागरिक यह नहीं समझ पाते थे कि उनका काम किस कारण लंबित है और इसकी जिम्मेदारी किस अधिकारी पर है।

पारदर्शिता की कमी भी पारंपरिक व्यवस्था की प्रमुख समस्या थी। नागरिक अपने आवेदन की स्थिति नहीं जान पाते थे। कहीं भी यह डिजिटल रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं होता था कि आवेदन किस चरण में है, कौन सा अधिकारी उसकी समीक्षा कर रहा है, और कब तक कार्य पूरा हो सकता है। इस अपारदर्शिता के कारण सूचना का असमान वितरण होता था, और अधिकारी नागरिकों की अज्ञानता का लाभ उठाकर अनुचित लाभ प्राप्त कर लेते थे। कई बार नागरिक को अपने दस्तावेजों की मंजूरी या सेवा प्राप्त करने के लिए महीनों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इस व्यवस्था में सुविधा का अभाव विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक दिखाई देता था। वहां सरकारी कार्यालयों की दूरी अधिक थी, परिवहन सुविधाएँ सीमित थीं और साक्षरता का स्तर भी कम था जिससे सेवाओं तक पहुँच और कठिन

हो जाती थी।[7] ग्रामीण नागरिकों को शहरों में जाकर आवेदन करना पड़ता था, जिससे समय और धन दोनों का खर्च बढ़ता था। महिलाएँ, वृद्ध, गरीब और शारीरिक रूप से सक्षम न होने वाले नागरिक इस व्यवस्था में और भी अधिक वंचित रह जाते थे।

नागरिकों की कठिनाइयों का एक और स्रोत विभागों के बीच समन्वय का अभाव था। उदाहरण के लिए, एक नागरिक को किसी योजना का लाभ पाने के लिए आय प्रमाणपत्र, निवास प्रमाणपत्र और जाति प्रमाणपत्र की आवश्यकता होती थी, जो विभिन्न विभागों में बनते थे। एक विभाग की देरी या गलती से पूरा कार्य प्रभावित हो जाता था। इस प्रकार की निर्भरता और जटिलता से प्रशासन धीमा और अनुत्पादक बना रहता था।

फाइल आधारित प्रणाली का एक और दुष्परिणाम था डेटा विश्लेषण और नियोजन में बाधा। चूँकि रिकॉर्ड डिजिटल नहीं थे, इसलिए सरकारी विभागों के लिए यह जानना कठिन था कि कितने नागरिक किस सेवा का लाभ ले चुके हैं, किस क्षेत्र में कठिनाइयाँ अधिक हैं, और कौन सी योजना प्रभावी है। इस प्रकार की सूचनात्मक कमी नीति निर्माण और प्रशासनिक सुधार को प्रभावित करती थी। पारंपरिक व्यवस्था में कर्मचारी का बोझ भी अत्यधिक रहता था। दस्तावेजों की मैनुअल जांच, फाइलों को सुरक्षित रखना, रिकॉर्ड तैयार करना और अनुमोदन प्रक्रिया को संभालना कर्मचारियों के लिए समयसाध्य कार्य था। इस कारण वे नयी योजनाओं, नवाचारों या नागरिक-अनुकूल सुधारों पर ध्यान नहीं दे पाते थे। कार्यभार अधिक होने से त्रुटियाँ बढ़ती थीं और नागरिकों की शिकायतें भी बढ़ती थीं।[8] इन सभी समस्याओं ने यह स्पष्ट किया कि पारंपरिक नागरिक सेवा वितरण प्रणाली बदलते समय में प्रभावी नहीं रह सकती थी। नागरिकों की अपेक्षाएँ बढ़ रही थीं, शासन में पारदर्शिता की मांग गहरी हो रही थी और प्रशासनिक दक्षता के लिए नए उपाय आवश्यक हो गए थे। नागरिक अब चाहते थे कि सेवाएँ समय पर, आसानी से और बिना किसी बिचौलिये के उपलब्ध हों। यह आवश्यकता ई-गवर्नेंस के विकास के लिए आधार बनी। डिजिटल प्रणाली अपनाने से प्रक्रियाएँ सरल होती हैं, रिकॉर्ड सुरक्षित रहते हैं, आवेदन की स्थिति वास्तविक समय में उपलब्ध होती है और भ्रष्टाचार की संभावना कम होती है।

पारंपरिक प्रणाली की कमियों ने इस बात को स्थापित किया कि प्रशासनिक सुधार केवल प्रक्रियात्मक परिवर्तन का मामला नहीं है, बल्कि नागरिकों की गरिमा, अधिकारों और सुविधा से जुड़ा मामला है। ई-गवर्नेंस ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए नागरिक सेवा वितरण प्रणाली को आधुनिक, पारदर्शी और सुगम बनाने की दिशा में मार्ग प्रशस्त किया।

ई-गवर्नेंस की सफलता उसके तकनीकी आधार और उन घटकों पर निर्भर करती है जिनके माध्यम से नागरिकों तक सेवाएँ पहुँचती हैं। भारत में ई-गवर्नेंस का ढांचा व्यापक तकनीकी अवसंरचना, डिजिटल पहचान प्रणाली, ऑनलाइन पोर्टल, मोबाइल एप्लिकेशन, डिजिटल भुगतान प्रणाली, क्लाउड सेवाएँ, साइबर सुरक्षा और डेटा प्रबंधन जैसी अनेक तकनीकों पर आधारित है। इन तकनीकों का मुख्य उद्देश्य नागरिकों और शासन तंत्र के बीच सहज संपर्क स्थापित करना और सेवा प्राप्ति को सरल व पारदर्शी बनाना है।

ऑनलाइन पोर्टल ई-गवर्नेंस का सबसे बुनियादी और व्यापक रूप से उपयोग होने वाला घटक है। ये पोर्टल नागरिकों को विभिन्न सरकारी सेवाओं का एकीकृत मंच प्रदान करते हैं। आज नागरिक आय, जाति, निवास प्रमाणपत्र के लिए आवेदन, कर भुगतान, पेंशन की स्थिति, राशन कार्ड से संबंधित जानकारी, पासपोर्ट आवेदन, परिवहन सेवाएँ, भूमि रिकॉर्ड, जन कल्याण योजनाओं का पंजीकरण, बिजली-पानी बिल भुगतान और कई अन्य सेवाएँ ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं। इन पोर्टलों की विशेषता यह है कि नागरिकों को कार्यालय में उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं पड़ती और आवेदन की प्रक्रिया सरल तथा समयबद्ध होती है। इसके अलावा, डिजिटल रिकॉर्ड होने से अधिकारी नागरिक के दस्तावेजों की समीक्षा शीघ्र कर सकते हैं और निर्णय लेने में अनावश्यक विलंब समाप्त हो जाता है।

मोबाइल एप्लिकेशन ई-गवर्नेंस को आम नागरिक तक पहुँचाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। स्मार्टफोन के बढ़ते उपयोग ने सरकार को यह अवसर दिया कि वह सेवाओं को सीधे नागरिक के हाथ में पहुँचा सके।[9] उमंग ऐप इसका उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें अनेक विभागों की सेवाएँ एक ही प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध हैं। इसी प्रकार आधार ऐप, डिजिलॉकर ऐप, भीम-यूपीआई, आरोग्य सेतु, ई-हॉस्पिटल, ई-नाम और परिवहन सेवाओं से संबंधित ऐप नागरिकों को तत्काल और सरल सुविधाएँ प्रदान करते हैं। मोबाइल एप्लिकेशन उन नागरिकों तक पहुंच बढ़ाते हैं जो कंप्यूटर का उपयोग नहीं कर पाते परंतु स्मार्टफोन का सहज उपयोग करते हैं। इन ऐप्स ने शासन को अधिक समावेशी बनाया है और दूरदराज के क्षेत्रों तक सेवाएँ पहुंचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

आधार आधारित प्रमाणीकरण ई-गवर्नेंस के तकनीकी ढांचे का सबसे विश्वसनीय तत्व है। आधार बायोमेट्रिक पहचान पर आधारित है, जिससे नागरिक की पहचान की पुष्टि एक सेकंड में हो जाती है। इससे न केवल दस्तावेजों की जालसाजी कम होती है, बल्कि कल्याणकारी योजनाओं में लाभार्थियों की पहचान सटीक रूप से सुनिश्चित की जा सकती है। आधार प्रमाणीकरण ने डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर को मजबूत बनाया, जिससे सब्सिडी और सरकारी लाभ सीधे नागरिक के बैंक खाते में पहुँचते हैं और बिचौलियों की भूमिका समाप्त हो जाती है। यह तकनीक प्रशासनिक पारदर्शिता को बढ़ाती है और भ्रष्टाचार की संभावना कम करती है।

डिजिलॉकर ई-गवर्नेंस का एक अन्य महत्वपूर्ण घटक है जो नागरिकों को डिजिटल दस्तावेज प्राप्त करने और सुरक्षित रखने की सुविधा देता है। स्कूल, विश्वविद्यालय, परिवहन विभाग, पैन सेवा, बीमा कंपनियाँ और कई सरकारी संस्थाएँ अपने दस्तावेज डिजिलॉकर में जारी करती हैं। नागरिक इन दस्तावेजों का उपयोग पहचान पत्र, प्रमाण पत्र या अन्य आधिकारिक कार्यों में कर सकते हैं। इससे कागजी दस्तावेजों को साथ रखने की आवश्यकता नहीं रह जाती और दस्तावेजों के खोने या क्षतिग्रस्त होने की समस्या समाप्त होती है।

ई-ऑफिस प्रणाली प्रशासनिक प्रक्रियाओं को डिजिटल बनाकर कार्यालयों में दक्षता बढ़ाने का साधन है। इसमें फाइलें डिजिटल रूप से बनाई जाती हैं, अधिकारी डिजिटल हस्ताक्षर करते हैं और फाइलें एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी तक ऑनलाइन भेजी जाती हैं। इससे फाइल मूवमेंट में लगने वाला समय कम होता है और निर्णय लेने की प्रक्रिया तेज होती है। ई-ऑफिस से न केवल कार्य की गति बढ़ती है, बल्कि फाइल की स्थिति किसी भी समय देखी जा सकती है, जिससे उत्तरदायित्व भी बढ़ता है।

डिजिटल भुगतान प्रणाली ई-गवर्नेंस का आवश्यक हिस्सा बन चुकी है। भीम-यूपीआई, नेट बैंकिंग, डेबिट कार्ड, क्रेडिट कार्ड और वॉलेट के माध्यम से नागरिक सरकारी शुल्क, कर, बिल और अन्य भुगतान आसानी से कर सकते हैं। डिजिटल भुगतान ने नकद आधारित लेनदेन को कम किया है और भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाया है। इसके साथ ही सरकारी विभागों के लिए राजस्व संग्रह की प्रक्रिया अधिक व्यवस्थित और पारदर्शी बन गई है। क्लाउड कंप्यूटिंग और डेटा सेंटर ई-गवर्नेंस की तकनीकी रीढ़ हैं। इनके माध्यम से विभागों को सुरक्षित और स्केलेबल प्लेटफॉर्म मिलते हैं जिन पर डेटा स्टोर किया जा सकता है और विभिन्न सेवाएँ चलाई जा सकती हैं। क्लाउड व्यवस्था लागत कम करती है, डेटा सुरक्षा बढ़ाती है और सेवाओं को अधिक विश्वसनीय बनाती है। भारत सरकार का मेघराज क्लाउड इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल है जो विभागों को केंद्रीकृत क्लाउड सुविधाएँ उपलब्ध कराता है।

साइबर सुरक्षा ई-गवर्नेंस की अनिवार्य आवश्यकता है, क्योंकि डिजिटल सेवाओं पर निर्भरता बढ़ने के साथ-साथ साइबर जोखिम भी बढ़ते हैं। मजबूत एन्क्रिप्शन, मल्टी-फैक्टर प्रमाणीकरण, डेटा बैकअप, सुरक्षा ऑडिट और साइबर सुरक्षा नीति इस ढांचे को सुरक्षित बनाती है।[10] यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों के डेटा का दुरुपयोग न हो और सरकारी ढांचे की विश्वसनीयता बनी रहे। इन सभी घटकों और तकनीकों ने मिलकर ई-गवर्नेंस को भारत में एक प्रभावी, पारदर्शी और नागरिक-केंद्रित प्रणाली के रूप में विकसित किया है। यह तकनीकी ढांचा नागरिकों को सशक्त करता है, प्रशासन को आधुनिक बनाता है और शासन को अधिक उत्तरदायी तथा पारदर्शी बनाता है।

ई-गवर्नेंस ने शासन व्यवस्था में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए जिस प्रकार बदलाव किया है, वह आधुनिक प्रशासन की सबसे उल्लेखनीय उपलब्धियों में से एक माना जाता है। पारंपरिक व्यवस्था में सरकारी प्रक्रियाएं लंबे समय तक अपारदर्शी रहीं, जिसमें नागरिक न तो अपनी सेवा से जुड़े चरणों को देख पाते थे और न ही यह समझ पाते थे कि उनका आवेदन किस कारण रुका हुआ है। ई-गवर्नेंस ने इस स्थिति को पूरी तरह बदलते हुए सेवा ट्रैकिंग, ऑनलाइन आवेदन, डिजिटल रिकॉर्ड, रीयल-टाइम मॉनिटरिंग, स्वतः रसीद, ऑनलाइन भुगतान और आरटीआई पोर्टल जैसे कई साधनों के माध्यम से पारदर्शी शासन का नया ढांचा विकसित किया।[11] इन तकनीकों ने नागरिकों और शासन के बीच संचार को सीधा, खुला और जवाबदेह बनाया, जिसका प्रभाव भ्रष्टाचार कम होने, मनमानी रोकने और समयबद्ध सेवा सुनिश्चित करने के रूप में स्पष्ट दिखाई देता है।

सेवा ट्रैकिंग ई-गवर्नेंस का वह साधन है जिसने नागरिकों को अपनी सेवा की वास्तविक स्थिति जानने का अधिकार दिया। पहले नागरिक को यह नहीं पता होता था कि उसका आवेदन किस अधिकारी के पास है, कब तक उस पर कार्यवाही हो सकती है और निर्णय प्रक्रिया में कौन-कौन से चरण शामिल हैं। ई-गवर्नेंस प्लेटफॉर्म पर सेवा ट्रैकिंग ने इस अस्पष्टता को समाप्त कर दिया। अब नागरिक आवेदन करने के बाद तुरंत रसीद प्राप्त करता है और एक ट्रैकिंग नंबर मिलता है, जिसके माध्यम से वह ऑनलाइन अपने आवेदन की स्थिति देख सकता है। यह फीचर भ्रष्टाचार रोकने में अत्यंत प्रभावी साबित हुआ क्योंकि अधिकारी अब किसी भी आवेदन को अनावश्यक रूप से लंबित नहीं रख सकते। हर देरी का डिजिटल रिकॉर्ड बन जाता है, जिससे जवाबदेही स्वतः बढ़ जाती है।

ऑनलाइन आवेदन प्रणाली ने भी पारदर्शिता को मजबूत किया है। पहले आवेदन जमा करने के दौरान दस्तावेजों की जांच, फाइल बनाना और कार्यालयों में उनसे संबंधित प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाना पूरी तरह मानव-निर्भर और अपारदर्शी होता था।[12] कई बार नागरिकों को पता भी नहीं चलता था कि आवेदन सही तरीके से दर्ज हुआ या नहीं। ऑनलाइन आवेदन प्रणाली ने इस पूरी प्रक्रिया को कंप्यूटराइज्ड कर दिया और मानवीय हस्तक्षेप को काफी हद तक कम किया। अब आवेदन के साथ ही दस्तावेज स्वचालित रूप से अपलोड हो जाते हैं, विभागीय अधिकारियों के पास डिजिटल रूप में पहुंचते हैं और उनकी समीक्षा की स्थिति प्लेटफॉर्म पर अपडेट हो जाती है। इससे दस्तावेजों की हेरफेर, अनावश्यक बहानेबाजी और फाइलें गुम होने जैसी समस्याएं खत्म हो गई।

डिजिटल रिकॉर्ड ई-गवर्नेंस की पारदर्शिता में क्रांतिकारी भूमिका निभाता है। पहले रिकॉर्ड कागजी रूप में रखे जाते थे, जिससे न केवल उनका संरक्षण कठिन होता था, बल्कि छिपाने, गुम करने या बदलने की आशंका भी बनी रहती थी। डिजिटल रिकॉर्ड ने इन चुनौतियों को समाप्त किया।[13] अब राजस्व विभाग, नगर निगम, शिक्षा, परिवहन, स्वास्थ्य, कल्याण योजनाओं और न्यायिक विभाग में बड़ी मात्रा में डेटा सुरक्षित डिजिटल रूप में संग्रहीत है। इस डिजिटल डेटा को आसानी से खोजा, सत्यापित और साझा किया जा सकता है, जिससे निर्णय प्रक्रिया तेज और पारदर्शी होती है। डिजिटल रिकॉर्ड के कारण भ्रष्टाचार में कमी आई है क्योंकि किसी भी अनियमित या संदिग्ध परिवर्तन का लॉग सिस्टम में सुरक्षित रहता है और उसकी जवाबदेही तय की जा सकती है।

रीयल-टाइम मॉनिटरिंग ई-गवर्नेंस की सबसे प्रभावी उपलब्धियों में से एक है। सरकारी योजनाओं, परियोजनाओं और सेवा प्रक्रियाओं की निगरानी पहले फाइलों और रिपोर्टों के आधार पर की जाती थी, जिसमें वास्तविक स्थिति छिप जाती थी। ई-गवर्नेंस प्लेटफॉर्म पर रीयल-टाइम मॉनिटरिंग से न केवल उच्च स्तर के अधिकारी बल्कि नागरिक भी सेवाओं की प्रगति देख सकते हैं।[14] उदाहरण के लिए,

ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना में भुगतान की स्थिति से लेकर परिवहन विभाग में लाइसेंस आवेदन तक और स्वास्थ्य योजनाओं में लाभार्थियों की सूची तक, सभी डेटा ऑनलाइन देखा जा सकता है। यह खुलापन प्रशासन को अधिक जिम्मेदार बनाता है क्योंकि किसी भी प्रकार की देरी या अनियमितता तुरंत उजागर हो जाती है।

आरटीआई पोर्टल ने पारदर्शिता के क्षेत्र में एक नया युग स्थापित किया है। सूचना के अधिकार कानून के तहत नागरिक सरकारी सूचनाएं मांग सकते हैं, परंतु पहले यह प्रक्रिया पूरी तरह मैनुअल थी, जिससे आवेदन की स्थिति जानना कठिन था और जवाब मिलने में देरी होती थी। ई-गवर्नेंस ने आरटीआई प्रक्रिया को पूरी तरह डिजिटल किया। ऑनलाइन आरटीआई पोर्टल पर नागरिक आवेदन कर सकते हैं, शुल्क का डिजिटल भुगतान कर सकते हैं, आवेदन की स्थिति ट्रैक कर सकते हैं और जवाब ऑनलाइन प्राप्त कर सकते हैं। इससे पारदर्शिता बढ़ी और जानकारी प्राप्त करना अधिक आसान, सुलभ और समयबद्ध हुआ। स्वत: रसीद और डिजिटल भुगतान प्रणाली ने भी पारदर्शिता को बढ़ाया है। पहले रसीद बनाने में अधिकारियों द्वारा देरी या हेरफेर की संभावना रहती थी। डिजिटल प्रणाली में भुगतान होते ही तुरंत ऑनलाइन रसीद उत्पन्न होती है जो नागरिक के ईमेल या मोबाइल पर भेज दी जाती है। इससे न केवल राजस्व संग्रह में पारदर्शिता बढ़ी, बल्कि नागरिकों को यह भरोसा मिला कि उनका भुगतान सही जगह पहुंचा है। इन सभी सुधारों के कारण शासन में जवाबदेही बढ़ी और भ्रष्टाचार में उल्लेखनीय कमी आई। जब आवेदन की प्रगति सभी के लिए दृश्य होती है, रिकॉर्ड डिजिटल रूप में सुरक्षित रहते हैं, भुगतान ऑनलाइन होता है, और जानकारी प्राप्त करने के साधन खुली पहुंच में उपलब्ध होते हैं, तब अधिकारियों के लिए मनमानी करना कठिन हो जाता है। ई-गवर्नेंस ने शासन की मानसिकता को भी प्रभावित किया है। अधिकारी अब समयबद्ध कार्यवाही करने को बाध्य होते हैं, और नागरिक की संतुष्टि शासन का मुख्य सूचकांक बन चुकी है। इस प्रकार ई-गवर्नेंस ने पारदर्शिता, ईमानदारी और जवाबदेही को संस्थागत रूप दिया है, जो आधुनिक लोकतांत्रिक शासन की आधारशिला है।

ई-गवर्नेंस ने नागरिक सेवा वितरण के ढांचे को जिस प्रकार रूपांतरित किया है, वह भारत के प्रशासनिक इतिहास में महत्वपूर्ण परिवर्तन माना जाता है। पहले नागरिकों को छोटी से छोटी सेवा प्राप्त करने के लिए कई कार्यालयों के चक्कर लगाने पड़ते थे, लंबी कतारों में खड़ा रहना पड़ता था और कई स्तरों पर अधिकारियों के निर्णय का इंतजार करना पड़ता था। ई-गवर्नेंस ने इस स्थिति को बदलते हुए सेवाओं को गति, सुलभता, कम लागत, ग्रामीण पहुंच, समयबद्धता और संतुष्टि के साथ उपलब्ध कराया है।[15] इसके प्रभाव का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि डिजिटल तकनीक ने नागरिकों के जीवन पर गहरा सकारात्मक प्रभाव डाला है। पहला बड़ा प्रभाव सेवा की गति में वृद्धि के रूप में देखा जा सकता है। ऑनलाइन पोर्टल, डिजिटल रिकॉर्ड, स्वचालित डेटा सत्यापन, फाइल ट्रैकिंग और ई-ऑफिस जैसी तकनीकों के कारण आवेदन से लेकर सेवा प्राप्त करने तक लगने वाला समय काफी कम हो गया है। उदाहरण के लिए, जहां पहले पासपोर्ट बनाने में महीनों लगते थे, आज ऑनलाइन ट्रैकिंग और सत्यापन के माध्यम से यह प्रक्रिया कुछ दिनों में पूरी हो जाती है। आय, जाति, निवास प्रमाणपत्र जैसे दस्तावेज जिन्हें पहले बनवाने में लंबा समय लगता था, अब कई राज्यों में कुछ ही दिनों में उपलब्ध हो जाते हैं। सेवा की गति बढ़ने से नागरिकों के समय की बचत होती है और प्रशासन पर दबाव भी कम होता है।

ई-गवर्नेंस ने सेवा की सुलभता बढ़ाने में भी ऐतिहासिक भूमिका निभाई है। पहले नागरिकों को सरकारी कार्यालयों की भौतिक दूरी को पार करना पड़ता था। ग्रामीण इलाकों में रहने वाले नागरिकों के लिए जिला मुख्यालय तक पहुंचना महंगा और कठिन दोनों होता था। अब मोबाइल ऐप, ऑनलाइन पोर्टल और कॉमन सर्विस सेंटरों के माध्यम से सेवाएँ घर बैठे या गांव में ही प्रदान की जा रही हैं। उमंग ऐप, डिजिलॉकर, परिवहन सेवाएँ, स्वास्थ्य से संबंधित ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन और ई-नाम जैसी सेवाओं ने नागरिकों की सुविधा को अत्यंत बढ़ाया है। इससे विशेष रूप से महिलाओं, वृद्धों, विकलांग नागरिकों और गरीब तबकों को बड़ा लाभ मिला है।

लागत में कमी भी ई-गवर्नेंस की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। पहले एक नागरिक को आवेदन करने, दस्तावेज की प्रतियां बनवाने, कार्यालय तक आने-जाने और कभी-कभी बिचौलियों को भुगतान करने तक कई प्रकार का खर्च वहन करना पड़ता था। अब ऑनलाइन आवेदन और डिजिटल दस्तावेज इन खर्चों में काफी कटौती करते हैं। डिजिलॉकर में उपलब्ध दस्तावेजों का उपयोग मुफ्त है, जिससे प्रमाणपत्रों को बार-बार प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। डिजिटल भुगतान से नकद लेन-देन की जटिलताएँ और खर्च भी समाप्त हुए हैं। इसके अलावा सरकार के लिए भी संसाधनों की बचत होती है क्योंकि कागज, मुद्रण, डाक, भंडारण और मानवशक्ति पर खर्च कम हो जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में ई-गवर्नेंस का प्रभाव और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि पहले वहां सेवा वितरण में बाधाएँ अधिक थीं। कॉमन सर्विस सेंटरों की स्थापना ने गांवों में डिजिटल सेवाओं की पहुंच को बढ़ाया और डिजिटल डिवाइड को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आधार आधारित सत्यापन ने ग्रामीण नागरिकों के लिए पहचान प्रमाण की समस्या को सरल किया। डिजिटल भुगतान और बैंकिंग सेवाओं की उपलब्धता ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को अधिक संगठित किया।[16] कृषि मंडियों के लिए ई-नाम प्लेटफॉर्म ने किसानों को बाजार दरों की पारदर्शी जानकारी दी और उन्हें बिचौलियों पर निर्भरता कम करने में मदद की। ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं में ई-हॉस्पिटल और टेलिमेडिसिन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

नागरिक संतुष्टि ई-गवर्नेंस के प्रभाव का प्रत्यक्ष संकेतक है। जब सेवाएँ समय पर प्राप्त होती हैं, प्रक्रिया सरल होती है, भुगतान सुरक्षित होता है, दस्तावेज खोने का डर नहीं होता और जानकारी आसानी से उपलब्ध होती है, तब नागरिक का अनुभव सकारात्मक

होता है। कई सर्वेक्षण यह दर्शाते हैं कि ऑनलाइन सेवाओं का उपयोग करने वाले नागरिकों का संतोष स्तर पारंपरिक सेवा लेने वालों की तुलना में कहीं अधिक है। इसके कारण नागरिकों का शासन पर विश्वास बढ़ा है और शिकायतों की संख्या में भी कमी आई है। शिकायत निवारण प्रणालियों में भी ई-गवर्नेंस ने सुधार किया, जहाँ ऑनलाइन ग्रिवांस पोर्टल के माध्यम से शिकायतें दर्ज, मॉनिटर और समयबद्ध तरीके से हल की जाती हैं।

ई-गवर्नेंस ने सेवा वितरण को अधिक न्यायसंगत भी बनाया है। पहले लाभार्थियों की पहचान सही तरीके से न होने के कारण योजनाओं का लाभ वास्तविक पात्र तक नहीं पहुंचता था। आधार आधारित प्रमाणीकरण, डिजिटल रजिस्ट्रियां, डायरेक्ट बेनिफिट ट्रांसफर और ऑनलाइन सत्यापन ने इस समस्या को दूर किया। आज सरकारी लाभ सीधे नागरिक के बैंक खाते में पहुंचते हैं, जिससे बिचौलियों की भूमिका समाप्त होती है और लाभार्थी को समय पर सहायता प्राप्त होती है। इन सभी प्रभावों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि ई-गवर्नेंस ने नागरिक सेवा वितरण को दक्ष, पारदर्शी और नागरिक-केंद्रित बनाया है। यह न केवल प्रशासनिक सुधार का माध्यम है बल्कि नागरिकों की गरिमा, अधिकार और सुविधा से जुड़ा बड़ा परिवर्तन है।

ई-गवर्नेंस ने भारत में शासन को आधुनिक, पारदर्शी और नागरिक-केंद्रित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, परंतु इसके सामने कई चुनौतियाँ आज भी मौजूद हैं। डिजिटल तकनीक पर बढ़ती निर्भरता के साथ-साथ प्रशासन को ऐसी बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है जो नागरिकों तक सेवाओं की प्रभावी पहुंच में रुकावट पैदा करती हैं। डिजिटल साक्षरता, साइबर सुरक्षा, डेटा गोपनीयता, तकनीकी अवसंरचना की कमी, क्षेत्रीय असमानताएँ, मानवीय संसाधनों की कमी और नीति क्रियान्वयन के अंतर-ये सभी चुनौतियां ई-गवर्नेंस की प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। साथ ही, भविष्य की संभावनाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि यदि इन चुनौतियों का समाधान किया जाए तो ई-गवर्नेंस भारतीय प्रशासन को और अधिक कुशल, पारदर्शी और समावेशी बना सकता है।

सबसे बड़ी चुनौती डिजिटल साक्षरता की कमी है। देश में एक बड़ी आबादी अभी भी कंप्यूटर, मोबाइल ऐप, ऑनलाइन फॉर्म, डिजिटल भुगतान और इंटरनेट नेविगेशन जैसी बुनियादी डिजिटल क्षमताओं से वंचित है। ग्रामीण क्षेत्रों, वृद्धजनों, महिलाओं और कमजोर वर्गों में डिजिटल ज्ञान की कमी अधिक दिखाई देती है। इससे वे ई-गवर्नेंस सेवाओं का उपयोग करने में असमर्थ रहते हैं। डिजिटल साक्षरता बढ़ाने के लिए जागरूकता कार्यक्रमों, प्रशिक्षण शिविरों और स्कूलों में डिजिटल शिक्षा को अनिवार्य बनाने जैसी पहलें आवश्यक हैं। साइबर सुरक्षा ई-गवर्नेंस के लिए दूसरी प्रमुख चुनौती है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर बड़ी मात्रा में सरकारी और नागरिकों के संवेदनशील डेटा संग्रहीत होते हैं, जिन पर साइबर हमलों का खतरा हमेशा बना रहता है। फिशिंग, डेटा ब्रीच, हैकिंग, मैलवेयर और रैनसमवेयर जैसे खतरे न केवल सेवाओं को बाधित करते हैं बल्कि नागरिकों के गोपनीय डेटा को जोखिम में डालते हैं। मजबूत साइबर सुरक्षा अवसंरचना, सुरक्षा ऑडिट, डेटा एन्क्रिप्शन, मल्टी-फैक्टर प्रमाणीकरण और साइबर सुरक्षा प्रशिक्षण इस चुनौती को कम कर सकते हैं।[17] डेटा गोपनीयता भी महत्वपूर्ण मुद्दा है। डिजिटल प्लेटफॉर्म बढ़ने से नागरिकों की व्यक्तिगत जानकारी पहले की तुलना में अधिक संग्रहीत की जा रही है। यदि डेटा संरक्षण के मजबूत कानून और निगरानी प्रणाली नहीं हों, तो इस जानकारी के दुरुपयोग की संभावना रहती है। इसलिए डेटा संरक्षण कानूनों को प्रभावी बनाना, स्वतंत्र डेटा प्राधिकरण स्थापित करना और सरकारी विभागों को सख्त दिशानिर्देशों के तहत डेटा प्रबंधन सुनिश्चित करना भविष्य के लिए आवश्यक है। तकनीकी अवसंरचना की कमी भी एक बड़ी बाधा है। कई ग्रामीण और दूर-दराज के इलाकों में आज भी इंटरनेट की पहुंच कमजोर है। बिजली आपूर्ति अस्थिर रहती है और उच्च गति इंटरनेट या 4G/5G सेवाएँ उपलब्ध नहीं होतीं। इससे नागरिक ई-गवर्नेंस सेवाओं तक नहीं पहुँच पाते। टेक्नोलॉजी की सीमाओं के कारण ऑनलाइन प्लेटफार्म सर्वर ओवरलोड, धीमी गति या तकनीकी त्रुटियों का सामना करते हैं, जिससे उपयोगकर्ता अनुभव प्रभावित होता है। इन चुनौतियों के समाधान के लिए सरकार को ग्रामीण ब्रॉडबैंड मिशनों को गति देने, भारत नेट परियोजना को मजबूत करने और सार्वजनिक डिजिटल अवसंरचना का विस्तार करना चाहिए।

क्षेत्रीय असमानता ई-गवर्नेंस के समान उपयोग को प्रभावित करती है। राज्यों के संसाधन, तकनीकी क्षमता और प्रशासनिक दक्षता अलग-अलग हैं, जिसके कारण कुछ राज्य डिजिटल सेवाओं में अत्यधिक उन्नत हैं जबकि अन्य इस क्षेत्र में पीछे हैं। यह असमानता नागरिकों के समान अधिकार और सेवा वितरण के सिद्धांत को प्रभावित करती है। इसलिए केंद्र और राज्य के बीच तकनीकी सहयोग, संसाधन साझेदारी और प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ावा देना आवश्यक है।एक अन्य चुनौती मानव संसाधन की कमी और तकनीकी दक्षता का अभाव है। कई सरकारी विभागों में कर्मचारियों के पास डिजिटल कार्यप्रणाली का पर्याप्त ज्ञान नहीं है। इससे नई तकनीकें अपनाने में बाधा आती है और डिजिटल सेवाओं के क्रियान्वयन में विलंब होता है। प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मचारियों को नियमित डिजिटल प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए ताकि वे ई-गवर्नेंस प्रणालियों का बेहतर उपयोग कर सकें।

ई-गवर्नेंस में आगे बढ़कर कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, ब्लॉकचेन, बिग डेटा एनालिटिक्स, रोबोटिक प्रक्रिया स्वचालन और क्लाउड-आधारित सेवाओं के उपयोग की अपार संभावनाएँ हैं। ये तकनीकें सेवा वितरण को और तेज, सटीक और नागरिक-केंद्रित बना सकती हैं। उदाहरण के लिए, ब्लॉकचेन तकनीक भूमि रिकॉर्ड और प्रमाणपत्रों को अधिक सुरक्षित बना सकती है, जबकि एआई चौटबॉट नागरिकों को तुरंत सहायता और जानकारी प्रदान कर सकते हैं। बिग डेटा एनालिटिक्स नीति निर्माण में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान कर सकता

है, जिससे योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। भविष्य में प्रशासन का लक्ष्य यह होना चाहिए कि नागरिकों को एकीकृत डिजिटल प्लेटफॉर्म पर सभी सेवाएँ मिल सकें। मोबाइल-फर्स्ट रणनीति अपनाना, बहुभाषी ऐप तैयार करना, दृश्य और श्रव्य निर्देश उपलब्ध कराना और कॉमन सर्विस सेंटरों को और मजबूत बनाना ई-गवर्नेंस को अधिक समावेशी बनाएगा। साथ ही साइबर सुरक्षा ढांचे को मजबूत करना, डेटा संरक्षण कानूनों को प्रभावशील बनाना, डिजिटल अधिकारों को मौलिक अधिकारों के समान महत्त्व देना और तकनीकी नवाचारों को नीति स्तर पर प्रोत्साहन करना भविष्य की प्राथमिकताएँ होनी चाहिए। संक्षेप में, इसकी चुनौतियाँ व्यापक हैं, परंतु ई-गवर्नेंस का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। सही दिशा में सुधार और नीतिगत प्रयास ई-गवर्नेंस को भारत की शासन प्रणाली का सबसे मजबूत स्तंभ बना सकते हैं, जिससे नागरिकों को अधिक पारदर्शी, न्यायसंगत और सशक्त प्रशासन प्राप्त होगा।

निष्कर्ष :

ई-गवर्नेंस समकालीन शासन प्रणाली का वह आधुनिक उपकरण बन चुका है जिसने पारंपरिक प्रशासनिक ढांचे की सीमाओं को प्रभावी रूप से तोड़ते हुए सेवा वितरण को अधिक पारदर्शी, तीव्र, उत्तरदायी और नागरिक केंद्रित बनाया है। पारंपरिक व्यवस्था में फैली अपारदर्शिता, देरी, भ्रष्टाचार, जटिल प्रक्रियाएँ और नागरिकों की बार-बार सरकारी दफ्तरों की दौड़ जैसी समस्याओं ने शासन को अप्रभावी बना दिया था। ऐसे परिप्रेक्ष्य में ई-गवर्नेंस ने एक संरचनात्मक परिवर्तन प्रस्तुत किया, जिसमें डिजिटल तकनीक, इंटरनेट, मोबाइल प्लेटफॉर्म, आधार आधारित प्रमाणीकरण, डिजिलॉकर, डिजिटल भुगतान और ई-ऑफिस जैसे साधनों के माध्यम से प्रशासनिक प्रक्रियाओं को सरल, सुरक्षित और सुगम बनाया गया।डिजिटल इंडिया ने ई-गवर्नेंस की यात्रा को नए स्तर पर पहुँचाते हुए नागरिकों के लिए सेवाओं की 'एनीवेयर - एनीटाइम' उपलब्धता सुनिश्चित की है। ऑनलाइन आवेदन, सेवा ट्रैकिंग, डिजिटल फाइल प्रबंधन, रीयल-टाइम मॉनिटरिंग और स्वत: रसीद जैसी व्यवस्थाओं ने शासन को अधिक पारदर्शी बनाया, भ्रष्टाचार की संभावनाओं को कम किया और अधिकारियों की जवाबदेही बढ़ाई। ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल सेवा केंद्रों के माध्यम से सेवा वितरण में समानता की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, जिससे सामाजिक-आर्थिक भागीदारी भी सुदृढ़ हुई है। डिजिटल साक्षरता की कमी, साइबर सुरक्षा जोखिम, डेटा गोपनीयता संबंधी चिंताएँ और तकनीकी अवसंरचना की असमानता अभी भी चुनौतियों के रूप में मौजूद हैं। भविष्य की संभावनाएँ यह संकेत देती हैं कि यदि इन चुनौतियों का समाधान प्रभावी नीतियों, मजबूत डेटा सुरक्षा ढांचे, उन्नत तकनीकी निवेश और व्यापक डिजिटल साक्षरता अभियान के माध्यम से किया जाए, तो ई-गवर्नेंस भारत में सुशासन का सबसे मजबूत स्तंभ बन सकता है। इस दिशा में निरंतर सुधार और नवाचार ही इसे वास्तव में "जन-केंद्रित शासन" की परिकल्पना तक पहुँचाएंगे।

सन्दर्भ सूची :

1 शर्मा, आर. के. (2017), भारत में ई-गवर्नेंस: विकास, चुनौतियाँ और संभावनाएँ, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 32
2 बंसल, सुरेश (2015), भारत में ई-गवर्नेंस: अवधारणा, ढाँचा और प्रयोग, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशंस, पृ. 84
3 सिंह, अनिल कुमार (2019), डिजिटल इंडिया और ई-गवर्नेंस, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 48
4 तथैव,पृ. 54
5 नारायण, के. वी. (2018), भारत में सार्वजनिक सेवा वितरण और प्रशासनिक बाधाएँ, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 40
6 तथैव,पृ. 45
7 शुक्ला, वी. एन. (2014), भारत में ग्रामीण प्रशासन और सेवा वितरण, नई दिल्ली, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग, पृ. 72
8 मिश्रा, रामगोपाल (2016), ग्रामीण भारत में सूचना प्रौद्योगिकी और सेवा पहुँच, जयपुर, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 54
9 गुप्ता, एस. के. (2020), डिजिटल गवर्नेंस और मोबाइल टेक्नोलॉजी, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 42
10 शर्मा, अशुतोष (2018), डिजिटल सुरक्षा और ई-गवर्नेंस, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 50
11 नंदा, शैलेंद्र (2018), भारत में ई-गवर्नेंस और पारदर्शिता, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 55
12 नारायण, वी. (2019), ई-गवर्नेंस और सेवा वितरण तंत्र, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 40
13 शर्मा, एस. पी. (2019), ई-गवर्नेंस और सूचना प्रबंधन, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 52
14 गुप्ता, ए. के. (2017), ई-गवर्नेंस और प्रशासनिक सुधार, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 45
15 कुमार, प्रदीप (2017), भारत में ई-गवर्नेंस और सार्वजनिक सेवा सुधार, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 60
16 शर्मा, राकेश (2020), भारत में ग्रामीण ई-गवर्नेंस, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 55
17 उपाध्याय, संजय (2020), ई-गवर्नेंस और साइबर सुरक्षा, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस, पृ. 52

विनोबा भावे के सामाजिक-धार्मिक विचार: एक सिंहावलोकन

डॉ० सुभाष चन्द्र सिंह

(पी-एच.डी.) तिलकामाँझी भागलपुर वि. वि., भागलपुर

शोध सरांश

विनोबा भावे आधुनिक भारत के महान संत, समाज सुधारक, विचारक थे। उनका दर्शन मानवता, अहिंसा और समाज के नैतिक उत्थान पर आधारित था। उनका धार्मिक दृष्टिकोण केवल किसी एक धर्म व संप्रदाय से संबंधित नहीं था, बल्कि सर्वधर्म समभाव पर आधारित था। उन्होंने भारतीय संस्कृति के मूल शब्द सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम को अपने जीवन का मूल मंत्र बताया, यानि उनका आध्यात्मिक दर्शन सत्य और अहिंसा पर आधारित था। उनके सामाजिक विचार ने समाज को सशक्त बनाने के लिए अहिंसक आंदोलन जैसे-भूदान आंदोलन की शुरुआत की। उन्होंने भूदान आंदोलन के द्वारा सामाजिक और आर्थिक न्याय को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनके भूदान आंदोलन में समाज के कमजोर वर्गों का उत्थान निहित था।

मुख्य शब्द - सामाजिक विचार, धार्मिक विचार, भूदान आंदोलन, सर्वधर्म समभाव, समानता, अहिंसा।

भूमिका

विनोबा भावे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख सेनानी तथा समाज सुधारक थे। स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में विनोबा बड़ी आशा के साथ कूदे थे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद कोई शोषक, कोई अत्याचारी नहीं होगा। उन्होंने स्वतंत्रता के साथ-साथ सबकों समान न्याय का सपना देखा था। उन्होंने ऐसे भारत का सपना देखा था, जहां अन्याय, अत्याचार और असमानता का कोई स्थान नहीं होगा, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। विनोबा भावे के समान अन्य कई गांधीवादी नेताओं, जैसे-जय प्रकाश नारायण आदि महापुरुषों का स्वप्न दिवास्वप्न ही निकला, वहीं नौकरशाही, अराजकता, अन्याय, अत्याचार व असमानता का बोलबाला हो गया। अब विनोबा भावे को लगने लगा कि समाज में स्थायी परिवर्तन केवल वाह्य परिवर्तन या सत्ता परिवर्तन से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए व्यक्ति को भीतर से नैतिक और आध्यात्मिक रूप से जगाना होगा। उन्होंने धर्म और नैतिकता के माध्यम से समाज सुधार की बात कही। विनोबा भावे ने सर्वधर्म समभाव के विचार पर बल दिया। सर्वधर्म समभाव का सिद्धांत गांधीजी भी मानते थे, वे अपने वैष्णव भजन में ईश्वर, अल्लाह एक नाम जपते थे। वह गीता, कुरान, बाइबिल सभी का सम्मान करते थे। विनोबा भावे भी गांधी जी के सिद्धांतों को मानते हुए सभी धर्मों के अच्छाईयों को लेकर एक मानव धर्म की स्थापना करना चाहते थे। वे सभी धर्मों के प्रति सहिष्णुता की भावना रखते थे। वह सभी धर्मों के बीच भेदभाव को समाप्त कर भाईचारा स्थापित करने का माध्यम माना और इसे मानव कल्याण के लिए क्रियाशील बनाया।

उनके धार्मिक विचार केवल सैद्धांतिक नहीं थे, बल्कि व्यावहारिक भी थे, जिन्हें उन्होंने अपने जीवन और कार्यों के माध्यम से समाज में उतारा। उनके अनुसार धर्म केवल पूजा पाठ या अनुष्ठानों का विषय नहीं है, बल्कि यह मानवता की सेवा और समाज के वंचित वर्गों के कल्याण का मार्ग है।[1] उन्होंने धर्म और करुणा की भावना पर आधारित समाज के सुधार का एक ऐतिहासिक पहल भी किया था। विनोबा भावे का मानना था कि यदि व्यक्ति अपने भीतर धार्मिक चेतना को जागृत कर ले, तो वह समाज में व्याप्त अन्याय, विषमता और भेदभाव को स्वयं हीं समाप्त करने का प्रयास करेगा।[2]

नैतिकता संबंधित अवधारणा

गांधीजी के अनुसार धर्म और नैतिकता दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। नैतिकता के पालन के लिए धार्मिक भावों का रहना अनिवार्य है। इसलिए दुनिया के बड़े-बड़े धर्मों की नैतिकता के नियम समान ही हैं तथा सभी धर्म संस्थापकों ने एक स्वर से नैतिकता को धर्म का आधार माना है।[3] विनोबा भावे गांधीजी की भांति धर्म और नैतिकता की एकता की स्थापना नहीं करते हैं। उन्होंने धर्म का प्रयोग 'कर्तव्य' के रूप में किया है। यहां कर्तव्य का मुख्य अर्थ-बिना वर्ण, आश्रम, जाति, देशकाल इत्यादि का विचार किए सभी मानवों के उत्थान के लिए कर्म करने से हैं।

विनोबा भावे के अनुसार धर्म आध्यात्मिकता से भिन्न है। धर्म देशकाल के अनुसार विभिन्न रूप लेता है, परंतु आध्यात्मिकता सत्य, प्रेम और करुणा के समान सार्वभौम और शाश्वत है। धर्म में पूजा के भिन्न-भिन्न मार्ग होते है, परंतु आध्यात्मिकता में ईश्वर भक्ति और मानव सेवा आवश्यक अंग है, जो देशकाल से परे है।[4] इसलिए विनोबा कहते हैं-''राजनीति और धर्म के दिन लद गए हैं और आध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का युग आया है''।[5]

गांधीजी धर्म और नैतिकता को एक ही मानते थे, क्योंकि उनका नैतिकता पर विशेष आग्रह था। गांधीजी नैतिकता के लिए धर्म को आवश्यक मानते थे। जबकि विनोबा का आग्रह आध्यात्मिकता पर आधारित है। इसलिए उन्होंने धर्म और नैतिकता की एकता को स्वीकार नहीं किया। विनोबा भावे का मानना था कि समाज में अच्छे-बुरे और साधारण तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। भला मनुष्य कभी भी बुरा नहीं बन सकता। परंतु बुरा मनुष्य भला में परिणत हो सकता है, क्योंकि भलाई में शक्ति है, बुराई में नहीं। जिस प्रकार प्रकाश का हमला अंधकार पर होता है, अंधकार का प्रकाश पर नहीं, उसी प्रकार विनोबा जी की राय में भलाई का हमला ही बुराई पर होता है।[6]

विनोबा भावे के अनुसार आदर्श समाज सेवामय होता है। उन्होंने व्यक्ति को सेवा और करुण प्रधान माना है। अत: समाज का सेवामय होना स्वाभाविक है। समाज की तुलना विनोबा एक परिवार से करते हैं, जिस प्रकार परिवार के सभी सदस्य मिल-जुल कर सुख-दु:ख बांटते हैं या परिवार के लोग छोटे की सुरक्षा के लिए स्वेच्छा से कष्ट उठाते हैं, उसी प्रकार समाज में भी समर्थ व्यक्तियों की यह जिम्मेदारी है कि वह असमर्थों के कल्याण के लिए अधिक से अधिक कष्ट उठावें।[8] विनोबा जी द्वारा समाज की तुलना परिवार से करने के कारण समाज में त्याग और सेवा के लिए अनुपम आधार मिल जाता है। आदर्श समाज को विनोबा ने केवल ममता एवं प्रेम तक ही सीमित नहीं रखा है, बल्कि उसे 'सेवामय' माना है।

विनोबा भावे 'गीता' से अधिक प्रभावित थे। समाजिक-संतुलन के सिद्धांत के संबंध में भी विनोबा 'गीता' के विचारों को ही लेते हैं। गीता में यज्ञ, दान और तप को सामाजिक संतुलन के लिए आवश्यक माना गया है। इसी आधार पर विनोबा यह मानते हैं कि दान और समर्पण समाज का बुनियादी सिद्धांत है।[10] समाज में संतुलन कायम रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति, बुद्धि, शक्ति, जमीन और अपने श्रम तथा मिलकियत का कुछ भाग सदैव समाज को समर्पित करते रहना आवश्यक है। विनोबा का कहना है कि जो लोग यज्ञ, दान और तप को समाजशास्त्र का एक अंग समझते हैं, उनके ध्यान में यह बात आ जायगी कि गरीब और अमीर दोनों को कुछ करना चाहिए। दोनों समाज के अंग हैं, अवयव है, इसलिए दोनों को एक-दूसरे का सहयोग करना चाहिए।[11]

विनोबा जी के अनुसार जमीन, संपत्ति, श्रम शक्ति, बुद्धि सभी चीजें समाज की है। उन पर व्यक्ति का कोई हक नहीं है। मनुष्य जो इन्हें समाज पर समर्पित करना नहीं चाहते हैं, वह समाज का अंग नहीं बन सकते। अत: समाज का अंग होने के नाते अमीर और गरीब, दोनों को समाज के लिए कुछ हिस्सा दान करना अनिवार्य है।[12] समाज पर अपने हिस्से को अर्पित करने का अर्थ एक प्रकार से ईश्वर पर अपने को समर्पित करना है, क्योंकि मानव के सभी संपर्कों में आंतरिक दृष्टि से ईश्वर का समावेश होता है।[13] इसलिए विनोबा भावे कहा करते थे कि सेवा व्यक्ति की परंतु भक्ति समाज की करनी चाहिए।[14]

विनोबा भावे 'सांख्य' के त्रैगुण सिद्धांत में विश्वास करते थे। उनके अनुसार व्यक्ति समाज और सृष्टि में सर्वत्र सत्व, रज तथा तम गुणों का समुचित महत्व है। अत: व्यक्ति और समाज के जीवन में इन तीनों गुणों का समुचित महत्व है। अत: व्यक्ति और समाज के जीवन में इन तीनों गुणों का समुचित महत्व है। व्यक्ति और समाज के जीवन में इन तीनों गुणों का समुचित महत्व देकर ही उत्तम समाज की रचना की जा सकती है।[15]

सत्व, रज और तम का समुचित स्थान देकर ही विनोबा सामाजिक जीवन में धर्म, अर्थ और काम के संबंध में भागवत के ''धर्मार्थ कामा: समवेव सेव्या:" की व्याख्या कर यह बतलाते हैं कि धर्म शिक्षण और अपनी आवश्यकता की पूर्ति का सबको समान रूप से अधिकार है।[16] विनोबा भावे समाज की कल्पना में केवल मनुष्य की प्रकृति का ही नहीं, बल्कि उसकी आत्मा का भी ख्याल करते हैं। वे खंडित नहीं, बल्कि समग्र व्यक्तित्व की अपेक्षा रखते हैं।

गांधीजी की भांति ही विनोबा भी व्यक्ति और समाज में अंग-अंगी का संबंध मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जिस तरह शरीर के सारे अवयव मिलजुल कर काम करते हैं, उसी तरह सभी व्यक्तियों को मिलजुल कर काम करना चाहिए, तभी समाज सुखी हो सकेगा।[17] शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों की भांति व्यक्ति के काम भी भिन्न-भिन्न होते हैं।[18]

साम्यवादी समाज, पूंजीपति और गरीबों के बीच विरोध मानता है, दोनों विचार प्रतिक्रियात्मक हैं। वास्तविक स्थिति तो यह है कि विरोध ना तो अमीर और गरीब के बीच में है और ना व्यक्ति और समाज के बीच। व्यक्ति समाज का ही अंश है। अत: उसका हित समाज के हित में ही है। व्यक्ति के विकास के बिना समाज का विकास नहीं हो सकता। इस प्रकार व्यक्ति और समाज एक-दूसरे पर आधारित है, फिर विनोबा भावे कहते हैं कि जैसे ताना-बाना दोनों ओतप्रोत होते हैं, वैसे ही व्यक्ति और समाज के बीच संबंध है, जैसे ताने और बाने का हित एक-दूसरे के विरोध में नहीं होता है, वैसे हीं व्यक्ति और समाज का हित एक-दूसरे से भिन्न नहीं है।[19]

विनोबा भावे ने सामाजिक समानता की बात करते हुए गांधीजी के 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धांत को स्वीकार किया था। विनोबा भावे का भूदान आंदोलन इसी सिद्धांत से प्रेरित था। विनोबा जी के अनुसार भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के आधार पर कुछ लोगों को भूमिहीन रखना एक प्रकार का अन्याय है। इसके अनुसार ईश्वर ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश जैसे पंचभूतों का निर्माण सभी प्राणियों के लिए किया है। अत: प्रकृति की चीजों पर सबका समान अधिकार है। विनोबा ने कहा सूर्य घर-घर रोशनी देता है, उसकी जितनी किरण एक राजा पाता है, उतना ही एक मेहतर भी। भगवान कभी भी अपनी चीज का असमान रूप से वितरण नहीं करता, तो भूमि पर सब लोगों का सामान वितरण न कर केवल कुछ लोगों के हाथ में उसे कैसे छोड़ दिया जा सकता है।[20] भूदान के पीछे उनका दृष्टि

था कि जमीन पाने का वही अधिकारी है, जो इसे जोत सके तथा इससे उपार्जन कर सके, जो अपने हाथों से खेती नहीं कर सकता है, उसे जमीन पाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।[21] इस प्रकार विनोबा भावे का भूदान, ग्रामदान, श्रमदान का सिद्धांत सामाजिक समानता की अवधारणा पर आधारित था।

निष्कर्ष

इस प्रकार विनोबा भावे का दर्शन, उनका सामाजिक-धार्मिक संबंधी विचार, अवधारणा, समसामायिक परिवेश में ही नहीं, बल्कि सर्वकालिक परिस्थिति में भी प्रासंगिक है। विनोबा जी का सामाजिक-धार्मिक विचार महात्मा गांधी, महर्षि अरविंद, रविंद्रनाथ टैगोर के विचारों से कहीं उत्तम थे। उन्होंने धर्म और संस्कृति के माध्यम से समाज सुधार के एक नए विचार व अवधारणा को जन्म दिया। उन्होंने धर्म को पूजा पाठ और कर्मकांड तक सीमित नहीं रख कर मानव धर्म को श्रेष्ठ बताया। आधुनिक समाज में बढ़ती भौतिकवादी प्रवृत्ति, वैश्वीकरण और उपभोक्तावादी मानसिकता जैसी समस्याओं के समाधान में विनोबा भावे के विचार काफी प्रासंगिक हैं। उनके विचार आज भी विश्व में शांति, सहअस्तित्व और मानवता की स्थापना में सहायक हो सकते हैं। उनके सामाजिक, धार्मिक संबंधी सिद्धांतों को व्यवहार में उतारकर न्यायपूर्ण, शांतिपूर्ण और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध समाज की कल्पना को सकार कर सकते हैं।

संदर्भ सूची ग्रंथः-

1. विनोबा भावे, आत्म ज्ञान और विज्ञान, पृ.192
2. विजय मिश्रा, विनोबा भावे का धार्मिक चिंतन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 84
3. नारायण श्रीमान, द सिलेक्ट वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, भाग-प्प, पृ. 22-23
4. पूर्वोक्त, पृ. 275
5. विनोबा भावे, आत्म ज्ञान और विज्ञान, पृ. 3
6. विनोबा चिंतन, अंक-17 पृ. 246
7. विनोबा भावे, लोकनीति, अखिल भारतीय सर्वसेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी 1963, पृ.220
8. विनोबा चिंतन, अंक-58,59,60 जनवरी 1970-71, पृ. 496
9. दशरथ सिंह, गांधीवाद को विनोबा की देन, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2000, पृ. 372
10. विनोबा भावे, सर्वोदय और साम्यवाद, पृ. 111
11. विनोबा भावे, सर्वोदय और साम्यवाद, पृ. 119
12. पूर्वोक्त, पृ. 122
13. विनोबा चिंतन, 26 जनवरी 1969, पृ. 573
14. वियोगी हरि, विनोबा के विचार, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1946, पृ. 177-80
15. विनोबा भावे, साम्य सूत्र, पृ. 44
16. मैगी पत्रिका, वर्ष-8, अंक-11, दिसंबर 1971, पृ. 993
17. विनोबा के साथ निर्मला देशपांडे, पृ.156
18. पूर्वोक्त, पृ.157
19. विनोबा भावे, सर्वोदय और साम्यवाद, पृ.80
20. चारुचंद भंडारी, भूदान यज्ञ और क्यों, सर्व सेवा संघ, वाराणसी,1956, पृ. 2-3
21. पूर्वोक्त, पृ.6

विश्व व्यापार संगठन (WTO) की प्रासंगिकता- भारत के विशेष संदर्भ में

प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल

विभागाध्यक्ष-लेखा एवं विधि विभाग (वाणिज्य संकाय) एस.आर.के. (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद (उ0प्र0)

सारांशः

यह शोध-पत्र विश्व व्यापार संगठन की, 21वीं सदी के बदलते वैश्विक परिप्रेक्ष्य में, प्रासंगिकता का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही विशेष रूप से भारत के लिए उसके प्रभाव, अवसर और चुनौतियों का आकलन करता है। WTO की बहुपक्षीय संरचना, विवाद-निपटान प्रणाली, और मंत्रीस्तरीय सम्मेलन (MC13.अबू धाबी, 2024) में दिखाई गयी प्रगतियाँ तथा सीमाएँ इस अध्ययन के केन्द्र में हैं। वैश्विक व्यापार 2024 में लगभग US$ 32.2 ट्रिलियन तक विस्तारित हुआ और सेवाओं का हिस्सा 27.2% तक पहुँच गया। यह दर्शाता है कि व्यापार का स्वरूप बदल रहा है और WTO को परम्परागत माल-केन्द्रित नियमों के परे सेवाएँ व डिजिटल व्यापार को समाहित करना होगा। भारत के FY 2024-25 के सांख्यिकीय आँकड़ों के अनुसार माल निर्यात लगभग US$ 437.42 बिलियन और कुल (माल+सेवाएँ) अनुमानित US$ 820.93 बिलियन रहा- जिससे यह स्पष्ट होता है कि WTO जैसे बहुपक्षीय फोरम का भारत के लिये नीतिगत व बाजार-हित महत्व बना हुआ है।

मुख्य शब्दः विश्व व्यापार संगठन, भारत वैश्विक व्यापार, बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली, व्यापार उदारीकरण, बाजार पहुँच, विकासशील देश

1. भूमिका और पृष्ठभूमि

विश्व व्यापार संगठन (WTO) 1995 में स्थापित एक बहुपक्षीय संगठन है जिसका उद्देश्य वैश्विक व्यापार के नियमों का समन्वय कर, व्यापार-बाधाओं को घटाकर तथा सदस्य देशों के बीच विवादों के निपटारे हेतु एक नियम-आधारित तंत्र उपलब्ध कराना है। 21वीं सदी में वैश्वीकरण, डिजिटलाइजेशन, और वैश्विक आपूर्ति-श्रृंखलाओं (GVCs) में परिवर्तन ने व्यापार के स्वरूप को बदल दिया है। जिसके परिणामस्वरूप WTO को नए विषयों (डिजिटल व्यापार, सेवाएँ, पर्यावरणीय प्रश्न) के समावेश के लिये खुद को रूपान्तरित करना अनिवार्य है। WTO के भीतर विवाद-निपटान की व्यवहारिकता, निर्णय-प्रक्रिया की पारदर्शिता और विकासशील देशों के हितों का संरक्षण आज चर्चा का प्रमुख विषय है।

2. शोध के उद्देश्य

1. WTO के वर्तमान कार्य-तंत्र व नीतिगत क्षमता का मूल्यांकन करना।
2. यह समझना कि WTO किस हद तक आधुनिक (डिजिटल/सेवा-प्रधान) वैश्विक व्यापार के लिये प्रासंगिक है।
3. भारत के संदर्भ में WTO से मिलने वाले लाभ, संवेदनशीलताएँ और रणनीतिक विकल्पों की पहचान करना।

3. साहित्य-समीक्षा

3.1 WTO Trade Report (2023) World Trade Organisation, Geneva- इस रिपोर्ट में वैश्विक व्यापार की वर्तमान स्थिति, बहुपक्षीय व्यापार प्रणाली की चुनौतियाँ तथा WTO की बदलती हुई भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया गया है कि बढ़ते संरक्षणवाद, भू-राजनीतिक तनाव और क्षेत्रीय व्यापार समझौतों के बावजूद WTO वैश्विक व्यापार के लिए नियम-आधारित ढाँचा प्रदान करता है।

3.2 ORF (Observer Research Foundation, 2022), An ffeective WTO for Developing Countries- यह नीति पत्र WTO सुधारों और विकासशील देशों की भागीदारी पर केन्द्रित है। इसमें भारत की भूमिका को सक्रिय एवं नेतृत्वकारी बताया गया है।

3.3 Government of India (2022), India and the WTO: Trade Policy Review- इस अधिकारिक दस्तावेज में WTO के प्रति भारत की व्यापार नीति, प्राथमिकतायें और रणनीतियाँ प्रस्तुत की गई हैं।

3.4 Sharma Jagriti (2020), World Trade Organisation and its Impact on India– इस शोध पत्र में लेखक ने WTO की नीतियों और भारत की अर्थव्यवस्था पर उसके प्रभाव का विश्लेषण किया है। लेख में कृषि, बौद्धिक सम्पदा अधिकार (TRIPS) और औद्योगिक नीति पर WTO समझौतों के प्रभाव को रेखांकित किया गया है। लेखक का तर्क है कि WTO भारत के लिए अवसर और चुनौतियाँ दोनों प्रस्तुत करता है।

3.5 Salvatore Dominick (2019), International Economics: यह पुस्तक WTOको वैश्विक व्यापार प्रशासन का मुख्य स्तम्भ बताती है इसके विवाद–निपटान तंत्र की महत्वता पर प्रकाश डालती है।

3.6 Rao, C.H. Hanumantha (2017) Globalisation, WTO and India– इस पुस्तक में WTO और वैश्वीकरण के भारतीय कृषि, उद्योग और रोजगार पर पड़ने वाले प्रभावों की आलोचनात्मक समीक्षा की गई है। लेखक का निष्कर्ष है कि WTO नियमों का प्रभाव भारत में असमान रहा है।

4. शोध पद्धतिः

यह अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है और द्वितीयक समंको पर आधारित है।

5. WTO की वर्तमान चुनौतियाँ

5.1 आधारभूत ढाँचा–

WTO का ढाँचा सदस्यता–आधारित है– इस समय 166 सदस्य देशों के साथ यह वैश्विक व्यापार का लगभग 98% प्रतिनिधित्व करता है। इसकी प्रमुख संस्थाएँ Ministerial Conference, General Council, Council for Trade in Goods/Services, और Dispute Settlement Body हैं। निर्णय–प्रक्रिया में पारंपरिक रूप से सर्वसम्मति (consensus) का प्रचलन रहा है।

5.2 विवाद–निपटान और अपीलीय निकाय

WTO की विवाद–निपटान प्रणाली को अंतरराष्ट्रीय ट्रेड नियमों की मजबूती और वैधानिकता का स्तम्भ माना जाता रहा है। तथापि 2019 से Appellate Body के सदस्यों की नियुक्तियों पर रोक के कारण वह अब सक्रिय रूप से अपीलों की समीक्षा नहीं कर पा रही है, जिससे प्रणाली की अंतिमता प्रभावित हुई है और सदस्यों ने वैकल्पिक तंत्र (MPIA – Multi-Party Interim Appeal Arbitration) अपनाये हैं।

5.3 नये एजेंडें: डिजिटल, सेवाएँ और पर्यावरण

हाल के वर्षों में सेवाओं की वैश्विक व्यापार हिस्सेदारी बढ़ी है और डिजिटल/डिलीवर्ड सेवाओं का विस्तार तेज हुआ है। WTO के पारंपरिक ढाँचे को इन मुद्दों को समाहित करने की आवश्यकता है; वरना क्षेत्रीय समझौते इन क्षेत्रों में अधिक प्रतिक्रियाशील हो सकते हैं।

5.4 वैश्विक व्यापारिक परिदृश्य

WTO आंकड़ों के अनुसार, 2024 में विश्व व्यापार (माल– वाणिज्यिक सेवाएँ) में 4% की वृद्धि के साथ कुल US$ 32.2 ट्रिलियन का स्तर दर्ज हुआ; इसमें सेवाएँ 10% वृद्धि से और कुल व्यापार में 27.2% हिस्सा बनाकर 2005 के बाद का उच्चतम स्तर प्राप्त कर लिया। यह बदलाव संकेत देता है कि बहुपक्षीय नियमों को सेवाओं और डिजिटल–व्यापार के अनुरूप अपडेट करना आवश्यक है।

5.5 भारत के व्यापारिक आँकड़े

भारत के लिए FY 2024-25 में merchandise निर्यात का समेकित मूल्य US$ 437.42 बिलियन था और माल/सेवाएँ का कुल अनुमानित मान US$ 820.93 बिलियन रहा– जो भारत की वैश्विक व्यापार भागीदारी की मजबूती का संकेत है। इन आँकड़ों का अर्थ यह है कि भारत के लिये बहुपक्षीय बाजार–निकास और सेवाओं के लिये अंतरराष्ट्रीय नियम–ढाँचे का महत्व बना हुआ है।

6 WTO की प्रासंगिकता

6.1 नियमन–प्रस्तावना और निवेश–पूर्वानुमान

WTO के नियमों ने सदस्य देशों को व्यापार नीति में पूर्वानुमान देने में मदद की है; इससे विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) और अंतरराष्ट्रीय सप्लाई–चेन निर्णयों में स्थिरता आई है। बहुपक्षीय प्लेटफॉर्म होने के नाते WTO छोटे व मध्यम अर्थव्यवस्थाओं के लिये भी नियम–सुरक्षा प्रदान कर सकता है, बशर्ते विवाद–निपटान पुनः प्रभावी बने।

6.2 विवाद-निपटान की वैश्विक सार्वजनिक वस्तु के रूप में भूमिका

कानूनी व तर्कात्मक रूप से बाध्यकारी विवाद-निपटान छोटी अर्थव्यवस्थाओं को बड़े व्यापारिक पार्टनर से सुरक्षा देता है। Appellate Body की अनुपस्थिति इस सुरक्षा कवच को कम करती है। बहुपक्षीय तंत्र को पुर्नस्थापित करने के लिये राज्यों के बीच राजनैतिक समन्वय आवश्यक है।

6.3 विकासशील देशों के लिये विशेष प्रावधान (S&D) और भारत का रुख

WTO के Special - Dierential Treatment (S&D) प्रावधान विकासशील देशों के लिये महत्वपूर्ण रहे हैं; भारत ने बार-बार यह रेखांकित किया है कि कृषि-समर्थन, खाद्य-सुरक्षा और औद्योगिक नीति के सन्दर्भ में विकासोन्मुख सहूलियतें संरक्षित होनी चाहिए। WTO पर भारत का रुख अक्सर विकास-अधारित होने का रहा है। यह नीतिगत स्थितियाँ भारत की घरेलू नीतियों से जुड़ी संवेदनशीलताओं को दर्शाती हैं।

7. 13वें मंत्री स्तरीय सम्मेलन (MC13) के परिणाम एवं संकेत

WTO की 13वीं मंत्रीस्तरीय कॉन्फ्रेंस (MC13) अबू धाबी (26 Feb-2 Mar 2024) में सम्पन्न हुईय यहाँ मत्स्य पालन (fisheries subsidies) पर एक समझौता हुआ जो IUU [Illegal, Unreported and Unregulated] मछली पकड़ने के लिये सरकारी सब्सिडी पर रोक लगाता है और महासागरीय संसाधनों की सुरक्षा की दिशा में कदम है। MC13 ने कुछ वाणिज्यिक मुद्दों पर प्रगति दिखाई पर समग्र सुधार और विवाद-निपटान के पुनरुद्धार हेतु और अधिक प्रयासों की आवश्यकता पर जोर दिया गया। MC13 के ये परिणाम दर्शाते हैं कि WTO अभी भी वैश्विक सार्वजनिक-नीति के कुछ प्रमुख मामलों में प्रभावी भूमिका निभा सकता है परन्तु व्यापक नवीनीकरण के लिये राजनैतिक प्रतिबद्धता जरूरी है।

8. विश्व व्यापार संगठन एवं भारत

8.1 भारत के अवसर

1. सेवा-निर्यात का संवर्धन/भारत का सॉफ्टवेयर, आईटी-सेवा और डिजिटल सेवाएँ क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा है। WTO के डिजिटल/सेवा नियमों में सक्रिय भागीदारी भारत के व्यापार-हित में है।
2. डिस्प्यूट रिमेडीज का प्रयोग: विवाद-निपटान उपकरणों का प्रभावी उपयोग कर भारत अपने हितों की रक्षा कर सकता है- परन्तु इसके लिये बहुपक्षीय तंत्र का पुनरुद्धार जरूरी हैं।
3. क्षेत्रीय समझौते और बहुपक्षीय तालमेल: जहाँ बहुपक्षीय सहमति कठिन हो, वहीं क्षेत्रीय/आंचलिक समझौतों से तालमेल बना कर WTO के भीतर भारत की स्थिति मजबूती से रखी जा सकती है।

8.2 भारत की चुनौतियाँ

1. कृषि-सब्सिडी व खाद्य-सुरक्षा: विकसित देशों की सब्सिडी नीतियों से परस्पर टकराव के संभावित प्रभावों से छोटे कृषक प्रभावित हो सकते हैं। भारत के लिये संरक्षण एवं संक्रमण नीति महत्वपूर्ण है।
2. डिजिटल-डेटा नीति: डेटा-फ्लो, लोकलाइजेशन और सर्विसेज पर नियमों में अधिक पारदर्शिता व तकनीकी क्षमता-निर्माण की आवश्यकता है।
3. न्यायिक/कानूनी संसाधन: WTO के कानूनी मंच का प्रभावी उपयोग करने के लिये भारत को समुचित तकनीकी और कानूनी क्षमता विकसित करनी चाहिए।

9. प्रमुख नीतिगत सिफारिशें-

1. विवाद-निपटान का पुनरुद्धार: WTO Appellate Body के सक्रिय पुनर्स्थापन के लिये व्यापक राजनैतिक पहल आवश्यक है; भारत को इस पर सक्रिय गठजोड़ बनाकर नेतृत्व करना चाहिए।
2. डिजिटल व सेवा-नियमों पर बहुपक्षीय वार्ता:WTO के डिजिटल व्यापार व सेवा-नियमों पर भारत को तकनीकी व नीतिगत दलीलों से सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए ताकि देश के सेवा-क्षेत्र की प्रतिस्पर्धात्मकता बनी रहे।
3. निर्णय-प्रक्रिया में सुधार: निर्णय-प्रक्रिया में कुछ लचीलापन पर विचार कर, एकल सदस्य द्वारा निर्णय-स्थगन की प्रवृत्ति को नियंत्रित किया जाना चाहिए।

4. विकासोन्मुख समर्थन: कृषि व खाद्य-सुरक्षा के लिये सहायताओं की अन्तरराष्ट्रीय मान्यता की माँग को WTO के समावेशी मंच पर उठाया जाना चाहिए।
5. क्षमता-निर्माण और कानूनी संसाधन: भारत को WTOमामले लड़ने हेतु कानूनी व आर्थिक विशेषज्ञता बढ़ानी चाहिए- जिससे वह बहुपक्षीय विवादों में प्रभावी बन सके।

10. निष्कर्ष

WTO का बहुपक्षीय ढाँचा और नियम-आधार आज भी वैश्विक व्यापार के लिये केंद्रीय महत्त्व रखता है। परंतु संगठन को 21वीं सदी के डिजिटल, सेवा-प्रधान और पर्यावरण-सवेंदनशील व्यापार-चुनौतियों का सामना करने के लिये स्वरूप व प्रक्रियाओं में समुचित सुधारों की आवश्यकता है। Appellate Body की अक्रियता और निर्णय-प्रक्रिया में जड़ता जैसी अंतर्व्यवस्थागत चुनौतियाँ यदि समय पर सुलझायीं नहीं गयीं तो बहुपक्षीय नेतृत्व का स्थान क्षेत्रीय/प्लुरिलैटरल समझौतों से प्रतिस्थापित हो सकता है। भारत के लिये WTO एक आवश्यक नीति-मंच है- पर उसकी वास्तविक लाभप्राप्ति इस बात पर निर्भर करेगी कि वह डिजिटल नियमों, विवाद-निपटान के पुनरुद्धार और विकासोन्मुख प्रावधानों में सक्रिय रूप से भाग ले। यदि सदस्य देश समन्वित प्रयास कर सुधारों को लागू करें, तो WTO 21वीं सदी में भी प्रासंगिक और प्रभावी बना रह सकता है।

संदर्भ

1. Policy analyses and briefing papers on MC13 outcomes and WTO reform discussions.
2. WTO Secretariat - Global Trade Outlook & Trade in digitally delivered services (data on digitally delivered services growth).
3. WTO - Who we are / Members (166 members as of Aug 2024).
4. WTO - Appellate Body status and Dispute Settlement notes (Appellate Body currently unable to hear appeals due to vacancies - paralysis since 2019).
5. WTO - MC13 (Abu Dhabi, 2024) documentation and outcomes.
6. Press Information Bureau (PIB), Govt. of India - Exports (Merchandise & Services) FY 2024-25 (Merchandise exports US$ 437.42 billion; merchandise + services est. US$ 820.93 billion).
7. WTO - World Trade Statistics 2024 (World trade expanded to US$ 32.2 trillion in 2024; services share rose to 27.2%).
8. WTO Trade Report (2023)
9. ORF (Observer Research Foundation), 2022, An Effective WTO for Developing Countries, Policy Document.
10. Government of India (2022), India and the WTO: Trade Policy Review.
11. Sharma Jagriti (2020), World Trade Organisation and its Impact on India, International Multidisciplinary Research Journal.
12. Salvatore, Dominik (2019), International Economics
13. Rao, C.H. Hanumantha (2017): Globalisation, WTO and India.

हिंदी भाषा का विस्तार: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० सतवीर कौर

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, नेहरू मेमोरियल गवर्नमेंट कॉलेज, मानसा (पंजाब)

सार

यह कहा जा सकता है कि हिंदी भारत की भाषा है और यह हिंदी भारत लोगों के आपसी जुड़ाव का एक बेहतर माध्यम है। हिंदी उत्तर भारतीय लोगों की पहली पसंद की भाषा है यह भाषा उत्तर भारतीय लोगों की प्रसिद्ध भाषा है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि उत्तर भारतीय लोगों को हिंदी भाषा में बहुत सहजता महसूस होती है। यह कहा जा सकता है कि भारत की अधिकांश आबादी हिंदी भाषा में लिखने, सुनने और बोलने में सहज महसूस करती है। हिंदी भाषा की सरलता ने अधिक से अधिक लोगों को इसे सीखने के लिए प्रेरित किया है। यह कहा जा सकता है कि आज हिंदी भाषा पूरे भारत में बोली जाती है। भारत में हिंदी भाषा अन्य स्थानीय और क्षेत्रीय भाषाओं की तुलना में अधिक प्रचलित है। हिंदी का भौगोलिक विस्तार मुख्यतः भारत में, विशेष रूप से उत्तरी और मध्य राज्यों के 'हिंदी क्षेत्र' में केंद्रित है लेकिन प्रवास और सांस्कृतिक प्रभाव के माध्यम से यह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी फैल गया है। हिंदी भाषा के विस्तार के प्रमुख क्षेत्रों में नेपाल, संयुक्त राज्य अमेरिका, मॉरीशस, फिजी और दक्षिण अफ्रीका जैसे देश शामिल हैं जहाँ महत्वपूर्ण हिंदी भाषी समुदाय मौजूद हैं। यह कहा जा सकता है कि बॉलीवुड फिल्मों और संगीत जैसे माध्यमों के माध्यम से इस हिंदी भाषा का प्रभाव वैश्विक स्तर पर और भी बढ़ गया है जिससे दुनिया भर में हिंदी भाषा की मान्यता और आकर्षण बढ़ा है। हिंदी भारत गणराज्य की आधिकारिक भाषा है और हिंदी भाषा देश के 1.3 अरब लोगों में से अधिकांश लोगों द्वारा बोली जाती है। यह एक इंडो-आर्यन भाषा है जो संस्कृत और पंजाबी जैसी अन्य भाषाओं से संबंधित है और देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। सदियों से, हिंदी भाषा में मौखिक और लिखित, दोनों रूपों में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान हिंदी भाषा के एक मानकीकृत रूप का विकास हुआ था जिसने साक्षरता को बढ़ावा देने और हिंदी भाषा को अधिक व्यापक रूप से समझने में मदद की थी। इस शोध पत्र में लेखक के द्वारा हिंदी भाषा के भौगोलिक विस्तार का विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द: हिंदी, भाषा, भौगोलिक, विस्तार

भूमिका:

भारत की आम जनता की सामान्य भाषा में हिंदी भाषा को हिंदी-उर्दू या हिंदुस्तानी के नाम से भी जाना जाता है और भारत में हिंदी भाषा की कई ज्ञात क्षेत्रीय भाषाएँ और राष्ट्रीय बोलियाँ हैं। हिंदी, इंडो-यूरोपीय भाषा परिवार से आती है। हिंदी की सबसे करीबी भाषा अरबी मानी जा सकती है। हालाँकि, अरबी के विपरीत, हिंदी बाएँ से दाएँ लिखी जाती है। यह कहा जा सकता है कि हिंदी को हिंदी-उर्दू भाषा, मानक हिंदी भाषा, आधुनिक मानक हिंदी भाषा और साहित्यिक हिंदी भाषा भी कहा जाता है। यह कहा जा सकता है कि लगभग 30 करोड़ लोग मूल वक्ता के रूप में हिंदी भाषा बोलते हैं[1] और 20 करोड़ लोग हिंदी भाषा को दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं। भारत विविध संस्कृतियों और परंपराओं वाला देश है और यहाँ विविध भाषाएँ और बोलियाँ बोलने वाले विविध लोग रहते हैं। जिन भारतीय लोगों को हिंदी नहीं आती, उन्हें हिंदी भाषा में असहजता महसूस होती है। यह कहा जा सकता है कि हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में बढ़ावा देने के इस खुलेआम राजनीतिक कदम में उनकी सांस्कृतिक पहचान को नहीं दबाया जाना चाहिए। गैर-हिंदी भाषी राज्यों के लोगों को डर है कि हिंदी को बढ़ावा देने की योजना उन्हें दूसरे दर्जे का नागरिक बना देगी और देश की अखंडता को नुकसान पहुंचाएगी[2] अतीत में, तमिलनाडु ने हिंदी भाषा के खिलाफ एक आंदोलन शुरू किया था। दक्षिण भारत के कई राज्यों के लोग हिंदी भाषा को पसंद नहीं करते, क्योंकि वे अपनी स्थानीय भाषा को प्राथमिकता देते हैं[3]

आज मोदी सरकार वैश्विक स्तर पर हिंदी की भूमिका बढ़ाने के प्रयास कर रही है। केंद्र सरकार हिंदी अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान कर रही है। यह कहा जा सकता है कि मोदी सरकार संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता दिलाना चाहती है। आज मोदी सरकार हिंदी भाषा पर शोध परियोजनाओं में पैसा निवेश कर रही है[4]। यह कहा जा सकता है कि मोदी सरकार हिंदी अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए छात्रवृत्ति दे रही है। कई भारतीय विश्वविद्यालयों ने हिंदी भाषा पर 'अनुसंधान-केंद्र' स्थापित किए हैं। मोदी सरकार के प्रयासों के कारण अब हिंदी को वैश्विक भाषा माना जाता है 5 मोदी सरकार भारत और विदेशों में हिंदी भाषा पर

सेमिनार आयोजित कर रही है। भारतीय सरकार उन विदेशी लोगों पर पैसा खर्च कर रही है जो हिंदी भाषा सीखना चाहते हैं। हिंदी भाषा में प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, जर्नलों और पुस्तकों की संख्या बढ़ रही है। अंग्रेजी के बाद वैश्विक स्तर पर हिंदी साहित्य ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों माध्यमों से आसानी से उपलब्ध है[6]

वर्तमान में, भारतीय और वैश्विक मानक की पुस्तकें हिंदी भाषा में उपलब्ध हैं। आज भारत में विधि, इंजीनियरिंग और चिकित्सा की शिक्षा हिंदी भाषा में उपलब्ध है। अब वर्तमान में, राज्य सिविल सेवा और आईएएस परीक्षा में हिंदी भाषा बोलने वाले युवाओं का चयन अधिक हो रहा है। भारतीय स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में प्रथम श्रेणी से लेकर पीएचडी तक की शिक्षा हिंदी भाषा में उपलब्ध है। भारतीय स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय हिंदी साहित्य की किताबें से भरे पड़े हैं[7] अब, विभिन्न पुस्तक प्रकाशन हिंदी पांडुलिपियों की छपाई कर रहे हैं। भारत की केंद्र सरकार हिंदी भाषा के नाम पर कई पुरस्कार वितरित कर रही है। अब सभी परीक्षा प्रश्न पत्र हिंदी भाषा में उपलब्ध हैं। सभी प्रतियोगी परीक्षाओं की विषय-सामग्री हिंदी भाषा में उपलब्ध है। सभी केंद्रीय और राज्य विश्वविद्यालयों में हिंदी साहित्य में एमए, एमफिल और पीएचडी पाठ्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। सभी सरकारी कार्यालयों में हिंदी आशुलिपि की सुविधा उपलब्ध है। वर्तमान में, भारत में अब हिंदी भाषा ने अंग्रेजी भाषा के वर्चस्व को तोड़ दिया है[8]

ऐसा प्रतीत होता है कि विशेषकर हिंदू व्यक्तियों के लिए हिंदी भाषा का मुद्दा भावनात्मक होने के साथ-साथ यह अब मातृभाषा का भी मुद्दा भी बन गया है। इस बात को हर कोई मानता है की हिंदी हिंदुओं की प्राथमिक भाषा है। हिंदी भाषा में संसाधनों की उपलब्धता और नई तकनीक ने हिंदी भाषा सीखने को संभव बना दिया है। वर्तमान में, भारत में अब हिंदी भाषा सीखना, लिखना और बोलना बहुत आसान है। यह कहा जा सकता है कि हिंदी नए सीखने वालों के लिए कठिन भाषा नहीं है क्योंकि हिंदी में वैश्विक सामग्री और पांडुलिपियां मौजूद हैं[9] नामी हिंदी पत्रिकाओं की मांग दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हमारे दैनिक जीवन में, हम रोजाना हिंदी साहित्य में प्रकाशित होने वाले शोध पत्र देख सकते हैं। अब हिंदी वैश्विक संचार की भाषा है। यह केवल बोलने तक ही सीमित नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी भाषा का महत्व नि:संदेह बहुत अधिक बढ़ा है। यह विश्व भर में एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में व्यापक रूप से उपयोग की जाती है। यह भारत की आधिकारिक भाषाओं में से एक है। हिंदी भाषा न केवल अर्थव्यवस्था, व्यापार और वाणिज्य के लिए एक शक्तिशाली भाषा माध्यम बनकर उभरी है बल्कि हिंदी भाषा अनुसंधान अध्ययन के लिए भी एक शक्तिशाली भाषा माध्यम बनकर उभरी है। इस समय हिंदी भाषा आम जनता के लिए एक बड़ा संचार माध्यम साबित हुई है[10]

यह हिंदी भाषा छात्रों को समृद्ध शिक्षण अवसर प्रदान करने के लिए सर्वोत्तम माध्यम है। यह हिंदी भाषा देश भर के सभी विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में शिक्षा का माध्यम भी है। आधुनिक समय में हिंदी भाषा का महत्व काफी बढ़ गया है क्योंकि यह हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं जैसे शिक्षा, व्यवसाय, यात्रा और संस्कृति को प्रभावित करती है। हिंदी सीखने से स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर रोजगार के कई अवसर खुलते हैं[11] हिंदी सीखने के भी कई बहुआयामी फायदे हैं। आज की परस्पर जुड़ी दुनिया में हिंदी संचार और भी महत्वपूर्ण हो गया है। यह सांस्कृतिक और भौगोलिक दूरियों को पाटने वाले सेतु का काम करता है। हिंदी में प्रभावी संचार न केवल व्यक्तिगत संबंधों को मजबूत करता है बल्कि व्यावसायिक अवसरों के नये दरवाजे भी खोलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी भाषा आधुनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई है जो शिक्षा, करियर की संभावनाओं, यात्रा और वैश्विक संचार को गहराई से प्रभावित करती है। इसका महत्व केवल भाषाई क्षमता तक ही सीमित नहीं है[12] यह हिंदी भाषा विभिन्न संस्कृतियों और महाद्वीपों के लोगों को जोड़ने वाले एक सेतु के रूप में कार्य करता है। हिंदी भाषा एक ऐसा माध्यम बन गई है जो अनगिनत तरीकों से सभी देशों के लाखों लोगों को जोड़ती है। वास्तव में, हिंदी सिर्फ एक भाषा से कहीं अधिक है। यह सीमाओं और संस्कृतियों के बीच एक सेतु के रूप में कार्य करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी भाषा तेजी से बदलती दुनिया में एकता का स्रोत है। इंटरनेट पर उपलब्ध अधिकांश शोध सामग्री और शैक्षिक सामग्री हिंदी में है जो इसे ऑनलाइन शिक्षा और डिजिटल साक्षरता के लिए अनिवार्य बनाती है। हिंदी भाषा का ज्ञान बहुराष्ट्रीय निगमों और आईटी, वित्त और चिकित्सा जैसे विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त प्रदान करता है। यह व्यवसायों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करने और वैश्विक बाजारों से जुड़ने में सक्षम बनाता है। हिंदी महज एक विषय से कहीं अधिक है यह हिंदी का ज्ञान 21वीं सदी में आगे बढ़ने के लिए एक मूलभूत कौशल है ऐसा प्रतीत होता है कि हिंदी का ज्ञान 21वीं सदी में लोगो के जुड़ाव का एक साधन है और अवसरों का उत्प्रेरक है जो संस्कृतियों को जोड़ता है और तेजी से परस्पर जुड़े हुए विश्व में व्यक्तियों को सशक्त बनाता है[13]

हिंदी भाषा का विस्तार:

वर्तमान समय में भारत वाणिज्य, व्यापार, डिजिटल मीडिया और अन्य सूचना-आधारित तकनीकों के मामले में दुनिया के सबसे बड़े निर्यातकों में से एक बनता जा रहा है। और ऐसा लगता नहीं कि यह रुझान जल्द ही रुकने वाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज

के वैश्वीकृत युग में लगभग सभी क्षेत्रों में हिंदी की प्रमुख भूमिका है। इक्कीसवीं सदी में, हिंदी के सामान्य भाषा के रूप में उपयोग होने से पूरी दुनिया परिचित हो गई है। इसे कई देशों द्वारा विश्व स्तर पर स्वीकार किया गया है। यह वैश्विक भाषा के रूप में हिंदी के महत्व पर प्रकाश डालता है। यह दर्शाता है कि हिंदी भाषा को यात्रा, पर्यटन और मनोरंजन जैसे क्षेत्रों की संचार की मुख्य भाषा के रूप में अपनाने से कैसे लाभान्वित हुआ जा सकता है[14]

यह कहा जा सकता है कि आजकल हिंदी टेलीविजन चौनल अच्छा प्रदर्शन कर रहा है। आज के बाजार तंत्र में हिंदी भाषा के पत्रकार अच्छी कमाई कर रहे हैं। हिंदी ने प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया समाचारों पर अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। सोशल मीडिया भी हिंदी माध्यम की खबरों से भरा पड़ा है। भारत के आम लोग फेसबुक और इंस्टाग्राम पर हिंदी माध्यम में वीडियो अपलोड करना पसंद करते हैं। गूगल और चौटजीपीटी ने लोगों के लिए हिंदी भाषा की सामग्री तक पहुंच संभव बना दी है[15] बॉलीवुड में अधिकतर फिल्में हिंदी भाषा में बनती हैं। हिंदी वृत्तचित्र फिल्मों ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कई पुरस्कार जीते हैं। भारतीय हिंदी फिल्मों को वैश्विक पहचान मिल चुकी है। भारतीय हिंदी फिल्मों के अभिनेता और अभिनेत्रियां वैश्विक स्तर पर प्रसिद्ध हैं। अब भारतीय न्यायालयों में लिखित कानूनी मसौदा सामग्री हिंदी माध्यम में उपलब्ध है। भारतीय अदालतों में बहस का सबसे आम माध्यम हिंदी है। हिंदी की भूमिका को आज के जीवन में नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 343 हिंदी भाषा से संबंधित है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 344 हिंदी के प्रगतिशील उपयोग और अंग्रेजी पर लगे प्रतिबंधों की समीक्षा के लिए संसद के एक आयोग और समिति का प्रावधान करता है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 351 संघ को हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देने, इसे भारत की मिश्रित संस्कृति के माध्यम के रूप में विकसित करने और अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को आत्मसात करके इसे समृद्ध करने का निर्देश देता है। भारतीय संविधान कहता है कि हिंदी भाषा का विस्तार राज्य और केंद्र सरकार द्वारा किया जाना चाहिए। भारतीय संविधान कहता है कि हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार करना भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। भारतीय संविधान ने भाषाई विविधता को भी बढ़ावा दिया है[16]

निष्कर्ष

यह कहा जा सकता है कि यह हिंदी भाषा शिक्षा, मीडिया, व्यापार और कूटनीति की भाषा है। भारत के प्रत्येक पुस्तकालय में हिंदी साहित्य और हिंदी सामग्री का विशाल भंडार उपलब्ध है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हिंदी भाषा के विस्तार में इंटरनेट ने बड़ी भूमिका निभाई है। अब भारत सरकार विदेशी सरकारों के साथ समझौते हिंदी भाषा में करती है। कई विदेशी विश्वविद्यालयों ने हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए अपने विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना की है। अब भारतीय सरकार की सभी राजनयिक वार्ताएं, चर्चाएं और चौनल हिंदी भाषा में उपलब्ध हैं। भारतीय सरकार विदेशी सरकारों पर हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए दबाव डाल रही है। यह एक सच्चाई है कि जहां हिंदू हैं वहां हिंदी भाषा है। हिंदू प्रवासी समुदाय विदेशी भूमि पर हिंदी भाषा के विस्तार के लिए पर्याप्त काम कर रहा है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि विदेशों में रहने वाले भारतीय प्रवासी हिंदी भाषा को बढ़ावा दे रहे हैं। आज के समय में सर्वश्रेष्ठ भारतीय कोचिंग और ट्यूशन हिंदी माध्यम में उपलब्ध हैं। 21 वीं सदी में भारत में सर्वोत्तम गुणवत्ता वाली शिक्षा हिंदी माध्यम में उपलब्ध है। हर कोई अपने व्यवसाय का विज्ञापन हिंदी माध्यम में करवाना चाहता है। अब क्रिकेट और अन्य सभी खेलों की कमेंट्री हिंदी माध्यम में उपलब्ध है। मोदी सरकार ने हिंदी के विस्तार, अनुसंधान और हिंदी की शिक्षा में अधिक धन का निवेश किया है। भारत में हिंदी भाषा को विभिन्न संवैधानिक अनुच्छेदों और प्रावधानों के माध्यम से संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। यह कहा जा सकता है कि भारत में हिंदी का विकास दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि 21वीं सदी में, भारत में हिंदी ने पहले से कहीं अधिक अभूतपूर्व प्रगति हासिल की है।

संदर्भ सूची:

1. रमेश तिवारी. 'गाँधीजी और हिंदी भाषा.' भारतीय आधुनिक शिक्षा, 40.3, 2020, 73-78.
2. प्रियंका रानी। 'सोशल मीडिया हिंदी भाषा की स्थिति पर', डीलिस्टिक जर्नल ऑफ एडवांस्ड रिसर्च इन प्रोग्रेसिव स्पेक्ट्रम,1(5),2022,4-11.
3. नीलम और मधुबाला शर्मा,. 'हिंदी भाषा की उपयोगिता और वर्चस्वी प्रसार, साहित्य संहिता, 5.11, 2019, 9-22.
4. मोनिया दीक्षित. 'हिंदी भाषा में समाजशास्त्र: अवस्था और अवसर.' अमृत काल, 1.2, 2023,1-7.
5. विजय कुमार राइसा, 'प्रारंभिक स्तर पर हिंदी शिक्षण भाषा में उभरती प्रवृत्तियाँ एवं नवीन शिक्षण पद्धतियाँ, शैक्षिक प्रवृत्ति (आरआईई, अजमेर-एनसीईआरटी का एक जर्नल) ,3.2 ,2022 ,25-33.

6. रशिम श्रीवास्तव. 'भारत में बहुभाषिता तथा हिंदी भाषा शिक्षण की चुनौतियां एवं समाधान.' भारतीय आधुनिक शिक्षा, 38.3, 2018, 38-49.
7. विक्रम शेखावत और गौतम सिंह, 'हिन्दी भाषा और आधुनिक भारत: विश्लेषण,' अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका (इंटरनेशनल पत्रिका) ,6.1,2018, 47-58.
8. पीताम्बर साहू, 'हिंदी भाषा की पार्टी पुस्तक भारत में महिलाओं के प्रतिनिधित्व का अध्ययन.' भारतीय आधुनिक शिक्षा, 38.2,2017, 97-106.
9. पदमा प्रधान, 'माध्यमिक स्तर पर हिंदी भाषा शिक्षण में सहकारी अधिगम विधि की प्रभावशीलता.' भारतीय आधुनिक शिक्षा, 40.2, 2019, 62-73.
10. आदित्या पटेल, 'हिंदी भाषा के व्याकरण में विद्यमान समस्याएँ और समाधान.' अमृत काल, 1.2, 2023, 8-14.
11. अशोक कुमार. 'हिंदी भाषा का सामाजिक प्रभाव.' अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 12.2, 2024, 11-26.
12. बृजेन्द्र कुमार अग्निहोत्री. 'हिंदी संपादन कला.' पूर्वोत्तर प्रभा , 2.1, 2022,:33-43.
13. दीपमाला. 'शिक्षण में भाषा की भूमिका.' प्राथमिक शिक्षक, 40.3, 2016, 31-35.
14. बीना माथुर. 'मुगलकाल मे हिंदी.' अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 3.1,2015, 88-91.
15. वैशाली जायसवाल, 'आत्म निर्भर भारत में भारतीय भाषा का महत्व्व.' साहित्य संहिता, 7.5, 2021, 32-38.
16. सुनीता कुमारी और गीता कपिल, 'हिंदी और हरियाणवी बोलियों का अध्ययन,' अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 12.1, 2024, 7-23.

भारतीय ज्ञान परंपरा और ऋग्वेदिक सूक्तों की स्त्री मंत्र द्रष्टा : ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाओं के विशेष सन्दर्भ में

डॉ० मुक्ता मणि

सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना-800004, बिहार

सारांश :

भारतीय संस्कृति, ज्ञान एवं दर्शन ने हमेशा ही विश्व को प्रभावित किया है। भारतीय परम्परा में ज्ञान को मोक्ष का पर्याय माना गया है। इस ज्ञान के सृजन एवं परम्परा के निर्वहन में नि:संदेह हमारे ऋषियों की महती भूमिका रही है, किन्तु स्त्रियों (विशेषकर वैदिक कालीन स्त्रियों) की भूमिका को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता है ।वैदिक मान्यता में स्त्री और पुरुष को एक दूसरे का पूरक कहा गया है। आज के परिप्रेक्ष्य में स्त्री को भले ही दोयम दर्जा प्राप्त है, लेकिन वैदिक काल की स्त्रियाँ

परिचय :

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया: ।। मनुस्मृति 3/56 ।।

अर्थात्, जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती है, उनका सम्मान नहीं होता है वहाँ किये गये समस्त अच्छे कर्म निष्फल हो जाते हैं (जोशी, 2009)। उक्त कथन भारतीय संस्कृति में स्त्रियों के सम्मान एवं उनके उच्च स्थान का द्योतक है। वैदिक मान्यता में स्त्री और पुरुष को एक दूसरे का पूरक कहा गया है। पुरुष के अंदर स्त्रीत्व एवं स्त्री के अंदर पुरुषत्व का होना ही एक सम्पूर्ण मनुष्य होने का परिचायक है। भारतीय संस्कृति में भगवान शिव की कल्पना भी 'अर्धनारीश्वर' के रूप में की गई है। आशय यह है कि भले ही आज के परिप्रेक्ष्य में स्त्री को दोयम दर्जा प्राप्त है, लेकिन वैदिक संस्कृति में स्त्री और पुरुष दोनों के कर्तव्य तथा प्रतिष्ठा समान थें। वैदिक काल की स्त्रियाँ दुर्बल नहीं थीं, वे झूठी वर्जनाओं से सर्वथा मुक्त थीं। सामाजिक-सांस्कृतिक और आध्यात्मिक क्रिया-कलापों में उनकी सक्रिय एवं सुनिश्चित भूमिका थी। बृहदारण्यक उपनिषद में ऐसे संस्कार की चर्चा है जिससे ऐसी पुत्री प्राप्त हो जो उच्च शिक्षा प्राप्त कर विदुषी बन सके।

अथ ये इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्।
ईश्वरौ जनयितवै ।। (बृहदारण्यक उपनिषद 6. 4. 17)

बालिकाएँ मौनजीबंधन (अर्थात उपनयन), वेदों के अध्ययन,और सावित्री वाचन (सावित्री मंत्र का उपयोग) के लिए पात्र थीं। वे ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों का पालन करती थीं, लेकिन कुछ नियमों के पालन से उन्हें मुक्त रखा जाता था, जैसे -उन्हें हिरण की खाल या छाल के वस्त्र पहनने की अनिवार्यता नहीं थी और ना ही उन्हें उलझे हुए बाल रखने थे। मूर्ति ,1997 ने उपनयन संस्कार पर अध्ययन में निम्नलिखित मंत्र (जो यम स्मृति से लिया गया है और संस्कार प्रकाश, पृ. 402-403 पर इसका उद्धरण मिलता है) का वर्णन किया है -

पुराकल्पे तु नारिणां मौंजीबंधनमिष्यते। अध्यापनं च दानां सावित्रीवाचनं तथा ।
पिता पितृव्यो भ्राता व् नामध्यापयेत्पर:। स्वगृहेचौवच कन्याया भेक्षचर्या विधियते ।।
वर्जयेदजिनं चिरं जटाधारणमेवच ।।

ऋषियों की भांति स्त्रियों को भी मंत्रों के अर्थ दर्शन और उस ज्ञान को अपने आचरण द्वारा प्रकट करने का अधिकार प्राप्त था। गुरुकुल में शिक्षिकाएँ थीं जिन्हे 'उपाध्यायी' अथवा 'आचार्यनी' कहा जाता था, शिक्षा के प्रचार प्रसार में उनकी अग्रणी भूमिका थी (कुण्डलिया एवं तिवारी, 2022)। उच्च शिक्षा अर्जित करने वाली स्त्रियाँ 'ब्रह्मवादिनी' कहलाती थीं, अर्थात 'ब्रह्म' की बात करने वाली स्त्री। यह उपाधि उन स्त्रियों को प्राप्त थी जो विदुषियाँ तो थीं, किन्तु अपनी इच्छानुसार गृहस्थ जीवन व्यतीत कर सकती थीं। 'ऋषिकाएँ' उन स्त्रियों को कहा गया जो बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चेतना हेतु सांसारिक सुखों का त्याग कर देती थीं। ऋषियों की तुलना में ऋषिकाओं को विशेष अधिकार प्राप्त थें और उन्हें कई ऐसे नियमों से मुक्त रखा गया था जो प्राय: ऋषियों के लिए अनिवार्य था।

उदाहरणस्वरूप, वे अपने माता -पिता के साथ रहते हुए अध्ययन कर सकती थीं (कुण्डलिया एवं तिवारी, 2022)। ऐसे अनेक प्रमाण हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि स्त्रियों को वेद, वेदान्त के अध्ययन, धार्मिक अनुष्ठान, दार्शनिक बहस, एवं तप हेतु योग्य माना जाता था।

अध्ययन के अतिरिक्त वैदिक काल की स्त्रियों को अनेकों ऐसे अधिकार प्राप्त थे जो उन्हें अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने के योग्य बनाते थे। स्वयंवर की व्यवस्था के अंतर्गत पिता के घर पर (पितृपदम् व्यक्त) परिपक्व होने पर वे अपने लिए जीवनसाथी भी स्वयं ढूंढ सकती थीं। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में इसके प्रमाण मिलते हैं (पाण्डेय ,1949)-

"अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि" ।।21।। (ऋग्वेद 10.85.21)

यजुर्वेद में भी इस प्रकार का वर्णन मिलता है -

"उपयां गृहतोऽस्यादित्येभयंस्तवा विष्णं उरुगायैष ते सोमस्तं रक्षस्व मा त्वां दभन्" ।।1।। (यजुर्वेद 8.1)

(अर्थात, वैसी पुत्री जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, जिसने अपना अध्ययन पूर्ण कर लिया हो, उसका विवाह वैसे वर से किया जाना चाहिए जो उसी के समान ज्ञानी हो)

विवाह के बाद, वे 'गृहिणी' (पत्नी) बन जाती थी और उन्हें 'अर्धांगिनी' नहीं बल्कि गृहस्थी की 'सम्राज्ञी' माना जाता था। धार्मिक गतिविधियों में उनकी समान हिस्सेदारी थी। एक गृहस्थ को यज्ञ करने का पात्र तब माना जाता था जब उसके साथ उसकी पत्नी हो (धर्मविकी,2023)। तैत्तिरीय ब्राह्मण (3.3.3.1.) में उस व्यक्ति को यज्ञ करने की मान्यता नहीं दी गई है जिसकी कोई पत्नी नहीं है।

अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः। (तै. ब्राह्म. 3.3.3.1.)

यद्वै पत्नी यज्ञस्य करोति मिथुनं तदथो पत्निया एव। (तै. संहिता 6.2.1.1)

तैत्तिरीय संहिता में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यज्ञ में पति एवं पत्नी दोनों की भागीदारी आवश्यक है। विशेष परिस्थितियों में (जैसे- यदि पति दूर-दराज के स्थानों पर जाता है या यदि वह अस्वस्थ है), तब पत्नी स्वयं भी यज्ञ कर्म कर सकती है। वाल्मीकि रामायण में, कौशल्या द्वारा अपने बेटे श्री राम को उत्तराधिकारी के रूप में देखने हेतु अकेले यज्ञ करने का प्रमाण मिलता है -

सा क्षोमवसना हृष्टा नित्यंव्र तपरायणा।

अग्निं जुहोती स्म तदा मंत्रवत्कृतमंगला ।। (वाल्मीकि रामायण 2.20.15)

वाल्मीकि रामायण में माता सीता के द्वारा भी लंका में संध्या क्रियाएँ करने का वर्णन प्राप्त होता है -

संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।

नदीं चेमां शुभजलां संध्यार्थे वरवर्णिनी ।। (वाल्मीकि रामायण 5.14.49)

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है वैदिक काल में स्त्रियाँ कितनी सशक्त थीं, ज्ञान- विज्ञान के विभिन्न आयामों में और प्रायः सभी क्षेत्रों में उनकी पहुँच थी। उनकी बौद्धिक उत्कृष्टता का प्रमाण वेदों में वर्णित कुछ उच्च शिक्षित ऋषिकाओं एवं ऋग्वैदिक सूक्तों की स्त्री मन्त्र द्रष्टाओं जैसे घोषा, रोमशा, विश्ववारा इत्यादि के उच्च दार्शनिक विचारों से सिद्ध होता है।

प्रमुख ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाएँ :

ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाएँ वैदिक युग के विदुषी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। आचार्य शौनिक ने इनकी संख्या 27 बताई है। 'आधिदेवीकाध्याय' में 'ऋषिका संहिता' के अंतर्गत ब्रह्मवादिनीयों की संख्या 30 बताई गई है (शुक्ल,2018)-

घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपन्निषत्। ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्तस्य स्वसादितीः ।।

इंद्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी। लोपामुद्रा च नध्यश्च यमी नारी च शश्वती ।।

श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा। रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ।।

(बृहद्देवता 2/82-84)

वेदमन्त्रों के कुल ऋषि लगभग 525 हैं, जिनमे 27 ऋषिकाएँ हैं (विद्यालंकार ,1995,पृ 22)। ऋषियों की तुलना में इनकी संख्या बहुत कम है, उनके द्वारा द्रष्ट मंत्रों की संख्या भी कम है, किन्तु वैदिक वाङ्मय में उनका एक विशिष्ट स्थान है। उदहरणस्वरूप, विश्ववारा आत्रेयी की ऋग्वेद में मात्र 6 ऋचाएँ हैं जो ऋग्वेद के पाँचवे मण्डल में आती हैं और इनमें अंतिम दो मंत्र 'समिध्यमाना' और 'समिधवती' ऋचाओं के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन दो मंत्रों को यज्ञ संस्था का प्रवेश द्वार माना जाता है और 'अग्नि समिन्धन कर्म' इन ऋचाओं को पढे बिना पूर्ण नहीं होता है (शुक्ल,2018)। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ भी ऋषिओं के समान स्वतंत्र रूप से देवताओं की स्तुतियाँ करती थीं और सोम पान के लिए उनका आह्वान करती थीं (आर्य, 2016)। वैदिक कालीन कुछ प्रमुख ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाओं की चर्चा निम्नलिखित की गई है -

1. ब्रह्मवादिनी लोपा मुद्रा (ऋग्वेद 1/179 /1,2)-

लोपा मुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी थी एवं इनका वैदिक काल में अद्वितीय स्थान था। ऋषिका जीवन को परिपूर्णता में देखती हैं। ऋग्वेद में ये सिर्फ दो ऋचाओं की द्रष्टा हैं और यजुर्वेद में उनके द्वारा रचित कुल पाँच मंत्र हैं। उनका कथन है -"सत्य की उपलब्धि के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य अनिवार्य शर्त नहीं है। चरम सत्य की प्राप्ति उन्हें भी हुई है जिन्होंने गृहस्थ सुख का अनुभव किया है। यह बात स्त्री और पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू होती है"। (ऋग्वेद 10/178/2)। लोपा मुद्रा कहती हैं -"ये चित्त ही पूर्वे ऋतसापः आसन, देवेभिः साकम् अवदन ऋतानि। आशय यह है की हमारे पूर्वज जो सत्य सवरूप हो गए थे, वे भी जीवन के काम-जन्य सुख से वंचित नहीं थे।

ऋषिका के द्वारा रचित 5 मंत्र जो यजुर्वेद में हैं, उनका यज्ञकर्म में अत्यंत महत्व है। यज्ञीय अनुष्ठान में अग्नि परिसेचन लोपामुद्रा के मंत्रों द्वारा ही होता है (शुक्ल,2018)। ऋषिका कहती हैं -

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन ये ब्रह्मणःपुर एतारो अस्य।
येभ्यो न ऋते पवते धाम किंचन न ते दीवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ।। (यजुर्वेद 14)

अर्थात, जिन देवों ने देवत्व का प्रमुख अधिकार पा लिया है, जिन देवों के आशीष बिना शरीर किसी प्रकार की चेष्टा नहीं कर सकता, वे देव न तो स्वर्गलोक में हैं, ना ही पृथ्वी पर हैं, वे देव समस्त इंद्रियों में इसी शरीर में विराजते हैं। उनका संदेश स्पष्ट है की देवता सब में व्याप्त हैं, हमारे शरीर में हैं और यह कोई और नहीं बल्कि यह अग्नि है ,प्राण है ,शक्ति है। वास्तव में यह मन की इच्छाशक्ति है। मनुष्य यदि चाहे तो अपनी इच्छाशक्ति को जागृत कर, अपने भीतर के 'ब्रह्म' से साक्षात्कार कर सकता है। इस प्रकार लोपा मुद्रा जहां कामशक्ति को जीवन की ऊर्जा के रूप में देखती हैं, वहीं जीवन को दिव्य एवं अर्थपूर्ण बनाने हेतु प्राण अग्नि की साधना (मन की इच्छाशक्ति) पर भी बल देती हैं। इस प्रकार योग -भोग के सामंजस्य से जीवन को परिपूर्ण बनाने का संदेश देती हैं।

2. रोमशा (ऋग्वेद 1/126 /7)-

उपोप में परा मृश मा में दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गंधारीणामिवाविका ।।(ऋग्वेद 1/126 /7)

उपर्युक्त मंत्र की ऋषिका रोमशा है जो सिंधुराज भावभव्य की पत्नी एवं ऋषि बृहस्पति की पुत्री थीं। यह मंत्र राजा और उनकी पत्नी रोमशा के बीच का एक संवाद है, जिसके द्वारा ऋषिका कहती हैं - "मेरे पास आकर आश्लेषण कर / परामर्श कर। मेरे अल्प रोमो को अथवा सामर्थ्य को अल्प मत समझ। मैं सब जगह रोम वाली हूँ, गंधार देश की भेड़ों के समान"। ऋषि दयानंद सरस्वती ने इस मंत्र का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया है कि राजा को अपनी रानी को कम नहीं समझना चाहिए, राज्य के रक्षण कर्म में उससे परामर्श करनी एवं सहायता लेनी चाहिए। ऋषिका का सहज संदेश यह है कि मैं (अर्थात् पत्नी) आपसे (पति से) न्यून नहीं हूँ -"अहं भवतो न्यूनास्मि"। आप पुरुषों के न्यायाधीश है तो मैं स्त्रियों की न्यायाकारिणी हूँ। संदेश यह है कि पति अपनी पत्नी को छोटा ना समझे, उसकी उपेक्षा ना करें, उससे पारिवारिक, सामाजिक, एवं ज्ञान के क्षेत्र में परामर्श करें। (ऋग्वेद 1/126 का ऋषि दयानंद सरस्वती कृत भाष्य, शुक्ल 2018)। आज के युग में भी ऋषिका रोमशा द्वारा रचित यह सूक्त प्रासंगिक है और समाज के लिए एक संदेश है की पत्नी (स्त्री) उपेक्षा की पात्र नहीं है, गृहस्थ जीवन में उनके विचार भी महत्वपूर्ण है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि यह बात लोग समझ जाएँ, तो पारिवारिक विघटन की समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी।

3. विश्ववारा आत्रेयी (ऋग्वेद 5/28)-

विश्ववारा आत्रेयी, अत्री ऋषि की पुत्री हैं। आधिदैविकाध्याय नामक ग्रंथ (पृ. 55) में विश्ववारा को अत्रीवंश में उत्पन्न ब्रह्मवादिनी कहा गया है। ऋग्वेद में ऋषिका की 6 ऋचाएं पाँचवे मण्डल में प्राप्त होती है। यजुर्वेद संहिता में इनके 2 मंत्र हैं(शुक्ल,2018)।

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिर श्रेत्प्रत्यङ्उषसमुर्विया वि भाति।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवां ईलाना हविषा धृताची ।। (ऋग्वेद 5/28/1)

ऋषिका कहती हैं -"सम्यक् रूप से प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला द्युलोक में, निर्मल प्रकाश की ओर उठ रही है। वह अपनी ज्योति का विस्तार कर रही है। उषा को सामने रख कर, मैं विश्ववारा निर्मल प्रकाश से दीप्त समर्पण की क्रियाओं के द्वारा हवि के सहित देवों को खोजती हुई ऊर्ध्वारोहण कर रही हूँ"।

विश्ववारा ऋषिका की दो ऋचाओं का यज्ञ की दृष्टि से बहुत महत्व है। इन्हे सामधेनी ऋचाएं कही गई हैं जो दर्शपौर्णमास्य यज्ञ (जो यज्ञ अमावस और पूर्णिमा को किया जाता है) का अभिन्न अंग है (शुक्ल,2018)।

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर।
त्वं हि हव्यवाट् असि ।। (ऋग्वेद 5/28 /5)

उपर्युक्त ऋचा को 'समिध्यमाना' ऋचा कहा गया है। इसके द्वारा विश्ववारा अग्निदेव से प्रार्थना करती है –"हे, हमारी हवियों को ग्रहण करने वाले अग्निदेव ! हे यज्ञ के पूर्ण पथ प्रदर्शक ! तू सुप्रदीप्त होकर देवों को हमारी हवि अर्पण करें क्योंकि तू ही देवों की हवि का वाहक है"।

इस ऋचा में यह बताया गया है की अग्नि समिद्ध हो गया है, किन्तु जिस कर्म के लिए अग्नि समिद्धन किया गया है, उसके लिए आहुति आवश्यक है। ऋषिका की अगली ऋचा जिसे 'समिद्धवती' ऋचा कहा गया है जिसमें वह आहुति यज्ञ कर्म सम्पन्न करने के लिए निर्देशित कर रही हैं –

आ जुहोता दुवस्यता अग्निम्प्रत्ययध्वरे।
वृणीध्वं हव्यवाहनम् ।। (ऋग्वेद 5/28 /6)

इन ऋचाओं के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि सनातन धर्म में अग्नि को पवित्र माना गया है। मनुष्य की इच्छाशक्ति अथवा संकल्प शक्ति ही अग्नि का सूक्ष्म रूप है जो मनुष्य में सतत क्रियाशील जीवन शक्ति को पैदा करता है। ऋषिका इस संकल्प अग्नि को पथ प्रदर्शक मानती हैं और संदेश देती हैं कि हमें अपने अंदर की संकल्प अग्नि को प्रज्वलित करना होगा, अपनी आंतरिक शक्तियों को जगाना होगा और फिर उसे कर्म के रूप में रूपांतरित कर के अपने जीवन को प्रकाशमान बनाना होगा। मनुष्य में निहित इच्छा जो सामान्य रूप से प्रसुप्त अवस्था में रहती हैं, वही स्तुति, प्रार्थना, उपासना एवं श्रेष्ठ कर्म की तपस्या से जब संकल्प रूप में प्रज्वलित हो जाती है, तो यह अग्नि उस सामान्य मनुष्य को ऋषि बना देती है।

4. ऋषिका गोधा (ऋग्वेद 10/134)

ऋषिका गोधा का ऋषित्व ऋग्वेद की 1/1/2 ऋचाओं में और सामवेद के भी 1/1/2 मंत्रों में दृष्टिगोचर होता है। बृहद्देवता ग्रंथ में शौनिक ऋषि ने स्त्री द्रष्टाओं में इनके नाम की भी गणना की है (बृह. दे. 2/82)। आचार्य सायण ने ऋग्वेद के भाष्य में 10 मण्डल के 134 वें सूक्त के 6 वें मंत्र का उत्तरार्ध और सातवें मंत्र की द्रष्टा, ऋषिका गोधा को स्वीकार किया है (शुक्ल,2018) –

"पूर्वेणत्यर्धर्चसंहिताया : सप्तम्यास्तु 'गोधा'' नाम ब्रह्मवादिन्यऋषि:"।

गोधा ऋषिका बृहस्पति ऋषि की प्रपौत्री हैं। यह आत्मविश्वास से भरी ऐसी ब्रह्मवादिनी हैं जो अपने कृत कर्मों को उद्घोषित करती हुई देवताओं को यज्ञ में पधारने हेतु आमंत्रित करती हैं।

नकिर्देवा मिनी मसि नकिरा योपयामसी मंत्र श्रुत्यम्चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ।।(ऋग्वेद 10/134/7)

उपर्युक्त ऋचा में ऋषिका समस्त देवगणों को यज्ञकर्म आरंभ करने से पूर्व संबोधित करते हुए कहती हैं –"हे देवगणों, हम कुछ भी हिंसा नहीं करते, नाहि हम किसी कर्म /अनुष्ठान में शिथिल होते हैं। हमारे समस्त आचरण, मंत्र और श्रुति के अनुसार ही होते हैं। यहाँ हम सब प्रकार के स्तोत्रों द्वारा हवियों के द्वारा, यज्ञ कर्म का सम्पन्न कर रहे हैं। हे समस्त देवगणों ! इस यज्ञ में पधारो। आशय यह है कि जीवन में शुद्धता, संयम और सदाचार से ही मनुष्य में आत्म गौरव की भावना आ सकती है और वह अंत: करण से श्रेष्ठ हो ईश्वर का वंदन करने के योग्य बन सकता है।

5. ऋषिका इंद्राणी (ऋग्वेद 10/145)-

ऋग्वेद के दशम मण्डल में वृषाकपि, इन्द्र, और इंद्राणी का परस्पर संवाद उपलब्ध होता है (आर्य, 2016)। इंद्राणी ऐसी विदुषी के रूप में जानी जाती हैं जिन्होंने औषधि विज्ञान के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी है।

इमाम्खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ।। (ऋग्वेद 10/145/1)

प्रस्तुत सूक्त द्वारा ऋषिका इंद्राणी कहती हैं –" मैं स्वयं इस सर्वाधिक बलवती औषधि को खोद कर निकल रही हूँ। इस औषधि द्वारा पति का प्रेम प्राप्त किया जाता है"।

उत्तानपर्णे सुभगे देवजुते सहस्वति ।
सपत्नी में परा धम पति में केवलं कुरु ।। (ऋग्वेद 10/145/2)

इस सूक्त में 'उत्तनपर्णा' ,'पाठा' (घृतकुमारी) नाम की औषधि की स्तुति की गई है। यह सूक्त इस बात की ओर संकेत देती है कि ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाओं में भी औषधियों की समझ थी और उन्होंने औषधियों के शारीरिक और मानसिक प्रभावों का भी अध्ययन किया है। उन्होंने संदेश दिया है की औषधियाँ तेजस्वती होती हैं, इन्हें जानना चाहिए। किन्तु इनका उपयोग एवं प्रयोग की विधि उनके गुणधर्मों को तय करती है। ये औषधि किसी को लाभ दे सकती हैं, वहीं किसी के लिए हानिप्रद भी हो सकती हैं। इसलिए इनका उपयोग सोच समझ कर करना चाहिए। स्पष्ट है ऋग्वेद की स्त्रियाँ औषधि विज्ञान में भी निपुण थीं।

6. दक्षिणा प्रजापत्या (ऋग्वेद 10/107)

इन्होंने जिस सूक्त की रचना की है, उसमें कुल 11 ऋचाएँ हैं। ये सभी ऋचाएँ दक्षिणा से संबंधित है। प्रथम मंत्र द्वारा ऋषिका दक्षिणा देने की आदर्श स्थिति कहती हैं -

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणायाः अदर्शि ।। (ऋग्वेद 10/107 /1)

प्रस्तुत मंत्र द्वारा ऋषिका कहती हैं -"इन्द्र का महान तेज प्रकट हो चुका है, अर्थात सूर्य प्रकट हो चुका है। चूंकि संध्याकाल या रात्रि में यज्ञ का निषेध है, इसलिए यजमानों की यज्ञ सिद्धि के लिए सूर्य निकल चुका है और पितरों द्वारा प्रदत्त ज्योति भी आ गई है। ऐसे मुहूर्त में दक्षिणा का पथ दिखाई दे रहा है" (शुक्ल, 2018)। इस मंत्र से ऋषिका यह संदेश देना चाहती है कि दक्षिणा यज्ञ कर्म को समृद्ध करती है, उसे पूरा करती है, इसलिए प्रातः होने पर ही हमें यज्ञ कर्म की सिद्धि करनी चाहिए। आगे के मंत्र में ऋषिका ने दक्षिणा के लिए पात्रता की चर्चा की है -

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देव यज्या नकवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोवद्यभिया बहवः पृणन्ति ।। (ऋग्वेद 10/107/3)

ऋषिका कहती हैं कि जो कुटिल हैं, जिन्हें पाप का भय नहीं है वे दक्षिणा के अधिकारी नहीं हैं। दक्षिणा वे देते हैं जो कर्मठ हैं और श्रद्धा से विधिपूर्वक यज्ञ कर्म करते हैं। इसे इस प्रकार से भी समझ जा सकता है जो मनुष्य श्रेष्ठ आचरण एवं कर्म करते हैं, वे ही 'दक्षिणा' अर्थात अभीष्ट फल को प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। ऋषिका ने निम्नलिखित ऋचा द्वारा दक्षिणावान मनुष्य की प्रशंसा की है -

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासनम् ।।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्त्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ।। (ऋग्वेद 10/107/6)

दक्षिणा पाने वाले और दक्षिणा प्रदान करने वाले, दोनों से अपेक्षा की जाती है कि उनमें अंतर्ज्ञान हो, विवेक हो, एवं संकल्प शक्ति हो। श्रेष्ठ कर्म करना, समष्टि के हित में समर्पण करना -ये सभी गुण ही व्यक्ति को योग्य बनाते है। इन गुणों से युक्त मनुष्य ही ऋषि, राजा -पालक कहलाने का पात्र है (शुक्ल, 2018)।

7. ऋषिका वाग् आभ्भृणी (ऋग्वेद 10/125)-

यह ब्रह्मवादिनी अम्भृण ऋषि की पुत्री हैं। यह ऐसी विदुषी स्त्री के रूप में जानी जाती हैं जिन्होंने तपस्या से परब्रह्म परमात्मा की शक्ति से तादात्म्य कर लिया है। तप के द्वारा इन्होंने स्वयं को इस प्रकार सिद्ध किया कि इनकी ऋचाओं में भी विश्व चेतना का स्वर दिखता है। इनकी 8 ऋचाओं को 'वाक् -सूक्त' कहा गया है। 'वाक' है ब्रह्म की अभिव्यक्ति की शक्ति। यह सारा जगत ब्रह्म की अभिव्यक्ति है, ब्रह्म की सत्ता है एवं इसी से तादात्म्य कर ऋषिका सूक्त का गायन कर रही हैं (शुक्ल, 2018)-

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहम्नादित्यैरुत विश्व देवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।(ऋग्वेद 10/125/1)

ऋषिका कहती हैं हम जिस शक्ति के द्वारा स्वयं को व्यक्त करते हैं उसे ही 'वाक्' कहा जाता है। अर्थात वाक् आत्मा की 'स्व' है और वाणी वाक् का स्थूल रूप है। जब यह अव्यक्त रूप में होती है तब वह परमात्मा की ही शक्ति है जो हमारी अभिव्यक्ति को साकार करती है। तभी तो उपरोक्त मंत्र द्वारा ऋषिका कहती हैं, "मैं रूद्रों, वसुओं, आदित्यों और विश्वदेवों के साथ विचरती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनों को धारण करती हूँ। मैं ही इंद्राग्नी और अश्विनौ युगलों को धरण करती हूँ"। अर्थात, वाक् शक्ति ही समस्त देवों का स्वरूप है (शुक्ल,2018)-

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुतपूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यज्ञमानाय सुन्वते ।।(ऋग्वेद 10/125/2)

ऋषिका फिर कहती हैं -"मैं शत्रुहन्ता सोम को धारण करती हूँ। मैं ही त्वष्टा (सृजन शक्ति), पूषा (पोषण, आनंद एवं ऐश्वर्य की शक्ति) और भग (पाप और पीड़ा की नाशक शक्ति) देवता को धारण करती हूँ। मैं उत्तम हवियों से देवों के तृप्त करने वाले, सोम का अभिषव करने वाले यजमान के लिए धन प्रदान करती हूँ"। ये तीनों शक्तियां ही इच्छा -ज्ञान-क्रिया वाक् में ही निहित है।

अहं राष्ट्री संगमनी वसुनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरूत्रा भूरिस्थात्रां भूयार्वेशयन्तीम् ।। (ऋग्वेद 10/125/3)

ऋषिका आगे कहती हैं, "मैं राष्ट्र की स्वामिनी हूँ, ऐश्वर्य शक्ति। मैं धन को, वस्तुओं के सार तत्व को प्राप्त करने वाली हूँ। यज्ञ में प्रथम पूजनीय हूँ। मैं विविध रूपों में विद्यमान हूँ, समस्त जीवों में आविष्ट होती हूँ। इसलिए देवगण भी विविध रूपों में मुझ को प्रतिपादन किया करते हैं"(शुक्ल, 2018)।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टम्देवेभिरुत मानुषेभि :।
यं कामये तंत मुग्रं कृणोमि तं ब्रहाणाम तमृषि तं सुमेधाम् ।। (ऋग्वेद 10/125/5)

आशय यह हैं की जिस ज्ञान को देव और मनुष्य श्रद्धा पूर्वक मनन करते हैं, अनुभव करते हैं, वह ज्ञान कोई और नहीं अपितु हमारी 'वाक् शक्ति' है। यह शक्ति किसी भी मनुष्य को बलवान बना सकती है, ऋषि और मेधावी बना सकती है। वाक् शक्ति सब करने में समर्थ है, स्वतंत्र है, वह चित्त रूप है, वह परमात्मा की आत्म शक्ति है। यह ब्रह्म के एकत्व को अनेकत्व में अभिव्यक्त करने वाली, एवं ब्रह्म के आत्म अभिव्यक्ति की शक्ति है।

8. श्रद्धा कामायनी (ऋग्वेद 10/151)-

ऋग्वेद में इनके द्वारा सिर्फ 5 मंत्रों की रचना की गई है (आर्य, 2016)। इनके अनुसार श्रद्धा के बिना कर्म समृद्धि नहीं हो सकती है। श्रद्धा न केवल हमारी भोग की इच्छाओं की पूर्ति करती हैं बल्कि वह हमारी मन की शक्तियों का उन्नयन करती है। इसलिए श्रद्धा, संकल्प शक्ति के साथ सतत कर्म करना जीवन को परिपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है। प्रस्तुत मंत्र के द्वारा ऋषिका स्पष्ट करती हैं कि श्रद्धा से ही अग्नि के समिन्धन कर्म सम्पन्न होता है, अग्नि में हवि अर्पित होता है-

श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्ध या हुयते हविः ।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ।। (ऋग्वेद 10/151/1)

ऋषिका श्रद्धा देवी से प्रार्थना करते हुए कहती हैं कि, "दाता को प्रियं दीजिए, उसे अभीष्ट फल प्रदान करें, जो दान करने की इच्छा रखते हैं उसे भी प्रियं प्रदान करें, जो भोगों को चाहते हैं उन्हें भी प्रियं प्रदान कीजिए और इस प्रकार मेरे कथित वचनों द्वारा अभीष्ट कर्म सम्पन्न करें" (शुक्ल, 2018) ।

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः
प्रियं भोजेषु यज्वसिवदं म उदितं कृधि ।। (ऋग्वेद 10/151/2)

प्रश्न यह है की 'प्रियं' क्या है ? क्या हमारी इच्छा की पूर्ति होना ही हमारे लिए प्रिय है, क्या अभीष्टों को प्राप्त करना ही प्रिय है? वास्तव में ऋषिका ने 'प्रियं' शब्द का गहन विश्लेषण किया है। उनके अनुसार 'प्रियं' का अर्थ है 'आनंद की परमावस्था'। इस अवस्था को हम श्रद्धा के बिना नहीं प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात, श्रद्धा से सत्य प्राप्त होता है, इसलिए सत्य को धारण करने की क्षमता है श्रद्धा। इसमें इच्छा, ज्ञान और क्रिया तीनों मौजूद हैं, इसलिए यह सत्व, रजो और तम तीनों गुणों से युक्त है। ऋषिका का संदेश है की कोई भी कर्म बिना श्रद्धा के नहीं हो सकता है, श्रद्धा हमारी शक्तियों का भी उन्नयन कर के जीवन को 'प्रियं' (आनंद) की ओर उन्मुख करता है। श्रद्धा की प्राप्ति के लिए शारीरिक दृढ़ता एवं दृढ संकल्प शक्ति दोनों की आवश्यकता है।

उपरोक्त वर्णित ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाओं के अतिरिक्त अन्य विदुषी स्त्रियों के प्रमाण भी वेदों में मिलते हैं। सरमा देवसुनी (ऋग्वेद 10/ 108) ने अपने सूक्तों द्वारा यह संदेश दिया है कि सत्य तक सीधे और सरल मार्ग से ही पहुँचा जा सकता है। अन्तर्दृष्टि की एक दिव्य शक्ति है जो छिपे हुए प्रकाश का पता लगा सकती है। जुहू ब्रह्मजाया (ऋग्वेद 10/109) ने अपने सूक्तों द्वारा यह संदेश दिया है कि तप युक्त ज्ञान और कर्म का समुच्चय ही सुखी जीवन का आधार है। इनके अतिरिक्त ऋषिका रात्रि अपाला, शश्वती, नधः, यमी वैवस्वति, ऋषिका वसुक्रपत्नी, काक्षीवती घोषा, ऋषिका अगस्त्यस्वसा, दाक्षायणी अदिति, सूर्य सावित्री, उर्वशी इत्यादि भी प्रमुख विदुषियाँ हैं जिन्होंने अपने मंत्रों द्वारा नैतिक निष्ठाओं एवं आध्यात्मिक आरोहण की उँचाईयों को प्राप्त किया है (शुक्ल, 2018)।

निष्कर्ष -

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में जिस भारतीय ज्ञान परंपरा को एक बार फिर से पुनर्जीवित करने की अनुशंसा की गयी है, वैदिक काल की स्त्रियाँ उसी ज्ञान परंपरा की वाहक रही हैं। ज्ञान के सृजन में, ज्ञान को समृद्ध करने में एवं ज्ञान परम्परा के सातत्य में स्त्रियों की प्रमुख भूमिका रही है। ऋग्वेद में वर्णित स्त्री ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाओं ने सिर्फ सनातन धर्म को सम्पन्न किया है अपितु अपनी विद्वता का परचम भी लहराया है। निःसंदेह, वैदिक काल में ज्ञान के सृजन में पुरुषों एवं स्त्रियों की भूमिका बराबर थी। धार्मिक अनुष्ठान में आज भी हम जिस मंत्रोपच्चार द्वारा यज्ञ अनुष्ठान सम्पन्न करते हैं, वहाँ भी तो इन्हीं ऋषिकाओं के मंत्रों का प्रयोग होता है। ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में इन्होंने अपनी विद्वता एवं सक्रिय भागीदारी का परिचय दिया है। किसी में अपने सूक्तों द्वारा सत्य को स्पष्ट किया है, तो किसी ने परब्रह्म से साक्षात्कार किया है, कुछ ब्रह्मवादिनी ने तो जीवन की परिपूर्णता में काम विज्ञान को अत्यंत महत्वपूर्ण माना है एवं किसी ने औषधिओं पर भी गहन अध्ययन किया है। सृष्टि की रचना से लेकर, प्रेम से पीड़ा

तक, सत्य की खोज तक, प्रकृति से पुरुषार्थ तक, पुरुषार्थ से मोक्ष तक, व्यवहारिकता से आध्यात्मिकता तक -प्रायः हर क्षेत्र में ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिकाओं का अद्वितीय योगदान है। स्पष्ट संदेश है वैदिक काल में समाज लैंगिक विभाजन से नहीं बल्कि ज्ञान द्वारा संचालित था। कालांतर में भले ही समाज का स्तरीकरण हो गया और यह विदुषियाँ कालखंड में कहीं उपेक्षित सी हो गई, किन्तु यह सत्य है की भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध करने में इन विदुषी स्त्रियों की सक्रिय भूमिका रही है।

संदर्भ सूची -

- आर्य, दोला मणि (2016). ऋग्वेद में ऋषिकाएं एवं उनके विचार. International Journal of Sanskrit Research- 2(1)- pp 39-41.
- ऋग्वेद : शलाका संहिता (19901997).दिल्ली वैदिक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

ख जोशी. योगेन्द्र (2009).'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' इत्यादि - मनुस्मृति के वचन https://vichaarsankalan.wordpress.com/2009/09/11/ dated 17-09.2024.

ख तैत्तिरीय ब्राह्मण (कांड 3).(https://sa.wikisource.org/wiki/%E0%A4%A4%E0%A5%88%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%80%E0%A4%AF%E0%A4%AC%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4%B9%E0%A5%8D%E0%A4%AE%E0%A4%A3%E0%A4%AE%E0%A5%8D_(%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%B0%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%A0%E0%A4%83)/%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%A3%E0%A5%8D%E0%A4%A1%E0%A4%83_%E0%A5%A9/%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%A0%E0%A4%95%E0%A4%83_%E0%A5%A6%E0%A5%A9) (3.3.3.1) dated 21.10.2024.

ख तैत्तिरीयसंहिता(कांड6).(https://sa.wikisource.org/wiki/%E0%A4%A4%E0%A5%88%E%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%BF%E0%A4%B0%E0%A5%80%E0%A4%AF%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B9%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A4%BE %E0%A5%AB%E0%A5%AD) dated 21.10.2024.

ख धर्मविकी(2023).ब्रह्मवादिनी(https://dharmawiki.org/index.php/Brahmavadinis_(ब्रह्मवादिन्यः)&oldid=135784.

ख बृहदारण्यक उपनिषद (अध्याय4).(https://sa.wikisource.org/wiki/%E0%A4%AC%E0%A5%83%E0%A4%B9%E0%A4%A6%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A3%E0%A5%8D%E0%A4%AF%E0%A4%95_%E0%A4%89%E0%A4%AA%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%B7%E 0%A4%A6%E0%A5%8D_4p) dated 21.10.2024.

ख वाल्मीकिरामायण(सुंदरकांड).)(https://www.valmiki.iitk.ac.in/sloka?field_kanda_tid=2&language=dv&field_sarga_value=20)dated21.10.2024.

- वाल्मीकिरामायण(अयोध्याकांड)(https://www.vedpradip.com/index.php?flg=0) dated 17.09.2024.
- विद्याअलंकार, मनोहर(1995).वेदों की ऋषिकाएँ : भारतीय संस्कृति में स्त्री की स्थिति, वेद-प्रदीप पत्रिका, नईदिल्ली (https://www.vedpradip.com/index.php?flg=0) dated 17.09.2024.
- शुक्ल, दुर्गाचरण(2018).ब्रह्मवादिनी -द्रष्ट मंत्र भाष्य एवं अवदान, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली।
- शर्मा, गंगा सहाय(1979).ऋग्वेद। संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली।
- व्यास(2015).यजुर्वेद। संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली ।
- Kundalia, R. and Tiwari, Kusha (2022). Empowered Women in Ancient Indian Tradition. SLC, Delhi University, New Delhi.
- Murthy, H. V. Narasimha. (1997). Ph.D Thesis Titled: A Critical Study of Upanayana Samskara. Mangalore. Mangalore University, pp 87-90.
- Pandey, Raj Bali. (1949). Hindu Samskaras: A Socio-Religious Study of the Hindu Sacraments. Banaras.Vikrama Publications. pp 316-317.

कृषि आय का परिचयात्मक अध्ययन

An Introductory Study of Agricultural Income

डॉ० दिव्या शुक्ला

सहायक प्राध्यापक, वाणिज्य, दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

प्रस्तावना:-

भारत एक कृषि प्रधान देश है। सामान्यत: कृषि कार्य करने से होने वाली उपज से जो आय होती है वह कृषि आय कहलाती है। भारत में कृषि आय को करमुक्त रखा गया है, लेकिन कृषि आय की आड़ में कर अपवंचन को रोकने के लिए कृषि आय के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान किये गये है। सामान्यतया कृषि कार्य करने से होने वाली उपज से जो आय होती है वह कृषि आय कहलाती है। कृषि आय से तात्पर्य भारत में स्थित कृषि भूमि से प्राप्त किसी भी आय से है, जिसमें खेती कृषि उपज के प्रसंस्करण या ऐसी भूमि पर स्थित कृषि भवनों से प्राप्त किराया या राजस्व शामिल है। भारत में आयकर अधिनियम 1961 की धारा 10 (1) के तहत् यह आय पूर्णत: कर मुक्त है। इस शीर्षक के अंतर्गत हम कृषि आय की परिभाषा, शर्ते, प्रकार, गणना, अंषत: कृषि आय आदि शीर्षकों का संक्षिप्त अध्ययन करेगें। आयकर में कृषि-आय शब्द का एक निश्चित एवं विशिष्ट अर्थ लिया जाता है। कृषि आय को आयकर से मुक्त रखा गया है, लेकिन व्यक्ति एवं हिन्दु अविभाजित करदाताओं की स्थिति में कुछ विशिष्ट दशाओं में देय कर की गणना करते समय ऐसी कृषि आय को सामान्य कुल आय में शामिल किया जाता है इसीलिये इसका सही अर्थ जानना अत्यंत ही आवश्यक है कि कौन सी आय कृषि आय कहलाएगी और कौन सी नहीं, यह निर्धारित करने के लिए आयकर अधिनियम 1961 के अंतर्गत परिभाषित कृषि आय का अध्ययन अत्यंत ही आवश्यक है। कृषि आय वह आय होती है जो प्रत्यक्ष रूप से कृषि गतिविधियों से उत्पन्न होती है। अंग्रेजी शब्द 'Agriculture' लैटिन के 'एग्री' (खेत/मिट्टी) और कल्चरा (खेती/जुताई) से बना है जिसका अर्थ मिट्टी की खेती करना है।

की-वर्ड (Key Word):- आयकर, अधिनियम, आय, कृषि, करमुक्त, भारत, भूमि, कृषि-कार्यों, उपज, छूट, व्यक्ति, हिन्दु अविभाजित परिवार, कुल आय, आंषिक कृषि आय, करयोग्य।

कृषि आय की परिभाषा (Definition of Agricultural Income):-

आयकर अधिनियम की धारा 2 (IA) के अनुसार:-

- भारत में स्थित कृषि कार्यों में उपयोग आने वाली भूमि से प्राप्त किराया या लगान।
- कृषि क्रिया अथवा उपज को विक्रय योग्य बनाने की क्रिया अथवा उपज को बेचने से कृशक या लगान प्राप्त करने वाले को प्राप्त आय।
- कृषि कार्य के संबंध में उपयोग में आने वाले मकान की आय।
- नर्सरी में छोटे पौधे तैयार करने से आय।

शर्ते (Conditions):-

- आय कृषि भूमि से संबंधित होना चाहिए।
- भूमि भारत में स्थित होना चाहिए।
- भूमि का प्रयोग कृषि कार्यों के लिए होना चाहिए।
- भूमि में हित होना चाहिए।
- कृषि से प्रत्यक्ष आय होनी चाहिए।

उपरोक्त वर्णित शर्ते कृषि आय होने की प्रमुख शर्ते है।

कृषि आय के प्रकार (Types of Agricultural Income):-

- भूमि से प्राप्त किराया या राजस्व।
- कृषि कार्यों से प्राप्त आय।

- कृषि भवन/संपत्ति/संबंधित मकान से आय।
- उपज को बेचने योग्य बनाने से आय।
- उपज बेचने से आय।
- नर्सरी में पौधे तैयार करने से आय।
- फार्महाउस से आय।

उपरोक्त प्रकार ही आयकर अधिनियम के अतंर्गत कृषि आय के प्रकार है।

भूमि से संबंधित गैर-कृषि आय (Non Agricultural Income in Respect of Land):-

- डेयरी फार्मिंग, मुर्गीपालन (पोल्ट्री फार्मिंग) और पशुपालन से आय।
- विनिर्माण प्रक्रिया से गुजारने के बाद बेचने से आय। (उदाहरण - गन्ने से चीनी बनाना)
- भूमि (कृषि भूमि) या भवन को गैर-कृषि उद्देष्यों जैसे फिल्मों की शूटिंग या व्यावसायिक उपयोग के लिए किराये पर देने से आय।
- खड़ी फसल के क्रेता को आय।
- खदानों से आय।
- जंगल, घास आदि से आय।
- भण्डार गृहों से आय।
- सिंचाई के लिए पानी देने से आय।
- मछली क्षेत्र में होने वाली आय।
- कृषि-फार्म के मैनेजर का पारिश्रमिक।
- ईट बनाने के लिए प्रयुक्त भूमि की आय।
- कृषि कार्य में लगी कंपनी से लाभांष।
- कृषि भूमि के बन्धक पर ब्याज।
- किसान को प्राप्त पुरस्कार।
- हाट-बाजारों एवं पत्थरों की खानों से आय।
- स्वंय उग आये हुए घास, पेड़ अथवा बांस से आय।

उपरोक्त प्रकार की आयें यद्यपि जमीन से संबंधित है, तथापि ये कृषि कार्यों से उत्पन्न न होने के कारण कृषि आय की श्रेणी में सम्मिलित नहीं होते है।

अंशतः कृषि आय (Partly Agricultural Income):-

आयकर अधिनियम 1961 के अतंर्गत कुछ आयें ऐसी होती है जो अंशतः कृषि आय होती है एवं अंशतः व्यापारिक आय मानी जाती है। इन मिश्रित आयों में से करयोग्य आय ज्ञात करने के लिए कुल प्राप्ति में से उपज का उचित बाजार मूल्य घटा दिया जाता है। कुछ उत्पादन ऐसे होते हैं, जिनमें यह निर्धारित करना कठिन होता है कि कितना हिस्सा कृषि आय का है और कितना हिस्सा गैर-कृषि आय का है, तो ऐसी स्थिति में आयकर के संदर्भ में निम्नांकित नियम बनाये गये है।

चाय उत्पादनः-

चाय के उत्पादन और निर्माण से प्राप्त आय का 60% भाग कृषि आय (कर-मुक्त) और शेष 40ः भाग गैर कृषि आय (कर-योग्य) माना जाता है।

रबर उत्पादनः-

रबर के उत्पादन और बिक्री से प्राप्त आय का 65% भाग कृषि आय और 35% भाग गैर-कृषि आय माना जाता है।

कॉफी-उत्पादनः-

कॉफी के उत्पादन एवं उसको संसाधित करके बेचने से होने वाली आय का 75% भाग कृषि आय और 25% भाग गैर-कृषि आय माना जाता है।

भूनी हुई कॉफी:-

भूनी हुई कॉफी के उत्पादन एवं बिक्री का 60% भाग कृषि आय एवं 40% भाग गैर-कृषि आय माना जाता है।

स्वयं द्वारा उगाये गये अन्य कृषि उत्पाद को स्वयं के उत्पादन हेतु प्रयुक्त करना, जैसे किसान द्वारा अपने खेत में उगाये गये आलू से चिप्स तैयार करके बेचना। इसमें प्रयुक्त कृषि उत्पाद का उचित बाजार मूल्य कृषि आय होगा एवं व्यापार की आय में से प्रयुक्त कृषि उत्पाद का मूल्य घटाकर जो राषि आयेगी वह गैर कृषि आय होगी।

चीनी के कारखानों से आय:-

स्वयं के खेतों पर गन्ना पैदा करके चीनी बनाने पर गन्ने का औसत बाजार मूल्य खर्चे के रूप में घटाया जायेगा तथा गन्ने पैदावार करने के व्ययों पर ध्यान नहीं दिया जायेगा। बाजार मूल्य को ही कृषि आय मानकर कम कर दिया जायेगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी कृषि आधारित उद्योगों में प्रयुक्त स्वयं उत्पादित पदार्थों का मूल्य उचित बाजार मूल्य के आधार पर गणना में लिया जायेगा।

कृषि आय और कर दायित्व:-

भारत सरकार ने कृषि आय को आयकर के दायरे से बाहर रखा है तथा इसे कुल आय (Total Income) की गणना करते समय किसी भी शीर्षक में सम्मिलित नहीं किया जाता, लेकिन कर की गणना करते समय व्यक्ति या हिन्दु अविभाजित परिवार करदाता का कर दायित्व ज्ञात करते समय इसे ध्यान में रखा जाता है। निम्नलिखित दोनों (2) शर्तें पुरी होने पर कृषि आय को कुल आय में अलग से जोड़कर सर्वप्रथम संयोजित आय (Aggregated Income) पर सकल कर ज्ञात किया जायेगा और इसके बाद कृषि आय पर सीमान्त दर से कर की छूट घटाई जायेगी।

प्रथम शर्त-

यदि व्यक्ति या हिन्दु अविभाजित परिवार करदाता की कुल आय (कृषि आय के अलावा) कर मुक्त सीमा से अधिक हो। (कर निर्धारण वर्ष 2025-2026 में सामान्य करदाता के लिए 2.5 लाख वरिश्ठ करदाता के लिए 3 लाख एवं अति वरिष्ठ करदाता के लिए 5 लाख रू. निर्धारित है।) तथा

द्वितीय शर्त-

कृषि आय की राशि 5000 रूपये से अधिक हो।

ऊपर वर्णित दोनों शर्तें पुरी होने पर कर की गणना निम्न प्रकार की जाएगी:-

Step – I कुल आय + कृषि आय = संयोजित आय पर निर्धारित दरों से कर .....

Step – I I घटाओं - = कृषि आय + करमुक्त सीमा 2.5 लाख रूपये .....

= छूट योग्य राषि पर कर (&) .....

देयकर .....

देयकर पर 4% स्वास्थ्य एवं शिक्षा उपकर जोड़ा जायेगा। उपरोक्त विधि द्वारा कृषि आय पर कर की गणना की जायेगी।

निश्कर्श-

भारत एक कृषि प्रधान देश आज से ही नहीं अपितु प्राचीन समय से ही है। लगभग 70-80% जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर करती है। कृषि आय आर्थिक विकास की रीढ़ है जो रोजगार (भारत में लगभग 40-50% आबादी को), कच्चा माल (उद्योगों के लिए), खाद्य सुरक्षा (निर्यात से), विदेशी मुद्रा प्रदान करती है, साथ ही साथ में किसानों की क्रय शक्ति बढ़ाकर औद्योगिक विकास को भी बढ़ावा देती है जिससे समग्र आर्थिक स्थिरता और समावेशी विकास सुनिश्चित होता है। आयकर में कृषि आय का योगदान एक महत्वपूर्ण अपवाद है क्योंकि भारत में कृषि आय को कुछ शर्तों के अधीन पुरी तरह से आयकर से छूट प्राप्त हैं। यह छूट भारतीय संविधान द्वारा दी गई है, जिसमें राज्य सरकारों को कृषि आय पर कर लगाने का अधिकार है, न कि केन्द्र सरकार को। संक्षेप में उपरोक्त लेख के अनुसार भी आर्थिक विकास में कृषि के मुख्य रूप से योगदान रोजगार-सृजन, खाद्य सुरक्षा एवं पोषण, जीडीपी में योगदान (सकल घरेलु उत्पाद में योगदान), ग्रामीण अर्थव्यवस्था और गरीबी उन्मूलन, उद्योगों के लिए कच्चा माल, विदेशी मुद्रा अर्जन (निर्यात), अन्य क्षेत्रों जैसे उद्योग और सेवा क्षेत्रों का आधार है। संक्षेप में हम कह सकते है कि कृषि का संपूर्ण क्षेत्र आर्थिक विकास का इंजन है, जो न केवल बुनियादी जरूरतों को पूरा करता है, बल्कि रोजगार आय और औद्योगिक विकास को बढ़ावा देकर देश की आर्थिक प्रगति

में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और आयकर अधिनियम द्वारा इसकी महत्ती भूमिका को समझते हुये इसे कर मुक्त सीमा में रखा गया है, ताकि भारत के आर्थिक विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पुस्तके

- मेहरोत्रा डॉ. एच.सी., गोयल डॉ. एस.पी., आयकर विधान एवं लेखे, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 66 वाँ संशोधित संस्करण 2025-26
- सकलेचा श्रीपाल, आयकर, सतीश प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स, कर निर्धारण वर्ष 2025-26
- मुखर्जी डॉ. देवाशीष, आयकर विधान एवं लेखे, एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, वर्ष 2025-26
- Taxmann, Income tax rules, 62nd Edition 2025

2. समाचार पत्र-पत्रिकायें

- नवभारत।
- पत्रिका।
- दैनिक भास्कर।
- इण्डिया टूडे।

3. इंटरनेट वेबसाइट्स

- www.incometax.gov.in
- www.incometaxindia.gov.in
- www.incometaxindia.gov.in (CBDT)
- www.india.gov.in
- www.agriwelfare.gov.in

नीति शास्त्र में न्याय की संकल्पना: एक विश्लेषण

डॉ० संजीव कुमार सुधांशु

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, राम जयपाल कॉलेज, छपरा

सारांश

प्राचीन काल से ही न्याय की अवधारणा पर दार्शनिक, कानूनी और राजनीतिक दृष्टिकोण से चर्चा की जाती रही है। प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों द्वारा दिए गए न्याय के दार्शनिक आधार और परिभाषाएँ इसके विभिन्न पहलुओं की पड़ताल करने में पहला कदम हैं। समानता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर बल देने वाले जॉन रॉल्स के न्याय सिद्धांत पर विशेष ध्यान दिया गया है। न्याय और कानून के बीच संबंध की जाँच के साथ-साथ, यह अध्ययन न्याय के कई रूपों, जैसे वितरणात्मक न्याय, सुधारात्मक न्याय, राजनीतिक न्याय, सामाजिक न्याय और आर्थिक न्याय पर भी प्रकाश डालता है। निष्पक्षता को मूलभूत सिद्धांत के रूप में स्थापित करने वाले भारतीय संविधान पर विशेष ध्यान दिया गया है। सामाजिक अन्याय, कानून की जटिलता और राजनीतिक दबावों के कारण कानूनी उपलब्धियों के बावजूद भी न्याय प्राप्त करना कठिन हो जाता है। इस अध्ययन का उद्देश्य पाठकों को न्याय की व्यापक समझ प्रदान करना है, जिसमें इसके अनुप्रयोग और सामाजिक एवं कानूनी ढाँचों के भीतर इसे परिभाषित करने और लागू करने की चुनौतियाँ शामिल हैं।

मूल शब्दः न्याय की अवधारणा, न्याय के दार्शनिक आधार, कानूनी और राजनीतिक दृष्टिकोण, समानता, स्वतंत्रता, निष्पक्षता, जॉन रॉल्स

परिचय

व्यक्तिगत दृष्टिकोणों में प्रवेश करने से पहले न्याय के मूल विचार को समझना आवश्यक है। लैटिन शब्द जुंगेरे से उत्पन्न, जिसका अर्थ है बांधना या जोड़ना, 'न्याय' शब्द सामाजिक संबंधों में संतुलन बनाए रखने में इसके कार्य को संदर्भित करता है। इसने विद्वानों के बीच व्यापक चर्चा को जन्म दिया है और यह मानवीय नैतिकता से गहराई से जुड़ा हुआ है। विभिन्न व्याख्याओं के बावजूद, एक ऐसी परिभाषा जिस पर व्यापक रूप से सहमति हो, अभी तक स्पष्ट नहीं है।

अरस्तू, कांट, रॉल्स और अमर्त्य सेन जैसे दार्शनिकों ने न्याय के गतिशील विचार का अध्ययन किया है। अरस्तू ने न्याय को समान लोगों के साथ समान व्यवहार और असमान लोगों के साथ असमान व्यवहार के रूप में परिभाषित किया, जबकि रॉल्स ने 'न्याय को निष्पक्षता' के रूप में प्रस्तुत करने की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया। गौतम बुद्ध ने न्याय को केवल कानून का पालन करने से कहीं अधिक महत्व दिया, जबकि कार्ल मार्क्स ने न्याय को आर्थिक वर्ग हितों से प्रभावित माना। उपयोगितावादी दृष्टिकोण के अनुसार, न्याय का उद्देश्य सभी के लिए सुख बढ़ाना है।[1]

न्याय और कानून के बीच एक जटिल संबंध है, और विधि विद्वान इस बात पर बहस करते हैं कि न्याय कानून के बारे में एक नैतिक निर्णय है या उसका एक मूलभूत हिस्सा। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और कानूनी परिस्थितियों में बदलाव के साथ, यह अवधारणा भी लचीली बनी रहती है। सदियों की चर्चा के बाद भी, न्याय आज भी सबसे आकर्षक और जटिल अवधारणाओं में से एक है, जो आधुनिक समाज में चल रहे शोध को उचित ठहराता है।

न्याय की अवधारणा

आम लोगों के लिए न्याय का अर्थ हो सकता है कि किसी अपराध को उचित दंड दिया गया हो। एक दार्शनिक न्याय को नैतिकता के रूप में देख सकता है। एक वकील के लिए न्याय का अर्थ कानून का पालन करना हो सकता है। न्याय की अवधारणा गतिशील है और समय के साथ बदलती रहती है। आम धारणा के अनुसार, न्याय समानता, निष्पक्षता, नैतिक सत्यता और उचित दंड प्राप्त करने की अवधारणा है। 'न्याय क्या है?' इस प्रश्न को इच्छानुसार व्यापक या संकीर्ण रूप से समझा जा सकता है।

अनैतिक कृत्यों के लिए दंड, व्यक्ति को उसके कर्मों का फल भुगतने का एक हिस्सा है। सभी के साथ समान व्यवहार करना ही निष्पक्षता की अवधारणा है। ऐतिहासिक अन्याय को पहचानना और उसका निवारण करना भी व्यक्तियों के साथ अनुचित व्यवहार करने को शामिल कर सकता है।

हार्पर ली ने अपनी उल्लेखनीय पुस्तक 'टू किल अ मॉकिंगबर्ड' में अन्याय का विस्तृत वर्णन करके पाठकों को न्याय से परिचित कराया है। न्याय एक ऐसा महत्वपूर्ण नैतिक और राजनीतिक विचार है जिसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। अरस्तू जैसे शास्त्रीय

दार्शनिकों और रॉल्स जैसे समकालीन विचारकों के अनुसार, न्याय को सभी सामाजिक संरचनाओं में समाहित किया जाना चाहिए और यह एक ऐसा सद्गुण है जो लोगों को दूसरों के साथ व्यवहार करते समय धारण करना चाहिए।[2]

विभिन्न दार्शनिकों द्वारा परिभाषित न्याय

न्याय की यूनानी अवधारणा नैतिकता से गहराई से जुड़ी हुई थी। सेफालस के विचार में, न्याय का अर्थ सत्य बोलना और ऋण चुकाना है। पोलमार्कस के अनुसार, न्याय का अर्थ समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उसका हक देना है। प्लेटो ने वर्ग व्यवस्था का समर्थन किया क्योंकि उनका मानना था कि मनुष्य स्वभाव से असमान होते हैं। उन्होंने शासक वर्ग, सैन्य वर्ग, उत्पादक वर्ग और शिल्पकार, इन चार समूहों में अंतर किया। प्लेटो के अनुसार, निष्पक्षता प्राथमिक सद्गुण है और हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत विभिन्न सामाजिक वर्गों, प्रत्येक वर्ग के सदस्यों और व्यक्ति की आत्मा के विभिन्न पहलुओं को उचित सीमाओं के भीतर बनाए रखता है। यह एक कार्यात्मक विशेषज्ञता का सिद्धांत है।[3]

अरस्तू का मानना था कि ष्न्यायष् शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से कानून के अनुरूप व्यवहार को संदर्भित करने के लिए किया जाता था। उन्होंने न्याय को वितरणात्मक न्याय और सुधारात्मक न्याय में विभाजित किया। अरस्तू के सशक्त तर्क के अनुसार, सभी निष्पक्ष और कानूनी कार्य न्यायसंगत हैं, जबकि सभी अवैध और अन्यायपूर्ण कार्य अनुचित हैं। यदि कानूनी और निष्पक्ष मानक आपस में टकराते हैं, तो लोगों और संस्थानों को किन मानदंडों को अपनाना चाहिए? यह मुद्दा, जिसे अरस्तू ने न्याय की अवधारणा का विश्लेषण करते समय अस्वीकार कर दिया था, नैतिकता, कानून और न्याय की प्रकृति के बारे में एक लंबे समय से चली आ रही बहस का कारण बना है।

प्राचीन रोम के वकीलों पर यूनानी दर्शन का प्रभाव था। सिसरो नामक एक वकील ने तर्क दिया कि न्याय एक प्राकृतिक नियम है जो मानवीय सहमति से स्वतंत्र रूप से विद्यमान है। मध्य युग के दौरान संत ऑगस्टीन ने दावा किया कि राज्य की नींव न्याय है। उनका तर्क है कि न्याय की स्थापना सरकार नहीं बल्कि चर्च करता है। प्रेम और शांति के प्रति अपनी ईसाई निष्ठा के बावजूद, ऑगस्टीन शांतिवादी नहीं थे और वे ष्न्यायपूर्ण युद्धोंष् का बचाव नैतिक रूप से स्वीकार्य और यहां तक कि आवश्यक भी मानते थे। अरस्तू और संत एक्विनास समानता-आधारित न्याय के विचार पर सहमत थे।

कार्ल मार्क्स के अनुसार, उत्पादन के संबंध और स्वरूप न्याय को निर्धारित करते हैं। शासक वर्ग के आर्थिक हित न्याय की अवधारणा और सार को प्रभावित करते हैं। प्राचीन भारतीय विचारकों के सिद्धांतों का उल्लेख किए बिना, न्याय की अवधारणा का विश्लेषण व्यापक नहीं होगा। ष्धर्मष् व्यावहारिक रूप से ष्न्यायष् के समतुल्य है, जिसका अर्थ है न्याय। हिंदू न्यायशास्त्र मनुस्मृति पर बहुत अधिक निर्भर करता है। कानून को कायम रखने के अलावा, गौतम बुद्ध की न्याय की अवधारणा अन्यायपूर्ण मामलों में अवज्ञा, या कानून तोड़ने के कट्टरपंथी विचार का भी समर्थन करती है।

चौम पेरेलमैन को 2.वीं सदी के सर्वश्रेष्ठ विधि दार्शनिकों में से एक माना जाता है। उनका कहना है कि "प्रत्येक व्यक्ति न्याय की ऐसी अवधारणा का बचाव करेगा जो उसके विरोधी को गलत और स्वयं को सही ठहराती है।" वे न्याय के बारे में छह मुख्य विचार बताते हैं। "प्रत्येक को समान व्यवहार" का अर्थ है कि सभी के साथ उनकी अनूठी विशेषताओं के बावजूद समान व्यवहार किया जाना चाहिए। "प्रत्येक को उसके गुणों के अनुसार" का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत गुणों के आधार पर आनुपातिक विचार दिया जाना चाहिए। "प्रत्येक को उसके कर्मों के अनुसार" का तात्पर्य है कि लोगों के साथ उनके कर्मों के परिणामों के आधार पर व्यवहार किया जाए, न कि यह मानकर कि सभी के साथ समान व्यवहार किया जाता है। न्याय का यह सूत्र दान के समान है क्योंकि इसमें कहा गया है, "प्रत्येक को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार"। "प्रत्येक को उसके पद के अनुसार" का तात्पर्य है कि लोग अपनी स्थिति के आधार पर जो भेद करते हैं, उन्हें स्वीकार करना। "प्रत्येक को उसके कानूनी अधिकार के अनुसार" का तात्पर्य है कानून का अनुप्रयोग।[4]

बेंथम की न्याय की अवधारणा उपयोगिता की उनकी विधिबद्ध धारणा को दर्शाती है। बेंथम के अनुयायी जॉन स्टुअर्ट मिल, यह बताते हुए बेंथम के न्याय के सिद्धांत को और स्पष्ट करते हैं कि सद्गुण सुख से श्रेष्ठ है और इसके लिए सुख का त्याग किया जा सकता है। इमैनुअल कांट ने एक काल्पनिक अनिवार्यता को किसी भी ऐसे कार्य के रूप में परिभाषित किया जो किसी अन्य लक्ष्य के साधन के रूप में अच्छा हो, जबकि एक श्रेणीबद्ध अनिवार्यता कोई भी ऐसा कार्य है जो अपने आप में अच्छा हो और तर्क के अनुरूप हो।

जॉन रॉल्स का न्याय का सिद्धांत

"न्याय को निष्पक्षता के रूप में देखना" यह वाक्यांश न केवल रॉल्स के प्रभाव के कारण लगभग सभी सामाजिक विज्ञान विषयों में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है, बल्कि यह न्याय क्या है, इसकी विस्तृत व्याख्या भी प्रदान करता है। "न्याय का सिद्धांत" जॉन रॉल्स की सबसे महत्वपूर्ण रचनाओं में से एक है।

रॉल्स ने अपने कार्य में न्याय के दो सिद्धांत प्रस्तुत किए हैं। पहला, प्रत्येक व्यक्ति को समान बुनियादी अधिकारों की सबसे व्यापक प्रणाली का समान अधिकार होना चाहिए जो स्वतंत्रता की ऐसी प्रणाली के साथ संगत हो जो सभी के लिए तुलनीय हो। दूसरा, आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाना चाहिए कि (क) न्यायसंगत बचत अवधारणा के अनुसार, जिन्हें इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है, उन्हें लाभ हो, और (ख) यह नौकरियों और पदों से जुड़ा हो जो अवसर की समान समानता के संदर्भ में सभी के लिए सुलभ हों।

जॉन रॉल्स, कांट के न्याय के संविदात्मक स्वरूप के अध्ययन से प्रभावित थे। रॉल्स के अनुसार, न्याय का संबंध व्यक्ति और मानव कल्याण दोनों से है।

न्याय के सिद्धांत

न्याय एक लचीला विचार है जो परिस्थितियों, परंपराओं, रीति-रिवाजों, धार्मिक मान्यताओं और सबसे महत्वपूर्ण रूप से, जीवन दर्शन के आधार पर व्यक्ति-दर-व्यक्ति बदलता रहता है, जो समुदाय के नैतिक दिशा-निर्देशों को स्थापित करता है। इस वाक्यांश को सरल शब्दों में कहें तो, न्याय का अर्थ निष्पक्षता है और न्याय क्या है, इसके लिए कोई निश्चित मानदंड नहीं हैं; बल्कि, यह एक गतिशील अवधारणा है जो मानव समाज के साथ बदलती रहती है।

प्रख्यात न्यायाधीश और विधि विद्वान सर जॉन विलियम सैलमंड के अनुसार, न्याय सामाजिक लाभ और व्यक्तिगत व्यवहार के बीच शांतिपूर्ण संतुलन स्थापित करना है।

यदि न्याय को एक वर्ग संख्या के रूप में देखा जाए, तो न्याय एक ऐसे राज्य की अवधारणा पर आधारित है जो अपने समान भागों से बना होता है। इसी विचारधारा के अनुसार, एक संख्या तब तक वर्ग होती है जब तक उसके घटक भाग बराबर होते हैं। इसी प्रकार, एक राज्य तब तक न्यायपूर्ण होता है जब तक उसके घटक भाग बराबर होते हैं, और न्याय इसी समानता को बनाए रखना है।

राजनीति विज्ञान के जनक माने जाने वाले अरस्तू ने भी न्याय की परिभाषा पर अपने विचार व्यक्त किए। उनके अनुसार, न्याय वह महत्वपूर्ण नैतिक गुण और चरित्र तत्व है जो सामाजिक और सार्वजनिक संबंधों को संभालने के लिए आवश्यक है। यह इस विचार पर आधारित है कि 'प्रत्येक व्यक्ति को अपना अधिकार होना चाहिए' और अरस्तू ने इसे 'पूर्ण न्याय' कहा है।

इसके अतिरिक्त, प्राचीन यूनानी जगत और पश्चिमी चिंतन के इतिहास में सबसे प्रभावशाली विचारकों में से एक, प्लेटो ने न्याय को व्यक्ति के आंतरिक जीवन या राजनीतिक व्यवस्था के संतुलन के रूप में परिभाषित किया। इसलिए, न्याय एक दूसरे के अस्तित्व के लिए आवश्यक है; प्रत्येक सद्गुण न्याय की भावना की एक अनूठी अभिव्यक्ति है, जो समाज में व्यक्ति की भूमिका के आधार पर कई रूप धारण करती है। आजकल, कर्तव्य की भावना न्याय के समान ही है।[5]

न्याय के प्रमुख सिद्धांत

समानता

> "समानों के साथ समान व्यवहार होना चाहिए, और असमानों के साथ असमान व्यवहार होना चाहिए" न्याय का सबसे बुनियादी सिद्धांत है। न्याय की आधारशिला के रूप में, समानता इस धार्मिक विचार पर आधारित है कि सभी मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए क्योंकि वे ईश्वर की संतान हैं। इस विचार को इस प्रकार भी व्यक्त किया गया है: "लोगों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए, जब तक कि उनमें उन तरीकों से अंतर न हो जो उस स्थिति के लिए प्रासंगिक हों जिसमें वे शामिल हैं।"

निष्पक्षता

प्रत्येक व्यक्ति को उसका हक देना ही न्याय का सार है। दूसरे शब्दों में कहें तो, न्याय और निष्पक्षता आपस में घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। सरल शब्दों में, निष्पक्षता वह है जो किसी प्रेक्षक को तर्कसंगत, तटस्थ और निष्पक्ष प्रतीत होती है।

स्वतंत्रता

स्पेंसर का मानना है कि 'प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र है, बशर्ते वह किसी अन्य व्यक्ति की समान स्वतंत्रता का उल्लंघन न करे,' जबकि इमैनुअल कांट का मानना था कि न्याय का अर्थ है 'इस प्रकार कार्य करना कि आपके कार्यों का मूल सिद्धांत एक सार्वभौमिक सिद्धांत बन जाए जिसका हर कोई पालन करे।'

न्याय के प्रकार

निजी और सार्वजनिक न्याय

सैल्मंड का तर्क है कि सार्वजनिक न्याय, जिसे प्रक्रियात्मक न्याय भी कहा जाता है, लोगों और न्याय न्यायालयों के बीच का संबंध है और यह बताता है कि कानून की अदालतें अपने कर्तव्यों का निर्वाह कैसे करती हैं, जबकि निजी न्याय, जिसे सारगत न्याय भी कहा जाता है, व्यक्तियों और उस उद्देश्य के बीच का संबंध है जिसके लिए कानून की अदालतें मौजूद हैं।

नागरिक और आपराधिक न्याय

अरस्तू के अनुसार, आपराधिक न्याय का संबंध अपराधी को दंडित करने से है और यह उस व्यक्ति के विरुद्ध की जाने वाली कार्रवाई है जिसे देश के आपराधिक कानूनों के तहत किसी अपराध का दोषी पाया गया हो। दूसरी ओर, नागरिक न्याय का संबंध प्रत्येक व्यक्ति को उसका हक दिलाने से है और यह दावों का उचित निपटान या व्यक्तियों के आपसी संबंधों से उत्पन्न विवादों का समाधान है।

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय

सामाजिक न्याय का विचार धनी लोगों के हितों को अनावश्यक और अन्यायपूर्ण तरीके से प्रभावित किए बिना गरीबों की स्थिति में सुधार करना है। भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय को अनुच्छेद 14, 15, 16, 21 और 39 (ख) और (ग) में परिभाषित किया गया है।

सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता के एक महत्वपूर्ण स्तर को प्राप्त करना सामाजिक न्याय का उद्देश्य है और यह एक वैध अपेक्षा और संवैधानिक लक्ष्य दोनों है।

वितरणात्मक और सुधारात्मक न्याय

वितरणात्मक न्याय के विपरीत, जो यह बताता है कि अधिकारों, संपत्ति और कल्याण को लोगों के एक वर्ग के बीच कैसे आवंटित किया जाना चाहिए, सुधारात्मक न्याय यह मानता है कि किसी व्यक्ति का दायित्व दूसरे के खिलाफ किए गए अन्याय की भरपाई करता है, यह गारंटी देता है कि आरोपी अपराधी माफी मांगकर, चोरी की संपत्ति लौटाकर और/या सामुदायिक सेवा करके क्षतिपूर्ति करें।

कानूनी और प्राकृतिक न्याय

प्राकृतिक न्याय वह न्याय है जो सामान्य ज्ञान पर आधारित होता है, जबकि कानूनी न्याय वह न्याय है जो कानून द्वारा स्थापित किया जाता है, कानून द्वारा मान्यता प्राप्त होता है और कानूनी कार्यवाही में बरकरार रखा जाता है।

न्याय और कानून के बीच अंतर्संबंध

न्याय की अवधारणा आम तौर पर वकील के लिए काफी स्पष्ट होती है। कथित 'अन्याय' की नकारात्मक अवधारणा इसकी समझ का आधार है। जिस व्यक्ति की गलत आलोचना की गई है, उसे अन्याय का गहरा एहसास होगा। अदालती मामले में न्याय केवल पक्षों के बीच न्याय से संबंधित नहीं है। इसका संबंध सामाजिक न्याय से भी है। न्यायाधीश के अनुसार, न्याय एक ऐसी अवधारणा है जिसका वास्तव में अर्थ है किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कानून का उपयोग करना।

भले ही कानून के बिना न्याय का विचार अतार्किक न हो, फिर भी वह अर्थहीन ही रहता है। पारस्परिक संबंधों का आदर्श स्वरूप न्याय पर आधारित होता है। इस आदर्श को व्यक्त करने के लिए अनेक सूत्र प्रयोग किए जाते हैं, जैसे जीवन, स्वतंत्रता और सुख की प्राप्ति; स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व; प्रत्येक से उसकी आवश्यकता के अनुसार, प्रत्येक को उसकी क्षमता के अनुसार; उचित प्रक्रिया और कानून के अंतर्गत समान संरक्षण आदि। अरस्तू ने न्याय की अवधारणा को वितरणात्मक न्याय और विनिमयात्मक न्याय में विभाजित किया था, जो लगभग समकालीन अवधारणाओं, सारगत और प्रक्रियात्मक न्याय, के समान है। नकारात्मक अर्थ में, न्याय का अर्थ अन्याय से बचना है।

न्याय पाने की दिशा में पहला कदम पीड़ित व्यक्ति द्वारा उठाया जा सकता है, उदाहरण के लिए, औपचारिक शिकायत या शिकायत दर्ज करके। न्याय पाने की दिशा में अगला कदम शिकायतकर्ता द्वारा अपने मामले को उच्च अधिकारी के समक्ष ले जाना है। संवैधानिक व्यवस्थाओं में न्यायाधीश और अन्य विधिवत नियुक्त अधिकारी ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण हैं, और उनसे स्थापित ठोस कानूनी मानकों और कानूनी प्रक्रियाओं के अनुरूप कार्रवाई करने की अपेक्षा की जाती है।

वास्तविक दुनिया में संवैधानिक सरकार के तहत न्याय की खोज में एक वास्तविक कानूनी प्रणाली का सामना करना पड़ता है, जिसमें न्यायाधीश स्थापित प्रक्रिया के अनुसार और निर्धारित ठोस कानूनी मानदंडों के आलोक में निर्णय देते हैं। 'न्याय' एक आदर्श लक्ष्य है जो किसी कानूनी प्रणाली में स्थापित नहीं होता है। 'न्याय' से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दे व्यावहारिक परिस्थितियों में उत्पन्न होते हैं जहां निर्णय लेने होते हैं।[6] उदाहरण के लिए, यह देखते हुए कि वर्गीकरण का उपयोग गर्भपात के संबंध में किया जा सकता है, क्या अजन्मा बच्चा गलत मृत्यु के मुकदमे के प्रयोजनों के लिए एक 'व्यक्ति' है?

न्याय को परिभाषित करने में कठिनाइयाँ

न्याय की अवधारणा व्यक्तिगत होती है, इसलिए इसे परिभाषित करना कठिन है। कुछ परिस्थितियों में, जो मेरे लिए उचित हो, वह दूसरे के लिए उचित न हो। सरकार द्वारा बनाए गए कानूनों के अलावा, न्याय या अन्याय का निर्धारण करने के लिए कोई सार्वभौमिक मानक नहीं हैं।

विभिन्न दार्शनिक न्याय की अवधारणा और विचार की अपनी-अपनी अनूठी व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। न्याय की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। न्याय की अवधारणा विशिष्ट परिस्थितियों और लागू कानूनों पर निर्भर करती है। पिछले दो सहस्राब्दियों में, चीन ने वितरणात्मक न्याय और सामाजिक-आर्थिक अधिकारों पर विशेष बल देते हुए राजनीतिक सत्ता को वैधता प्रदान की है और उसका प्रयोग किया है। वहीं, अमेरिका में राजनीतिक दर्शन में राजनीतिक अधिकारों और न्याय के उन पहलुओं पर अधिक बल दिया जाता है, जैसे कि समान भागीदारी और सम्मान।[7]

निष्कर्ष

न्याय की अवधारणा गतिशील है, जो नैतिक विचारों, ऐतिहासिक परिस्थितियों और सामाजिक परिवर्तनों से प्रभावित होती है। यद्यपि निष्पक्षता, समानता और नैतिक अच्छाई को अक्सर न्याय से जोड़ा जाता है, फिर भी यह अवधारणा मनमानी है और लोगों और सभ्यताओं के बीच भिन्न होती है। यद्यपि न्यायालय न्याय के संस्थान हैं और वकील इसके अधिकारी हैं, वास्तव में न्याय निष्पक्षता, सत्य और मानवीय गरिमा की निरंतर खोज है जो कानूनी ढाँचों से परे है।

दास प्रथा का उन्मूलन और मौलिक अधिकारों की प्राप्ति, ये दो उदाहरण दर्शाते हैं कि कैसे संस्कृतियों ने इतिहास भर में न्याय की पुनर्व्याख्या की है। कानूनी मानकों को चुनौती देना महत्वपूर्ण है क्योंकि किसी कानून का अस्तित्व मात्र ही उसे नैतिक रूप से निष्पक्ष नहीं बना देता। विलियम आर्चीबाल्ड डनिंग के इस विचार का अनुसरण करते हुए कि न्याय का निर्धारण निष्पक्षता और नैतिकता के प्रति समर्पण से होता है, समाज के जिम्मेदार सदस्यों के रूप में हमें उन कानूनों का विरोध करना चाहिए जो मौलिक मानवाधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

दार्शनिक, सुधारक और विधि विद्वान आज भी न्याय की उस अटूट इच्छा से प्रेरित हैं, जो औपचारिक कानूनी ढाँचों से पहले से मौजूद थी। सामाजिक मानदंडों पर सवाल उठाने, उनकी पुनर्व्याख्या करने और उन्हें बेहतर बनाने की खुली सोच ही सच्चे न्याय की नींव है। हम केवल इस निरंतर जांच और सुधार की प्रक्रिया में संलग्न होकर ही न्याय को उसके शुद्धतम रूप में प्राप्त करने की दिशा में कार्य कर सकते हैं।

सन्दर्भ

1. डी.डी. रैफेल, प्रॉब्लम्स ऑफ पॉलिटिकल फिलॉसफी, मैकमिलन, नई दिल्ली, 1977, पृ. 165।
2. जॉन रॉल्स (1971), अ थियरी ऑफ जस्टिस, ऑक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.
3. इलानोर जिलियट (1986), 'द सोशल ऐंड पॉलिटिकल थॉट ऑफ बी.आर. आम्बेडकर', थॉमस पैंथम और केनेथ एल. ड्युश्च (सम्पा.), पॉलिटिकल थॉट इन मॉडर्न इण्डिया, सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.
4. विल किमलिका (2..9), समकालीन राजनीति दर्शन : एक परिचय, (अनु. कमल नयन चौबे) पियर्सन, नयी दिल्ली.
5. मॉरिस गिन्सबर्ग, न्याय की अवधारणा, 38 फिल. 99-116 (रॉयल इंस्टिट्यूट ऑफ फिल. की ओर से कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1963)।
6. लॉर्ड डेनिंग, एनआर, द रोड टू जस्टिस, पृष्ठ 4 (1995)
7. क्रिस्टोफ हॉर्न, न्याय की अवधारणा: नैतिकता और राजनीतिक दर्शन में यह कितना मौलिक है? (2..7)।

मिथिलेश्वर के 'सुरंग में सुबह' उपन्यास में लोक से दूर जाता तंत्र

डॉ० उपेन्द्र प्रसाद

हिंदी विभागाध्यक्ष, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

मिथिलेश्वर के उपन्यास "सुरंग में सुबह" में आज की राजनीतिक व्यवस्था का सटीक चित्रण किया गया है। समकालीन राजनीति का अन्तर्जाल किस तरह झूठ, भ्रष्टाचार, दांवपेंच और अनैतिकताओं से भरा हुआ है इसका साक्षात् रूप इस उपन्यास में उभरकर सामने आया है। राजनीति ने समाज के हर वर्ग को किस तरह से अपनी गिरफ्त में लिया हुआ है और राजनीतिज्ञों की महत्वाकाक्षाएँ किस स्तर पर जाकर सिद्धान्तों, मूल्यों, नैतिकताओं तथा आस्था को पददलित कर रही हैं इसका जीवत चित्रण इस उपन्यास में बहुत विस्तार और गहराई से किया गया है। जो लोग इस भ्रष्ट राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हैं उन्हें किस तरह झूठे आरोपों में फंसाकर समाप्त करने की कोशिशें की जाती हैं और इसमें मीडिया यानि पत्रकारिता की भूमिका अवसरवादी रूप ग्रहण करती है यह भी गहरी चिंता का विषय है। ये तथाकथित नेता धर्म, साहित्य यहाँ तक कि अपने लोगों का इस्तेमाल करने में नहीं चूकते हैं। मानवेन्द्र सिंह की बेटी नंदिता अपने पिता के हर विरोधी को उनके पक्ष में लाने के लिए बिना किसी लज्जा के अपनी देह का इस्तेमाल करती है। राजा-महाराजाओं के काल में राष्ट्रहित में विषकन्याओं का इस्तेमाल किया जाता था लेकिन वर्तमान समय में स्त्रियाँ स्वयं को इस्तेमाल होने दे रही हैं यह राजनीति की पतनावस्था का वो वीभत्स रूप है जहाँ मूल्यों, नैतिकता और सिद्धान्तों की कोई अहमियत नहीं है सिर्फ सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा को साकार करने के लिए माध्यमों का मूल्य रह जाता है।

मिथिलेश्वर का यह उपन्यास बड़े आकार का उपन्यास है। उपन्यास में घटनाओं का चित्रण इस तरह किया गया है कि हर कथा एक संपूर्ण कथा में बदल जाती है। हर कथा राजनीति का नया चेहरा उभारती है। आधे से अधिक पृष्ठों में राजनीतिक, सामाजिक जीवन के उस यथार्थ को उभारा गया है, जिसकी देन लोकतन्त्र का यह संकट है। बिहार प्रदेश का जो अंचल कथा के केन्द्र में है वह साहित्यकार मिथिलेश्वर का अपना जाना बूझा अंचल उनकी अपनी जमीन है। उपन्यास में चित्रित राजनीतिक सामाजिक जीवन की घटनाएँ इसी जमीन पर घटित होती है। पात्र भी इसी जमीन के हैं। चाहे वे सतारूढ़ दल के केन्द्रीय मन्त्री राव मानवेन्द्र हो या उनका प्रतिस्पर्द्धी आर. अण्डमान हो या उनकी बेटी नन्दिता हो या फिर जनार्दन अंजलि, घनश्याम या दूसरे पात्र।

आज की राजनीति और राजनेताओं का कच्चा चिठ्ठा उपन्यास में लेखक ने बड़ी चतुराई के साथ प्रस्तुत किया है लोकतन्त्र के विदूषीकरण के खिलाफ अभियान जनार्दन और अंजलि अपने युवा साथियों की मदद से चलाते हैं विविध राजनीतिक दलों के अपने क्रियाकलाप बाजार तन्त्र और मीडिया की अवांछित भूमिकाएँ उन सबका सम्बन्ध भी उसी धरती के यथार्थ से है जो मिथिलेश्वर की अपनी जानी पहचानी है। सामाजिक अराजकता, ग्रामीण जीवन की रूढ़िबद्धता, अनपढ़ जनता की मानसिक जड़ता, दरिद्रता, हत्या, सामूहिक नरसंहार, अपहरण, दलित उत्पीड़न, स्त्री शोषण आदि जिन घटनाओं को उपन्यास में उभारा गया है, उनका सम्बन्ध भी बिहार प्रदेश की वास्तविकताओं से है। मिथिलेश्वर के साहित्य की विशेषता यह है कि इन्होंने यथार्थवाद की अपनी कला के तहत जो भी स्थितियाँ, प्रसंग, घटनाएँ या पात्रों के अपने क्रियाकलाप उपन्यास में सजीव हुए हैं वे प्रादेशिक अथवा आंचलिक सीमाओं से आगे प्रतिनिधि बनकर उपन्यास में आए हैं और उनके जरिए हिन्दुस्तान के किसी भी भाग के राजनीतिक-सामाजिक जीवन के यथार्थ को समझा जा सकता है। यह भारतीय राजनीतिक सामाजिक जीवन का यथार्थ है जो उपन्यास में उद्घटित हुआ है।

मिथिलेश्वर का उपन्यास 'सुरंग में सुबह' इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि यह भारत के संसदीय जनतंत्र के नव रूढ़िवाद, नव जातिवाद, नव संप्रदायवाद और नव पूंजीवाद पर आरूढ़ होकर किसी भी तरह से चुनाव जीत कर जनतंत्रीय सत्ता पर कब्जा करने वाली पतनशील प्रक्रिया को पकड़ने की कोशिश करता है। यह उपन्यास इस तथ्य को प्रस्तुत करता है कि जिस देश का लोक अपने 'तंत्र' की समझ से वंचित हो, वहां लोकतन्त्र की परिकल्पना कभी बेहतरी को प्राप्त नहीं कर सकती। तंत्र की समझ को 'लोक' की संवेदना से जोड़ना इक्कीसवीं सदी में व्यापक चिंता का विषय है।

उपन्यास का आरम्भ मानवेन्द्र सिंह की राजनीतिक यात्रा और उस यात्रा में जनार्दन द्वारा सारे आवंतरिक रहस्यों, भेदों तथा समीकरणों को जान लेना उस सत्य से साक्षात्कार करवाना है जो सत्य जनता की आँखों में धूल झोंकना है। जहाँ जनता को मूर्ख बनाकर नेता अपनी कुर्सी को मजबूत बनाते हैं और षड्यंत्र करवाकर सहानुभूति भी बटोर लेते हैं। तमाम समस्याओं – चाहे वह हिंसा हो या जातीय दंगे

या हड़ताल – के जन्म में नेताओं की भूमिका तथा साजिश का भंडाफोड़ करता यह उपन्यास लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखने वाले जनतांत्रिक आधार की नींव हिलाने वालों की असलियत उजागर करता है।

उपन्यास में जनार्दन एक सेवक के रूप में पढ़ लिखकर नौकरी दिलवाने की आशा में नेताजी के पास रहता है। नेताजी नौकरी तो नहीं दिलवा पाते हैं अपनी जान बचाने की एवज में उसे अपना सुरक्षा कवच अंगरक्षक जरूर बना लेते हैं। नेता जी की सुरक्षा की जिम्मेदारी के कारण जनार्दन उनके काफी करीब आ जाता है और यहीं पर आकर वह उनकी चालों को देखता है...। हैरान कर देने वाली उनकी साजिशें जनार्दन की आँखें खोल देती हैं। राजनीति का यह घिनौना रूप मन में वितृष्णा भर देता है। नेता जी की हत्या के बाद कथा एक नया मोड़ लेती है जब जनार्दन अपने गाँव में आम लोगों के बीच जाकर काम करने लगता है। वह गाँव में जाकर पार्टी कार्यकर्ता बन जाता है। रैलियों में भाग लेता है। गाँव में आकर अंजली एक ईमानदार स्त्री उसके जीवन में आती है। टिकट मिलने की प्रक्रिया में जो धांधली होती है उससे जनार्दन को धक्का लगता है। उसी समय अपने पिता की उत्तराधिकारी बनकर नंदिता युवा राजनीतिज्ञ के रूप में सामने आती है।

'सुरंग में सुबह' बाजारवाद के साथ जुड़े सांस्कृतिक संदर्भों एवं उसके सामाजिक परिणामों की गहराई में जाकर इस तथ्य को पकड़ता है कि बाजारवाद का हमला सिर्फ आर्थिक स्तर पर नहीं है इसके सांस्कृतिक दुष्प्रभाव भी है। नतीजा यह कि बाजारवाद के विश्व महाप्रभुओं के हितों के साथ अपने हितों की नत्थी करके भविष्य को सुरक्षित समझने वाले देशी महाप्रभुओं की संख्या भी निरंतर बढ़ रही है। जिस 'तंत्र' में 'लोक' से अधिक 'लोकेतर' की चिंता को तरजीह मिलने लगे, वह तंत्र लोकतन्त्र के महान आदर्शों से पतन की राह पर ही आगे बढ़ता है।

बाजारवाद के हमले के बावजूद लोकतन्त्र की जड़ें मजबूत हैं इसलिए "यहां कोई शासक अपनी स्वेच्छाचारिता के बल पर अधिक समय तक काबिज़ नहीं रह सकता। अपनी प्रकृति के अनुकूल हमारा लोकतन्त्र शासकों और उसकी पार्टियों को सत्ता से बेदखल करता रहा है।"[1]

बाजारवाद का प्रभाव मीडिया पर भी कम नहीं है। उसके बारे में लेखक का मत है–

"मानवीय संघर्ष में समय-समय पर प्रतिगामी दैत्यों का मारा जाना ऐतिहासिक सच रहा है। हम इस विश्वास के साथ दृढ़ हैं कि इस बाजार रूपी दैत्य का भी अंत होना है।"[2]

पिता की मृत्यु के बाद जब नन्दिता राजनीति में आती है तो उसे जन-जन तक पहुँचाने का काम मीडिया करता है। लेखक ने मीडिया तथा पत्रकारिता पर जमकर कटाक्ष किया है। पत्रकारिता के मूलभूत सिद्धान्तों की खिल्ली उड़ाने वाले पत्रकार तथा मीडियाकर्मी धन और राजनीतिक प्रभाव के सामने कठपुतली बन जाते हैं। बाजारवाद की ओट में घुटने टेकने वाले इस तंत्र की लेखक ने जमकर खिंचाई की है। मीडिया को पूरी तरह संवेदनहीन नहीं कहा जा सकता है। उसने संवेदना की अपनी प्राथमिकताएँ बदल दी हैं। अब उसके केन्द्र में गाँव के किसान-मज़दूर और जमीनी सच्चाईयाँ नहीं रहीं, सत्ता प्रतिष्ठान के लोग बड़े उद्योगपति, बड़े खिलाड़ी, बड़े फिल्मकार और बड़े घराने हैं।"[3]

बाजारवाद, मीडिया, पत्रकारिता के बाद लेखक ने वैश्वीकरण के संकट पर अपने विचार प्रो. नायर के माध्यम से व्यक्त किये हैं। प्रो. नायर का कथन "वैश्वीकरण के इस संकट का उल्लेख मैं अक्सर करता हूँ। पर इस आपदा को बहुत से लोग वरदान मानकर चलते रहे हैं। हमारे लोकतन्त्र के लिए यह वैश्वीकरण साधक है या बाधक इसकी विभाजक रेखा खींचनी ही पड़ेगी कठिनाई यह है कि विज्ञान के घोड़े पर सवार वैश्वीकरण के इस दिग्विजयी रथ को रोकने की क्षमता का अभाव लोग महसूस कर रहे हैं।"[4]

राजनीति में आने के बाद नंदिता जर्नादन को हर तरह से परेशान करता है। उसका केवल एक ही उद्देश्य है जीत हासिल करना। उसके लिए चाहे उसे किसी भी हद तक जाना पड़े वह तैयार रहती है। लेकिन जीत होती है जनार्दन की, उसके विश्वास की, उसके समर्पण की। आम लोगों की जो परिवर्तन की मुख्य शक्ति होती है "अपनी इस लड़ाई में जमीनी स्तर पर मूल्य आधारित पार्टियों और कार्यकर्ताओं की समर्पित भूमिका ही हमें विजयी बनाएगी।"[5] उपन्यास में व्यक्त स्थिति लोकतन्त्र में हमारी आस्था को पक्का करती है। गिरफ्तार होने के बावजूद भी जनार्दन को नंदिता अपराधी आतंकवादी घोषित नहीं करवा पाती है बल्कि जनार्दन असली जननायक बनकर राजनीति में अपनी जगह बनाने में कामयाब हो जाता है और यही लोकतन्त्र की महानता का द्योतक है।

उपन्यास में जिन समस्याओं तथा स्थितियों को लेखक ने उठाया है वे आज के लोकतन्त्र की ज्वलंत समस्याएँ हैं और उनका हमारे जीवन में गहरा प्रभाव है। उस प्रभाव से कोई भी वर्ग अछूता नहीं है और हरेक को अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी पड़ती है। बिना संघर्ष किए मनुष्य का अस्तित्व सुरक्षित नहीं, इसलिए संघर्ष के द्वारा ही प्रतिगामी शक्तियों से लड़ा जा सकता है। यह संदेश बहुत बड़ा संदेश है।

उपन्यास में मुख्य रूप से लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि राजनीति के साथ जो व्यवस्थाएँ तथा ताकतें लोकतांत्रिक व्यवस्था को प्रभावित कर रही हैं उनका सच भी लेखक ने उभारा है। 'सुरंग में सुबह' सभ्यता के निष्कवच अंत:संघर्ष को अभिव्यक्त करता है। निष्कर्ष यह कि जनतंत्र का विकल्प जनतंत्र ही है। जनतंत्र को साध लेने से बाकी सारी समस्याएँ सधने के रास्ते पर स्वत: आने लग जाती है। जनतंत्र को साधने का यह संघर्ष बाहरी भी होता है और भीतरी भी। सुरंग में सुबह बेहतरी के लिए जनतंत्र केंद्रित युवा संघर्ष के सूर्योदय की सामाजिक स्थिति के आयाम पर विरचित है। उपन्यास अंत तक आते-आते बौद्धिक विमर्ष तथा बहस का केन्द्र बन जाता है। शायद यह इसलिए भी जरूरी था क्योंकि इसी बहाने तमाम बिन्दुओं पर बहस की जा सकती थी। उपन्यास अपने उद्देश्य में सफल रहा है।

संदर्भ सूची:

1. मिथिलेश्वर, सुरंग में सुबह, पृ. - 377
2. मिथिलेश्वर, सुरंग में सुबह, पृ. - 390
3. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ. - 299
4. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ. - 388
5. मिथिलेश्वर, माटी कहे कुम्हार से, पृ. - 390

हिन्दी भाषा के विकास में डॉ० रामविलास शर्मा का योगदान

डॉ० अभिनय कुमार

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

भाषा हमारे व्यक्तित्व का आईना है। यह हर किसी के लिए सुलभ है, व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व में हवा-पानी की तरह गहराई तक बसी हुई है, इसलिए इसके सहारे शिक्षित और अशिक्षित, स्त्री और पुरूष, उच्च की और निम्न वर्ग आदि समाज के सभी तबके के व्यक्तियों को छेड़ा और उकसाया जाना संभव है। 'छेड़ना' और 'उकसाने' की झलक 'हिंदी-उर्दू' विवाद के संदर्भ में, हमें इस लेख में भी मिलते हैं। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में, ''भाषा अगर दो दिलों को जोड़ने का काम करती है तो वह दो दिलों को तोड़ने का साधन भी बनती है। अगर भाषा के सहारे हम 'सच' को पकड़ने की क्षमता रखते हैं तो उसी के सहारे हम 'झूठ' को भी सच साबित करने का सामर्थ्य रखते हैं।'' [भाषाई अस्मिता और हिंदी, पृष्ठ-19] इस लेख में रामविलास शर्मा ने, हिन्दी भाषा की विकास प्रक्रिया को भारतेन्दु युग के तहत दिखाया है। पूरा लेख 21 खण्डों में है, जिसमें शर्माजी शुरूआत के 10 खण्डों में विशाल हिन्दी-भाषा जाति, हिन्दी की साहित्यिक विरासत और उसका भाषायी परिवेश, लल्लूजी लाल और उनके पहले के लेखकों की रचनाओं में 'भये','सुनाय' का प्रयोग', आवै'-' जावै की जगह आये', 'जाये की प्रतिष्ठा, पूर्वकालिक क्रियारूपों में कर और करके का प्रयोग, पंजाबी और राजस्थानी का प्रभाव, हिंदी-उर्दू के विकास में ब्रजभाषा की भूमिका, पुरानी हिन्दी में 'ने' का प्रयोग और लल्लूजी लाल और मीर अम्मन के गद्य की सामान्य विशेषमताएँ और भेद बतलायी गई हैं।

हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास और प्रसार की राह में जो कठिनाइयाँ थीं, उन्हें दूर करने के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1873 ई. में 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' नाम की पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का गहरा असर हिन्दी भाषा के निखार और साहित्य के विकास पर पड़ा। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि, जातीयता की दृष्टि से आज हिन्दी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा है। आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रगति के सौ वर्ष पूरे हुए हैं और इन सौ वर्षों में हमने अपना एक अलग मुकाम बनाया है, जो हमारे लिए जातीय और राष्ट्रीय महत्व की घटना है। हम देखते हैं कि, जिस तरह हिन्दी का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश है उसी तरह उसका एक भाषागत परिवेश भी है, जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ भी है:-

(1) 'हिन्दी के भाषागत परिवेश की पहली विशेषता यह है कि हिन्दी प्रदेश की बोलियों में सामान्य तत्वों के अलावा उनके व्याकरण और शब्द भण्डार की अपनी विशेषताएँ हैं। यह अन्तर्जनपदीय परिवेश हिन्दी भाषा को प्रभावित करता है और स्वयं भी उससे प्रभावित होता है।' [हिन्दी भाषा की विकास-परम्परा और भारतेंदु युग-पृष्ठ-141]

(2) 'हिन्दी-उर्दू का सह-अस्तित्व और परम्परा प्रभाव हिन्दी के भाषायी परिवेश की दूसरी विशेषता है।' [वही, पृष्ठ-142] यह भी तब जबकि विशिष्ट शब्द-भण्डार के विचार से (हिन्दी-उर्दू) दोनों में उतना फासला है जितना अंग्रेजी और लैटिन में नहीं है। यह और बात है कि संरचना और शब्द-भण्डार की दृष्टि से दोनों के रूप मिलते-जुलते हैं।

(3) 'हिन्दी के भाषागत परिवेश की तीसरी विशेषता इसके सब-स्टैण्डर्ड' रूप है, जो जनपदीय बोलियों के प्रभाव से बनते हैं। [वही, पृष्ठ, 143] जैसे महंगी आदि से प्रभावित पटना की हिन्दी, भोजपुरी से प्रभावित बनारसी और खड़ी बोली की राजधानी दिल्ली पर पंजाबी का असर।

(4) रामविलास शर्मा अरबी-फारसी के महत्व को दरकिनार करते हुए लिखते हैं कि ''किसी भारतीय भाषा के लिए अरबी या फारसी का वह महत्व नहीं हो सकता जो उसके लिए संस्कृत हमारे देश की ही नहीं हमारे प्रदेश की भी भाषा रह चुकी है। वे कहते हैं कि अगर उर्दु की शब्द उधार लेने की हैं तो वह तुर्की से ले क्योंकि दिल्ली की गद्दी पर तुर्क बैठे थे। 'तुर्की' भाषा से शब्द उधार लेने का है रामविलास शर्मा का यह कोण गले से नीचे नहीं उतरती।

लोकतांत्रिक परंपरा में भाषाओं के जायज हक को कुचला नहीं जा सकता है। यह किसी वर्ग विशेष पर अपना राय थोपने जैसा है। रामविलास शर्मा सारे विवाद की जड़ उर्दू में कोई बुनियादी फर्क देना चाहते हैं। उनका कहना है कि हिंदी उर्दू में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। जबकि यह सैद्धांतिक रूप से माना भी जा सकता है किन्तु व्यवहारिक रूप से इसे हम नहीं मान सकते हैं। यह

सही है कि 'दोनों ही खड़ी बोली को दो साहित्यिक शैलियां हैं।'[1] यह उदारता पूर्वक दिया गया बयान है। भाषा में उठे इन्हीं सब विवादों को देखकर प्रेमचंद ने कहा ''वह शब्द सरल है जो व्यवहार में आ रहा है। इसमें कोई बहस नहीं क्यों इतना सौतियाडाह है, मेरी समझ में नहीं आता। अगर एक समुदाय के लोगों को उर्दू नाम प्रिय है तों उन्हें इस्तेमाल करने दीजिए। जिसे हिंदी नाम से प्रेम है, वह हिंदी ही कहे। इसमें लड़ाई काहे की है।-[प्रेमचंद-'साहित्य का उद्देश्य, (पृष्ठ-106)]

इस तरह हम देखते हैं कि रामविलास शर्मा ने अरबी-फारसी हिंदी-उर्दू के संबंध में जिसे चौथी भाषाई विशेषता के रूप में इंगित किया है, उनका वह दृष्टिकोण एकांगी है।

(5) पाँचवी और अन्तिम विशेषता के रूप में वे हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी का प्रभाव मानते हैं।

पुरानी चाल की हिन्दी के बाद भारतेन्दु हरिचन्द्र ने उसे नयी चाल में कैसे ढ़ाला इस पर शुक्ल जी अपनी टिप्पणी इस प्रकार करते हैं:-''मुंशी सदासुख की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए भी-लल्लूजी लाल में ब्रजभाषापन और सदसि मिश्र में पूरबीपन था। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक सीमित न था, वाक्य विन्यास तक में घुस गया था। राजा लक्ष्मण सिंट की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें कम न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्ट और सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।'' [हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-246] स्पष्ट है राजा शिवप्रसाद की तरफ से बिल्कुल आँख- मूँदकर भारतेंदु हरिश्चन्द्र को आचार्य शुक्ल ने प्रतिष्ठित कर दिया। ''1873 ई. में भारतेंदु से हिंदी चाल में ढ़ली'' इस एक वाक्य में पर हिन्दी साहित्य में बहुत विवाद उत्पन्न हुए हैं। इस लेख में भी राम विलास शर्मा की ज्यादा कोशिश यही दिखाने में है कि हरिश्चन्द्र के द्वारा ही हिन्दी नए चाल में ढ़ली। अब सवाल यह उठाता है कि क्या सचमुच हिन्दी 1873 ई. में चाल में ढ़ली या इसके पीछे इसकी एक सुदृढ़ लंबी विरासत है? हलाँकि वो निष्कर्ष के रूप में स्वीकार करते हैं कि ''1873 ई. में हिन्दी नयी चाल में नहीं ढ़ली, यह कार्य इससे बहुत पहले सम्पन्न हो चुका था। 1857 ई. के आस-पास राजा शिवप्रसाद जैसी हिन्दी लिख रहे थे, उसी को भारतेन्दु ने अपनाया था। [हिन्दी भाषा की विकास परम्परा,-पृष्ठ-227]।

1. अमृत राय, आधुनिक भावबोध की संज्ञा। पृष्ठ-154

इस पर डॉ. तलवार अपनी पुस्तक रस्साकशी में लिखते हैं कि ''डॉ. शर्मा का बयान आधा सच है। उन्होंने अपने कथन का अधार 1857 ई. में छपे भूगोलहस्तामलक के दूसरे संस्करण को बनाया। भूगोल-हस्तामलक की भाषा शिवप्रसाद ने बैतालपच्चीसी की चाल पर रखी थी जो अरबी-फारसी के सरल और प्रचलित शब्दों से मिश्रित हिन्दी थी। यह हिन्दी भारतेंदु की पहचान नहीं है। भारतेंदु ने शिवप्रसाद की धार्मिक विषयों से संबंधित किताबों (मानव धर्म सार वगैरह) की हिन्दी को अपनाया था जिनमें संस्कृत के सरल और प्रचलित शब्दों से मिश्रित हिन्दी लिखी गई थी। वास्तव में शिव-प्रसाद की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी भारतेन्दु के मुकाबले ज्यादा सरल साफ-सुथरी और प्रभावपूर्ण है। भारतेन्दु की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बेढंगी और उबड़-खाबड़ है। [रस्साकशी, पृष्ठ-84]।

इन दोनों (राजा शिवप्रसाद सिंह और भारतेन्दु) की हिंदी के साथ-साथ लल्लूजी लाल और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की हिन्दी में भी अंतर खोजा जा रहा था। रामविलास जी के अनुसार, लल्लूजी लाल और भारतेन्दु की हिन्दी में 'भये' का प्रयोग होता था, पुरानी चाल की हिन्दी में भी 'भये' का प्रयोग होता था। 'भया' रूप तो जनपदीय बोलियों में अब भी प्रयुक्त होता है। किन्तु उसे पंडिताऊ या गँवारू समझकर हिन्दी की टकसाल से निकाल दिया गया है। वस्तुत: 'भये' का बहिष्कार आधुनिक हिन्दी-उर्दू की विशेषता है। ''जनपदीय खड़ी बोली का रूप हिन्दी-उर्दू रूप आगरे की देन है। व्यापार की बहुत बड़ी मंडी होने से यहाँ अनेक बोलियों को इकट्ठे होने और एक-दूसरे को प्रभावित करने का अवसर मिला। आगरे के कुछ खास शब्द-रूप पुरानी हिन्दी-उर्दू में प्रचलित थे, वे पुराने व्याकरणों, शब्द-कोशों और पाठ्यपुस्तकों में मिलते हैं। [रामविलास शर्मा, भारतेन्दु और हिन्दी भाषा की विकास-परम्परा, पृष्ठ-277]। खड़ी बोली ब्रजभाषा से भी प्रभावित रही है। आगरा ब्रज जनपद का नगर है, यही कारण है कि यहां जिस खड़ी बोली का विकास हुआ वह ब्रजभाषा से प्रभावित थी। पुरानी उर्दू अथवा मुसलमान लेखकों की हिन्दी पर जितना प्रभाव फारसी का है, उससे कहीं ज्यादा ब्रजभाषा का है। इस तथ्य को ठीक से नहीं समझ पाने के कारण ही यह भ्रम पैदा हो गया कि मुगलों के लश्कर में उर्दू का जन्म हुआ। ब्रजभाषा का यह प्रभाव दिल्ली-आगरे के साथ-साथ बीजापुर और हैदराबाद की हिन्दी पर भी है। हिन्दी-उर्दू एकता कायम में नजीर अकबराबादी का बहुत बड़ा योगदान है। वे कम्पोजीट कल्चर के हिमायती थे। ब्रजभाषा के 'य' रूप का दर्शन इनके यहां मिलते हैं। जैसे- महादेव जी का ब्याह कविता में:-

पहले नॉव गणेश का, लीजे सीस नवाय।
जासे कारण सिद्ध हों, सदा मुहूरत लाय।।

लेकिन क्रियारूपों के 'य' और 'व' वर्णों का प्रयोग अब सिर्फ जनपदीय बोलियों में ही रह गये हैं। इन वर्णों को हटाकर हिन्दी-उर्दू ने अपनी रचना-शक्ति में कुड कमी कर ली है। 'व' के स्थान पर 'य' और 'ए' के स्थान पर 'ए' की प्रतिष्ठा कर हिन्दी-उर्दू टकसाली बन गई है। जैसे- गालिब के इस शेर में 'य' वाले रूपों का प्रयोग किया गया है:-

''कभी नेकी भी-उसके जी में गर आ जाय है मुझ से।
जफायें करके अपनी याद शरमा जाय है मुझसे।।''

इसी तरह 'कर' के प्रयोग में भारतेन्दु सतर्क रहते हैं। वे लिखते हैं- ''यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया'' (मुदाराक्षस')। इनसे पहले राजा लक्ष्मणसिंह भी अपने गद्य में ऐसी ही सतर्कता बरतते हैं, ''शकुन्तला सूरज निकलते ही शिरस्नान करके बैठे हैं'' (शकुन्तला नाटक)। हिन्दी में ऐसे अनेक क्रियारूप हैं जिनका प्रयोग पुरानी हिन्दी में होता था किन्तु आधुनिक हिन्दी में वे प्रयोग नहीं होते। 'आन' और 'पहिरना' ऐसे ही क्रिया रूप हैं गालिब ने भी आन का प्रयोग किया है। काम वह आन पड़ा है कि बनाये न बने,। पहिरना का आधुनिक रूप पहनना हो गया है। इसी तरह 'कारे' 'जहाँ' के साथ वहाँ का प्रयोग 'उस' की जगह 'विस' का प्रयोग आगरे की खड़ी बोली की विशेषता है। हिन्दी-उर्दू सीखने में एक कठिनाई 'ने' का प्रयोग है। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने एक बार प्रस्ताव किया था कि हिन्दी से 'ने' का व्यवहार उठा दिया जाये।

इस तरह हम देखते हैं कि पुरानी हिन्दी-उर्दू के बहुत से रूप, बहुत से प्रयोग आपस में टकरा रहे हैं और भाषा की भागीदारी में बहते-टकराते अपना रूप संवार रहे हैं। [भारतेन्दु युग पृष्ठ-180]

भारतेन्दु-युग की हिन्दी में भदेस पन के कारण बड़ी शक्ति है। आधुनिक हिन्दी ने भाषा की एक प्रबल शक्ति (भदेसपन) की उपेक्षा कर अपने को परिनिष्ठित किया है। जिससे दोनों जहां पहले एक धरातल पर थे, वहीं अब एक ने अपना मुख संस्कृत की तरफ और दूसरे ने अपना मुख अरबी-फारसी की तरफ ली है। अलगाँव का यह सिलसिला कोर्टविलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट से शुरू होता है। इससे पहले मीर, गालिब, नजीर, आदि ने साझी-संस्कृति के विकास में अपनी अहम भूमिका निभायी थी। मीर ने अपनी भाषा को हिन्दी कहा था। उनकी हिंदी, हिंदी-उर्दू का बेइंतहा खूबसूरत रूप है। 'सिरहाने मीर के अहिस्ता बोली अभी टुक रोते-रोते सो गया है।''इस तरह हम देखते हैं कि ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली-तीनों में मुसलमान कवियों ने रचनाएं की हैं। इससे इस धारणा को खारिज किया जा सकता है कि उन्होंने केवल खड़ी बोली के उस रूप को अपनाया था, जिसे उर्दू कहते हैं। गिलक्राइस्ट ही वह शख्स था, जिसने हिन्दु-मुसलमानों के भाषाओं को जातीय आधार पर अलग करने की कोशिश की, और एक ही भाषा के दो रूप करने में सफलता प्राप्त की। उसने अपने यहाँ उर्दू और माखा के मुंशियों से कहा था कि जब हिंदी लिखों, तब उसमें अरबी-फारसी के शब्द न आने दो, और जब उर्दू लिखो तो उसमें संस्कृत के शब्द न आने दो। किन्तु उसके आदेश की अवहेलना कर वे लोग दोनों शैलियों को मिला देते थे।

राजा शिवप्रसाद को अंग्रेजपरस्त समझा जाता रहा है। जबकि उनके प्रति ऐसी धारणा रखना उनपर अन्याय करना है। वस्तुत: वे ऐसे भाषा पर जोर देते थे जो ज्यादा शाइस्ता न हो। लेकिन उसमें रोजमर्रा की जिंदगी का भोंडापन भी न हों, हिंदु या मुसलमान उसकी तारीफ न करें तो उससे बिदके भी नहीं। आम जनता के बीच दोनों भाषाओं में दरार नहीं थी, दरार थी उच्चवर्गों का यह दृष्टिकोण भाषा के परिष्कार के नाम पर उसे जनपदीय बोलियों से शहरी बोलचाल से, दूर ढकेल रहा था और यह सिलसिला अंग्रेजी राज खत्म होने के पच्चीस साल बाद भी जारी रही है। ''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह युगान्तकारी महत्व है कि वह जो भाषा लिखते थे वह जनपदीय बोलियों तथा शहरी बोलचाल के बहुत पास थी। [.....हरिश्चन्द्र युग, पृष्ठ-203]

1873 और 1973 तक पिछले सौ वर्षों में विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली कि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान बनाने वालों को यह सोचकर दुख हुआ कि हमारा राष्ट्र तो स्वाधीन हो गया किन्तु राष्ट्रभाषा अकिसित रह गयी है। इसलिए हिंदी पर दया करके उसे विकसित करने के लिए 15 वर्षों का समय दिया गया। शायद संसार के किसी भी भाषा के लिए उसी के देश में यह नहीं कहा गया होगा कि, यह भाषा अविकसित है और विकसित होने के लिए 15 वर्ष का समय दिया जाता है। तब-तक अंग्रेजी में इसके समकक्ष राजभाषा का कार्य होगा। फिर शुरू हुआ, कोश बनाने का सिलसिला। उसमें हजारों शब्द वही थे जो उन्नीसवीं सदी में प्रचलित थे। कुछ शब्द जॉन 'शेक्सपियर' की पुस्तक से, कुछ फैलन के कोश (1873 ई.) से और कुछ शब्द लल्लूजी लाल की शब्दसूची से लिये गये हैं। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि ''शब्द पुराने हैं, पुरानी पुस्तकों में मौजूद हैं किन्तु हवा यह बाँधी गयी कि हिन्दी निदेशालय हजारों नये शब्द गढ़ने में लगा है। शब्द गढ़ना और बात है, शब्द संग्रह करना और बात।'' [हिन्दी.....भारतेन्दु युग पृष्ठ-209]

उन्नीसवीं सदी में लल्लू जी लाल ने साढ़े तीन हजार से ऊपर हिन्दी की सूची बनायी थी और उनके फारसी और अंग्रेजी प्रतिरूप दिये थे। फैलन का शब्दकोश 1879 ई. में प्रकाशित हुआ। फैलन ने अपना कोश हिन्दी उर्दू के साधारण जानकारों के लिए बनाया था। जो पारिभाषिक शब्द उन्होंने दिये हैं, वे चालू हिन्दुस्तानी या हिन्दी के हैं। फैलन ने अपने शब्दकोश में पहली बार और बहुत ही स्पष्ट

रूप से जातीय भाषा हिन्दी और जनपदीय बोलियों के संबंध की सही व्याख्या की। उनका शब्दकोश 19वीं सदी की भाषायी स्थिति का दर्पण है। जो पारिभाषिक शब्द उन्होंने दिये हैं वे चालू हिन्दुस्तानी या हिन्दी के है। ये गणित, भौतिक, विद्युत, ज्योतिष और वनस्पति शास्त्रों के हैं। फैलन के सामने तीन तरह के पारिभाषिक शब्द थे- अरबी, संस्कृत और हिन्दुस्तानी। फैलन ने पहली बार अपने कोश में आम जनता की बोलचाल और ग्रामीण माहभाषा को महत्व दिया। यहाँ तक कि ''अभी विद्यालयों में गँवारी बोली के लिए प्रोफेसर पद नहीं है लेकिन एक दिन आयेगा जब जनता की भाषा के लिए ऐसे पद होगें। '' [वही, पृष्ठ-257]

फैलन का शब्दकोश उन्नीसवीं सदी की भाषायी स्थिति का वह दर्पण है जिससे हमें पता चलता है कि हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों की कमी का रोना भ्रामक था, जिसे गढ़ने का काम केन्द्रीय निदेशालय ने किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र और उनके सहयोगियों ने हिन्दी भाषा की प्रकृति पहचानकर उसे साहित्यिक ब्रजभाषा और तत्कालीन जनपदीय बोलियों की भाषा संपदा से वंचित न होने दिया। उनकी नयी चाल की हिन्दी पुरानी चाल की हिन्दी के बहुत निकट है किन्तु आधुनिक हिन्दी उनकी भाषा से दूर जा रही है। इस पर अंग्रेजी का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ रहा है। हिन्दी में अंग्रेजी मुहावरों, शब्दों और वाक्यांशों का अनुवाद करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जिससे हिन्दी का अपना रूप विकृत हुआ है और उसकी आन्तरिक क्षमता में भी कमी आयी है। भारतेन्दु युगीन हिन्दी, राजा शिवप्रसाद एवं फैलन के उत्कृष्ट योगदान को ध्यान में रखते हुए हमें हिन्दी को अंग्रेजी के प्रभाव से मुक्त कराने की जरूरत है। क्योंकि अपनी समस्याओं को जितनी अच्छी तरह से हम अपनी भाषा में समझ सकते हैं। उतनी अच्छी तरह से हम विदेशी चश्मों से नहीं समझ सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास [नागरी प्रचारिणी समा, वाराणसी], - रामचंद्र शुक्ल।
2. 'साहित्य का उद्देश्य' - प्रेमचंद।
3. भारत की भाषा समस्या - डा. रामविलास शर्मा।
4. आधुनिक भावबोध की संज्ञा - अमृत राय।
5. 'हिन्दी भाषा का समाजशास्त्र' - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव।
6. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा [राजकमल प्रकाशन, पटना], 1975- रामविलास शर्मा।
7. रस्साकशी [सारांश प्रकाशन, दिल्ली, हैदराबाद], 2002-डा. वीरभारत तलवार।

भारत-नेपाल संबंध 2025: राजनीतिक अस्थिरता, क्षेत्रीय सुरक्षा और रणनीतिक पुनर्संतुलन पर व्यापक अध्ययन

डॉ० विनोद कुमार यादव

राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध सार

वर्ष 2025 दक्षिण एशियाई भू-राजनीति, विशेष रूप से भारत-नेपाल द्विपक्षीय संबंधों के इतिहास में एक निर्णायक वर्ष के रूप में दर्ज किया गया है। यह वर्ष, जो पारंपरिक कूटनीतिक जुड़ाव और नियमित सैन्य सहयोग के साथ शुरू हुआ था, हिमालयी राष्ट्र में शासन और सुरक्षा के गहरे संकट में समाप्त हुआ। सितंबर में हुए "जेन जेड विद्रोह" ने नेपाल की स्थापित राजनीतिक व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप प्रधान मंत्री के.पी. शर्मा ओली को इस्तीफा देना पड़ा और नेपाल की पहली महिला प्रधान मंत्री, सुशीला कार्की के नेतृत्व में एक अंतरिम सरकार का गठन हुआ। यह रिपोर्ट 2025 की घटनाओं का एक विस्तृत और सूक्ष्म विश्लेषण प्रदान करती है, जिसमें राजनीतिक उथल-पुथल के कारणों और परिणामों की जांच की गई है। यह दस्तावेज नेपाल में उत्पन्न सुरक्षा शून्यता जिसका प्रमाण 14,000 से अधिक कैदियों के अभूतपूर्व जेल ब्रेक में मिलता हैकृऔर भारत के सीमा प्रबंधन पर इसके प्रत्यक्ष प्रभावों का विश्लेषण करता है। इसके अलावा, रिपोर्ट चीन के साथ गहरे होते भू-राजनीतिक संघर्ष की पड़ताल करती है, जो बीआरआई द्वारा वित्तपोषित पोखरा अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के भ्रष्टाचार घोटालों और भारत के साथ क्षेत्रीय राष्ट्रवाद पर नए सिरे से हुए घर्षण (मुद्रा और मानचित्र विवाद) में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। आर्थिक डेटा, व्यापार के आंकड़ों और कूटनीतिक संवादों के विस्तृत परीक्षण के माध्यम से, यह रिपोर्ट तर्क देती है कि जहाँ 2025 ने नेपाल के लोकतांत्रिक संस्थानों की नाजुकता को उजागर किया, वहीं इसने नई दिल्ली के लिए एक जटिल नई वास्तविकता भी प्रस्तुत की है: पारंपरिक राजनीतिक वर्ग के बजाय एक गैर-पारंपरिक नेतृत्व के साथ व्यवहार करना, साथ ही विरासत में मिले तनावों और उभरते सुरक्षा खतरों का प्रबंधन करना। मार्च 2026 के महत्वपूर्ण चुनावों की ओर बढ़ते हुए क्षेत्र के लिए यह समय अत्यंत संवेदनशील है।

मूल शब्द- राजनीतिक, अस्थिरता, क्षेत्रीय, सुरक्षा, व्यापार, संस्कृति, धर्म, भाषा।

प्रस्तावना

भारत और नेपाल के बीच संबंध केवल कूटनीतिक या राजनीतिक नहीं हैं, बल्कि ये साझा संस्कृति, धर्म, भाषा और 'रोटी-बेटी' के रिश्तों पर आधारित एक गहरी सभ्यतागत साझेदारी है। 1,751 किलोमीटर लंबी खुली सीमा, जो भारत के पाँच राज्यों (सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड) से लगती है, इस विशिष्ट संबंध को परिभाषित करती है। हालाँकि, 2025 में इन संबंधों ने एक अभूतपूर्व तनाव और परिवर्तन का अनुभव किया। 2015 के नाकाबंदी और 2020 के मानचित्र विवाद के बाद से, काठमांडू में राजनीतिक अस्थिरता अक्सर भारत विरोधी बयानबाजी और चीन की ओर रणनीतिक झुकाव के साथ जुड़ी रही है। 2025 की शुरुआत में, भारत की "नेबरहुड फर्स्ट" नीति के तहत संबंधों को स्थिर करने का प्रयास किया गया, लेकिन आंतरिक नेपाली राजनीति के ज्वालामुखी ने कूटनीतिक प्रयासों को एक नई चुनौती दी।

2025 का रणनीतिक महत्व

वर्ष 2025 केवल एक कैलेंडर वर्ष नहीं था, बल्कि यह एक ऐसा वर्ष था जब नेपाल की जनसांख्यिकीय लाभांश यानी 'जेनरेशन जेड' ने पहली बार राष्ट्रीय राजनीति की दिशा को मौलिक रूप से बदल दिया। पारंपरिक राजनीतिक दलोंकृनेपाली कांग्रेस, सीपीएन-यूएमएल और माओवादियों के दशकों पुराने वर्चस्व को चुनौती देते हुए, युवाओं ने भ्रष्टाचार और कुशासन के खिलाफ एक निर्णायक युद्ध छेड़ा। भारत के लिए, इसका अर्थ था एक ऐसे पड़ोसी के साथ तालमेल बिठाना जो अब पारंपरिक "बफर स्टेट" की परिभाषा से बाहर निकलकर अपनी आंतरिक पहचान और वैश्विक स्थिति को फिर से परिभाषित कर रहा था।

2025 का पूर्वार्धः कूटनीतिक निरंतरता और असहज शांति (जनवरी-अगस्त 2025)

वर्ष की शुरुआत रक्षा सहयोग में निरंतरता के साथ हुई, जो दोनों देशों के बीच "विशेष संबंधों" का आधार है। दिसंबर 2024 और जनवरी 2025 के बीच संयुक्त सैन्य अभ्यास "सूर्य किरण XVIII" का आयोजन किया गया। यह वार्षिक अभ्यास न केवल आतंकवाद विरोधी संचालन और आपदा प्रबंधन में दोनों सेनाओं की इंटरऑपरेबिलिटी को बढ़ाता है, बल्कि यह इस बात का भी संकेत था कि राजनीतिक नेतृत्व में बदलाव के बावजूद, सुरक्षा प्रतिष्ठानों के बीच संस्थागत संबंध मजबूत बने हुए थे।

उच्च स्तरीय राजनीतिक आदान-प्रदान भी जारी रहे। 4 अप्रैल, 2025 को बैंकॉक में 6वें बिम्सटेक शिखर सम्मेलन के दौरान भारतीय प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी और नेपाल के तत्कालीन प्रधान मंत्री के.पी. शर्मा ओली के बीच द्विपक्षीय बैठक हुई। इन वार्ताओं को "सार्थक और रचनात्मक" बताया गया, जिसमें कनेक्टिविटी, ऊर्जा सहयोग और व्यापार को सुगम बनाने पर ध्यान केंद्रित किया गया। इसके अतिरिक्त, 23 अप्रैल 2025 को जम्मू और कश्मीर में हुए एक आतंकी हमले के बाद, प्रधान मंत्री ओली ने प्रधान मंत्री मोदी को फोन करके अपनी संवेदना व्यक्त की और आतंकवाद के सभी रूपों की कड़ी निंदा की । यह कदम भारत की सुरक्षा चिंताओं के प्रति नेपाल की संवेदनशीलता को दर्शाता था, भले ही काठमांडू में आंतरिक राजनीति गर्म हो रही थी।

आर्थिक सहयोग और ऊर्जा कूटनीति

राजनीतिक अनिश्चितता के बावजूद, 2025 के पूर्वार्ध में आर्थिक एकीकरण गहराता रहा। भारत ने नेपाल की जलविद्युत क्षमता को अपने ऊर्जा ग्रिड में एकीकृत करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए। अगस्त 2025 में, भारत सरकार ने नेपाल से अतिरिक्त 200 मेगावाट बिजली खरीदने की मंजूरी दी, जो 11 अगस्त से 31 अक्टूबर 2025 तक प्रभावी थी। इस समझौते के साथ, भारत को नेपाल की कुल बिजली निर्यात क्षमता 1,000 मेगावाट से अधिक हो गई।

ओली की कूटनीतिक दुविधा और भारत का रुख

सतह पर सब कुछ सामान्य दिखने के बावजूद, तनाव व्याप्त था। प्रधान मंत्री ओली, जो अपने पिछले कार्यकालों में भारत के प्रति सख्त रुख अपनाने के लिए जाने जाते थे, 14 महीनों से नई दिल्ली की आधिकारिक यात्रा की मांग कर रहे थे, लेकिन उन्हें निमंत्रण नहीं मिल रहा था। विश्लेषकों का मानना है कि भारत, ओली के चीन के प्रति झुकाव और उनकी "रणनीतिक स्वायत्तता" की नीति को लेकर सतर्क था। अंततः, अगस्त 2025 में भारतीय विदेश सचिव विक्रम मिस्री की काठमांडू यात्रा (17-18 अगस्त) के साथ बर्फ पिघलती दिखी, जिसका उद्देश्य सितंबर के मध्य में ओली की संभावित भारत यात्रा के लिए आधार तैयार करना था । हालाँकि, यह यात्रा कभी नहीं हो सकी, क्योंकि सितंबर की घटनाओं ने नेपाल के राजनीतिक परिदृश्य को हमेशा के लिए बदल दिया।

जेन जेड विद्रोहः नेपाल में एक नई राजनीतिक चेतना का उदय (सितंबर 2025)

सितंबर 2025 के पहले सप्ताह में नेपाल की नाजुक राजनीतिक स्थिरता ध्वस्त हो गई। इसका तात्कालिक कारण सरकार द्वारा 4 सितंबर, 2025 को उठाया गया एक कदम था, जिसके तहत "विनियामक अनुपालन" का हवाला देते हुए 26 सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों, जिनमें फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और यूट्यूब शामिल थे।

सरकार का तर्क था कि ये प्रतिबंध "घृणास्पद भाषण" और सामाजिक सद्भाव को बिगाड़ने वाली सामग्री को रोकने के लिए आवश्यक थे। लेकिन नेपाल के युवाओं, विशेष रूप से 'जेनरेशन जेड' (1997-2012 के बीच जन्मे), ने इसे अपनी आवाज दबाने और राजनीतिक असंतोष को कुचलने के एक सत्तावादी प्रयास के रूप में देखा। देश में बढ़ती बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और राजनीतिक भाईचारे से पहले से ही आक्रोशित युवाओं के लिए, यह डिजिटल प्रतिबंध वह चिंगारी साबित हुई जिसने बारूद के ढेर में आग लगा दी।

"विद्रोह": 48 घंटे जिन्होंने हिमालय को हिला दिया

8 सितंबर, 2025 को काठमांडू की सड़कें एक अभूतपूर्व दृश्य की गवाह बनीं। किसी भी राजनीतिक दल के झंडे या बैनर के बिना, हजारों छात्र, युवा पेशेवर और बेरोजगार स्नातक सड़कों पर उतर आए। सोशल मीडिया पर छमचवठंइल और टपकतवी जैसे हैशटैग्स ने एक डिजिटल आंदोलन को एक भौतिक क्रांति में बदल दिया।

प्रदर्शनकारियों ने काठमांडू के बानेश्वर स्थित संघीय संसद भवन की ओर मार्च किया। पुलिस और सुरक्षा बल, जो इस पैमाने के स्वतःस्फूर्त आंदोलन के लिए तैयार नहीं थे, ने क्रूरतापूर्वक प्रतिक्रिया दी। 8 सितंबर को, पुलिस ने भीड़ पर अंधाधुंध गोलियां चलाईं, जिसमें 19 प्रदर्शनकारी मारे गए। इनमें से कई स्कूल की वर्दी पहने छात्र थे।

हिंसा का विस्तार (9 सितंबर): पहले दिन की राज्य प्रायोजित हिंसा ने आंदोलन को उग्र बना दिया। 9 सितंबर को, विरोध प्रदर्शन दंगों में बदल गए। उग्र भीड़ ने सरकारी इमारतों, पुलिस स्टेशनों और मंत्रियों के निजी आवासों को निशाना बनाया। सिंह दरबार, जो नेपाल सरकार का प्रशासनिक सचिवालय है, के हिस्सों में आग लगा दी गई। पूर्व प्रधान मंत्री झलनाथ खनाल के आवास पर हमला किया गया, जिसमें उनकी पत्नी गंभीर रूप से घायल हो गईं। स्थिति इतनी भयावह हो गई कि प्रधान मंत्री ओली और अन्य मंत्रियों को सेना की सुरक्षा में हेलीकॉप्टर से भागना पड़ा।

मानवीय क्षति का आकलन: इस विद्रोह की मानवीय कीमत बहुत अधिक थी। आधिकारिक और मानवाधिकार रिपोर्टों के अनुसार, हिंसा में कम से कम 76 लोगों की मौत हुई, जिनमें एक 12 वर्षीय बच्चा भी शामिल था । 2,100 से अधिक लोग घायल हुए। ह्यूमन राइट्स वॉच और एमनेस्टी इंटरनेशनल ने सुरक्षा बलों द्वारा "अत्यधिक बल प्रयोग" और "गैरकानूनी हत्याओं0184 की कड़ी निंदा की।

ओली का इस्तीफा और सत्ता का पतन

कानून और व्यवस्था के पूर्ण पतन और जनता के विश्वास को पूरी तरह से खो देने के बाद, प्रधान मंत्री के.पी. शर्मा ओली ने 9 सितंबर, 2025 को इस्तीफा दे दिया। उनका इस्तीफा नेपाल के इतिहास में एक ऐतिहासिक क्षण था, क्योंकि यह पहली बार था जब किसी सरकार को बिना किसी विपक्षी दल के नेतृत्व के, केवल युवाओं के संगठित आंदोलन द्वारा 48 घंटों के भीतर सत्ता से बेदखल कर दिया गया।

सत्ता परिवर्तन और अंतरिम सरकार की चुनौतियाँ

ओली के इस्तीफे के बाद तीन दिनों तक देश में एक खतरनाक नेतृत्व शून्यता बनी रही। इस दौरान, नेपाल सेना ने त्रिभुवन अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे सहित महत्वपूर्ण बुनियादी ढांचे को सुरक्षित करने के लिए हस्तक्षेप किया और एक "स्थिरता प्रदाता" की भूमिका निभाई। सेना ने जेन जेड आंदोलन के प्रतिनिधियों और राजनीतिक दलों के बीच मध्यस्थता की ताकि सत्ता का हस्तांतरण सुचारू रूप से हो सके।

सुशीला कार्की: नेपाल की पहली महिला प्रधान मंत्री

इस अराजकता के बीच, प्रदर्शनकारियों और नागरिक समाज ने एक ऐसे व्यक्ति की मांग की जो राजनीतिक भ्रष्टाचार से मुक्त हो। सर्वसम्मति से सुशीला कार्की का नाम सामने आया, जो नेपाल की पूर्व मुख्य न्यायाधीश थीं और अपनी ईमानदारी व "लौह महिला" की छवि के लिए जानी जाती थीं। 12 सितंबर, 2025 को, राष्ट्रपति राम चंद्र पौडेल ने सुशीला कार्की को नेपाल की पहली महिला प्रधान मंत्री के रूप में शपथ दिलाई।

अंतरिम सरकार का जनादेश:

- व्यवस्था की बहाली: देश में कानून और व्यवस्था को फिर से स्थापित करना।
- न्याय: आंदोलन के दौरान मारे गए लोगों (शहीदों) के परिवारों को मुआवजा और घायलों को मुफ्त इलाज प्रदान करना।
- चुनाव: एक स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव की ओर देश को ले जाना। राष्ट्रपति ने संसद को भंग कर दिया और 5 मार्च, 2026 को आम चुनाव की तारीख तय की।

कार्की ने पदभार ग्रहण करते ही जेन जेड आंदोलन के पीड़ितों के लिए राहत पैकेज की घोषणा की। मृतकों के परिवारों को 10 लाख रुपये का मुआवजा और घायलों का पूरा इलाज सरकार द्वारा वहन करने का निर्णय लिया गया।

आंतरिक सुरक्षा का पतन: ऐतिहासिक जेल ब्रेक और सीमा सुरक्षा

सितंबर की राजनीतिक उथल-पुथल का सबसे भयावह और दीर्घकालिक परिणाम नेपाल की जेल प्रणाली का पूर्ण पतन था। सुरक्षा बलों के राजधानी में केंद्रित होने का फायदा उठाते हुए, देश भर की जेलों में कैदियों ने विद्रोह कर दिया। 10 और 11 सितंबर को, 28 जिलों की जेलों को तोड़ दिया गया।

आंकड़े और विवरण:

- कुल फरार कैदी: लगभग 14,000 से 15,000 कैदी।
- बांके किशोर सुधार गृह: हिंसक झड़प में 5 किशोरों की मौत हुई और 122 फरार हो गए।
- झुमका जेल (सुनसरी): देश की सबसे बड़ी जेलों में से एक से 1,575 कैदी भाग निकले।
- गौर जेल (रौतहट): 260 कैदी, जिनमें 100 से अधिक हत्या के दोषी थे, फरार हो गए।

अक्टूबर के मध्य तक, केवल 3,700 से 8,800 के बीच कैदियों ने या तो आत्मसमर्पण किया या उन्हें पकड़ा गया, जबकि हजारों खूंखार अपराधी अभी भी खुले घूम रहे थे। यह नेपाल के इतिहास की सबसे बड़ी आंतरिक सुरक्षा विफलता थी।

भारत की सीमा सुरक्षा पर प्रभाव

इस बड़े पैमाने पर हुए जेल ब्रेक ने भारत-नेपाल सीमा पर तत्काल "रेड अलर्ट" की स्थिति पैदा कर दी। सशस्त्र सीमा बल, जो 1,751 किलोमीटर लंबी खुली सीमा की रक्षा करता है, ने अपनी चौकसी को उच्चतम स्तर तक बढ़ा दिया। खुफिया इनपुट्स से पता चला कि कई अपराधी खुली सीमा का फायदा उठाकर भारत में छिपने की कोशिश कर रहे थे।

गिरफ्तारी और कार्रवाई:

- उत्तर प्रदेश सीमा: एसएसबी ने महराजगंज और सिद्धार्थनगर जिलों में सीमा पार करने की कोशिश कर रहे 22 फरार कैदियों को पकड़ा।
- बिहार और पश्चिम बंगाल: बिहार सीमा पर 10 और बंगाल सीमा पर 3 कैदियों की गिरफ्तारी की सूचना मिली।
- हाई-प्रोफाइल गिरफ्तारी: भारतीय पुलिस ने एक हत्या के आरोपी को गिरफ्तार किया जो भारत में अपराध करके नेपाल भागा था और वहां की जेल से फरार होकर वापस भारत आ रहा था।

भारत को अपनी सीमा पर गश्त बढ़ानी पड़ी, पहचान पत्रों की सख्त जाँच शुरू करनी पड़ी और "फ्लैग मार्च" आयोजित करने पड़े। इसने सीमावर्ती क्षेत्रों में सामान्य जनजीवन और व्यापार को बाधित किया, जो खुली सीमा व्यवस्था की जटिलताओं को उजागर करता है।

आर्थिक संकट: व्यापार घाटा और पुनर्निर्माण की लागत

"जेन जेड विद्रोह" की आर्थिक कीमत नेपाल जैसी छोटी अर्थव्यवस्था के लिए विनाशकारी थी। राष्ट्रीय योजना आयोग ने अनुमान लगाया कि सितंबर के विरोध प्रदर्शनों और उसके बाद हुई आगजनी से कुल आर्थिक नुकसान लगभग 84.5 अरब नेपाली रुपये (लगभग +586 मिलियन) हुआ।

व्यापक आर्थिक संकेतक और भविष्यवाणियां

विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक ने नेपाल के विकास अनुमानों में भारी कटौती की। विश्व बैंक ने वित्त वर्ष 2026 के लिए विकास दर के अनुमान को 4.6% से घटाकर 2.1% कर दिया, जिसका मुख्य कारण राजनीतिक अस्थिरता और सार्वजनिक अशांति थी। व्यापार घाटा चिंता का एक बड़ा विषय बना रहा। वित्त वर्ष 2025/26 के पहले चार महीनों में, भारत के साथ नेपाल का व्यापार घाटा 261.41 अरब रुपये तक पहुंच गया। नेपाल की निर्यात क्षमता में मामूली वृद्धि के बावजूद, आयात पर अत्यधिक निर्भरता ने अर्थव्यवस्था को कमजोर बना दिया।

भारत द्वारा आर्थिक स्थिरीकरण के उपाय

नेपाल में आर्थिक मंदी का भारत के सीमावर्ती राज्यों की अर्थव्यवस्था पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था। स्थिति को संभालने के लिए, दिसंबर 2025 में, भारतीय रिजर्व बैंक ने एक महत्वपूर्ण नीतिगत बदलाव किया। एक दशक के प्रतिबंध को समाप्त करते हुए, भारत ने नेपाल में उच्च मूल्य के भारतीय मुद्रा नोटों (रू.200 और रू.500) के संचलन की अनुमति दी, जिसकी सीमा रू.25,000 प्रति व्यक्ति तय की गई। इस कदम का उद्देश्य तरलता संकट को कम करना और नेपाली प्रवासी श्रमिकों व भारतीय पर्यटकों के लिए लेनदेन को सुगम बनाना था।

चीन कारक: बीआरआई का मोहभंग और पोखरा एयरपोर्ट स्कैंडल

2025 में नेपाल-चीन संबंधों में तनाव का सबसे बड़ा कारण पोखरा क्षेत्रीय अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा बना। चीन के बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव के तहत निर्मित और चीन के एक्जिम बैंक से +215.96 मिलियन के ऋण द्वारा वित्तपोषित यह परियोजना भ्रष्टाचार और भू-राजनीतिक विफलता का प्रतीक बन गई।

- भ्रष्टाचार का खुलासा: 7 दिसंबर, 2025 को, नेपाल के दुरुपयोग जांच आयोग ने एक ऐतिहासिक कदम उठाते हुए 55 व्यक्तियों और चीनी ठेकेदार कंपनी, चाइना सीएएमसी इंजीनियरिंग, के खिलाफ भ्रष्टाचार का मामला दर्ज किया। आरोप पत्र में दावा किया गया कि परियोजना की लागत को +75 मिलियन तक कृत्रिम रूप से बढ़ाया गया था और चीनी अधिकारियों ने नेपाली नौकरशाहों के साथ मिलीभगत की थी।

- कूटनीतिक टकराव: हवाई अड्डे की विफलता अंतर्राष्ट्रीय उड़ानों को आकर्षित करने में असमर्थता और भारत द्वारा हवाई क्षेत्र देने से इनकारकृने नेपाल को ऋण चुकाने में असमर्थ बना दिया। नेपाल ने बीजिंग से ऋण को अनुदान में बदलने का अनुरोध किया, जिसे चीन ने अस्वीकार कर दिया। दिसंबर 2025 में, निवर्तमान चीनी राजदूत चेन सॉन्ग ने प्रधानमंत्री सुशीला कार्की के साथ अपनी विदाई बैठक में चीनी कंपनियों को भ्रष्टाचार के मामले में घसीटे जाने पर कड़ी आपत्ति जताई। उन्होंने तर्क दिया कि चीनी कानून के तहत सरकारी स्वामित्व वाली कंपनियां भ्रष्ट नहीं हो सकतीं। नेपाल के नेतृत्व ने इस दबाव को खारिज कर दिया, जिससे द्विपक्षीय संबंधों में खटास आ गई।

अंतरिम सरकार का रुख

सुशीला कार्की की सरकार ने चीन के प्रति सतर्कता बरती। 10 दिसंबर के जेन जेड समझौते में विदेशी वित्तपोषित परियोजनाओं के अनुबंधों को सार्वजनिक करने का प्रावधान शामिल किया गया, जो स्पष्ट रूप से अपारदर्शी चीनी सौदों को लक्षित करता था।

द्विपक्षीय तनाव: मानचित्र विवाद और मुद्रा कूटनीति

जब ऐसा लग रहा था कि अंतरिम सरकार के तहत भारत-नेपाल संबंध स्थिर हो रहे हैं, तभी नवंबर 2025 में एक पुराना विवाद फिर से भड़क उठा। 27 नवंबर, 2025 को नेपाल राष्ट्र बैंक ने 100 रुपये का एक नया बैंक नोट जारी किया, जिसमें नेपाल के मानचित्र में विवादित क्षेत्रों कालापानी, लिपुलेख और लिम्पियाधुरा को शामिल किया गया था।

- समय और राजनीति: रिपोर्टों के अनुसार, इस नोट को छापने का निर्णय मई 2024 में पिछली सरकार द्वारा लिया गया था, लेकिन इसका विमोचन नाजुक अंतरिम दौर में किया गया। यह नोट एक चीनी कंपनी द्वारा छापा गया था, जिसने भारत की सुरक्षा चिंताओं को और बढ़ा दिया। यह कदम नेपाल के आंतरिक राजनीतिक गुटों द्वारा राष्ट्रवाद को हवा देने और भारत पर दबाव बनाने की रणनीति का हिस्सा माना गया।
- भारत की प्रतिक्रिया: नई दिल्ली ने इस पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने इसे एक "एकतरफा कार्रवाई" करार दिया और कहा कि यह "जमीनी हकीकत" को नहीं बदलेगा। विदेश मंत्रालय ने चेतावनी दी कि क्षेत्रीय दावों का ऐसा "कृत्रिम विस्तार" भारत को स्वीकार्य नहीं होगा। हालांकि प्रधानमंत्री कार्की ने कूटनीतिक संवाद पर जोर दिया, लेकिन इस घटना ने यह साबित कर दिया कि क्षेत्रीय विवाद दोनों देशों के बीच एक संवेदनशील मुद्दा बना हुआ है।

भारत की प्रतिक्रिया: मानवीय सहायता और आर्थिक सहयोग

तनाव के बावजूद, भारत ने एक जिम्मेदार पड़ोसी की भूमिका निभाना जारी रखा। अक्टूबर 2025 में, जब नेपाल में भीषण बाढ़ और भूस्खलन ने तबाही मचाई, तो प्रधानमंत्री मोदी ने तुरंत सहायता की पेशकश की। भारत ने 25 टन से अधिक मानवीय सहायता सामग्री, जिसमें दवाएं, inflatable नौकाएं और राहत सामग्री शामिल थी, नेपाल भेजी। भारत ने खुद को "फर्स्ट रिस्पॉन्डर" के रूप में स्थापित किया, जो राजनीतिक उतार-चढ़ाव से परे लोगों की मदद के लिए प्रतिबद्ध है।

पारगमन संधि संशोधन

नवंबर 2025 में, भारत और नेपाल ने पारगमन संधि में एक महत्वपूर्ण संशोधन पर हस्ताक्षर किए। इसने जोगबनी (भारत) और बीरगंज (नेपाल) के बीच रेल-आधारित माल ढुलाई को सभी प्रकार के कार्गो (थोक और कंटेनर) के लिए खोल दिया। यह समझौता नेपाल की लॉजिस्टिक्स लागत को कम करने और उसे भारतीय बंदरगाहों (कोलकाता और विशाखापत्तनम) से जोड़ने में एक मील का पत्थर साबित हुआ।

2026 की ओर: नए राजनीतिक समीकरण और भविष्य की दिशा

अंतरिम सरकार ने चुनाव से पहले स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए 10 दिसंबर, 2025 को जेन जेड प्रतिनिधियों के साथ एक ऐतिहासिक 10-सूत्रीय समझौता किया। इस समझौते ने सितंबर के विद्रोह को "राजनीतिक-सामाजिक जन आंदोलन" के रूप में मान्यता दी और प्रदर्शनकारियों को आम माफी दी। इसमें प्रधानमंत्री के लिए दो कार्यकालों की सीमा और उम्मीदवारी की उम्र कम करने जैसे सुधारों का प्रस्ताव किया गया।

वैकल्पिक गठबंधन का उदय

मार्च 2026 के चुनावों के मद्देनजर, एक नया और शक्तिशाली राजनीतिक गठबंधन उभरा। 29 दिसंबर, 2025 को काठमांडू के मेयर बालेन शाह, आरएसपी के अध्यक्ष रबी लामिछाने और ऊर्जा मंत्री कुलमान घिसिंग ने एक चुनावी गठबंधन की घोषणा की।

- त्रिमूर्ति: यह गठबंधन बालेन शाह की शहरी लोकप्रियता, रबी लामिछाने के संगठनात्मक आधार और कुलमान घिसिंग की तकनीकी दक्षता (जिन्हें लोड-shedding समाप्त करने का श्रेय दिया जाता है) को एक साथ लाता है।
- भारत के लिए निहितार्थ: यह गठबंधन पारंपरिक दलों (नेपाली कांग्रेस, एमाले) के प्रभुत्व को चुनौती दे रहा है। भारत के लिए, इन नए नेताओं के साथ संबंध बनाना एक चुनौती होगी क्योंकि वे पारंपरिक संरक्षण नेटवर्क से बाहर हैं और उनकी राजनीति अधिक स्वतंत्र और अप्रत्याशित हो सकती है।

निष्कर्ष

वर्ष 2025 नेपाल के लिए "अग्निपरीक्षा" का वर्ष था। जेन जेड विद्रोह ने यह स्पष्ट कर दिया कि नेपाल की पुरानी राजनीतिक व्यवस्था अब युवाओं की आकांक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ है। भारत के लिए, यह वर्ष चुनौतियों और अवसरों का एक मिश्रित बैग था।

- सुरक्षा चिंताएँ: जेल ब्रेक और खुली सीमा की संवेदनशीलता ने यह साबित किया कि नेपाल की आंतरिक अस्थिरता सीधे भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करती है।
- चीन की स्थिति: पोखरा एयरपोर्ट स्कैंडल और भ्रष्टाचार के आरोपों ने नेपाल में चीन की "सॉफ्ट पावर" और बीआरआई की विश्वसनीयता को गहरा धक्का पहुँचाया है। यह भारत के लिए अपनी विकासात्मक साझेदारी को मजबूत करने का एक रणनीतिक अवसर है।
- नया नेतृत्व: 2026 के चुनावों में एक गैर-पारंपरिक सरकार के गठन की प्रबल संभावना है। भारत को अपनी कूटनीति को "पार्टी-केंद्रित" से हटाकर "जन-केंद्रित" और "संस्था-केंद्रित" बनाने की आवश्यकता है।

अंतत:, 2025 ने यह सिखाया है कि काठमांडू में सरकारें चाहे बदल जाएं, लेकिन भारत और नेपाल के बीच भूगोल, संस्कृति और अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक बंधन अटूट हैं। भविष्य की राह इन बंधनों को नई राजनीतिक realties के साथ संतुलित करने में निहित है।

संदर्भ सूची

1. NEXT IAS (12 सितंबर 2025): भारत-नेपाल संबंध 2025: राजनीतिक अस्थिरता और रणनीतिक सहयोग।
2. Drishti IAS (11 सितंबर 2025): नेपाल में राजनीतिक अशांति और भारत पर इसके प्रभाव।
3. PWOnlyIAS (13 सितंबर 2025): नेपाल संकट और दक्षिण एशिया की समग्र स्थिरता: एक विश्लेषण।
4. Sanskriti IAS (2025): भारत-नेपाल द्विपक्षीय समझौता ज्ञापन और विकासात्मक भागीदारी।
5. Ananta Aspen Centre (12 जून 2025): प्रथम भारत-नेपाल रणनीतिक संवाद रिपोर्ट, काठमांडू।
6. Economic Diplomacy (25 जून 2025): 16वीं द्विपक्षीय सुरक्षा समूह बैठक के मुख्य बिंदु।
7. Vision IAS (27 अक्टूबर 2025): भारत-नेपाल आर्थिक संबंध: RBI के नए सुधार और रुपया अंतर्राष्ट्रीयकरण।
8. Drishti Judiciary (18 नवंबर 2025): भारत-नेपाल पारगमन संधि में संशोधन और व्यापारिक प्रभाव।
9. Navbharat Times (31 मई 2025): भारत-नेपाल सीमा पर चीनी नागरिकों की गतिविधियों पर प्रतिबंध और चीन की चेतावनी।
10. Tarun Mitra (5 नवंबर 2025): ऊर्जा क्षेत्र में भारत-नेपाल सात-सूत्रीय योजना: एक विस्तृत रिपोर्ट।
11. PIB Hindi (2025): ऊर्जा वार्ता 2025: भारत की पड़ोसी देशों के प्रति ऊर्जा सुरक्षा रणनीति।
12. Zee News (24 नवंबर 2025): बहराइच सीमा पर चीनी नागरिक की गिरफ्तारी और सुरक्षा चुनौतियां।
13. Asianet News Hindi (12 सितंबर 2025): नेपाल हिंसा के बाद सोनौली बॉर्डर की स्थिति और व्यापार बहाली।
14. AajTak (31 मई 2025): भारत-नेपाल सीमा पर सुरक्षा चौकसी और वैश्विक भू-राजनीतिक निहितार्थ।

हॉस्टल में रहने वाले छात्रों एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन

आरूषी पुरोहित

शोधार्थी

डॉ० कीर्ति दशोरा

शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य, मनोविज्ञान संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ(डीम्ड-टू-बी) विश्वविद्यालय, प्रतापनगर, उदयपुर-313001 (राज.)

प्रस्तावना

मनुष्य की मानसिक शक्ति के विकास हेतु शिक्षा एक अनिवार्य प्रक्रिया है, बालक हो या बालिका किसी को भी शिक्षा से वंचित कर देना उसकी मानसिक क्षमता को विकसित होने से रोक देना है। अत: शिक्षा ही एक ऐसा प्रक्रम है, जिसमें मानव समाज के परिपक्व व्यक्ति अपरिपक्व व्यक्तियों को पूर्णता अर्थात् परिपक्वता की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार वे स्वयं एवं दुसरों के मानव जीवन को श्रेष्ठता की ओर ले जाने में प्रयासरत रहते हैं। बालक किसी भी राष्ट्र या समाज की अमूल्य धरोहर होते हैं, इन्हीं के चारों ओर राष्ट्र के विकास का पहिया घुमता है, या यह कहें कि बालक राष्ट्र विकास की धुरी है, बालक का विकास ही राष्ट्र का विकास है। मानवीय इतिहास में प्राचीनकाल से ही शिक्षा का विकास एवं प्रसार होता रहा है। प्रत्येक देश की अपनी अपनी संस्कृति, सामाजिक विशेषता तथा शिक्षा प्रणालियां है, जो बढ़ते समय के साथ निरंतर विकसित होती रही है।

आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में शिक्षा का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। विद्यार्थियों पर न केवल शैक्षणिक सफलता प्राप्त करने का दबाव है, बल्कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक अपेक्षाओं की पूर्ति भी करनी होती है। विशेष रूप से उच्च माध्यमिक विद्यालय स्तर पर यह दबाव और अधिक बढ़ जाता है, जहाँ छात्र अपने करियर की दिशा तय करते हैं। कोचिंग संस्थानों की भूमिका इस संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। कोचिंग छात्र अतिरिक्त मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं, जबकि गैर कोचिंग छात्र विद्यालयी शिक्षकों और पाठ्यक्रम पर ही निर्भर रहते हैं। वहीं छात्रावास में रहने वाले छात्रों के समक्ष अपने परिवार से दूर रहकर, नए वातावरण में ढलने की चुनौती होती है। इन सभी कारकों का उनके मानसिक स्वास्थ्य और समायोजन पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य केवल मानसिक बीमारियों की अनुपस्थिति से नहीं, बल्कि यह एक सकारात्मक मानसिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने जीवन के उद्देश्यों को समझकर, तनावों को संभालकर और सामाजिक रूप से जुड़कर जीता है। समायोजन वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति अपने वातावरण में प्रभावी रूप से कार्य करता है। इस शोध का उद्देश्य इन तीनों प्रकार के छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य और समायोजन की तुलना करना है।

छात्रावास

छात्रावास व्यवस्था का महत्व उन विद्यार्थियों के लिए अधिक है जो विद्यालय से अधिक दुरी पर निवास करते हैं, या प्रतिदिन विद्यालय आने-जाने से उन्हें अपनी पढ़ाई में व्यवधान उत्पन्न होता है। छात्रावास जहाँ उन्हें इन समस्याओं से बचाता है, वहीं सामाजिक रुप से जीवन जीने की शिक्षा भी देता है तथा उनमें सद्गुणों जैसे-विनय, आत्मनिर्भरता, भाईचारा तथा सहयोग भावना आदि का विकास करने में सहायक होता है, साथ ही सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि विद्यार्थी बिना दूसरों की सहायता प्राप्त किये कठिनाइयों का समाधान करना सीख जाते हैं।

हर वस्तु के दो पक्ष होते हैं - प्रथम सुखद जिसके अन्तर्गत वे छात्रावास में रहकर सद्गुणों को ग्रहण कर जीवन में सफलता प्राप्त करते हैं। द्वितीय पहलू है दु:खद। छात्रावास जैसी संस्था के कुछ दोष होते हैं। छात्रावास में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों के परिवार की पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा प्रवृत्तियां भिन्न-भिन्न होती है। जिससे विद्यार्थी एक-दुसरे के सम्पर्क में आकर कुछ अवगुण भी ग्रहण कर लेते है। छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों को आर्थिक शैक्षिक, सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कई विद्यार्थी तो इन समस्याओं का सामना कर विजय प्राप्त करते है परन्तु कुछ विद्यार्थी जो इन समस्याओं का सामना नहीं कर पाते है वे मनोवैज्ञानिक समस्याओं से ग्रस्त हो जाते है।

वे छात्र जो केवल विद्यालयी शिक्षा पर निर्भर रहते हैं। छात्रावास छात्र: वे छात्र जो परिवार से दूर रहकर छात्रावास में निवास करते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य :

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ - मस्तिष्क को स्वस्थ या निरोग रखना। जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध शरीर से है उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य का संबंध मस्तिष्क से है।

हैडफील्ड के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ :- साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि - ''मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण कृत्य है।''

क्रोनहोषर के अनुसार, ''मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य है व्यक्ति की भावनाओं, आकांक्षाओं एवं व्यवहार से है जो उसको सफल, प्रभावी एवं प्रसन्न रखने में सहायता प्रदान करती है।''

कुप्पु स्वामी के अनुसार, ''मानसिक स्वास्थ्य का आशय हैं दैनिक जीवन में स्वयं की भावनाओं इच्छाओं महत्वाकांक्षाओं तथा आदर्शो के मध्य सन्तुलन रखने की योग्यता इसका तात्पर्य हैं कि जीवन की यर्थाथताओं का सामना करने पर उन्हे स्वीकारने की योग्यता।''

मानसिक स्वास्थ्य: एक ऐसी अवस्था जिसमें व्यक्ति तनावों से निपटने, सामाजिक संबंधों को बनाए रखने और अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक संपन्न करने में सक्षम होता है।

कोचिंग छात्र: वे छात्र जो विद्यालय के अतिरिक्त कोचिंग संस्थानों से अध्ययन करते हैं।

समस्या का औचित्य

प्रत्येक शोध कार्य के लिए उसकी समस्या के महत्व को स्पश्ट करना अति आवश्यक है। यह ज्ञात करना अतिआवश्यक है कि यह शोध कार्य शैक्षिक जगत की आवश्यकताओं तथा समस्याओं को दूर करने में कितना महत्व रखता है। समस्या की उपयोगिता तथा उसके महत्व का औचित्य सिद्ध करने के लिए यह स्पश्ट करना अतिआवश्यक है कि इस शोध के परिणाम मनोविज्ञान एवं व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करेंगे। यह स्पष्ठीकरण किस महत्वहीन या अनावश्यक अन्वेषण पर अनुसंधान प्रयासों का अपव्यय रोकने में भारी सुरक्षा प्रदान करेगा।

इस शोध का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक स्तर को विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता और समयोजन स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना है। ताकि उन्हें भविश्य के लिए सही दिशा-निर्देष दिये जा सके तथा समाज के गुणात्मक विकास में उनका सकारात्मक ऊर्जा का उपयोग किया जा सके। कुसमायोजन और संवेगात्मक अपरिपक्वता बालक के व्यक्तित्व निर्माण को विपरीत दिशा में मोड़ देती है और वह बालक के व्यक्तित्व विकास में बाधक तत्व बन जाते हैं।

अत: इस शोध के परिणाम माध्यमिक स्तर के विभिन्न संकायों के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता तथा समायोजन को जानने में मदद करेंगे।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह अत्यंत आवश्यक है कि हम यह जानें कि कौन-से शैक्षणिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत कारक विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। कोचिंग संस्कृति ने जहाँ एक ओर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया है, वहीं दूसरी ओर छात्रों पर मानसिक तनाव भी बढ़ा है। गैर कोचिंग छात्र अपेक्षाकृत कम संसाधनों में कार्य करते हैं और छात्रावास में रहने वाले छात्रों को घर से दूर रहने के कारण सामाजिक और भावनात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। यह अध्ययन इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए एक समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करेगा, जो नीतिगत निर्णयों, परामर्शदाताओं एवं शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं-

- कोचिंग करने वाले छात्रों एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन करना।
- विद्यार्थियों के प्रकार (कोचिंग करने वाले/ कोचिंग नहीं करने वाले/ हॉस्टल में रहने वाले) का मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना.
- विद्यार्थियों के लिंग (छात्र/ छात्राएं) का मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना.

शोध परिकल्पना

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाएं निर्धारित की गई हैं-

- कोचिंग करने वाले, कोचिंग नहीं करने वाले एवं हॉस्टल में रहने वाले विधार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है.
- छात्रों एवं छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है.

शोध परिसीमन

1. प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों तक ही सीमित रखा गया है।
2. प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर जिले के उच्च माध्यमिक स्तर के कोचिंग एवं गैर कोचिंग विद्यार्थी छात्रावास में रहने वाले तक ही सीमित रखा गया है।

शोध में प्रयुक्त शब्दों का पारिभाषिकरण

किसी भी शोध को समझने के लिए उसके पारिभाषिकरण को समझना अत्यंत आवश्यक होता है अत: यहां उक्त शोध के अंतर्गत निम्न पारिभाषिक शब्दों का उपयोग किया गया जिनकी व्याख्या निम्न प्रकार से है -

(1) आवासीय छात्रावास : भारत सरकार के जनजाति विभाग एवं स्थानीय सरकार द्वारा अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्ग के छात्रों के लिए स्वतंत्रता की प्राप्ति के पश्चात् से लेकर पंचवर्षीय योजना तथा नई शिक्षा नीति से लेकर संवैधानिक प्रावधानों में भी गुणवत्तापूरक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के कई प्रयास शिक्षा के क्षेत्र में किये जा रहे है। शिक्षा का लक्ष्य न केवल व्यक्तित्व का विकास करना है अपितु सामाजिक विकास करना भी इसका लक्ष्य है और इसी लक्ष्य को पूरा करने के लिए आवासीय छात्रावासों की स्थापना की गई। छात्रावास व्यवस्था में बालक को सामाजिक बनने का अवसर मिलता है। छात्रावास व्यवस्था का महत्व उन विद्यार्थियों के लिए अधिक है। जो विद्यालय से अधिक दूर रहते है। आवासीय छात्रावास का मुख्य उद्देश्य शिक्षा से वंचित बालिकाओं को आवास सहित सुविधा उपलब्ध कराना है। आवासीय छात्रावास के माध्यम से बालिकाओं को शिक्षा को जोड़ा गया है। जहाँ नि:शुल्क शिक्षा, आवास, भोजन, चिकित्सा एवं सह शैक्षिक गतिविधि एवं उनके चहुमुखी विकास के लिए विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया जाता है।

समस्या का औचित्य

जनजाति छात्रों हेतु सरकार द्वारा कई आवासीय छात्रावासों का निर्माण समय समय पर किया गया है। जनजाति बाहुल्य क्षेत्र में यह छात्रावास जनजाति विद्यार्थियों हेतु शिक्षा के साथ-साथ आवास, भोजन एवम सुरक्षा जैसी सुविधाएं उपलब्ध करवा रहे हैं। छात्रावासों में रहने वाले माध्यमिक एवम उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों की आयु संवेदनशील होती है। विविध क्षेत्रों से आए विद्यार्थियों का घर से दूर एवं विभिन्न क्षेत्रों से आए अन्य विद्यार्थियों के साथ रहने में कई तरह की मानसिक उद्वेलनाएं जन्म लेती हैं। अपनी पसंद-नापसंद,पढ़ाई का तनाव, जीवन में आगे बढ़ने में आती समस्याओं का दबाव और आर्थिक कमजोरी छात्रावास में अध्यनरत विद्यार्थियों में असुरक्षा की भावना को जन्म देती हैं।

प्रस्तुत शोध वर्तमान में जनजाति आवासीय छात्रावासों में रह रहे विद्यार्थियों के मनस को उचित तरीके से समझने का प्रयास है। यह शोध अधोलिखित रूप से कोचिंग और गैर कोचिंग छात्र-छात्राओं, शिक्षकों एवम समाज हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकेगां

(1) विद्यार्थियों की दृश्टि से : विद्यार्थियों हेतु 10वीं एवं 12वीं कक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इन कक्षाओं के परिणाम विद्यार्थियों के भावी जीवन उपलब्धियों के आधार स्वरूप होते हैं। साथ ही उनकी उम्र भी अत्यंत संवेदनशील समय से गुजर रही होती है। ऐसे समय में माता-पिता से दूर अपरिचित छात्रावास वातावरण में सबके साथ संयोजन से रहना, करणीय-अकरणीय का चुनाव करना, सही गलत में भेद करना, अपनी मन की बात ना बता पाना, सफलता की चिंता, असफलता का डर, समाज में अपनी पहचान बनाने का दबाव साथ ही भावात्मक विविधता इत्यादि छात्रावास में अध्ययनरत विद्यार्थियों हेतु कई तरह की चुनौतियां प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत शोध कोचिंग और गैर कोचिंग विद्यार्थियों की इन्हीं समस्या, समायोजन, दबाव विविध चुनौतियों को समझने का वैज्ञानिक एवं विश्लेषणात्मक प्रयास है।

(2) शिक्षकों की दृष्टि से : वर्तमान में विद्यालय शिक्षा पर ध्यान दें तो पता चलता है कि शिक्षकों के सामने अपने व्यवसाय से संबंधित समस्याएं एवं चुनौतियां तो है ही इसके साथ ही विद्यार्थियों के बेहतर परिणाम से संबंधित चुनौतियां भी हैं। विद्यार्थियों की शारीरिक, स्वास्थ्य, मानसिक एवम भावनात्मक इत्यादि समस्याओं एवं संवेदनशीलता को सही समय पर पहचान कर एवं दूर कर अध्ययन में उनकी रुचि एवं उनके परिणामों को बढ़ाया जा सकता है। यह शोध कोचिंग और गैर कोचिंग विद्यार्थियों की विभिन्न

समस्याओं एवम चुनौतियों की पहचान का सार्थक प्रयास सिद्ध हो सकेगा। इसके पश्चात उन्हें दूर करने के निदानात्मक उपायों को लागू कर शिक्षकों को भी अवश्य ही सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकेंगे।

(3) समाज एवं देश की दृष्टि से : आज के अध्ययनरत विद्यार्थी भावी राष्ट्र के निर्माता है। उनकी विविध समस्याएं एवं असुरक्षा की भावना को सही समय पर समझ कर, व्याख्या कर एवम दूर करने के सुचारू उपाय किए जा सके तो निश्चित ही यह विद्यार्थी भावी भारत की समृद्धता, एवम अखंडता को सुनिश्चित करने के साथ ही एक बेहतर, शांति युक्त, खुशहाल एवं सफल समाज का निर्माण करने में सहयोगी सिद्ध हो सकेंगे। प्रस्तुत शोध इन्हीं प्रयासों हेतु आधारभूत प्रक्रिया के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया किया गया।

शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु मानकीकृत उपकरणों का प्रयोग किया किया गया जो इस प्रकार है :-

1. मानसिक स्वास्थ्य हेतु : डॉ. जगदीश एवं ए.के. श्रीवास्तव

न्यादर्श चयन

प्रस्तुत शोध में उच्च माध्यमिक विद्यालयों के कुल 300 विद्यार्थियों को चयन किया गया है। जो इस प्रकार है-

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकत्री द्वारा तथ्यों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकी का उपयोग किया किया गया -

1. मध्यमान
2. प्रमाप विचलन
3. टी-परीक्षण

मानसिक स्वास्थ्य

4B 1 सकारात्मक आत्म मूल्यांकन

सारणी संख्या 4B1.1 तथा ग्राफ 4B1 में मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र सकारात्मक आत्म मूल्यांकन पर अध्ययन समूहों के मध्यमान प्राप्तांक, मानक विचलन एवं श्रेणी को प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या 4B 1.1 मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र सकारात्मक आत्म मूल्यांकन पर अध्ययन समूहों के मध्यमान प्राप्तांक, मानक विचलन एवं श्रेणी

सकारात्मक आत्म मूल्यांकन	N	मध्यमान	मानक विचलन	श्रेणी
कोचिंग करने वाले छात्र	50	30.120	1.745	औसत
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	25.140	1.666	औसत
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	34.540	2.541	अच्छा
कोचिंग नहीं करने वाली छात्राएं	50	36.260	4.080	अच्छा
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	30.460	3.495	औसत
हॉस्टल में रहने वाली छात्राएँ	50	20.380	1.958	बहुत खराब
कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थी	100	27.630	3.024	खराब
कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थी	100	35.400	3.490	अच्छा
हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थी	100	25.420	5.797	खराब
कुल छात्र	150	31.707	3.347	औसत
कुल छात्राएं	150	27.260	7.226	खराब

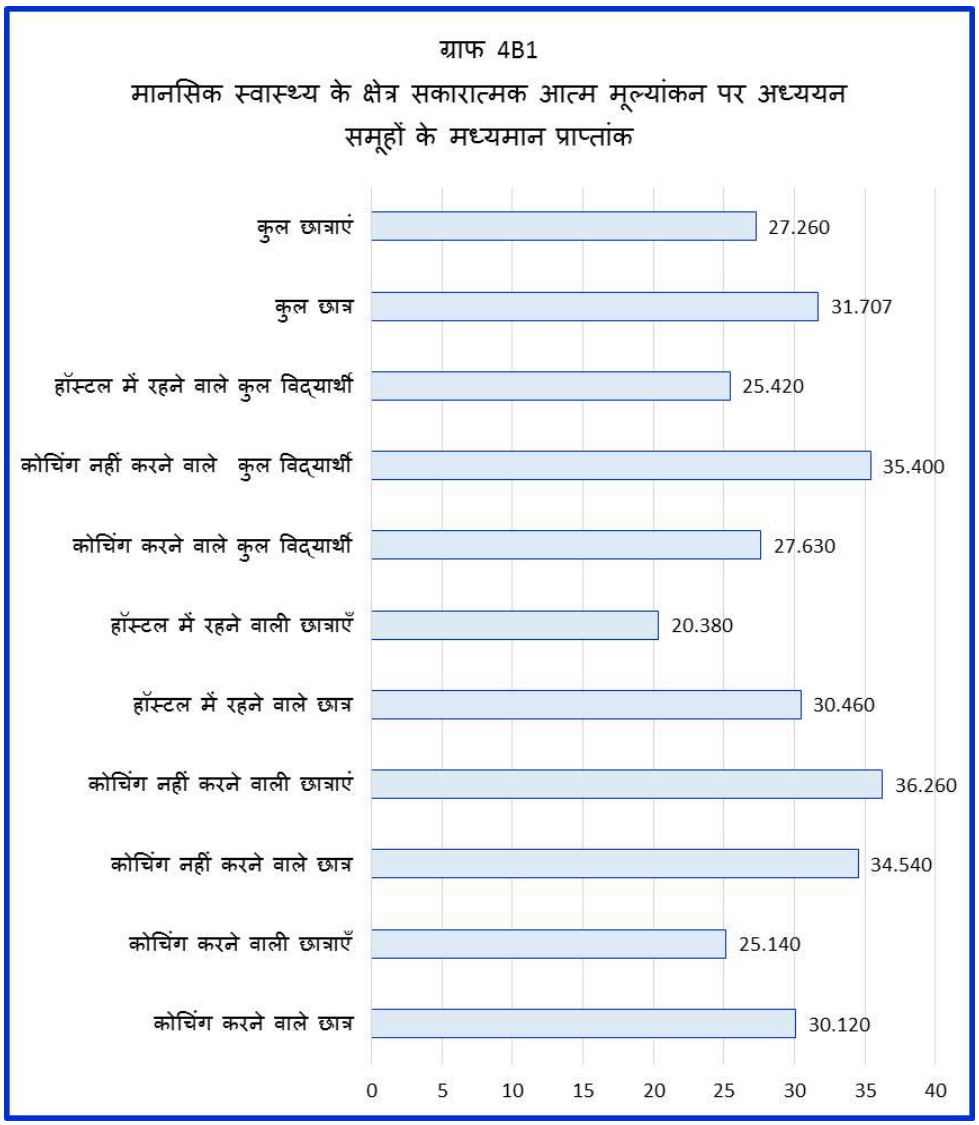

प्रस्तुत सारणी का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि कोचिंग करने वाले छात्रों का मध्यमान 30.120 और मानक विचलन 1.745 पाया गया, जो उन्हें औसत श्रेणी में रखता है। यह दर्शाता है कि कोचिंग की प्रतिस्पर्धात्मक प्रकृति उनके आत्म-सम्मान को बहुत अधिक बढ़ाने में सहायक नहीं हो रही है। इसी प्रकार, कोचिंग करने वाली छात्राओं का मध्यमान 25.140 और मानक विचलन 1.666 रहा, जो उन्हें भी औसत श्रेणी में लाता है, लेकिन पुरुष छात्रों की तुलना में यह काफी कम है।

सारणी में दर्शाए गए तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का मध्यमान 34.540 और मानक विचलन 2.541 रहा, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे अपने आत्म-मूल्यांकन में अच्छे स्तर पर हैं। इसी तरह कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का स्कोर सबसे ऊँचा - मध्यमान 36.260 और मानक विचलन 4.080 - पाया गया, जो उन्हें भी अच्छी श्रेणी में रखता है। इससे यह संकेत मिलता है कि बाहरी कोचिंग दबाव के अभाव में इन विद्यार्थियों का आत्म-मूल्य अधिक सकारात्मक है।

सारणी में दर्शाए गए तथ्यों से यह संकेत मिलता है किहॉस्टल में रहने वाले छात्रों का आत्म-मूल्यांकन मध्यमान 30.460 और मानक विचलन 3.495 के साथ औसत श्रेणी में रहा, जबकि हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं का मध्यमान मात्र 20.380 और मानक विचलन 1.958 रहा, जो उन्हें बहुत खराब श्रेणी में रखता है। यह विशेष रूप से चिंताजनक है और संकेत करता है कि छात्रावास में रहने वाली छात्राओं को आत्म-सम्मान से जुड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है।

सारणी के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का संयुक्त मध्यमान 27.630 और मानक विचलन 3.024 रहा, जो इन्हें खराब श्रेणी में रखता है। यह परिणाम इंगित करता है कि कोचिंग के दबाव में विद्यार्थियों का आत्म-मूल्य अपेक्षाकृत कमजोर पड़ सकता है। इसके विपरीत, कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का मध्यमान 35.400 और मानक विचलन 3.490 रहा, जिससे उनका आत्म-मूल्यांकन अच्छा पाया गया।

सारणी को देखने पर यह स्पष्टीकरण मिलता है कि हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों का संयुक्त मध्यमान 25.420 और मानक विचलन 5.797 रहा, जिससे यह समूह खराब श्रेणी में आता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हॉस्टल जीवन, विशेष रूप से छात्राओं के लिए, आत्म-सम्मान को कमजोर करने वाला कारक हो सकता है।

अंततः, कुल छात्रों का मध्यमान 31.707 और मानक विचलन 3.347 रहा, जिससे वे औसत श्रेणी में आते हैं। वहीं कुल छात्राओं का मध्यमान 27.260 और मानक विचलन 7.226 रहा, जो उन्हें खराब श्रेणी में रखता है। यह लिंग आधारित अंतर दर्शाता है कि छात्राओं को आत्म-मूल्यांकन के क्षेत्र में अतिरिक्त सामाजिक और भावनात्मक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

सारणी संख्या 4B1.2 में मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हेतु F-अनुपात को दर्शाया गया है।

सारणी संख्या 4B 1.2 मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हेतु F-अनुपात

स्त्रोत	वर्गों का योग	df	माध्य	F	p मान
विद्यार्थी का प्रकार	5495.247	2	2747.623	366.593	0.000
लिंग	1482.963	1	1482.963	197.859	0.000
विद्यार्थी का प्रकार * लिंग	1751.167	2	875.583	116.822	0.000
त्रुटि	2203.540	294	7.495		
योग	10932.917	299			

सारणी में प्रस्तुत आँकड़ों का अवलोकन करने पर स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में सकारात्मक आत्म-मूल्यांकन के लिए किए गए इस विश्लेषण में पाया गया कि विद्यार्थी के प्रकार का प्रभाव सांख्यिकीय रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। परिणामों के अनुसार, विद्यार्थी के प्रकार के लिए प्राप्त F-अनुपात 366.593 है, जिसका p मान 0.000 है, जो 0.01 स्तर पर भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है कि कोचिंग करने वाले विद्यार्थियों, नॉन-कोचिंग विद्यार्थियों और होस्टलर्स के बीच सकारात्मक आत्म-मूल्यांकन के स्तर में महत्वपूर्ण अंतर है। यह अंतर संभवतः विभिन्न प्रकार के शैक्षिक और सामाजिक वातावरण, अनुशासन और मानसिक दबाव के भिन्न स्तरों के कारण हो सकता है।

सारणी के परिणामों से यह प्रत्यक्ष होता है कि लिंग के आधार पर भी सकारात्मक आत्म-मूल्यांकन में महत्वपूर्ण अंतर पाया गया। लिंग के लिए प्राप्त F-अनुपात 197.859 है तथा p मान 0.000 है, जो इसे सांख्यिकीय रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण बनाता है। इसका तात्पर्य है कि पुरुष और महिला विद्यार्थियों के बीच सकारात्मक आत्म-मूल्यांकन के स्तर में अंतर है। सामान्यतः यह अंतर सामाजिक अपेक्षाओं, आत्म-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और लिंग आधारित भूमिकाओं के कारण हो सकता है, जिससे आत्म-मूल्यांकन की प्रवृत्ति प्रभावित होती है। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थी का प्रकार और लिंग के परस्पर प्रभाव (interaction effect) के लिए भी परिणाम सांख्यिकीय रूप से अत्यधिक महत्वपूर्ण पाए गए। इसके लिए प्राप्त F-अनुपात 116.822 है तथा च मान 0.000 है। इसका अर्थ है कि सकारात्मक आत्म-मूल्यांकन पर विद्यार्थी के प्रकार और लिंग का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, संभव है कि कोचिंग में पढ़ने वाले पुरुष विद्यार्थियों का आत्म-मूल्यांकन स्तर होस्टल में रहने वाली छात्राओं की तुलना में भिन्न हो। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में सकारात्मक आत्म-मूल्यांकन का अध्ययन करते समय न केवल व्यक्तिगत कारकों को, बल्कि सामाजिक और संदर्भगत कारकों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

सारणी संख्या 4B1.3 में मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से संबंधित प्राप्त मध्यमान अंकों के आधार पर विभिन्न अध्ययन समूहों के मध्य तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

सारणी संख्या 4B1.3 मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हेतु अध्ययन समूहों की तुलना

सकारात्मक आत्म मूल्यांकन	N	मध्यमान	मानक विचलन	माध्य अन्तर	t' मान	p मान
कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थी	100	27.630	3.024	7.770	16.825	0.000
कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थी	100	35.400	3.490			
कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थी	100	27.630	3.024	2.210	3.380	0.001
हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थी	100	25.420	5.797			
कोचिंग नहीं करने वाले विद्यार्थी	100	35.400	3.490	9.980	14.750	0.000
हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थी	100	25.420	5.797			
कुल छात्र	150	31.707	3.347	4.447	6.838	0.000
कुल छात्राएं	150	27.260	7.226			
कोचिंग करने वाले छात्र	50	30.120	1.745	4.980	14.594	0.000
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	25.140	1.666			
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	34.540	2.541	1.720	2.530	0.013
कोचिंग नहीं करने वाली छात्राएं	50	36.260	4.080			
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	30.460	3.495	10.080	17.794	0.000
हॉस्टल में रहने वाली छात्राएँ	50	20.380	1.958			
कोचिंग करने वाले छात्र	50	30.120	1.745	4.420	10.138	0.000
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	34.540	2.541			
कोचिंग करने वाले छात्र	50	30.120	1.745	0.340	0.615	0.540
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	30.460	3.495			
कोचिंग नहीं करने वाले छात्र	50	34.540	2.541	4.080	6.677	0.000
हॉस्टल में रहने वाले छात्र	50	30.460	3.495			
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	25.140	1.666	11.120	17.842	0.000
कोचिंग नहीं करने वाली छात्राएं	50	36.260	4.080			
कोचिंग करने वाली छात्राएँ	50	25.140	1.666	4.760	13.093	0.000

सारणी में प्रस्तुत आँकड़ों का अवलोकन करने पर स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों (मध्यमान = 27.630) और कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों (मध्यमान = 35.400) के बीच सकारात्मक आत्म मूल्यांकन में 7.770 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 16.825 तथा p मान 0.000 प्राप्त हुआ, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की कोचिंग नहीं करने वाले

कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी का विश्लेषण करने पर यह तथ्य सामने आता है कि कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों (मध्यमान = 27.630) और हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों (मध्यमान = 25.420) के बीच 2.210 का माध्य अंतर प्राप्त हुआ। t' मान 3.380 तथा p मान 0.001 रहा, जो सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण है। तात्पर्य है की कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी के परिणामों से यह प्रत्यक्ष होता है कि कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों (मध्यमान = 35.400) और हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों (मध्यमान = 25.420) के बीच 9.980 का माध्य अंतर प्राप्त हुआ। t' मान 14.750 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणीबद्ध आंकड़ों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि कुल छात्रों (मध्यमान = 31.707) और छात्राओं (मध्यमान = 27.260) के बीच 4.447 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 6.838 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। यह दर्शाता है कि छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन छात्राओं से अधिक है। तात्पर्य है की कुल छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कुल छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी में प्रदर्शित परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि कोचिंग करने वाले छात्रों (मध्यमान = 30.120) और कोचिंग करने वाली छात्राओं (मध्यमान = 25.140) के बीच 4.980 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 14.594 तथा p मान 0.000 प्राप्त हुआ, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की कोचिंग करने वाले कुल छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी में दिए गए आँकड़े इस ओर संकेत करते हैं कि कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों (मध्यमान = 34.540) और कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं (मध्यमान = 36.260) के बीच 1.720 का माध्य अंतर रहा। t' मान 2.530 तथा p मान 0.013 प्राप्त हुआ, जो महत्वपूर्ण है। तात्पर्य है की कोचिंग नहीं करने वाली कुल छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग नहीं करने वाले कुल छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी के परिशीलन से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि हॉस्टल में रहने वाले छात्रों (मध्यमान = 30.460) और छात्राओं (मध्यमान = 20.380) के बीच 10.080 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 17.794 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

प्रस्तुत सारणी का विश्लेषण करने पर यह प्रमाणित होता है कि कोचिंग करने वाले छात्रों (मध्यमान = 30.120) और कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों (मध्यमान = 34.540) के बीच 4.420 का माध्य अंतर प्राप्त हुआ। t' मान 10.138 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी में उल्लिखित आँकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कोचिंग करने वाले छात्रों (मध्यमान = 30.120) और हॉस्टल में रहने वाले छात्रों (मध्यमान = 30.460) के बीच केवल 0.340 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 0.615 तथा p मान 0.540 प्राप्त हुआ, जो महत्वहीन है। तात्पर्य है की कोचिंग करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन एवं हॉस्टल में रहने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन के लगभग एक समान है।

सारणी में प्राप्त परिणामों को देखकर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों (मध्यमान = 34.540) और हॉस्टल में रहने वाले छात्रों (मध्यमान = 30.460) के बीच 4.080 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 6.677 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी में प्रस्तुत आँकड़ों का अवलोकन करने पर स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि कोचिंग करने वाली छात्राओं (मध्यमान = 25.140) और कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं (मध्यमान = 36.260) के बीच 11.120 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 17.842 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

सारणी का विश्लेषण करने पर यह तथ्य सामने आता है कि कोचिंग करने वाली छात्राओं (मध्यमान = 25.140) और हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं (मध्यमान = 20.380) के बीच 4.760 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 13.093 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की कोचिंग करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है। सारणी के परिणामों से यह प्रत्यक्ष होता है कि कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं (मध्यमान = 36.260) और हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं (मध्यमान = 20.380) के बीच 15.880 का माध्य अंतर पाया गया। t' मान 24.814 तथा p मान 0.000 रहा, जो अत्यधिक सार्थक है। तात्पर्य है की चिंग नहीं करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है

शोध निष्कर्ष

मानसिक स्वास्थ्य

सकारात्मक आत्म मूल्यांकन

- कोचिंग करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन औसत स्तर का पाया गया।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं ने भी स्वयं का मूल्यांकन औसत श्रेणी में किया।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का आत्म मूल्यांकन अच्छा पाया गया।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं ने अपने आत्म-मूल्यांकन में अच्छी श्रेणी प्राप्त की।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन औसत दर्जे का रहा।
- हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं का आत्म मूल्यांकन बहुत खराब स्तर का रहा।
- कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का आत्म मूल्यांकन खराब श्रेणी में दर्ज किया गया।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों ने अच्छा आत्म मूल्यांकन किया।
- हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों का आत्म मूल्यांकन खराब श्रेणी में पाया गया।
- कुल छात्रों ने औसत स्तर पर अपने आत्म मूल्यांकन को प्रस्तुत किया।
- कुल छात्राओं का आत्म मूल्यांकन खराब श्रेणी में रहा।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कुल छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कुल छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग करने वाले कुल छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली कुल छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग नहीं करने वाले कुल छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन एवं हॉस्टल में रहने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन के लगभग एक समान है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

कुल मानसिक स्वास्थ्य

- कोचिंग करने वाले छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य औसत स्तर पर पाया गया।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य भी औसत श्रेणी में रहा।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा पाया गया।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं ने भी अच्छा मानसिक स्वास्थ्य प्रदर्शित किया।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य औसत स्तर पर रहा।
- हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य खराब श्रेणी में दर्ज किया गया।
- कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य औसत पाया गया।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा स्तर दर्शाता है।
- हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य औसत श्रेणी में रहा।
- कुल छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य औसत स्तर पर पाया गया।
- कुल छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य भी औसत श्रेणी में दर्ज किया गया।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल मानसिक स्वास्थ्य, कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों की तुलना में सार्थक रूप से अधिक अच्छा है।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों तथा हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के कुल मानसिक स्वास्थ्य में विशेष अंतर नहीं है।
- कोचिंग नहीं करने वाले विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य, हॉस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर है।
- कुल छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य, कुल छात्राओं की तुलना में बेहतर है।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य, कोचिंग करने वाले छात्रों की तुलना में अधिक सकारात्मक है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों और छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य लगभग समान स्तर पर है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं की तुलना में बेहतर है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य, कोचिंग करने वाले छात्रों की तुलना में बेहतर है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य कोचिंग करने वाले छात्रों से बेहतर है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों और हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का मानसिक स्वास्थ्य लगभग समान है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य कोचिंग करने वाली छात्राओं की तुलना में बेहतर है।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं की तुलना में अच्छा है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं की तुलना में बेहतर है।

मानसिक स्वास्थ्य

सकारात्मक आत्म मूल्यांकन

- तात्पर्य है की कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- तात्पर्य है की कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कुल छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कुल छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग करने वाले कुल छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली कुल छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग नहीं करने वाले कुल छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग करने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन एवं हॉस्टल में रहने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन के लगभग एक समान है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाले छात्रों के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का सकारात्मक आत्म मूल्यांकन हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के सकारात्मक आत्म मूल्यांकन से सार्थक रूप से अधिक होता है।

कुल मानसिक स्वास्थ्य

- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल मानसिक स्वास्थ्य कोचिंग करने वाले कुल विद्यार्थियों के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल मानसिक स्वास्थ्य एवं हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल मानसिक स्वास्थ्य लगभग एक समान है।
- कोचिंग नहीं करने वाले कुल विद्यार्थियों का कुल मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाले कुल विद्यार्थियों के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कुल छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य कुल छात्राओं के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं का कुल मानसिक स्वास्थ्य कोचिंग करने वाले छात्रों के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य एवं कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का कुल मानसिक स्वास्थ्य लगभग एक समान होता है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं का कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य कोचिंग करने वाले छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- हॉस्टल में रहने वाले छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य कोचिंग करने वाले छात्रों के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाले छात्रों का कुल मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाले छात्रों के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।

- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का कुल मानसिक स्वास्थ्य कोचिंग करने वाली छात्राओं के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कोचिंग करने वाली छात्राओं का कुल मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।
- कोचिंग नहीं करने वाली छात्राओं का कुल मानसिक स्वास्थ्य हॉस्टल में रहने वाली छात्राओं के कुल मानसिक स्वास्थ्य की तुलना में सार्थक रूप से अच्छा होता है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गिल, ए.के. एवं ढुल. पी.,: शिक्षा के मनोविज्ञान आधार, प्रथम संस्करण, ओम सांई पब्लिकेशन्स।
2. चौबे, एस.बी.: सामान्य मनोविज्ञान के मूल तत्व, कॉन्स्टेप्ट पब्लिकेशन।
3. चौहान, रीता, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
4. दीक्षित, ब्रजमोहन: मनोविज्ञान प्रायोगिकी, हर प्रसाद भार्गव पब्लिकेशन्स।
3. पाठक, पी.डी.: शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर पब्लिकेशन्स।
4. भार्गव, टी. एवं भार्गव, वी.: समायोजन और मानसिक स्वास्थ्य, मानव व्यवहार का मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव पब्लिकेशन्स।
5. भटनागर, एस.: बाल विकास एवं बाल मनोविज्ञान, आर.लाल बुक डिपो पब्लिकेशन्स।
6. सिंह, डॉ. एल. एवं तिवारी, जी.: प्रेरणा एवं समायोजन, असामान्य मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर पब्लिकेशन।
7. त्रिपाठ, मधुसुदन: शिक्षण अधिगम की मनोवैज्ञानिक पद्धति, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
8. रायजादा, बी.एस.: शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
9. सिन्हा, एच.सी.: शैक्षिक अनुसंधान, विकास पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली।
10. Buch, M.B., "A Survey of Research in Education", Vol. V, Part II, NCERT.
11. Buch, M.B., "A Survey of Research in Education", Baroda, CASE., 1974
12. Buch, M.B., "Second Survey of Research in Education", Baroda, 1979.
13. Buch, M.B., "Third Survey of Research in Education", New Delhi, NCERT, 1983.

उत्तर प्रदेश की क्षेत्रिय लोकगीत परम्पराओं का परिचय

डॉ० अरविंद गुप्ता

सहेयक प्रोफेसर, टी.डी.पी.जी. महाविद्यालय, जौनपुर

उत्तर प्रदेश सम्पूर्ण भारतवर्ष में अपनी कला, संस्कृति एवं सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए जाना जाता है। यहां की क्षेत्रीय संस्कृति विभिन्न लोकगीत परम्पराओं के माध्यम से प्रदर्शित होती है। यहां के लोक गीत परम्पराओं से पूर्ण एक दृष्टि क्षेत्रिय संस्कृति की विविधताओं पर डालते है। फलस्वरूप विभिन्न रीति-रिवाज परम्पराओ का अनूठा संगम देखने को मिलता है। प्रदेश विविध आंचलो में बटा हुआ है, जैसे अवधी, भोजपुरी बुन्देल खण्डी, एवं ब्रज इन सभी की अपनी अनोखी संस्कृति है। साथ ही प्रत्येक की गतिविधी एवं परम्पराएँ है। यदि अवध क्षेत्र को देखा जाय तो यहां की संस्कृति में भगवान श्री राम रचे-बसे हुये है। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव आज भी जीवन यापन करने वाले मानव जाति में प्रत्यक्ष प्रदर्शित हो रहा है।

(शब्दावली - लोक संस्कृति, गीत, परम्परा)

अवधी लोक संस्कृति सदैव ही प्रजावत्सल्यता का स्वरूप है। यहां लोक गीत परम्पराओं में कजरी, झूला, नकटा, सोहर, विवाहगीत, श्रम गीत आदि विविध परम्पराएं विद्यमान है। कजरी गायन की परम्परा अति प्राचीन है। बादलों का गरजना, बरसना आदि इसके सांगीतिक तत्व है।

गोरिया कहें बलम बरखा में
चाहीं ऊँची अटरिया ना।

इसी तरह अवध क्षेत्र में, झूला गायन की परम्परा है। वस्तुतः इस क्षेत्र में श्री सीता माता को जानकी पर्वत पर झूला, झूलाने की परम्परा है।

झूला धीरे से झूलावो सुकुमारी शिया है।

अवध क्षेत्र को अन्य क्षेत्रो से अलग स्वरूप प्रदान करने वाले लोक गीत परमारा में 'नकटा' का सर्वप्रमुख स्थान है। यह शादी-विवाह के अवसर पर क्षेत्र में प्रमुखता से स्त्री वर्ग के द्वारा गाया जाता है।

नदियाँ किनारे हवा डोले
हमार पिया हमसे ना बोले।
सासू से बोले नदियों से बोले
जेठरी ननदियो से बोले हमार पिया।

इसी भाँति लोकगीतों की परम्परा में 'विवाहगीत गाने की परम्परा है।

इस परम्परा में कुआँ पूजन, गीत निम्न प्रकार से गाया जाता है।

राजा जनक जी के सुन्दर बिटियवा से
ब्याहन चले श्री राम हो।

इसी परम्परा में श्रम गीत, जाति परक गीत, श्रृंगार परक गीत आदि गीतो की अवधी क्षेत्र मे सुसमृद्ध परम्परा रही है।

इसी भांति बुन्देल खण्डी परम्पराओं पर प्रकाश डालते ही विविध लोक गीतों का स्वरूप दिखता है। बुन्देलखण्ड में ऐसे अनेक ऐतिहासिक चरित्र मिलते है, जो अपने त्याग, शौर्य वलिदान, और भक्ति भाव कारण जनमानस में लोक परम्पराओ के रूप में स्वीकृत है। बुन्देली में जिन पर लोक रचनाएं रची गयी है उनमें आल्हा, जगदेव आदि क्रिया कलापो के साथ विद्यमान है। बुन्देली लोकगीत परम्परा में, आल्हा, महाशिवरात्री रामनवमी गीत, हरितालिका तीज गीत, श्रम गीत, जाति गीत आदि की अनूठी परम्परा रही है।

आल्हा लोक गायन शैली, बुन्देलखण्ड में जन्मे महावीरों के परिचय का सुचक है जो लोक गायन के रूप में विकसित होती हुयी लोक जीवन में गृहीत है। इसका विकास 1800 से 1900 सदी के मध्य हुआ। किन्तु तत्कालीन समय में वीर नायकों के शौर्य की अधिक आवश्यकता पड़ी। इस शैली को मुख्यतः विलम्बित, मध्य, द्रुत में गाने की परम्परा रही है।

भुमिया सिमरू गढ़ महोबा का, गुरु अमरा का ध्यान लगाय
लिखू हकीकत गढ़ कासों की, जहां मलखे का हुआ विवाह।।

इसी भांति बुन्देलखण्ड मे लाला हरदौल के गीत गाये जाते है। लाला हरदौल इस क्षेत्र के प्रमुख देवता के रूप मे स्वीकार्य है। क्यो कि इनका, आदर्श, निश्चल प्रेम, आज हमे उस रास्ते पर चलने हेतु प्रेरित करता है जिनमे बुन्देली संस्कृति के त्याग एवं बालिदान का उच्च आदर्श है।

अइयो, अइयो लाला हरदौल तुम्हारे बल पे ब्याह रचो।
कन्या बैठी जोरे हाथ, आरी द्वारे पे बारात
तुम बिन कौन पुजि है, भाय,
तुमसे लिपटी है, प्रेम की दौल तुम्हार बल पे ब्याह रचो।

इसी भांति बुन्देलखण्ड मे श्रम गीतों मे रोपनी, सोहनी, जंतसार गीतों का प्रचलन रहा है। रोपनी गीत उदाहरण निम्नलिखित रूप मे उल्लेखित है जिनमे स्त्री-पुरुष के प्रेम का राजीव चित्रण किया गया है।

'' पीतल की छैया मे बैठे मोरे सहयाँ चौन ले लइयो।
ऐसी दोपरिया में,
लोगो रहनो है काम जा उमरिया में।''

लोक गीतों की इस श्रंखला सोहर गीत गाने की भी परम्परा रही है। इन गीतों मे देवी माँ के आर्शीवाद, एवं जन्म से सम्बन्धित शब्दों का उल्लेख रहता है। सुमित बुन्देली की एक रचना 'सोहर' गीत का उल्लेख किया जा रहा है।

देवी दुर्गा ने दई वरदान, हमारो घर लाला भयो -2
कौन घड़ी राम भयो, कौन घड़ी लक्ष्मिन -
कौन मे भरत भुआल, हमारे घर लाला भयो....

इस क्षेत्रमें झूला फाग, रैवारी के गीत, बारहमासा, चौमासा, आदि की समृद्ध परम्परा रही है।

इसी प्रकार वृज क्षेत्र की संस्कृति एवं सभ्यता और लोक संगीत परम्परा का अद्‌भुद संगम है। यहां की संस्कृति ग्वाल वालों की है, श्री कृष्ण इसी में रचे बसे हुए है। यहां किसी भी परम्परा, पर्व में इन्ही के माध्यम से अनुष्ठान किया जाता है। यहां लोक गीत एवं संगीत परम्परा में लागूरिया (देवीगीत) राशिया (फाग गीत), जिकड़ी भजन हिंडोला, आदि विविध परम्परा रही है। जिनका उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है।

लागूरिया देवी भजन है, जो प्रमुखता से वृज क्षेत्र में गाया-बजाया जाता है। जिसका विषयक तत्व मां भगवती देवी और जोगिनी के बीच का संवाद है।

दो-दो जोगिनी के बीच मे अकेलो लांगरिया
देवी भैया को जुरो है दरबार,
लांगुरिया चलो तो दर्शन करियामें

इसी भाँति बृज क्षेत्र मे ' जिकड़ी भजन' गाने की परम्परा है। जिकड़ी का तात्पर्य जिक्र करना होता है, इसमे रचनाकार गायक कलाकार, कथा को गीतों का रूप देकर उसे प्रस्तुत करता है इस भजन में चौदह, पद (उठान, टेक, सोरठा आदि होते है) निम्नलिखित रूप में उनका उल्लेख किया जा रहा है।

मरैठी - जल्दी द्रोपदी नारी बनाइदै,
दिल में गुस्सा छाड़ रही है।
कीचक मेरे हाथ मरैगो

ऐसी दशा दिखाय रही है।

इसी लोकगीतों की श्रृंखला मे 'हिंडोला' गाने की परम्परा रही है। भगवान श्री कृष्ण के बाल, गोपाल रूप को झूला 'झूलानें' की परम्परा रही है। इसी सन्दर्भ में गीत गाया जाता है।

सखी आज आज रच्यो वृंदावन री, बन श्याम हिंडोला झूले।
काहें को तेरो बनो हिंडोला, काहे की लागी डोरी री।
लाल चन्दन को बनौ से हिड़ौला, रेशम की लगी डोरी री।

इस संस्कृति मे ऐसे विभिन्न लोकगीत परम्पराएं है, जिनके माध्यम ब्रज क्षेत्र का नामकरण भी होता है। यमुना जी की आरती से ही इस संस्कृति या क्षेत्र का उदय होता है।

प्यारो दरश मोहे भावे की जमुना मइया
श्री गोकुल के निकट बहत हो।
लहरन की छवी आवे की जमूना मइयां...

प्रभाती भजन, न्योरता गीत, विवाहगीत, चन्दना, मल्हार गीत आदि इस क्षेत्र मे प्रमुख रूप से गाये जाते है।

इसी भाँति भोजपुरी लोक गीत परम्परा एवं लोक संस्कृति पर दृष्टिपात करते ही विभिन्न कलाओं का निरुपण होता है। प्राय: यहां की संस्कृति एक तरफ गरीब मजदूरों को प्रदर्शित करने वाली रही है, वही दूसरी तरफ बनारस का रशमय रूप हमें यहां देखने को मिलता है। यहां की लोक गायन परम्परा मे, कजरी, चौती, होरी, पूर्वी, विदेशिया आदि प्रमुखता से गाये बजाये जाते है।

'चौती' गीत बसन्त ऋतु के उपरान्त चौत माह मे गाये जाने के कारण इसे चइती गीत कहा जाता है। कुछ कलाकार इसे घाटो भी कहते है। इस गीत में कोयल की कुछ एवं स्त्री की विरह वेदना का मार्मिक चित्रण होता है।

आई गइल चइत महिनवा हो रामा
पिंहके परनवा।
चिठ्ठिया लिखावली, सनेसवा पठवली
आंधी-आधी रतिया ले रहिया रखवली
नाही अडले, हमरो सजनवा हो रामा....

इसी भाँति इस क्षेत्र मे 'पूर्वी' गाने का प्रचलन है, पूर्वी के जनक महेन्दर मिसिर जी माने जाते हैं। पूर्वी मे प्राय: स्त्री की विरह व्यथा का वर्णन होता है।

रूनक-झुनक बाजेली पायलिया पाँव मे,
राधा रानी डोलेली कान्हा के गाँव में।
गोपिन के संग राधे गइली पनघटवा,
सर पे गगरिया और काढ़े घुँघटवा।।

इसी भाँति इस खेल मे 'विदेशिया' गीत गाने की परम्परा है विदेशिया गीत में भी स्त्री की विरह व्यवस्था का वर्णन होता है। यह गीत भिखारी ठाकुर जी के द्वारा सर्वप्रथम लिखा गया था।

गवना कराई के हो घरे बइठवलस,
अपना बसेला परदेश रे विदेशिया।

इस क्षेत्र में वर्षा ऋतु गीतों मे, चौमासा, विविध बारहमासा, झूला कजरी गाने की विविध परम्परा है। महेन्दर मिसिर जी द्वारा रचित 'चौमासा' का उल्लेख किया जा रहा है।

हँसी-हँसी पनवा, खियउले बेइमनवा
की अपना बसेरे परदेश,
कोरी रे चुनरिया में दगिया लगाई गईले.
मारे रे करेजवा में ठेस।"

इसी भाँति 'पं0 छन्नूलाल मिश्र' जी द्वारा रचित सावनी कजरी का उल्लेख निम्न है।

भइया मोरा आये अनवयवा,
सावनवाँ में ना जइबो ननदी
झझर गेडुअवा गंगाजल पानी.
चाहे भइया पियई, चाहे जाय हो, सवनवा मे ना जइबो.....

इसी भांति भोजपुरी लोक संस्कृति मे अनेको अनेक रचनाएँ की गयी है।

निष्कर्ष-

उत्तर प्रदेश का लोक संगीत अति प्राचीनतम् है उन्नसवी एवं तीसवी सदी में गायक, कलाकार, रचनाकार अपने कला का प्रदर्शन विभिन्न समारोहो के माध्यम से करते थे, किन्तु आधुनिक दुर संचार, प्रचार माध्यमो का विकास हुआ। जिसके फलस्वरूप कलाकारो

को प्रदर्शन करने मे सुविधा हुई। यह तो सकारात्मक पक्ष है, वही दूसरी तरफ नकारात्मक पक्ष भी उभर रहा है। क्योंकि कुछ कलाकार अधिक चर्चित होने के लिए 'अश्लील ओहदो का प्रयोग कर रहे है। जो लोक संगीत के ह्रास का प्रमुख कारण है। अत: हमे अपने आने वाली सम्भावित पीढ़ी को उच्च संस्कार देकर लोक संस्कृति से अवगत कराना चाहिए, इसलिए क्योंकि तभी हमारी लोक संस्कृति की परम्पराएं सुरक्षित रहेगीं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. गीत - वाटिका - डा0 कमला श्रीवास्तव,
2. गीत गंगा - महेन्द्रनाथ स्मृति ग्रन्थ।
3. भोजपुरी लोक गीत - डा0 अवधेश कुमार सिंह
4. भारतीय लोक साहित्य कोश - डा0 सुरेश गौतम
5. सम्मेलन पत्रिका - (लोक संस्कृति अंग)
6. लोक संगीत अंक - लक्ष्मी नारायण गर्ग

मौर्योत्तर काल में चिकित्सा का विकास

पवन कुमार यादव

शोध छात्र, स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शताब्दियों से आयुर्वेद चिकित्सा के आचार्य के रूप में प्रसिद्ध चरक के जन्म समय आदि बातों के लेकर इतिहासकारों में विवाद है, कोई स्पष्ट एक मत नहीं है। लेकिन आयुर्वेद चिकित्सा के क्षेत्र में चरक संहिता महत्वपूर्ण ग्रंथ है। ऐसा माना जाता है कि आत्रेय रचित चिकित्साशलय का प्रचार-प्रसार मुख्यत: चरक ने किया। उन्होंने चरक संहिता की रचना की, जो अग्निवेश तंत्र का परिववर्धित और संशोधित संस्करण है। यानि चरक संहिता के आदि आचार्य अग्निवेश है, जिन्होंने आत्रेय के उपदेशों का सूत्ररूप में गुंथन किया, फिर उस अग्निवेश तंत्र का भाष्य रूप में विस्तार चरक ने किया यह दूसरा स्तर है। तदनन्तर आयुर्वेदाचार्य दृढ़बल ने चरक संहिता का प्रतिसंस्कार पूरा किया। दृढ़बल के समय जिस अग्निवेश तंत्र का चरक ने प्रतिसंस्कार किया था, वह उपलब्ध था, किन्तु वह अधूरा था, क्योंकि उसमें चिकित्सा स्थान में तीस की तगह तेरह अध्याय थे और कल्प स्थान एवं सिद्धिस्थान नहीं था। दृढ़बल ने चिकित्सा स्थान के अंतिम सत्रह अध्यायों में कल्पस्थान और सिद्धि स्थान को जोड़कर ग्रंथ को पूर्ण किया। उस प्रका आदि आचार्य अग्निवेश, दूसरें संस्कर्ता चरक और तीसरे प्रति संस्कारकर्त्ता दृढ़बल ने किया। यानि चरक आत्रेय और अग्निवेश के बाद और दृढ़बल के पहले हुए थे।

प्राचीन बौद्ध ग्रंथ त्रिपिटक में हम पाते है कि चरक ईस्वी प्रथम शती में कनिष्क के शासन काल में राजवैध थे। गिरींद्रनाथ मुखोपाध्याय ने बतलाया है कि पाणिनि (ई०पू० पाँचवी शती, जो प्रमाणित है) और पतंजलि (ई०पू० दूसरी शती) ने चरक संहिता का उल्लेख किया है।[1]

फ्रेंच विद्वान सिल्वान लेवी ने बौद्ध ग्रंथ त्रिपिटक के चीनी अनुवाद के आधार पर लिखा है कि चरक भारत में कुषाण सम्राट कनिष्क के राजवैध थे। सन् 200 ई० में भारत के सम्राट थे। इसलिए ई० पू० 600 और ई० सन् 200 के बीच, इसी 800 वर्ष की अवधि में किसी समय संभवत: कश्मीर में चरक का जन्म हुआ।

चरक संहिता आयुर्वेद के प्राचीनतम ग्रंथ है। यह संस्कृत भाषा में है तथा गद्य और पद्य दोनों लिखी गई है। यह आयुर्वेद की दृष्टि से तो चरक संहिता एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस आयुर्वेद के ग्रंथों को आठ खण्डों तथा 120 अध्यायों में विभाजित है। चरक संहिता के स्थान, अध्याय एवं विषय इस प्रकार है –

क्र. सं.	स्थान नाम	अध्याय	विषय
1.	सूत्रस्थान	30	मौलिक सिद्धांत
2.	निदान	8	रोग निदान
3.	विमान स्थान	8	प्रमाण तथा चिकित्सा सिंद्धात
4.	शारीर स्थान	8	शरीर रचना, दर्शन, प्रसूति एवं कामोर मृत्य
5.	इन्द्रियस्थान	12	अरिष्ठ लक्षण
6.	चिकित्सा स्थान	30	चिकित्सा
7.	कल्पस्थान	12	संसाधन (वमन विरेचन) केयोग
8.	सिद्धिस्थान	12	संशोधन (वस्ति) चिकित्सा
	8 स्थान	120 अध्याय	

इस प्रकार चरक संहिता के प्रथम अध्याय के 'सूत्रस्थान' में औषधि विज्ञान, अहार, पथ्य तथा शारीरिक एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा का उल्लेख किया गया है। द्वितीय खंड में 'निदान स्थान' में प्रमुख रोगों के कारण एवं लक्षणों का स्पष्ट वर्णन किए है। चरक संहिता कि तीसरे खंड 'विमानस्थान' में विविध प्रकार के चुने गए विषयों का प्रतिपादन किया है जैसे - रस-द्रव्यों की प्रकृति और उनके गुणावगुण, आहार के रूप में लिए गए विविध प्राकृतिक पदार्थो की शरीर में हुए रूपातंरण - प्रक्रिया आयुर्विज्ञान की कार्यप्रणाली, चिकित्सकों के लिए आचरण-संहिता का निर्देश दिए है। इसमें शरीर के विकास के लिए पोषण व भोजन का भी उल्लेख किए है।

चरक संहिता के चौथे खंड 'शरीर स्थान' में शरीर रचना विज्ञान और भूण विज्ञान विषयक बातों का विवेचना है। इसी अध्याय में शरीर के चीड़-फाड़ यानि शल्य क्रिया के विषय में थोड़ा उल्लेख है। इसमें रक्त परिसंचरण, हड्डियों की संख्या, धमनी-शिटा आदि

का वर्णन है, इसके अलावे इस अध्याय में तत्व मीमांस औ नीतिशास्त्र विषयक कई बातों का भी उल्लेख है।

चरक संहिता के पांचवे खंड 'इन्द्रिय स्थान' में रोगों की चिकित्सा का वर्णन है जिसमें कई बातों की सामान्य चर्चा की गई है, जैसे - वर्ण, स्वर, गंध, रस, स्पर्श, चक्षु, श्रोत (कान), ध्राण, रसन, स्पर्शन, मन, अभिलाषा, शौच (पवित्रता), शील (सहज आचरण), आचार, स्मरण शक्ति, प्रकृति, विकृति, मेघा, बल, ग्लानि (हर्षाभाव), आकृति, हर्ष (प्रसन्नता), रौक्ष्य (शरीर में रूक्षता का होना), स्नेह (चिकनापन), तंद्रा (निद्रा) आदि। किंतु इस अध्याय में रोगों के निदान करना और उनके पूर्वानुमान की परीक्षा करना इसका मुख्य विषय रहा है।

चरक संहिता के छठे खण्ड 'चिकित्सा स्थान' में चिकित्सा के तौर-तरीके का उल्लेख किए है, साथ हीं आहार विज्ञान ओर औषध विज्ञान (जड़ी-बूटियों) के गुण या प्रभाव की जानकारी मिलती है।

चरकसंहिता के सातवें खंड कल्पस्थान में विविध प्रकार के कल्पों की क्रियाविधि वर्णित है। इस अध्याय में मुख्यत: विष विज्ञान विषयक बातों की विवेचना है। इसमें औषधियों के नाम और प्रयोग बताने वाले भेषज-संग्रह के पूरक है चरक संहिता के आठवें खंड 'सिद्धिस्थान' में वस्ति-कर्म (एनीमा), विरेचन (जुलाब), मूत्र सम्बन्धी रोग आदि का उल्लेख किया है।

इस ग्रंथ के 120 अध्यायों में रसायन और वाजीकरण के उप-अध्यायों को भी जोड़े गये, तो इसकी संख्या 126 हो गयी है। हालांकि संहिता में कई विषयों का पुनरावृति हुई है और विषयों के विन्यास पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

चरक संहिता संसार के प्रमुख चिकित्सा ग्रंथों में सबसे पुराना है। जिस प्रकार शल्य चिकित्सा में सुश्रुत संहिता का महत्व है, उसी प्रकार काय चिकित्सा में चरक संहिता का महत्व है। चरक संहिता में 'रोगों का कारण, लक्षण तथा रोग थाम के उपायों का वर्णन है। चरक संहिता में वैद्यों को चिकित्सा कार्य के लिए कुछ निर्देश भी दिए थे। आयुर्वेद की चिकित्सा अध्ययन करने वाले छात्रों को चरक संहिता में उल्लेखित शपथ पत्र के आधार पर शपथ लेनी पड़ती थी। जैसा कि आज चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने वालो 'हिप्पोक्रटस' का शपथ लेना पड़ता है। चरक संहिता के अनुसार शपथ का वाक्य इस प्रकार था - मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा, ऋषियों की तरह मेरी वेश-भूषा होगी। किसी से द्वेष न रखूँगा। सदा भोजन करूँगा, हिंसा नहीं करूँगा, रोगियों की उपेक्षा नहीं करूँगा। उनकी सेवा अपना धर्म समझूंगा, जिसके परिवार में जाकर रोगी की चिकित्सा करूँगा, उसके घर के बातें बहार न कहूँगा, अपने ज्ञान का घमंड नहीं करूँगा, गुरू को सदा गुरू मानूँगा। इस प्रकार चरक के मतानुसार वैध को रोगियों से किसी भी दशा में शत्रुता नहीं करनी चाहिए। चरक ने वैद्यों को आवश्यक निर्देश देते हुए कहा है कि वैद्य को वैद्य के साथ बातचीत करनी चाहिए, इससे ज्ञान में वृद्धि होती है - भिषक भिषजा आयुर्वेद अध्ययनार्थ शिष्य-परीक्षा के प्रसंग में चरक संहिता में उल्लेख मिलता है कि छात्रों में शांत प्रकृति वाला, श्रेष्ठ स्वभाव वाला, उत्तम कार्यों को करने वाला, सीधे नेत्र, मुख और नासावंश वाला पतली, रक्त, विशद् जिहवा वाला, अविकृत दंत ओर ओष्ठवाला, मिन्-मिन् न बोलने वाला, धैर्य सम्पन्न, अहंकार रहित, उत्तम धारणा शक्ति वाला, तर्क एवं स्मरण शक्ति सम्पनन, उदारचित, वैध के कुल में उत्पन्न हुआ अथवा वैधों के आचार-विचार से भली भांति परिचित, अर्थतत्व को जानने में प्रबल इच्छा रखने वाला, अविकृत अंगवाला, सभी इंद्रियों से युक्त, विश्वास पात्र, अनुद्धत अर्थत्व का चितन, शील शौच (पवित्रता), आचार अध्ययन में प्रेम, चतुरता एवं अनुकूलता से युक्त, अध्ययन करने का अत्यंत इच्छुक, शास्त्र के अर्थ को समझने और प्रत्यक्ष कर्म (प्रायोगिक कार्य) देखने-करने के लिए एकाग्र मन में तत्पर लोभ रहित, आलसरहित, सभी प्राणियों के हित को चाहनने वाला, गुरू की प्रत्येक आज्ञा और उपदेश को मानने वाला और गुरू में प्रेम रखने वाला अचार्य को चाहिए कि ऐसे सर्वगुण संपन्न छात्रों का आयुर्वेद पढ़ाने के लिए चयन करें।

चरक संहिता में अच्छे वैद्यों के विषय में उल्लेख किया है कि जो वैद्य प्रत्येक पुरूष की परीक्षा करके, देश और काल के अनुसार औषधियों का प्रयोग करना जानता हो उसे उत्तम वैद्य जनना चाहिए। चरक संहिता में चिकित्सक की चार अनिवार्य योग्यताऐं निम्न बताया है।

क्षुत्रे पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टकर्मता।
दाक्ष्यं शौच इति जेय वैधे गुण-चत्ष्टमम्।।

अर्थात शास्त्र का अच्छी तरह ज्ञान रखना, अनेक बार रोगी, औषध-निर्माण तथा औषध प्रयोग का प्रत्यक्ष द्रष्टा होना, दक्ष होना अर्थात् समय के अनुसार युक्ति की कल्पना करने में परम चतुर होना तथा पवित्रता रखना, ये चारों वैद्य के उत्तम गुण माने जाते हैं।[1]

चरक संहिता के अनुसार रोगों की चिकित्सा के लिए चार मुख्य कारक उपादेय है - (1) चिकित्सा या वैध (2) द्रव्य (अर्थात औषध एंव आहार) (3) परिचर्या (या परिचारक) (4) रोगी। इस संहिता के 'खुड्डाक चषुत्पाद' नामक अध्याय में चिकित्सा के चतुष्पाद के अंतर्गत इन चारों कारकों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। चरक संहिता में चारों कारकों के भी चार गुण गिनाए गए है। चिकित्सा के इन चारों कारकों का विस्तृत चर्चा मिलता है। चरक संहिता में औषधि द्रव्य के चार गुण इस प्रकार बतलाऐं है-

बहुता तत्र - योग्यत्वं अनेकविध-कल्पना।
संपत् च इति चतुष्कं अयं द्रव्यांगां गुण उच्यते।।

अर्थात (1) औषधियों का अधिक रूप में प्राप्त होना (2) औषधियों का न्याधिनाश में समर्थ होना (3) एक ही औषधि में अनेक विध (स्वरस, कल्क, चूर्ण, वटी, अवंह आदि) कल्पना की योग्यता होना तथा (4) औषधियों का अपने रस गुण, वीर्य, विपाकादि गुणों से युक्त होना, ये चारों औषधियों के उत्तम गुण माने जाते है।[2] चरक संहिता में परिचारक में ऐसे कुछ ऐसे गुणों की चर्चा किए है, जो रोगी के सफल ईलाज में सहायक हो। जेसे परिचारक को रोगी के दस्त, थूक, उल्टी साफ करने में घृणा न करे तथा वह यह जानता हो कि कौन सा औषध देना है और कौन सा नहीं। रोगी के साथ प्रेम से बात कर, धार्मिक प्रवचनों से सेतुष्ठ करनी चाहिए तथा वह जानता हो कि रोगी के हित में क्या है और क्या नहीं। चरक संहिता में परिचारक के चार गुणों का उल्लेख किए है

उपचार ज्ञता दाक्ष्यं अनुरागः च भर्तरि।
शौचं च इति चतुष्क अयं गुणः परिचरे जने।।

अर्थात परिचारक चार गुण होना चाहिए (1) सेवा कार्य का पूर्ण ज्ञान (2) चतुरता (3) अपने रोगी के प्रति अधिक प्रेम तथा (4) पवित्रता, इन चार गुणों का परिचारक में होना उत्तम माना जाता है।1

इसी प्रकार रोगी के निम्नलिखित गुण बताए गए है –

स्मृतिः निर्देश – कारित्वं अभी रूत्वं अथ अपि च।
जायकत्वं च रोगागां आतुरस्य गुणाः स्मृताः।।

अर्थात् (1) स्मरण शक्ति (2) वैद्य के निर्देशों का अनुपालन (3) निर्भयता और (4) रोग तथा उपद्रवों को अच्छी प्रकार बता सकना, ये चार रोगी के उत्तम गुण माने गए है।[2]

इस प्रकार चरक संहिता में रोग निवारण में चिकित्सा के चार पादों की प्रधानता, चारों पादों के चार–चार गुण, चारों पादों में वैध की प्रधान भूमिका, वैद्यों के लिए आवश्यक गुण और उनसे होने वाले लाभ, वैद्यों का ज्ञान और वैद्यों की चार प्रकार के व्यवहार बुद्धि, ये सभी विषय चरक संहिता के सूत्र स्थान के 9वें अध्याय में विस्तृत उल्लेख है। अगले अध्याय में यानि सूत्र स्थान के दसवें अध्याय में औषध के अंतर्निहित प्रभाव अर्थात् उसकी गुण कारिता का विवेचन किया गया है।

चरक संहिता में जो चिकित्सा पद्धति सुझाई गई है, वह मुख्यतः द्रव्य औषधि और अन्नापान पर आधारित है। चरक संहिता में रोगोपचार के काम आने वाले जड़ी–बूटियो तथा पशु उत्पादों का विस्तृत उल्लेख किया है। चरक संहिता में कम से कम 240 पादपों। वनस्पतियों पर पादपों/वनपस्तियों के रूप में नहीं किया गया है, इनमें तो केवल इस बात की विवेचना हुई है कि इन वनस्पतियों के विभिन्न हिस्सों या उनके 3 लादों का उपयोग करने से मनुष्य के शरीर पर क्या प्रभाव होता है। जैसा कि चरक संहिता में उल्लेख मिलता है –

मूल, छाल, सार, गोंद, नाल (डंठल), स्वरस, मृदुपतियां, क्षार, दूध, फल, फूल, भस्म (राख), तैल, कांटे, पत्तियां, शुंग (टूसा), कंद। प्ररोह (वटजटा) ये सभी औषभिद द्रव्यों (उत्पादों) के प्रयोज्य अंग है।1 चरक संहिता में आंवला, जिसे संस्कृत में अमृतफल और छात्री भी कहते हैं मैं इसके सौ से अधिक उपयोग गिनाए गए है। इसका या इससे बने उत्पादों का मुख्य उपयोग बलवर्धक या पौष्टिक औषध के रूप में किया जाता है।[2]

चरक संहिता में जड़ी –बूटियों के या वानस्पतिक द्रव्यों के चिकित्सीय उपयोग (भेषज) की ही चर्चा नहीं हुई है, अपितु पशु उत्पादों के उपयोग का भी वर्णन भी मिलता है। चरक संहिता में 165 प्रकार के पशुओं का उल्लेख हुआ है। इस ग्रंथ में पशु उत्पाद इस प्रकार उपयोग बताया है –

मधु (शहद), गोरस (दही, घी, दूध), पित्त, वसा, मज्जा, रक्त, मांस, मल, मूत्र, चर्म, शुक्र, अस्थि (हड्डी), स्नायु, शृंग(लींग) नख, खुर, केश, रोम, आदि औषधि के रूप में प्रयोग करने का उल्लेख मिलता है।[1] इतना ही चरक संहिता में 156 प्रकार के पशु–पक्षीयों के मांसो का अन्न पान या आहार के रूप में प्रयोग करने का उल्लेख किया। गाय, गधा, खच्चर, ऊँट, घोड़ा, चीता, सिंह, भालू, बंदर, मेडिया, बाध, लकड़बग्घा, बिल्ली, कुत्ता, कौवा, बाज, गिद्ध आदि पशुओं के मांस अहार के रूप में प्रयोग करने की उल्लेख तो किए ही है तथा इसके हितकर और अहितकर दोनों प्रकार के आहारों का वर्णन किया है। इतना ही नहीं चरक संहिता में गोमांस हितकर बताया है। चरक संहिता में उल्लेख मिलता है कि गौमांस वातजन्य रोगों में, पीन सरोज में, विषम ज्वर में, सूखी खांसी में भस्मक रोग में, और मांसक्षयजन्य रोगों में हितकारी होता है।[2]

पुनर्वसु – आत्रेय के शिष्यों में जिस प्रकार अग्निवेश है उसी प्रकार सुश्रुत दिवीदास – धन्वन्तरि के शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ शिष्य है। वास्तव में शल्यकर्म विशारद को धान्वन्तरीय कहा गया है। शल्य कर्म के देवता धन्वत्तरि है।1

धनुः शल्यशास्त्रं तस्य अन्तं पारंइयर्तिगच्छतीति। धनु का अर्थ धनुविद्या और शल्य शास्त्र दोनो है, क्योंकि शल्यकर्म का विशेष उपयोग युद्ध में आहत सैनिको के लिए आरम्भ हुआ। सुश्रुत का एक पूरा अध्याय 'युक्त सनीय' नाम का है, जिसमें सेना के सम्बन्ध से शल्यकर्म का विधान है।

नृपते युंक्तसेनस्य परानभिजिगीषतः।
भिषजा रक्षणं कार्य्य यथा तदुपदेक्ष्यते।।

राजा जब शत्रु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से सेना लेकर चले तो भिषक या राजवैध उसकी कैसे रक्षा करे इसका यहां वर्णन है। शत्रु लोग सड़को को, पानी को, छाया को, भोजन को, दूषित कर देते हैं। अतः भिषक् का कर्तव्य था घायल सैनिकों का शल्य क्रिया कर उसकी रक्षा करे।[2]

सुश्रुत शल्यक्रिया के प्रमुख चिकित्सक थे। जिस प्रकार कनिष्क के काल में काय चिकित्सक के रूप में चरक प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार शल्य क्रिया में सुश्रुत का नाम है। सुश्रुत के द्वारा रचित ग्रंथ सुश्रुत संहिता शल्य चिकित्सा को समर्पित ग्रंथ है। सुश्रुत संहिता उत्तर तंत्र के वर्णन के अनुसार सुश्रुत संहिता का निर्मात्ता विश्वमित्र का पुत्र सुश्रुत है।

विश्वामित्र सुतः श्रीमान् सुश्रुत परिपृच्छति।

चक्रदत्त ने भी टीका में ऐसा ही लिखा है। महाभारत में भी विश्वामित्र के पुत्रों में सुश्रुत का नाम मिलता है।1 ऐसे आयुर्वेद से सम्बन्धित दो सुश्रुत का उल्लेख प्राप्त है, एक वृद्ध सुश्रुत था प्रथम सुश्रुत, दूसरा सुश्रुत। क्योंकि दोनों सुश्रुत के उद्धरण कहीः कही एकत्र पाये जाते है। ऐसा प्रतीत होता हे कि दिबोदास के उपदेशों को वृद्धसुश्रुत ने निबद्ध करके 'सुश्रुततंत्र' अग्निवेशतंत्र की तरह की रचना किया होगा, जिसे चरक की तरह प्रतिसंस्कार करके सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता का रूप दिया होगा। पुनः दृढ़बल की तरह नागार्जुन ने प्रतिसंस्कार किया कीथ महोदय ने भी लिखा है कि नागार्जुन ने इस ग्रंथ का बाद में सम्पादन भी किया।[2]

सुश्रुत संहिता में पहला 'सूत्र स्थान' में लिखा है कि काशी नरेश-दिवोदास (जो धन्वन्तरि का अवतार था) सुश्रुत का गुरू था। सुश्रुत का उपनिषकालीन दिवोदास के शिष्य रूप में उल्लेख प्राप्त होने तथा सुश्रुत संहिता में कृष्ण का नाम प्राप्त होने से कश्यप तथा आत्रेय के समान गोत्र वाला विश्वामित्र का पुत्र सुश्रुत भी दिवोदास की तरह उपनिषद काल का प्रतीत होता है। वैसे तो सुश्रुत के नाम पर पाँच सुश्रुत का उल्लेख है[1]-

(1) वृद्ध सुश्रुत - जिसकी रचना सुश्रुततंत्र अप्राप्त है।
(2) सुश्रुत - प्रतिसंस्कृत रचना सुश्रुत संहिता
(3) शालिहोत्र सुश्रुत, जिसका पशु चिकित्सक के रूप में वर्णन प्राप्त है
(4) वैदिक सुश्रुत, जिसका उल्लेख यजुर्वेद के दूसरे मंत्र में द्रष्टा के रूप में है।
(5) चन्द्रवंशी सुश्रुत, जिसका उल्लेख गरूड़ पुराण में आया है।

सृश्रुत का काल - सुश्रुत वैद्य तथा सुश्रुत संहिता को लेकर विवाद है कि सुश्रुत किस काल के थे, दूसरा सुश्रुत संहिता किसकी रचना है। इतिहासकारों ने दो सुश्रुत अर्थात् आद्यसुश्रुत अथवा वृद्ध सुश्रुत तथा सुश्रुत का उल्लेख किए है। दोनों सुश्रुत में अंत करने के लिए प्रथम सुश्रुत को आद्य या वृद्ध सुश्रुत कहा गया है, क्योंकि ग्रंथ के प्रारंभ में सुश्रुत को प्रणाम किया गया है,

नमो ब्रह्मप्रजापत्य श्विबलभिद्धन्वन्तरि सुश्रुत प्रभृतिभ्यः।

अगर तंडा कर्त्ता (लेखक) अपने को स्वयं प्रणाम करे यह उचित प्रतीत नहीं होता है। अतः यह किसी अन्य व्यक्ति का सूचक है। मूल सुश्रुत तंत्र के कई पाठ वृद्धसुश्रुत के नाम से सर्वाद्ध सुन्दरी व्याख्या, मधु कोष व्याख्या, कुसुमावलि, निबन्ध संग्रह भाव प्रकाश आदि ग्रंथों में उद्धरित है, जो उपलब्ध सुश्रुत संहिता में नहीं मिलते है। आयुर्वेद के प्रमुख ज्ञाता व लेखक प्रियव्रत शर्माजी सुश्रुत संहिता का गंभीर मनन कर इसका काल निर्धारण किया है1

(1) 'होटा' शब्द का प्रयोग सुश्रुत संहिता में हुआ है जो ग्रीक शब्द है। यूनानियों से सम्पर्क चौथी शताब्दी ई०पू० में हुआ था। अतः इसका काल उसके बाद ही होगा।
(2) नागार्जुन ने 'उपाय हृदय' में सुश्रुत का उल्लेख किया है नागार्जुन कनिष्क या पहली-दूसरी के समकालीन थे।
(3) चरक संहिता में उल्लेख है कि -

महेन्द्र राम कृष्णानां गवामपि/[2]/इस श्लोक में राम कृष्ण का नाम आने से वासुदेव धर्म की प्रमुखता सूचित होती है। इसके उत्थान का काल पहली शती में चौथी शती माना जाता है।

सुश्रुत संहिता कुल छह भागों में 120 अध्याय है जो 120 अध्यायों में शल्य चिकित्सा के विषय में विशद् वर्णन है -

सूत्रस्थान (46 अध्याय) - यह सुश्रुत संहिता का महत्त्वपूर्ण भाग है। इस अध्याय में शल्य क्रिया के मूलभूत व मौलिक सिंद्धात है। शल्य कर्म के यंत्र व शास्त्र और प्रशिक्षण का विस्तृत वर्णन मिलता है। इसके अलावे क्षार-अग्नि, जलौका आदि, अरिष्ट विज्ञान, द्रव्यगुण विज्ञान आदि के विषय में उल्लेख किया है।

निदान स्थान (16 अध्याय) - इससे प्रमुख रोगों का उल्लेख मिलता है, जैसे भंगदर, त्वाचारोग, उदररोग, मुख रोग, दंतरोग आदि से सम्बन्धित विकृतियों के बारे में जानकारी मिलत है।

शरीर स्थान - (16 अध्याय) - इस अध्याय में सृष्टिक्रम एवं शरीर रचना विज्ञान के विषय में उल्लेख किया है। इसमें जीवन की उत्पत्ति, गर्भधारण व गर्भ विकास, गर्भिणी और नवजात शिशुओं की देखभाल आदि के विषय में जानकारी मिलती है।

चिकित्सा स्थान (40 अध्याय) - इस अध्याय में मुख्यरूप से शल्यचिकित्सा रसायन, वाजीकरण एवं पंचकर्म के विषय में जानकारी मिलती है -

कल्पस्थान (8) अध्याय - इसमें अगदतंत्र तथा विषों का वर्णन है।

कुल अध्यायों की संख्या एक सौ बीस है। सुश्रुत संहिता में उत्तरतंत्र को बाद में जोड़ा गया, जिसमें कुल 66 अध्याय है। माना जाता है कि इसे मूल संहिता के साथ प्रति संस्कर्ता पुनः संशोधन करने वाले नागार्जुन ने बाद में जोड़ा है, जिसमें कौमारमृत्य, शालाक्य, काय चिकित्सा और भूत विद्या सम्बन्धी मानस रोगों का वर्णन है। इसमें नेत्र रोग, कर्ण रोग नासिक रोग, पांडुरोग (पीलिया), उन्माद रोग, मिरगी, स्वास्थ्य के नियम आदि के बारे में जानकारी है।

सुश्रुत संहिता में विशेषरूप से शल्यकर्म के विषय में उल्लेख मिलता है। सुश्रुत संहिता में वैद्यों को सर्वप्रथम शल्यकर्म के विषय में शिक्षा प्रशिक्षण लेने की बात कहीं है।

सुश्रुत का मानना था कि शल्य चिकित्सकों को आरंभिक प्रशिक्षण के दौरान स्थानपन्न वस्तुओं और आदमी के पुतलों पर पूर्वाभ्यास करने से निश्चित हीं भावी शल्य चिकित्सकों को पर्याप्त अनुभव और कौशल प्राप्त हो जाता है, ताकि बाद में वह इसे मानव शरीर पर व्यवहार रूप में लागू कर सके। इतना ही नहीं सुश्रुत संहिता1 में इस बात पर बल देती है कि वह विद्यार्थी वास्तविक शवोच्छेदन भी करे, ताकि उसे शरीर के अंग-प्रत्यंगों का अपन ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से प्रत्यक्ष हो, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रेक्षण हीं इस प्रकार के ज्ञान को सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध होता है।

सुश्रुत संहिता इस बात पर बल देती है कि आयुर्वेदाचार्यों को मानव शरीर की पूरी और सही-सही ज्ञान होनी चाहिए। उन्होंने सुझाया है कि आयुर्वेदाचार्यों को शवच्छेदन कर शरीर रचना संबंधी जानकारी प्राप्त की जाय। इस प्रसंग में सुश्रुत संहिता2 में उल्लेख है कि-

वक् पर्यतस्य देहस्य यः अयं अंग विनिश्चयः

समासतः तत् उमयं भूयः ज्ञान विवर्धनम।।

अर्थात शरीर का त्वंक् पर्यत जो यह अंग विनिश्चय है, वह किसी भी प्रकार शरीर रचना ज्ञान (शल्य ज्ञान) के बिना वर्णन नहीं किया जा सकता। इसलिए शल्य क्रिया करने वालों को मृत शरीर का शोधन करके अच्छी प्रकार अंगों का निश्चिय करना चाहिए।

इतना हीं नहीं शवच्छेद कैसे किया जाय, इसके विषय में सुश्रुत संहिता में विस्तृत उल्लेख मिलता है।

तस्मात् समस्त-गात्रम् अविशोपहंत अदीर्घ-वधि-

पीडितं अवर्षशतिकं निः सृष्टागं-पुरीषं पुरूषं.....

----अर्थात सम्पूर्ण अंगों वाले, विष से न मे हुए, बहुत लंबी बीमारी से न मरे, एक सौ वर्ष से कम आयु के शव में से आंग और मल को निकालकर, पुरूष के शव को बहते जल वाली नदी में पिंजरे के अंदर मुंज, वल्कल, कुश, सन आदि किसी एक से लपेटकर, एकांत स्थान में रखकर सड़ाएँ, यानि नरम करें। भली प्रकार नरम बन जाने पर इसको निकालकर इस शरीर को सात दिन तक श्वस, बल, बांस, बल्वज की बनाई किसी एक कूची से धीरे-धीरे रगड़ता हुआ त्वचा से लेकर सभी बहार और अंदर के अंग-प्रत्वंग भागों को उनकी विशेषताओं को कथनानुसार आँख से देखें।[1]

ऊपर बताए तरीके से मृत शरीर प्राप्त करना, शवच्छेदन करना, उसका शोधन करना और तब शेष अस्थिपंजर आदि का निरीक्षण कितना कठिग रहा होगा, इसकी सहज की कल्पना की जा सकती है। दूसरी तरफ शरीर रचना विषयक ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसा शव शिक्षार्थियों के लिए अमूल्य निधि बन जाता होगा। तब शायद इस बात का पूरा ध्यान रखा जाात होगा कि शवच्छेदन सीखना शुरू करने वाले छात्रों के हाथों कही इस अमूल्य शव का कोई अंग-भंग न हो जाए था इसमें किसी प्रकार का विकार न आ जाए, इसलिए कर्माश्यास स्नेहन, स्वदेन, वमन, विरेचन आदि तथा छेद, भेद्य, वेध्य आदि कर्म करने की विधि बतानी चाहिए।

सुश्रुत संहिता में कहा गया है कि जब शिष्टा सर्वशास्त्रों में पारगंत हो जाय, तो उसे स्नेहकर्म और छेदनकर्म का प्रशिक्षण लेना चाहिए। छेदन कर्म सिखाने के लिए पुष्पफल (कष्मांड), अलाबु (छियाकददू), कालिंदक (तरबूजा), जपुरा (खीरा), एर्वारूक (ककड़ी), कर्कारू (ककड़ी का एक भेद), आदि वस्तुओं में छेदन (इन सीजन) के सब भेदों को सिखना चाहिए। उत्कर्तन (ऊपर को काटना)

अपकर्तन (नीचे की ओर काटना), ये भी कार्य इन्हीं पर दिखाएं। दृति (मशक), वस्ति (मूत्र से भरी), प्रसेवक (चर्म निर्मित भांड), आदि पानी एवं कीचड़ भरकर भेदनकर्म (उच्छेदन-एक्सिजन) सिखाना चाहिए। खुरचने का कार्य किसी तने हुए चमड़े पर जिसमें बाल हो, उस पर सीखना चाहिए। यानि रोमयुक्त चर्म को फैलाकर उस पर लेखन (आखुरण-स्क्रेपिंग) कार्यो, मृत पशुओं की शिराओं में तथा कमल-नालों में शिरा वेधन (वेनेसेक्शन) क्रार्यो को, एष्यकर्म किसी धुन खाई लकड़ी या बॉस, वेणु, नल, नाली एवं शुष्क अलाखु के मुखों में एषणी (प्रोविंग एंड स्टफिंग) कार्यो को पनस (कटहल), कंदूरी, विल्वफल की मज्जा (बल का गूदा) में से बीज निकालकर तथा मृत पशु के दाँत निकलवाकर। विस्त्रव्यकर्म (draining or evacuation) शाल्मली के तरवो पर मोम लगाकर सिखाना चाहिए। सीव्यकर्म (stitching or sewing or saturing) पतले-मोटे कपड़ो या मृदुचर्म पर सिखाना चाहिए। बन्धनकर्म (Bandaging on ligaturing) किसी पुरूष के अंगों पर या किसी पुस्तर्मय पुरूष (Dummy or Model of a man) अंगों पर पटियाँ बाँधकर सिखाना चाहिए। कर्णदन्धिबन्धकर्म (Plastic Surgery of ear) मृदु चर्म या मांस पेशी पर या उत्पल नाल पर सिखाना चाहिए। अग्नि क्षारकर्म (Cauterçing or Causteçion) मृदुमांस खंड पर सिखाना चाहिए। नेत्र प्रणिधानवस्ति कर्म (inserting catcheter into the bladder) या व्रण वस्ति पीड न कर्म (Inserting tube into an ulcerated channel) उदकपूर्ण घट के पार्श्व में मुख में या अलाबू के मुख में कराके सिखाना चाहिए।

इस प्रकार सुश्रुत निर्देश किया था कि शल्य क्रियाऐं करने वाले वैद्यों को इन सभी विधियों में दक्षता या कुशलता प्राप्त कर लेनी चाहिए, ताकि वह शल्य कर्म में गलतियाँ नहीं करेगा। सुश्रुत ने साफ निर्देश किया है कि शल्य कर्म करने वाले को छेदन (excision), भेदन (incision) व्यधन (Puncturing), व्यघन (rupturing), दारण (erasion), लेखन (eradifion), उत्पादन (plastic operation), प्रच्छन, सीवन (Saturing), एषण, क्षार प्रयोग और जालौक प्रयोग करने का उचित ज्ञान होना चाहिए और जो बिना सीखे शस्त्र, क्षाराग्नि और औषधियों का अनुचित प्रयोग करता है, उससे ऐसे बचना चाहिए जैसे विषैले साँप से बचते हे -

तं शस्त्र क्षाराग्नि भिरौष घैश्च भूयोडमियुजानम युक्तियुक्तम्।
जिजी विसुर्दूरत एव वैधम् विव र्जयेदु ग्रविषा हितुल्यम्।।

यही नहीं सुश्रुत ने चिकित्सीय पेशें के बारे में चिकित्सकों को अहम हिदायतें भी दिया है। उन्होंने चिकितसीय पेशे को बिना राग, द्वेष, बिना वियेद के ईमानदारी से चिकित्सा करनी चाहिए। बिना लोभ लालच, बिना शंका का रोगी का ईलाज करना चाहिए।

मातरं पितरं बान्धवानपि चातुर:
अप्ये तानभिशंकेत वैद्यो विश्वासमीति च।
विसृजत्यात्मनात्मानं न चौन परिशंकते,
तस्मात्पुत्रव दैवेनं पालयेदातुरं भिषक।।

यानि रोगी माता-पिता, संतान व भाई बंधुओं को शक की दृष्टि से देख सकता है, किन्तु वह वैद्य में विश्वास रखता है। वह अपने को वैध के हाथों सौप देता है। उसके प्रति तनि कभी शंका दृष्टि नहीं रखता। अत: वैध का कर्त्तव्य है कि वह अपने ऐसे रोगी की पुत्र की तरह देखभाल करें।

इस प्रकार सुश्रुत संहिता में सद्वृत्त एवं आचार का विधान था, जिसका पालन करना आवश्यक था। शास्त्र एवं कर्म के कुशल वैध ही योग्य तथा रार्जाह माने जाते थे। इस काल में चिकित्सा धर्मार्थ और कर्त्तव्य परायण थे, चिकित्सकों का उद्वेश्य अर्थ और काम नहीं थे।

परिचारक - सुश्रुत ने शल्यकर्म में वैधों के सहायक व परिचारक के लिए निर्देश दिया था। परिचारक के विषय में लिखा है कि परिचारक को वैधों की बताई बातों के अनुसार चलने चाहिए। परिचारक मृद स्वभाव का होना चाहिए तथा उसे मृदु व मधु वचन बोलना चाहिए। रोगियों की सेवा करने का गुण होना चाहिए, उसे रोगियों के मल, मूत्र, कफ बलभम से घृणा नहीं होनी चाहिए। खासकर गर्भ से बच्चा को जनने वाले हो। ऐसे घाइयों व परिचारको के लिए निर्देश दिए है कि चार घाइयाँ बच्चा जनते समय हो, जिसके संबंध में कोई शंका न हो और जो पौढ़ उमर की हों प्रजनन कुशल हो और जिनके हाथों के नख कटे हो।

अस्पताल या शल्य घर - सुश्रुत ने इसके विषय में निर्देश दिया है कि जहाँ शल्य क्रिया दो वैसे घरो का निर्माण वास्तुशास्त्र के अनुसार होना चाहिए तथा बड़ा होना चाहिए, उसमें धुप, हवा का उचित प्रबंध होना चाहिए, उसमें धुप, हवा का उचित प्रबंध होना चाहिए ताकि ऐसे स्थान पर रोगी मानसिक, आगन्तुक और शारीरिक रोगों से मुक्त रह सकेगा।1 शल्य क्रिया करने के पूर्व खून को बैक्ट्रिया व जीवाणु, विषाणु, कीटाणु से मुक्त कर लेना चाहिए, उस रूम में घूम का प्रबंध करना चाहिए, ताकि रूम का विषाणु-जीवाणु से रहित हो जाय।

सुश्रुत ने शल्यक्रिया शुरू करने के पूर्व वैधों को निम्न चीजो का प्रबंध कर लेने की व्यवस्था कर लेने का निर्देश किया है। जैसे - यन्त्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, शलाका (Probes), श्रृंग, जलौका (जौंक), अलालाव (sudcing gourd), जाम्बेवौष्ठ, पिचु (रूई), प्रोत, सूत्र (सीने का धागा), पत्र, पट्ट (इंदकंहम), मधु, घृत, वसा, दूध, तैल, तर्पण, कषाय (ठंडे स्वजपवद), आलेपन (Ointment), कलक (चेंजम), व्यजन (पंखे), गरम एवं ठंडा पानी, कराह (basins) आदि।

शल्यकर्म के यंत्र - सुश्रुत संहिता में शल्यकर्म के लिए अनेक यंत्रो के प्रयोग का निर्देश दिए है। यंत्र-शल्य का 4 अध्यायो में वर्णन किया गया है। कुल 120 यंत्रो का उल्लेख मिलता है। उन्होंने यत्रों - का प्रकार इस प्रकार है

(1) स्वस्तिक यंत्र - ये यंत्र 24 प्रकार के होते थे। इनमें 9 तो बनैले जानवरों की मुखाकृति थे - (1)सिंहमुख (2)व्याघ्रमुख (3)वृकमुख (4)तरक्षुमुखं (5)ऋक्षमुख (6)द्वीपिमुख (7)मार्जारमुख (8)श्रृगालमुख (9)मृगैर्वारूकमुख। 15 पक्षियों की मुखाकृति के रूप में शल्य यंत्र थे। (1)काकमुख (2)कंकुमुख (3)कुटटमुख (4)चासभुख (5)भासमुख (6)शशघातीमुख (7)उलूकमुख (8)चिलिमुख, (9)श्येनमुख (10)गृघ्रमुख (11) कौश्चमुख (12)भृडगराजमुख (13)अञजलिकर्णमुख (14)अवभञजनमुख (15)नन्दीमुख मुख

(2) संदंशयंत्र (संडासी, वितबमचे) - ये 16 अंगुल माप की त्वचा, मांस, सिरा स्नायु आदि खींचकर निकालने के लिए होते थे। ये दो प्रकार के थे - संनिग्रह और अनिग्रह।

(3) तालयंत्र - यह एक प्रकार का संडसी या चिमरी है। ये 12 अंगुल के कान, नाक की हड्डी के आहार्टर्य (extraction) के लिए होते थे। ये मत्स्थताल के समान एकतालक और द्वितालक दो प्रकार के होते थे।

(4) नाडीयंत्र - ये अनेक प्रकार के प्रयोजनो के लिए होते थे, जिनमें से किन्हीं के एक ओर मुख (एकतोमुख) और किन्ही के दोनों ओर (उभयतोमुख) होता था। इनके कुछ प्रयोग ये थे - रोगदर्श नार्थ, आचूषणार्थ, क्रियासौंकर्यार्थ भगन्दर, अर्श, व्रण, वस्ति, मूत्र वृद्धि आदि में इनका प्रयोग होता था।

(5) शालाकायंत्र - 28 प्रकार की सलाइयाँ काम में आती थी गण्डुपद, सर्पकण, शरपुङ्ख, वडिशमुख, जाम्बुववदन, अंकुशवदन आदि प्रकार के होते थे।

(6) उपायंत्र - उपर्युक्त यंत्रों के आनुषंगिक यंत्र।

सुश्रुत के शस्त्रवचारणीय अध्याय में 20 तीक्ष्म धार वाले शस्त्र इस प्रकार है - (1) मंडलाग्र - गोल छरी (2) कटपत्र- आरी, जो देखने में हाथ की तरह है। (3) वृद्धिपत्र - उस्तरा, (4) नखशस्त्र - नाखून की भांति शस्त्र (5) मुद्रिका - उंगली की भांति छूरी (6) उत्पलपत्र - कमल के पत्ते की भाँति छरी (7) अर्द्धधार - छोटी छूरी, जिसकी धार एक तरफ है (8) सूयी - सूई (9) कुशपत्र - छूरी की फल (घास की तरह) (10) आतीमुख - आती पक्षी की चोंच जैसी छूरी (11) शबरी मुख - शबरी पक्षी की चोंच की तरह की कैंची (12) अंतर्मुखी - कैंची (13) त्रिकूर्चक - तीन सईवाला शस्त्र विशेष (14) कुदारिका - छोटी कुल्हाड़ी (15) ब्रीहिमुख सूची शलाका (16) अरा (17) वेतस पत्रक (18) वांड़िश-काँटा (19) दंत शंकु - दाँत उखाड़ने वाला यंत्र (20) एषणि - घाव की गहराई जाँचने के लिए नुकीली सलाई। सुश्रुत ने अपना सारा जीवन विशुद्ध शल्य शास्त्र में अर्पित किया। सुश्रुत संहिता में पेट का आपरेशन करने, टूटी हड्डियों को बैठाने, बाबासीर का ईलाज का उल्लेख है। आँखों का शल्य क्रिया का सुश्रुत संहिता में विसद् रूप से वर्णन है। सुश्रुत को पता था कि परावर्त्तन कोण, आपतन कोण के बराबर होता है और दृष्टिपटल पर पड़ने वाली किरण ही आँखों और बाहरी दुनियाँ दोनों को चमकाने का काम करती है।[1]

सन्धान शल्य:- सुश्रुत संहिता में शल्य क्रिया का विषद् विवेचना तो है हीं, शवच्छेद, और प्लास्टिक सर्जरी का विस्तृत वर्णन है। हालांकि नाक का प्लास्टिक सर्जरी या नासा सर्जरी चिकित्सा यूरोपियन चिकित्सक अपनी देन बतलाते है, जबकि वास्तविकता यह है कि प्लास्टिक सर्जरी वे नासा सर्जरी यूरोपियन चिकित्सकों ने भारत से सीखा है। सुश्रुत संहिता में प्लास्टिक व नासा सर्जरी का उल्लेख मिलता है। ऐसा है कि प्राचीन काल में दंडस्वरूप अंगभंग की सजा थी, जिसके तहत नाक या कान काट लिए जाते थे या युद्ध के दौरानतलवार से नाक-कान, भौहे कट जाती थी, तो वैसा हीं नाक कान या भौहें बना दी जाती थी। कैस्टिग् लिओनी ने लिखा है कि भारत में दंड स्वरूप नाक काट लेना, भारत में रिनोप्लास्की के सर्वप्रथम आविष्कार का प्रथम व प्रधान कारण थी।[2] ऐसा सुश्रुत संहिता में उल्लेख मिलता है। 17वीं शताब्दी में आनेवाले विदेशशी इटालवी यात्री निकोलस मनुची ने इस प्रकार दी है[3]

देशी सर्जरों ने भौहें के नीचे के चमड़े या कपाल की त्वचा या गालों पर की चमड़ी को काटकर नाक के उपर ले आकर लगाया जाता था, फिर त्वचा को इस तरह मोड़ा जाता था कि उसका जीवंत मांस नाक के जख्म के मांस के संपर्क में लाया जाता था। भस्म भरने के उपाय करके उन्होंने इस तरह नई अनगढ़ नाक तैयार कर दी जाती थी। कपाल से ली गई त्वचा को मोड़ दिए जाने के कारण भौहों के बीच में एक छोटा छिद्र छोड़ दिया जाता था। श्वॉस लेने के लिए त्वचा के नीच दो नलिका जैसी कोई चीज रखी जाती है। कुछ समय के बाद जख्म भर जाता था। ऐसी नाक वाले मैने कई लोग देखे है और वे उतने बदसूरत नहीं दिखाई देते, जितने कि नाकरहित होने पर दिखाई देते। इस प्रकार पीड़ित व्यक्ति को कृत्रिम नाक मिल जाता था। प्लास्टिक सर्जरी के विषय में बर्लिन के डॉक्टर हिषीबेर्ग का कहना है कि यूरोप के समग्र प्लास्टिक सर्जनों ने भारत के चातुरीपूर्ण तरीके जानने के बाद एक नई उड़ान भरी। संवेदनशील खाल के पल्लो को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लगाना पूर्णत: भारतीय पद्धति है।[1] एन: गौरिसन ने लिखा है कि भारतीय शल्य चिकित्सक नाक, कान और होठों को ठीक करना जानते थे और उन्हीं से ईस्ट इंडिया कंपनी के सैन्य चिकित्सकों ने नासा अनुसंधान सीखा था।[1]

अंग्रेजो ने भारतीयों से प्लास्टिक सर्जरी की विद्या किस तरह सीखी यह एक दिलचस्प दस्तान है। सन् 1769 ई० से 1799 ई० के बीच की तीस सालों में ब्रिटिश सेना और हैदर अली तथा उसके टीपू सुल्तान के बीच चार 'आग्ल मैसूर युद्ध' लड़े गये। इस युद्धों के दौरान अंग्रेजों ने एक महत्वपूर्ण तकनीके सीखी थी। अंग्रेजों का खिदमद करने वाला कावाजी नामक एक मराठा गाडीवान था, जो चार तिलगें (अंग्रेजी फौज के चार सिपाइयों को पकड़ लिया और उसके नाक काट लिया गया। इन सबो को टीपू के सिपाइयों ने नाक काट दी थी और फिर अंग्रेज कमांडर के पास वापस भेज दिया था। कुछ दिन बाद अंग्रेज कमांडर एक भारतीय व्यापारी से सौदा तय कर रहा था तभी उसने देखा कि व्यापारी की नाक कुछ अजीब और अनगढ़ा था, माथे पर भी जख्म का निशान था। कमांडर के पूछे जाने पर व्यापारी ने बताया कि परस्त्री गमन करने के अपराध या दंछ स्वरूप उनकी नाक काट दी गई थी ऐसा प्राचीन काल में भी होता था कि दंछ स्वरूप नाक काट ली जाती थी। मनुस्मृति में ऐसे विधानों का उल्लेख मिलता है। उस व्यापारी ने पूछे गए जवाब में बताया कि कुम्हार जाति के एक मराठा वैध ने उसकी नाक बनाई है।

अंग्रेज कमांडर को बड़ा आश्चर्य हुआ और उस वैध को बुलाने के लिए बोला। अंग्रेज कमांडर पूणे में दो अंग्रेज चिकित्सकों की उपस्थिति में कावसाजी और चार अंग्रेज सिफाइयों के नाक की प्लास्टिक सर्जरी करने को कहा। सर्जरी का सचित्र विवरण मद्रास गजेरियर में प्रकाशित हुआ, फिर लंदन से प्रकाशित होने वाले पत्रिका जेंटल मैन्सं मैगजीन के अक्टूबर 1794 के अंक में भी पुनमुद्रित हुआ। यह सर्जरी तीस साल के तरूण सर्जन जोसेफ कोस्टांटिन को बहुत प्रभावित किया। वह भारतीय नासा पद्धति के अनुसंधान में जुड़ गये, फिर उन्होंने साहस जुटाकर लंदन में 23 अक्टूबर 1814 ई० को नासिका संघान की वैसी ही दो सफल शल्य चिकित्सा की, जैसा की भारत में कावसाजी और चार अंग्रेज सिपाइयों पर की गई थी। तब से यूरोप में भारतीय नाक बनाने की प्रक्रिया मशहूर हो गई और यही से यूरोप में प्लास्टिक सर्जरी का युग शुरू हो गया।[1] प्राचीन यूरोप में प्लास्टिक सर्जरी की कोई परंपरा नहीं थी। इस प्रकार नासा सन्धान तथा कर्णपाली सन्धान की विधियाँ सुश्रुत की अनुपम देन है।

यही नहीं, सुश्रुत के समय हमारे देश में सीजेरीयन आपरेशन भी किया जाता था। माँ के पेट को काटकर गर्भ से बच्चा निकालने का उल्लेख मिलता है। बेहोश करने के लिए विभिन्न ड्रग्स या मद्य का प्रयोग करते थे। बेहोशी के लिए बेलडोना, भांग, सम्होनी का प्रयोग करते थे। अंग्रेज जी. टी. वेणी जो 1839 ई० में भारत का भ्रमण किया था। उन्होंने मनूची का हवाला देते हुए लिखा है कि ओनम, भांग, शराब का प्रयोग रोगी को बेहोशी के लिए करते थे।

भारतीय चिकित्सक आपरेशन के समय दर्द को रोकने या ब्लड के बहाव को रोकने के उपाय जानते थें शल्य क्रिया के समय ब्लड् के बहाव को रोकने के लिए अंग-विच्छेद करते समय वे लोग अग्नि कर्म, गर्म तेल या दबाव से रक्त स्त्राव रोक देते थे। रक्त निकालने के लिए सिरान्यध, शृंग, जलौका और पाछने का विधान था। सिराव्यघ को शल्य का चिकित्सार्थ कहा गया है जैसा वस्ति काय चिकित्सा में ऐसी मान्यता थी कि दूषित रक्त निकाल देने से विकार की शांति हो जाती थी।[1]

एंटिसेप्टिक के लिए रोगी के कमरे में सफेद सरसों की शाल, खल्ली, नीम की पत्तियों तथा साल आदि के गोंद का धुँआ प्रयोग करता था, जिसे आज के एंटिसेप्टिक सिंद्धात की भविष्यवाणी कहा जा सकता है।

सुश्रुत संहिता में शवच्छेद का भी विशद् रूप से वर्णन है। अगर देखा जाय तो शवच्छेद का वर्णन सर्वप्रथम सुश्रुत में ही मिलता है।[2] शव को किस प्रकार सुरक्षित रखे इसका भी उल्लेख है। सुश्रुत ने रावच्छेद कर उसके आधार पर शरीर रचना के विषय में ज्ञान प्राप्त किया है।

सुश्रुत की शल्यतंत्र के साथ-साथ शरीर विज्ञान का भी जनक था। सुश्रुत ने अस्थियों की संख्या, प्रकार, संधि-स्नायु तंत्र का वर्णन किया है। रक्त का परिसंचरण तथा उसके वर्ण के अनुसार सिराओं का रंग अरूणा, नीला और गौरी का वर्ण किया है। योन, गुद, गर्भाशय, बस्ति का भी विशद् वर्णन किया गया है। नाभि में प्राणों की स्थिति मानी गई है। 'नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः'।

सुश्रुत संहिता में रोगों की उत्पत्ति से सम्बन्धित रोगों की उत्पत्ति से सम्बन्धित दोष सिंद्धातों का विवेचन किया है। दोष विवेचन के क्रम में पित्त और अग्नि का विचार तथा वाचक, रजजक आदि उसके भेद मौलिक कल्पना है। दोषों के छः क्रियाकालों का वर्णन केवल सुश्रुत संहिता में ही मिलता है।

सुश्रुत संहिता में औषधद्रव्यों के क्षेत्र में भी मौलिकता मिलती है। अनेक ऐसे द्रव्य है जो सिर्फ सुश्रुत संहिता में मिलता है। द्रव्यगुण विज्ञान के क्षेत्र में रस, वीर्य, विपाक का विचार विस्तार से किया गया है। सुश्रुत संहिता में उपलब्ध औषध द्रव्य इस प्रकार है-1

(1) लतास्तुरिका (2) चम्पक (3) सोम के भेद (4) विषों के भेद (5) अर्कपर्णी (6) अश्वबला (7)कुरबक (8) केतक (9) क्षीरपलाण्डु (10) गिलोड्य (11) गुड्शर्करा (12) चक्रमर्द (13) तिमिर (14) त्रिपुटक (15) पारिजात (16) पुत्रजीवक (17) भिल्लोट (18) महानिम्ब (19) महाश्यामा (20)मुचुकुन्द (21) मोक्षक (22) मोदयन्ती (23) वन्दाक (24) सिद्धक (25) सितसिन्धुवार (26)चर्मवृक्ष (27) माणक (28) मूषिका (29) वेणुपत्रिका (30) गुग्गुल इसके अलावे अन्य खनिज द्रव्यों का उल्लेख किए है जो निम्न है -

(1) पारद (2) हड़ताल (3) मनः शिला (4) फेणाश्म (5) वज्र (6) वैदूर्य (7) स्फटिक (8) काच (9) कुरूविन्द (10) गोमेद (11) मुक्ता (12) स्वर्ण (13) रजत (14) ताम्र (15) त्रपु (16) सीस (17) लौह (18) रीति (19) कांस्य (20) लौह भस्म (21) कांस्यभस्म (22) शिलाजतु (23) कासीस

इस प्रकार सुश्रुत संहिता में अनेक औषधि द्रव्यों का उल्लेख मिलता है, जिसका प्रयोग किसी न किसी रोगों के निदान में होता था। सुश्रुत संहिता में विष चिकित्सा का विशद् वर्णन आया है।

संदर्भ

1. जी. एन. मुरकोपाध्याय, दि सर्जीकल इन्ट्रमेन्ट ऑफ द हिन्दूज, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1913, पृ० - 7
2. चरक संहिता - iii.8.15
3. चरक संहिता 1.9.6
4. वही i.9.7 / (d) i.1.120.3
5. चरक संहिता i.9.8
6. चरक संहिता i.9.9
7. चरक संहिता i.1.73
8. टी बलवंत सिंह और के.सी. चुनेकर, गलासअी ऑफ वेजीटेसल ड्रग्स झवृहत्त्री वाणवासी, 1972, पृ० 36
9. चरक संहिता, (i). 1.68.69 संपा. पृ० - 429
10. चरक संहिता i.27.72.80 संपा - देवी प्रसाद पृ० - 430
11. सत्यप्रकाश, 232
12. सुश्रुत संहिता (34/3,5,7)
13. महाभारत गपपपण्4ण55
14. कीथ . History of Sanskrit Literature, 1941, पृ० 57
15. भागवतराम गुप्त, पृ० 246
16. भागवतराम गुप्त - पृ० 248-4
17. चरक संहिता, 30/26
18. रेवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, पृ० 108
19. पूर्वोक्त, पृ० सं० - 106
20. सुश्रुत संहिता - 19/3-4
21. गंजेरियर ऑफ इंडिया, पृ० सं. 208-10
22. ए. कैस्टि गूलियओनी, एं. शॉर्ट हिस्ट्र ऑफ मेडिसीन, 1947, पृ० 93
23. निकोलस मनुचि, स्टोरीज द भोगर या मोंगल इंडिया (1653-1700)
    संपा गुणाज मूले, भारतीय विज्ञान पृ० 2
24. भागवत सिंह जी, ए शॉट हिस्ट्री ऑफ आर्मन मेडिकल साइंस, मेकमिलन, 1896ए पृ० 178
25. एम गैरिमन, इंन्ट्रोडक्शन टू दि हिस्ट्री ऑफ मेडिकल, पृ० - 72
26. बुरियन फ्रांसिक, प्लास्टिक सर्जरी, 1962, पृ० 16-17
27. प्रियर्वतश - 69
28. भागवत राम गुप्त - पृ० 499
29. प्रियदत्त शर्मा - पृ० 71

भक्ति काव्य में लोकचेतना

रजनी सोनी

शोधार्थी हिन्दी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

डॉ. ब्रजलता शर्मा

शोध निर्देशिका पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

भक्तिकालीन कवियों की लोक-चेतना से तात्पर्य लोक अर्थात् समाज संबंधी दृष्टिबोध, विचार, समझ और चिंतन है। लोक के प्रति भक्तिकालीन कवियों का, उनके लोक के प्रति संतों के मानवीय सरोकार एवं बोधगम्यता को भक्तिकालीन कवियों की लोक-चेतना कही जा सकती है। भक्ति की भावना भारतवर्ष के लोक-जीवन में अनादिकाल से प्रवाहमान है और समय पर उसके विभिन्न रूप प्रकट होते रहे हैं। भक्ति का संबंध प्रारंभ से ही भागवत धर्म के साथ घनिष्ठ रहा है। भागवत धर्म की लोकोन्मुखता ने उसे बराबर आश्रय एवं महत्व प्रदान किया है। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास जैसे सुप्रसिद्ध कवियों और महात्माओं की दिव्यवाणी उनके अंत:करणों से निकलकर देश के कोने-कोने में फैली थी जिसे साहित्य के इतिहास में सामान्यत: भक्ति युग कहते हैं जो निश्चय ही हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग है। हम जिस कालखण्ड को भक्तिकाल कहते हैं उसमें लोक और शास्त्र का प्रबल अंतर्द्वंद्व उभरा जिसके कारण हजारीप्रसाद द्विवेदी भक्तिकाल के मुख्य अंतर्विरोध का कारण लोक और शास्त्र का द्वंद्व मानते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इस काल में जनता में जैसा तालमेल और सामंजस्य की भावना अपेक्षित है वैसा नहीं था। यह स्पष्ट है कि भक्तिकाल में लोक का स्थान शास्त्र के ऊपर हो चुका था तभी डॉ. रामविलास शर्मा भक्ति-आंदोलन को लोक जागरण कहते हैं। लोक और शास्त्र के इसी अंतर्विरोध के कारण भक्ति भाव को गति मिलती है। भक्ति ने कुलीनता को बिना चोट पहुँचाए धर्म और भक्ति के क्षेत्र में समानता को स्वीकार किया। मध्यकाल की दृष्टि से यह समता असाधारण थी । डॉ. देवीशंकर अवस्थी के शब्दों में - यहाँ पर शर्त केवल एक रह जाती है- प्रेम। जैसे भी बने प्रेम होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भक्तिकाल का कुछ भी काम्य नहीं रह जाता। जप, तप, तीर्थ, व्रत, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, ज्ञान, वैराग्य सब इसी ओर उन्मुख हैं आदर्श है- 'रीझि भजो या खझि'। प्रेम ही मुक्ति प्राप्ति का एक साध न था तथा प्रेम के द्वारा ही ऊँच-नीच तथा जाति-पाँती का भेद मिटाया जा सकता था। भक्ति आंदोलन का ध्येय न केवल आध्यात्मिक उन्नति था वरन् सामाजिक उत्थान भी था। बंद लोक और शास्त्र के द्वंद्व में अधिकाशं भक्तिकालीन कवि लोक को सर्वाधिक महत्व देते हैं तथा शास्त्र को लोक का सहायक मानते हैं। भक्तिकालीन सभी बड़े कवि तथा कबीर, सूर, तुलसी और जायसी इत्यादि ने अपनी रचनाओं, उपदेशों और उदात्त भावनाओं के माध्यम से लोकोन्मुखी और लोक-कल्याणकारी संदेशों को ही प्रचारित एवं प्रसारित किया था। भक्तिकालीन समस्त कवि समाज के साधारण परिवारों से जुड़े थे तथा उनका जन्म भी साधारण परिवारों में हुआ था। सच पुछा जाए तो लोक के चित्त में गहराई से उतरा हुआ कवि, जनसाधारण से एकात्म हुआ व्यक्ति ही ऐसी आस्था, विश्वास और आत्मशक्ति पा सकता है और लोकचित्त के साथ इस एकात्म के दम पर ही ये अपने आराध्य से इतना एकनिष्ठ हुए हैं, इतना निडर हो सके हैं कि बड़ी से बड़ी भौतिक सत्ता भी उनके सामने लाचार, दुर्बल और असहाय दिखाई देती है। कबीरदास इसी कारण कुण्ठारहित रह सके हैं। जब सीस काटकर जमीन पर रख दिया और अहं को विसर्जित कर लोक-चेतना के साथ एकाकार हो गए, तब फिर कुण्ठा कहाँ और घुटन कहाँ ? चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह'। जब घर जोड़ने की माया सर्वत्र हावी हो रही है तो घर फँकने की बात कौन करेगा करेगा ? यह सब कबीरदास जी ही कर सके, इसी कारण कबीर आज भी हमारे लिए वरेण्य हैं। कबीर वैरागी भी नहीं थे, वह जीवन-भर गृहस्थी रहे। वह जिन्दगी की ठेठ सच्चाई को प्रतिपादित करने वाले कवि हैं उनके जैसा जीवन प्रेम तथा उनका खुला आचरण हमारे लिए प्रेरणा का अजस्त्र स्त्रोत है। कहने का अभिप्राय है कि कबीर की लोकचेतना हमारे लिए स्पृहा की वस्तु है।

कबीरदास ने ज्ञानमार्ग की बातें हिन्दू, साधु तथा संन्यासियों से ग्रहण की और सूफियों के सत्संग से उन्होंने 'प्रेमतत्व' ग्रहण किया। उन्होंने उपासना के बाह्य कर्मकाण्यों को प्रधानता देने वाले पण्डितों और मुल्लों को खरी-खरी सुनाई है तथा राम-रहीम की एकता समझाकर हृदय को शुद्ध एवं प्रेममय करने का उपदेश दिया है। देशाचार और उपासना-विधि के कारण मनुष्य मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है, उसे दूर करने का प्रयास उनकी वाणी में बराबर मिलता है। उनकी उक्तियों में विरोध और असम्भव का चमत्कार लोकचित्त को बहुत आकर्षित करता है, जैसे-

"कोई गुरूग्यानी जगत उलटि बेद बूझै।
पानी महँ पावक बरै, अंधहि आँखिन्ह सूझै ।।

गाय तो नाहर को धरि खायो, काटि-काटि अंगा।
बकरी विघार खायौं हरनि खायौं चीता।।"

कबीर निम्नवर्गीय समाज के व्यक्ति थे और इस निम्नवर्ग को उन्होंने बोलने की शक्ति दी साथ ही स्वयं बोलना शुरू किया। अब ईश्वर दूर, अगोचर, अगम नहीं रहा, वह अब परिवार का हिस्सा बन गया है और कहते हैं कि "दुलहिन गावहु मंगलाचार। हम घरि आए राजा राम भरतार।।" कबीरदास ने समस्त बम्हाचारों को अस्वीकार करके मनुष्य को साधारण मनुष्य के रूप में देखा और समझा तथा भगवान् को 'निरपख' भगवान् के आसान पर बैठाने की साधना की थी। कबीर रूढियों के खिलाफ थी। वह आजीवन सामाजिक कुरितियों से जुझते रहे। कबीर ने अपनी वाणी से लोकजन को सचेत किया। उनको चुप कराना तो दूर, उन्हें कोई मद्धिम भी नहीं कर पाया। उन्होंने हर खतरे का मुकाबला किया, लेकिन वे अपनी वाणी रूपी मशाल को थामे रहे, जिसकी रोशनी से एक नया इन्सान, एक नई जिन्दगी और नई दृष्टि मिल सकती थी। उन्होंने इन सब पर हमला किया, इन सबकी धज्जियाँ उडाई। उनका रास्ता इन सबसे अलग था और अपने मार्ग पर, उसकी सत्यता पर उनका आगाध विश्वास था। अपने लक्ष्य की सच्चाई पर उनकी अप्रतिहत आस्था थी, तभी-सभी आ रही लीकों को रौदतें हुए वे अपनी लीक अलग बनाकर चले। कबीर का सामाजिक दृष्टिबोध सहज, स्वानुभूत, यथार्थपरक और समतामूलक था।

मानव स्वभाव में एक ओर जहाँ लोभ, मोह, अविवेक जैसे दुर्गुण लक्षित होते हैं, वहीं उत्साह, त्याग, वीरता के गुण भी विद्यमान रहते हैं। अत: जायसी से सभी प्रवृतियाँ स्वभाविक,सामान्य और प्रसंगानुसार व्यक्त हुई हैं। भक्ति के इस लोक-जागरण को सबसे अधिक सशक्त तथा व्यापक बनाने वाले इस युग के कवियों में गोस्वामी तुलसीदास प्रमुख हैं। प्रो. वासुदेव सिंह के शब्दों में- "मर्यादावाद के पोषक रामभक्त कवि तुलसीदास ने जो सामाजिक आदर्श उपस्थित किया, उसका प्रभाव आज भी विद्यमान है। तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्रृंखलता एवं अराजकता के युग में उनकी वाणी ने भारतीयों को श्रेयस्कर मार्ग दिखलाया है।" 'लोकचेतना' पद में प्रयुक्त 'चेतना' शब्द 'पूर्ण जागरूकता' या 'चौतन्यता' का बोध कराता है। लोकचेतना का आशय है- जन साधारण के प्रति पूर्ण जागरूकता और चेतन्य भावबोध अथवा जन-सामान्य के प्रति चिंतनशील मनोवृत्ति । किसी रचनाकार की लोक-चेतना से तात्पर्य उसकी सर्जनात्मक दृष्टि है, जो जनसाधारण के जीवन में व्याप्त सुखद और दु:खद परिस्थियों का सजीव एवं यथार्थ चित्रण निर्भीकता से प्रस्तुत करते हुए जन सामान्य का जीवन-दर्शन प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होती है। गोस्वामी तुलसीदास की तेरह रचनाओं को प्रमाणित माना गया है। उनमें से वैराग्य तुलसीदास की तेरह रचनाओं को प्रमाणित माना गया है। उनमें से वैराग्य संदीवनी (सं. 1626-27), रामाज्ञा प्रश्नावली (सं. 1627-28), रामललानहछू (सं. 1628-28), जानकी मंगल (सं. 1629-30) रामचरितमानस (सं. 1631), पार्वतीमंगल (सं. 1643), कृष्णगीतावली (सं. 1643-60), गीतावली (सं. 1630-70), विनयपत्रिका (सं. 1631-79), दोहावली (सं. 1626-80) तथा कवितावली-हनुमानबाहुक (सं. 1631-80) को माना गया है। तुलसी की इन रचनाओं का परस्पर मिलान करने पर उनकी काव्य-पटुता एवं लोकचेतना दृष्टिगत होती है। गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में लोकचेतना का रंग अत्यंत सघन है। उनका लोकप्रेम उनके काव्य का स्त्रोत है। उनके काव्य की कुछ पंक्तियों के आधार पर कतिपय आलोचकों ने तुलसी को जनसाधारण विरोधी सिद्ध करने का प्रयास किया है। ऐसी पंक्तियों को प्राय: उद्धृत किया जाता रहा है- "स्वान्त: सुखाय तुलसी रघुनाथगाथा।" तुलसीदास का चिन्तन या अभीष्ट उद्देश्य मानवता के जीवन अथवा अंत:विकारों को अपने प्रधान ग्रंथ रामचरितमानस में सचेत भाव से जिस जगत् का चित्र खींचना चाहते थे, वह मुख्यत: धार्मिक एवं पौराणिक कल्पना द्वारा निर्मित जगत था, मानव- जगत् नहीं। तुलसी का जगत् प्रधान-रूप से देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, भक्तों और संतों तथा भगवान और उनके कृपापात्रों के आलौकिक व्यापारों का जगत् है, जैसे कि धार्मिक पात्र। वहाँ साधारण नर-नारियों के साधारण लौकिक जीवन और मनोविकारों का बहुत सीमित स्थान है। राम की कथा प्राय: इस लोक की कथा है। अत: यह सम्भव था कि तुलसीदास उसे विशुद्ध लौकिक धरातल पर वर्णित करते किंतु उन्होंने ऐसा किया नहीं। जितनी गहराई से वे लोक-मानस की पीड़ा से सम्पृक्त थे, उसकी अभिव्यक्ति बिना आध्यात्मिक निदान के सम्भव नहीं थी।

गोस्वामी तुलसीदास का स्वात्म इतना व्यापक है कि सम्पूर्ण 'लोक' उसमें समाहित है। वे 'स्व' तथा 'लोक' के बीच एकात्म स्थापित करके उसकी पीड़ा के अनुभव द्वारा अपनी मुक्ति चाहते हैं और दुसरी ओर अपने निजी संकटों से सम्पूर्ण पीडित मानव-जाति के संकटों को जोड़कर निरन्तर उसकी मुक्ति-कामना के प्रति सचेत हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में, "तुलसीदास केवल कवि ही नहीं हैं, उनका स्थान हिन्दू संस्कृति के रक्षक, त्राता और उर्द्धर्ता का स्थान है।" लोक में आत्म और आत्म में लोक का अद्भुत विलयन मध्यकालीन भक्तों की साधना का मुल उद्देश्य है। इसलिए इस कालखण्ड के उपासकों, भक्तों एवं चिन्तकों ने स्वयं में लोक को समाहित करके अपनी और लोक की पीड़ा के समाधान में तत्परता दिखाई है। अतएव तुलसी के लिए 'स्वान्त: सुखाय' और लोकहित में किसी प्रकार का विरोध नहीं हैं। लोकहित में ही तुलसी का स्वान्त: सुख देखते थे, दोनों में किसी प्रकार का अन्तर्विरोध वे नहीं मानते थे। तुलसी के इसी सामंजस्य पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं- "तुलसीदास को जो अभूतपूर्व सफलता मिली उसका कारण यह था कि वे समन्वय की विशाल बुद्धि लेकर उत्पन्न हुए थे। भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय का अपार धैर्य लेकर आया हो ।" प्रत्येक युग के महान् विचारक एवं कवि मानव को सृष्टि की सर्वोत्तम रचना स्वीकारते है। तुलसी भी यही प्रतिपादित करते

हैं कि मनुष्य से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। वे मनुष्य के सबसे बड़े उपासक हैं। उन्होंने प्राचीन महाकाव्यों की मानववादी परम्परा को आगे तोड़ते हुए कहते हैं-

"भगतिहीन विरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।।
भगवतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी।।"

यहॉ कवि न तो द्विजत्व का समर्थन कर रहा है और न सनातनता का । वह समर्थन कर रहा है समग्र लोक, उपेक्षित, त्याज्य, हीन एवं सामाजिक न्याय से वंचित जन-समुदाय का । हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "लोक और शास्त्र के व्यापक ज्ञान ने उन्हें अभूतपूर्व सफलता दी। उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।" तुलसी की भक्ति-भावना में लोक-चेतना की इतनी गहरी छाप है कि वह जाति-पॉति, कुल, धर्म, यश,धन, बल आदि की क्षुद्र परिधि से बहुत दूर-सर्वसुलभ है। इस प्रकार के सर्व-सुलभ भक्ति मार्ग के द्वारा तुलसी ने उच्चवर्गों में कर्मकाण्डीय धर्म के स्थान पर लोक-धर्म को स्थापित किया है, जिसका मूलाधार है- 'प्रेम'। तुलसी के इष्ट 'श्रीराम' प्रेम के इच्छुक हैं, न कि कर्मकाण्ड के। यह प्रेम-तत्व तुलसी की भक्ति-भावना का मुल है और उनकी लोक-चेतना का बीज-भाव। इस प्रकार यह सर्वस्वीकृत है कि उन्होंने भक्ति का आधार पर जनसाधारण के लिए धर्म को सरल और सुलभ बनाकर पुरोहितों के धार्मिक एकाधिकार की जड़े हिला दी।

सूरदास कृष्ण के संस्कार में सम्मिलित होते हुए भी उनके बाह्य रूप को कहीं भी नहीं भुल पाए हैं। वे इस पद में भी मानते है कि श्रीकृष्ण धरती पर इसलिए आए हैं कि वह धरती से पाप मिटाऐं। यहाँ पर हमें सूर की लोक-चेतना का अनुभव होता है। सूर ने समाज पर कंस के द्वारा किये गये अत्याचारों को आँखों से ओझल नहीं किया, बल्कि लोगो के दर्द को अनुभव किया।

दाई हार लेने के बाद खुश हो जाती है। कृष्ण जन्म के समय गाँव के सभी बालक-वृद्ध, युवक-युवतियों बिना किसी भेदभाव के नन्दबाबा के द्वार पर मंगल गीत गाते हैं। इस पद में सूर ने यह बताने की चेष्टा की है कि ऐसे उत्सवों को सभी मिलकर ही मनाते हैं। शिशु का सगुप मनाने के लिए पितरों की पूजा, तिलक की रस्म, दूध और दही से रस्में पूरी की जाती हैं। छठी संस्कार- जब बालक छह दिन का हो जाता है तो गौरी और गणेश की पूजा की जाती है। कृष्ण की छठी के समय भी मंगल गीत गाये जाते हैं। गौरी गणेश का पूजन किया जाता है। कृष्ण की आरती उतारी जाती है। नाईन महावर माँगती है और मालिन तोरण बॉधती है। सभी ब्रजवासी आनन्दित होते है।

अन्नप्रश्न - यह संस्कार सामाजिक संगठन और आपसी एकता का आधार है क्योंकि बच्चे के जन्म की खुशी के सारे समाज को भोज दिया जाता है। इस तरह सूर ने 'लोक' में मनाए जाने वाले उत्सवों और त्यौहारों का सुन्दर, सरस और प्रभावशाली वर्णन किया है। लोक विश्वास युग-विशेष के सामाजिक जीवन के अंग होते हैं। भारतीय लोक-जीवन में वैदिक काल से परम्परागत विश्वासों, रूढियों और विचारों का प्रभाव मीरा के काव्य में स्वभावत: पड़ा लेकिन राजकुल की पुत्री और पुत्रवधू होने के बावजूद उनका जीवन अंत:पुर बंधनों से मुक्त था तथा अपने उद्दाग प्रेम एवं भक्ति के कारण उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व सामान्य लोक जीवन से एकीकार हो गया था । उनके प्रेम की तन्मय धारा ने वर्ग भेद, जातिभेद तथा सागंती मर्यादाओं को तोड़ दिया । मीरा ने किसी भी दरबारी एवं सामंती व्यवस्था के सुखों और लोक-लाज रूपी बेडियों को स्वीकार नहीं किया। संतों के निरंतर सान्निध्य ने मीरा को लोकजीवन के निकट ला दिया।

निर्गुण धारा के अन्य कवियों जैसे- रज्जब, धर्मदास, सींगा, बाबरी, साहिबा, सदना, धन्ना, पीपा, गुरू अर्जुनदेव, शेख फरीद, गुरू अंगद, गुरू रामदास आदि आते हैं। इन कवियों की लोकचेतना जन-सामान्य की विभिन्न परिस्थितयों से सहजता और स्वाभाविकता से जुड़ी है जो वर्ग, वर्ण, सम्प्रदाय से हटकर प्रेम, त्याग, समर्पण और जन-जीवन की सच्चाई का निडरता से सामना कर उनमें एकजुटता की भावना जगाई । डॉ. प्रेमशंकर के अनुसार- "शास्त्र पांडित्य की जकड़बन्दी तोड़कर ही रचना वृहतर संवेदन जगत में पहुँचती है, इसलिए बल 'अनुभव-ज्ञान' पर है, जिसे ऑखे देखती हैं, उसे झुठलाना सरल नही।, पर भक्तिकाव्य का आग्रह व्यापक जीवनानुभव पर है जिससे मध्यकालीन समय-समाज उसमें प्रतिबिम्बित होते हैं।" इस अनुभवजन्य ज्ञान को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अनभै सॉचा कहते हैं जो निर्गुणमार्गी भक्तों में सर्वाधिक पाया जाता है इसकी सबसे बरड़ी वजह उनका अक्षर ज्ञान शून्य होकर भी तर्कशील, विवेकी एवं मानवता प्रेमी होना है। निर्गुण भक्त-कवि जिस समाज से आए थे वहाँ हर प्रकार का सामाजिक स्तर था किंतु वहॉ की परिस्थितियों में पिछड़ापन और पेट की आग जीवन की एक प्रमुख समस्या थी। समाज के कटु जीवनानुभवों और ठोकरों के आघात से निर्गुण भक्तों की दृष्टि और बुद्धि स्पष्ट, सरल, सहज तथा तर्कशील हो गई थी जिस कारण से भक्त अपनी बात को बगैर किसी भय या लोभ के निर्भीकता से कहते हैं। उन्हें किसी भी प्रकार के स्वर्ग-नरक और पाप-पुण्य की कामना नहीं है क्योंकि संतों की इन धार्मिक अवध ारणाओं की एवं उसकी वास्तविकता की सही पहचान और उसका ज्ञान था। गालिब भी इसी तथ्य को उजागर करते हुए कहते हैं-

"हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन, दिल बहलाने को गालिब ये ख्याल अच्छा है।"

इनका ज्ञान पोथियों और परंपराओं से प्राप्त नहीं अपितु स्वयं के लाभ-हानि के विवेचनोपरांत अर्जित ज्ञान है। संतों का ज्ञान, उनकी वैचारिकता, उनका विश्वास, उनका मानव धर्म, खुद के भोगे गये यथार्थ और अर्जित जीवन-दृष्टि से निष्पन्न है। मध्यकालीन कवियों का लोक से गहन स्तर पर अंतर्संबंध इस बात की पुष्टि के लिए पर्याप्त है कि लोक का ज्ञान अनुभव पर ही आश्रित होता है। स्वप्न तो क्षणिक और कल्पनाश्रित रहता है जो तनिक सचेत होते ही तत्काल भंग हो जाता है और एक प्रकार से व्यक्ति की अवचेतन अवस्था का बोध कराता है जबकि अनुभवजनित ज्ञान जीवन-जनित सत्य का यथार्थबोध कराता है तथा सदैव शत-प्रतिशत खरा होता हैं।

सन्दर्भ

1. देवीशंकर अवस्थी, भक्ति का संदर्भ, पृ.सं.-35
2. रामकिशोर शर्मा, कबीर ग्रंथावली, पृ.सं.-28
3. वासुदेव सिंह, हिंदी संत काव्य, पृ.सं.-9
4. रामचरितमानस, बालकांड, पृ.सं.-2
5. रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, पृ.सं.-321
6. जारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य: उद्‌भव और विकास, पृ.सं.-131
7. प्रेमशंकर, भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, पृ.सं.-213

छत्तीसगढ़ी साहित्य में सामाजिक राजनैतिक व्यवस्था

डॉ० श्रीमती माग्रेट कुजूर

सहायक प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय कला विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, धरमजयगढ़

छत्तीसगढ़ अंचल की सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को उदार एवं महान रखने का उपक्रम आर्य-अनार्य-संस्कृति- की प्रमुख विशेषता को जाता है। छत्तीसगढ़ी साहित्य का अध्ययन करने से यह आभास होता है कि यहाँ अवस्थित अन्याय, शोषण, भुखमरी, गरीबी, अत्याचार, आदि के साथ-साथ यहाँ के शासकों ने छत्तीसगढ़ की संस्कृति को नष्ट करने का भरपूर प्रयास किया है, परन्तु कुछ थोड़े बहुत फेरबदल करने के अलावा मूल संस्कृति को विनष्ट नहीं कर सके। जो भी शासक यहाँ षासन किये, यहाँ की धर्म निरपेक्षता की संस्कृति, समन्वय की भावना की विषेषता को प्रभावित नहीं कर पाये। इसके विपरीत स्वतः वे इस संस्कृति से अभिभूत होकर उससे तादम्य स्थापित कर आचरण कर शासन तंत्र का संचालन कर पाये। इसलिए यहाँ शासन करने वाले सभी राजाओं की ओर से यहाँ निवासरत जनसमूह के कहिनी मन को धार्मिक और सामाजिक स्वतंत्रता मिलती रही।

सामाजिक आत्मनिर्भरता और आत्मीय संबंधों की वजह से यहाँ सामंतषाही का हर स्वरूप दृष्टिगत नहीं हुआ है। गुप्तकालीन राजाओं का राजवंश एवं पाडुवंशीय राजाओं का राज्य कई भागों में विभक्त थे एवं राष्ट्र की सभा से विभूषित होते थे। यह राष्ट्र भाग, विषय, आहार, इत्यादि में विभक्त था। रतनपुर के कल्चुरि काल के राजा लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए प्रसिद्ध थे और इस काल में निरकुंश और अग्रणी शासकों को हटाने का नियम था। गोड़ राजाओं की शासन प्रणाली में में दीवान शासन के सहयोगी, पुरोहित वर्ग धार्मिक नीति-रीति में सहभागी और कवि साहित्य सृजन द्वारा चारण-कार्य में संलग्न के साथ कायस्थ लिखा-पढ़ी में दक्ष थे।

> "परदेशीराम वर्मा समकालीन छत्तीसगढ़ी कहिनी संसार के बडेघ रचनाकार आय। उँकर कहिनी मन छत्तीसगढ़ के सामाजिक ढाँचा म पनपे सामंत मन के सोसन अउ अत्याचार ल उजागर करथे। अतकेच निही मलुबुउन हारे - थके मनखे मन ला जूझे के बल घलो देथे। उनकर कहिनी मन के तेवर तीखा आय।"[1]

सन् 1741 ई. से 1854 ई. तक छत्तीसगढ़ राज्य नागपुर के भोंसलों शासकों के अधीन रहा। मराठा शासन काल में छत्तीसगढ़ घोर उपेक्षा का शिकार रहा। उन्होंने अपने राजकीय व निजी स्वार्थ की पूर्ति हेतु इसे एक उपनिवेश के रूप में देखा और जितना हो सके भरपूर शोषण किया। इसलिए इस काल में छत्तीसगढ़ में अराजकता, अनिश्चितता एवं अव्यवस्था के साथ "सन् 1854 ई. तक यहाँ की स्थिति विपरीत बनी रही एवं इसका विकास की गति अवरूद्ध रहा। मराठा शासन छत्तीसगढ़ के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र में कोई और नवीनता प्रगतिशीलता न ला सका। सन् 1854 ई. में जब छत्तीसगढ़ में अंग्रेजी शासन की स्थापना हुई तब यहाँ की स्थिति में परिवर्तन आया। कई सालों से अव्यवस्थित शासन के बाद यहाँ पहली बार शान्ति एवं सुव्यावस्था की स्थापना हुई।"[2]

ब्रिटिश शासन व्यवस्था में नियमितता, प्रजाहित एवं चुस्ती के लक्षण परिलक्षित हुए। अंग्रेजों ने कुछ विकासात्मक कार्य भी किये हैं जैसे- "कृषि उद्योग में प्रोत्साहन, राजस्व व्यवस्था, नवीन भूमि-व्यवस्था, उचित कराधान प्रणाली, यातायात के साधनों की उन्नति, पुलिस व्यवस्था एवं समुचित न्याय व्यवस्था के प्रभावशील होने के कारण इस क्षेत्र में विकासोन्मुखी, आधुनिक युग का शुभारम्भ दिखाई पड़ा एवं जनता ने नवीन प्रकाश की किरण देखी। अंग्रेजी शासन व्यवस्था से छत्तीसगढ़ की भौतिक प्रगति हुई एवं वह आधुनिकता की ओर अग्रसर हुआ। इसकी सभ्यता एवं संस्कृति में नया परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ।"[3]

प्राचीन काल में भारतीय समाज में जो समृद्धि एवं गतिशीलता विद्यमान थी उसमें मध्यकाल में एक अलग प्रकार की जड़ता सी आ गयी थी। मुस्लिम आधिपत्य के युग में भारतीय समाज व्यवस्था पर गहरा आघात हुआ, परंतु छत्तीसगढ़ के सामाजिक परिवेश में मुस्लिम प्रभाव लगभग नगण्य रहा, क्योंकि छत्तीसगढ़ अंचल प्रत्यक्ष रूप से मुस्लिम राजाओं के अधीन नहीं रहा।

मराठा कला में यहाँ का समाज तुलनात्मक दृष्टि से अत्यन्त पिछड़ा हुआ था, अंग्रेजी शासन की नीतियों ने यहाँ सम्पूर्ण राजनीतिक आर्थिक, व्यवस्था को परिवर्तित कर दिया। जिसका की सामाजिक जीवन में बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य संस्कृति की महान् देन भारतीय समाज का औद्योगिकीकरण एवं आधुनिकीकरण है। जिसके कारण छत्तीसगढ़ सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त होने लगा। "आचार-विचार, क्षेत्र की वेशभूषा, व्यवहार एवं शिष्टाचार इत्यादि में पाश्चात्य प्रभाव की छाया दिखाई देने लगी। अब व्यापारिक कार्यप्रणालियों पर जोर दिया जाने लगा, जिससे सामाजिक मान्यताएँ व बंधन ढीले पड़ने लगे। यद्यपि इसने संयुक्त परिवार प्रणाली को आघात पहुँचा जिससे लोगों में आत्म केन्द्रित प्रवृत्ति पनपने लगीं फलतः छत्तीसगढ़ में पश्चिम सभ्यता का प्रभाव सामाजिक बुराइयों के निवारण के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ।"[4] सती प्रथा, बाल विवाह, शिशु हत्या, आदि विसंगतियों को समाप्त करने की प्रेरणा मिली एवं

विधवा विवाह की प्रथा को मान्यता मिली इस प्रकार छत्तीसगढ़ अंचल के सामाजिक जीवन में एक नयी परिवर्तनशीलता आयी, जिसने उसे पिछडेघ्पन के शाप से मुक्त कराने का प्रयास किया। सामाजिक सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप छत्तीसगढ़ की बहुसंख्यक दलित व पिछड़ी जातियों में भी नव चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।

> "गोमती - एक बेटा के फर्ज अदा करत हावय। तीन बछर होगे नौकरी करत अउ हमन सब ल ओला अपन बेटी ही बतावथन। फेर हमर मरे के बाद काय होही इहीसोच के ओखर बिहाव करना चाहत हन फेर ओ ह तइयार नई होवत हे। देविका तो सन्न रहीगे: देविका सोचिस के नरेन्द्र तो कुँआरी लड़की देखत हावय, येखर संग कइसे बिहाव कर हूँ।"[5]

पं. सुन्दरलाल शर्मा एवं गाँधीजी ने छत्तीसगढ़ में हरिजनोद्धार हेतु आन्दोलन चलाया एवं दलित वर्ग भी अपने अधिकारों व सम्मान के लिए आन्दोलन करने लगे। इन प्रयासों के साथ ही छत्तीसगढ़ की सामाजिक दशा में परिवर्तन हुआ। हिन्दुओं को ईसाई बनाने धर्मांतरण करने से एक नया ईसाई समाज अस्तित्व में आया। अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही लोगो की संस्कृति, जीवन पद्धति में छत्तीसगढ़ की सामाजिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके कारण हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में एक नवीन वातावरण का र्निर्मत हुआ। फलस्वरूप अछूतों की दशा अपेक्षाकृत सुधरने लगी।

> "पास्टर आ.....गै। पास्टर आ.....गै। ये दे फादर आ गै रे...। किलकत टूरीमन फादर एमानुएल ल घेर डारिन। सब खुस हो गे रहिन वोला देखके। मुचकुन हॉसत वोकर मुख म एक ठन विजेता के भाव तडर उठीस। लइका पिचका एकर बर खुस के वोकर रहत भर ले घरो घर म तिहार के माहौल रहिथे। रात के भजन कीरतन पराथना के तो का कहिबे। सब के सब वोकर सो आके प्रभु नाम जय यीशु के उच्चारन करथ हाथ मिलाइन।"[6]

छत्तीसगढ़ अंचल में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली सदैव फलती-फूलती आ रही है। यहाँ के राजा व सामंत आम-जन तक पहुँचता और उसके दुख-पीड़ा से अवगत होते हुए उनके जन भावनाओं का सम्मान करते थे। मुनष्य एक सामाजिक प्राणी है और वह समाज में रहता है। अत: समाजिक विकास हेतु उसे अपनी समस्याओं का समाधान करना पड़ता है। मनुष्य को आवश्कता पड़ने पर समाज से संघर्ष करना पड़ता है, तो कभी समाज से सहायता लेना पड़ता है। इस तरह मानव का हर तरह का कार्य व्यापार समाज से संबंधित है।

छत्तीसगढ़ की सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में प्राचीन काल से ही उदारता थी- बंधन नहीं, विस्तारण का गुण था, जनमानस में स्वतंत्रता थी। यही कारण है कि जाति गौरव के पद के साथ-साथ समाज में प्राप्त प्रतिष्ठा के आधार पर वे जन परम्पराओं में गुंथे हुए थे। यद्यपि मालगुजार निर्ममतापूर्वक नियमों का पालन कराने- करवाने में बदनाम थे तथापि संकटग्रस्त क्षणों में जनकल्याण व लोंगों के हित में उदारतापूर्वक कार्य भी करते थे। "सामाजिक लोकसाहित्यों में व्यक्ति के इसी संघर्ष और स्नेह की कहानियाँ मिलती है। मनुष्य की सामाजिक, भौगोलिक परिस्थितियाँ एवं परंपराएँ, विश्वास, जीवन के मूल्य, अनैतिक, नैतिक भावनाएँ, उच्च-निम्न प्रतिक्रियाएँ इन साहित्यों में व्यक्त हुई है।"[7]

ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतें विद्वमान थीं, जिसमें आपसी झगड़े आपस में निपटाये या सुलह कराये जाते थे। छत्तीसगढ़ अंचल में कई ऐसे ग्राम हैं, जहाँ के मनुष्य ने कभी न्यायालय के द्वार खटखटाये न कभी थाना गये हैं। एक ही जाति में लोगों में षैव, शाक्त, वैष्णव, एवं कबीरपंथी मिल जायेगें। धर्म कभी भी लोंगों के मध्य अवरोध नहीं बना, समन्वय की भावना लोगों का जीवन रहा एवं सहयोग उनका मुख्य ध्येय। यहाँ ऐसे भी उदाहरण कम नहीं हैं, कि ब्राम्हण स्त्री से उत्पन्न संतान ब्राम्हण और ब्राम्हण से अन्य जाति से उत्पन्न संतान दूसरी जाति का कहलाता। आजादी के बाद जातिगत नियमों में और अधिक जटिलता आ गई।

रामनाथ साहू कृत उपन्यास 'काका के घर' में इस बात का उल्लेख किया है कि "जब इसकी जानकारी जाति पंचायत सरपंच लालसिंह को होती है तो वह सामाजिक रूढ़ि का बहाना करके फैसला में चंचला को ससुराल से अलग होने का दंड देता है। इस उपन्यास में केराबाई समाज के धनी व्यक्ति के भोग विलास का शिकार हो जाती है, वहीं चंचला भी लालसिंह के शोषण का शिकार होती है। यह कैसा समाज है जो जातिगत भेदभाव रखता है? यह प्रथा सामाजिक और नैतिक पतन का द्योतक है।"[8]

स्वतंत्रता के बाद हमारा देश विश्व का सबसे बड़ा लोकतांन्त्रिक देश बना। उस समय सभी देष के सभी निवासियों ने यही सोचा था कि देष की षासन प्रणाली जनता के हाथ में होगी एवं देश में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना होगी। जनता को आशा की किरण जागी कि देश में अब किसानों और मजदूरों का राज होगा। इसी भरोसे के साथ हमारे भारत देश में प्रजातंत्र की स्थापना हुई और आम नागरिक का शासन स्थापित हुआ। बहुत दु:ख के साथ यह कहना पड़ रहा है कि स्वतंत्रता के 75 वर्षों के बाद भी हमारे देश में आम जनता को मूलभूत जरूरत की वस्तुएँ उपलब्ध नहीं हो पा रही है। इस संदर्भ में कवि उद्योराम झकमार जी की पंक्तियाँ दृष्टव्य है-

"भारत माता के हम किसान
रात दिन कमाथन हम

नांगर जोते ला जाथन हम
मुँधियार होत ले आथन हम
खोंची भर ला पाथन हम
खेती बारी में देथन प्रान।"[9]

स्पष्ट है कि स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता पष्चात के छत्तीसगढ़ी साहित्य में सामाजिक व राजनैतिक व्यवस्था का तुलनात्मक चित्रण करने से ज्ञात होता है कि साहित्यकारों ने सामाजिक व राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त विद्रुपताओं पर खुलकर लिखा है व व्यवस्था की कमजोरियों से आमजन को परिचित कराया है।

"भारत के आजादी हर साहित्य ल घलाय प्रभावित करिस, देस राज के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक स्थिति उत्ताधुर्रा बदले बर धर लिहिस। अतके भर नहीं आजादी के दस साल पहिली अउ दस साल बाद के आम आदमी के सोच विचार, रहन-सहन, बोली बात मं घलाय बदलाव आये लगिस, साहित्य के लेखन सैली म भी बदलाव दीखे लागिस। उन मन के सोचे के तरीका बदले लागिस इहां तक के आजादी पाये अउ ओला भोगे के सुख सपना घलाय मोह भंग के सिकार होगे।"[10]

संदर्भ सूचीः

1. छत्तीसगढ़ी लोकाक्षर, अप्रैल-जून, सन् 2017, पृ. 35
2. अमरोहित, डॉ. गीतेश कुमार, छत्तीसगढ़घ का इतिहास, सरस्वती बुक्स, सन् 2021, पृ.103-104
3. https:èèhiquora.com
4. पाठक, डॉ. विमल कुमार, छत्तीसगढ़ी साहित्य का ऐतिहासिक अध्ययन, आशु प्रकाशन, रायपुर 1983, पृ. 198
5. छत्तीसगढ़ी लोकाक्षर, अप्रैल-जून सन् 2017, पृ. 74-75
6. साहू, रामनाथ माटी के बर्तन, वैभव प्रकाशन रायपुर, सन् 2017, पृ. 147
7. शुक्ल दयाशंकर, छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 10
8. टण्डन, डॉ. रमेश (संपादक), लोक साहित्य एवं छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य, सर्वप्रिय प्रकाशन, सन् 2020, पृ. 128
9. शुक्ल दयाशंकर, छत्तीसगढ़ी लोक साहित्यका अध्ययन, पृ. 107
10. छत्तीसगढ़ लोकाक्षर, अप्रैल-जून सन् 2017, पृ. 78

बिहार में किसान आंदोलन और स्वामी सहजानंद सरस्वती: औपनिवेशिक दासता से कृषि क्रांति तक एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० कृष्णा कुमार शर्मा

इतिहास विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

शोध सार

बीसवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास में बिहार का किसान आंदोलन न केवल एक आर्थिक संघर्ष था, बल्कि यह औपनिवेशिक सत्ता और entrenched सामंती संरचनाओं के खिलाफ एक व्यापक सामाजिक-राजनीतिक विद्रोह था। इस आंदोलन के केंद्र में एक ऐसा व्यक्तित्व था जिसने सन्यास के भगवा वस्त्रों को क्रांति के लाल झंडे के साथ मिश्रित कर दिया स्वामी सहजानंद सरस्वती। यह रिपोर्ट बिहार में किसान आंदोलन की उत्पत्ति, विकास, विचारधारा और प्रभाव का एक विस्तृत और विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती है, जिसमें स्वामी सहजानंद और उनके सहयोगियों की भूमिका का गहन परीक्षण किया गया है। बिहार में कृषक असंतोष की जड़ों को समझने के लिए 1793 के स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement) की संरचना को समझना अनिवार्य है।

मूल शब्द - विकास, विचारधारा, प्रभाव, सामाजिक, राजनीतिक, औपनिवेशिक।

प्रस्तावना

लॉर्ड कॉर्नवालिस द्वारा लागू की गई इस व्यवस्था ने बंगाल और बिहार में जमीन के मालिकाना हक को जमींदारों के हाथों में केंद्रित कर दिया। इस व्यवस्था ने एक पिरामिड नुमा संरचना का निर्माण किया:

- जमींदार: भूमि के स्वामी, जो अक्सर अनुपस्थित (absentee) रहते थे और जिनका मुख्य उद्देश्य लगान वसूली था।
- रैयत (Occupancy Tenants): वे किसान जिनके पास पुश्तैनी अधिकार थे, लेकिन वे जमींदारों की दया पर निर्भर थे।
- गैर-दखलकार रैयत (Non-Occupancy Tenants): वे किसान जिनके पास कोई स्थायी अधिकार नहीं थे और जिन्हें कभी भी बेदखल किया जा सकता था।
- बटाईदार और खेत मजदूर: कृषि संरचना के सबसे निचले पायदान पर स्थित सर्वहारा वर्ग, जो अक्सर ऋण-बंधन (Kamia system) में जकड़े हुए थे।

औपनिवेशिक शासन के दौरान, यह व्यवस्था शोषण का एक क्रूर यंत्र बन गई। जमींदार न केवल निर्धारित लगान वसूलते थे, बल्कि 'अबवाब' (अवैध उपकर), 'बेगार' (बिना वेतन के श्रम), और नजराना जैसी मनमानी वसूली भी करते थे। 1920 के दशक तक, बिहार के ग्रामीण इलाकों में तनाव अपने चरम पर था, और इसी पृष्ठभूमि में किसान सभा का उदय हुआ।

1929 की आर्थिक मंदी का प्रभाव

1929 की वैश्विक महामंदी (Great Depression) ने बिहार की कृषि अर्थव्यवस्था को बुरी तरह प्रभावित किया। कृषि उत्पादों की कीमतें धड़ाम से गिर गईं, जिससे किसानों के लिए नकद लगान चुकाना असंभव हो गया। इसके परिणामस्वरूप, जमींदारों ने बड़े पैमाने पर किसानों को बेदखल करना शुरू कर दिया और उनकी जमीनों को 'बकाश्त' (Zerat/Bakasht) जमींदार की खुद की खेती वाली भूमि) में परिवर्तित कर दिया। यह 'बकाश्त भूमि' का प्रश्न ही आगे चलकर बिहार के किसान आंदोलन का मुख्य मुद्दा बना।

सन्यासी से क्रांतिकारी तक: स्वामी सहजानंद सरस्वती का वैचारिक रूपांतरणस्वामी सहजानंद सरस्वती का जीवन एक रेखीय यात्रा नहीं थी, बल्कि यह आत्म-साक्षात्कार से सामाजिक मुक्ति की ओर एक जटिल संक्रमण था। एक दंडी सन्यासी के रूप में उनकी छवि और मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष के प्रति उनके झुकाव ने उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक अद्वितीय चरित्र बना दिया।

प्रारंभिक जीवन और आध्यात्मिक खोजस्वामी सहजानंद का जन्म 22 फरवरी 1889 को उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के देवा गांव में एक जुझौतिया भूमिहार ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका बचपन का नाम नौरंग राय था। बाल्यावस्था में ही माता के देहांत और वैराग्य की तीव्र भावना ने उन्हें आध्यात्म की ओर मोड़ दिया। 1907 में, मात्र 18 वर्ष की आयु में, उन्होंने सन्यास की दीक्षा ली और

'स्वामी सहजानंद सरस्वती' के नाम से जाने गए। वे आदि शंकराचार्य के दसनामी संप्रदाय के 'दंडी सन्यासी' बने, जो अपने साथ हमेशा एक दंड (बांस की लाठी) रखते हैं।

प्रारंभिक वर्षों में, उनका कार्यक्षेत्र मुख्य रूप से धार्मिक और समाज सुधार तक सीमित था। उन्होंने 'भूमिहार ब्राह्मण महासभा' के माध्यम से अपनी जाति के भीतर कर्मकांडों के शुद्धिकरण और सामाजिक उत्थान का प्रयास किया। 1914 में उन्होंने भूमिहार महासभा के सम्मेलन को संबोधित किया, जो उनके सार्वजनिक जीवन की शुरुआत थी। हालाँकि, जातिवादी राजनीति की संकीर्णता ने जल्द ही उन्हें निराश कर दिया।

गांधीवादी राष्ट्रवाद से मोहभंग

1920 में महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन ने सहजानंद को राजनीति के मुख्यधारा में खींच लिया। वे 1921–22 के दौरान लगभग 13 महीने जेल में रहे। इस दौरान उन्होंने ग्रामीण बिहार की गरीबी को बहुत करीब से देखा। जेल से रिहा होने के बाद और विशेष रूप से 1927 के आसपास, जब उन्होंने पश्चिमी पटना में जमींदारों और किरायेदारों के बीच के संघर्ष में हस्तक्षेप करना शुरू किया, तो उन्हें एक कड़वा एहसास हुआ। उन्होंने देखा कि जिन कांग्रेस नेताओं के साथ वे आजादी की लड़ाई लड़ रहे थे, उनमें से कई स्वयं जमींदार थे और वे किसानों के शोषण में भागीदार थे।

सहजानंद का गांधीवाद से मोहभंग 1934 के बिहार भूकंप के बाद पूर्ण हो गया। जब गांधीजी ने भूकंप को "छुआछूत के पाप का दैवीय दंड" बताया और राहत कार्यों में जमींदारों के साथ सहयोग पर जोर दिया, तो सहजानंद को यह पाखंड लगा। उन्होंने महसूस किया कि गांधी का 'ट्रस्टीशिप' का सिद्धांत वास्तव में यथास्थिति (status quo) बनाए रखने का एक साधन था, जो शोषक वर्ग की रक्षा करता था।

संगठन का उदय: बिहार प्रांतीय किसान सभा (BPKS)

किसान आंदोलन को संस्थागत रूप देने का श्रेय पूरी तरह से स्वामी सहजानंद और उनके सहयोगियों को जाता है। यह संगठन न केवल शिकायतों के निवारण का मंच था, बल्कि यह किसानों के राजनीतिक सशक्तिकरण का माध्यम भी बना।3.1 1929 का ऐतिहासिक गठननवंबर 1929 में सोनपुर मेले के अवसर पर बिहार प्रांतीय किसान सभा (BPKS) की विधिवत स्थापना की गई। इस गठन का तात्कालिक कारण सरकार द्वारा प्रस्तावित 'बिहार काश्तकारी संशोधन विधेयक' था, जिससे किसानों के अधिकारों पर कुठाराघात होने की संभावना थी। यद्यपि श्री कृष्ण सिंह और राजेंद्र प्रसाद जैसे वरिष्ठ कांग्रेसी नेता भी स्थापना के समय उपस्थित थे, लेकिन संगठन की वास्तविक कमान और दिशा सहजानंद के हाथों में थी।

स्वामीजी ने किसानों को संगठित करने के लिए एक अद्वितीय संचार शैली अपनाई। उन्होंने तुलसीदास की रामायण और महाभारत के रूपकों का प्रयोग करते हुए किसानों को समझाया कि अन्याय के विरुद्ध लड़ना ही सच्चा धर्म है। उन्होंने अपने 'दंड' (सन्यासी की लाठी) को किसान के प्रतिरोध के प्रतीक में बदल दिया। उनका नारा "डंडा हमारा जिंदाबाद" (Long live our stick) पूरे बिहार में गूंजने लगा, जिसका अर्थ था कि जब तक किसानों की लाठी (शक्ति) मजबूत है, कोई उनसे जबरन लगान नहीं वसूल सकता।

संगठन का विस्तार और संरचना BPKS का विस्तार अभूतपूर्व था। 1930 के दशक के मध्य तक, इसकी सदस्यता 2,50,000 से अधिक हो गई थी। संगठन की संरचना गांव से लेकर प्रांत स्तर तक फैली हुई थी:

- ग्राम किसान सभा: सबसे निचली इकाई।
- थाना और जिला किसान सभा: मध्यवर्ती इकाइयाँ जो स्थानीय संघर्षों का नेतृत्व करती थीं।
- प्रांतीय किसान सभा: नीति निर्माण और प्रांतीय सरकार पर दबाव बनाने वाली सर्वोच्च इकाई।

यह संगठन केवल आर्थिक मांगों तक सीमित नहीं था; इसने किसानों में आत्म-सम्मान की भावना जागृत की। जो किसान पहले जमींदार के सामने सिर उठाने की हिम्मत नहीं करते थे, अब वे संगठित होकर अपने अधिकारों की मांग कर रहे थे।

संघर्ष का दौर: बकाश्त आंदोलन (1937–1939)1937 में जब प्रांतीय चुनाव हुए और बिहार में कांग्रेस की सरकार बनी, तो किसानों को उम्मीद थी कि उनके कष्टों का अंत होगा। लेकिन कांग्रेस सरकार ने जमींदारों के साथ समझौता कर लिया, जिसे 'कांग्रेस-जमींदार समझौता' कहा गया। इससे किसान सभा और कांग्रेस के बीच खुली तकरार हो गई। इसके परिणामस्वरूप 'बकाश्त आंदोलन' का जन्म हुआ, जो बिहार के कृषि इतिहास का सबसे उग्र अध्याय है। 'बकाश्त' वह भूमि थी जो जमींदार की 'खास' (निजी) मानी जाती थी, लेकिन जिसे किसान पीढ़ियों से जोत रहे थे। मंदी के दौरान जमींदारों ने लगान न चुका पाने के कारण किसानों को बेदखल कर इन जमीनों पर कब्जा कर लिया था। किसान सभा ने नारा दिया, "जमीन किसकी? जोतने वाले की!"

रेवड़ा सत्याग्रह और यदुनंदन शर्मा

गया जिले का रेवड़ा (Reora) गाँव इस संघर्ष का एक प्रमुख केंद्र बना। यहाँ का नेतृत्व स्वामी सहजानंद के सबसे विश्वसनीय सहयोगी पंडित यदुनंदन शर्मा ने किया। अमावां के राजा ने हजारों बीघा जमीन से किसानों को बेदखल कर दिया था। यदुनंदन शर्मा ने नियामतपुर में अपना आश्रम बनाया और किसानों को संगठित किया। 1938-39 में उन्होंने विशाल सत्याग्रह शुरू किया। रेवड़ा का संघर्ष अपनी अनुशासन और दृढ़ता के लिए जाना गया। यदुनंदन शर्मा के नेतृत्व में किसानों ने जमींदार के लठैतों और पुलिस के दमन के बावजूद विवादित भूमि पर हल चलाया और फसल काटी। स्थिति इतनी गंभीर हो गई कि जिला प्रशासन को हस्तक्षेप करना पड़ा और अंततः किसानों को उनकी जमीन का बड़ा हिस्सा वापस मिला। इस आंदोलन ने यदुनंदन शर्मा को गया जिले का निर्विवाद किसान नेता बना दिया।

बड़हिया ताल और कार्यानंद शर्मा

मुंगेर (वर्तमान लखीसराय) जिले का 'बड़हिया ताल' क्षेत्र एक विशाल जलमग्न इलाका था, जो रबी की फसल के लिए अत्यधिक उपजाऊ था। यहाँ के संघर्ष का नेतृत्व कार्यानंद शर्मा ने किया। बड़हिया का आंदोलन अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक उग्र और जुझारू था। कार्यानंद शर्मा, जो बाद में कम्युनिस्ट पार्टी के एक प्रमुख नेता बने, ने यहाँ वर्ग संघर्ष को तीखा रूप दिया। यहाँ जमींदारों के गुंडों और किसानों के बीच खूनी झड़पें हुईं। बड़हिया ताल संघर्ष (1937-39) की विशेषता यह थी कि इसमें महिलाओं ने भी बड़ी संख्या में भाग लिया। पुलिस के दमन और गिरफ्तारियों के बावजूद, कार्यानंद शर्मा के नेतृत्व में किसानों ने पीछे हटने से इनकार कर दिया। यह आंदोलन बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी की नींव रखने में सहायक सिद्ध हुआ।

अमवारी और राहुल सांकृत्यायन

सारण जिले के अमवारी (Amwari/Ambari) में हुए सत्याग्रह ने किसान आंदोलन को एक बौद्धिक आयाम दिया। यहाँ का नेतृत्व प्रसिद्ध विद्वान, घुमक्कड़ और इतिहासकार राहुल सांकृत्यायन ने किया। 1939 में राहुल जी ने यहाँ के किसानों के साथ मिलकर सत्याग्रह किया।

सत्याग्रह के दौरान, जमींदार के आदमियों ने राहुल सांकृत्यायन पर हमला किया, जिससे वे घायल हो गए। इसके बाद पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और उन्हें छह महीने की जेल हुई। एक महापंडित का लाठी खाना और जेल जाना पूरे देश के बुद्धिजीवी वर्ग के लिए एक झकझोरने वाली घटना थी। जेल में रहकर भी उन्होंने लिखना जारी रखा और साथी कैदियों को शिक्षित किया। अमवारी सत्याग्रह ने यह सिद्ध कर दिया कि किसान आंदोलन केवल अनपढ़ ग्रामीणों का विद्रोह नहीं था, बल्कि इसमें देश के शीर्ष बुद्धिजीवी भी शामिल थे।

विचारधाराओं का संघर्षः गांधी, समाजवाद और मार्क्सवाद

स्वामी सहजानंद की वैचारिक यात्रा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के भीतर चल रहे मंथन का प्रतिबिंब है। उन्होंने परंपरा और आधुनिकता का एक ऐसा मिश्रण तैयार किया जो बिहार के किसानों के लिए सुग्राह्य था।

गीता का क्रांतिकारी पाठः 'गीता हृदय' सहजानंद मार्क्सवादी शब्दावली का उपयोग करने के बावजूद अपनी भारतीय जड़ों से कभी नहीं कटे। उन्होंने 'श्रीमद्भगवद्गीता' की एक नई व्याख्या अपनी पुस्तक 'गीता हृदय' में प्रस्तुत की। उनके अनुसार, गीता केवल मोक्ष का मार्ग नहीं है, बल्कि यह अन्याय के विरुद्ध 'धर्मयुद्ध' का आह्वान है। उन्होंने तर्क दिया कि जमींदारी व्यवस्था 'अधर्म' है, और इसके खिलाफ लड़ना किसान का 'धर्म' है। उन्होंने 'लोकसंग्रह' (जन कल्याण) की अवधारणा को समाजवाद के समकक्ष रखा। इस प्रकार, उन्होंने क्रांति को एक धार्मिक कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया, जिसने ग्रामीण जनता को गहराई से प्रभावित किया।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी _CSP) और कम्युनिस्ट पार्टी (CPI)

1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (CSP) के गठन के बाद, जयप्रकाश नारायण (JP) और सहजानंद के बीच घनिष्ठ संबंध बने। ब्च् ने किसान सभा को कांग्रेस के भीतर वामपंथी आधार प्रदान करने में मदद की। 1936 के आसपास, कम्युनिस्ट पार्टी (जो उस समय अवैध थी) के सदस्य भी किसान सभा में सक्रिय होने लगे।

सहजानंद का झुकाव धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से मार्क्सवाद की ओर होता गया। 1940 के रामगढ़ अधिवेशन में, उन्होंने सुभाष चंद्र बोस के साथ मिलकर 'अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन' (All India Anti-Compromise Conference) आयोजित किया। यह सम्मेलन ब्रिटिश सत्ता और कांग्रेस की नरम नीतियों दोनों के खिलाफ एक खुली चुनौती थी। यहाँ सहजानंद ने स्पष्ट किया कि राजनीतिक स्वतंत्रता के बिना आर्थिक स्वतंत्रता अधूरी है।

जाति और वर्ग का अंतर्विरोध: किसान सभा और त्रिवेणी संघबिहार के सामाजिक इतिहास का एक विडंबनापूर्ण पहलू यह है कि आर्थिक हितों की समानता के बावजूद, किसान सभा और पिछड़ी जातियों का आंदोलन एक नहीं हो सके।

त्रिवेणी संघ का उदय

1930 के दशक में, यादव, कुर्मी और कोयरी जातियों ने मिलकर 'त्रिवेणी संघ' का गठन किया। यह संगठन 'सामाजिक न्याय' और ब्राह्मणवाद के विरोध पर आधारित था। त्रिवेणी संघ का आधार भी वही किसान थे जो किसान सभा का हिस्सा थे, यानी काश्तकार और छोटे किसान।

विलय की विफलता

सिद्धांतत:, किसान सभा (वर्ग संघर्ष) और त्रिवेणी संघ (जाति संघर्ष) को एक साथ आना चाहिए था। लेकिन व्यावहारिक धरातल पर एक गहरी खाई थी। किसान सभा का नेतृत्व मुख्य रूप से भूमिहारों (सहजानंद, यदुनंदन शर्मा, यमुना कार्यजी) के हाथों में था। त्रिवेणी संघ के नेताओं को लगता था कि किसान सभा अंतत: "जनेऊ पहनने वाले" जमींदारों और उच्च वर्ण के लोगों का ही संगठन है।एक प्रसिद्ध किस्सा है कि जब त्रिवेणी संघ के एक नेता, मास्टर केशरी, बिहटा आश्रम में स्वामीजी से मिलने गए, तो उन्होंने देखा कि वहां स्वामीजी को घेरकर बैठे लोग अधिकांश भूमिहार थे। इससे उन्हें अलगाव महसूस हुआ और वे अंधेरे में वहां से खिसक गए। यह 'सांस्कृतिक दूरी' दोनों आंदोलनों के विलय में सबसे बड़ी बाधा बनी। यदि ये दोनों धाराएं मिल जातीं, तो बिहार का इतिहास भिन्न होता।

राष्ट्रीय पटल पर: अखिल भारतीय किसान सभा (AIKS)

बिहार में किसान आंदोलन की सफलता ने इसे राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाई। 11 अप्रैल 1936 को लखनऊ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन के समानांतर अखिल भारतीय किसान सभा (AIKS) की स्थापना हुई। स्वामी सहजानंद इसके पहले अध्यक्ष चुने गए और एन.जी. रंगा (आंध्र प्रदेश) इसके महासचिव बने।

1936 का घोषणापत्र ।प्त्रै ने एक क्रांतिकारी घोषणापत्र (Manifesto) जारी किया, जिसकी मुख्य मांगें थीं:

- जमींदारी प्रथा का पूर्ण उन्मूलन: बिना किसी मुआवजे के।
- किसानों के कर्ज की माफी: साहूकारों के चंगुल से मुक्ति।
- भूमि का पुनर्वितरण: जोतने वाले को जमीन का हक।

1937 में, AIKS ने 'लाल झंडे' को अपने ध्वज के रूप में अपनाया। यह स्पष्ट संकेत था कि किसान आंदोलन अब कांग्रेस के तिरंगे से अलग, एक स्वतंत्र और वामपंथी पहचान बना रहा था।

- 'खेत मजदूर' और अंतिम चरण: सर्वहारा की ओरअपने जीवन के अंतिम दशक में, स्वामी सहजानंद की विचारधारा में एक और महत्वपूर्ण मोड़ आया। उन्होंने महसूस किया कि मध्यम वर्गीय किसान (Middle Peasant), जो अब तक किसान सभा का आधार थे, अक्सर भूमिहीन मजदूरों (दलितों और अति-पिछड़ों) का शोषण करते हैं।

'खेत मजदूर' (1941)

हजारीबाग जेल में लिखी गई अपनी पुस्तक 'खेत मजदूर' में, सहजानंद ने तर्क दिया कि किसान आंदोलन का असली हरावल दस्ता (vanguard) "खेत मजदूर" और "अर्ध-सर्वहारा" ही हो सकते हैं। उन्होंने लिखा: "ये खेत मजदूर ही हैं... जो हमारी सोच के असली किसान हैं... और जिन्हें अंतत: किसान सभा का गठन करना चाहिए।" यह एक बहुत बड़ा वैचारिक बदलाव था। उन्होंने स्वीकार किया कि धनी और मध्यम किसान अक्सर अवसरवादी होते हैं, जबकि भूमिहीन मजदूर ही क्रांति के सच्चे वाहक हैं। इस पुस्तक को भारतीय कृषि समाजशास्त्र में एक मौलिक कृति माना जाता है, क्योंकि इसने पहली बार ग्रामीण वर्ग-विभेद को इतनी स्पष्टता से रेखांकित किया।

कम्युनिस्ट पार्टी से अलगाव और ए.आई.यू.के.एस. (AIUKS)

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान, जब सोवियत संघ युद्ध में शामिल हुआ, तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) ने अंग्रेजों के युद्ध प्रयासों का समर्थन किया (People"s War)। सहजानंद ने भी फासीवाद को हराने के लिए इस नीति का समर्थन किया, जिससे वे समाजवादियों (Socialists) और सुभाष चंद्र बोस के समर्थकों से अलग हो गए। लेकिन 1945 तक आते-आते, सहजानंद को लगा कि CPI किसान सभा का इस्तेमाल अपने संकीर्ण राजनीतिक हितों के लिए कर रही है। 1949 में, अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले, उन्होंने CPI से नाता तोड़ लिया और 'अखिल भारतीय संयुक्त किसान सभा' (All India United Kisan Sabha - AIUKS) का गठन किया। उनका उद्देश्य एक ऐसा मंच बनाना था जो न तो कांग्रेस के अधीन हो और न ही कम्युनिस्ट पार्टी का पिछलग्गू।

26 जून 1950 को मुजफ्फरपुर में स्वामी सहजानंद सरस्वती का निधन हो गया। उनके निधन के साथ ही किसान आंदोलन का सबसे जुझारू अध्याय समाप्त हो गया। लेकिन उनका संघर्ष व्यर्थ नहीं गया। बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 स्वामीजी के दबाव का ही परिणाम था कि स्वतंत्रता के तुरंत बाद, बिहार जमींदारी उन्मूलन कानून पारित करने वाला देश का पहला राज्य बना। 'बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950' ने औपचारिक रूप से जमींदारी प्रथा को समाप्त कर दिया। हालाँकि, दरभंगा महाराज कामेश्वर सिंह जैसे बड़े जमींदारों ने इसे न्यायालय में चुनौती दी (कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य), जिसके कारण भारतीय संविधान में पहला संशोधन करना पड़ा और 'नौवीं अनुसूची' (Ninth Schedule) जोड़ी गई ताकि भूमि सुधार कानूनों को न्यायिक समीक्षा से बचाया जा सके।

कार्यान्वयन की विफलता

- बेनामी हस्तांतरण: जमींदारों ने कानून लागू होने से पहले ही अपनी जमीनें रिश्तेदारों और नौकरों के नाम कर दीं।
- बेदखली: 1946 से 1950 के बीच लाखों बटाईदारों को जमीनों से बेदखल कर दिया गया ताकि वे मालिकाना हक का दावा न कर सकें।
- जातिगत हिंसा: जमींदारी तो गई, लेकिन ग्रामीण बिहार में सामंती मानसिकता बनी रही।

1970 और 1990 के दशक में बिहार में जो नक्सली आंदोलन और जातीय नरसंहार (रणवीर सेना बनाम माओवादी) देखे गए, वे वास्तव में उसी अधूरे भूमि सुधार का परिणाम थे जिसके लिए सहजानंद लड़े थे।

निष्कर्ष

स्वामी सहजानंद सरस्वती और बिहार का किसान आंदोलन भारतीय इतिहास की एक युगांतकारी घटना थी। इसने यह स्थापित किया कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम केवल अंग्रेजों को भगाने तक सीमित नहीं था, बल्कि यह आंतरिक शोषण के खिलाफ भी एक युद्ध था। स्वामीजी ने एक दबे-कुचले, गूंगे किसान समुदाय को आवाज दी। उन्होंने सिखाया कि "अधिकार मांगे नहीं जाते, छीने जाते हैं।" आज भी, जब हम बिहार की राजनीति और समाज को देखते हैं, तो स्वामी सहजानंद की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। उनका जीवन एक सन्यासी का था, कर्म एक योद्धा का, और दृष्टि एक भविष्यद्रष्टा की। जैसा कि इतिहासकार वाल्टर हाउसर ने कहा है, स्वामी सहजानंद ने भारतीय किसान को इतिहास के 'विषय' (subject) से 'कर्ता' (agent) में बदल दिया।

संदर्भ सूची

1. अवस्थी, इ. (2012). स्वामी सहजानंद सरस्वती और किसान आंदोलन. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन.
2. कुमार, क. (2008). बिहार में किसान आंदोलन: एक ऐतिहासिक विश्लेषण. पटना: जानकी प्रकाशन.
3. गुप्त, र. (2015). भारतीय किसान आंदोलन का इतिहास. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन.
4. झा, जे. एस. (2001). आधुनिक बिहार का इतिहास. पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी.
5. त्यागी, ओ. (2010). स्वामी सहजानंद सरस्वती: व्यक्तित्व और विचार. दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.
6. दत्त, र. पी. (2018). आज का भारत (हिंदी अनुवाद). नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस.
7. पांडेय, पी. (2005). स्वतंत्रता संग्राम और किसान चेतना. कानपुर: साहित्य भंडार.
8. मिश्र, जी. (2009). बिहार का किसान आंदोलन और स्वामी सहजानंद. दिल्ली: ग्रंथशिल्पी.
9. राणा, आर. (2017). कृषि क्रांति के पुरोधा: सहजानंद सरस्वती. पटना: बिहार राष्ट्रभाषा परिषद.
10. राय, ए. (2013). स्वामी सहजानंद और उनका युग. कोलकाता: लोकसाहित्य प्रकाशन.
11. शर्मा, एस. (2011). बिहार में जमींदारी प्रथा और किसान संघर्ष. पटना: मगध विश्व विद्यालय प्रेस.
12. सरस्वती, स. (2000). मेरा जीवन संघर्ष (आत्मकथा). पटना: सीताराम आश्रम.
13. सरस्वती, स. (2005). क्रांति और संयुक्त मोर्चा. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
14. सिंह, बी. (2014). औपनिवेशिक बिहार में कृषि संबंध. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स.

बच्चों के सर्वांगीण विकास मे शिक्षा तथा माता-पिता की भागीदारी

डॉ० विवेकानन्द सिंह

निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, गया

अंगद कुमार सिंह

शोधार्थी, शिक्षा विभाग, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, गया

सारांश

शिक्षा का मकसद किसी व्यक्ति की काबिलियत और क्षमता को विकसित करना है, ताकि उसे समाज में एक अच्छी जिंदगी के लिए तैयार किया जा सके। यह जन्म से ही सर्वांगीण विकास, आध्यात्मिक विकास और जीवन भर सीखने पर ध्यान देती है। बच्चे परिवार, दोस्तों और शिक्षकों के साथ बातचीत से सोचने-समझने की स्किल्स सीखते हैं। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य व्यक्तियों का पालन-पोषण करना है, उन्हें रोजमर्रा की जिंदगी के लिए ज्ञान और स्किल्स देना, साथ ही चरित्र और नैतिक मूल्यों को बढ़ावा देना है।

शिक्षा किसी देश की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को बेहतर बनाने और सांस्कृतिक बदलाव लाने के लिए जरूरी है। जहाँ विकसित देश शिक्षा में निवेश करते हैं, वहीं कई दूसरे देशों को भ्रष्टाचार जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो तरक्की को रोकती हैं। छात्रों में अक्सर असल जिंदगी में इस्तेमाल के लिए प्रैक्टिकल स्किल्स की कमी होती है। शिक्षा मुख्य रूप से स्कूलों में दी जाती है, जहाँ शिक्षकों को पढ़ाने के लिए असरदार तरीकों का इस्तेमाल करना चाहिए।

सर्वांगीण विकास में बच्चे के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का पालन-पोषण शामिल है। शिक्षा सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाने और सामाजिक बदलावों के हिसाब से ढलने में मदद करती है, सामाजिक मुद्दों को सुलझाती है और राष्ट्रीय प्रगति सुनिश्चित करती है। एक सभ्य समाज विकास और तरक्की के लिए शिक्षा पर निर्भर करता है।

मुख्य शब्द - शिक्षा, सर्वांगीण विकास, चरित्र और नैतिक मूल्य, शिक्षण, शिक्षकों, समाज, परिवार।

प्रस्तावना

शिक्षा एक व्यक्ति की क्षमताओं और संभावनाओं को कई तरह से विकसित करने की प्रक्रिया है ताकि उसे समाज में एक सार्थक जीवन जीने के लिए तैयार किया जा सके। इस दृष्टिकोण से, शिक्षा का लक्ष्य सर्वांगीण विकास, आध्यात्मिक विकास, और इसी तरह के अन्य विकास हैं। शिक्षा एक आजीवन प्रक्रिया है जो जन्म से शुरू होती है और व्यक्ति के पूरे जीवन तक चलती रहती है। यह निरंतर और लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। बहुत कम उम्र में, बच्चे संज्ञानात्मक क्षमताओं को विकसित करना सीखते हैं जो वे समाज, दोस्तों, परिवार, माता-पिता और शिक्षकों के साथ विभिन्न प्रकार की बातचीत से हासिल करते हैं।

शिक्षा व्यक्तियों के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से निर्देश देने की प्रक्रिया है, जो आज की दुनिया की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को समझने और उनमें भाग लेने के लिए महत्वपूर्ण उपकरण और ज्ञान प्रदान करती है। यह अज्ञानता को दूर करती है और व्यक्तियों के नैतिक मूल्यों को बढ़ाती है। यह चरित्र का निर्माण करती है, मन की शक्ति प्रदान करती है, और ज्ञान बढ़ाती है। यह मानवीय मूल्यों को बनाए रखती है जो व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण में योगदान करते हैं। यह आजीवन सीखने की शुरुआत करती है और चुनौतियों का सामना करने के लिए आत्मविश्वास जगाती है। यह किसी व्यक्ति की स्वास्थ्य समस्याओं को प्रबंधित करने, पोषण और बाल देखभाल में सुधार करने और भविष्य के लिए योजना बनाने की क्षमता को भी बढ़ाती है।

शिक्षा को विश्व स्तर पर एक देश के सामाजिक और आर्थिक सुधार और सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा में बदलाव लाने का सबसे प्रभावी साधन माना जाता है। लोकतांत्रिक परिदृश्य और विश्व दृष्टिकोण दोनों ही अधिक और बेहतर शिक्षा की तत्काल आवश्यकता को दर्शाते हैं, जिसका अर्थ है शिक्षा में गुणात्मक और मात्रात्मक सुधार। कहने का तात्पर्य यह है कि विकसित देश शिक्षा के लिए अधिक से अधिक धन आवंटित करते हैं। आज, हमारे देश में, हालांकि मात्रात्मक सुधार संतोषजनक स्तर तक नहीं पहुंचा है, फिर भी हम शिक्षा के गुणात्मक सुधार के मामले में विकसित देशों से बहुत पीछे हैं। इस समस्या के पीछे कई कारण हैं, जैसे भ्रष्टाचार, जनसंख्या, बेईमानी,

और राजनीतिक व्यवस्था की अस्थिरता, जिसमें कक्षा में अप्रभावी शिक्षण भी शामिल है। आज के माध्यमिक विद्यालयों के छात्र ज्ञान और कौशल से लैस नहीं हैं, वे उन्हें जीवन की विभिन्न आकस्मिकताओं से जोड़ने या अपने दैनिक जीवन में आने वाली समस्याओं के समाधान में उनका प्रभावी ढंग से उपयोग करने में विफल रहते हैं।

शिक्षा को आमतौर पर स्कूल में औपचारिक तरीके से सीखने और ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है, जिसमें एक शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। दुनिया भर में शिक्षण को एक पेशा माना जाता है और शिक्षकों को पेशेवर दर्जा दिया जाता है। पेशेवर होने के नाते, शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे छात्रों में ज्ञान प्रदान करने और आवश्यक कौशल और दृष्टिकोण विकसित करने के लिए सर्वोत्तम प्रथाओं और रणनीतियों का उपयोग करें। देश को अच्छी तरह से प्रशिक्षित और पेशेवर रूप से सक्षम शिक्षकों की जरूरत है और इसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी टीचर ट्रेनिंग संस्थानों पर आती है (हुसैन, 2004)। हालांकि, शिक्षा की प्रक्रिया सिर्फ तब शुरू नहीं होती जब कोई बच्चा पहली बार स्कूल जाता है। शिक्षा की प्रक्रिया सबसे पहले घर पर शुरू होती है। व्यक्ति न सिर्फ शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त करता है, बल्कि माता-पिता, परिवार के सदस्यों और यहाँ तक कि जान-पहचान वालों से भी ज्ञान प्राप्त करता है। शिक्षा को, अपने व्यापक अर्थ में, एक ऐसी प्रक्रिया योजना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो व्यक्तियों को उनके पर्यावरण के साथ प्रभावी ढंग से जीवित रहने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक जानकारी, कौशल और दृष्टिकोण पैदा करती है।

जॉन लॉक के अनुसार, शिक्षा इंसानों को उसी तरह विकसित करती है जैसे कृषि पौधे करते हैं।

ष्शिक्षा एक मुक्तिदायक शक्ति है और हमारे युग में, यह एक लोकतांत्रिक शक्ति भी है जो जाति और वर्ग की बाधाओं को पार करती है और जन्म और अन्य परिस्थितियों द्वारा लगाई गई असमानताओं को दूर करती है।ष् - इंदिरा गांधी

हर बच्चा जन्म के समय अपरिपक्व होता है। उसे सामूहिक जीवन और सामाजिक क्षमता के लिए एक अनुभवी व्यक्ति द्वारा प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। यह शिक्षा की मूल जिम्मेदारी है। रेडडेन के शब्दों में - शिक्षा एक वयस्क पर नाबालिगों द्वारा डाला गया नियोजित प्रभाव है जिसमें मार्गदर्शन और अनुशासन के माध्यम से व्यक्तिगत और सामाजिक जरूरतों के लिए व्यक्ति का शारीरिक, बौद्धिक, सौंदर्य और सामाजिक विकास किया जाता है। बच्चे का विकास स्वाभाविक होना चाहिए, भले ही उसे कोई प्रशिक्षण न दिया जाए, लेकिन पेस्टालोजी के शब्दों में, यदि जमीन को लापरवाही से प्रकृति पर छोड़ दिया जाए तो उसमें केवल खरपतवार और कांटे ही उगेंगे। इसी तरह, यदि हम बच्चे की शिक्षा को केवल प्रकृति पर छोड़ दें तो उसकी इंद्रियों और विचारों का विकास भ्रामक होगा।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि बच्चा फिर भी बढ़ेगा, यह केवल उसके मानसिक और शारीरिक अंगों के विकास के रूप में होगा। इस प्रकार का शारीरिक और मानसिक विकास बच्चे के शारीरिक वातावरण के अनुसार होगा, जिसमें वांछित कौशल और आदतों के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था नहीं होगी। इसलिए, केवल प्राकृतिक विकास ही पर्याप्त नहीं है।

बच्चे के सामंजस्यपूर्ण और सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा की एक सुनियोजित प्रणाली होना जरूरी है। जैसा कि हमने पहले पाया, सिर्फ विकास ही जरूरी नहीं है। यह विकास जीवन के उच्च मूल्यों के वास्तविक अनुभव जैसा होना चाहिए। यह तभी संभव है जब बच्चों का संतुलित, सामंजस्यपूर्ण और सर्वांगीण विकास हो। एकतरफा विकास व्यर्थ होगा। हम ऐसा आक्रामक व्यक्ति नहीं चाहते जो काम करने के बाद सोचे या जो अपनी सभी क्षमताओं को नजरअंदाज करके सिर्फ शरीर के विकास पर ध्यान दे। बच्चे के पूरे व्यक्तित्व का विकास शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक, सौंदर्य संबंधी और आध्यात्मिक, हर दृष्टिकोण से होना चाहिए।

यदि बच्चे के व्यक्तित्व के सभी पहलुओं का एक साथ विकास होता है, तो बच्चों के विकास को सर्वांगीण विकास कहा जाएगा। एक पूर्ण इंसान के निर्माण के लिए इन तीनों के उचित और सामंजस्यपूर्ण मिश्रण की आवश्यकता होती है, जिसमें शिक्षा का वास्तविक अर्थ निहित है। एक पूरी तरह से संतुलित और सर्व-समावेशी शिक्षा वह है जिसमें विकासय शरीर और आत्मा सभी को बातचीत और विकास का पूरा अवसर मिलता है, और उन्हें प्राकृतिक पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह केवल परिवार का सदस्य नहीं है। वह परिवार से बाहर जाता है और बाहरी दुनिया के लोगों के साथ अपने अनुभव साझा करता है। सभी कानून, परंपराएं, दिशानिर्देश और कानून समाज में रहने वाले इसके सदस्यों के लिए हैं। हर समाज के अपने लक्ष्य और परंपराएं होती हैं और उस समाज के सभी सदस्यों को इन परंपराओं का पालन करना होता है। सभी समाजों की अपनी सांस्कृतिक विरासत होती है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रहती है। इस विरासत को संप्रेषित करने के लिए, समाज के सदस्यों को शिक्षित होना चाहिए। स्कूल और घर इस सांस्कृतिक विरासत को संप्रेषित करने में मदद करते हैं, लेकिन समाज स्वयं शिक्षा की एक प्रभावशाली एजेंसी है, समाज की प्रकृति स्थिर नहीं है, यह गतिशील है और बदलती रहती है। समाज में होने वाले परिवर्तनों की स्कूलों और उनके शैक्षिक कार्यक्रमों में बातचीत की आवश्यकता है। रूढ़िवादिता से बचने के लिए, स्कूल ऐसी बातचीत को पहचानता है। स्कूल एक विशेष वातावरण है जिसमें समाज द्वारा दी गई हर चीज को अपनाना और फैलाना होता है, सुरक्षा और संचार समाज को अपनाने के लिए नए मूल्य बनाना है।

भारतीय समाज की शुरुआत से ही सामूहिक जीवन में विश्वास रहा है। और यहाँ का प्राणी सामूहिकता की भावना को महत्वपूर्ण स्थान देता है। हमारी पारिवारिक संरचना संयुक्त रूप में थी और बच्चे के व्यक्तित्व का विकास परिवार में रहने वाले अलग-अलग लोगों के अनुभवों से होता था। यह बच्चा बड़ा होता है और दूसरे ग्रुप्स की एक्टिविटीज में हिस्सा लेता है और साथ ही वह कई ग्रुप्स का मेंबर बन सकता है। ये ग्रुप्स व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं और व्यक्ति का व्यवहार ग्रुप को प्रभावित करता है। स्कूल, जहाँ बच्चा परिवार के बाद जाता है, बच्चे को एक बड़े और बहुआयामी ग्रुप के रूप में सामूहिक जीवन सिखाता है।

शिक्षा समाज में फैली विभिन्न प्रकार की बुराइयों और कुरीतियों को दूर करके एक प्रगतिशील समाज की स्थापना करती है। राष्ट्र की प्रगति, सामाजिक परिवर्तन और मानव संसाधनों के विकास में शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यक्ति और समाज दोनों शिक्षा से जुड़े हुए हैं, शिक्षा के बिना एक सभ्य समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। इसलिए, निम्नलिखित विद्वानों ने अपने शब्दों में व्यक्ति और समाज दोनों के विकास में शिक्षा के अर्थ को परिभाषित किया है।

टी. रेमंड ने कहा है कि शिक्षा विकास की एक प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य बचपन से वयस्कता तक विकसित होता है। जिसके माध्यम से वह धीरे-धीरे खुद को अपने प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल कई तरह से ढालता है।

बोसिंग के अनुसार, शिक्षा का कार्य व्यक्ति को पर्यावरण के अनुकूल इस हद तक बनाना है कि वह व्यक्ति और समाज दोनों के लिए स्थायी संतुष्टि प्राप्त कर सके।

कौटिल्य के अनुसार, शिक्षा मनुष्य को एक योग्य नागरिक बनना सिखाती है और उसके व्यक्तित्व का विकास करती है।

हेंडरसन के अनुसार, यदि शिक्षा केवल सामाजिक विरासत को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाती है, तो यह केवल अतीत को दोहराती है। यदि शिक्षा केवल बच्चों को बढ़ावा देती है और विकसित करती है तो यह सामाजिक विरासत का उल्लंघन करती है। यदि शिक्षा वृद्धि और विकास की एक प्रक्रिया है, यानी एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें सामाजिक विरासत का उपयोग अच्छे और बुद्धिमान पुरुषों और महिलाओं के विकास के लिए एक सामाजिक वातावरण के रूप में किया जा सकता है, तो यह वही शिक्षा प्रक्रिया है जिसे दार्शनिकों और शिक्षा सुधारकों द्वारा समर्थित किया जाता है। यही शिक्षा की सच्ची धारणा है।

टैगोर के अनुसार, शिक्षा वह है जो जीवन की पूरी शक्ति के साथ तालमेल बिठाने की शक्ति देती है।

इस प्रकार, किसी भी समाज या राष्ट्र के उत्थान में शिक्षा के महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुए, यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा की प्रकृति पूरी तरह से व्यवस्थित, व्यावहारिक और लोकतांत्रिक हो।

माता-पिता की भागीदारी

परिवार एक पवित्र और उपयोगी संस्था है जिसमें मनुष्य की सर्वांगीण प्रगति का आधार सहयोग, सहायता और आपसी तालमेल की भावना है। यही भावना वह शक्ति है जिसके बल पर मनुष्य जंगली अवस्था से वर्तमान तक प्रगति करता हुआ आज की सभ्य स्थिति तक पहुँचा है। सहयोग की भावना ही मानव जाति की प्रगति का मूल कारण रही है। एकता, सामाजिकता, मित्रता आदि की सहयोगात्मक शक्ति ने आज मानव सभ्यता को उच्च स्तर पर पहुँचाया है।

पारिवारिक संस्था में, जहाँ पुरुष और स्त्री के आवेग का प्रदर्शन हुआ है, वहीं पूरी संस्था अनुशासन, सेवा, त्याग, सहनशीलता से बंधी हुई है, और इन्हीं पारिवारिक गरिमाओं पर समाज की व्यवस्था, शांति और विकास निर्भर करता है। परिवार में माता-पिता, पुत्र, बहनें, भाई, पति, रिश्तेदार, संबंधी धर्म के आपसी कर्तव्य में बंधे होते हैं। कर्तव्य की भावना मनुष्य में एक-दूसरे के प्रति सद्भावना, सेवा और शुभकामनाएँ उत्पन्न करती है।

माता-पिता के व्यक्तिगत व्यवहार के साथ-साथ पारिवारिक वातावरण भी बच्चों और सदस्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिस घर में लड़ाई-झगड़ा और कलह होता है, उस परिवार के बच्चे और अन्य सदस्य आपसी सहयोग का महत्व नहीं समझ पाते। उनमें स्वार्थ और कलह प्रमुख हो जाएगा।

मनुष्य को परिवार के माध्यम से आत्म-कल्याण की ओर भी बढ़ना चाहिए। समाजवाद, नागरिकता, और सबसे बढ़कर, विश्व मानवता के कल्याण को जगाना चाहिए। वह अपने जैसे दूसरों के लिए त्याग, सहानुभूति, सद्भाव और आत्मीयता का आदी हो सके। मनुष्य की संकीर्णता को दूर करके, उसकी आत्मा का व्यापक विकास होना चाहिए, यही आत्म-कल्याण का राजमार्ग है, एक मनुष्य दूसरों के दुख-दर्द को समझ सकता है, उनके प्रति सहानुभूति रख सकता है, सेवा के लिए तैयार रह सकता है, और उनकी मदद कर सकता है, और ये आत्म-प्रगति के लक्षण हैं।

मनुष्य का सर्वांगीण विकास केवल पारिवारिक जीवन से ही संभव है। परिवार एक व्यक्ति के लिए अपनी सभी भावनाओं और इच्छाओं को पूरी तरह से व्यक्त करने के लिए ऐसी जगह है। परिवार के बिना एक सभ्य समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। परिवार

का प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए सहयोगात्मक रूप से रहता है। परिवार के सदस्य रक्त-संबंधी होने के साथ-साथ भावनात्मक रूप से भी एक-दूसरे से जुड़े होते हैं।

माता-पिता के लगाव के महत्व को समझने के लिए, सबसे पहले, परिवार का अर्थ समझना आवश्यक है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज की वह इकाई जिसमें एक इंसान जन्म लेता है, उसे शुरुआती सुरक्षा मिलती है, जो उसके पालन-पोषण, मार्गदर्शन और दिशा-निर्देश के लिए जिम्मेदार होती है। जहाँ उसे बिना शर्त स्नेह मिलता है और वह अपने परिवार से प्यार करता है, उसे परिवार कहते हैं।

परिवार समाज की एक छोटी इकाई है। जिसके आधार पर एक व्यक्ति अपने अंदर सामाजिक गुण विकसित करके दुर्लभ लाभ प्राप्त करता है। तथ्य के अनुसार, एक महत्वपूर्ण सूत्र सामने आता है, कि परिवार का मतलब सिर्फ पति-पत्नी और कुछ बच्चे नहीं हैं। सिर्फ समान गुण विकसित करके सामाजिक जीवन का अभ्यास संभव नहीं है। इसके लिए, भारतीय प्रणाली का सुखी परिवार, जिसमें कई अलग-अलग प्रकार के व्यक्ति शामिल होते हैं, जिसमें पति-पत्नी, बच्चे, और चाचा, दादा, चाची, मौसी, भतीजे, भतीजी आदि शामिल हैं।

परिवार अपने सदस्यों के बीच गुणों, कार्यों और स्वभाव के सुंदर विकास में कैसे संस्कारित होता है। दूसरों को उनके दुखद कार्यों, रास्ते में उनके बुरे कामों, और क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, स्वार्थ, दृढ़ता, असहिष्णुता आदि के दोषों को बदलकर, उनकी जगह सद्गुण, कोमलता, प्रेम, आपसी एकता, उदारता, मिठास और खुशी के बीज बोकर उन्हें संस्कारित करना है।

परिवार के सदस्यों को गुणी, सज्जन और संस्कारी बनाने के लिए, उन्हें पहले खुद को गुणी, सदाचारी और संस्कारी बनाना होगा, अन्यथा इस उद्देश्य के लिए दिए गए मौखिक उपदेश व्यर्थ होंगे और उनका कोई असर नहीं होगा। उनका व्यवहार और जीवन शैली इस तरह होनी चाहिए कि परिवार खुद उन्हें फॉलो करने के लिए प्रेरित हो।

बच्चे का अंतिम संस्कार करना परिवार की जिम्मेदारी है। परिवार वह जगह है जो बच्चे में मानवीय मूल्य डालने का काम करती है। बच्चे के जन्म के बाद, माता-पिता में लगाव विकसित होता है। बच्चे के समाजीकरण में परिवार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह ज्ञात है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से पूरी तरह अलग होता है। उनका मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक और भावनात्मक स्तर अन्य व्यक्तियों से पूरी तरह अलग होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अद्वितीय होता है और यह विशिष्टता उसे अपने माता-पिता की भागीदारी और सांस्कृतिक संक्रमण से भी प्राप्त होती है। बच्चा अपने परिवार का अनुसरण करके सीखता है और उनका पालन करता है।

परिवार में मौजूद लोगों, मुख्य रूप से माता-पिता के व्यवहार, माता-पिता की शिक्षा का स्तर, माता-पिता का वित्तीय स्तर, माता-पिता द्वारा दिया गया स्नेह या उपेक्षा का बच्चे के मन पर गहरा और स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

परिवार बच्चे का पहला स्कूल होता है। माँ उसकी पहली टीचर होती है। जो गुण बच्चा अपने गार्जियन से सीखता है, उन्हें संस्कार कहते हैं। ये संस्कार गाँव और शहरों में अलग-अलग होते हैं, इसलिए शिक्षा पर इसका बुरा असर पड़ना स्वाभाविक है। इस संस्कृति से आपसी समझ भी विकसित होती है। छात्र को अपनी तेज बुद्धि से हर क्षेत्र में खुद को एडजस्ट करना होता है, क्योंकि एडजस्टमेंट की प्रक्रिया जिंदगी भर चलती रहती है। छात्र का व्यवहार न सिर्फ उसके क्षेत्र से जुड़े नजरिए से, बल्कि उसके आस-पास के लोगों के आपसी व्यवहार से भी गाइड होता है। साथ ही, माता-पिता का छात्र के प्रति नजरिया भी उसके व्यवहार पर असर डालता है। माता-पिता और दूसरे क्षेत्रीय लोगों के व्यवहार के साथ-साथ घर की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का भी छात्र पर असर पड़ता है। अगर घर में ईमानदारी, सहनशीलता, सहयोग जैसी भावनाएँ हैं, तो छात्र भी खुद को उन्हीं नैतिक मूल्यों के अनुसार ढालने की कोशिश करेगा। जब माता-पिता अपनी सभी जिम्मेदारियाँ निभाते हैं, तो छात्र का सर्वांगीण विकास होता है। इस विषय में छात्रों के विचार जानना बहुत जरूरी है कि उनका इलाका या समाज उनकी शिक्षा में कितना साथ देता है। ये समस्याएँ इंसान की बनाई हुई हैंय इसलिए, छात्रों के मन को समझे बिना इनका समाधान मुश्किल है।

किशोरों की शिक्षा में माता-पिता की भागीदारी के महत्व को बार-बार छात्रों की स्कूल की उपलब्धि में योगदान देने वाले एक बुनियादी कारक के रूप में पहचाना गया है। माता-पिता की भागीदारी छात्र की शिक्षा में माता-पिता की सक्रिय भागीदारी है। यह भागीदारी माता-पिता द्वारा बच्चों के मानसिक और शैक्षिक विकास के लिए अपनी जिम्मेदारी के एक प्रमुख पहलू के रूप में शुरू की जाती है और इससे छात्र के सामाजिक कौशल और शैक्षणिक उपलब्धि पर असर पड़ने की संभावना है।

संदर्भ ग्रंथ

1. Choudhary, Poonam & Madhuri (2014). Social Maturity of Adolescents in Relation to their gender and locality: A comparative analysis. An International Peer Reviewed & Referred, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language, Vol. I, Issue VI, Oct.-Nov. 2014, www.srjis.com, pp. 928-933.
2. Dania, J. Et al (2014). Effective Behavior During Mother-Datar Confilkit and Borderline Personality Disorder Severity Acres Adolescence. NIH Public Access, Personal Disorder, 5 (1), 88-96.
3. Daulata, Rani (2008), Impact of Home Environment on the Scholastics Achievement of Children, J. Hum Ecol., 23 (1), pp. 75-77.
4. Daw and Hammoud (2015). The Effect of Building Up Self-esteem Training on Students' Social and Academic Skills, Procedia- Social and Behavioral Sciences 190, shodhganga.
5. Deb, Sibnath, and others (2015). Role of Home Environment, Parental Care, Parents Personality, and Their Relationship to Adolescent Mental Health. J. Psychol Psychother, Psychology and Psychotherapy, Volume-5, Issue-6, pp. 1-8.
6. Dekker et. al. (2014). A randomized controlled study of social skills training for preadolescent children with autism p spectrum disorders, published online July 2, http://www.nebi.nlm.gov/pmc.
7. Del Prette et. al. (2012). To differentiate between social skills and social competence. Research Gate: Paidcia, 25(60); 9-17.
8. Deshwal, Y. S., Rekharani & Ahlawat, Savita (2014). Impact of Home Environment on Academic Achievement of Adolescent Students in Relation to Their Local and Type of School, Indian International Journal of Education and Research, 1 (3), pp. 42-49.
9. Devi, Mukesh (2015). Study of emotional intelligence general well-being and academic achievement among social skills deficient and non-deficient school students P.Hd. Maharshi Dayanand University.

मौर्यकाल में धातु निर्माण प्रौधोगिकी का विकास

शशिकला भारती

शोध छात्रा, स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध सरांश

धातु का प्रयोग मानव जीवन में क्रांतिकारी बदलाव था। धातु के बने कृषि उपकरण, अस्त्र-शस्त्र, मुद्रा आदि के प्रचलन से मानव जीवन को क्रांतिकारी परिवर्ळान संभव हो पाया। भारत धातु विज्ञान और तकनीकी के मामले में प्राचीनकाल से हीं अब्बल रहा है। भारत का सबसे प्राचीनतम सभ्यता सिंधु सभ्यता कांस्ययुगीन सभ्यता होना हीं धातु विज्ञान के क्षेत्र में सी विकसित होने का प्रमाण मात्र काफी हैं। वैदिक सभ्यता में धातु के अयस्कों का नाम, खनन, धातु के औजार, धातु के आभूषण आदि का विस्तृत उल्लेख मिलता है। कृष्ण यजुर्वेद वैदिक ग्रंथ में पहली बार कुछ अन्य धातुओं जैसे-लौह (श्याम), लेड (सीसा) और टीन का उल्लेख आता है। मौर्यकाल में व्यवस्थित और संस्थागत रूप यानि विभागों व मंत्रालयों की स्थापना कर से धातु विज्ञान और तकनीकी के विकास का प्रयास किया। सर्वप्रथम धातु के वैज्ञानिक दोहन के लिए खनन व्यवसाय को राज्य के नियंत्रण में दे दिया, फिर खनन के लिए 'अकराध्यक्ष' नामक अधिकारी को जिम्मेवारी के साथ नियुक्त किया। अकराध्यक्ष यानि खनन मंत्री उसी को नियुक्त करता था, जो धातु विज्ञान के ज्ञाता हो, विशेषज्ञ हो, धातु के स्त्रोत के विषय में पता हो, धातु के रंग के आधार पर पहचानने का गुण हो। लौह धातु के विकास के लिए 'लौहाध्यक्ष' को नियुक्त किया था। मौर्यकाल में 'वुड्ज इस्पात' के बने औजारों की माँग विदेशों में काफी अधिक थी, विश्व प्रसिद्ध थी, भारत में निर्मित लौह धातु के बने तलवार से सिंकन्दर काफी प्रभावित थे और राजा पोरस से लौह धातु व इस्पात को उपहार स्वरूप माँग किया था।

शब्द कुंजी- लौह धातु, अकाराध्यक्ष, लौहाध्यक्ष, कांस्ययुगीन सभ्यता, वृड्ज इस्पात, कृषि औजार, आभूषण, मुद्रा।

भूमिका:

मानव सभ्यता के इतिहास में सर्वप्रथम प्रौधोगिकी के रूप में पत्थर के औजारों का प्रयोग किया। आदि मानव ने पत्थरों को तोड़कर, छिलकर, चिकनाकर घारदार बनाया, जिससे पत्थरों को प्रयोग शिकार करने, जानवरों को काटने-छिलने तथा अन्य कार्य में किया। मनुष्य नवपषाण युग से निकलकर धातु का प्रयोग करना सीखा तो मानव सर्वप्रथम ताम्रधातु से परिचित हुआ और वह युग ताम्रपषाण युग कहलाया। धीरे-धीरे अन्य धातु कांस्य, लौह आदि धातु से परिचित हुआ। मनुष्य ने धातु को गलाने, धातु निर्माण करने की तकनीक से परिचित होने के बाद मानव के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। कृषि, वाणिज्य-व्यापार, परिवहन क्षेत्रो में धातु निर्माण प्रौधोगिकी के कारण काफी विकास हुआ।

हड़प्पा सभयता:- प्राचीन भारतीय इतिहास में धातु निर्माण का प्रौधोगिकी काफी उन्नति कर ली थी। धातु निर्माण प्रौधोगिकी स्वदेशी तकनीक पर आधारित था। अगर भारत का सबसे प्राचीनतम सभ्यता सिंधुधाटी सभ्यता में धातु निर्माण प्रौधोगिकी का अवलोकन करते है, तो पुराळात्विक साक्ष्यों के आधार पर कह सकते है कि धातु निर्माण प्रौधोगिकी काफी विकसित होने के कारण सिंधु सभ्यता एक कांस्ययुगीन सभ्यता, एक शहरी सभ्यता के रूप में विकसित हुआ था। कांस्य प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले तांबे को गलाकर टीन, आर्सेनिक तथा अन्य धातुओं के साथ मिश्रित करके बनाया गया था। कांस्य धातु में ताँबा, टीन, तथा अन्य धातुओं की अनुपात उतना हीं रखा गया था, जितना आज भी रखी जाती है, जो आश्चर्य की बात है कि उस समय धातु निर्माण प्रौधोगिकी काफी विकसित अवस्था में था।[1]

वैदिक काल:-वैदिक काल में धातु निर्माण प्रौधोगिकी और भी अधिक प्रगति की। इस युग में धातु निर्माण के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि लौह धातु निर्माण प्रौधोगिकी का विकास है। लौह धातु के आविष्कार के कारण और परिवहन के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ और छठी शताब्दी ई0पू0 तक लौह तकनीक के पूर्ण विकास के कारण अनेक नये-नये शहरों का उदय हुआ। कृषि औजार, कुल्हाड़ी, हथौरी, हल, रथ और बैलगाड़ी पहिए के रिंग बननें शुरू हुए, जिससे मानव की गतिविधियों में तेजी आई।[2]

मौर्यकाल:- मौर्यकाल में धातु विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में काफी प्रगति की। धातु प्रौधोगिकी को और अधिक उन्नत बनाने के लिए कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र में स्पष्ट निर्देश दिया, क्योंकि खनिज सम्पदा या धातु प्रौधोगिकी मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार था। उन्होंने साफ स्पष्ट कर दिया कि खनिज सम्पदा राज्य के नियंत्रण में है और यह कोई निजी उद्यम नहीं है। उस समय 12 प्रकार की धातुओं की उत्खनन खदानों से करने का उल्लेख मिलता हैं।[3] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में खदानों अर्थात् खनिज संपदा के स्त्रोत खनिज सम्पदा भूगर्भ में मिलने के संकेत, उसके भंडारों के विषय में विस्तृत विवरण मिलता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 2 प्रकार

के खदानों का उल्लेख मिलता है। प्रथम-भूमि खदान, जिससे सोना, चाँदी, ताँबा, सीसा, नमक आदि का उत्खनन किया जाता था, दूसरा-समुद्री या जलीय खदान, जहां से शंख, मोती तथा अन्य खनिज प्राप्त करते थे।[4] यानि अर्थशास्त्र नें खनिजों में सोना, चाँदी, हीरे, रत्न, मूंगा, शंख, विभिन्न धातु (लोहा, तांबा आदि), नामक तथा पृथ्वी के चट्टानों से मिलने वाले तरल पदार्थो को खानों के दायरे में आने वाली सामग्री के रूप में मान्यता दी गई थी। मौर्यकाल में खदानों की उत्खनन संबंधी निगरानी के लिए 'आकाराध्यक्ष' (खदान का अध्यक्ष) अधिकारी की नियुक्त किया था। खदान निदेशक व आकाराध्यक्ष ऐसे लोगों का नियुक्त किया जाता था, जो धातु विशेषज्ञ हो।[5] कौटिल्य के अनुसार 'आकाराध्यक्ष' उसी को नियुक्त किया था, जिसे धातुशास्त्र व रसायनशास्त्र का अच्छा ज्ञान हो। अकाराध्यक्ष और उसके अधीनस्थ अधिकारी लोहाध्यक्ष, लवणाध्यक्ष, स्वर्णाध्यक्ष आदि भूमि के गड्ढे के रिसाव के रंग के आधार पर विभिन्न धातु के खदानों का आकलन करते थे। अर्थशास्त्र में मिट्टी के रंग के आधार पर भी मिट्टी के भीतर संभावित खादानों के पहचान का उल्लेख मिलता है,[6] जैसे-अगर मिट्टी का भारीपन हो तथा लालिमा लिए हो, तो वहाँ लोहे की खान होने की संभावना होती थी, जो भूमि ऊसर जमीन की भांति कुछ सफेदी लिए हो अथवा पके हुए ढेले रंग का हो, वहां सीसा की खान होने की संभावना होनी चाहिए। जिस पहाड़ों व जंगलों में तेज गंध निकलती हो, तो वहाँ शिलाजीत की उत्पळ्ि स्थल हो सकती है। इसी प्रकार कपूर, फिटकरी, अलसी का फूल आदि रंग वाली मिट्टियों में चाँदी होने की संभावना होती थी। इसी प्रकार अन्य धातुओं की खोज, भूमि के रंग और निकलने वाले तेज गंध के आधार पर खदानों की खोज, धातु को खोज निकालने की तकनीक विकसित हो पाया था।[7] इस प्रकार खदानों के खोज के लिए वैज्ञानिक मापदंड स्थापित होने के कारण मौर्यकाल में खदानों की प्रचुरता थी, जिसके कारण खदानों से सम्बंधित उद्योगों का काफी विकास हुआ। इतना हीं नहीं अर्थशास्त्र में धातु अयस्कों से अशुद्धियों को मुक्त करने व हटाने तथा इसके लिए उच्च ताप पर गर्म करने पिघलाने, ढाँलने, गर्म कर पीटने आदि का भी उल्लेख मिलता है।[8] मौर्यकाल में तांबा, कांसा, पीतल, सोना, चाँदी आदि धातुओं का प्रयोग व्यवहारिक जीवन में किया जाता था। तांबा, कांसा धातु के बर्त्तन हड़प्पा और वैदिक काल से होते आ रहे थे, लेकिन मौर्यकाल में हिन्दू और बौद्ध धर्मावलंबी के द्वारा ताँबें, कांसे और पीतल बर्त्तन का प्रयोग पूजा-पाठ व धार्मिक किया-कलापों में अधिक होने लगा था। तांबे में जस्ता के मिलानें से पीतल नामक मिश्रधातु का निर्माण होता है। मौर्यकाल में अधिकांश रसोई बर्त्तन तांबे, कांसे, पीतल के बने होते थे। यूनानी विद्वान स्ट्रोबो ने लिखा है कि भारत में अतिथियों के आगमन पर तांबे के ग्लास में पानी भरकर पीने देते थे और तांबे के थालों में दीप जलाकर उसका आरती उतारते थे या स्वागत करते थे।[9] मौर्य काल में तांबे के कील बनते थे। स्तम्भों पर पशु आकृति को जोड़ने के लिए तांबे के कील का प्रयोग करते थे। अशोक मौर्य काल में निर्मित रामपुरवा स्तम्भ के शीर्ष पर स्थापित सिंह को तांबे के एक ठोस कील से जोड़ा गया है।[10]

मुद्रा निर्माणः- घरेलू और पूजा-पाठ के बर्ळ्तन के अलावें तांबे, कांसे के धातु मुद्रा भी बनाये जाते थे। मौर्य काल में पहली बार धातु को गलाकर 'आहत' व 'पंचमार्क' सिक्कें बनाने शुरू हुए। इससे पूर्व धातु मुद्रा का प्रचलन नहीं था। मौर्यकालीन सिक्का 'काकणी' और 'भाषक' तांबा धातु के बनाये जाते थे। तक्षशिला और पाटलिपुत्रा से प्राप्त पंचमार्क व आहत सिक्कें का विश्लेषण करने के बाद निष्कर्ष निकला है कि सिक्कें में 75 प्रतिशत तांबा और 25 प्रतिशत अन्य धातु मिला हुआ था।[11]

स्वर्णधातुः- मौर्यकाल में स्वर्णभूषण उद्योग का काफी विकास हुआ। स्वर्ण व्यवसाय तथा स्वर्ण खदानों की निगरानी के लिए 'सुवर्णाध्यक्ष' की नियुक्ति की गई थी। सुवर्णाध्यक्ष स्वर्ण को परखने तथा आभूषणों में मिलावट को रोकने का दायित्व था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में खोटेपन के पहचान के विषय में उल्लेख मिलता है कि स्वर्णाभूषण को आग में तपाने के बाद आभूषण के प्रत्येक खंड में एक जैसा पीलापन रंग हो तो शुद्ध माना जाता है। इसके विपरीत तपाने पर आभूषण से नालिम उत्पन्न हो तो स्वर्ण में अन्य धातुओं के मिलाकर माना जाता था। स्वर्णकार स्वर्ण आभूषण पर अलंकरण करते समय मणियों व रत्नों को जोड़ने में पारंगत थे। अर्थशास्त्र में खनिज रत्नों सामान्य नामों का वर्णन किया है, जैसे-लाल, सौंगधिक, हरा, वैदूर्य, नीले, इंद्र, नील और रंगहीन स्फटिक। अर्थशास्त्र में मणिधातु या रत्न खनिजों को स्पष्ट पारदर्शी, चिकना, चमकदार, ठंडा, कठोर और हल्के रंग का बताया गया है। उत्कृष्ट मोती, रत्नों को बड़ा गोल, सपाट सतह वाला चमकदार चिकना होना चाहिए। अर्थशास्त्र में कई प्रकार के रत्नों का उल्लेख किए है। जिनके रंग चमक या उत्पळ्ि के स्थान के नामों का उल्लेख किए है। स्वर्ण धातु के निगरानी, मिलावट रोकने के लिए स्वर्ण धातु का पता लगाने के लिए सुर्वणाध्यक्ष होता था। स्वर्ण धातु का प्रौधोगिकी की काफी उन्नत थी। तत्कालीन ग्रंथों अर्थशास्त्र, अंगुळारनिकाय से स्वर्णकार द्वारा स्वर्णधातु को शोधित किए जाने का सन्दर्भ प्राप्त होता है। तत्कालीन स्वर्णाभूषण के तौर पर शिरोभूषण, कण्ठहार, कुण्डल, मुद्रिका, हस्तायरण, स्वर्ण मुद्रा-निष्क, हिरण्य आदि तथा सोने और चाँदी के जरदारी कपड़े, स्थापत्य कला में जड़ित स्वर्ण से तत्कालीन धातु प्रौधोगिकी की उन्नति को दर्शाती है।

चाँदी धातुः- चाँदी धातु कर्म प्रौधोगिकी के शोधन प्रक्रिया में चाँदी की पहचान श्वेत, स्निग्ध एवं मुलायम चाँदी सर्वोळाम मानी जाती है। इसके विपरीत काली, रूक्ष, खरखरी एवं फटी हुई चाँदी खराब होती है। चाँदी के पात्रों व सामग्री के तौर पर थाली, ग्लास, कैंची, आभूषण, मुद्रा, आदि तत्कालीन समाज में प्रचलन में होने का संकेत मिलता है। लौह धातु के औजार छुरी, कैची, तराजू, बाण, बर्छा, तलवार, कवच, हथौड़ा, आरी, कुल्हाड़ी, कील आदि बनते थे। लौह वस्तुओं के निर्माण में अयोधनन या तापकुट्टम (फौर्जिग) एवं द्रुतशीतलन (क्वेन्चिंग) विधि को प्रयोग में लाया जाता था। लोहाध्यक्ष के निगरानी में उन्नत धातु औजारों का निर्माण होता था।

निर्ष्कषः-

मौर्यकाल में धातु निर्माण प्रौधोगिकी में काफी प्रगति हुई थी। तत्कालीन ग्रंथों कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र, विदेशी यात्री-मेगास्थनीज के इंडिका, स्ट्रौबो, एरियन आदि के ग्रंथों से संकेत मिलता है कि मौर्यकाल में धातु निर्माण प्रौधोगिकी में काफी उन्नति हुई थी। अर्थशास्त्र सबसे पहला भारतीय ग्रंथ है, जो धातु अयस्कों और अन्य खनिजों से संबंधित विशेषताओं के विषय में जानकारी मिलती है। धातु निर्माण तकनीक की निगरानी के लिए 'अकाराध्यक्ष' की नियुक्ति किया गया था। विभिन्न धातु के निगरानी के लिए फिर अलग-अलग अधिकारी 'स्वर्णाध्यक्ष', 'लोहाध्यक्ष' आदि की नियुक्ति किया गया था। ऐसे अधिकारी धातु के विशेषज्ञ होते थे। उसी के निगरानी में नये खानों का पता लगाने, धातु का उत्खनन, औजारों के निर्माण, आभूषणों के निर्माण होता था। यानि भारत में प्रथम बार विभागों व मंत्रालयों की स्थापना कर धातु निर्माण अद्योग को विकसित करने का प्रयास किया। सभी विभागों में अलग-अलग मंत्री व विशेषज्ञ हों, को नियुक्त किया गया, उसे अलग-अलग धातु उद्योग को विकसित करने की जिम्मेवारी दी गई। तत्कालीन भारत में लोहे व स्टील के अस्त्र-शस्त्र निर्माण के लिए प्रसिद्ध थे। भारतीय वुट्ज इस्पात के बने तलवार विश्व प्रसिद्ध थे। यहां तक कि सिकन्दर ने उपहारस्वरूप 15 सेर स्टील ओर उसके बने तलवार की माँग की थी।

मौर्यकाल में धातु विज्ञान के उल्लेखनीय प्रगति के कारण युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों, कृषि के उपकरणों का निर्माण हो पाया। धातु विज्ञान की प्रगति के कारण प्रथम बार भारत में मुद्रा का प्रचलन हो पाया था। मौर्यकाल में लोहे के बने कुल्हाड़ी से कृषि क्षेत्र में काफी विस्तार हुआ।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. प्रतीक गौरव, प्राचीन भारत में विज्ञान, नौवल्टी प्रकाशन, पटना, पृ0-109
2. हिमांशु शेखर, प्राचीन भारत में विज्ञान एवं प्रौधोगिकी, बीएफसी प्रकाशन, लखनऊ- 2024, पृ0-76 - 79
3. पूर्वोक्त, पृ0 - 58
4. पूर्वोक्त
5. अर्थशास्त्र 2/12 - 13
6. कैटिल्य, अर्थशास्त्र (व्याख्याकार), वाचस्पति गैरोल, चौखाम्बा, वाराणसी, 2017 अध्याय-2, अधिकरण-12, प्रकरण- 1-28
7. पूर्वोक्त
8. सत्यप्रकाश, वैज्ञानिक विकास की भारतीय परंपरा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना - 1999 पृ0- 110-16
9. हिमांशु शेखर, पूर्वोक्त, पृ0- 60
10. एस0 एन0 सेन, विज्ञान का इतिहास, भाग - 2, (हिन्दी अनु0) भूपेन्द्र नाथ सन्याल, हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2016, पृ0 - 127
11. हिमांशु शेखर, पूर्वोक्त, पृ0- 60

स्मृति, परंपरा और इतिहासः जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों में सांस्कृतिक चेतना

डॉ० प्रभात शर्मा

ऐसोसिएट प्रोफेसर, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

शोध संक्षेप

जगदीशचंद्र माथुर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। उनके नाटक वास्तविक अर्थों में स्मृति, परंपरा और इतिहास के पारस्परिक संबंधों के माध्यम से भारतीय सांस्कृतिक चेतना का विश्लेषण करते हैं। माथुर जी इतिहास को केवल अतीत की घटनाओं के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक स्मृति के रूप में ग्रहण करते हैं, जहाँ पुराण और मिथक ऐतिहासिक बोध को गहन और अर्थवान बनाते हैं। उनके नाटकों में परंपरा जड़ नहीं, बल्कि परिवर्तनशील और संवादात्मक रूप में उपस्थित है, जो समकालीन मनुष्य की नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक चिंताओं से जुड़ती है। यह अध्ययन दर्शाता है कि माथुर जी के लिए इतिहास तथ्यात्मक पुनर्निर्माण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आत्मबोध का माध्यम है। स्मृति के सहारे वे अतीत और वर्तमान के बीच सेतु निर्मित करते हैं तथा भारतीय जीवन-दृष्टि की निरंतरता को नाट्य-रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार जगदीशचंद्र माथुर के नाटक भारतीय सांस्कृतिक चेतना के ऐसे दस्तावेज बन जाते हैं, जिनमें परंपरा और आधुनिकता का सृजनात्मक समन्वय दिखाई देता है।

बीज शब्दः स्मृति, परंपरा, इतिहास-बोध, मिथक, भारतीय सांस्कृतिक चेतना, ऐतिहासिक नाटक, नाट्य-दृष्टि।

प्रस्तावना

हिंदी नाट्य साहित्य की विकास यात्रा में इतिहास और रंगमंच का रिश्ता अत्यंत गहरा और बहुआयामी रहा है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के युग से जिस ऐतिहासिक चेतना का उदय हुआ, वह मात्र अतीत का गुणगान नहीं था, बल्कि औपनिवेशिक गुलामी के विरुद्ध एक सांस्कृतिक प्रतिरोध की तरह था। यह परंपरा जयशंकर प्रसाद के नाटकों में अपनी कलात्मक ऊंचाइयों और दार्शनिक गहराई को स्पर्श करती है। प्रसाद ने इतिहास को एक भव्य फलक दिया, जहाँ अतीत का गौरव और वर्तमान की वेदना एक साथ साँस लेते हैं। किंतु, प्रसाद के बाद जिस नाटककार ने हिंदी रंगमंच को रोमानी कुहासे और भावुकता के आवरण से बाहर निकालकर 'बौद्धिक यथार्थ' और 'सांस्कृतिक आत्मालोचन' की ठोस जमीन पर खड़ा किया, वे निस्संदेह जगदीशचंद्र माथुर हैं।

माथुर जी के यहाँ इतिहास, राज-रजवाड़ों के उत्थान-पतन या युद्धों की अनुगूँजों का लेखा-जोखा नहीं है। उनके लिए इतिहास एक 'जीवंत सांस्कृतिक प्रक्रिया' है। वे अतीत की ओर किसी 'नॉस्टैल्जिया' या मोह के कारण नहीं लौटते, और न ही उनका उद्देश्य गड़े मुर्दे उखाड़कर केवल राष्ट्रीय गर्व का प्रदर्शन करना है। इसके विपरीत, उनका इतिहास-बोध वर्तमान की जटिलताओं से मुठभेड़ करता है और भविष्य के लिए अनुत्तरित प्रश्न छोड़ जाता है। उनके नाटकों में इतिहास एक संवेदनशील अनुभव बनकर आता है- एक ऐसा अनुभव जहाँ लोक-स्मृति, नैतिक द्वंद्व और युगीन सांस्कृतिक उत्तरदायित्व एक ही बिंदु पर आकर मिलते हैं।

जगदीशचंद्र माथुर मूलतः 'संस्कृति के नाटककार' हैं। उनका संपूर्ण रचनात्मक व्यक्तित्व और उनका लेखन, अतीत की धुंधली होती स्मृतियों और वर्तमान के कठोर यथार्थ के बीच एक संवाद-सेतु निर्मित करने का अनवरत संघर्ष है। जब वे नाट्य-लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हुए, तब भारत राजनीतिक रूप से तो स्वतंत्र हो चुका था, लेकिन अपनी सांस्कृतिक आत्म-पहचान को लेकर एक गहरे द्वंद्व में फंसा था। राष्ट्र-निर्माण के उस संक्रमण काल में यह प्रश्न केंद्रीय था कि आधुनिक भारत अपनी सहस्राब्दियों पुरानी परंपरा से किस प्रकार का रिश्ता रखे? क्या उसे नकार दे, या उसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार ले?

ऐसे समय में माथुर के नाटकों ने एक नई दृष्टि दी। उन्होंने दिखाया कि इतिहास को सत्ता के गलियारों से नहीं, बल्कि समाज की 'स्मृति' के आलोक में देखा जाना चाहिए।[1] 'कोणार्क' (1951) से लेकर अपनी अंतिम रचनाओं तक, उन्होंने भारतीय इतिहास और पुराणों के उन प्रसंगों को चुना जो केवल सत्ता परिवर्तन की कहानी नहीं कहते, बल्कि भारतीय जनमानस के गहरे सांस्कृतिक सातत्य का बोध कराते हैं। उनकी दृष्टि न तो एकांगी मार्क्सवादी है जो परंपरा को केवल शोषण का यंत्र माने, और न ही यह पुनरुत्थानवादी है जो अतीत को ही अंतिम सत्य मान ले। उनकी दृष्टि मूलतः मानवीय और सांस्कृतिक है। सुप्रसिद्ध आलोचक नेमिचंद्र जैन ने ठीक ही रेखांकित किया है कि "माथुर के नाटकों में इतिहास एक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सक्रिय चरित्र है जो वर्तमान को लगातार चुनौती देता है।"[1]

भारतीय संस्कृतिः इतिहास, स्मृति और परंपरा

जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों की वैचारिक संरचना को समझने के लिए भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में इतिहास, स्मृति और परंपरा की अवधारणाओं पर विचार करना अनिवार्य है। भारतीय इतिहास-बोध पश्चिमी इतिहास-दृष्टि से भिन्न रहा है। पश्चिम में इतिहास प्रायः घटनाओं के कालक्रम, तिथियों और कारण-कार्य संबंधों के रूप में समझा गया है, जबकि भारतीय परंपरा में इतिहास एक अनुभूत सत्य है, जो स्मृति और मूल्य-बोध के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रवाहित होता है। 'इतिहास-पुराण' का संयुक्त प्रयोग इस सांस्कृतिक दृष्टि का प्रमाण है, जहाँ इतिहास केवल तथ्य नहीं, बल्कि समाज की आत्म-स्मृति का रूप ले लेता है।

भारतीय बौद्धिक परंपरा में अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच कोई कठोर विभाजन नहीं है। यहाँ समय रैखिक न होकर चक्रीय है।[2] अतीत समाप्त नहीं होता, बल्कि वह वर्तमान की चेतना में निरंतर सक्रिय रहता है। यही कारण है कि भारतीय समाज में मिथक और पुराण आज भी केवल धार्मिक आस्थाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक आचार, नैतिक निर्णय और सांस्कृतिक व्यवहार को प्रभावित करते हैं। जगदीशचंद्र माथुर इसी जीवंत इतिहास-बोध को अपने नाटकों में रूपायित करते हैं। उनके यहाँ अतीत किसी संग्रहालय की वस्तु नहीं, बल्कि वर्तमान के आत्मबोध का स्रोत है।

माथुर के नाटकों में 'स्मृति' का अर्थ व्यक्तिगत अनुभव या निजी यादों तक सीमित नहीं है। यह समाज की सामूहिक चेतना है, जिसमें संघर्ष, पीड़ा, नैतिक द्वंद्व और सांस्कृतिक अनुभव संचित रहते हैं। स्मृति उनके यहाँ इतिहास को मानवीय बनाती है। 'कोणार्क' में मंदिर-निर्माण का प्रसंग स्थापत्य इतिहास से अधिक कला, श्रम और सत्ता के संबंधों पर प्रकाश डालता है। यह इतिहास किताबों में दर्ज तथ्यों का नहीं, बल्कि उन अनाम शिल्पियों की स्मृति का इतिहास है, जिनके श्रम और बलिदान पर सांस्कृतिक वैभव खड़ा होता है। इसी प्रकार 'कुँवर सिंह की टेक' में 1857 का विद्रोह किसी वीर-गाथा तक सीमित नहीं रहता, बल्कि लोक-स्मृति में जीवित प्रतिरोध की चेतना बन जाता है। यहाँ इतिहास सत्ता के आख्यान से हटकर जनता की स्मृति में धड़कता हुआ इतिहास बन जाता है। माथुर के नाटकों में स्मृति का यह स्वरूप अतीत को जड़ नहीं बनाता। वह न तो भावुकता में डूबा हुआ है और न ही अंध-गौरव से ग्रस्त। स्मृति यहाँ आलोचनात्मक चेतना के रूप में उपस्थित है। 'दशरथनंदन' और 'रघुकुल रीत' में रामकथा का पुनर्पाठ इसी दृष्टि का उदाहरण है। राम यहाँ किसी अलौकिक अवतार के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक निर्णयों के बोझ से जूझते मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। यह स्मृति आधुनिक मनुष्य की नैतिक उलझनों से संवाद करती है और परंपरा को प्रश्नों के घेरे में खड़ा करती है।[3]

परंपरा को भी माथुर जी किसी स्थिर या रूढ़ संरचना के रूप में स्वीकार नहीं करते। भारतीय संदर्भ में परंपरा सदैव परिवर्तनशील रही है। वह समय और परिस्थितियों के अनुसार अपने अर्थों का पुनर्निर्माण करती रही है। मिथक और पुराणों का बार-बार पुनर्पाठ इसी प्रक्रिया का प्रमाण है। माथुर के नाटकों में परंपरा एक खुली प्रक्रिया है, जो आत्मालोचना की क्षमता रखती है। उनके पात्र परंपरा से भागते नहीं, बल्कि उससे टकराते हैं। यह टकराव ही सांस्कृतिक चेतना को जीवित रखता है। 'पहला राजा' और 'शारदीया' जैसे नाटकों में परंपरा सत्ता को वैधता देने के साथ-साथ उसे प्रश्नांकित भी करती है। 'पहला राजा' में पृथु का मिथक सभ्यता के आरंभिक चरणों की स्मृति को सामने लाता है, जहाँ सत्ता का औचित्य केवल बल में नहीं, बल्कि सामाजिक स्वीकृति और नैतिक उत्तरदायित्व में निहित है। वहीं 'शारदीया' में ऐतिहासिक गौरव के पीछे छिपी मानवीय त्रासदियाँ परंपरा के आत्मालोचनात्मक पक्ष को उजागर करती हैं। यहाँ परंपरा सत्ता की सहचरी नहीं, बल्कि उसकी नैतिक परीक्षा बन जाती है।

माथुर के नाटकों में स्मृति, परंपरा और इतिहास अलग-अलग तत्व नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे में अंतर्ग्रथित हैं। स्मृति अतीत को मानवीय अर्थ प्रदान करती है, परंपरा उस अर्थ को सांस्कृतिक ढाँचा देती है और इतिहास उसे सामाजिक चेतना में रूपांतरित करता है। इस त्रयी के माध्यम से माथुर भारतीय सांस्कृतिक चेतना की एक आलोचनात्मक और गतिशील तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। वे यह स्पष्ट करते हैं कि संस्कृति तभी जीवित रहती है, जब वह स्मृति को जड़ न बनने दे और परंपरा को प्रश्नों से भयभीत न होने दे।

जगदीश चंद्र माथुर के नाटक : इतिहास-बोध और सांस्कृतिक चेतना

जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों में स्मृति, इतिहास और मिथक का प्रयोग किसी सजावटी उपकरण की तरह नहीं, बल्कि एक स्पष्ट वैचारिक उद्देश्य के साथ किया गया है। उनके लिए इतिहास एक सांस्कृतिक प्रक्रिया है, जिसमें मानवीय संघर्ष, नैतिक प्रश्न और सृजनात्मक आकांक्षाएँ निहित हैं। मिथक और इतिहास को प्रायः कल्पना और तथ्य के दो विरोधी ध्रुवों के रूप में देखा जाता है, किंतु भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में यह विभाजन इतना सरल नहीं है। यहाँ मिथक इतिहास का ही एक सांस्कृतिक रूप है, जो तथ्य को अनुभूति और मूल्य में रूपांतरित करता है। माथुर मिथक को कपोल-कल्पना नहीं, बल्कि सामूहिक अवचेतन का इतिहास मानते हैं।

माथुर की इतिहास-दृष्टि के तीन प्रमुख आयाम स्पष्ट रूप से उभरते हैं। पहला, वे अतीत के उन प्रसंगों का चयन करते हैं जो समकालीन संकटों से संवाद कर सकें। दूसरा, उनके नाटकों में इतिहास केवल राजाओं की गाथा नहीं, बल्कि आम जन और सत्ता के बीच के सनातन संघर्ष का दस्तावेज है और तीसरा, वे परंपरा का मानवीकरण करते हैं- अलौकिक आख्यानों को मानवीय धरातल पर उतारकर। इसी संदर्भ में सिद्धनाथ कुमार का यह कथन विशेष रूप से अर्थपूर्ण है कि माथुर इतिहास के अस्थिपंजर में अपनी कल्पना का रक्त-मांस भरकर उसे जीवंत कर देते हैं।

'कोणार्क' (1951) जगदीशचंद्र माथुर का पहला ऐतिहासिक नाटक ही नहीं, बल्कि हिंदी की ऐतिहासिक नाट्य परंपरा में एक 'प्रस्थान-बिंदु' भी है। उड़ीसा के समुद्र तट पर खड़ा कोणार्क का सूर्य मंदिर सदियों से विस्मय का विषय रहा है, लेकिन माथुर ने पत्थरों के इस ढेर में छिपे उस मानवीय हाहाकार को सुना, जो इतिहास के पन्नों में कहीं दब गया था। यह नाटक ऊपरी तौर पर मंदिर निर्माण और उसके ध्वंस की कहानी लगता है, लेकिन अपनी आंतरिक संरचना में यह 'कला और सत्ता' के बीच के सनातन संघर्ष का दस्तावेज है। माथुर ने यहाँ स्थापत्य को केवल एक कलाकृति के रूप में नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक स्मृति के एक प्रतीक के रूप में उभारा है। कोणार्क का मंदिर उस सामूहिक स्वप्न का नाम है जहाँ 1200 शिल्पियों का श्रम, पसीना और उनकी साधना एक आकार लेती है। यहाँ सूर्य केवल एक पौराणिक देवता नहीं हैं, वे उस ऊर्जा, प्रकाश और जीवन-मूल्यों के प्रतीक हैं जो भारतीय संस्कृति के केंद्र में रहे हैं।

नाटक का मुख्य द्वंद्व राजा नरसिंहदेव और महाशिल्पी विशु के बीच नहीं, बल्कि 'सृजन की स्वतंत्रता' और 'राजसत्ता के अहंकार' के बीच है। राजा नरसिंहदेव के लिए मंदिर एक 'कीर्ति-स्तंभ' है, उनके साम्राज्य के विस्तार का एक प्रतीक। वे चाहते हैं कि मंदिर जल्द से जल्द पूरा हो ताकि उनकी विजय पताका फहरा सके। दूसरी ओर, मुख्य शिल्पी विशु के लिए यह मंदिर ईंट-पत्थर का ढांचा नहीं, बल्कि उसकी तपस्या है। विशु भारतीय कलाकार की उस उदात्त परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जो कला को साधना मानता है, व्यवसाय नहीं। उसका यह संवाद आज भी किसी कलाकार के स्वाभिमान की सबसे बड़ी हुंकार लगता है- "शिल्पी जब अपने को भगवान के बहुत निकट देखता है, तब वह किसी की परवाह नहीं करता महाराज! कला की साधना ही उसकी तपस्या है।"[4]

माथुर यहाँ एक बहुत गहरा प्रश्न उठाते हैं कि क्या कला सत्ता की दासी है? क्या कलाकार को राज्य के आदेशों के अधीन होकर अपनी सृजनात्मकता से समझौता कर लेना चाहिए? यह प्रश्न मध्यकाल में भी प्रासंगिक था और आज के बाजारवादी दौर में भी उतना ही ज्वलंत है। नाटक में धर्मपद का चरित्र एक नई चेतना का वाहक बनकर आता है। इतिहास की प्रचलित किंवदंतियों में कहा जाता है कि धर्मपद ने शिखर लगाने के बाद, 1200 शिल्पियों की जान बचाने के लिए मंदिर के शिखर से कूदकर आत्महत्या कर ली थी। यह एक 'त्याग' की कहानी थी। लेकिन माथुर की आधुनिक और प्रगतिशील चेतना को यह पलायनवादी अंत स्वीकार नहीं था। उन्होंने इतिहास और मिथक में हस्तक्षेप किया। माथुर के नाटक में धर्मपद आत्महत्या नहीं करता, बल्कि वह अन्याय और अत्याचारी महामात्य के विरुद्ध विद्रोह करता है। धर्मपद का यह विद्रोह माथुर की उस दृष्टि का परिचायक है जो परंपरा का सम्मान तो करती है, लेकिन उसके नियतिवादी हिस्से को खारिज करती है। धर्मपद नई पीढ़ी का प्रतीक है जो यह मानता है कि यदि व्यवस्था सड़ चुकी है, यदि सत्ता कलाकारों का शोषण कर रही है, तो ऐसी व्यवस्था को ढहा देना ही उचित है भले ही उसके साथ वह मंदिर भी क्यों न ढह जाए जिसे इतनी मेहनत से बनाया गया था।

नाटक का अंत अत्यंत त्रासद और मर्मस्पर्शी है। मंदिर टूट जाता है। लेकिन इस ध्वंस के बीच से माथुर जो संदेश देते हैं, वह कालजयी है। वे बताते हैं कि इमारतें गिर सकती हैं, सत्ताएं मिट सकती हैं, लेकिन मनुष्य की अदम्य जिजीविषा और कलाकार की सृजनात्मकता कभी नहीं मरती। नाटक के अंत में यह ध्वनि गूंजती है कि "मूर्ति टूट सकती है, मंदिर ढह सकता है, लेकिन कलाकार की अमरता खंडित नहीं हो सकती।"[5]

'कोणार्क' का ध्वंस वास्तव में भारतीय संस्कृति के उस मूल्य को रेखांकित करता है जहाँ भौतिक सफलता से अधिक महत्व नैतिक विजय का है। विशु का विक्षिप्त हो जाना और धर्मपद का बलिदान, इतिहास के उन असंख्य अनाम कलाकारों को एक श्रद्धांजलि है जिन्होंने सभ्यताओं का निर्माण तो किया, लेकिन इतिहास ने उन्हें विस्मृति के अंधेरे में धकेल दिया। माथुर ने 'कोणार्क' के माध्यम से स्मृति को पुनः जीवित किया और यह सिद्ध किया कि सच्चा इतिहास राजाओं के दरबार में नहीं, बल्कि आम मनुष्य के संघर्षों में लिखा जाता है।

'शारदीया' (1959) 'कोणार्क' में जहाँ माथुर जी ने पत्थरों और स्थापत्य के माध्यम से संस्कृति की बात की थी, वहीं 1959 में प्रकाशित अपने दूसरे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नाटक 'शारदीया' में वे इतिहास के एक नितांत भिन्न कालखंड में प्रवेश करते हैं। यहाँ

पृष्ठभूमि प्राचीन भारत की नहीं, बल्कि 18वीं शताब्दी के उस उथल-पुथल भरे दौर की है, जब मराठा शक्ति और हैदराबाद के निजाम के बीच संघर्ष चल रहा था। सामान्यत: ऐतिहासिक नाटकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे युद्धों के रोमांच, संधियों की कूटनीति और राजाओं के शौर्य का प्रदर्शन करेंगे। 'शारदीया' में नाना फड़नवीस और भाऊ साहब जैसे भारी-भरकम ऐतिहासिक चरित्र मौजूद अवश्य हैं, किंतु माथुर जी की दृष्टि इन महानायकों की तलवारों पर नहीं, बल्कि उन निहत्थे मानवीय हृदयों पर टिकी है जो इन तलवारों की झनकार में कुचल दिए गए। नाटक की मूल संवेदना 'युद्ध और प्रेम' के उस सनातन द्वंद्व को उकेरती है, जहाँ अक्सर सत्ता की महत्वाकांक्षाएँ प्रेम और कोमल मनोभावों की बलि ले लेती हैं।

इस नाटक में माथुर जी ने इतिहास की 'स्मृति' का एक बहुत ही संवेदनशील उपयोग किया है। वे दिखाते हैं कि इतिहास की पाठ्यपुस्तकों में जिन घटनाओं को हम 'गौरव गाथा' कहकर पढ़ते हैं, उनके पीछे कितनी ही व्यक्तिगत त्रासदियाँ और टूटे हुए सपने दफन हैं। नाटक की नायिका 'शारदा' जो एक सजीव स्त्री भी है और प्रतीकात्मक रूप में एक मूर्ति भी वास्तव में भारतीय इतिहास में स्त्री की नियति का पर्याय बन जाती है। वह पुरुषों के अहंकार, उनके पौरुष और युद्धोन्माद के बीच खड़ी एक 'मूक साक्षी' है, जिसके हिस्से में केवल प्रतीक्षा और पीड़ा आती है।

सांस्कृतिक चेतना के स्तर पर 'शारदीया' एक संक्रमण काल का दस्तावेज है। यह वह दौर था जब भारतीय संस्कृति अपने मध्यकालीन सामंती मूल्यों से जूझ रही थी। नाटक में 'कस्तूरी' का चरित्र और 'शारदा' का मौन, उस दौर के सांस्कृतिक ह्रास और मूल्यों के विघटन की ओर इशारा करता है। माथुर यहाँ यह स्थापित करते हैं कि इतिहास केवल विजय-पताकाओं के फहराने का नाम नहीं है, बल्कि वह उन अनकही टीस का भी संग्रहालय है जो समय के गर्त में खो गईं। सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. बच्चन सिंह ने इस नाटक के मर्म को बहुत सटीकता से पकड़ा है। वे लिखते हैं: "शारदीया में माथुर जी ने इतिहास के उस कोने को झाँका है जहाँ राजनीतिक संधियाँ तो होती हैं, लेकिन मानवीय अनुबंध टूट जाते हैं।"[6]

माथुर जी की यह दृष्टि हमें सोचने पर विवश करती है कि क्या राष्ट्र और सत्ता के निर्माण में व्यक्ति की संवेदना का कोई मूल्य नहीं? यहाँ परंपरा स्मृति से जुड़ी तो है, लेकिन वह आलोचना से मुक्त नहीं है। माथुर यह स्पष्ट करते हैं कि एक स्वस्थ सांस्कृतिक चेतना वही है जो अपने अतीत का गौरवगान तो करे, लेकिन साथ ही अपनी गलतियों पर आत्ममंथन करने का साहस भी रखे।

'पहला राजा' (1969): यदि 'कोणार्क' और 'शारदीया' इतिहास के ज्ञात तथ्यों पर आधारित थे, तो 1969 में प्रकाशित 'पहला राजा' के साथ जगदीशचंद्र माथुर अपनी नाट्य-यात्रा में एक क्रांतिकारी मोड़ लेते हैं। यहाँ वे लिखित दस्तावेजों वाले इतिहास से पीछे हटकर, उससे भी गहरे और आदिम स्रोत मिथक और पुराख्यान की ओर मुड़ते हैं ।

यह नाटक वेद और पुराणों में वर्णित राजा 'पृथु' की कथा को आधार बनाता है। भारतीय परंपरा में पृथु को वह प्रारम्भिक राजा माना जाता है जिन्होंने ऊबड़-खाबड़ धरती को समतल किया और मानव सभ्यता को 'कृषि-संस्कृति' का उपहार दिया। लेकिन माथुर जी के लिए मिथक कोई मनगढ़ंत किस्सा या कपोल-कल्पना नहीं है। वे उसे 'सामूहिक अवचेतन' का वह इतिहास मानते हैं जो तथ्यों में नहीं, बल्कि जन-मन की स्मृतियों में दर्ज होता है। जैसा कि वे स्वयं नाटक की भूमिका में लिखते हैं, "मिथक इतिहास का वह पूर्व-रूप है जहाँ तथ्य और सत्य एक-दूसरे में घुले-मिले होते हैं। आज के जटिल यथार्थ को समझने के लिए कभी-कभी हमें इतिहास से भी पीछे, आदिम स्मृतियों में लौटना पड़ता है।"[7]

इस नाटक में 'पृथु' का मिथक केवल एक प्राचीन कथा नहीं है, बल्कि यह सभ्यता के विकास की कहानी हैख़कैसे मनुष्य ने घुमक्कड़ जीवन छोड़कर 'ग्राम-संस्कृति' और 'राज्य-व्यवस्था' का निर्माण किया। 'पहला राजा' केवल एक पौराणिक नाटक नहीं है, यह आधुनिक भारत का एक सशक्त 'राजनीतिक रूपक' है। जब हम इस नाटक को गहराई से देखते हैं, तो पाते हैं कि इसका नायक 'पृथु' और कोई नहीं, बल्कि स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का एक प्रतीकात्मक अक्स है। जिस प्रकार पृथु अपने नव-निर्मित राज्य में भुखमरी, अराजकता और धरती के बंजरपन से जूझ रहा है, ठीक वैसी ही स्थिति 1960 के दशक के भारत की भी थी। माथुर जी ने बड़ी ही चतुराई से पौराणिक पात्रों के माध्यम से आधुनिक शासन-तंत्र की विसंगतियों को उजागर किया है। नाटक में मंत्री और अधिकारी जिस तरह पृथु की जन-कल्याणकारी योजनाओं में अड़ंगे डालते हैं और उन्हें विफल करते हैं, वह आधुनिक भारत की नौकरशाही और लालफीताशाही पर किया गया एक तीखा और निर्मम कटाक्ष है।

नाटक का एक और सशक्त पक्ष इसका स्त्री-विमर्श और पर्यावरण-बोध है। पृथु की पत्नी 'अर्ची' साक्षात धरती का प्रतीक है। पृथु द्वारा धरती को समतल करना और उसे उर्वरा बनाने का प्रयास, वास्तव में आधुनिक सत्ता के सामने विकास और प्रकृति के बीच के द्वंद्व को दर्शाता है। यह विकास और दोहन के बीच संतुलन साधने का संघर्ष है। माथुर जी इस नाटक के माध्यम से भारतीय नेतृत्व

की सांस्कृतिक जड़ों की पड़ताल करते हैं। वे प्रश्न उठाते हैं कि राजा कौन है? क्या वह केवल आदेश देने वाला शासक है, या वह प्रजा का पोषक पिता भी है? 'पहला राजा' में इतिहास सत्ता के वैधीकरण की प्रक्रिया के रूप में सामने आता है। माथुर जी का स्पष्ट मत है कि सत्ता केवल बाहुबल या दंड से नहीं टिकती, बल्कि उसे टिकने के लिए सांस्कृतिक स्वीकृति और नैतिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता होती है।

शिल्प के स्तर पर भी यह नाटक अद्‌भुत है। माथुर जी ने पश्चिमी यथार्थवादी रंगमंच की सीमाओं को तोड़ते हुए इसमें लोकगीतों, समूह-गान और आदिम नृत्यों का भरपूर प्रयोग किया है। यह नाटक भारतीय सांस्कृतिक चेतना के उस पक्ष को उजागर करता है जहाँ इतिहास सत्ता का उत्सव नहीं, बल्कि उसकी अग्नि-परीक्षा है। यहाँ स्मृति एक चेतावनी बन जाती है यह याद दिलाने के लिए कि यदि सत्ता परंपरा और नैतिकता से कट जाएगी, तो उसका पतन निश्चित है।

'दशरथनंदन' (1974) और 'रघुकुल रीत' (1985): जगदीशचंद्र माथुर की नाट्य-यात्रा और उनकी सांस्कृतिक चेतना अपनी परिपक्वता में अंततः'रामकथा' के पास आकर ठहरती है। अपने जीवन के अंतिम चरण में उन्होंने दो कालजयी नाटक लिखे- 'दशरथनंदन' और 'रघुकुल रीत'। यहाँ आकर उनका इतिहास-बोध, 'आस्था' और 'तर्क' के बीच एक बहुत ही बारीक संतुलन साधता है।

माथुर जी के लिए 'स्मृति' का सबसे जीवंत रूप अगर कुछ है, तो वह तुलसीदास का 'रामचरितमानस' है। वे मानते थे कि भारतीय समाज के नैतिक ढांचे को समझने के लिए रामकथा से अधिक सशक्त कोई दूसरा सांस्कृतिक सूत्र नहीं हो सकता। लेकिन यहाँ माथुर जी की दृष्टि पारंपरिक रामलीलाओं से भिन्न है। वे राम को एक अलौकिक अवतार या चमत्कारी देवता के रूप में मंच पर नहीं उतारते। उनके राम 'मर्यादा पुरुषोत्तम' हैं- यानी एक आदर्श 'मनुष्य'। माथुर के नाटकों में राम देवता नहीं, बल्कि एक ऐसे मनुष्य हैं जो अपने हर निर्णय का नैतिक भार अपने कंधों पर उठाते हैं और उसकी पीड़ा भोगते हैं।

जगदीशचंद्र माथुर का 'दशरथनंदन' तुलसीदास की रामचरितमानस में निहित सांस्कृतिक चेतना को आधुनिक पीढ़ी, विशेषतः शहरी समाज तक पहुँचाने का एक सजग प्रयास है। यह नाटक रामकथा का पुनर्कथन मात्र नहीं, बल्कि तुलसीदास की वाणी में निहित 'रस' और 'भक्ति-तत्त्व' को समकालीन संवेदना के अनुरूप पुनर्जीवित करने का उपक्रम है। इस दृष्टि से दशरथनंदन परंपरा और आधुनिकता के बीच संवाद स्थापित करता है। नाटक की आधुनिकता कथावस्तु के परिवर्तन में नहीं, बल्कि उसके प्रस्तुतीकरण और दृष्टिकोण में निहित है। माथुर ने पारंपरिक रामलीला को एक परिष्कृत आधुनिक रंगनाटक का रूप दिया है, जहाँ मंचीय शिल्प और चरित्र-निर्माण आधुनिक दर्शक की संवेदनशीलता को ध्यान में रखकर विन्यस्त हैं।

इस नाटक की प्रमुख विशेषता पात्रों का मानवीकरण और उनका मनोवैज्ञानिक गहन चित्रण है। पात्र यहाँ पौराणिक प्रतिमाएँ न होकर मानवीय अनुभवों से युक्त जीवंत चरित्र हैं। पुत्रेष्टि यज्ञ के समय दशरथ को अपने पूर्व जन्म (मनु-शतरूपा) की स्मृति किसी दैवी चमत्कार के रूप में नहीं, बल्कि एक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अनुभूति के रूप में प्राप्त होती है। उनका कथन, "लगता है कि मैं और कौशल्या 'हम' नहीं हैं.... कल्प-कल्पांतर पहले कहीं दूर घने जंगल में घोर तपस्या कर रहे हैं"[8] दशरथ की आंतरिक चेतना और स्मृति-बोध को अभिव्यक्त करता है। राम का चरित्र भी इसी मानवीकरण की प्रक्रिया से गुजरता है। वे 'मर्यादा पुरुषोत्तम' होने के साथ-साथ करुणा और नैतिक संवेदनशीलता से युक्त मनुष्य के रूप में उपस्थित होते हैं। ताड़का-वध के प्रसंग में लक्ष्मण के आक्रामक आग्रह के विपरीत राम का यह कथन- "दीन, दुर्भागिनी नारी!.... ठहरो लक्ष्मण!"[9] उनकी करुणा और मानवीय विवेक को स्पष्ट करता है। यहाँ राम की प्राथमिकता वध नहीं, बल्कि उद्धार है।

इस प्रकार दशरथनंदन में दशरथ एक वात्सल्यमयी पिता और राम एक आदर्श किंतु संवेदनशील नायक के रूप में उभरते हैं। माथुर राम के ईश्वरीय स्वरूप को नकारते नहीं, बल्कि उसे 'मानवीय लीला' के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, जिससे वह आधुनिक दर्शक के लिए अधिक ग्राह्य बन सके। यही इस नाटक की सांस्कृतिक सार्थकता है, जहाँ परंपरा जड़ आस्था नहीं, बल्कि जीवंत मानवीय अनुभव के रूप में रूपायित होती है।

इसके बाद 'रघुकुल रीत' में माथुर जी ने 'रीत' शब्द की नई व्याख्या की है। आधुनिक दौर में अक्सर 'परंपरा' या 'रीत' को बंधन मानकर तोड़ने का चलन बढ़ा है। ऐसे समय में माथुर जी याद दिलाते हैं कि 'रीत' केवल जड़ नियम नहीं है, बल्कि वह समाज को विखंडन से बचाने वाला एक 'आंतरिक अनुशासन' है।[10] इस नाटक में राम का वनगमन किसी वरदान या शाप की विवशता नहीं, बल्कि 'स्वेच्छा से स्वीकारे गए दायित्व' के रूप में दिखाया गया है। यह आज की 'उपभोगवादी संस्कृति' के सामने भारतीय 'त्याग की संस्कृति' का एक विद्रोही स्वर है। माथुर जी हमें बताते हैं कि संस्कृति महलों में नहीं, बल्कि उन मूल्यों में बसती है जिनके लिए एक राजकुमार हँसते-हँसते वन के कांटों को स्वीकार कर लेता है।

इन नाटकों के शिल्प में भी माथुर ने एक अद्‌भुत प्रयोग किया जिसे उन्होंने 'लीला-नाट्य' का नाम दिया। उन्होंने तुलसीदास की चौपाइयों को संवादों के बीच पिरोया और कथा-गायन शैली का प्रयोग किया। यह प्रयोग सिद्ध करता है कि उनके लिए परंपरा कोई संग्रहालय में रखी हुई वस्तु नहीं, बल्कि एक बहती हुई नदी है जिसमें से आज भी प्यास बुझाई जा सकती है।

'कुँवर सिंह की टेक' (1954): यह नाटक 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के वीर नायक कुँवर सिंह के अंतिम प्रतिरोध, आत्मसम्मान और राष्ट्रभावना को केंद्र में रखकर लिखा गया एक ऐतिहासिक नाटक है। नाटक की मूल संरचना युद्ध-विवरण से अधिक नैतिक संघर्ष और आत्मिक दृढ़ता पर आधारित है। कुँवर सिंह वृद्ध, घायल और संसाधनहीन अवस्था में भी अंग्रेजी सत्ता के सामने समर्पण से इनकार करते हैं। उनके लिए 'टेक' केवल सैन्य प्रतिज्ञा नहीं, बल्कि स्वाभिमान, आत्मसम्मान और राष्ट्रीय अस्मिता का प्रतीक है। अंग्रेजी अधिकारी उन्हें प्रलोभन, समझौते और सुरक्षा का आश्वासन देते हैं, किंतु कुँवर सिंह हर प्रस्ताव को अस्वीकार करते हैं। नाटक में उनके साथियों, सेनानायकों और सामान्य जन की प्रतिक्रियाएँ भी आती हैं- कहीं भय है, कहीं व्यावहारिकता, तो कहीं आदर्शवाद। इस विरोधाभास के बीच कुँवर सिंह का चरित्र नैतिक धुरी की तरह उभरता है। उनका प्रसिद्ध त्याग (घायल भुजा को काटकर गंगा को अर्पित करना- ऐतिहासिक स्मृति के रूप में) नाटक में आत्मबलिदान और संकल्प की चरम अभिव्यक्ति बन जाता है। इस नाटक में टेक शब्द प्रतीकात्मक है व्यक्तिगत स्तर पर यह टेक आत्मसम्मान की रक्षा का प्रतीक है वही राजनीतिक स्तर पर टेक औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध असहमति तथा वहीं सांस्कृतिक स्तर पर यह टेक भारतीय वीर-परंपरा और नैतिक मूल्यबोध का प्रतीक बन जाति है। नाटक यह स्थापित करता है कि राष्ट्र कोई अमूर्त सत्ता नहीं, बल्कि व्यक्ति की चेतना में जीवित मूल्य है। "देश मेरे बाहर नहीं- मेरे भीतर है।"[11] यह विचार आधुनिक राष्ट्रबोध से जुड़ता है। 'कुँवर सिंह की टेक' इतिहास को दोहराने वाला नहीं, बल्कि इतिहास से संवाद करने वाला नाटक है। यह अतीत के माध्यम से वर्तमान से सवाल करता है की क्या आज भी 'टेक' संभव है? अथवा क्या सुविधा के युग में स्वाभिमान बचा रह सकता है? इसी प्रश्नात्मकता में नाटक की आधुनिकता और प्रासंगिकता निहित है

रंग-दृष्टि और लोक-तत्त्वों का विनियोग

जगदीशचंद्र माथुर की सांस्कृतिक चेतना केवल उनके नाटकों की विषय-वस्तु तक सीमित नहीं है, बल्कि वह उनके शिल्प और रंग-रचना में भी उतनी ही मुखरता से बोलती है। माथुर जी ने बहुत पहले यह अनुभव कर लिया था कि भारतीय स्मृति और मिथकीय चेतना की विशालता को व्यक्त करने के लिए पश्चिमी रंगमंच का 'यथार्थवादी ढाँचा' बहुत छोटा और अपर्याप्त है।

जिस समय माथुर लिख रहे थे, हिंदी रंगमंच पर इब्सन और बर्नार्ड शॉ के 'ड्राइंग रूम थिएटर' का गहरा प्रभाव था, जहाँ जीवन की हूबहू नकल उतारने को ही नाटक माना जाता था। माथुर जी ने इस परायी अवधारणा को अस्वीकार कर दिया। उनका स्पष्ट मत था कि भारतीय नाटकों की आत्मा पश्चिम के 'फोटोग्राफिक यथार्थ' में नहीं, बल्कि भारतीय परंपरा के 'रस' और 'भाव' में बसती है। वे मानते थे कि रंगमंच पर सब कुछ वैसा ही दिखाना जरूरी नहीं जैसा जीवन में होता है, बल्कि वह दिखाना जरूरी है जो जीवन के भीतर छिपा है। इसीलिए, माथुर जी अपनी जड़ों की ओर वापिस लौटे- संस्कृत के शास्त्रीय 'नाट्यशास्त्र' और गाँव-देहात के 'लोक-रंगमंच' की ओर। उनके नाटकों में शास्त्रीयता की गरिमा और लोक-कला की कच्ची ऊर्जा का एक अद्‌भुत संयोजन दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, 'कोणार्क' में जहाँ वे संस्कृत नाटकों जैसी गाम्भीर्यपूर्ण संरचना खड़ी करते हैं, वहीं 'पहला राजा' में वे लोकगीतों, समूह-गान और आदिम नृत्यों का खुलकर प्रयोग करते हैं। 'पहला राजा' में लोक-तत्त्वों का विनियोग नाटक को केवल 'देखने' की वस्तु नहीं रहने देता, बल्कि उसे एक 'सामूहिक अनुभव' बना देता है।

माथुर का विश्वास था कि यदि रंगमंच को अपनी जनता के दिलों तक पहुँचना है, तो उसे उसी की 'सांस्कृतिक भाषा' अथार्थ गीत, लय, संगीत और प्रतीकों को अपनाना होगा। इसीलिए 'दशरथनंदन' और 'रघुकुल रीत' को उन्होंने 'लीला-नाट्य' की संज्ञा दी। यहाँ यथार्थवादी सेट (मंच-सज्जा) के स्थान पर प्रतीकात्मक या खुले मंच का प्रयोग होता है। माथुर के लिए रामकथा का मंचन एक 'सांस्कृतिक अनुष्ठान' है। यह प्रयास हिंदी रंगमंच की अपनी स्वदेशी पहचान को पुनः स्थापित करने की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम था।

भाषा और संवाद

किसी भी ऐतिहासिक नाटक की सफलता अंततः इस बात पर निर्भर करती है कि वह किस भाषा में बोलता है। जगदीशचंद्र माथुर के नाटकों की भाषा पर अक्सर यह सतही आरोप लगाया जाता है कि वह बहुत क्लिष्ट, तत्सम प्रधान या बोझिल है। लेकिन जब हम गहराई में उतरते हैं, तो पाते हैं कि यह तथाकथित क्लिष्टता सायास नहीं, बल्कि विषयानुरूप है।

माथुर जी जानते थे कि 'कोणार्क' के भव्य मंदिर या वैदिक काल के परिवेश को खड़ी बोली के आज के चलताऊ रूप में व्यक्त नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक पात्रों को एक गरिमा चाहिए होती है। जब 'कोणार्क' में शिल्पी विशु कहता है- ष्यह पाषाण नहीं है महापात्र, यह शिल्पी के अंतस का जमा हुआ संगीत है।"[12] तो यहाँ 'पाषाण' और 'अंतस' जैसे शब्द ही उस निहितार्थ के भारीपन और गंभीरता को संभाल पाते हैं। साधारण बोलचाल की भाषा यहाँ वह विशिष्ट सौंदर्यबोध पैदा नहीं कर सकती थी जो माथुर का उद्देश्य था।

माथुर जी गद्य लिखते समय भी एक कवि की तरह व्यवहार करते हैं। उनकी भाषा में एक विशेष प्रकार की संगीतात्मकता और लय है। वे संवादों में नाद-सौंदर्य का विशेष ध्यान रखते हैं। 'शारदीया' और 'दशरथनंदन' में गद्य के बीच-बीच में गीतों और छंदों का

प्रयोग, भाषा को नीरस होने से बचाता है और उसे भारतीय 'काव्य-नाटक' परंपरा से जोड़ता है। उनकी भाषा केवल सूचना नहीं देती, वह उस कालखंड के वातावरण को दर्शक की रगों में उतार देती है।

निष्कर्ष

जगदीशचंद्र माथुर के संपूर्ण नाट्य-साहित्य की यात्रा कोणार्क के तट से लेकर अयोध्या के राजभवन तक यह सिद्ध करती है कि उनकी इतिहास-दृष्टि हिंदी साहित्य की एक दुर्लभ उपलब्धि है। उन्होंने इतिहास, स्मृति और परंपरा को खांचों में बांटकर नहीं, बल्कि एक अखंड और सजीव सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में देखा। उनके नाटकों में उपस्थित अतीत न तो पूजाघर में रखी कोई मूर्ति है और न ही कंधों पर लदा हुई कोई बोझिल विरासत। वह वर्तमान से तीखे सवाल करता हुआ एक 'नैतिक प्रश्न' बनकर उपस्थित होता है। माथुर जी के लिए इतिहास सत्ता की जय-जयकार नहीं, बल्कि समाज की 'आत्म-परीक्षा' के रूप में मौजूद है। 'कोणार्क' में यह परीक्षा 'कला और सत्ता' के संघर्ष के रूप में है तो 'शारदीया' में यह 'मानवीय संवेदना के दमन' के रूप में उभरती है। जहां पहला राजा में यह 'लोकतंत्र और नौकरशाही' के द्वंद्व को उजागर करती है। वहीं कुँवर सिंह की टेक में यह 'राष्ट्रीय स्वाभिमान' की कसौटी है और रामकथा नाटकों में यह 'परंपरा और उत्तरदायित्व' का पाठ है। इस प्रकार उनके नाटक भारतीय सांस्कृतिक चेतना की एक समग्र व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

माथुर जी की सबसे बड़ी ऐतिहासिक देन यह है कि उन्होंने परंपरा को 'रूढ़ि' नहीं बनने दिया। उन्होंने मिथक और पुराण को आधुनिक तर्क, मनोविज्ञान और संवेदना की कसौटी पर कसते हुए उन्हें आज के समय के लिए प्रासंगिक बना दिया। उनका 'सांस्कृतिक नव-मानवतावाद' यह स्वीकार करता है कि मनुष्य त्रुटिपूर्ण है, गिर सकता है, लेकिन अंततः वही इतिहास और परंपरा का सच्चा वाहक भी है। आज के उथले समय में, जब हम अपनी जड़ों से कट रहे हैं, माथुर के नाटक एक प्रकाश-स्तंभ की तरह दीखते हैं। वे हमें विश्वास दिलाते हैं कि जब तक हमारी स्मृतियाँ जीवित हैं, हमारी संस्कृति की धारा अविरल बहती रहेगी। 'रघुकुल रीत' का यह अंतिम संवाद उनके पूरे लेखन का निचोड़ कहा जा सकता है, "काल का प्रवाह सब कुछ बहा ले जाता है, केवल वे मूल्य बचे रहते हैं, जिन्हें मनुष्य ने अपने रक्त और स्वेद से सींचा है।"[13] यही माथुर जी की सांस्कृतिक चेतना का अंतिम सत्य है।

संदर्भ और पाद-टिप्पणी (Footnotes - References)

1. जैन, नेमिचंद्र. रंग-दर्शन. (जगदीशचंद्र माथुर के इतिहास बोध पर टिप्पणी के संदर्भ में). पृ. 110.
2. थापर, रोमिला. द पास्ट एज प्रेजेंट .पृ. 23
3. माथुर, जगदीशचंद्र. दशरथनंदन भूमिका
4. माथुर, जगदीशचंद्र. कोणार्क. (विशु का संवाद, प्रथम अंक), पृ. 48.
5. वही. (तृतीय अंक, पटाक्षेप के समय सूत्रधार/नेपथ्य स्वर), पृ. 97.
6. सिंह, बच्चन. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास. (शारदीया नाटक की समीक्षा).पृ. 390.
7. माथुर, जगदीशचंद्र. पहला राजा. (लेखकीय वक्तव्य/भूमिका), पृ. 8
8. माथुर, जगदीशचंद्र. दशरथनंदन. (अंक एक प्रथम दृश्य), पृ. 11
9. वही. (राम-लक्ष्मण संवाद, अंक दो प्रथम दृश्य), 43.
10. माथुर, जगदीशचंद्र. रघुकुल रीत. (लेखकीय वक्तव्य), पृ. 10.
11. माथुर, जगदीशचंद्र. कुँवर सिंह की टेक. (कुँवर सिंह का संवाद), पृ. 42
12. माथुर, जगदीशचंद्र. कोणार्क. (विशु का महापात्र से संवाद),पृ. 52.
13. माथुर, जगदीशचंद्र. रघुकुल रीत. (समापन संवाद), पृ. 105.

संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography)

(क) प्राथमिक स्रोत (जगदीशचंद्र माथुर के नाटक)

1. माथुर, जगदीशचंद्र. कोणार्क. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, (1951).
2. माथुर, जगदीशचंद्र. कुँवर सिंह की टेक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, (1954).
3. माथुर, जगदीशचंद्र. शारदीया. हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी. (1959).
4. माथुर, जगदीशचंद्र. पहला राजा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. (1969).
5. माथुर, जगदीशचंद्र. दशरथनंदन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. (1974).
6. माथुर, जगदीशचंद्र. रघुकुल रीत. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली. (1985).

(ख) द्वितीयक स्रोत (आलोचना एवं इतिहास ग्रंथ)

1. जैन, नेमिचंद्र. रंग-दर्शन. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018
2. सिंह, बच्चन. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2017
3. कुमार, सिद्धनाथ. हिंदी नाटक और जगदीशचंद्र माथुर. अनुपम प्रकाशन, पटना, 1995
4. वत्स, गिरीश. जगदीशचंद्र माथुर : व्यक्तित्व और कृतित्व. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली.
5. ओझा, दशरथ. हिंदी नाटक : उद्‌भव और विकास. राजपाल एंड संस, दिल्ली.
6. थापर, रोमिला. द पास्ट एज प्रेजेंट (जेम चेंज ं च्तमेमदज). एल्फ बुक कंपनी, नई दिल्ली, 2014
7. माथुर, जगदीशचंद्र. परंपराशील नाट्य. बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद, पटना 2000.
8. काला, मीनाक्षी. प्रयोगधर्मी नाटककार जगदीश चंद्र माथुर, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983

बिहार में शराबबंदी नीतिः सुशासन या सामाजिक नियंत्रण?

साइस्ता बानो

(UGc NEt iQUALIFIED)

बिहार में शराबबंदी नीति केवल प्रशासनिक निर्णय नहीं बल्कि एक गहरे सामाजिक-राजनीतिक प्रयोग के रूप में उभरी 15 अप्रैल 2016 को जब बिहार सरकार ने पूर्ण शराबबंदी लागू की, तब इसे महिला सशक्तिकरण, पारिवारिक शांति और सामाजिक सुधार के रूप में प्रस्तुत किया गया। राज्य का तर्क था कि शराब गरीबी, घरेलू हिंसा, अपराध और स्वास्थ्य संकट की जड़ है, विशेषकर बिहार जैसे सामाजिक- आर्थिक रूप से पिछड़े राज्य में। संविधान के अनुच्छेद 47 में निहित "मादक द्रव्यों के सेवन पर प्रतिबंध" के नीति-निर्देशक सिद्धांत को आधार बनाकर इसे नैतिक वैधता दी गई। किंतु समय के साथ यह प्रश्न उभरकर सामने आया कि क्या यह नीति वास्तव में सुशासन का उदाहरण है या फिर राज्य द्वारा नागरिकों के निजी जीवन पर कठोर सामाजिक नियंत्रण? सुशासन का अर्थ केवल नैतिक उद्देश्यों की घोषणा नहीं बल्कि प्रभावी क्रियान्वयन, न्यूनतम दमन और अधिकतम कल्याण से जुड़ा होता है। शराबबंदी ने जहाँ एक ओर सामाजिक सुधार की आशा जगाई, वहीं दूसरी ओर पुलिस, न्यायालय और कारागार व्यवस्था पर अभूतपूर्व दबाव भी डाला। इसीलिए बिहार की शराबबंदी नीति को केवल समर्थन या विरोध के चश्मे से नहीं, बल्कि आंकड़ों, सामाजिक प्रभावों और लोकतांत्रिक मूल्यों के संदर्भ में समग्र रूप से समझना आवश्यक है।

(1) कानूनी ढांचा और राज्य की मंशा

बिहार निषेध एवं उत्पाद अधिनियम, 2016 को देश के सबसे कठोर शराब कानूनों में गिना जाता है। इस अधिनियम के तहत शराब का निर्माण, बिक्री, सेवन, भंडारण और परिवहन सभी अपराध घोषित किए गए। न्यूनतम दस वर्ष की सजा और भारी जुर्माने का प्रावधान इस कानून को असाधारण रूप से सख्त बनाता है। सरकार का तर्क था कि कठोर कानून ही सामाजिक बुराई को जड़ से खत्म कर सकता है। लेकिन व्यवहार में यह कठोरता कई बार गरीबों, दलितों और ग्रामीण मजदूरों पर disproportionately लागू होती दिखाई दी। NCRB और बिहार पुलिस के आंकड़े बताते हैं कि गिरफ्तार होने वालों में बड़ी संख्या दिहाड़ी मजदूरों और निम्न आय वर्ग के लोगों की है, जबकि संगठित तस्करी नेटवर्क अपेक्षाकृत कम दंडित हुए। यह स्थिति सुशासन की उस अवधारणा पर प्रश्नचिह्न लगाती है जिसमें कानून सबके लिए समान होता है। कानून का उद्देश्य सुधार होना चाहिए, न कि भय। जब कोई नीति सुधार के बजाय दमन का उपकरण बन जाए, तब वह सामाजिक नियंत्रण की श्रेणी में प्रवेश करने लगती है। इसलिए बिहार का कानूनी ढांचा नीयत में सुधारवादी, परंतु क्रियान्वयन में दमनकारी प्रतीत होता है।

(2) सामाजिक प्रभावः महिलाओं और परिवारों पर असर.....

बिहार सरकार और NFHS-5 के आंकड़ों के अनुसार शराबबंदी के बाद महिलाओं के जीवन में सकारात्मक बदलाव दर्ज किए गए। घरेलू हिंसा की शिकायतों में गिरावट, घर के खर्चों में सुधार और बच्चों की शिक्षा पर बढ़ता निवेश-ये सभी संकेत बताते हैं कि शराबबंदी का सामाजिक प्रभाव पूरी तरह नकारात्मक नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों और महिला पंचायतों ने खुले मंचों पर स्वीकार किया कि पुरुषों की शराबखोरी से जुड़ी समस्याएँ कुछ हद तक कम हुई हैं। NFHS-5 में बिहार में पुरुषों के शराब सेवन की दर राष्ट्रीय औसत से कम पाई गई, जो नीति की आंशिक सफलता को दर्शाती है। हालांकि, यह भी सच है कि शराब पूरी तरह समाप्त नहीं हुई बल्कि उसका स्वरूप बदला। महिलाएँ अब भी अवैध शराब, घरेलू कलह और जहरीली शराब से होने वाली मौतों का दंश झेल रही हैं। यानी शराबबंदी ने समस्या को खत्म नहीं किया, बल्कि उसे अंडरग्राउंड कर दिया। सुशासन तब होता है जब नीति समस्या का स्थायी समाधान देय जबकि बिहार में यह समाधान अस्थायी और आंशिक दिखाई देता है।

(3) स्वास्थ्य और सार्वजनिक जीवन पर प्रभावः

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से शराबबंदी के पक्ष में मजबूत तर्क दिए जाते हैं। शराब से जुड़ी लीवर बीमारी, दुर्घटनाएँ और मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ निश्चित रूप से सार्वजनिक स्वास्थ्य का बड़ा बोझ थीं। राज्य सरकार का दावा है कि शराबबंदी के बाद सरकारी अस्पतालों में शराब-जनित बीमारियों के मामलों में कमी आई। परंतु दूसरी ओर जहरीली शराब से हुई मौतों का आंकड़ा इस दावे को चुनौती देता है। 2016 के बाद से अब तक बिहार में सैकड़ों लोग नकली शराब पीने से मारे जा चुके हैं। यह दर्शाता है कि जब राज्य

वैध शराब का रास्ता बंद करता है, लेकिन पुनर्वास, परामर्श और वैकल्पिक नशामुक्ति ढांचा विकसित नहीं करता, तब स्वास्थ्य संकट और गहरा हो जाता है। WHO भी मानता है कि नशा नियंत्रण केवल प्रतिबंध से नहीं बल्कि स्वास्थ्य-आधारित हस्तक्षेप से संभव है। बिहार मॉडल में यह संतुलन कमजोर दिखता है, जिससे सुशासन की जगह नियंत्रणवादी दृष्टिकोण हावी प्रतीत होता है।

(4) आर्थिक प्रभाव और राजस्व संकट:

शराबबंदी से पहले बिहार को उत्पाद शुल्क से लगभग 3000-3500 करोड़ रुपये वार्षिक राजस्व प्राप्त होता था। शराबबंदी के बाद यह आय लगभग समाप्त हो गई। सरकार ने तर्क दिया कि सामाजिक लाभ आर्थिक नुकसान से अधिक महत्वपूर्ण हैं, किंतु व्यवहार में यह राजस्व घाटा शिक्षा, स्वास्थ्य और बुनियादी ढांचे पर खर्च की क्षमता को प्रभावित करता है। अन्य उत्तर भारतीय राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश और हरियाणा ने शराब से होने वाली आय को सामाजिक योजनाओं में निवेश किया, जबकि बिहार को वैकल्पिक कर स्रोतों पर निर्भर होना पड़ा। इसके अलावा अवैध शराब से होने वाला "shadow economy" राज्य को राजस्व नहीं देता, बल्कि अपराध को बढ़ावा देता है। यह स्थिति दर्शाती है कि आर्थिक दृष्टि से शराबबंदी सुशासन का टिकाऊ मॉडल नहीं बन पाई है।

(5) पुलिस, न्यायालय और जेलों पर दबाव:

शराबबंदी कानून के बाद बिहार की जेलों में बंद कैदियों की संख्या तेजी से बढ़ी। बड़ी संख्या में विचाराधीन कैदी केवल शराब से जुड़े मामलों में बंद हैं। इससे न्यायिक प्रक्रिया धीमी हुई और जेलों में overcrowding बढ़ी। पुलिस बल का बड़ा हिस्सा शराब छापेमारी में लगा रहा, जिससे गंभीर अपराधों की जांच प्रभावित हुई। सुशासन का मूल सिद्धांत ''ffeective policing with proportionality'' है, लेकिन बिहार में शराबबंदी ने पुलिस को एक नैतिक प्रहरी की भूमिका में धकेल दिया। यह स्थिति कानून-व्यवस्था की प्राथमिकताओं को विकृत करती है और सामाजिक नियंत्रण की प्रवृत्ति को मजबूत करती है।

(6) लोकतांत्रिक अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता

लोकतंत्र में राज्य नागरिकों के निजी जीवन में न्यूनतम हस्तक्षेप करता है। शराबबंदी इस सिद्धांत को चुनौती देती है। वयस्क नागरिकों को यह तय करने का अधिकार होना चाहिए कि वे क्या उपभोग करें, जब तक वह दूसरों को नुकसान न पहुँचाए। बिहार की नीति सामूहिक नैतिकता को व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर थोपती प्रतीत होती है। यही कारण है कि इसे कई विद्वान paternalistic policy मानते हैं, जहाँ राज्य "माता-पिता की तरह व्यवहार करता है। यह दृष्टिकोण सुशासन के बजाय सामाजिक नियंत्रण की ओर झुकता है।

(7) निष्कर्ष: संतुलन की आवश्यकता

बिहार की शराबबंदी नीति न पूरी तरह विफल है और न पूरी तरह सफल। इसने महिलाओं और परिवारों को राहत दी, लेकिन साथ ही अवैध अर्थव्यवस्था, दमनकारी कानून और प्रशासनिक बोझ भी पैदा किया। सुशासन तभी संभव है जब नीति सुधार, अधिकार और व्यवहारिकता - तीनों के बीच संतुलन बनाए। वर्तमान स्वरूप में बिहार की शराबबंदी अधिकतर सामाजिक नियंत्रण का उपकरण बनती दिखती है, न कि समावेशी सुशासन का मॉडल।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

(1) Government of Bihar (2016)
The Bihar Prohibition and Excise Act] 2016
बिहार सरकार, उत्पाद एवं मद्य निषेध विभाग, पटना।
(2) National Family Health Survey (NFHS&4 & NFHS&5)
Ministry of Health and Family Welfare] Government of India
(3) National Crime Records Bureau (NCRB)
Crime in India Reports (2016&2023)
Ministry of Home Affairs] Government of India-
(4) Planning Commission / NITI Aayog & Bihar Economic Survey
Economic Survey of Bihar
(5) World Health Organization (WHO)
Global Status Report on Alcohol and Health
Geneva-
(6) Press Information Bureau (PIB)] Government of Ind

सह-शैक्षणिक गतिविधियों का विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के विकास में योगदानः एक तुलनात्मक विश्लेषण

पूजा सिंह

शोध छात्रा, मनोविज्ञान विभाग, बी.आर.ए.वि.वि., मुजफ्फरपुर

सार (Abstract)

यह अध्ययन सह-शैक्षणिक गतिविधियों (Co-curricular - Extracurricular Activities) के माध्यम से विद्यार्थियों की सृजनात्मकता (Creativity) के विकास पर उनके योगदान का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध में दर्शाया गया है कि सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों की विद्याध्ययन से परे रचनात्मक सोच, समस्या-समाधान, नवाचार, आत्म-अभिव्यक्ति और संज्ञानात्मक कौशलों के विकास को प्रभावित करती हैं। शोध में सर्वेक्षण विधि और तुलनात्मक विश्लेषण का उपयोग किया गया है। परिणाम दर्शाते हैं कि सह-शैक्षणिक गतिविधियों में सम्मिलन से विद्यार्थियों के रचनात्मक स्तर में सकारात्मक वृद्धि होती है, विशेष रूप से जब गतिविधियाँ कलात्मक, साहित्यिक और अभिनेतृत्व-आधारित हों।

कीवर्डः सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ, सृजनात्मकता, सृजनात्मक सोच, संज्ञानात्मक विकास, तुलनात्मक विश्लेषण।

1. प्रस्तावना (Introduction)

सृजनात्मकता आज के शिक्षा-पर्यावरण में एक महत्वपूर्ण कौशल के रूप में उभर रही है। सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ - जैसे कला, संगीत, नाटक, साहित्य, विज्ञान क्लब, और विचार-अभिव्यक्ति कार्यशालाएँ कृ विद्यार्थियों के शैक्षणिक और गैर-शैक्षणिक जीवन के बीच एक सेतु का कार्य करती हैं। ये गतिविधियाँ न केवल शिक्षा के अतिरिक्त आयाम प्रदान करती हैं, बल्कि विद्यार्थियों के सृजनात्मक सोच, Divergent Thinking, Problem-Solving और सामाजिक कौशलों को भी विकसित करती हैं।

भूमिका (Introduction)

समकालीन शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य केवल विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तक-आधारित ज्ञान प्रदान करना नहीं रह गया है, बल्कि उनमें ऐसे संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सृजनात्मक कौशलों का विकास करना भी है, जो उन्हें निरंतर परिवर्तित होती सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिस्थितियों में प्रभावी ढंग से अनुकूलन करने में सक्षम बनाते हैं। इस संदर्भ में सृजनात्मकता (Creativity) को 21वीं सदी का एक अनिवार्य जीवन-कौशल माना जा रहा है, जो समस्या-समाधान, नवाचार, आत्म-अभिव्यक्ति और आलोचनात्मक चिंतन की आधारशिला है। शिक्षा-मनोविज्ञान के क्षेत्र में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि सृजनात्मकता केवल जन्मजात क्षमता नहीं है, बल्कि अनुकूल शैक्षणिक वातावरण और उपयुक्त अनुभवों के माध्यम से विकसित की जा सकती है।

पारंपरिक औपचारिक शिक्षा प्रणाली, जो मुख्यतः परीक्षा-केंद्रित और स्मृति-आधारित अधिगम पर आधारित रही है, विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमताओं के पूर्ण विकास में अक्सर सीमित सिद्ध होती है। इसी कारण शिक्षा-प्रक्रिया में सह-शैक्षणिक गतिविधियों का महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ - जैसे कला, संगीत, नाटक, वाद-विवाद, साहित्यिक रचना, खेलकूद, विज्ञान क्लब एवं नवाचार-आधारित परियोजनाएँ-विद्यार्थियों को कक्षा के औपचारिक दायरे से बाहर सीखने का अवसर प्रदान करती हैं। ये गतिविधियाँ विद्यार्थियों को स्वतंत्र रूप से सोचने, नए विचारों का सृजन करने तथा अपनी भावनाओं और विचारों को विविध रूपों में अभिव्यक्त करने का मंच देती हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों के अपसारी चिंतन (Divergent Thinking), कल्पनाशक्ति, जिज्ञासा, आत्म-विश्वास तथा आंतरिक प्रेरणा को सुदृढ़ करती हैं। रचनात्मक गतिविधियों में सहभागिता विद्यार्थियों के मस्तिष्कीय लचीलेपन (Cognitive Flexibility) को बढ़ाती है, जिससे वे समस्याओं के वैकल्पिक समाधान खोजने और नवीन दृष्टिकोण अपनाने में सक्षम होते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत - जैसे गार्डनर का बहु-बुद्धि सिद्धांत और गिलफोर्ड का संरचना-बुद्धि मॉडल - यह स्पष्ट करते हैं कि विविध अनुभव और गतिविधियाँ रचनात्मकता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

यद्यपि सह-शैक्षणिक गतिविधियों के महत्व को लेकर सामान्य सहमति दिखाई देती है, तथापि विभिन्न प्रकार की गतिविधियों (कलात्मक, खेलकूद, बौद्धिक एवं तकनीकी) के सापेक्ष प्रभावों पर तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित हैं, विशेषकर भारतीय शैक्षणिक संदर्भ और मनोविज्ञान विषय के अंतर्गत। इसी पृष्ठभूमि में प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ किस प्रकार और किस सीमा तक विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के विकास में योगदान देती हैं तथा विभिन्न गतिविधियों के प्रभावों में क्या अंतर परिलक्षित होता है।

इस प्रकार, यह शोध न केवल शिक्षा-मनोविज्ञान के सैद्धांतिक पक्ष को समृद्ध करता है, बल्कि शिक्षकों, पाठ्यक्रम-निर्माताओं और नीति-निर्धारकों के लिए व्यावहारिक अंतर्दृष्टि भी प्रदान करता है, जिससे शिक्षा प्रणाली को अधिक सृजनात्मक, समावेशी और विद्यार्थी-केंद्रित बनाया जा सके।

हाल के शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि सह-शैक्षणिक कार्यक्रम शैक्षणिक उपलब्धि और व्यक्तित्व विकास दोनों पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं, जिससे रचनात्मकता का समग्र स्तर भी बढ़ता है।

2. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

2.1 सह-शैक्षणिक गतिविधियों का सैद्धांतिक आधार

सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ पारंपरिक पाठ्यक्रम के अतिरिक्त होती हैं और विद्यार्थियों को अलग-अलग कौशल विकसित करने का अवसर देती हैं। इन्हें केवल मनोरंजन के रूप में नहीं बल्कि समग्र विकास रणनीति के रूप में देखा जाना चाहिए।

2.2 सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ और सृजनात्मकता

एक तुलनात्मक अध्ययन में यह निष्कर्ष निकला कि सह-शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेने वाले छात्रों के Divergent Association Test जैसे Creativity Measures में बेहतर परिणाम मिले, जिससे यह संकेत मिलता है कि रचनात्मक गतिविधियाँ रचनात्मकता के विकास के लिए महत्वपूर्ण होती हैं।

2.3 वैश्विक और समकालीन शोध

मध्य विद्यालय और उच्च विद्यालय स्तर पर अध्ययन से यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि सह-शैक्षणिक गतिविधियों का किशोरों की मौलिक सोच, intrinsic motivation और curiosity (जिज्ञासा) पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

3. अनुसंधान उद्देश्य (Objectives of Study)

1. सह-शैक्षणिक गतिविधियों का विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के विकास पर प्रभाव मापना।
2. गतिविधियों के प्रकार (कला आधारित, खेल, विज्ञान/तकनीकी क्लब) के प्रभाव की तुलना करना।
3. शैक्षणिक प्रदर्शन और सृजनात्मकता के बीच सह-संक्रमण का विश्लेषण।

4. अनुसंधान पद्धति (Methodology)

4.1 शोध डिजाइन

यह मिश्र विधि (Mixed Methods) पर आधारित अध्ययन है जिसमें प्रश्नावली सर्वेक्षण, अर्ध-संरचित साक्षात्कार, और तुलनात्मक विश्लेषण शामिल हैं।

4.2 प्रतिभागी (Participants)

शैक्षणिक संस्थानों के 300 छात्रों को चयनित किया गया, जिनमें से 150 सह-शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेते हैं और 150 नहीं लेते। किसी भी पूर्व-ज्ञान को हटाने के लिए यादृच्छिक नमूना चयन का उपयोग किया गया।

4.3 उपकरण (Tools)

- Creativity Assessment Scale (CAS)
- Divergent Association Test (DAT)
- Likert Scale Survey for Student Engagement

4.4 डेटा विश्लेषण

सांख्यिकीय (iQuantitative) डेटा के लिए ANOVA और Regression Analysis का उपयोग किया गया। iQualitative डेटा के लिए विषय-आधारित विश्लेषण (Thematic Analysis) का उपयोग किया गया।

5. परिणाम (Results)

5.1 सृजनात्मकता में वृद्धि

सह-शैक्षणिक गतिविधियों में भाग लेने वाले छात्रों में रचनात्मकता के मापदंडों (जैसे Divergent Thinking, Fluidity of Ideas) में वृद्धि पाई गई।

5.2 गतिविधि-आधारित तुलनात्मक परिणाम

- कला/साहित्य आधारित गतिविधियाँ (जैसे चित्रकला, कविता रचना) रचनात्मकता में सर्वाधिक वृद्धि दिखाती हैं।
- खेल आधारित गतिविधियों ने टीम-वर्क और संज्ञानात्मक लोकाचार को अधिक प्रभावित किया है।

5.3 अतिरिक्त प्रभाव

सह-शैक्षणिक गतिविधियों के लाभ शैक्षणिक प्रदर्शन पर अप्रत्यक्ष रूप से सकारात्मक प्रभाव डालते हैं, विशेषकर समय-प्रबंधन, आत्म-विश्वास और समूह-समन्वय में सुधार के माध्यम से।

6. चर्चा (Discussion)

यह अध्ययन सिद्धांत और व्यवहार दोनों स्तरों पर उन तर्कों का समर्थन करता है जिनके अनुसार सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों की सृजनात्मक सोच को ऊँचाई प्रदान करती हैं। सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ कक्षाओं के बाहर सीखने का अनुभव प्रदान करती हैं जो पारंपरिक शैक्षणिक प्रणाली से परे रचनात्मक और इनोवेटिव सोच को बढ़ावा देती हैं। यह विश्लेषण दर्शाता है कि सह-शैक्षणिक गतिविधियां सृजनात्मकता विकसित करती हैं, लेकिन प्रकार और संदर्भ महत्वपूर्ण हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से, ये गतिविधियां सेल्फ-एफिकेसी बढ़ाती हैं। सीमाएंरू अधिकांश अध्ययन पश्चिमी हैं, भारतीय डेटा कम। भविष्य में, लॉन्गिट्यूडिनल अध्ययन आवश्यक।

7. निष्कर्ष (Conclusion)

शोध से स्पष्ट होता है कि सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों के सृजनात्मक कौशल के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। कला-आधारित और साहित्यिक गतिविधियाँ विशेष रूप से रचनात्मक सोच के स्तर को उच्च बनाने में प्रभावी हैं। यह शोध शिक्षक, नीति-निर्माता, और शैक्षणिक संस्थानों के लिए महत्वपूर्ण नीतिगत मार्गदर्शन प्रदान करता है।

8. संदर्भ (References)

1. Lutfiu-Kadriu, L., & Zenuni, V., & Miftari-Fetishi, I. (2021). Extra-Curricular Activities as an Incentive for Student Creativity. International Journal of Education and Philology.
2. Moreno-Cortez, C. S., & Nevárez-Montes, J. (2025). Extracurricular Arts: Effects on Creativity and Academics. Journal of Creativity.
3. Student Creative Thinking in East Asia: The Role of Extracurricular Activities and Supportive Environments. (2025). Thinking Skills and Creativity.
4. Karim, K. (2024). Role of Co-Curricular Activities in Academic Success. International Journal of Learning and Development.

किसानों के बीच ग्रामीण उद्यमिता जागरूकता: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

सन्नी गिरी

शोध निर्देशक, समाजशास्त्र विभाग, माँ शाकुम्भरी विश्वविद्यालय, पुंवारका, सहारनपुर

कीर्ति सिंह

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, माँ शाकुम्भरी विश्वविद्यालय, पुंवारका, सहारनपुर

सार (Abstract)

भारतीय ग्रामीण समाज में कृषि आजीविका का प्रमुख आधार रही है, किंतु बदलते सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य, कृषि संकट तथा सीमित आय के कारण किसानों के लिए वैकल्पिक आजीविका साधनों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। ऐसे संदर्भ में ग्रामीण उद्यमिता किसानों के आर्थिक सशक्तिकरण एवं ग्रामीण विकास का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरी है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य किसानों के बीच ग्रामीण उद्यमिता के प्रति जागरूकता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। लेख में ग्रामीण उद्यमिता को विकास समाजशास्त्र, आधुनिकीकरण सिद्धांत तथा वर्ग संरचना के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन दर्शाता है कि सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, शिक्षा, संस्थागत सहयोग तथा सरकारी नीतियाँ किसानों की उद्यमिता जागरूकता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

मुख्य शब्द (Key Words): ग्रामीण उद्यमिता, किसान, जागरूकता, सामाजिक परिवर्तन, ग्रामीण विकास

प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ ग्रामीण समाज की संरचना कृषि आधारित उत्पादन व्यवस्था पर आधारित रही है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कृषि केवल आर्थिक गतिविधि नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संबंधों, वर्ग संरचना, सत्ता संतुलन तथा सांस्कृतिक मूल्यों को भी प्रभावित करती है। परंतु वैश्वीकरण, तकनीकी परिवर्तन एवं बाजार आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार के कारण पारंपरिक कृषि व्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न हुई है। इस स्थिति ने किसानों को वैकल्पिक आय स्रोतों की खोज के लिए विवश किया है।

ग्रामीण उद्यमिता इसी आवश्यकता की उपज है, जो कृषि के साथ-साथ कृषि-आधारित उद्योगों, कुटीर उद्योगों, स्वयं सहायता समूहों, डेयरी, मधुमक्खी-पालन, जैविक खेती एवं लघु व्यवसायों के रूप में सामने आती है। किंतु ग्रामीण उद्यमिता की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि किसानों में इसके प्रति कितनी जागरूकता, समझ और स्वीकार्यता है।

ग्रामीण उद्यमिता: एक समाजशास्त्रीय अवधारणा

ग्रामीण उद्यमिता को केवल आर्थिक क्रिया के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में समझा जाना चाहिए। शूम्पीटर के अनुसार उद्यमिता नवाचार और जोखिम वहन की प्रक्रिया है, जो सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन को गति देती है। ग्रामीण संदर्भ में यह प्रक्रिया किसानों को पारंपरिक कृषि से आगे बढ़कर नए उत्पादन संबंधों एवं बाजार संरचनाओं से जोड़ती है।

समाजशास्त्र में उद्यमिता को सामाजिक पूँजी, नेटवर्क, संस्थागत सहयोग तथा सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़कर देखा जाता है। ग्रामीण समाज में परिवार, जाति, समुदाय और स्थानीय संस्थाएँ किसानों के उद्यमशील निर्णयों को प्रभावित करती हैं। इसलिए ग्रामीण उद्यमिता जागरूकता सामाजिक संरचना से गहराई से जुड़ी हुई है।

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य (Theoretical Perspective)

आधुनिकीकरण सिद्धांत के अनुसार परंपरागत समाज से आधुनिक समाज की ओर संक्रमण में शिक्षा, तकनीकी ज्ञान और उद्यमशीलता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। यह सिद्धांत मानता है कि उद्यमिता के प्रति जागरूकता सामाजिक विकास का सूचक है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण ग्रामीण उद्यमिता को वर्ग संरचना और उत्पादन संबंधों के संदर्भ में देखता है। भूमि स्वामित्व, पूँजी की उपलब्धता और बाजार तक पहुँच यह निर्धारित करती है कि कौन किसान उद्यमिता को अपनाने में सक्षम होगा। वहीं, संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण ग्रामीण उद्यमिता को ग्रामीण समाज की अनुकूलन प्रक्रिया के रूप में देखता है, जो आर्थिक दबावों के बीच सामाजिक संतुलन बनाए रखने में सहायक होती है।

किसानों में उद्यमिता जागरूकता को प्रभावित करने वाले कारक

किसानों की उद्यमिता जागरूकता कई सामाजिक-आर्थिक कारकों से प्रभावित होती है, जिनमें प्रमुख हैं-

- शैक्षिक स्तर
- आर्थिक स्थिति
- सरकारी एवं गैर-सरकारी योजनाओं की जानकारी
- संस्थागत सहयोग
- सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण

अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में जानकारी के अभाव, जोखिम के भय तथा वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण किसान उद्यमिता को अपनाने में हिचकिचाते हैं।

ग्रामीण उद्यमिता एवं सामाजिक परिवर्तन

ग्रामीण उद्यमिता किसानों की आय में वृद्धि के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को भी गति देती है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन, आत्मनिर्भरता, सामाजिक गतिशीलता तथा पलायन में कमी आती है। साथ ही, यह ग्रामीण समाज में नवाचार एवं उद्यमशील संस्कृति के विकास में सहायक होती है।

निष्कर्ष (Conclusion)

प्रस्तुत लेख से यह स्पष्ट होता है कि किसानों के बीच ग्रामीण उद्यमिता जागरूकता केवल आर्थिक विकास का माध्यम नहीं, बल्कि एक व्यापक समाजशास्त्रीय प्रक्रिया है। इसके विकास के लिए शिक्षा, संस्थागत सहयोग, प्रभावी नीतियों तथा सामाजिक जागरूकता को सुदृढ़ करना आवश्यक है। यदि किसानों में उद्यमिता के प्रति जागरूकता बढ़ाई जाए, तो ग्रामीण समाज में सतत विकास एवं सामाजिक सशक्तिकरण को सुनिश्चित किया जा सकता है।

संदर्भ (References)

शूम्पीटर, जे. ए. – Theory of Economic Development

योगेन्द्र सिंह – Modernization of Indian Tradition

आहूजा, राम - भारतीय समाज

Desai, A. R. - Rural Sociology in India

Desai, V. (2009). Rural development: Principles,
policies & Management. Himalaya Publishing House.

Katar, S. (2016). Rural development: Principles, policies & Management. Sage Publications

NABARD. (2021). Status of micro - entreprises in rural India. National Bank for Agriculture & Rural Development

Niranjan Devkota, Ashok Josh at all. Journal of Agribusiness in Developing & Emerging Economics 13 (5), 812-830, 2023

Sushant Tomar, Neeraj Sharma, at all. Emerald Emerging Markets Case Studies 13 (2), 1-17, 2023

Sandeep Saxena, Journal of Business & Management 3(1), 23-29, 2012.

Chandra Mouli Pandeti. M.Sc (Agri) Thesis, 2005

S. Sudha. Agricultural Marketing & Co-Operation 2023-24

Moghana S Lavanya at all. Journal of Management Research 3 (1), 95-100, 2014

Meham Iftikhar, at all Nimra Masood at all.

Senit Gutahun & Manghus at 31 Oct 2025.

Andre Devaux, Maximo at all. Journal of Agribusiness in Developing & Emerging Economies (2018) 8(1): 99-123

Doan Thi Thuy, Pham Tien Thanh at all. Journal of Enterprising Communities: People & Places in the Global Economy (2025) 19(2): 276-293.

Umesh Shrivastav & Satya Ranjan Acharya. World Review of Entrepreneurship Managment & Sustainable Development 18(4): 461

S. Singh. Purusharth - A Journal of Management Ethics & Spirituality 4(2): 86-108. (Sep 2011)

Double Farmer's Income Report (2017-2022)

Sharma, R.K. (2015). Rural Development in India.

Ministry of MSME (2022). Annual Report.

"समाज में महिलाओं के अधिकार, सशक्तिकरण एवं चुनौतियों का अध्ययन"

सन्नी कुमार

शोध निर्देशक, असि0 प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, माँ शाकुम्भरी विश्वविद्यालय, (कैम्पस) पूंवारका सहारनपुर

पूजा

शोधार्थी, समाजशास्त्र अनुक्रमांक 240018060004

परिचय-

महिला सशक्तिकरण वह प्रक्रिया है जिसमें महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से समान अधिकार और अवसर प्राप्त होते हैं। इसका मतलब है कि वह अपने जीवन के निर्णय स्वयं ले सकें, शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सकें, और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनें। जब महिलाएँ सशक्त होती हैं, तो न केवल उनका व्यक्तिगत विकास होता है, बल्कि पूरे परिवार और समाज का समग्र विकास भी तेज होता है। संक्षेप में, महिला सशक्तिकरण महिलाओं को समाज का एक मजबूत, स्वतंत्र और समान भागीदार बनाने की दिशा में एक समग्र प्रयास है। सशक्तिकरण की बात समझ में रहकर उठती रही हैद्य महिला सशक्तिकरण का अर्थ कुछ इस प्रकार लगाया जाता है कि जैसे महिलाओं को किसी वर्ग विशेष कर पुरुष वर्ग का सामना करने के लिए सुद्रढ किया जा रहा हैद्य भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही नारी को पुरुष के समान अधिकार प्रदान किए गए हैं। उसे अपने जीवन की गरिमा को सुरक्षित रखने और सम्मानित जीवन जीने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया है। यहां तक की शिक्षा और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में भी महिलाओं को अपनी प्रतिभा को निखारने और मुखरित करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई हैद्य महाभारत काल के पश्चात नारी की इस स्थिति में गिरावट आयीद्य उस शिक्षा का मौलिक अधिकार छीन लिया गयाद्य और नारी को प्रताड़ित किया जाने लगा, जबकि नारी प्रताड़ना की नहीं तारन की अधिकारी हैद्य उनका कल्याण होना चाहिए, जिसके लिए पुरुष समाज को विशेष रक्षा उपाय करने चाहिएद्यनारी के बिना पुरुष की परिकल्पना भी नहीं की जा सकतीद्य ईश्वर ने नारी को सहज, सरल और कोमल बनाया है क्रुर नहींद्य निर्माण के लिए शहर सरल और कोमल स्वभाव आवश्यक हैद्य विध्वंस के लिए क्रुरता आवश्यक हैद्य रानी लक्ष्मीबाई हो या अन्य कोई वीरांगना अपनी सहनशक्ति की सीमाओं को टूटने देखकर ही और किन्हीं अन्य कारणों से स्वंय को अरक्षित अनुभव करके ही क्रोध की ज्वाला पर चढ़ी। यहां तक इंदिरा गांधी भी नारी के सहज स्वाभाव से परे नहीं थीद्य सिंडिकेट से भयभीत इंदिरा गांधी ने देश में आपातकाल की घोषणा कर दी। अन्यथा इंदिरा केवल एक नारी थीद्य नारी को अपने मातृत्व पर ध्यान देना चाहिएद्य वह पुरुष की प्रतिद्वंवंदी नहीं है।

महिला सशक्तिकरण का अर्थ

महिला सशक्तिकरण का अर्थ है कि स्त्री पुरुषों के बीच से 'शक्ति संतुलन में ऐसा परिवर्तन करना, ताकि समाज में शक्ति का सामान्य पूर्वक वितरण हो सके। इस प्रक्रिया के आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों ही पक्ष है। आर्थिक सशक्तिकरण का अर्थ है ऐसी पोषणीय जीविकाओं द्वारा बेहतर ढंग से जीवन यापन जिसकी स्वामिनी और प्रबंधक महिलाएं ही होती है। महिला के सामाजिक सशक्तिकरण का तात्पर्य है एक समानता पूर्ण सामाजिक व्यवस्था जिसमे स्त्री एवं पुरुष की स्थिति सामानों से परिस्थिति समान हो। राजनीतिक सशक्तीकरण का तात्पर्य एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली से है जो राजनीतिक निर्वाचन की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी एवं नियंत्रण की समर्थक हो।

साहित्यिक समीक्षा-

अनुसंधान की साहित्यिक समीक्षा किसी खास विषय पर पहले से मौजूद सभी विद्वानों के लेखों, किताबों और शोधों का एक व्यवस्थित और आलोचनात्मक अध्ययन है, जो ज्ञान के मौजूदा स्थिति को समझने, उसमें मौजूद कमियों को पहचानने और अपने नए शोध के लिए एक आधार तैयार करने के लिए किया जाता है, ताकि यह बताया जा सके कि आपका काम मौजूदा ज्ञान में कैसे योगदान देगा और उसकी विश्वसनीयता स्थापित की जा सके। यह सिर्फ सारांश नहीं, बल्कि उन कार्यों का विश्लेषण, संश्लेषण और मूल्यांकन करती है।

डॉ भीमराव अंबेडकर:-

डॉ भीमराव अंबेडकर ने महिला सशक्तिकरण के लिए साहित्य, भाषणों और संवैधानिक प्रयासों के माध्यम से एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने महिलाओं की शिक्षा, संपत्ति अधिकारों, सामाजिक समानता, और राजनीतिक भागीदारी पर जोर दिया, विशेष कर मनु स्मृति द्वारा महिलाओं की स्थिति को गिराने की आलोचना की और हिंदू कोड बिल के माध्यम से उन्हें बराबरी के अधिकार दिलाने का अथक प्रयास किया, जिसके लिए उन्होंने मंत्री पद से इस्तीफा भी दे दिया था।

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा ने महिला सशक्तिकरण के लिए साहित्य के माध्यम से स्त्री की आंतरिक शक्ति, आत्मसम्मान और मानसिक स्वतंत्रता पर जोर दिया, उन्होंने श्रृंखला की कड़ियां जैसे निबंध और कविताओं के सामाजिक बंधनों की आलोचना करते हुए स्त्री की अस्मिता और उसके वास्तविक स्वरूप को उजगार किया, छाया, 'घर और बाहर', जैसे रचनाओं में नारी के दमित स्वपनों और संघर्षों को आवाज दी, तथा उन्हें केवल पुरुष की छाया ने मानकर 'संगिनी' (समान साथी) के रूप में स्थापित करने की वकालत की, जो आत्म-निर्भरता और पूर्णता की ओर ले जाती है।

ज्योतिबा फुले:- ज्योतिबा फुले का महिला सशक्तिकरण में योगदान है भूतपूर्व था, विशेषकर नारी शिक्षा के क्षेत्र में, जहां उन्होंने सावित्रीबाई फुले के साथ मिलकर 1848 में भारत का पहला लड़कियों का स्कूल खोला और समाज में पर्याप्त कुरीतियों, जैसे बाल विवाह और विधवाओं की दयनिक स्थिति के खिलाफ आवाज उठाई; उन्होंने विधवा पुनर्विवाह को बढ़ावा दिया और विधवाओं व अनाथों के लिए आश्चर्य ग्रह स्थापित किए, जिससे महिलाओं को शिक्षा, सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक किया गया, जो वास्तव में उनके सशक्तीकरण की नीवं थी।

शोध का उद्देश्य-;

1. समाज में महिलाओं की वास्तविक स्थिति को जानना।
2. समाज में महिलाओं की दोहरी भूमिका को जाननौ
3. महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करना, महिलाओं की परिवारिक निर्णय में भागीदारी को जानना।

अध्ययन की आवश्यकता-

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व को समझना किसी भी अध्ययन के लिए आवश्यक होता है जब किसी विषय पर शोध किया जाता है तब यह आवश्यक होता है कि विषय के लिए शोध की आवश्यकता है कि नहीं समाज में महिलाओं के अधिकार सहारनपुर जिले के पूंवारका ब्लॉक के संदर्भ में वर्तमान स्थिति में शोध के अध्ययन की आवश्यकता है।

महिलाओं के प्रति अपराध लगातार बढ़ रहे हैं लुट, चोरी की घटनायें लगातार हो रही है आज हम इतना ज्यादा विकास की ओर बढ़ चुके हैं शिक्षा का स्तर बढ़ गया है योजनाएं समाज में क्रियान्वित है फिर पीएम महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं ला पा रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी यहां पर बहुत ज्यादा पिछड़ापन है, हम देख रहे हैं कि घाट क्षेत्र में बहुत ज्यादा शिक्षा का अभाव है।

अध्ययन की समस्या-

किसी भी शोध कार्य को करने में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। समाज में महिलाओं की आज भी आर्थिक स्थिति कमजोर है उनके प्रति लोगों की गलत सोच महिलाओं के प्रति हो रही घरेलू हिंसा, भ्रूण हत्या व बलात्कार जैसे मामले अत्यंत गंभीर हैद्य महिलाओं को उनके पारिवारिक निर्णय में अधिकार प्रदान नहीं किया जाता है।

अध्ययन क्षेत्र-हमने जिला सहारनपुर के ब्लॉक मुजफ्फराबाद को अध्ययन क्षेत्र चुना है। जिला सहारनपुर ब्लॉक पूंवारका में टोटल ग्राम की संख्या 152 है। जो की 100 ग्राम पंचायत में विभाजित है। जिसमें पूंवारका ब्लॉक सहारनपुर तहसील के अंतर्गत आता है, हमें पूंवारका ब्लॉक में समाज में महिलाओं के अधिकार, सशक्तिकरण एवं चुनौतियों रिसर्च अध्ययन क्षेत्र चुना है। सहारनपुर जिले का अक्षांश लगभग 29° 34' 45' उत्तर से 30° 21' 30' उत्तर (29.58° छ से 30.35° N) के बीच है, और यह उत्तर प्रदेश का सबसे उत्तरी जिला है, जो उत्तर में शिवालिक पहाड़ियों से सटा है और यमुना नदी पश्चिम की ओर सीमा बनाती है। अक्षांशीय विस्तार 29° 34' 45' N - 30° 21' 30' N.

देशांतरीय विस्तार 77° 09' E - 78° 14' 45' E.

भौगोलिक स्थिति: यह उत्तर प्रदेश के सबसे उत्तरी छोर पर स्थित है और हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और हरियाणा राज्यों के साथ सीमा साझा करता है. यह सहारनपुर जिले के अंतर्गत आने वाले 11 ब्लॉकों में से एक है। सन 2025 में पूंवारका ब्लॉक की टोटल

जनसंख्या लगभग 4025190 के आसपास आंकी गई है ब्लॉक की सहारनपुर से दूरी लगभग 10 किलोमीटर, तथा बरौली से दूरी लगभग 15 किलोमीटर है,

अध्ययन का महत्व -:

अध्ययन में महिला सशक्तिकरण का महत्व यह है कि यह महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सक्षम बनाता है, जिससे वे सूचित निर्णय ले सकें, समाज और अर्थव्यवस्था में पूरी तरह योगदान कर सकें और लैंगिक समानता हासिल कर सकें, जो किसी भी राष्ट्र के सतत विकास के लिए जरूरी है। सशक्त महिलाएँ न केवल अपने परिवार बल्कि पूरे समुदाय और देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जिससे समाज में सकारात्मक बदलाव आता है और असमानताएँ दूर होती हैं। परिवार और समाज की हदों को पीछे छोड़ने के द्वारा फैसला, अधिकार, विचार दिमाग आदि सभी पहलुओं से महिलाओं को अधिकार देना उन्हें स्वतंत्र बनाने के लिए है। सभी में यानी समाज की हर एक क्षेत्र में पुरुष और महिला दोनों को बराबरी में लाना होगा। देश, समाज और परिवार की उज्जवल भविष्य के लिए महिला सशक्तिकरण बेहद जरूरी है। महिलाओं को स्वस्थ एवं उपयुक्त पर्यावरण की आवश्यकता है जिससे कि वह हर क्षेत्र में अपना खुद का फैसला ले सके चाहे वो स्वंय, देश परिवार या समाज किसी के लिए भी हो।

अध्ययन में महिला सशक्तिकरण का महत्वः

शिक्षा और ज्ञान, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक और राजनीतिक भागीदारी, आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास, सतत विकास, रूढ़ियों और भेदभाव का अंत,

महिला सशक्तिकरण के अध्ययन में उत्तरदाता की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक पृष्ठभूमि को जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह जानकारी सशक्तिकरण की स्थिति का सटीक विश्लेषण करने, चुनौतियों की पहचान करने और प्रभावी नीतियां बनाने के लिए आवश्यक है।

सामाजिक पृष्ठभूमि-:

सामाजिक पृष्ठभूमि महिलाओं की स्थिति और उनके सामने आने वाली बाधाओं को समझने में मदद करती है।

रूढ़िवादी सोचः सामाजिक मानदंड और अपेक्षाएं अक्सर महिलाओं की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को तय करती हैं। रूढ़िवादी विचारधाराओं को तोड़ना सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण संकेत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

- ग्रामीण महिला सशक्तिकरण कुरुक्षेत्र मार्च 2008 सूचना भवन नई दिल्ली 11003।
- महिला सशक्तिकरण अतीत से अब तक इंद्र कुमारी सिन्हा सितंबर 2003 योजना मासिक पत्रिका।
- देवपुरा प्रतापभल, महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का महत्व कुरुक्षेत्र अंक 5 मार्च 2006।
- स्त्री मुक्ति का सपना-संपा0 कमला प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2009)
- स्त्री, परंपरा और आधुनिकता-सपां, राज किशोर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (2004)
- स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन-वोलस्टन, राजकमल प्रकाशन, 2009
- नारी स्वतंत्रता और कम्युनिस्ट नैतिकता- क्लारा जेटकिन रेनबो लोक शिक्षण, पब्लिकेशन, नोएडा
- तिवारी, आर.पी.(1999) "भारतीय नारीः वर्तमान समस्याएं एवं समाधान", नई दिल्ली।
- व्यास डॉ मीनाक्षी, नई चेतना और सामाजिक विधान, रोशनी पब्लिकेशनस, कानपुर 2008
- श्रीवास्तव, सुधा रानी (1999), "भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति", कॉमनवेल्थस पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- अंसारी, एम. ए. (2001), "महिला और मानवाधिकार", ज्योति प्रकाशन, गोरखपुर।
- कानिटकर मुकुल 'भारत में महिला शिक्षा, समाज व सरकार की भूमिका,' योजना सितंबर 2016

कबीर के काव्य में सामाजिक बोध और व्यंग्य

लल्लू सिंह वर्मा

शोधार्थी, (हिन्दी विभाग), बरेली कॉलेज, बरेली

डॉ० परमजीत कौर

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली

सारांश

मध्यकाल को भारतीय हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रायः स्वर्णयुग के रूप में स्वीकार किया जाता है। यह काल न केवल साहित्यिक सृजन की दृष्टि से समृद्ध था, बल्कि सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्संरचना का भी साक्षी रहा है। इसी ऐतिहासिक परिवेश में संत कबीर का काव्य एक सशक्त सामाजिक हस्तक्षेप के रूप में उभरता है। कबीर का काव्य केवल आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के साथ-साथ तत्कालीन समाज की रूढ़ियों, बाह्याचारों, पाखंडों तथा वर्गगत असमानताओं पर तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करता है।

कबीर ने निर्गुण भक्ति की परंपरा में रहकर समाज के ठहरे हुए ढाँचों को प्रश्नांकित किया। उनका सामाजिक बोध मानव-मात्र की समानता, श्रम की गरिमा, आंतरिक शुद्धता और अनुभवजन्य सत्य पर आधारित है। जाति, धर्म, संप्रदाय और कर्मकाण्डख़इन सभी के विरुद्ध कबीर की वाणी एक विद्रोही चेतना के रूप में सामने आती है। यह विद्रोह किसी हिंसक प्रतिरोध का नहीं, बल्कि व्यंग्य, प्रतीक और सहज लोकभाषा के माध्यम से किए गए बौद्धिक हस्तक्षेप का है।

कबीर का व्यंग्य केवल उपहास न होकर सामाजिक चेतना को झकझोरने वाला एक नैतिक उपकरण हैख़

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़" जैसी पंक्तियाँ धार्मिक पाखंड पर करारी चोट करती हैं। फलतः कबीर का काव्य सामाजिक बोध और व्यंग्य चेतना का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करता है, जो मध्यकालीन समाज की विसंगतियों को उजागर करते हुए मानवतावादी दृष्टि को प्रतिष्ठित करता है (द्विवेदी, 1990; सिंह, 2009)।

मुख्य शब्दः कबीर, सामाजिक बोध, व्यंग्य चेतना, निर्गुण भक्ति, मध्यकालीन समाज, मानवतावाद, पाखंड-विरोध।

प्रस्तावना

मध्यकाल को भारतीय हिंदी साहित्य के इतिहास में स्वर्णयुग माना जाता है। इस काल में साहित्य और कला अपने उत्कर्ष पर थीं। भारतीय संस्कृति और धर्म की व्याख्या इस युग में नए सामाजिक-ऐतिहासिक संदर्भों के साथ की गई। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इसे धार्मिक पुनरुत्थान और 'पुनर्जागरण' की संज्ञा दी है (मिश्र, 2008)। प्राचीन और आधुनिक काल के बीच स्थित यह मध्यकाल अतीत की परंपरा, वर्तमान की यथार्थ चेतना और भविष्य की संभावनाओंख़तीनों को समेटे हुए है।

इस काल के सामाजिक जीवन में व्याप्त असमानता, धार्मिक कट्टरता, जातिगत भेदभाव और कर्मकाण्डीय जड़ता के विरुद्ध संत-कवियों की वाणी एक जनांदोलन के रूप में सामने आई। शेख फरीद, रामानंद, कबीर, गुरु नानक, सूरदास और तुलसीदास जैसे कवियों ने अपने काव्य और उपदेशों के माध्यम से जनसामान्य को नई चेतना प्रदान की। इनकी वाणी किसी एक वर्ग तक सीमित न रहकर लोकभाषा और लोकसंस्कृति के सहारे देश के कोने-कोने तक पहुँची (सिंह, 2000)।

कबीर इस परंपरा के सर्वाधिक प्रखर और विद्रोही स्वर हैं। उन्होंने धर्म, जाति, वर्ण और संप्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर मानवता को सर्वोच्च मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। कबीर का सामाजिक बोध केवल उपदेशात्मक नहीं है, बल्कि वह प्रत्यक्ष जीवनानुभव से उपजा हुआ है। यही कारण है कि उनकी वाणी में तीखापन, व्यंग्य और सहजता एक साथ उपस्थित हैं- "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान" जैसी पंक्तियाँ सामाजिक असमानता की जड़ों पर सीधा प्रहार करती हैं (द्विवेदी, 1990)।

कबीर की प्रामाणिक जीवनी का अभाव स्वयं उनके व्यक्तित्व की सामूहिक चेतना का प्रमाण है। वे व्यक्ति-केंद्रित महिमा से दूर रहकर समाज-केंद्रित जीवन दृष्टि को महत्व देते हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर की इसी विनम्र महानता को रेखांकित किया है (टैगोर, 1915; द्विवेदी, 1990)।

कबीर का आविर्भाव तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था। उन्होंने धर्म और समाज के संगठन हेतु बाह्याचारों के उन्मूलन तथा प्रेम और समानता पर आधारित जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया। उनका व्यंग्य धार्मिक पाखंड, आडंबर और अहंकार को नष्ट करने का साधन बनता है, जबकि उनका सामाजिक बोध मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने की आकांक्षा से

प्रेरित है। अस्तु वे भारतीय सामाजिक चेतना के स्थायी स्वर हैंख़्रऐसे स्वर, जो आज भी उतने ही प्रासंगिक और चुनौतीपूर्ण हैं जितने युगीन परिस्थितियों में रहे।

कबीर का सामाजिक बोध : मध्यकालीन यथार्थ का साक्ष्य

कबीर का सामाजिक बोध मध्यकालीन भारतीय समाज की जटिल, विडंबनापूर्ण और विघटित संरचना से प्रत्यक्षतः संबद्ध है। उनका काव्य किसी सैद्धांतिक दर्शन या ग्रंथगत परंपरा से नहीं, बल्कि जीवनानुभव, लोकचेतना और सामाजिक यथार्थ के साक्षात्कार से निर्मित हुआ है। यही कारण है कि कबीर की वाणी में समाज का यथार्थ रूप बिना किसी आवरण के उद्घाटित होता है। जाति-व्यवस्था, धार्मिक विभाजन, वर्गीय असमानता, कर्मकांड, पाखंड और सामाजिक रूढ़ियाँख़्रये सभी कबीर के काव्य में आलोचना के केंद्र में हैं।

मध्यकालीन समाज वर्ण और जाति के कठोर बंधनों में जकड़ा हुआ था। ऊँच-नीच, छुआछूत और जन्माधारित श्रेष्ठता सामाजिक जीवन का मूल आधार बन चुकी थी। स्वयं कबीर का जुलाहा होना इस व्यवस्था के प्रति उनके विद्रोही स्वर को और प्रखर बनाता है। कबीर की सामाजिक चेतना इस व्यवस्था को अस्वीकार करती है। कबीर जाति को सामाजिक मूल्यांकन का आधार मानने से इनकार करते हैं और ज्ञान व आचरण को श्रेष्ठता का मानदंड घोषित करते हैं।

नाभादास कृत भक्तमाल में कबीर का दो छप्पयों में उल्लेख मिलता है। इन छप्पयों से यह स्पष्ट होता है कि कबीर ने भक्ति-विरोधी धर्म को अधर्म कहा तथा भोग, व्रत, दान और बाह्याचारों को तुच्छ सिद्ध किया। भक्तमाल के अनुसार कबीर ने किसी वर्ग या संप्रदाय के पक्ष में पक्षपात नहीं किया। उनकी रमैनी, शब्द और साखी हिंदुओं और तुर्कोंख़्रदोनों के लिए प्रमाणिक मानी गईं। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म और षड्दर्शनों की उपेक्षा की।

अनंतदास कृत कबीर की परिचयी (संवत् 1645 के लगभग) कबीर के सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करती है। इसके अनुसार- कबीर जुलाहा थे और काशी में रहते थे। उन्होंने आजीविका के रूप में कपड़ा बुनने और बेचने का कार्य किया। सिकंदर लोदी द्वारा उन पर अत्याचार किए गए। अस्तु कबीर का सामाजिक बोध सत्ता, धर्म और समाजख़्रतीनों के टकराव से जन्मा है। वे शासक वर्ग और धार्मिक ठेकेदारों के विरुद्ध निर्भीक होकर खड़े होते हैं।

कबीर के समय हिंदू-मुस्लिम समाज में गहरा वैर-विरोध व्याप्त था। पूजा-पाठ, नमाज, रोजा और तीर्थ जैसी क्रियाएँ धर्म का पर्याय बन चुकी थीं। कबीर इस विभाजन को व्यर्थ बताते हैं-

"हिन्दू कहैं मोहि राम पियारा, तुरुक कहैं रहमाना।
आपस में दोऊ लड़-लड़ मूए, मरम न कोई जाना।"

यहाँ कबीर धर्म के नाम पर होने वाले संघर्ष की निरर्थकता को उजागर करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि नामों के भेद से सत्य नहीं बदलता (शुक्ल, 2012)। इसी भाव को वे आगे कहते हैं-

"न हिंदू हूँ न मुसलमान, मैं तो हूँ केवल इंसान।"

यह कथन कबीर की मानवतावादी सामाजिक दृष्टि का सर्वोच्च उदाहरण है।

कबीर का सामाजिक बोध धार्मिक नेतृत्व की बौद्धिक जड़ता और अहंकार को भी उजागर करता हैख़्र

मूंड मुंडाय हरि मिलें हर कोई लेत मुंडाय
बार बार ते मूंडते भेड़ न बैकुंठ जाय।।

अर्थात प्रत्येक वर्ग अपने-अपने ज्ञान और पद में उलझकर सत्य से विमुख हो गया है। यह मध्यकालीन समाज के बौद्धिक पतन का तीखा चित्रण है।

कबीर ने समाज के दो रूप प्रस्तुत किए-

1. आदर्श समाज, जहाँ प्रेम, करुणा और समानता हो।
2. गर्हित समाज, जहाँ पाखंड, अहंकार और अज्ञान व्याप्त हो।

वे गर्हित समाज की कठोर निंदा करते हैं और संत-समाज को आदर्श मानते हैं, जहाँ आचरण और आध्यात्मिकता का समन्वय हो। यही कारण है कि कबीर की वाणी में संत की मधुरता और सुधारक की कठोरताख़्रदोनों एक साथ मिलती हैं (द्विवेदी, 1990)।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कबीर का सामाजिक बोध मध्यकालीन यथार्थ का सजीव साक्ष्य है। उनका काव्य समाज की विकृतियों का केवल वर्णन नहीं करता, बल्कि उन्हें नैतिक चुनौती भी देता है। कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि वह मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने की आकांक्षा से प्रेरित है।

धार्मिक पाखंड और बाह्याचार पर कबीर का व्यंग्य

कबीर का व्यंग्य मध्यकालीन समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंड, कर्मकाण्ड, मूर्ति-पूजा, ढोंगी साधुओं और संप्रदायगत अहंकार के विरुद्ध एक सशक्त नैतिक हस्तक्षेप है। उनका व्यंग्य केवल उपहास या कटाक्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि वह समाज को आत्मावलोकन के लिए विवश करने वाली चेतना से प्रेरित है। कबीर ने धर्म को आंतरिक अनुभव और मानवीय आचरण से जोड़ा, जबकि बाह्याचारों को उन्होंने आध्यात्मिक पतन का कारण माना।

मध्यकालीन समाज में धार्मिक आडंबर और कर्मकाण्ड को भक्ति का पर्याय मान लिया गया था। कबीर इस प्रवृत्ति का तीव्र विरोध करते हैं-

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ता से तो चाकी भली, पीस खाय संसार।"

यहाँ कबीर मूर्ति-पूजा की निरर्थकता को व्यंग्यात्मक ढंग से उजागर करते हैं। उनके अनुसार यदि पत्थर पूजने से ईश्वर की प्राप्ति संभव होती, तो साधारण पत्थर या चक्की भी पूजनीय हो जाते। यह व्यंग्य धार्मिक अंधविश्वास की जड़ों पर सीधा प्रहार है (शुक्ल, 2012)।

कबीर का व्यंग्य उन साधुओं, योगियों, पंडितों और मुल्लाओं पर भी केन्द्रित है, जो धर्म को आजीविका और सत्ता का साधन बना चुके थे-

"जोगी माते धरि जोग ध्यान, पंडित माते पढ़ि पुरान।
मौलाना माते पढ़ि मुसाफ, काजी माते दै निसाफ।"

सत्य ही प्रत्येक धार्मिक वर्ग अपने-अपने ग्रंथों, विधियों और पदों में इतना उलझ गया है कि सत्य का मार्ग खो बैठा है। कबीर का व्यंग्य यहाँ व्यक्तिगत नहीं, बल्कि संस्थागत धार्मिक पतन पर केन्द्रित है।

कबीर के समय हिंदू-मुस्लिम संघर्ष सामाजिक जीवन को विषाक्त बना चुका था। धर्म पहचान का माध्यम नहीं, बल्कि टकराव का कारण बन गया था। कबीर इस स्थिति पर गहरी पीड़ा और व्यंग्य व्यक्त करते हैं-

"हिन्दू कहैं मोहि राम पियारा, तुरुक कहैं रहमाना।
आपस में दोऊ लड़-लड़ मूए, मरम न कोई जाना।"

यह व्यंग्य धार्मिक नामों और प्रतीकों के पीछे छिपे अहंकार को उजागर करता है। कबीर स्पष्ट करते हैं कि नामों के भेद से सत्य नहीं बदलता। उनका व्यंग्य यहाँ सांप्रदायिक चेतना को तोड़ने वाला सुधारक स्वर बन जाता है।

कबीर का व्यंग्य लोक चेतना, दया और क्षमा भाव से अनुप्राणित है। वे समाज को तोड़ने नहीं, जोड़ने की आकांक्षा रखते हैं। इसी कारण उनका व्यंग्य करुणा से जन्म लेता है, न कि घृणा से। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर को लोक कलाकारों के बीच विशिष्ट स्थान दिया है, यद्यपि उन्होंने उनके निर्गुण और एकांत भक्ति झुकाव के कारण उन्हें विवादास्पद भी माना है।

कबीर की विशेषता यह है कि वे समाज की बुराइयों को उजागर करते हुए भी मानवता में विश्वास बनाए रखते हैं। उनका व्यंग्य सामाजिक विवेक को जाग्रत करने का साधन है।

गोस्वामी तुलसीदास ने कबीर के काव्य पर आलोचनात्मक दृष्टि रखी। उन्होंने कबीर को 'साखी, सबद, दोहा' तक सीमित मानते हुए उन्हें 'भक्ति-निरूपहिन' और 'बुरा कवि' तक कहा। तुलसीदास की यह असहमति सगुण-निर्गुण भक्ति परंपरा के वैचारिक संघर्ष को दर्शाती है। किंतु यही विरोध कबीर की व्यंग्य चेतना की तीव्रता और सामाजिक हस्तक्षेप की शक्ति को भी प्रमाणित करता है (सिंह, 2009)।

कबीर के व्यंग्य का आधार उनका सत्यान्वेषी दृष्टिकोण है। वे गुरु और अनुभव को जीवन की सार्थकता का मूल मानते हैंख्र

"गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट।"

अर्थात गुरु की भूमिका को कुम्हार के माध्यम से रूपायित किया गया है, जो शिष्य के दोषों को दूर कर उसे आकार देता है। कबीर के अनुसार बिना गुरु-कृपा के मनुष्य 84 लाख योनियों में भटकता रहता है। यह दृष्टि कर्मकाण्ड से परे आत्मिक अनुशासन और अनुभवजन्य सत्य पर बल देती है।

कबीर का व्यंग्य किसी व्यक्ति विशेष को अपमानित करने के लिए नहीं है। यह समाज को उसकी भूलों से अवगत कराने का नैतिक प्रयास है। वे बाह्याचारों को अस्वीकार करते हैं, किंतु आंतरिक शुद्धता, दया, क्षमा और प्रेम को धर्म का वास्तविक स्वरूप मानते हैं। इसी कारण उनका व्यंग्य सुधारक बन जाता है, विध्वंसक नहीं।

सामाजिक समानता और मानवतावादी दृष्टि

कबीर का सामाजिक चिंतन मध्यकालीन समाज में व्याप्त असमानता, जातिगत भेदभाव और धार्मिक संकीर्णता के प्रतिवाद के रूप में विकसित हुआ। उनका मानवतावाद किसी सैद्धांतिक आदर्शवाद पर नहीं, बल्कि लोकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव, करुणा, दया और क्षमा-भाव पर आधारित है। कबीर के लिए मनुष्य की पहचान उसकी जाति, संप्रदाय या धार्मिक चिह्नों से नहीं, बल्कि उसके आचरण और चेतना से निर्धारित होती है। यही कारण है कि उनकी वाणी सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की प्रबल पक्षधर बन जाती है।

कबीर जाति-व्यवस्था को सामाजिक विघटन का मूल कारण मानते हैं। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जन्म से कोई श्रेष्ठ या हीन नहीं होता, बल्कि मनुष्य अपने कर्म और विवेक से मूल्यवान बनता है। यह दृष्टि मध्यकालीन सामंती समाज की जड़ों पर सीधा प्रहार है, जहाँ सामाजिक प्रतिष्ठा वंश और वर्ण पर आधारित थी। कबीर ज्ञान और सदाचार को मनुष्य का वास्तविक परिचय मानते हैं (शुक्ल,)।

कबीर का मानवतावाद केवल वैचारिक नहीं, बल्कि करुणा और अहिंसा से जुड़ा हुआ है। वे मानते हैं कि सभी जीवों में एक ही जीवन-तत्त्व विद्यमान है और किसी भी प्रकार की हिंसा इस मूल समता के विरुद्ध है। तीर्थ, दान या शास्त्र-पाठ से हिंसा के पाप का प्रायश्चित संभव नहीं-यह कथन उनके नैतिक दृष्टिकोण की गहराई को प्रकट करता है।

उदाहरणतः-

"जीव हिंसा जस करै, तासु न लागै पार।"

यहाँ कबीर स्पष्ट करते हैं कि मानवता का मूल आधार करुणा है, न कि कर्मकाण्ड।

इस प्रकार कबीर की सामाजिक समानता की अवधारणा श्रम की गरिमा, जाति-विरोध और दयाभाव से संयुक्त होकर एक ऐसे समाज की कल्पना करती है, जहाँ मनुष्य को मनुष्य समझा जाएख़यही उनका मानवतावादी सामाजिक बोध है।

व्यंग्य चेतना का शिल्प और लोकभाषा

कबीर की व्यंग्य चेतना जितनी वैचारिक है, उतनी ही शिल्पगत भी। उनका व्यंग्य शास्त्रीय अलंकारों या परिष्कृत काव्य-भाषा पर आधारित नहीं है, बल्कि लोकभाषा, प्रतीक, उलटबाँसी और दोहों की सहज संरचना के माध्यम से व्यक्त होता है। यही कारण है कि उनका व्यंग्य जनसामान्य तक सीधे पहुँचता है और सामाजिक चेतना को जाग्रत करता है।

कबीर की भाषा न तो पूर्णतः संस्कृतनिष्ठ है, न फारसीप्रधानख़वह लोक की भाषा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार, कबीर की भाषा में "अद्‌भुत संप्रेषण शक्ति" है, जो कठिन से कठिन सत्य को भी सरल बना देती है (द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका)।

उन्होंने प्रतीकात्मक भाषा के माध्यम से धार्मिक बाह्याचार की निरर्थकता को उजागर किया है। यहाँ व्यंग्य तीखा है, परन्तु उसका उद्देश्य उपहास नहीं, विवेक-जागरण है (शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास)।

कबीर की उलटबाँसियाँ उनकी व्यंग्य चेतना का विशेष शिल्प हैं। इनमें वे प्रत्यक्ष न कहकर प्रतीक और विरोधाभास के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को उद्‌घाटित करते हैं। यह शैली पाठक या श्रोता को सोचने के लिए विवश करती है। लोकभाषा की संप्रेषणीय शक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है कबीर का साहित्य (परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य)।

इस प्रकार कबीर की व्यंग्य चेतना का शिल्प लोकजीवन से निकला हुआ है। उनकी भाषा, प्रतीक और छंद जनसामान्य की चेतना से संवाद करते हैं और यही संवाद उनके व्यंग्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनाता है।

निष्कर्ष

समग्र अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कबीर का काव्य केवल आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि मध्यकालीन भारतीय समाज की जटिलताओं, विडंबनाओं और असमानताओं पर आधारित एक सशक्त सामाजिक हस्तक्षेप है। कबीर अपने समय की धार्मिक संकीर्णता, जातिगत भेदभाव, कर्मकाण्डप्रधान आस्था और मानवीय मूल्यों के क्षरण को गहन संवेदनशीलता के साथ पहचानते हैं और अपनी वाणी के माध्यम से उसका निर्भीक प्रतिरोध करते हैं। उनका काव्य सामाजिक चेतना का ऐसा दस्तावेज है, जिसमें यथार्थ-बोध और नैतिक आग्रह एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं।

कबीर का सामाजिक बोध जीवनानुभव से उपजा हुआ है, न कि शास्त्रीय पांडित्य से। वे समाज को बाहर से देखने वाले दार्शनिक नहीं, बल्कि उसी समाज के भीतर रहकर उसके अंतर्विरोधों को उजागर करने वाले कवि हैं। जाति-व्यवस्था, धार्मिक पाखंड और बाह्याचार पर उनका प्रहार किसी वर्ग या संप्रदाय विशेष के विरुद्ध नहीं, बल्कि उस मानसिकता के विरुद्ध है जो मनुष्य को मनुष्य से अलग करती है। इस दृष्टि से कबीर का काव्य सामाजिक समता और मानवीय गरिमा की स्थापना का प्रयास प्रतीत होता है।

कबीर की व्यंग्य चेतना इस शोध का एक केंद्रीय निष्कर्ष प्रस्तुत करती है। उनका व्यंग्य कटु उपहास या नकारात्मक आलोचना नहीं है, बल्कि विवेक को जाग्रत करने वाला नैतिक व्यंग्य है। लोकभाषा, प्रतीक, दोहे और उलटबाँसियों के माध्यम से वे गूढ़ सामाजिक सत्य को सरल और प्रभावी रूप में प्रस्तुत करते हैं। यही शिल्पगत सहजता उनकी वाणी को जनसामान्य तक पहुँचाती है और उसे कालजयी बनाती है।

मानवतावादी दृष्टि कबीर के काव्य का मूलाधार है। उनके लिए धर्म का अर्थ किसी संप्रदाय या कर्मकाण्ड में सीमित नहीं, बल्कि करुणा, प्रेम, अहिंसा और नैतिक आचरण में निहित है। वे मनुष्य को उसकी जाति, वेश या पूजा-पद्धति से नहीं, बल्कि उसके आचरण और चेतना से पहचानते हैं। इस प्रकार कबीर का काव्य सामाजिक न्याय और मानवीय मूल्यों का सशक्त उद्घोष बन जाता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि कबीर का काव्य मध्यकालीन सामाजिक चेतना का प्रतिनिधि स्वर होने के साथ-साथ आधुनिक समाज के लिए भी प्रासंगिक है। उनकी वाणी आज भी धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समता और मानवीय संवेदनशीलता की आवश्यकता को रेखांकित करती है। इस दृष्टि से कबीर न केवल अपने युग के कवि हैं, बल्कि हर उस समय के कवि हैं जहाँ मनुष्य को मनुष्य बनने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

- द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1990). कबीर. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- शुक्ल, रामचंद्र. (2012). हिंदी साहित्य का इतिहास. नई दिल्ली: नागरी प्रचारिणी सभा।
- सिंह, नामवर. (2009). दूसरी परंपरा की खोज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- टैगोर, रवीन्द्रनाथ. (1915). Songs of Kabir. लंदन: मैकमिलन।
- मिश्र, शिवकुमार. (2008). भक्ति आंदोलन और सामाजिक चेतना. वाराणसी: भारतीय ज्ञानपीठ।
- कबीर, बीजक, संपादक श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- कबीर, कबीर ग्रंथावली, संपादक हजारीप्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली।
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद, नाथ सिद्धों की बानियाँ, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- तुलसीदास, रामचरितमानस, संपादक हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर।
- सिंह, रामविलास, कबीर और भक्ति आंदोलन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
- मिश्र, शिवकुमार, कबीर : समाज और दर्शन, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी।
- चतुर्वेदी, परशुराम, संत साहित्य की भूमिका, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और महिलाएँ

डॉ० विजय शंकर चौधरी

पीएच.डी., राजनीति विज्ञान विभाग, महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी (बिहार)

डॉ० सुधीर कुमार

पीएच.डी., राजनीति विज्ञान विभाग, ल० ना० मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

मानवाधिकार और सामाजिक न्याय मानव समाज के विकास और प्रगति के मूल आधार हैं। यह दोनों ही आवश्यक हैं ताकि हर व्यक्ति को उसके अधिकारों की रक्षा और समान अवसरों का लाभ मिल सके। महिलाओं के मानवाधिकारों की सुरक्षा और समर्थन के बिना, सामाजिक न्याय की सच्चाई और गहराई नहीं हो सकती। महिलाओं के अधिकारों का सम्मान और सुरक्षा एक समृद्ध समाज के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। महिलाएँ समाज का आधार होती हैं, और उन्हें समानता के अधिकारों का उपयोग करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण में सरकारों, सामाजिक संगठनों, और समुदायों के सहयोग की जरूरत है। यहाँ उपयुक्त कानूनी और नैतिक ढाँचे की आवश्यकता है, जो महिलाओं को समाज में समर्थ बनाते हैं। यह शोध महिला के मानवाधिकार संरक्षण पर केंद्रित है। स्त्रियों के संरक्षण तथा सशक्तिकरण की दिशा में मानवाधिकार कैसे काम करता है, यह शोध-पत्र उसकी समीक्षा करता हैं।

मुख्य शब्दः- मानवाधिकार, महिला, संविधान एवं सामाजिक न्याय।

परिचय

भारतीय संविधान के अनुसार महिलाओं को पुरुष के समान ही मौलिक अधिकार एवं स्वतंत्रताएँ प्रदान की गई हैं। संविधान में लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव निषिद्ध है।[1] भारतीय संविधान में यह लिखा गया है कि, "राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के संबंध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, वर्ग, जन्म स्थान, निवास या इनमें से किसी भी आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा न उससे विभेद किया जाएगा।"[2] किन्तु व्यवहार में इस सिद्धांत की बहुत अवहेलना की जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में रमा शर्मा के विचार इस प्रकार हैं "उन्हें निजी स्वार्थ के लिए परेशान किया जाता है। महिलाओं के विरुद्ध अत्याचार में पिछले कुछ दशकों से निरंतर वृद्धि होती जा रही है। महिलाओं पर अत्याचार, बलात्कार, लैंगिक उत्पीड़न विशेषतः सार्वजनिक एवं कार्य करने के स्थान पर बढ़ता जा रहा है। महिलाओं के अधिकारों को वास्तव में विशेष स्थान नहीं मिल पाया है। अक्सर इन अधिकाओं का उल्लंघन होता आया है।"[3]

मानवाधिकार का अंग्रेजी अनुवाद है ह्यूमन राइट जो दो शब्दों का संयोजन है। 'ह्यूमन' यानी मानव शब्द यूनानी शब्द 'एंथ्रोप्रॉस' से बना है और दूसरा शब्द 'राइट' यानी अधिकार। यह एक विस्तृत विचारधारा है।[4] जिसे प्रमुख चिन्तकों ने विकसित किया है। स्ट्राइक, पोलिबियस, सिसरो, हॉब्स, लॉक, रूसो, वाल्टेयर, टॉमस पेन एवं ब्लेक स्टोन आदि विचारकों के अनुसार मानव को जन्म से ही कुछ अधिकार प्राप्त हैं। लास्की के शब्दों में "अधिकार मानव जीवन की वे परिस्थितियाँ है, जिनके बिना कोई भी व्यक्ति अपना सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता।"[5] रूसो ने कहा है "मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेता है, मगर हमेशा वह जंजीरों में जकड़ा रहता है।" अतः मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं जो मानव की प्रकृति में निहित हैं। मानव होने के कारण हमें प्रकृति से ही कुछ अधिकार प्राप्त है। ये ऐसे अधिकार हैं जो एक मानव के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए आवश्यक हैं।[6]

मानवाधिकार कोई आधुनिक अवधारणा नहीं है। सन् 1215 में ही इंग्लैंड के प्रसिद्ध आज्ञापत्र ने इसकी पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। 1689 में बिल ऑफ राइट्स, 1776 में अमरीकी स्वातंत्र्य क्रांति, 1789 की फ्रांस क्रांति आदि ने इस अवधारणा को और आगे बढाया। फ्रांस की क्रांति का मुख्य नारा था स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व जिसने मानवाधिकार को एक क्रान्तिकारी फलक प्रदान किया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई। 10 दिसंबर, 1948 को मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा की गई जो मील का पत्थर साबित हुई।[7]

संविधान के संस्थापक इस बात से पूर्व परिचित थे कि महिला आजादी के समय पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर आंदोलन में सक्रिय थीं। फिर आजादी के पश्चात घर की चहारदीवारी में कैद हो जाना तथा सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के भीतर पराधीनता से परवश जीवन गुजारना महिलाओं के लिए सामाजिक न्याय के विरुद्ध था। साथ ही यह लैंगिक न्याय के भी खिलाफ था। अत: भारत के संविधान में महिला अधिकार संरक्षण की दिशा में विभन्न प्रावधान किए गए हैं जो भारत के सभी नागरिकों के लिए हैं।

शोध-पत्र का उद्देश्य: महिला एवं मानवाधिकारों की स्थिति का मूल्यांकन करना

शोध-पत्र लेखन विधि: इस शोध-पत्र को लिखने के लिए गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रविधियों का उपयोग किया गया है।

राज्य के कानून और महिला मानवाधिकार

"संविधान की प्रस्तावना, नीति निर्देशक सिद्धांत और इसमें वर्णित अधिकारों को समाहित करके देखें तो हमें उस भावना के दर्शक होंगे जिसमें आम आदमी और देश के नागरिकों के समान राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और धार्मिक अधिकारों मौजूद हैं। न्याय, स्वतंत्रता और बराबरी के सिद्धांत ही इसके केंद्र बिन्दु हैं।"[8] किन्तु प्रश्न यह उठता है की क्या यथार्थ में जब लोक-कल्याण के सिद्धांतों पर राज्य अमल करता है। खासतौर से जब राज्य की महिला नागरिकों की बात हो जिसे समाज में द्वितीयक वर्ग का दर्जा दिया गया है।

महिलाओं के हित के लिए राज्य की भूमिका बहुत ही आवश्यक एवं प्रासंगिक है क्योंकि राज्य एक सार्वजनिक औपचारिक संस्था है। राज्य में औपचारिक नियम तथा कानूनों के द्वारा समाज पर नियंत्रण स्थापित किया जाता है। औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण ने 20वीं सदी में राज्य को एक कल्याणकारी राज्य की विचारधाराओं से पुष्ट किया। इस संदर्भ में एलियाबेल विल्सन का कथन महत्वपूर्ण है, "कल्याणकारी राज्य केवल सेवाओं का समूह नहीं है ये समाज और परिवार के बारे में विचारों का समुच्चय भी है क्योंकि महिलाएँ परिवार में महत्वपूर्ण केंद्रीय भूमिका निभाती हैं जैसे धुरे की कील।"[9] अत: राज्य का यह कर्तव्य भी बनता है कि वह महिलाओं के कल्याण हेतु सभी कार्यों को प्राथमिकता प्रदान करे। स्वास्थ्य, शिक्षा, अपराध की रोकथाम, विकास, आर्थिक सशक्तिकरण आदि जैसे सभी विषयों में राज्य दिलचस्पी दिखाए। किन्तु राज्य की संवैधानिक कल्याणकारी विचारधारा को पितृसत्तात्मक विचारधारा द्वारा बार-बार चुनौती दी जाती है। महिलाओं की अधीनता बनाए रखने के लिए पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना द्वारा अक्सर अपराध किए जाते है। संविधान ने माहिलाओं को समानता, अवसर तथा सुरक्षा प्राप्ति की गारंटी दी है। किन्तु जिस समाज में हम रहते हैं उस समाज में महिलाओं के विरुद्ध सैकड़ों अपराध नित्य होते रहते हैं। यह समाज अपनी पितृसत्तात्मक सोच के माध्यम से अपराध करने में अग्रणी है। इसके साथ समाज में शिक्षा के अभाव, आर्थिक गैर-बराबरी, वर्ग, जाति के बीच मतभेदों के कारण भी महिला के विरुद्ध अपराध में वृद्धि होती रहती है।

समाज के विकास के फलस्वरूप लोगों के ज्ञान में वृद्धि हुई है। खासतौर से कुछ विशिष्ट हिंसात्मक वारदातों के बाद महिलाओं के भीतर कानून को जानने व समझने की जिज्ञासा बढ़ी है। महिलाएँ अपने अधिकारों को लेकर पहले से अधिक जागरूक एवं सचेत हुई हैं। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या महिलाओं की सतर्कता के बावजूद हमारा समाज पारंपरिक मूल्यों, पोंगापंथी विचारों तथा पितृसत्तात्मक सोच से मुक्त हो पाया है? क्या राज्य में कानूनों के होने से महिलाओं के खिलाफ अपराध में कमी हुई है? कई साक्षी तो यह बताते हैं कि महिलाओं के विरुद्ध अपराध के लिए कानून के पास लंबे समय तक कोई परिभाषा ही मौजूद नहीं था। इस कारण कई अपराधी अपराध करके सजा नहीं पाते थे क्योंकि कानून में अपराधों के लिए उपयुक्त प्रावधान ही नहीं थे। उदाहरण के लिए बलात्कार के लिए कानून में केवल योनि में लिंग के प्रवेश को ही अपराध माना जाता था जिस कारण योनि में उंगली, डंडा, पत्थर, मोमबत्ती आदि जैसी वस्तु डालकर निर्दयतापूर्वक अपराध करने वाले अपराधी सजा मुक्त हो विचरण करते थे और पीड़ित महिला समाज के ताने तथा थाना और पुलिस का शिकार होती थीं। वर्तमान समय में कानूनों को सख्त बनाया गया है जब 16 दिसंबर, 2012 को दिल्ली में हुए निर्भया कांड ने न केवल सामाजिक चेतना को झकझोरा, बल्कि इसके बाद मीडिया विमर्श में बलात्कार जैसे जघन्य अपराधों की रिपोर्टिंग को अभूतपूर्व प्रमुखता प्राप्त हुई।[10]

राज्य ने महिलाओं के खिलाफ अपराध की रोकथाम हेतु न्यायालय, महिला अधिकार आयोग, कानूनी सूचना और कानूनी सुरक्षा प्रकोष्ठ, महिला अपराध (रोकथाम) प्रकोष्ठ, कुटुम्ब न्यायालय तथा कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के मामले से संबंधित समितियों का निर्माण किया है। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इन संस्थानों और समितियों द्वारा महिला के विरुद्ध अपराध को पूर्णत: नहीं तो अंशत: रोका जा सका है? महिलाओं के प्रति हिंसा राज्य में व्याप्त लैंगिक भेद-भाव का एक रूप है। हिंसा का सामना महिलाओं को बचपन से ही करना पड़ता है। परिवार के साथ धर्म, जाति, वंश, पहचान, लिंग, नस्ल आदि के द्वारा भी महिलाएँ गैर-बराबरी तथा हिंसा के शिकार हैं। "राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो ने वर्ष 1998 में यह जानकारी दी थी कि सन् 2010 तक महिलाओं के विरुद्ध अपराधों

की दर जनसंख्या वृद्धि दर से कहीं अधिक हो जाएगी। पहले बलात्कार और छेड़-छाड़ के मामलों को सामाजिक कलंक की वजह से कई मामलों को पुलिस में दर्ज नहीं कराया जाता था। सरकारी आंकड़ें बताते हैं कि महिलाओं के खिलाफ दर्ज किए गए अपराधों की संख्या में नाटकीय वृद्धि हुई है।"

वर्तमान समय में राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो का अनुमान संभवत: सही होता प्रतीत हो रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में नीरा देसाई कहती हैं कि, "हिसा की बढ़ती संस्कृति की प्रत्यक्ष वास्तविकता स्पष्ट है जिसे कि लिंग अनुपात में कमी, महिला भ्रूण हत्या और किशोर बच्ची से दुर्व्यवहार, घरेलू हिंसा और बलात्कार की बढ़ती दर एवं दहेज की व्यापक और तीव्र माँग को यह स्थिति देखकर लगता है कि प्रारम्भिक दशकों के दौरान हमने जो प्राप्त किया, अंतिम कुछ वर्षों में हमने उसे खो दिया।"[11] तात्पर्य यह है कि 20वीं शताब्दी के उतरार्द्ध से महिलाओं ने स्त्री के विरुद्ध होने वाली हिंसा के खिलाफ स्वायत्त आंदोलन किए थे और कानून को महिलाओं के लिए उदार बनाने के लिए दवाब भी बनाया था। किन्तु वर्तमान समय में स्थितियाँ महिलाओं के बिल्कुल खिलाफ हो गई हैं और राज्य की भूमिका पर सवाल उठता है?

कल्याणकारी राज्य महिलाओं को लेकर असमंजस की स्थिति में रहता है। एकतरफ वह वैश्विक तथा निम्न तक दोनों स्तरों पर लिंग संबंधी अन्याय को बढ़ती हुई जागरूकता तथा वैधानिक उपायों द्वारा कम करने की कोशिश करता है तो दूसरी तरफ वह पुरुष तथा स्त्री के बीच के भेद को और भी बढ़ाता है क्योंकि वह महिलाओं को अवसर की समानता बराबर रूप से प्रदान नहीं करता। जब बात श्रम विभाजन की हो तो एक ही कार्य के लिए पुरुष तथा स्त्री को अलग-अलग वेतन प्रदान किए जाते हैं। यदि राज्य अपनी कल्याणकारी भूमिका के तहत महिलाओं हेतु कार्य करे तो महिलाएँ समाज के विकास में अपना योगदान कर सकती है। राज्य चाहे तो महिलाओं के हित में सामाजिक संसाधनों तक उनकी पहुँच बनाकर उनके जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है किन्तु वह महिलाओं को केवल पुनरुत्पादन के साधन बनाकर रखता है। यह एक भयानक पितृसत्तात्मक साजिश है जिसके तहत महिलाओं को उदारवादी रवैये का आश्वासन दिया जाता है किन्तु इसके पीछे एक राजनीति चलती है। एक तरफ महिलाएँ आर्थिक रूप से राज्य पर निर्भर होती हैं जिसमें उन्हें किसी भी प्रकार की जानकारी या शिक्षा न देकर शोषणकारी संस्थानों के हवाले कर दिया जाता है और दूसरी तरफ राज्य उनकी स्वतंत्रता की बात करता है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न बन पाने के कारण महिलाएँ राज्य और उनकी पितृसत्तात्मक संस्थानों की शरण लेती हैं जहाँ उनके साथ भेदभाव तथा शोषण जैसी समस्या का सामना करना पड़ता है।[12]

कई राज्यों के पास उपक्रम नहीं है जिसकी सहायता से आँकड़ों को इकठ्ठा किया जाए तथा कल्याण के कदम उठाए जाएँ। राज्य सामाज कल्याण (निर्देशन) समिति केंद्र समाज कल्याण समिति से संबंधित एजेंसी है जो कल्याणार्थ विभिन्न नियमों को बनाती है। "केंद्र तथा राज्य समाज कल्याण समिति के बीच कामों को लेकर बहुत ही असमंजस की स्थिति है तथा विभन्न राज्यों के कल्याणकारी समिति के नियम भी एकसमान नहीं हैं।" इस कारण भी कार्यों के निदर्शन को लेकर केंद्र तथा राज्य के बीच मतभेद की स्थिति बनी रहती है। निजी संस्थान महिलाओं के विकास तथा कल्याण को लेकर बहुत कम दिलचस्पी लेते हैं और वैध संस्थान भी कम से कम संसाधन महिला कल्याण पर खर्च करते हैं। और इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है कि फंड की कमी है या निजी तथा सार्वजनिक संस्थानों के बीच संवादहीनता की स्थिति है। किन्तु इन समस्याओं की कीमत सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक पीछड़ेपन के रूप में महिलाओं को चुकानी पड़ती है। इसलिए कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि राज्य महिलाओं के प्रति जानबूझकर भेदभाव पैदा करता है और यह स्वभाववश पितृसत्तात्मक है।

महिला मानवाधिकार संरक्षण के अन्य उपाय

सर्वप्रथम 1953 में समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना की गई जो विभिन्न योजनाओं के माध्यम से महिलाओं के कल्याण हेतु कार्य करे। इसके अंतर्गत जागरूकता वृद्धि, महिलाओं हेतु शिक्षा, परिवार परामर्श केंद्रों की स्थापना, रोजगार के साधनों आदि की व्यवस्था की जाती है। वर्ष 1985 में महिला और बाल विकास विभाग का सृजन किया गया। यह विभाग महिलाओं के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम तैयार करता है, विधान बनाता है और आवश्यकता पड़ने पर इसमें संशोधन भी करता है। साथ ही महिलाओं हेतु काम करने वाले सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों दोनों के प्रयासों में समन्वय स्थापित करता है। विभाग के कार्यक्रमों के अंतर्गत महिलाओं से संबंधित रोजगार, कल्याण, सहयोग सेवाएं, लिंग विषयक सामानता, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि शामिल है। राष्ट्रीय महिला कोष (1993) महिला और बाल विकास विभाग के अंतर्गत तथा मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया। यह गरीब महिलाओं के आर्थिक उत्थान हेतु ऋण उचित ब्याज पर उपलब्ध करवाता है। यह ऋण गैर सरकारी संगठनों, महिला विकास निगमों, महिला सहकारी समितियों, स्व-सहायता समूहों और उपयुक्त राज्य सरकार की संस्थाओं के माध्यम से दिया जाता है।

"महिला मुद्दे के विषय में सरकार द्वारा कुछ अन्य महत्वपूर्ण कदम उठाए गए; शिक्षा की राष्ट्रीय नीति में समानता के लिए शिक्षा पर एक अध्याय (1986); महिला कैदियों पर राष्ट्रीय विशेषज्ञ समिति की रिपोर्ट (1986); 27 महिला केंद्रित लाभांमुखी योजना जो प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा निरीक्षित की जाएगी; कन्या शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना (1991-2000); 73वें और 74वें संवैधानिक

संशोधन द्वारा स्थानीय स्तर की चयनित संस्थाओं में महिलाओं के लिए आरक्षित स्थान प्रावधान (1993); निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम और कृषि एवं ग्रामीण विकास का राष्ट्रीय बैंक (NABARD) के अंतर्गत स्वयं सहायता समूह; एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत (IRDP) गरीब माहिलाओं के कौशल को सुधारने के लिए प्रशिक्षण व रोजगार प्रदान करना; स्व-रोजगार में महिलाओं का प्रशिक्षण (TRYSEM); जवाहर रोजगार योजना (JRY); इंदिरा आवास योजना; ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं व बच्चों का विकास (DWCRA), समाज के कमजोर वर्गों से संबंधित महिलाओं और बच्चों के लिए सहायक सेवाओं का जाल, गैर-परम्परागत क्सेट्रोन में महिलाओं को प्रशिक्षण देने के कार्यक्रमों, पीढ़ियों की जागरूकता; साक्षरता और विधिक साक्षरता कार्यक्रम एवं छात्रावास व शिशुसदन (CRECHES) जैसी सहायक सेवाओं का विस्तार।"[13]

इसके साथ महिलाओं के लिए कई योजनाएं हैं जो भारत के लगभग सभी भागों में स्त्रियों के विकास से संबंधित है। राजीव गाँधी किशोरी सशक्तिकरण स्कीम (सबला, 2010-2011) इस योजना में 11 से 18 वर्ष की सभी लड़कियों के लिए पोषक आहार की व्यवस्था की गई है तथा स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, प्रजनन और स्वास्थ्य, बच्चों की देखभाल की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है; इंदिरा गाँधी मातृत्व सहयोग योजना (2010-2011) इसके अंतर्गत 19 वर्ष से अधिक गर्भवती स्त्रियों को उनके पहले दो जीवित बच्चों के छह माह की आयु तक तीन किश्तों में 4000 रु. की सहयोग राशि दी जाएगी; स्टेप (1987) परम्परागत क्षेत्रों में महिलाओं के कौशल में सुधार तथा परियोजना आधार पर रोजगार उपलब्ध कराया जाता है; स्वधार (2001-2002) योजना के अंतर्गत विधवा स्त्री, जेल से रिहा स्त्री, प्राकृतिक आपदा की शिकार स्त्री, बेसहारा स्त्री, यौन शोषण की शिकार स्त्री, गंभीर बीमारी से पीड़ित स्त्री के लिए भोजन, आवास, कपड़ा, स्वास्थ्य, परामर्श की व्यवस्था करके उनकी मदद की जाती है; अल्पावधि प्रवास गृह (1969) सामाजिक, आर्थिक, भावनात्मक रूप से बहिष्कृत महिलाओं को संरक्षण देकर उनका पुनर्वास कराने की व्यवस्था की जाती है; कामकाजी महिलाओं के लिए हॉस्टल (1972-1973) इस योजना में अकेली, तलाकशुदा, विधवा, परित्यक्ता तथा जिन महिलाओं के पति बाहर रहते हैं उनके लिए आर्थिक सहायता विभिन्न सरकारी तथा गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से दी जाती है; उज्जवला (2007) अवैध व्यापार की रोकथाम, रिहाई, पुनर्वास, पुनः एकीकरण तथा स्वदेश भेजने की व्यवस्था की जाती है; लिंग आधारित बजट (2004-2005) लिंग आधारित समानता लाने तथा मुख्यधारा में उन्हें शामिल करने हेतु इस बजट की स्वायत्त रूप से भारत सरकार की योजना में शामिल किया गया। स्वास्थ्य कार्यक्रम के अंतर्गत राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (2005) द्वारा जननी सुरक्षा योजना की शुरुआत की गई। इसमें गर्भवती महिलाओं को संस्थागत प्रोत्साहन देने का कार्य किया जाता है। इसके लिए ग्रामीण गर्भवती महिलाओं को नगद सहायता दी जाती है। उपरोक्त कई योजनाओं का कार्यान्वयन महिला एवं बाल विकास विभाग/मंत्रालय द्वारा किया जाता है।

महिला आयोग द्वारा महिला अधिकार संरक्षण

राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम 1990 की धारा-10 के तहत आयोग को विभ्न्न कार्यों करने की जिम्मेदारी दी गई है जो निम्नलिखित हैं :-

1. महिलाओं को दी जाने वाली सभी कानूनी उपायों सुविधाओं की जाँच करना, उनकी समीक्षा करना तथा सरकार को प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सुझाव देना।
2. महिलाओं के आर्थिक विकास के लिए नियोजन में न केवल सहयोग करना बल्कि उसकी प्रगति का मूल्यांकन करना।
3. महिला संबंधित प्रत्येक कार्य को प्रमुखता देना तथा उसे पूर्ण करना।
4. महिलाओं के सुरक्षा उपायों का उल्लंघन करने वालों की सूचना संबंधित अधिकारियों तक पहुँचाना।
5. जिन परिवारों में महिला अधिकारों का हनन हुआ है उनकी पड़ताल करना और स्वतः प्राप्त सूचना के आधार पर उसे उठाना।
6. जो भी कानून बनते हैं उसकी समय-समय पर समीक्षा करना और उसमें पाई गई गलती के सुधार हेतु सरकार को संशोधन करने की सिफारिश करना।
7. जिन जगहों पर महिलाओं को हिरासत में रखा जाता है यथा सुधार गृह, कारागृह आदि, उनका निरीक्षण करना तथा उनके पुनर्वास एवं सुधार हेतु सिफारिश करना।
8. केंद्र सरकार को वार्षिक रिपोर्ट देना तथा आवश्यकता पड़ने पर संबंधित राज्य सरकार को भी प्रतिवेदन भेजना।
9. महिलाओं के विकास, सशक्तिकरण तथा शैक्षणिक अभिवृद्धि हेतु शोध कार्य, कार्यशाला तथा संगोष्ठी का आयोजन करवाना।
10. महिलाओं के प्रति की जाने वाली सामाजिक समस्या यथा छुआछूत, अंधविश्वास, भेदभाव आदि की जाँच करना एवं उसके निवारण हेतु उपाय करना।
11. अधिसंख्य महिलाओं को प्रभावित करने वाले किसी मुकदमे में आर्थिक मदद देना।

"आयोग लगातार इस दिशा में प्रयासरत है कि देश में महिलाओं की स्थिति अच्छी बन सके। अपने इस प्रयास में वह संसद सदस्यों, राजनीतिक दलों एवं अन्य संबंधित अभिकरणों एवं व्यक्तियों से भी सहायता ले रहा है। आयोग की पहल पर ही देश के 9 राज्यों (राजस्थान सहित) में राज्य महिला आयोग का गठन हो चुका है।"14 "राज्य आयोग को अधिनियम के अनुसार उन सभी कार्यों के निर्वाहन करने की शक्ति प्राप्त है जिन्हें राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को करने का अधिकार दिया गया है।"[15]

इस प्रकार महिलाओं के अधिकार को और भी पुष्ट करने उनको संरक्षण एवं संवर्धन करने हेतु महिला आयोग का गठन किया गया। राज्यों में महिला आयोग की स्थापना हो जाने से अब स्त्री मुद्दों को सवायत्त रूप से राज्य के अंतर्गत ही उठाया जाता है और उसपर कारवाई की जाती है। राज्य स्थित महिला आयोग सशक्त ढंग से महिला अधिकारों की रक्षा करने हेतु उभरा है।

बीसवीं सदी में महिला अधिकार संरक्षण

राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति 2001 तथा राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण मिशन 2011; शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति 1986; स्वास्थ्य नीति 2001; राष्ट्रीय संपोषण नीति 1993; राष्ट्रीय कार्ययोजना 1976; राष्ट्रीय संदर्थी योजना 1988-2000; व्यापार संबंधी व्यवसायिक मदद 1995; प्रशिक्षण एवं रोजगार हेतु महिला प्रकोष्ठ; ग्रामीण महिलाओं के विकास हेतु स्वशक्ति योजना 1998 आदि कई योजनाएं शुरू की गईं।[16] नई शिक्षा नीति 2020 में महिलाओं की शिक्षा तथा उनके अधिकारों पर वृहद रूप से चर्चा कि गई है।[17]

इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने महिलाओं के मानवाधिकार संरक्षण हेतु कई योजनाएं भी चलाई हैं जो महिलाओं को मजबूती तथा सशक्तिकरण प्रदान करती हैं। सरकार ने महिलाओं की सुरक्षा हेतु कई निर्देशांक जारी किए हैं जैसे कि स्त्री हिंसा के खिलाफ कानूनी कार्यवाही हेतु महिला शक्ति केंद्र (Women Power Line) गठित किए गए हैं। साथ ही, निर्देशांकों में महिलाओं के लिए सुरक्षित महिला वार्ड तथा महिला पुलिस स्टेशन की स्थापना का भी प्रावधान है। सरकार ने महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए विभिन्न कार्यक्रम शुरू किए हैं, जिनमें महिलाओं को स्वावलंबन, सेल्फ डिफेंस, और व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है।[18] महिला पुलिस और हेल्पलाइन सेवाएं, विभिन्न शहरों में महिला पुलिस टीमें गठित की गई हैं ताकि महिलाओं को उनकी सुरक्षा संबंधी मामलों में मदद की जा सके प्राप्त कर सकें। साथ ही, महिलाओं के लिए हेल्पलाइन नंबर भी उपलब्ध हैं जिन पर वे आपात स्थितियों में कॉल कर सकती हैं।[19] वाहन सुरक्षा, कई राज्यों में महिलाओं के लिए सुरक्षित वाहन सेवाएं शुरू की गई हैं, जिनमें महिलाओं के लिए महिला कंडक्टर्स तथा महिला ड्राइवर्स की व्यवस्था की जाती है। सरकार ने महिलाओं के खिलाफ हो रही हिंसा और उत्पीड़न के मामलों में करने का आदेश दिया है और ऐसे मामलों में तेजी से एक्शन लिया जाता है।[20]

सुकन्या समृद्धि योजना: इस योजना के अंतर्गत, माता-पिता अपनी बेटी के लिए एक सुकन्या खाता खोल सकते हैं और उसमें निवेश कर सकते हैं। यह योजना बेटियों के भविष्य की आर्थिक सुरक्षा के लिए डिजाइन की गई है।[21]

महिला उत्थान योजना: इस योजना के अंतर्गत, महिलाओं को वित्तीय सहायता और उनके व्यवसायों को प्रोत्साहन प्रदान किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य महिलाओं को स्वावलंबन की ओर प्रेरित करना है।[22]

महिला शक्तिकरण योजना: भारत सरकार ने विभिन्न महिला शक्तिकरण योजनाओं को शुरू किया है, जिनमें महिलाओं को शैक्षिक संसाधनों तक पहुँच प्रदान की जाती है और उन्हें सामाजिक और आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए प्रेरित किया जाता है।[23]

महिला आवास योजना: इस योजना के अंतर्गत, गरीब महिलाओं को सस्ते आवास की सुविधा प्रदान की जाती है। यह योजना गरीब महिलाओं को आर्थिक रूप से सहायता प्रदान करके उन्हें आवास के लिए उपयुक्त निर्माण सामग्री प्राप्त करने में मदद करती है।[24]

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ: यह योजना बेटियों के जन्म के बाद की मौतों को कम करने, उनकी शैक्षिक स्थिति को सुधारने और उन्हें समाज में समानता और सम्मान की भावना से लाभान्वित करने का उद्देश्य रखती है।[25]

निष्कर्ष

मानवाधिकार व्यक्ति के अधिकारों और मूल्यों की सुरक्षा और समर्थन का मानविकी सिद्धांत है। मानवाधिकार का संरक्षण समाज में न्याय, समानता, और समर्थता की भावना को सबसे ऊँचा मानक स्थापित करता है। यह सभी व्यक्तियों को समान और अविभाज्य अधिकारों के साथ जीने का अधिकार सुनिश्चित करता है। महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा और समर्थन के बिना, वे समाज में पूरी तरह से समर्थ नहीं हो सकतीं और अपनी सम्भावनाओं का पूरा उत्तरदायित्व नहीं ले सकतीं। अधिकांश समाजों में, महिलाओं के प्रति भेदभाव देखा जाता है, जैसे कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, निर्णायक समर्थन, और न्याय जैसे क्षेत्रों में। सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, और समाज के नेतृत्व में कई पहल किए गए हैं ताकि महिलाओं के अधिकारों की संरक्षण हो सके।

महिलाओं की सुरक्षा एवं कल्याण हेतु कई कार्यक्रम चल रहे हैं। सवाल यह उठता है कि इनका लाभ जरूरतमंद महिलाओं तक पहुँच रहा है या नहीं। सरकारी संगठन अपने औपचारिक तरीकों से काम कर रहे हैं। सरकारी पहल की बहुत सारी कठिनाईयाँ हैं। फलत:

जिस रूप में और जहाँ तक अपेक्षा की जाती है सरकार पहुँच नहीं पा रही है। समाज में एक वातावरण बना है जो महिलाओं के प्रति सहायक हैं। महिलाओं में जागरूकता पैदा हुई है अपने अधिकारों के प्रति। इसका परिणाम प्रत्यक्षत: देखा जा सकता है। पहले की तुलना में महिलाएँ कहीं अधिक मुखर हुई हैं और अपने प्रति अन्याय के प्रति भी संवेदनशील हुई हैं। इसका मुख्य कारण समाज का आधुनिकरण है। इस प्रक्रिया को सरकारी पहल ने सक्रिय बनाया है। गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण रही है। शिक्षा परिवर्तन का सबसे बड़ा औजार है। समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप महिलाओं को शिक्षित करना बहुत आवश्यक है। शिक्षित और माहौल प्राप्त महिलाएँ ही सामाजिक परिवर्तन का आधार बन सकती हैं। शिक्षा और स्वाबलंबन के सहारे ही महिलाएँ अपनी पहचान बना सकती हैं और किसी भी प्रकार के भेदभाव या अन्याय का सामना कर सकती हैं। सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के संगठनात्मक प्रयत्नों के साथ-साथ एक प्रगतिशील विचारधारा का भी समाज में विकास जरूरी है अभी तक जो प्रयास हुए हैं और समाज एवं विशेषत: महिलाओं के दृष्टिकोण में जो परिवर्तन आया है वह एक क्रांतिकारी परिवर्तन का संकेत है।

संदर्भ सूची

1. माथुर, सीमा (2021), आपके कानून आपके अधिकार, हैदरबाद: ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पृष्ठ सं. 38।
2. मेहरोत्रा, ममता (2015), महिला अधिकार और मानवाधिकार, दिल्ली: ज्ञान गंगा।
3. शर्मा, रमा, एवं मिश्रा. एम. के. (2010), महिलाओं के कानूनी, धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार, नई दिल्ली: अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस।
4. चंद्रशेखर, ममता (2011), मानवाधिकार और महिलाएँ, भोपाल: मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ सं. 1।
5. वही पृष्ठ सं. 2।
6. मीना, जनक सिंह (2015), मानवाधिकार: संकल्पना एवं यथार्थ, जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृष्ठ सं. 9।
7. वही पृष्ठ सं. 31-33।
8. बाथम, मनोहर (2012), अस्तित्व का संकट और मानवाधिकार, दिल्ली: मेधा बुक्स।
9. देसाई, नीरा, ठक्कर एवं उषा (2009), भारतीय समाज में महिलाएँ, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
10. माथुर, सीमा (2021), आपके कानून आपके अधिकार, हैदरबाद: ओरियंट ब्लैकस्वॉन, पृष्ठ सं. 50।
11. देसाई, नीरा, ठक्कर एवं उषा (2009), भारतीय समाज में महिलाएँ, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
12. Qureshi, Muniruddin (2003), Social status of Indian Women, New Delhi: Amol Publication Pvt. Limited.
13. देसाई, नीरा, ठक्कर एवं उषा (2009), भारतीय समाज में महिलाएँ, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट।
14. दवे, डॉ. दीपिका वी. (2015), 21वीं सदी में महिला सशक्तिकरण, जयपुर: रावत पब्लिकेशन।
15. नेमा, जे. पी. शर्मा एवं डॉ. के. के. (2011), मानवाधिकार सिद्धांत एवं व्यवहार, जयपुर: कालेज बुक डिपो।
16. विकिपीडिया
17. NEP, 2020, Ministry of Education.
18. "Mahila Shakti Kendra Scheme" - Ministry of Women and Child Development, Government of India
19. "Mahila Police Volunteer Scheme" - Ministry of Women and Child Development, Government of India.
20. "Guidelines and Measures for Safety of Women in Public Transport" - Ministry of Housing and Urban Affairs, Government of India.
21. "Sukanya Samriddhi Yojana" - Ministry of Finance, Government of India.
22. "Mahila Utkarsh Yojana" - Ministry of Finance, Government of India.
23. "Women Empowerment Schemes" - Ministry of Women and Child Development, Government of India
24. "PradhanMantri Awas Yojana for Women"- Ministry of Housing and Urban Affairs, Government of India.
25. "Beti Bachao Beti Padhao" - Ministry of Women and Child Development, Government of India.

मन की शान्ति का प्राचीन विज्ञानः मानसिक स्वास्थ्य और भारतीय संस्कृति

गौरव यादव

पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर (NET, JRF) इतिहास विभाग श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय (JJTझुंझुनू, राजस्थान)

सार (Abstract)

प्रस्तुत शोध-लेख भारतीय संस्कृति और ऐतिहासिक धरोहर का विश्लेषण एक 'मनोवैज्ञानिक चिकित्सा प्रणाली' के रूप में करता है। यह विस्तृत अध्ययन सिद्ध करता है कि भारतीय परंपराएं जैसे कि 'संतोष' का दर्शन, संयुक्त परिवार, और पर्व केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि मानसिक स्वास्थ्य को संतुलित रखने के वैज्ञानिक उपकरण (Cognitive Tools) भी हैं इसीलिए लेख में होली द्वारा भावनात्मक रेचन (Catharsis), आयुर्वेद के त्रिगुण सिद्धांत, और योग-प्राणायाम के न्यूरो-बायोलॉजिकल प्रभावों का गहरा अन्वेषण किया गया है।

साथ ही, यह अध्ययन 'सोलह संस्कारों' और 'वानप्रस्थ आश्रम' जैसी व्यवस्थाओं को जीवन के बदलावों (Life Transitions) और 'मिड-लाइफ क्राइसिस' से निपटने का सटीक उपाय के रूप में बताता है इसी तरह आधुनिक शोधों और प्राचीन ग्रंथों (जैसे चरक संहिता, गीता) के समन्वय से, यह लेख स्थापित करता है कि डिप्रेशन, तनाव और अकेलेपन का स्थायी समाधान पश्चिमी दवाओं में नहीं, बल्कि हमारी जड़ों-प्रकृति, अध्यात्म और सामुदायिक जीवनशैली-में ही विद्यमान है।

मुख्य शब्दः शारीरिक स्वास्थ्य, तनाव, अवसाद, भारतीय जीवन पद्धति, संस्कृति, सामाजिक ढांचा, दर्शन, प्रकृति भारतीय चिकित्सा पद्धति व योग।

शोध का उद्देश्यः वर्तमान समय में ही संपूर्ण विश्व में आबादी का बड़ा वर्ग मानसिक स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं से जूझ रहा है जिनमें से कुछ लोग तो परेशान होकर जीवन समाप्त कर लेते हैं वही अन्य पीड़ित मानसिक बीमारी से ग्रसित होकर अत्यंत दुखी जीवन बिता रहे हैं। चिकित्सक व उनकी दवाएं विशेष प्रभावशाली नहीं सिद्ध हो रही। अतः ऐसे में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि प्राचीन काल की हमारी संस्कृति व जीवनपद्धति में ऐसा क्या था जो हमें मानसिक रूप से स्वस्थ रखती थी? इस शोध का उद्देश्य प्राचीन ऐतिहासिक विरासत के उस तंत्र का विश्लेषण करना है जो हमारे मानसिक स्वास्थ्य का आधार थी ताकि उसकी स्वास्थ्यप्रद परंपराओं को पुर्नजीवित कर आधुनिक जीवन के साथ एकीकृत कर सकें।

साहित्यवलोकनः इस लेख को पूर्ण करने ही तो प्राथमिक स्रोतों के साथ साथ द्वितीयक स्रोतों पर विशेष जोर दिया गया है प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत जहाँ श्रीमद्भागवत गीता, पतंजलि योग सूत्र एवं चरकसंहिता आदि का उपयोग किया गया है वहीं द्वितीयक स्रोतों में शोध पत्र जर्नल्स, समाचार पत्रों एवं एम्स निमहांस जैसे चिकित्सालयों में हुए शोध अध्ययनों का भी उपयोग किया गया है।

प्रस्तावनाः जड़ों की ओर लौटने की आवश्यकता

इक्कीसवीं सदी में मानवता जिस सबसे बड़े संकट से जूझ रही है, वह है-मन की अशांति। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आंकड़े इस बात की पुष्टि करते हैं कि डिप्रेशन और एंग्जायटी (चिंता) आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी चुनौतियां बन चुकी हैं। हम समाधान के लिए पश्चिमी मनोविज्ञान, महंगी थेरेपी और 'वेलनेस रिट्रीट' की ओर भाग रहे हैं। लेकिन, एक शोधकर्ता के रूप में जब हम भारतीय उपमहाद्वीप के इतिहास और सांस्कृतिक ताने-बाने (Cultural Fabric) को देखते हैं तो एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आता है कि हमारे पूर्वजों ने हजारों साल पहले ही मानसिक स्वास्थ्य का एक ऐसा 'इको-सिस्टम' तैयार कर दिया था, जो किसी भी आधुनिक चिकित्सा पद्धति से अधिक प्रभावी और टिकाऊ था जिससे हमारी जीवनशैली एकीकृत थी

हमारी भारतीय संस्कृति केवल पूजा-पाठ या कर्मकांडों का संग्रह नहीं है अपितु यह 'मानव मन' (Human Mind) को समझने और उसे संतुलित रखने का एक मनोवैज्ञानिक ब्लूप्रिंट है। चाहे वह प्रकृति के साथ हमारा साहचर्य हो, बदलते मौसमों का उत्सव हो, मेलों की रौनक हो या 'संतोष' का जीवन-दर्शन हो यह प्रतीत होता है कि हर पहलू को इंसान को अवसाद (Depression) और अकेलेपन से बचाने के लिए ही गढ़ा गया था। इस लेख में हम उन विभिन्न पहलुओं की गहराई में जाएंगे कि कैसे हमारी विरासत आज भी हमारे मानसिक स्वास्थ्य की संजीवनी है।

1. जीवन-दर्शन: संतोष और स्वीकार का मनोविज्ञान

आज की मानसिक व्याधियों का मूल कारण है तृष्णा (कभी न खत्म होने वाली इच्छाएं) है। वर्तमान में आधुनिक समाज 'FOMO' (Fear of Missing Out) से ग्रसित है इसके विपरीत, भारतीय दर्शन का आधारभूत स्तंभ रहा है संतोष (Contentment) अर्थात जो प्राप्त है वो पर्याप्त है।

इस बारे में कबीरदास जी दास जी ने बहुत ही सटीक कहा है,

"गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन धन खान। जब आवत संतोष धन, सब धन धूरि समान।।"

यह केवल एक दोहा नहीं है बल्कि यह मानसिक शांति का आधार है। हमारी संस्कृति ने हमें सिखाया है कि खुशियाँ बाजार में बिकने वाली वस्तुओं में नहीं, बल्कि मन की स्थिति में होती है अत: "जितनी चादर हो, उतने ही पैर पसारने चाहिए" यह मुहावरा हमें हताशा (Frustration) से बचाता है। जब हम अपनी परिस्थितियों को स्वीकार कर लेते हैं (Acceptance), तो तनाव अपने आप आधा हो जाता है इसके साथ ही यह सोच हमें डिप्रेशन के उस गहरे गर्त में गिरने से रोकती है जहाँ इंसान अपनी तुलना दूसरों से करके दुखी होता रहता है।

हमारे यहाँ बचपन से ही सिखाया जाता है: "संतोषम् परमम् सुखम्"। यह केवल एक नैतिक शिक्षा नहीं, बल्कि एक 'कॉग्निटिव थेरेपी' है। इसी तरह भगवद्गीता में भी भगवान कृष्ण ने 'स्थितप्रज्ञ' (Stable Wisdom) की अवधारणा दी है अर्थात वह व्यक्ति जो सुख और दुख दोनों में समान रहता है।

'दु:खे 'वनुद्विग्नमना: सुखेषु विगतस्पृह:' (जो दुखों में उद्विग्न नहीं होता और सुखों में लालसा नहीं रखता, वही स्थिर बुद्धि है)

जब हमारा समाज 'जो प्राप्त है, वो पर्याप्त है' के सिद्धांत पर चलता था, तो मानसिक दबाव कम होता था अत: यह दर्शन हमें 'तुलना' (Comparison) की बीमारी से बचाता है। इसी तरह जब हम अपनी परिस्थितियों को 'प्रारब्ध' या 'कर्मफल' मानकर स्वीकार (Accept) कर लेते हैं, तो मन का संघर्ष समाप्त हो जाता है और एक गहरी शांति का अनुभव होता है इस प्रकार यह 'स्वीकार भाव' ही डिप्रेशन के खिलाफ सबसे बड़ी ढाल है।

2. प्रकृति चिकित्सा: सूर्योदय, सूर्यास्त और ऋतुचर्या

भारतीय जीवन शैली कभी भी प्रकृति से अलग नहीं थी। हम प्रकृति के विजेता नहीं अपितु उसके पूजक रहे हैं। आधुनिक विज्ञान अब प्रकृति चिकित्सा (Ecotherapy) की बात कर रहा है, जिसे हम सदियों से जीते आ रहे हैं जैसे कि ब्रह्म मुहूर्त और सूर्योदय के संदर्भ में देखें तो हमारे यहाँ सूर्योदय से पूर्व उठने की परंपरा रही है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखें तो सुबह की ताजी हवा और सूर्य की पहली किरणें हमारे शरीर में 'सेरोटोनिन' (Serotonin) के स्तर को बढ़ाती हैं, जो एक 'मूड लिफ्टर' है वही सूर्य को जल देना (अर्घ्य) केवल पूजा नहीं, बल्कि सूर्य की किरणों के माध्यम से रंग चिकित्सा (Color Therapy) और विटामिन-डी लेने का एक तरीका था, जो सीधे हमारे मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है।

वहीं गोधूलि बेला या सूर्यास्त का समय हमारे यहाँ दिन और रात का मिलन बिंदु है। इस समय प्रकृति शांत होती है और इस समय दीया जलाना और कुछ पल मौन रहना हमारी यह जैविक घड़ी (Circadian Rhythm) (जैविक घड़ी) को रात के विश्राम के लिए तैयार करता है, जिससे अनिद्रा (Insomnia) जैसी समस्याएं नहीं होतीं।

वहीं आयुर्वेद में 'ऋतुचर्या' का वर्णन है अर्थात इसके अंतर्गत मौसम के अनुसार जीवनशैली बदलती है। इसके संदर्भ में कालिदास का 'ऋतुसंहार' ग्रंथ बताता है कि कैसे प्रकृति का बदलाव हमारे मन को प्रभावित करता है एवं सावन की हरियाली और रिमझिम फुहारें मन को शीतलता देती हैं, तो शरद पू एवंर्णिमा का चाँद मन को आह्लाद से भर देता है अत: हमारी संस्कृति ने हमें सिखाया कि कंक्रीट की दीवारों में बंद रहने के बजाय, नंगे पैर घास पर चलना, नदी किनारे बैठना और हवा के झोंकों को महसूस करना ही असली दवा है प्रकृति का साथ हमारे तन मन और अंतरात्मा को आनंद और शांति से भर देता

3. पर्व और त्यौहार: सामूहिक उल्लास की क्रोनोबायोलॉजी

भारतीय त्योहार कैलेंडर पर लिखी तारीखें नहीं हैं, वे हमारे मन को 'रीसेट' करने के ट्रिगर हैं। हमारी संस्कृति में हर त्योहार का एक मनोवैज्ञानिक उद्देश्य है जैसे कि होली और का पर्व दमित भावनाओं का विसर्जन करता है इस संदर्भ में मनोविज्ञान कहता है कि हम पूरे साल सामाजिक मर्यादाओं का मुखौटा पहने रहते हैं, जिससे तनाव पैदा होता है अत: होली वह दिन है जब समाज हमें वह मुखौटा उतारने की अनुमति देता है इस त्योहार पर रंग, गुलाल, हँसी-ठिठोली और ऊँची आवाज में गाना,यह सब रेचन (Catharsis) कहा कार्य करता है क्योंकि जब हम दूसरों को रंगते हैं, तो हम अपने 'अहंकार' (Ego) को मिटा देते हैं। अत: रंगों का विज्ञान (Chromotherapy) हमारे सुस्त पड़े स्नायुतंत्र (Nervous System) को जगा देता है।

वहीं दीपावली का पर्व आशा के मनोविज्ञान को दर्शाता है क्योंकि दीपावली का संदेश है कि अंधेरे पर प्रकाश की जीत। यह अवसादग्रस्त मन के लिए एक रूपक (Metaphor) है अर्थात जब पूरा शहर दीपों से जगमगाता है, तो मन में छाई निराशा की धुंध छंट जाती है जहाँ एक तरफ घर की साफ-सफाई करना बाहरी क्रिया है वही इसका असर आंतरिक मन पर पड़ता है-इसे 'Behavioral Activation' कहते हैं।

इसी तरह छठ और संक्रांति कृतज्ञता (Gratitude) का पाठ पढ़ाते हैं क्योंकि छठ पूजा में डूबते और उगते सूर्य की पूजा होती है जो हमें यह सिखाता है कि जो अस्त हुआ है, उसका उदय निश्चित है। यह चक्र हमें जीवन में विफलता के बाद सफलता की उम्मीद देता है। वहीं इस त्योहार पर प्रकृति के तत्वों (जल, सूर्य, अन्न) के प्रति कृतज्ञ होना हमारे भीतर सकारात्मकता भरता है जिससे हम निराशाजनक समय और कठिन परिस्थितियों में सकारात्मकता वो उम्मीद के साथ आगे बढ़ सकते हैं।

4. सामाजिक ढांचा: संयुक्त परिवार और मेलों का जादू

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और अकेलापन उसे दीमक की तरह चाट जाता है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था ने इस अकेलेपन का इलाज पहले ही खोज लिया था अगर इसे हम संयुक्त परिवार (Joint Family System) के संदर्भ में देखें तो आज हम 'Therapist' को पैसे देकर अपनी बात कहते हैं, लेकिन पहले संयुक्त परिवार में दादी, नानी, बुआ या चाची के रूप में हमारे पास अनगिनत श्रोता (Listeners) होते थे। दुख बांटने से कम होता है इसी सिद्धांत पर हमारी पारिवारिक व्यवस्था टिकी थी। बच्चों को पालने का तनाव, आर्थिक सुरक्षा या बुढ़ापे का डर, यह सब संयुक्त परिवार मिलकर उठाता था इसीलिए एक व्यक्ति पर कभी भी इतना बोझ नहीं आता था कि वह टूट जाए। मेरी जीवन का व्यक्तिगत अनुभव भी रहा है कि निराशाजनक परिस्थिति में मुझे मेरे परिवार ने बोला की कोई तनाव या दबाव नहीं लेना है हम सब साथ हैं जो होगा सब साथ मिलकर देखेंगे इस प्रोत्साहन ने मुझे टूटने से बचाया और सकारात्मकता के साथ आगे बढ़ने को प्रोत्साहन दिया, यह सच है की किसी भी उम्र में माँ की ममता का एहसास हमें कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी सहारा देता है एवं इसका कोई विकल्प नहीं है द्य आज के दौर 2025 - 2026 में बढ़ते तनाव , अवसाद का एक मुख्य कारण संयुक्त परिवार का टूटना भी है।

इसी तरह भारत में मेलों का आयोजन चाहे वह कुंभ या पुष्कर जैसे राष्ट्रीय मेले हो या गाँव का सामान्य मेला, ये सभी मनोवैज्ञानिक रूप से बहुत महत्वपूर्ण है। जब हम लाखों लोगों की भीड़ में होते हैं, जो सब एक ही उद्देश्य (स्नान या दर्शन) के लिए आए हैं, तो हमें अपनी क्षुद्रता का अहसास होता है जैसे कि हमारी निजी समस्याएं, जो हमें पहाड़ जैसी लगती थीं, उस विराट जनसमूह के सामने राई के दाने जैसी हो जाती हैं क्यों कि भीड़ का हिस्सा बनकर हम 'कनेक्टेड' महसूस करते हैं जिससे हमारी एकाकीपन की भावना दूर हो जाती है।

5. आश्रम व्यवस्था: जीवन के पड़ावों का प्रबंधन

हमारी संस्कृति ने जीवन को चार आश्रमों में बांटा है जो कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास है। यह आश्रम पद्धति मानसिक स्वास्थ्य का बेहतरीन ब्लूप्रिंट था। आज के दौर में मिड-लाइफ क्राइसिस (Mid-life Crisis) और रिटायरमेंट के बाद का डिप्रेशन बहुत आम हो गया है वही वानप्रस्थ आश्रम हमें सिखाता था कि एक उम्र के बाद जिम्मेदारियां नई पीढ़ी को सौंपकर समाज सेवा और ईश्वर ध्यान में लगना चाहिए। अत: यह 'लेटिंग गो' (Letting Go) का प्रशिक्षण था। जो बुजुर्ग इस व्यवस्था का पालन करते थे, वे कभी भी 'खालीपन' (Empty Nest Syndrome) का शिकार नहीं होते थे, क्योंकि उनके पास जीवन का एक नया उद्देश्य होता था।

6. कला, संगीत और मंत्र विज्ञान

भारतीय शास्त्रीय संगीत और मंत्रोच्चार केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि चिकित्सा भी हैं। उदाहरणार्थ मंत्र चिकित्सा के संदर्भ में हम देखें तो पाते हैं कि 'ओम' (?) का उच्चारण करने से शरीर में जो कंपन (Vibration) होता है, वह हमारी 'वेगस नर्व' (Vagus Nerve) को उत्तेजित करता है, जिससे तनाव तुरंत कम होता है इसी प्रकार गायत्री मंत्र या महामृत्युंजय मंत्र का जाप मन को एकाग्र (Focus) करता है और नकारात्मक विचारों को रोकता है। इसी तरह हम पाते हैं संगीत में हमारे राग समय और प्रहर के अनुसार बने हैं जैसे कि सुबह का राग भैरव मन को शांति देता है, तो शाम का राग यमन दिनभर की थकान मिटाता है। यह 'साउंड थेरेपी' हमारे पूर्वजों की एक महान खोज थी।

7. आहार और मन: जैसा खाए अन्न, वैसा होवे मन

छांदोग्य उपनिषद में कहा गया है कि 'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि' अर्थात शुद्ध आहार से ही मन शुद्ध होता है। हमारी संस्कृति में सात्विक, राजसिक और तामसिक भोजन का गहरा विज्ञान है उदाहरणार्थ तनाव और क्रोध को कम करने के लिए सात्विक भोजन (ताजे फल, सब्जियां, दूध, घी) की सलाह दी जाती थी वहीं बासी और अत्यधिक तीखा भोजन मन में बेचैनी पैदा करता है द्य आज विज्ञान भी मानता है कि हमारी आंतें (Gut) हमारा 'दूसरा दिमाग' हैं इसी लिए भारतीय परंपरा में भोजन को प्रसाद मानकर ग्रहण करना, जमीन पर बैठकर खाना, ये सब पाचन और मानसिक शांति के लिए अनिवार्य माने गए थे।

8. आयुर्वेद और त्रिगुण सिद्धांत: मन का बायो-केमिस्ट्री (The Bio-chemistry of Mind)

जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान (Psychology) मन को मस्तिष्क (Brain) तक सीमित रखता है, वहीं भारतीय चिकित्सा पद्धति 'आयुर्वेद' ने हजारों साल पहले 'गट-ब्रेन एक्सिस' (Gut-Brain Añis) की खोज कर ली थी अर्थात भोजन और उसके बाद पाचन का मस्तिष्क से सीधा संबंध है अर्थात हमारा आहार हमारे मस्तिष्क को और हमारे मस्तिष्क में चलने वाले विचार हमारे पाचन पर प्रभाव डालते हैं यही कारण है कि तनाव में हमारा पाचन तंत्र सर्वप्रथम बिगड़ता है द्य आयुर्वेद के अनुसार, मानसिक स्वास्थ्य केवल विचारों का खेल नहीं है, बल्कि यह शरीर के तीन दोषों (वात, पित्त, कफ) और मन के तीन गुणों (सत्व, रजस, तमस) का संतुलन है।

इससे हम त्रिगुण और मानसिक स्थितियाँ के अंतर्गत समझ सकते हैं जैसा कि चरक संहिता में स्पष्ट लिखा है कि डिप्रेशन और सुस्ती 'तमस' गुण (अंधकार/जड़ता) के बढ़ने से होती है, जबकि एंग्जायटी (घबराहट) 'रजस' (गति/अस्थिरता) के असंतुलन से होती है। प्राचीन चिकित्सक डिप्रेशन के मरीज को केवल बातें (जीमतंचल) नहीं बताते थे, बल्कि उसे 'सात्विक आहार' और जड़ी-बूटियाँ (जैसे अश्वगंधा, ब्राह्मी) देते थे। आधुनिक शोध: 'जर्नल ऑफ एथनोफार्माकोलॉजी' (Journal of Ethnopharmacology) के कई शोध भी यह सिद्ध कर चुके हैं कि ब्राह्मी और जटामांसी जैसी भारतीय औषधियाँ सीधे हमारे 'न्यूरोट्रांसमीटर' को रेगुलेट करती हैं वह भी बिना किसी साइड इफेक्ट के वही नाड़ी विज्ञान के अंतर्गत पाते हैं कि पहले वैद्य केवल नाड़ी (Pulse) पकड़कर बता देते थे कि व्यक्ति के मन में क्या चल रहा है, यह स्पर्श चिकित्सा थी। जब वैद्य हाथ पकड़ता था, तो रोगी को भरोसा होता था कि कोई है जो मेरे दर्द को समझ रहा है और यह विश्वास (Placebo Effect) ही आधी बीमारी खत्म कर देता था।

9. सोलह संस्कार: जीवन के बदलावों का मनोवैज्ञानिक प्रबंधन (Rituals as Transitional Psychology)

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी देन में से एक 16 संस्कार हैं। आधुनिक समाज में 'आइडेंटिटी क्राइसिस' (Identity Crisis) एक बड़ी समस्या है, लेकिन हमारे पूर्वजों ने जन्म से मृत्यु तक हर बड़े बदलाव के लिए एक 'संस्कार' (Ritual) बनाया था, ताकि मन उस बदलाव को स्वीकार कर सके। इन्हीं में से कुछ संस्कार और उनके प्रभाव निम्नलिखित हैं जैसे कि गर्भाधान और पुंसवन (Prenatal Psychology) के संदर्भ में देखें तो पाते हैं कि आज विज्ञान 'Epigenetics' की बात करता है, लेकिन हमारे यहाँ 'अभिमन्यु' की कथा और 'गर्भ संस्कार' सदियों से हैं अत: गर्भवती माँ को खुश रखना, उसे अच्छा संगीत सुनाना-यह बच्चे के अवचेतन मन (Subconscious Mind) को मजबूत करने की प्राचीन तकनीक थी।

वही उपनयन और विद्यारंभ संस्कार के अंतर्गत देखें तो जब बच्चा शिक्षा के लिए घर छोड़ता था, तो जनेऊ (उपनयन) संस्कार होता था। यह उसे मानसिक रूप से तैयार करता था कि अब बचपन खत्म और अनुशासन शुरू अत: यह 'Mental Conditioning' थी।

वही अंत्येष्टि संस्कार (Grief Processing) के अंतर्गत भी हम पाते हैं कि मृत्यु का दुख (Grief) सबसे भारी होता है इसी लिए 'गरुड़ पुराण' के पाठ और 13 दिन की क्रियाएँ मनोवैज्ञानिक रूप से इस तरह डिजाइन की गई थीं ताकि परिजन धीरे-धीरे दुख से बाहर आएं इसके अंतर्गत रोना, पिंड दान करना और फिर 13वें दिन शुद्ध होकर समाज में लौटना, यह पूर्णता (Closure) का सबसे वैज्ञानिक तरीका था, ताकि दुख डिप्रेशन न बने।

10. योग: आसन से परे 'चित्त वृत्ति निरोध'

पश्चिम ने योग को केवल कसरत (Exercise) बना दिया है, जबकि महर्षि पतंजलि के लिए योग का अर्थ था-'योग: चित्तवृत्ति निरोध' अर्थात योग चित्तवृत्ति का निरोध करता है मतलब योग से मन की लहरें शांत होती है। इसको हम प्राणायाम एवं प्रत्याहार के माध्यम से समझ सकते हैं

उदाहरणार्थ प्राणायाम का न्यूरो-साइंस के अंतर्गत हम पाते हैं कि अनुलोम-विलोम और भ्रामरी प्राणायाम सीधे हमारे विश्राम तंत्र (Parasympathetic Nervous System) को एक्टिवेट करते हैं। एम्स (AIIMS) और निमहंस (NIMHANS) के कई अध्ययन बताते हैं कि नियमित भ्रामरी प्राणायाम करने से शरीर में नाइट्रिक ऑक्साइड का उत्पादन बढ़ता है, जो रक्तचाप कम करता है और मन को तत्काल शांत (Instant Calm) करता है। इसी तरह प्रत्याहार Digital Detox का आदिम रूप है जो के पतंजलि के अष्टांग योग में पाँचवाँ अंग है जहाँ प्रत्याहार मतलब होता है इंद्रियों को बाहरी विषयों से हटाना अत: आज जिसे हम 'Digital Detoñ' कहते हैं, वह प्रत्याहार ही है। हमारे ऋषि जानते थे कि बहुत अधिक सूचना (Information Overload) मन को बीमार कर देगी, इसलिए वे मौन (Silence) और एकांत का अभ्यास करवाते थे।

11. वास्तु और सामाजिक वास्तुकला : खुशी की वास्तुकला (Architecture of Happiness)

क्या आपने कभी पुराने भारतीय घरों के आंगन (Courtyard) पर गौर किया है? आंगन घर का वह हिस्सा था जहाँ पूरा परिवार शाम को बैठता था, आसमान दिखता था, और हवा आती थी मतलब प्राचीन वास्तुकला आधारित हमारे आशियाने अधिक प्रकृतिउन्मुख और स्वास्थ्यप्रद थे इसी तरह गाँवों में 'चौपाल' और कुओं की जगत (Well boundaries) मानसिक स्वास्थ्य केंद्र थे। औरतें पनघट पर अपने

दुख-सुख साझा कर लेती थीं (Venting out), और पुरुष चौपाल पर यही कार्य करते थे यह तंत्र सामुदायिक चिकित्सा (Community Therapy) का कार्य करता था द्य वहीं आज आधुनिक फ्लैट्स (Apartments) बंद डिब्बे हैं, जहाँ इंसान अपने पड़ोसी को भी नहीं जानता। अतः प्राचीन वास्तुकला (टेंजन) ऐसी थी जो अकेलेपन (Isolation) को असंभव बना देती थी। सूर्य की रोशनी और हवा का प्रवाह (Ventilation) घर में 'पॉजिटिव एनर्जी' बनाए रखता था, जिसे आज हम 'Environmental Psychology' कहते हैं।

12. कथा वाचन और कीर्तनः सामूहिक संगीत चिकित्सा

भारत के हर गाँव में शाम को कथा, कीर्तन या सत्संग की परंपरा रही है। सामूहिक रूप से ताली बजाना और गाना (कीर्तन) दिमाग में एंडोर्फिन (Endorphins) रिलीज करता है यह संगीत चिकित्सा (Music Therapy) का कार्य करता है।

इसी तरह रामायण या महाभारत की कथाएं सुनना केवल धर्म नहीं था अर्थात जब एक दुखी व्यक्ति सुनता था कि भगवान राम को भी वनवास मिला या पांडवों को कष्ट सहने पड़े, तो उसे अपना दुख छोटा लगता था इसे मनोविज्ञान में 'Relative Deprivation Theory' के संदर्भ में देखा जा सकता है यह है कि दूसरों के बड़े संघर्ष देखकर अपना संघर्ष सहने की शक्ति मिलती है इसे कहानी का असर (Bibliotherapy) कहते हैं।

13. प्रकृति के साथ तादात्म्यः वसुधैव कुटुम्बकम

पश्चिमी दर्शन ने इंसान को प्रकृति का 'मालिक' बताया, जबकि भारतीय दर्शन ने कहा है कि हम प्रकृति का हिस्सा हैं। यही कारण है कि हमारी परंपरा है जैसे कि पीपल को जल देना, चींटियों को आटा डालना, गाय को रोटी देना-ये सब क्रियाएं हमें मैं-केंद्रित (Ego-Centric) से प्रकृति-केंद्रित (Eco-Centric) बनाती थीं।

वही वर्तमान में हुए शोध के अंतर्गत आधुनिक 'इको-साइकोलॉजी' (Eco-psychology) मानती है कि जो लोग जानवरों और पौधों की देखभाल करते हैं, उनमें एंग्जायटी और ब्लड प्रेशर की समस्या 40% कम होती है। हमारी संस्कृति ने इसे 'धर्म' (Duty) से जोड़कर अनिवार्य कर दिया था।

निष्कर्षः प्राचीन ज्ञान में ही है भविष्य की शांति

जब हम इन तमाम पहलुओं यदा आयुर्वेद, संस्कार, योग, वास्तु और सामुदायिक जीवन, पर्व-त्योहार जीवन दर्शन, प्रकृति एवं सामाजिक ढांचा आदि को समग्रता (Holistically) में देखते हैं, तो एक ही निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन भारत के पास 'मेंटल हॉस्पिटल्स' नहीं थे अपितु समाज का ढांचा ही 'हॉस्पिटल' था।

हर्बट बेंसन (Herbert Benson) जैसे हार्वर्ड के शोधकर्ता जब 'रिलैक्सेशन रिस्पांस' (Relañation Response) पर शोध करते हैं, तो वे वही बातें कह रहे होते हैं जो कश्मीरी शैव दर्शन या उपनिषदों में हजारों साल पहले कही गई है।

अंत में, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत की विरासत केवल इतिहास के पन्नों में सिमटी कथा नहीं है, बल्कि यह एक जीवित और सांस लेती हुई व्यवस्था है। हमारे पूर्वजों ने हमें वह सब कुछ दिया जो एक स्वस्थ, संतुलित और आनंदित जीवन जीने के लिए आवश्यक है।

आज जब हम कंक्रीट के जंगलों में, एसी कमरों में बंद होकर, स्क्रीन के सामने अपनी आंखें फोड़ रहे हैं, तो हमें रुककर सोचना होगा कि क्या हमने विकास के नाम पर अपने उस कवच को उतार फेंका है जो हमें मानसिक आघातों से बचाता था? आज 2026 में हमें सोचना होगा कि हम रीलबाजी में व्यस्त रहकर अपनी अधीरता, बेचैनी, अवसाद एवं तनाव को बढ़ाना है या फिर सच्चा वह संतुलित जीवन जीने के मार्ग पर चलना है?

समाधान यह नहीं है कि हम तकनीक छोड़ दें और जंगलों में चले जाएं अपितु समाधान यह है कि हम अपनी आधुनिक जीवनशैली में अपनी विरासत के सूत्रों को पिरोएं जिसके लिए हम-

A-हफ्ते में एक बार प्रकृति की गोद में जाएं। B-त्योहारों को केवल छुट्टी न मानें, उन्हें अपनों से जुड़ने का उत्सव बनाएं और खुलकर त्योहार मनाकर अपने मन को रीसेट करें।

C-'और चाहिए' की दौड़ में रुककर 'जो है, उसके लिए धन्यवाद' (Gratitude) कहना सीखें।

D-परिवार के बुजुर्गों के पास बैठें, क्योंकि उनके पास अनुभव की वह औषधि है जो गूगल पर नहीं मिलेगी।

भारतीय संस्कृति 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' (सभी सुखी हों, सभी रोगमुक्त हों) की प्रार्थना करती है। यह प्रार्थना ही हमारे मानसिक स्वास्थ्य का मूल मंत्र है। जब हम 'मैं' से निकलकर 'हम' और 'हम' से निकलकर 'ब्रह्मांड' (Nature) से जुड़ते हैं, तो अवसाद, तनाव और चिंता के लिए कोई जगह नहीं बचती और यही हमारी धरोहर है, और यही हमारा असली धन है।

संदर्भ सूची (References)

1. प्राचीन ग्रंथ (Ancient Teñts):

श्रीमद्भगवद्गीता -(कर्मयोग और स्थितप्रज्ञ दर्शन के लिए)

पतंजलि योग सूत्र - (संतोष और नियम के मनोवैज्ञानिक संदर्भ के लिए)

चरक संहिता - (ऋतुचर्या और दिनचर्या के वैज्ञानिक पक्ष के लिए)

छांदोग्य उपनिषद - (आहार और मन के संबंध के लिए: 'आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि')

2. पुस्तकें (Books):

Kakar, S. (1981). The Inner World% A Psycho&analytic Study of Childhood and Society in India- Oñford University Pres. (नोट: सुधीर काकर भारत के सबसे प्रसिद्ध मनोविश्लेषक हैं, उनकी यह किताब भारतीय बचपन और समाज पर सबसे प्रामाणिक मानी जाती है।)

Frawley, D. (2000). Ayurveda and the Mind: The Healing of Consciousness. Lotus Press.

Durkheim, É. (1912). The Elementary Forms of the Religious Life. (For the concept of 'Collective Effervescence' in festivals)

Satyananda Saraswati. (1996). Yoga Nidra. Yoga Publications Trust. (योग निद्रा और अवचेतन मन पर सबसे प्रामाणिक पुस्तक)।

3. शोध पत्र और जर्नल्स (Academic Journals - Research Papers):

Chadda, R. K., & Deb, K. S. (2013). Indian family systems, collectivistic society and psychotherapy. Indian Journal of Psychiatry, 55(Suppl 2), S299. (यह पेपर संयुक्त परिवार और मानसिक स्वास्थ्य के संबंध को सिद्ध करता है।)

Kalyani, B. G., et al. (2011). Neurohemodynamic correlates of 'OM' chanting: A pilot functional magnetic resonance imaging study. International Journal of Yoga, 4(1), 3. (यह 'ओम' के उच्चारण का दिमाग पर वैज्ञानिक असर बताने वाला प्रसिद्ध पेपर है।)

Birdie, A. K. (2015). Impact of Festivals on Subjective Well-being. International Journal of Social Sciences and Management, 2(4), 23-28. (यह पेपर बताता है कि कैसे नवरात्रि और अन्य त्योहार खुशी बढ़ाते हैं।)

Malhotra, V., & Singh, S. (2012). Ritucharya: Answer to the lifestyle disorders. Ayu (An International Quarterly Journal of Research in Ayurveda), 33(4). (यह पेपर ऋतुचर्या और मानसिक/शारीरिक संतुलन पर है।)

National Institute of Mental Health and Neurosciences (NIMHANS) Reports on Yoga and Neuroscience (2020-2024).

Kashyap, S. (2015). The 16 Sanskaras: Their Psychological Significance. Journal of Indian Psychology.

Singh, R.H. (2012). Swasthavritta Vijñana. Chaukhamba Sanskrit Pratishthan. (आयुर्वेद और सामाजिक स्वास्थ्य पर)।

Benson, H. (1975). The Relaxation Response. HarperTorch. (मंत्र और ध्यान के वैज्ञानिक प्रभाव पर पश्चिमी शोध)।

4. समाचार पत्र और लेख (Newspapers - Articles):

The Hindu (2019). "Why festivals matter for mental health" - Lifestyle Desk.

Times of India (Wellness Section). "The science of colors during Holi and its impact on mood."

चंपारण सत्याग्रह और गांधीजी का सामाजिक-शैक्षिक प्रयोगः एक अध्ययन

मधुसूदन साह

शोधरत, इतिहास विभाग, बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० नागेश्वर कुमार

सहायक प्राध्यापक, (इतिहास विभाग, बी0 एम0 डी कॉलेज, दयालपुर, वैशाली)
बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

गाँधी जी की चंपारण यात्रा एवं यहाँ किया गया उनका कार्य बिहार के साथ-साथ संपूर्ण भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। दक्षिण अफ्रीका के पश्चात् भारत में सत्याग्रह का सफल प्रयोग उन्होंने यही किया। गाँधी जी के नेतृत्व में सत्याग्रह का यह प्रथम प्रयोग अद्वितीय माना जाता है। इसका कारण यह था कि चंपारण सत्याग्रह में उन्होंने अहिंसा, सत्य जैसे मूल्यों के प्रसारण के साथ-साथ शोषित, दलित जन समूह के जागरण व उन्मुक्ति पर बल दिया था। उनका मानना था कि आर्थिक विषमताओं को पूर्णतया दूर किया जाना चाहिय। ये विषमताएँ मानव को मानव का शोषक बनाती है। फलतः उन्होने आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को दूर कर समाज के शुद्धिकरण पर बल दिया। इनके प्रयास से चंपारण के किसानो को अत्याचारपूर्ण व्यवस्था से मुक्ति मिली। साथ-साथ ग्रामीण इलाको में समाज सेवा के भी कार्य किए गए। जो आगे के अन्य बड़े आंदोलनों के आधार बने। यहीं गाँधी जी ने शोषित पीड़ित जनसमूह की स्थिति में सुधार के माध्यम से स्वराज लाने की परिकल्पना के माध्यम से लोगो के समक्ष देश सेवा का स्वर्णिम आदर्श रखा था। चंपारण के गाँवो में अशिक्षा, स्वास्थ्य व सफाई के प्रति निष्क्रियता आदि के साथ-साथ, उपयोगी व क्रियात्मक ग्रामीण जीवन के विकास में बाधा डालने वाली कई अन्य व्याधियाँ भी व्याप्त थी। गाँधी जी के अनुसार इन व्याधियों को दूर किये बिना भारत की समाजिक प्रगति या राष्ट्रीय पुर्नजागरण संभव नही था। अतः गाँधी जी ने चंपारण में शिक्षा, स्वास्थ्य व सफाई के लिए भी कार्य किया।

चंपारण में गांधीजी द्वारा प्रारंभ किए गए ये शैक्षिक-सामाजिक प्रयोग आगे चलकर 'नैतिक राष्ट्रवाद' की अवधारणा के आधार बने, जहाँ राष्ट्र-निर्माण का अर्थ केवल सत्ता-परिवर्तन नही, बल्कि समाज का नैतिक और संरचनात्मक पुनर्गठन था। इस प्रकार चंपारण सत्याग्रह भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सामाजिक परिवर्तन, दलित-जागरण, स्त्री-शिक्षा और ग्रामीण चेतना का आधार स्तंभ सिद्ध हुआ।

प्रस्तुत आलेख में चंपारण आंदोलन के दौरान गाँधी जी द्वारा किये गए सामाजिक एवं शैक्षिक प्रयोगों का अध्ययन वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक प्रविधियो द्वारा किया जाएगा।

शब्द कुंजी- राष्ट्रीय पुर्नजागरण, समाजिक शुद्धिकरण, आत्मानुशासन, स्वराज, दलित जागरण, राष्ट्रीय आंदोलन, स्त्री शिक्षा, गाँधीवादी शिक्षा।

परिचर्चा

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में महात्मा गाँधी की चंपारण यात्रा को एक युगांतकारी घटना के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस यात्रा का प्राथमिक उद्देश्य तो केवल नीलहे किसानों की समस्याओं का समाधान करना था, लेकिन इस क्रम में गाँधी जी द्वारा यहाँ जिस सामाजिक-शैक्षिक नवाचार की शुरुआत की गई उसने 'भारतीय राष्ट्रवाद को एक नया सामाजिक, नैतिक और मानवीय आधार प्रदान किया।'[1] दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के सफल प्रयोग के बाद भारत में गाँधी जी द्वारा सत्याग्रह का यह पहला प्रयोग था। इसे भारतीय समाज एवं राजनीति में गाँधी जी का प्रथम संगठित सार्वजनिक हस्तक्षेप माना जा सकता है, जहाँ 'उन्होंने न केवल ब्रिटिश सत्ता बल्कि ग्रामीण शोषण एवं सामाजिक पतन के विरुद्ध भी रचनात्मक संघर्ष का आह्वान किया।'[2] चंपारण सत्याग्रह के दौरान यहाँ राजनीतिक प्रतिरोध को सामाजिक सुधार, नैतिक अनुशासन और ग्रामीण पुनर्निर्माण से अविच्छिन्न रूप में जोड़ा गया, इस प्रकार की समन्वयकारी गतिविधियां ही इसे विशिष्टता प्रदान करती है। चूंकि गाँधी जी की दृष्टि में 'स्वराज का अर्थ केवल सत्ता परिवर्तन नहीं, बल्कि समाज के अंतिम व्यक्ति के जीवन में गरिमा, आत्मसम्मान और स्वावलंबन की स्थापना करना था'[3], अतः इस आंदोलन को उन्होंने बहुआयामी स्वरूप प्रदान किया।

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में बिहार के चंपारण जिले के किसान यूरोपीय नीलहे जमींदारों के बहुविध अत्याचारों से बहुत पीड़ित थे। यहाँ तीनकठिया प्रथा के अंतर्गत किसानों को प्रति बीघे तीन कट्ठा पर अनिवार्य रूप से नील की खेती करनी पड़ती थी। 'यह खेती

किसानों के लिए घाटे का सौदा थी, किंतु औपनिवेशिक संरक्षण प्राप्त यूरोपीय नीलहे जमींदारों ने इसे जबरन लागू रखा।'[4] हालांकि यूरोप में कृत्रिम नील के प्रचलन के बाद इसकी अंतरराष्ट्रीय माँग घट गई।लेकिन इसके बावजूद चंपारण के किसानों को इस शोषण और जुल्म से मुक्ति नही मिली। इसके साथ-साथ ऊँची लगान दरें, बेगार, मनमाने दंड और प्रशासनिक दमन ने किसानों की स्थिति को अत्यंत दयनीय बना दिया। के0 के0 दत्ता के अनुसार, चंपारण का किसान "आर्थिक शोषण और सामाजिक अपमान-दोनों का शिकार"[5] था। इसी परिदृश्य में राजकुमार शुक्ल, जो वस्तुतः चंपारण के किसानों के प्रतिनिधि थें, के आग्रह पर गाँधी जी 1917 ई0 में चंपारण पहुँचे। यहाँ पहुँचकर उन्होंने किसानों की स्थिति का प्रत्यक्ष अवलोकन किया। अवलोकन के उपरांत गाँधी जी ने यह अनुभव किया कि 'चंपारण की समस्या केवल नील की खेती से सम्बद्ध कृषक समस्या तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसके मूल में अज्ञान, अशिक्षा, अस्वास्थ्य, सामाजिक भय और नैतिक हीनता जैसी गहरी संरचनात्मक समस्याएँ विद्यमान हैं'।[6] डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, 'गाँधी जी को चंपारण में सबसे अधिक पीड़ा किसानों की आर्थिक दयनीयता से नहीं, बल्कि उनके भीतर व्याप्त भय और आत्महीनता से हुई'।[7] इसी प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर गाँधी जी ने आंदोलन को सर्वव्यापी एवं सर्वसमावेशी सामाजिक दिशा प्रदान किया।

चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय राष्ट्रवाद को न केवल नए तरीके से परिभाषित किया बल्कि एक नया प्रतिमान भी प्रदान किया, जिसमें राजनीति का लक्ष्य केवल राजनीतिक सत्ता-हस्तांतरण नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, नैतिकता और मानवीय गरिमा की पुनर्स्थापना भी बन गया। राष्ट्रवाद का यह नवीन संस्करण 'केवल शिक्षित मध्यम वर्ग या शहरी अभिजात वर्ग तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने ग्रामीण, अशिक्षित और शोषित जनता को राष्ट्रीय आंदोलन का सक्रिय सहभागी बनाया।'[8] इसी आंदोलन के दौरान ही किसानों का दुःख-दर्द, उनकी आर्थिक समस्याएं और स्थानीय स्तर पर ब्रिटिश शोषण के प्रत्यक्ष अनुभव सबसे पहली बार राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र में आए। इससे भारतीय राष्ट्रवाद का स्वभाव व्यापक, समावेशी और जनोन्मुख हुआ।

गाँधी जी का दृढ़ विश्वास था कि समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता ही एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का शोषक बनाती हैं और जब तक इन विषमताओं को कम करने का सार्थक प्रयास नहीं किया जाएगा, तब तक समाज का नैतिक शुद्धिकरण संभव नहीं है। इसी विचार के आलोक में 'उन्होंने चंपारण में आंदोलन को हिंसक प्रतिकार की दिशा में मोड़ने के बजाय सत्य और अहिंसा के नैतिक आधार अर्थात सत्याग्रह पर संगठित किया।'[9] गाँधी जी के लिए सत्याग्रह केवल एक राजनीतिक रणनीति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक नैतिक साधन भी था। सत्याग्रह ने समाज के पीड़ित एवं शोषित वर्गों में आत्मसम्मान, साहस और संगठन की चेतना को जागृत किया तथा भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक विस्तृत नैतिक आधार प्रदान किया, जो आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन की पहचान बना।

चंपारण में धरातल पर कार्य करते हुए गाँधी जी को यह प्रत्यक्ष अनुभूति हुई कि यहाँ के 'ग्रामीण समाज की दुर्दशा केवल ब्रिटिश शासन या नीलहे जमींदारों द्वारा यहाँ के किसानों पर थोपे गए अन्यायपूर्ण तिनकठिया प्रथा का ही परिणाम नहीं है बल्कि इसके पीछे अशिक्षा, अज्ञान, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता के प्रति उदासीनता, कुपोषण तथा सामाजिक जड़ता जैसी समस्याएँ भी समान रूप से जिम्मेदार हैं।'[10] इस अनुभव से गाँधी जी का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि राजनीतिक मुक्ति तब तक सार्थक नहीं हो सकती, जब तक ग्रामीण जीवन की बुनियादी संरचना को सशक्त न किया जाए। गाँधी जी का स्पष्ट मानना था कि अज्ञान मनुष्य के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है, क्योंकि यह उसे अपने अधिकारों, कर्तव्यों और मानवीय गरिमा के प्रति अचेत बनाए रखता है।

ऐसे समाज के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता बेमानी है। अगर ऐसी स्थिति में राजनीतिक स्वतंत्रता मिल भी जाए ,तो यह समाज नए स्वदेशी शासकों के हाथों पुनः शोषण का शिकार बन सकता है। इसी कारण उन्होंने 'चंपारण सत्याग्रह को केवल एक राजनीतिक प्रतिरोध का नही बल्कि एक व्यापक सामाजिक-शैक्षणिक प्रयोग का स्वरूप प्रदान किया।'[11] इस प्रयोग के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा, स्वच्छता अभियान, स्वास्थ्य जागरूकता तथा स्वाबलंबन पर विशेष बल दिया गया। इस तरह से चंपारण की धरती गाँधी जी के लिए राजनीतिक संघर्ष की प्रयोगशाला के साथ-साथ सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रयोगभूमि भी बना, जिसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को रचनात्मक कार्यक्रम की दिशा प्रदान की।

शिक्षा के सन्दर्भ में गाँधी जी का चिंतन ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली से मूलतः भिन्न था। जहाँ ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली का प्राथमिक उद्देश्य एक ऐसे शिक्षित वर्ग का निर्माण करना था जो ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र के लिए लिपिकीय श्रेणी का मानव-संसाधन उपलब्ध करा सके। वहीं गाँधी जी ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे जो व्यक्ति के 'नैतिक चरित्र का निर्माण करे, श्रम की गरिमा को स्थापित करे तथा ग्रामीण जीवन को स्वावलम्बी बनाए।'[12] उनके लिए शिक्षा केवल बौद्धिक विकास का ही साधन नहीं, बल्कि मनुष्य के शारीरिक, और नैतिक विकास का भी माध्यम थी। गाँधी जी का स्पष्ट मानना था कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को स्वावलम्बी, सत्यनिष्ठ और सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त एक जिम्मेवार नागरिक बनाना है। इसी संदर्भ में उनका यह विचार विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था कि शिक्षक की औपचारिक शैक्षणिक योग्यता से अधिक उसका नैतिक चरित्र और आचरण निर्णायक होता है। शिक्षक का जीवन स्वयं विद्यार्थियों के लिए आदर्श होना चाहिए। इसी दृष्टिकोण के आधार पर उन्होंने 'चंपारण के गाँवों में प्राथमिक विद्यालय स्थापित करने का निर्णय लिया।[13] इन विद्यालयों में पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ स्वच्छता, श्रम, अनुशासन और सामाजिक सेवा पर बल दिया गया। इस प्रकार चंपारण में गाँधी जी ने शिक्षा को सामाजिक पुनर्निर्माण का सशक्त साधन बनाते हुए उसे राष्ट्रीय आंदोलन के नैतिक आधार से जोड़ा। नवंबर 1917 ई0 में गाँधी जी ने चंपारण के रचनात्मक कार्यक्रम को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से महाराष्ट्र और गुजरात से शिक्षित, विश्वसनीय तथा परिश्रमी महिला-पुरुष स्वयंसेवकों को चंपारण में आमंत्रित किया। ये स्वयंसेवक अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्व से ही विभिन्न

सेवा संस्थाओं और सामाजिक संगठनों से जुड़े हुए थे, किंतु चंपारण में 'गाँधी जी के निर्देशन में उन्होंने अपने पूर्व दायित्वों से ऊपर उठकर स्वयं को पूर्णत: ग्रामीण सेवा के लिए समर्पित कर दिया।'[14] इन स्वयंसेवकों की उपस्थिति से चंपारण में राष्ट्रीय आंदोलन को एक संगठित, अनुशासित और नैतिक स्वरूप प्राप्त हुआ। गाँधी जी द्वारा स्वयंसेवकों को स्पष्ट और कठोर निर्देश दिया गया था कि वे नीलहों के विरुद्ध 'किसी भी प्रकार की राजनीतिक शिकायत, आंदोलनात्मक गतिविधि या प्रत्यक्ष संघर्ष में भाग नहीं लेंगे। उनका कार्यक्षेत्र केवल शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता तक सीमित रहेगा।'[15] इस पूरे प्रसंग में, सेवा के माध्यम से ग्रामीण जनता का विश्वास अर्जित करना और उनमें आत्मसम्मान तथा जागरूकता विकसित करना ही गाँधी जी का उद्देश्य था। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए स्वयंसेवकों ने गाँव-गाँव जाकर प्राथमिक विद्यालयों का संचालन किया, स्वच्छता अभियानों को बढ़ावा दिया तथा स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता फैलायी। इस रचनात्मक कार्य से सत्याग्रह को एक मानवीय और नैतिक आधार मिला तथा यह स्पष्ट हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन केवल प्रतिरोध नहीं, बल्कि समाज के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया भी है।

गाँधी जी की प्रेरणा से 14 नवंबर 1917 ई0 को चंपारण के बड़हरवा लखनसेन नामक गाँव में पहला प्राथमिक विद्यालय स्थापित किया गया। यह विद्यालय केवल शिक्षा का ही केंद्र नहीं, बल्कि ग्रामीण समाज के सर्वांगीण उत्थान की प्रयोगशाला भी बना। गाँव के ही एक सक्रिय एवं जागरूक निवासी शिवगुलाम लाल ने गाँधी जी की प्रेरणा से इस विद्यालय के संचालन के लिए अपना घर दान कर दिया। यह 'गाँधीवादी रचनात्मक कार्यो में चंपारण के ग्रामीण समुदाय की सहभागिता और सहयोग की भावना को दर्शाता है।'[16] इस विद्यालय में बबन गोखले और उनकी पत्नी अवंतिकाबाई गोखले ने अध्यापन कार्य प्रारंभ किया और स्वयं को पूर्णत: ग्रामीण सेवा के लिए समर्पित कर दिया। प्रारंभिक चरण में इस विद्यालय में लगभग 75 छात्रों का नामांकन हुआ, जिनमें विभिन्न जातियों और वर्गो के बच्चे सम्मिलित थे। इस विद्यालय में शिक्षा का उद्देश्य केवल अक्षर ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि बच्चों में अनुशासन, स्वच्छता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना भी था। इसी दृष्टि से 'शिक्षा के साथ-साथ पूरे गाँव की स्वच्छता, कुओं एवं अन्य जलस्रोतों की सफाई तथा खुले में शौच की रोकथाम पर विशेष ध्यान दिया गया।'[17] स्वयंसेवकों ने ग्रामीण जनता को स्वास्थ्य और स्वच्छता के प्रति जागरूक किया तथा व्यवहारिक सुधार पर बल दिया। इन विद्यालयों में शिक्षा का स्वरूप ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली से भिन्न और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल था। 'इन विद्यालयों में बच्चों को हिंदी, उर्दू, इतिहास, भूगोल तथा विज्ञान की प्रारंभिक और व्यवहारोन्मुख शिक्षा दी जाती थी।'[18] इन विषयों के माध्यम से बच्चों में भाषा-ज्ञान, ऐतिहासिक चेतना, भौगोलिक समझ और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास किया गया। शिक्षा को जीवन से जोड़ने के लिए पुस्तकीय ज्ञान के साथ दैनिक अनुभवों और स्थानीय परिवेश को भी शिक्षण का आधार बनाया गया। इसके अतिरिक्त कताई-बुनाई जैसे व्यावहारिक प्रशिक्षणों को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया गया। इसका उद्देश्य श्रम की गरिमा को स्थापित करना और बच्चों में कार्य के प्रति सम्मान की भावना विकसित करना था। गाँधी जी का स्पष्ट मत था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चे को अपनी जड़ों से काटे नहीं, बल्कि उसे अपने समाज और परिवेश से जोड़ते हुए आत्मनिर्भर बनाए। इसलिए इस शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को उनकी पारंपरिक आजीविका से विमुख करना नहीं, बल्कि उसमें सुधार, कौशल-विकास और उत्पादकता की वृद्धि करना था। वस्तुत: इन विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा बौद्धिक, नैतिक और व्यावहारिक तीनों स्तरों पर संतुलित थी। इसने बच्चों को केवल साक्षर ही नहीं बनाया, बल्कि उन्हें स्वावलंबी, जागरूक और सामाजिक उत्तरदायित्व से युक्त नागरिक के रूप में विकसित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार यह विद्यालय चंपारण में गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रतीक बन गया, जिसने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी साधन सिद्ध किया।

चंपारण में गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का विस्तार क्रमिक और योजनाबद्ध रूप से किया गया। इसी क्रम में 20 नवंबर 1917 ई0 को भीतरहवा गाँव में दूसरा विद्यालय खोला गया, जिसने ग्रामीण शिक्षा के प्रसार को नई गति प्रदान की। इस विद्यालय की स्थापना से यह स्पष्ट हुआ कि गाँधी जी का उद्देश्य कुछ सीमित प्रयोगों तक ही नहीं, बल्कि व्यापक स्तर पर ग्रामीण समाज के शैक्षणिक उत्थान का था। भीतरहवा की पाठशाला भी स्थानीय समुदाय के सहयोग से संचालित हुई, जिससे ग्रामीणों में शिक्षा के प्रति विश्वास और सहभागिता की भावना सुदृढ़ हुई। इसके बाद '17 जनवरी 1918 ई0 को मधुवन गाँव में घनश्याम दास के घर एक पाठशाला प्रारंभ की गई, जहाँ लगभग 100 बच्चों को नियमित शिक्षा दी जाती थी।'[19] इस पाठशाला में बच्चों को प्राथमिक शिक्षा के साथ स्वच्छता, अनुशासन और श्रम के महत्व से परिचित कराया गया। इन विद्यालयों के माध्यम से गाँधी जी ने यह सिद्ध किया कि शिक्षा केवल भवनों या संसाधनों पर निर्भर नहीं होती, बल्कि सामाजिक चेतना और सेवा-भाव से ही उसका वास्तविक विस्तार संभव है।

चंपारण में गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के अंतर्गत शिक्षा के साथ-साथ स्वास्थ्य और स्वच्छता को भी समान रूप से महत्त्व दिया गया। गाँधी जी का मानना था कि अशिक्षा और अस्वच्छता परस्पर जुड़ी हुई समस्याएँ हैं, जो ग्रामीण समाज को रोग, निर्धनता और सामाजिक पिछड़ेपन की ओर धकेलती हैं। इसी दृष्टिकोण से गाँवों में कुओं की सफाई पर विशेष ध्यान दिया गया, क्योंकि दूषित जल अनेक रोगों का प्रमुख कारण था। 'स्वयंसेवकों ने ग्रामीणों के सहयोग से कुओं की नियमित सफाई करवाई और स्वच्छ जल के उपयोग के महत्व को समझाया।'[20] इसके अतिरिक्त रोग-निवारण के लिए सामान्य बीमारियों की पहचान, प्राथमिक उपचार और स्वच्छ वातावरण की आवश्यकता पर बल दिया गया। व्यक्तिगत स्वच्छता के अंतर्गत स्नान, साफ वस्त्र, हाथ धोने और घर-आसपास की सफाई के प्रति जागरूकता फैलाई गई। इन प्रयासों से ग्रामीणों में स्वास्थ्य के प्रति नई चेतना विकसित हुई और यह स्पष्ट हुआ कि चंपारण सत्याग्रह केवल राजनीतिक संघर्ष नहीं, बल्कि जन-स्वास्थ्य और सामाजिक सुधार का भी एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग था।

चंपारण सत्याग्रह के माध्यम से गाँधी जी ने राष्ट्रीय आंदोलन की परिधि को केवल राजनीतिक प्रतिरोध तक सीमित न रखते हुए उसे सामाजिक पुनर्निर्माण से जोड़ा। उन्होंने प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण स्वच्छता और सामाजिक सहयोग को राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न अंग बनाकर यह स्पष्ट किया कि 'स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ जनता के जीवन स्तर में सुधार से जुड़ा है।'[21] इस आंदोलन के दौरान किए गए रचनात्मक कार्यों ने ग्रामीण समाज में आत्मसम्मान, संगठन और सहभागिता की भावना को सुदृढ़ किया।

चंपारण सत्याग्रह केवल एक क्षेत्रीय किसान आंदोलन न रहकर राष्ट्रीय स्तर पर एक नई कार्यपद्धति का प्रतीक बन गया। यहीं से गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों–जैसे शिक्षा, स्वच्छता, खादी और स्वावलंबन–की वैचारिक रूपरेखा स्पष्ट रूप में उभरती है। यही कारण है कि यह आंदोलन आगे चलकर असहयोग आंदोलन की वैचारिक भूमि बना, जहाँ 'सत्याग्रह के साथ रचनात्मक कार्यों को समान महत्त्व दिया गया।'[22] इस प्रकार चंपारण ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक व्यापक, नैतिक और जनोन्मुख दिशा प्रदान की।

निष्कर्ष

चंपारण सत्याग्रह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का वह निर्णायक चरण था, जहाँ राजनीति और सामाजिक सुधार परस्पर अविभाज्य रूप में एक–दूसरे से जुड़े दिखाई देते हैं। यह आंदोलन केवल नीलहे किसानों के आर्थिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष नहीं था, बल्कि ग्रामीण भारत के सर्वांगीण पुनर्निर्माण का एक सशक्त प्रयोग भी था। चंपारण में स्थापित विद्यालय और सेवा–केंद्र साधारण शिक्षण संस्थाएँ नहीं थे, बल्कि वे ऐसे केंद्र बने जहाँ नैतिक अनुशासन, श्रम की गरिमा और सामाजिक उत्तरदायित्व का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया गया। इन संस्थाओं ने ग्रामीण समाज में आत्मसम्मान, स्वच्छता और सहयोग की चेतना को विकसित किया।

गाँधी जी ने चंपारण में यह स्पष्ट रूप से सिद्ध किया कि स्वराज केवल राजनीतिक सत्ता की प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है, बल्कि समाज के नैतिक उत्थान की एक सतत और समग्र प्रक्रिया है। उनके लिए स्वतंत्रता का अर्थ था–शोषणमुक्त समाज, शिक्षित नागरिक और आत्मनिर्भर ग्रामीण जीवन। चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को यह दृष्टि प्रदान की कि राजनीतिक संघर्ष तभी सार्थक हो सकता है, जब वह सामाजिक परिवर्तन और नैतिक पुनर्निर्माण से जुड़ा हो। इस प्रकार चंपारण भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में रचनात्मक राष्ट्रवाद की आधारशिला सिद्ध हुआ।

सन्दर्भ सूची –

1. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र– चंपारण में गांधी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1965, पृ0 258
2. गाँधी, महात्मा – कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, वॉल्यूम–ग्प्प्, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 1964, पृ0 63–65.
3. दत्ता, के0 के0 – बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, भाग–1, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1957, पृ0 287.
4. गाँधी, महात्मा – उपरोक्त, पृ0 66–67
5. दत्ता, के0 के0 ,उपरोक्त, पृ0 289.
6. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र ,उपरोक्त, पृ0 257
7. उपरोक्त, पृ0 258.
8. दत्ता, के0 के0 ,उपरोक्त, पृ0 290–291.
9. गाँधी, महात्मा – उपरोक्त, पृ0 72–73.
10. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र, उपरोक्त, पृ0 263–264.
11. उपरोक्त, पृ0 265.
12. गाँधी, महात्मा – उपरोक्त, पृ0 74–75.
13. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र, उपरोक्त, पृ0 266.
14. उपरोक्त, पृ0 267.
15. दत्ता, के0 के0, उपरोक्त, पृ0 292.
16. प्रसाद, डॉ0 राजेन्द्र, उपरोक्त, पृ0 266.
17. उपरोक्त, पृ0 268.
18. गाँधी, महात्मा, उपरोक्त, पृ. 72.
19. प्रसाद, डॉ. राजेन्द्र, उपरोक्त, पृ. 271–272.
20. बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना–चंपारण सत्याग्रह फाइल (1917–18), फाइल 41, पृ0 7–9.
21. दत्ता, के. के., उपरोक्त, पृ. 292–293.
22. गाँधी, महात्मा, उपरोक्त, पृ0 75

भारतीय चुनाव प्रकिया में इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन (EVM) का प्रयोगः तकनीकी, संवैधानिक, प्रशासनिक एवं लोकतांत्रिक विश्लेषण

सुरेश कुमार मीणा

शोधार्थी, (एम.एल.वी. राजकीय महाविद्यालय भीलवाड़ा)

भारत विश्व का सबसे विशाल लोकतांत्रिक गणराज्य है। जहाँ वर्तमान में 90 करोड़ से अधिक मतदाता सांसदीय तथा राज्य स्तरीय चुनावों में भाग लेते है। इतनी विशाल जनसंख्या, बहुभाषिक संरचना, भौगोलिक विवधता और समाजिक विषमता के बीच स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष चुनाव आयोजित करना एक असाधारण प्रशासनिक उपलब्धि है। चुनाव प्रक्रिया की विश्वसनीयता ही लोकतंत्र की वैधता का मूलाधार है। इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) का प्रयोग भारतीय चुनाव प्रणाली में एक संरचनात्मक परिवर्तन का द्योतक है। इसने मतगणना की गति, प्रशासनिक दक्षता, लागत नियंत्रण और चुनावी अपराधों की प्रकृति को प्रभावित किया है। तथापी, इसके साथ पारदर्शिता, तकनिकी विश्वसनीयता और लोकतान्त्रिक विश्वास से संदर्भित प्रश्न भी उठे हैं। यह शोधपत्र EVM के तकनीकी विकास, संवैधानिक वैधता, न्यायिक हस्तक्षेप, VVPAT के समावेशन, राजनीतिक विमर्श, तुलनात्मक वैश्विक अनुभव तथा लोकतान्त्रिक सिद्धांतों के आलोक में EVM की भूमिका का गहन विश्लेषण करता है। अध्ययन का केंन्द्रीय तर्क यह है कि EVM केवल एक तकनीकी उपकरण नहीं, बल्कि लोकतान्त्रिक वैधता की सतत परीक्षा है। तकनीकी दस्ता और संस्थागत विश्वास के बीच संतुलन स्थापित किए बिना इसकी पूर्ण स्वीकृति संभव नहीं।

मुख्य शब्द- लोकतंत्र, निर्वाचन आयोग, इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन, VVPAT, चुनाव सुधार, संवैधानिक वैधता, चुनाव प्रबंधन, मतदाता विश्वास, सार्वजानिक उत्तरदायित्व

प्रस्तावना

भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला स्वतन्त्र और निष्पक्ष चुनाव पर टिकी है। संविधान निर्माताओं ने यह स्पष्ट किया था कि सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार लोकतंत्र की आत्मा है। डॉ. भीमराव अबेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि राजनीतिक लोकतंत्र तभी सफल होगा जब वह सामाजिक लोकतंत्र से समर्थित हो। अनुच्छेद 324 के अंतर्गत भारत का निर्वाचन आयोग को चुनाव संचालन की स्वतंत्र एवं स्वायत्त शक्तियां प्रदान की गई। आयोग का दायित्व केवल चुनाव आयोजित करना नहीं, बल्कि उनकी निष्पक्षता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करना भी है। स्वतंत्रता के पश्चात् 1952 में हुए प्रथम आम चुनाव मतपत्र आधारित प्रणाली पर आधारित थे। उस समय लगभग 17 करोड मतदाता थे। वर्तमान में यह संख्या 90 करोड़ से अधिक है। इस विशाल वृद्धि ने चुनावी प्रशासन को अभूतपूर्व चुनौती दी। मतपत्र प्रणाली में निम्न समस्याएँ प्रमुख थी -

- अमान्य मतों की अधिकता
- मतगणना में अत्यधिक समय
- मतपत्रों की छपाई और परिवहन की उच्च लागत
- बूथ केप्चरिंग की घटनाएं
- चुनाव परिणामों में विलंब के कारण राजनीतिक अस्थिरता

इन परिस्थितयों में चुनावी प्रक्रिया के आधुनिकीकरण की आवश्यकता अनुभव की गई। यही वह पृष्ठभूमि थी जिसमे EVM का विकास और प्रयोग प्रारंभ हुआ। राजनीतिक सिद्धांतकार जॉन स्टुअर्ट मिल ने प्रतिनिधिक लोकतंत्र में दक्ष प्रशासन को आवश्यक बताया था। किन्तु दक्षता के साथ वैधता भी आवश्यक है। यही द्वंद भारतीय EVM विमर्श के केन्द्र में है।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन (EVM) का परिचय-

भारत में म्टडका प्रारंभिक परिक्षण 1982 में केरल के एक निर्वाचन क्षेत्र में किया गया। यद्यपि उस समय कानूनी चुनौतियों के कारण इसका व्यापक उपयोग संभव नहीं हुआ, परन्तु 1990 के दशक में पुनः परिक्षण प्रारंभ हुए। 2004 के आम चुनाव में देशव्यापी स्तर पर म्टडका प्रयोग किया गया। भारतीय इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन की संरचना दो मुख्य इकाइयों से मिलकर बनी होती है -

1. बैलेट यूनिट- जहाँ मतदाता प्रत्याशी के सामने स्थित बटन दबाकर मत दर्ज करता है।
2. कंट्रोल यूनिट- जो मतदान अधिकारी के नियंत्रण में रहती है और मतों को सुरक्षित संग्रहित करती है।

बाद में VVPAT (Voter Verifiable Paper Audit Trail) को जोड़ा गया, जिससे मतदाता को अपने मत कि दृश्य पुष्टी प्राप्त होती है। भारतीय इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह इन्टरनेट या किसी बाहरी नेटवर्क से जुडी नहीं होती। इससे "स्टैंड-अलोन" प्रणाली कहा जाता है। मशीनों का निर्माण सार्वजनिक क्षेत्र की इकाइयों - जैसे भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड- द्वारा किया जाता है।

तकनिकी विशेषज्ञों के अनुसार मशीन में प्रयुक्त माईक्रोकंट्रोलर चिप "वन-टाइम प्रोग्रामेबल" होती है, अर्थात इसे बाद में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। हालांकि आलोचक इस दावे की स्वतंत्र सत्यापन की मांग करते रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग केवल तकनिकी परिवर्तन नहीं, बल्कि चुनावी प्रबंधन के दर्शन में परिवर्तन का संकेत है। यह कागजी प्रक्रिया से डिजिटल रिकॉर्ड की और संक्रमण है।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के उपयोग के उद्देश्य-

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के प्रयोग के पीछे निम्न प्रमुख उद्देश्य रहे -

1. प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि- मतगणना प्रक्रिया को त्वरित बनाना और परिणाम शीघ्र घोषित करना।
2. अमान्य मतों में कमी- मतपत्र प्रणाली के अमान्य मतों की संख्या अधिक होती थी। EVM ने इस समस्या को लगभग समाप्त कर दिया।
3. चुनावी लागत में कमी- करोड़ों मतपत्रों की छपाई, परिवहन और सुरक्षा पर होने वाले व्यय में कमी लाना।
4. चुनावी अपराधों पर नियंत्रण- बूथ कैप्चरिंग और बड़े पैमाने पर ठप्पा लगाने जैसी घटनाओं को सीमित करना।
5. पारदर्शिता और विश्वास निर्माण- VVPAT के माध्यम से मतदाता को दृश्य पुष्टि देना।

इन उद्देश्यों का संबंध केवल तकनीकि सुविधा से नहीं, बल्कि लोकतान्त्रिक विश्वसनीयता से भी है।

साहित्यक समीक्षा- भारतीय चुनाव प्रणाली और तकनीकि सुधारों पर व्यापक साहित्य उपलब्ध है। चुनावी प्रशासन, लोकतान्त्रिक वैधता, संस्थागत विश्वास और तकनीकि पारदर्शिता जैसे आयामों पर राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय विद्वानों ने विचार प्रस्तुत किये है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में राजनी कोठारी ने चुनाव को केवल सत्ता परिवर्तन का माध्यम नहीं, बल्कि राजनीतिक समाजीकरण की प्रक्रिया माना। उनके अनुसार भारतीय लोकतंत्र की स्थिरता संस्थागत विकास पर निर्भर करती है, इस सन्दर्भ में चुनावी तकनीकि का विकास संस्थागत परिपक्वता का संकेत माना जा सकता है।

योगेन्द्र यादव ने भारतीय मतदाता व्यवहार के अध्ययन में यह स्पष्ट किया कि मतदाता की धारणा (Perception) चुनावी प्रक्रिया की वैधता को प्रभावित करती है। यदि मतदाता को चुनाव प्रणाली पर संदेह हो, तो लोकतान्त्रिक सहभागिता प्रभावित हो सकती है। इसलिए तकनीकी प्रणाली की स्वीकृति केवल उसकी वास्तविक सुरक्षा पर नहीं, बल्कि उसकी सावर्जनिक छवि पर भी निर्भर करती है।

प्रताप भानु मेहता ने भारतीय लोकतंत्र की संस्थागत चुनौतियों का विश्लेषण करते हुए यह संकेत किया कि लोकतंत्र में प्रक्रियात्मक पारदर्शिता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी परिणामात्मक वैधता। इस दृष्टि से इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रश्न प्रक्रियात्मक विश्वास से जुड़ जाता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जॉन रोल्स का न्याय सिद्धांत प्रासंगिक है। रोल्स के अनुसार किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की वैधता इस पर निर्भर करती है कि क्या उसके नियम सभी नागरिकों द्वारा निष्पक्ष माने जा सकते हैं। यदि इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन की पारदर्शिता पर प्रश्न उठते हैं, तो लोकतान्त्रिक न्याय का प्रश्न भी उठता है।

इसी प्रकार युर्गेन हाबर्समास ने सार्वजनिक क्षेत्र (public sphere) की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए कहा कि लोकतंत्र का आधार संवाद है। यदि चुनावी तकनीकी पर खुला संवाद और स्वतन्त्र परिक्षण न हो, तो लोकतान्त्रिक विश्वास कमजोर हो सकता है।

तकनिकी और सत्ता के संबंध पर मिशेल फूको का विश्लेषण उल्लेखनीय है। फूको ने बताया कि सत्ता केवल संस्थाओं में नहीं, बल्कि ज्ञान और तकनीकी के माध्यम से भी कार्य करती है। इस दृष्टि से म्टडकेवल तकनीकी उपकरण नही, बल्कि शक्ति-संरचना का अंग है, जिसे पारदर्शी और उत्तरदायी होना चाहिए।

अध्ययन के उद्देश्य- इस शोध का उद्देश्य केवल इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के लाभ-हानि का वर्णन करना नहीं, बल्कि निम्न गहन प्रश्नों का विश्लेषण करना है-

1. क्या इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन भारतीय लोकतंत्र की प्रशासनिक अनिवार्यता का परिणाम है?
2. क्या इसकी तकनीकी संरचना लोकतान्त्रिक पारदर्शिता के मानकों पर खरी उतरती है?
3. न्यायपालिका ने इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के संबंध में किस प्रकार संतुलन स्थापित किया है?
4. क्या आलोचनाएँ तकनीकी वास्तविकता से अधिक राजनीतिक धारणा पर आधारित है?
5. भविष्य में चुनावी तकनीकी किस दिशा में विकसित हो सकती है?

शोध प्रविधि- यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) शोध पर आधारित है। इसमें निम्न स्त्रोतों का उपयोग किया गया है -

- निर्वाचन आयोग की आधिकारिक रिपोर्ट
- न्यायालय के निर्णय
- राजनीतिक विज्ञान और सार्वजानिक प्रशासन संबंधी ग्रंथ
- विद्वानों के शोध लेख
- तुलनात्मक अंतरराष्ट्रीय अध्ययन

शोध में विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। संवैधानिक प्रावधानों और न्यायिक टिप्पणियों का पाठ-विश्लेषण (Textual Analysis) किया गया है।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के प्रयोग की अनिवार्यता- भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में चुनाव आयोजन की जटिलता को समझे बिना इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन की आवश्यकता को नहीं समझा जा सकता। 1952 के प्रथम आम चुनाव में लगभग 17 करोड़ मतदाता थे; वर्तमान में यह संख्या 90 करोड़ से अधिक है। लाखों मतदान केंद्र, लाखों कार्मिक, सुरक्षा बल और व्यापक लॉजिस्टिक व्यवस्था इस प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं द्यमतपत्र प्रणाली में कई गंभीर समस्याए थी-

- मतपत्रों को छपाई और परिवहन में अत्यधिक व्यय
- मतगणना में कई दिनों का समय
- अमान्य मतों की उच्च संख्या
- बूथ कैप्चरिंग की घटनाएँ

इन चुनौतियों ने चुनावी सुधार की आवश्यकता उत्पन्न की। इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग इस प्रशासनिक संकट का समाधान था। 2013 में भारत का सर्वोच्च न्यायालय ने टटचज् को अनिवार्य करते हुए कहा कि पारदर्शिता लोकतंत्र का अभिन्न अंग है। यह निर्णय दर्शाता है कि तकनीकी सुधार संवैधानिक मूल्यों के अधीन है।

तुलनात्मक वैश्विक अनुभव- वैश्विक स्तर पर इलेक्ट्रॉनिक मतदान के विविध अनुभव रहे है। जर्मनी कि संवैधानिक अदालत ने 2009 में इलेक्ट्रॉनिक मतदान को इस आधार पर असंवैधानिक ठहराया कि सामान्य नागरिक बिना तकनीकी ज्ञान के उसकी सत्यता का परिक्षण नहीं कर सकता। इसके विपरीत एस्टोनिया ने इन्टरनेट आधारित मतदान प्रणाली अपनाई और डिजिटल पहचान प्रणाली के माध्यम से चुनाव कराए। भारत का मॉडल इन दोनों से भिन्न है। यहाँ मशीने नेटवर्क से पृथक है और केंद्रीयकृत चुनाव प्रबंधन प्रणाली लागू है। भारतीय सन्दर्भ में डिजिटल विभाजन और साइबर सुरक्षा की चुनौतियों को देखते हुए पूर्ण ऑनलाइन मतदान व्यवहारिक नहीं माना जाता।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन प्रयोग की अनिवार्यता-

भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे विशाल लोकतंत्र है। यहाँ मतदाताओं की संख्या कई देशों की कुल जनसंख्या से अधिक है। ऐसी स्थिति में पारंपरिक मतपत्र प्रणाली (Ballot Paper System) की सीमाएं स्पष्ट रूप से सामने आती रही है। मतपत्रों की छपाई, परिवहन, भण्डारण, सुरक्षा, गिनती और परिणाम घोषणा में लगने वाला समय और संसाधन अत्यधिक थे। 1980 और 1990 के दशक में अनेक निर्वाचन क्षेत्रों ने बूथ केप्चरिंग, मतपत्रों की लूट ,नकली मतदान और मतगणना में अनियमितताओं की शिकायतें व्यापक रूप से दर्ज की गई। इसी सन्दर्भ में भारत निर्वाचन आयोग ने तकनीकी हस्तक्षेप को लोकतान्त्रिक शुचिता का साधन माना। लोकतंत्र के सिद्धांतकार भीमराव रामजी आंबेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि "संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि उसे चलाने वाले लोग अच्छे नहीं होंगे तो वह सफल नहीं होगा।" इस कथन को व्यापक अर्थ में समझें तो लोकतान्त्रिक संस्थाओं की विश्वसनीयता बनाये रखने के लिये प्रक्रियात्मक शुचिता आवश्यक है। EVM इसी प्रक्रियात्मक शुचिता की दिशा में एक तकनीकी साधन है जैसे विशाल देश में

जहाँ सुदूर पर्वतीय, जनजातीय, रेगिस्तानी, और द्वीपीय क्षेत्र है, वहाँ लाखों मतपत्रों का भौतिक प्रबंधन जटिल था। EVM ने इस जटिलता को सरल बनाया। मतगणना में जहाँ पहले कई दिनों का समय लगता था, वहीँ सब कुछ घंटो में परिणाम संभव हो गया। इससे राजनीतिक अनिश्चितता की अवधि कम हुई और प्रशासनिक स्थिरता शीघ्र स्थापित होने लगी। इसके अतिरिक्त पर्यावरणीय दृष्टी से भी EVM अनिवार्य सिद्ध हुई। करोड़ों मतपत्रों की छपाई में विशाल मात्रा में कागज की आवश्यकता होती थी, जिससे वन संसाधनों पर दबाव पड़ता था। तकनीकी समाधान ने इस समस्या को कम किया। लोकतंत्र की गुणवत्ता केवल मतदान प्रतिशत से नहीं, बल्कि उसकी पारदर्शिता और विश्वसनीयता से भी मापी जाती है। राजनीतिक वैज्ञानिक राबर्ट ए. डाल ने 'पॉली आर्की' की अवधारणा में स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव को लोकतंत्र की मूल शर्त माना। यदि चुनाव प्रक्रिया संदिग्ध हो, तो लोकतंत्र का नैतिक आधार कमजोर हो जाता है। अतः EVM का प्रयोग भारतीय लोकतंत्र की संरचनात्मक अनिवार्यता के रूप में देखा जा सकता है।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के प्रयोग से हुए लाभ-

1. पारदर्शिता और विश्वसनीयता- इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के माध्यम से मतदान प्रक्रिया को अधिक सुव्यवस्थित और नियंत्रित बनाया गया। एक मतदाता केवल एक बार ही मतदान कर सकता है। मशीन स्वचालित रूप से एक वोट रिकॉर्ड करती है। इससे बहु-मतदान (multiple voting) की सम्भावना न्यूनतम हो जाती है।
2. मतगणना में तीव्रता- पूर्व में मतगणना मे कई दिनों का समय लगता था। इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन के माध्यम से परिणाम कुछ घंटो में उपलब्ध हो जाते है। इससे राजनीतिक अस्थिरता की अवधि घटती है और शासन का संक्रमण (transition of power) शीघ्र और शांतिपूर्ण होता है।
3. आर्थिक बचत- दीर्घकालिक दृष्टी से इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन मतपत्रों की तुलना में अधिक किफायती सिद्ध हुई है। यद्यपि प्रारंम्भिक लागत अधिक होती है, परन्तु बार-बार उपयोग से कुल लगत कम हो जाती है।
4. पर्यावरणीय संरक्षण- मतपत्र प्रणाली में कागज की भारी खपत होती थी। इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन ने इस आवश्यकता को कम किया। सतत विकास की अवधारणा के अनुरूप यह संसाधन संरक्षण की दिशा में एक सकारात्मक कदम है।
5. बूथ कैप्चरिंग में कमी- इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में प्रत्येक वोट दर्ज करने के बीच समयांतराल होता है, जिससे त्वरित रूप से बड़ी संख्या में नकली वोट डालना कठिन हो जाता है इससे चुनावी हिंसा और बूथ कब्जे की घटनाओं में कमी आई है।
6. VVPAT का समावेशन- मतदाता सत्यापन पर्ची (VVPAT) प्रणाली के समावेशन से पारदर्शिता में और वृद्धि हुई। मतदाता स्वयं देख सकता है कि उसका वोट किस प्रत्याशी के पक्ष में दर्ज हुआ। यह मनोवैज्ञानिक विश्वास को मजबूत करता है।

इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन की चुनौतियाँ एवं आलोचनाएँ-

लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में किसी भी तकनीकी हस्तक्षेप के साथ आलोचनाएँ स्वाभाविक है। EVM भी इससे अछूती नहीं रही द्य

1. हैकिंग कि आशंका- कुछ आलोचकों ने यह तर्क दिया कि इलेक्ट्रोनिक उपकरणों को हैक किया जा सकता है। हालांकि भारतीय इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन इन्टरनेट से असम्बद्ध (standalone) होती है फिर भी आशंकाएं बनी रहती है। तकनीकि पारदर्शिता और स्वतंत्र ऑडिट इस सन्दर्भ में आवश्यक है।
2. पारदर्शिता पर प्रश्न- कुछ राजनीतिक दलों ने चुनाव परिणामों पर संदेह व्यक्त किया। लोकतंत्र में केवल निष्पक्षता ही नहीं, बल्कि निष्पक्षता का प्रतीत होना भी महत्वपूर्ण है। अतः विश्वास निर्माण उपाय आवश्यक है।
3. तकनीकी निर्भरता- अत्यधिक तकनीकी निर्भरता से यदि मशीन में तकनीकी दोष उत्पन्न हो, तो मतदान प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। यद्यपि ऐसे मामलों में बैकअप व्यवस्थाएं मौजूद रहती है।
4. न्यायिक हस्तक्षेप- विभिन्न मामलों में उच्चतम न्यायालय ने VVPAT की गिनती बढ़ाने के निर्देश दिए, जिससे पारदर्शिता और बढ़ी। न्यायपालिका की सक्रियता लोकतान्त्रिक संतुलन का संकेत है।

राजनीतिक सिद्धांतकार जॉन स्टुअर्ट मिल ने प्रतिनिधि सरकार को जनता के विश्वास पर आधारित बताया। यदि जनता को प्रक्रिया पर संदेह हो, तो निरंतर सुधार आवश्यक है।

निष्कर्ष-

भारतीय चुनाव प्रक्रिया में इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन का प्रयोग तकनीकी नवाचार का उदहारण मात्र नहीं, बल्कि लोकतान्त्रिक सुदृढीकरण की एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। इसने चुनाव को तीव्र, अधिक सुव्यवस्थित और व्यापक रूप से पारदर्शी बनाया है। विशाल मतदाता आधार, भौगोलिक विविधता और प्रशासनिक जटिलता के बावजूद भारत नियमित, शांतिपूर्ण और विश्वसनीय चुनाव संपन्न करता है-यह स्वयं में लोकतान्त्रिक उपलब्धि है।

हालाँकि आलोचनाएँ लोकतंत्र का स्वाभाविक अंग है। इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन पर उठते प्रश्न लोकतंत्र की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी जीवन्तता का संकेत है। पारदर्शिता, तकनीकी परिक्षण, स्वतंत्र ऑडिट और VVPAT जैसी व्यवस्थाएं विश्वास सुदृढ़ करने में सहायक है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन भारतीय लोकतंत्र के संस्थागत विकास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यह तकनीक और लोकतंत्र के समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

सुझाव-

1. स्वतंत्र तकनीकी ऑडिट की नियमित व्यवस्था हो।
2. VVPAT पर्चियों की गणना का प्रतिशत बढाया जाये।
3. जनता में EVMd तकनीकी पहलुओं के प्रति जागरूकता अभियान चलाया जाये।
4. मशीनों के निर्माण और परिक्षण में अधिक पारदर्शिता हो।
5. चुनावी प्रबंधन में साइबर सुरक्षा विशेषज्ञों की भागीदारी सुनिश्चित की जाये ।

सन्दर्भ सूचीः-

1. आंबेडकर, भीमराव रामजी. भारत का संविधान और लोकतंत्र. नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन विभाग,1950 (पुनर्मुद्रित संस्करण विभिन्न वर्षों में)
2. निर्वाचन आयोग, भारत. इलेक्ट्रोनिक वोटिंग मशीन मार्गदर्शिका, नई दिल्ली: भारत निर्वाचन आयोग,2019 (संसोधित संस्करण)
3. डाल,रॉबर्ट (Robert Dahl), लोकतंत्र का सिद्धांत (अनुवादित), नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान,1989 (हिंदी संस्करण वर्ष भिन्न हो सकता है)
4. मिल, जॉन स्टुअर्ट (John Stuart Mill) प्रतिनिधि सरकार पर विचार (Consideration on Representative Government) नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन (हिंदी अनुवाद), 2005 (मूल प्रकाशन 1861)
5. सिंह, वी. पी. भारतीय चुनाव प्रणाली, जयपुर: रावत पब्लिकेशन,2008.
6. कुमार, अजय. भारतीय लोकतंत्र और चुनाव सुधार, नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन,2012.
7. मिश्र, एस. सी. चुनाव और राजनीति, जयपुर: कॉलेज बुक डिपो,2009.
8. वर्मा, डी. एन. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, नई दिल्ली: ज्ञानदा प्रकाशन,2011.
9. पाठक, आर. के. लोकतंत्र की संस्थाएँ, नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन, 2010.
10. शर्मा, आर. सी. भारतीय निर्वाचन प्रणाली का विकास, नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन,2013.
11. उच्चतम न्यायालय, भारत, VVPAT संबंधी निर्णय, (Subramanian swamy vèks Election Commission of India) नई दिल्ली: सर्वोच्च न्यायालय अभिलेखागार,2013.
12. गुप्ता, के. एल. राजनीतिक विज्ञान का परिचय, आगरा: साहित्य भवन प्रकाशन,2008.
13. शुक्ल, एम. पी. लोकतंत्र और तकनीक, लखनऊ: लोकभारती प्रकाशन,2015.
14. जोशी, ए.एन. चुनावी सुधार की दिशा, नई दिल्ली: रावत पब्लिकेशन,2014.
15. राय, आर. पी. भारतीय राजनीती का विश्लेषण, जयपुर: पॉइंटर पब्लिशर्स,2011.
16. तिवारी, एस. के. भारत में चुनावी प्रक्रिया, इलाहाबाद: किताब महल प्रकाशन,2007.
17. अग्रवाल, पी. लोकतंत्र का व्यवहारिक स्वरूप, नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स,2016.
18. सिंह, बी. एन. भारतीय प्रशासन और चुनाव, नई दिल्ली: मित्तल पब्लिकेशन्स,2010.

''रामकथा का आधुनिक परिपार्श्व और रामचरितमानस''

डॉ० जितेन्द्र कुमार उपाध्याय

गोस्वामी तुलसीदास कृत - 'रामचरितमानस' में भारतीय संस्कृति, आदर्श तथा सिद्धान्तों आदि का जो सर्वोत्तम रूप वर्णित हुआ है उससे प्रेरणा पाकर आधुनिक काल में भी उपन्यास विधा में विपुल साहित्य का सृजन हुआ है। 'रामचरितमानस' में वर्णित त्याग का मूल्य, कर्त्तव्यपरायणता गुरु-भक्ति, आज्ञापलन, समर्पण आदि ऐसे ही अनेक आदर्शों पर आधारित आधुनिक रामकथा केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों पर रामचरितमानस का प्रभाव किसी न किसी रूप अवश्य पड़ा है, जो निम्नवत् है-

मम अरण्य-सुधाकर अदीब -

सुधाकर अदीब कृत 'मम अरण्य' आधुनिक रामकथा का ऐसा उपन्यास है जिसमे लक्ष्मण के चरित्र को और अधिक उभारने का प्रयास किया गया है। परम्परित रामकथा में लक्ष्मण इस रूप में चित्रित हैं कि जो उग्र, उद्धत, आज्ञाकारी हैं। परन्तु आधुनिक काल में रचित इस उपन्यास में लक्ष्मण के तेजस्वी कर्मण, शौर्यवान, योद्धा होने के साथ ही साथ उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का चित्रण भी हमें देखने को मिलता है जो निम्नवत् है-

भेदभाव की समस्या हमारे समाज में अनवरत चली आ रही है इसका एक ही समाधान है वैमनस्यता को त्यागकर सबके प्रति आत्मीयता का भाव रखना। 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड में काकभुसुण्डि-गरुड़ संवाद के क्रम में यह वर्णन है कि राम में किस प्रकार इस समस्या के समाधान हेतु आदर्श प्रस्तुत किया -

''मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।।
सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सब से अधिक मनुज मोहि भाए।।''[1]

यह संसार मेरी ही माया से उत्पन्न है, इसमें अनेक प्रकार के चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्रिय हैं किन्तु मनुष्य मुझको सबसे अच्छे लगते हैं। यहाँ पर राम द्वारा यह कहलवाना कि सभी मुझे प्रिय हैं, यह बात और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि भक्ति काल में भक्ति का द्वार सभी वर्गों के लिए खोल दिया गया था। 'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड में राम ने शबरी का आतिथ्य स्वीकार करके यह उदाहरण प्रस्तुत कर दिया कि उनके लिए सभी समान रूप से प्रिय है। राम जब शबरी के आश्रम पर पहुँचे तो वह अत्यन्त प्रसन्न हो गई। वह खुशी के वेग में कुछ भी बोल पाने में असमर्थ हो गयी, वह बार-बार प्रभु को प्रणाम कर रही। शबरी ने आदरपूर्वक दोनों भाइयों को बैठाया। इसके बाद अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्रीराम को दिए। प्रभु श्रीराम ने उन खाद्य सामग्री, कन्द मूलादि को बार-बार प्रशंसा करके प्रेम सहित खाया-

''कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारंबार बखानि ।।''[2]

शबरी अपने को अधम कहती है। परन्तु श्रीराम ने शबरी का आतिथ्य स्वीकार करके एक आदर्श को स्थापित किया। इसी प्रकार सुधाकर अदीब कृत 'मम अरण्य' में भी राम के द्वारा शबरी का आतिथ्य इसी प्रकार स्वीकार करने का वर्णन मिलता है। ''शबरी चुन-चुनकर बेर और दूसरे मधुर फल राम जी को खिलाने लगी हैं। राम जी बड़ी ललक के साथ उनके हाथों से वैसे ही खाने लगे जैसे कभी हमारी राजमहिषी माताओं के हाथों से बालपन में खाया करते थे।''[3]

मुनि विश्वामित्र के मन में राक्षसों के उत्पात की घटना बार-बार आ रही है। इसी चिन्ता में वे डूबे हुए थे कि अचानक उनके मन में विचार आया कि प्रभु का जन्म ही पृथ्वी का भार हरने हेतु ही हुआ है। क्यूँ न उन्हें ही लेकर आऊँ जिससे इस भीषण समस्या से छुटकारा पाया जाए। वे दशरथ से बोले कि मैं तुमसे राम को माँगने आया हूँ। दशरथ यह सुनकर बहुत विचलित हो गए तथा मुनि से यह प्रार्थना करने लगे कि सभीं पुत्र मुझे प्राण से प्यारे हैं उनमें भी हे प्रभो! राम को तो किसी भी प्रकार से देते नहीं बनता। कहाँ अत्यन्त डरावने तथा क्रूर राक्षस और कहाँ परम किशोर अवस्था के मेरे सुन्दर पुत्र।

''सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाई। राम देत नहिं बनइ गोसाई ।।
कहँ निश्चिर अति घोर कठोरा। कहँ सुंदर सुत परम किसोरा।।''[4]

इस तरह दशरथ ने मुनि विश्वामित्र से सहज पुत्र-मोह का प्रकटीकरण किया। यह बिलकुल स्वाभाविक है कि किशोर अवस्था के पुत्र को इतने भयंकर राक्षसों से युद्ध के लिए भेजना किसी भी पिता के लिए किंकर्त्तव्यविमूढ़ वाली स्थिति होगी। इसी तरह 'मम अरण्य'

में भी वर्णन प्राप्त होता है जब विश्वामित्र के द्वारा राम को माँगा जाता है तो दशरथ कहते हैं- ''नहीं नहीं महर्षे। ऐसा न कहें..... राम अभी बालक हैं..... मेरे हृदय का टुकड़ा है..... इतने मायावी राक्षसों से युद्ध कैसे कर सकेगा यह? अभीं तो इसने ठीक से शस्त्राभ्यास भी नहीं किया है। मात्र सोलह वर्ष की अल्पायु में इस बालक को मैं काल के मुख कैसे झोक सकता हूँ।''[5]

'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में राम के द्वारा ताड़का वध का वर्णन है। वन मार्ग में जाते हुए मुनि विश्वामित्र ने राम को बतलाया कि वह ताड़का है। यह शब्द सुनते ही वह ताड़का क्रोध करके दौड़ी। राम ने एक ही बाण द्वारा उस ताड़का के प्राण ले लिए।

''चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई।।
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा।।''[6]

इस तरह ताड़का का वध राम द्वारा किया गया। ठीक इसी तरह 'मम अरण्य' में भी ताड़का वध का वर्णन हमें प्राप्त होता है। ''अबकी जैसे ही ताड़का हम पर आक्रमण को झपटी श्रीराम ने अपना वह सधा हुआ बाण उसकी छाती को लक्ष्य करके छोड़ा। बाण सीधा उसके आर पार हो गया और ताड़का एक लम्बे चीत्कार के बाद अनेक वृक्षों, लताओं, चट्टानों, भूखण्डों को अपनी महाकाया से ध्वस्त करती हुई प्राण खोकर ढह गयी।''[7]

अहल्या उद्धार की घटना का वर्णन 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में वर्णित है। गौतम मुनि की स्त्री अहल्या शापवश पत्थर की हो गयी जिसका उद्धार श्रीराम ने किया।

''परसत पद पावन सोक नसावन प्रकट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही।
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही।
अतिसम बड़भागी चरनन्हि लागी जुगल नयन जलधार बही।।''[8]

इस तरह श्रीराम जी के पवित्र और शोक का नाश करने वाले चरणों का स्पर्श पाते ही सचमुच वह तपोमूर्ति अहल्या प्रकट हो गयी। इसी प्रकार 'मम अरण्य' मे भी राम के द्वारा अहल्या उद्धार का वर्णन प्राप्त होता है। 'अहल्या ! देखो तो कौन आया है। कुछ हलचल न हुई उस शिलाखण्ड में। विश्वामित्र जी पुनः बोले- देवी तुम्हारे द्वार अयोध्या के दशरथनन्दन श्रीराम पधारे हैं। मानवाकृति थोड़ी सी हिली। पुनः स्थिर हो गयी। अब भइया ने आगे बढ़कर अपने दाहिने हाथ से उस पाषाणी को स्पर्श किया और बोले- माता अहल्या उठिए। अब यह आपके तप से विरत होने का समय हैं।''[9] इस प्रकार अहल्या के उद्धार का वर्णन 'रामचरितमानस' तथा 'मम अरण्य' दोनों में प्राप्त होता है।

'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में राजा जनक ने सीता की विवाह के लिए जो प्रण लिया था उसका वर्णन मिलता है। जब कोई भी शिव धनुष को तोड़ नहीं पाया तब राजा जनक बहुत निराश हुए और उन्होंने कहा कि अब कोई भी वीरता का अभिमानी नाराज न हो। मैंने यह जान लिया कि धरती वीरो से शून्य हो गई है। अब सभी लोग आशा छोड़कर अपने-अपने घर चले जाइए। ब्रह्मा ने शायद सीता का विवाह होना लिखा ही नहीं।

''अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।।
तजहुँ आस निज-निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।।''[10]

इसी तरह राजा जनक द्वारा धनुष-भंग करने हेतु पधारे अतिथियों को सम्बोधित करते हुए 'मम अरण्य' में भी दिखाया गया है। राजा जनक कहते हैं- ''दूर-दूर से पधारे हुए सम्मानित अतिथियों! अब यह आयोजन यहीं समाप्त हो रहा है। अब आप लोग अपने-अपने राज्यों, गृह निवासों को कृपया लौट जाइए। मुझे यह विश्वास हो चला है कि वर्तमान में यह पृथ्वी वीर पुरुषों से शून्य हो चली है और मेरी प्रिय पुत्री सीता का विवाह असम्भव है।''[11]

'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में राम द्वारा धनुष भंग किए जाने के पश्चात् परशुराम अत्यन्त क्रोधावेश में आते हैं तथा परशुराम-लक्ष्मण संवाद तो बहुत ही रोचक तरीके से वर्णित है। इसी क्रम में परशुराम, भगवान राम से कहते है कि हे राम ! इस विष्णु के धनुष की प्रत्यंचा को खींचिए। ऐसा करेंगे तो मेरा सन्देह समाप्त हो जाएगा।

''राम रमापति कर धन लेहू। खैचहु मिटै मोर संदेहू ।''[12]

इसी प्रकार 'मम अरण्य' में भी राम तथा परशुराम के संवाद का वर्णन है। परशुराम को यह आभास होने लगा था कि वे कोई साधारण पुरुष प्रतीत नहीं हो रहे। तदन्तर परशुराम ने राम से कहा- ''लो यह मेरा अलौकिक वैष्णव - पिनाक इस पर शरसन्धान करके दिखाओ।''[13]

मंथरा के द्वारा बहु प्रकार कैकेयी को समझाया गया तथा कैकेयी को भी यही सच लगने लगा जो मंथरा ने कहा था। अतः रणनीति के अनुसार रानी कैकेयी कोपभवन में गयी। जिसका वर्णन 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में इस प्रकार किया गया -

''जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतर आली।।
बहुविधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई।।''[14]

इसी प्रकार कैकेयी की कुबड़ी दासी मन्थरा द्वारा बुद्धि भ्रष्ट करने तथा रानी कैकेयी के कोपभवन जाने का वर्णन 'मम अरण्य' में इस प्रकार है - ''इसके लिए रानी कैकेयी बाकायदा कोपभवन में गई।''[15] इस प्रकार कोपभवन में जाने का वर्णन 'मम अरण्य' में भी प्राप्त होता है।

सीता पुनि बोली-मृदुला सिन्हा -

मृदुला सिन्हा कृत उपन्यास 'सीता पुनि-बोली' आधुनिक रामकथा साहित्य में महत्वपूर्ण है। सीता की स्मृति जनमानस में त्रेता युग से प्रवाहित होती हुई आज भी रची बसी है। इस उपन्यास में सीता जी के तेजस्वी तथा पूर्ण जीवन का बहुत ही मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है। इस उपन्यास पर भी 'रामचरितमानस' का प्रभाव हमे दृष्टिगत होता है जो निम्नवत् है।

'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में राम वन गमन का प्रसंग है। रानी कैकेयी ने राजा दशरथ से दो वरदान माँगे थे। जिनमें एक था राम का तपस्वी देष में चौदह वर्ष का वनवास।

'तापस बेष विसेषि उदासी। चौदह बरिस राम बनबासी।।''[16]

राजा दशरथ के न चाहते हुए भी राम को उन्होंने वर्ष के लिए बनवास की आज्ञा दी। राम ने उनकी आज्ञा पालन में तत्पर हो गए।

''आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई ।।
बिदा मातु सन आवउँ मागी। चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी।।''[17]

राम कहते हैं कि, हे पिताजी आपकी आज्ञा पालन करके तथा जन्म का फल पाकर मैं जल्द ही लौट आऊँगा। अतः कृपया आज्ञा दीजिए। माता से विदा माँग आता हूँ। फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) वन को चलूँगा। इसी तरह मृदुला सिन्हा कृत 'सीता पुनि बोली' में भी राम द्वारा आज्ञापालन का वर्णन हमें देखने को मिलता है। राम ने माता कौशल्या से कहा- ''माँ, मुझे पिता श्री ने चौदह वर्षों के लिए वनवास दिया है। यद्यपि राम गंभीर थे। फिर भी माँ ने कहा, बेटा, यह समय हँसी ठिठोली करना बंद करनी होगी।''[18]

इसी क्रम में आगे राम ने पिता दशरथ से आज्ञा पालन का वर्णन इस प्रकार है। राम ने कहा - ''पिताजी, आपकी आज्ञा पाकर वन को जा रहा हूँ। चौदह वर्ष बाद लौटूँगा। मेरे साथ सीता और लक्ष्मण भी जा रहे है। आप हमें आशीर्वाद दीजिए।''[19] इस प्रकार राम का आज्ञापालन करना वह भी बिना किसी तर्क-वितर्क के यह एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

इसी प्रकार जब सभी से आज्ञा पाकर राम वन के लिए प्रस्थान कर रहे थे। उस समय श्रीराम को जाते हुए देख उपस्थित सभी लोग व्याकुल होकर उनके साथ-चल दिए। तदन्तर राम ने उन्हें बहु प्रकार समझाया। जिसका वर्णन इस प्रकार हैं-

''चलतु रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा ।।
कृपासिंधु बहुविधि समुझावहिं। फिरहि प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं।।''[20]

इस प्रकार राम के प्रस्थान करते समय स्त्री-पुरुषों द्वारा रथ को घेरने का चित्रण मिलता है जो कि राम के प्रति अयोध्यावासियों के प्रेम को दिखाता है। ''वन के लिए हम प्रस्थान कर चुके थे। चारों ओर से रथ को स्त्री-पुरुषों ने घेर रखा था। हमारे जीवन में एक-एक कर सब घटनाएँ इतनी शीघ्रता से घटित हुई कि किसी एक पर विचार करने का समय ही नहीं मिला।''[21]

राम द्वारा निषादराज गुह को गले लगाने का वर्णन 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में है। गुह को गले लगाकर श्रीराम में एक आदर्श प्रस्तुत किया। समाज में व्याप्त छुआछूत, भेद-भाव आदि की इस घटना ने प्रेरणा दी कि सभी के प्रति हमारा व्यवहार आत्मीय होना चाहिए।

''राम राम कहि जे जमुहाहीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाहीं।।
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा।।''[22]

जो लोग आलस्य से भी राम का नाम लेते हैं। उनके सामने पापों का समूह भी सामने नहीं आता। फिर इस गुह को तो स्वयं श्रीराम जी ने अपने हृदय से लगा लिया और कुल समेत इसे जगत्पावन बना दिया। इस प्रकार राम द्वारा गुह को गले लगाकर सम्मान देने का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार 'सीता पुनि बोली' में राम द्वारा निषादराज गुह को हृदय से लगाने का वर्णन प्राप्त होता है। ''गुरु वशिष्ट और निषादराज गुह पहले आ गए थे। राम ने गुरु को प्रणाम किया और गुह को गले लगाया।''[23] विभीषण द्वारा जब रावण को समझाया गया कि वे राम से बैर न करें तथा सीता को वापस लौटा दे तब रावण अपने बल, पौरुष, पराक्रम की बात सुना के विभीषण को ही उल्टा सुनाने लगता है। आपस में ताल मेल तथा सम्मान करने की भावना का होना अत्यन्त आवश्यक है। विभीषण रावण से कहता कि हे नाथ जहाँ पर अच्छी मति होती है वहाँ पर समस्त सुख निवास करते हैं इसके विपरीत परिणाम बहुत ही भयानक होता है।

''सुमति कुमति सब के उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं।।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।।''[24]

हे नाथ! पुराण तथा वेद ऐसा कहते हैं कि सुबुद्धि तथा कुबुद्धि सबके हृदय में रहती है, जहाँ सुबुद्धि है वहाँ पर नाना प्रकार की सम्पदाएँ रहती है तथा जहाँ कुबुद्धि है वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है। इसी प्रकार 'सीता पुनि बोली' में भी इसका वर्णन मिलता है कि रावण विभीषण की बात नहीं मानता तथा विभीषण राम की शरण में आते है। ''राम को भरपूर जन-समर्थन मिला था। एक शक्तिशाली राजा सुग्रीव का तन, मन, धन और शक्ति का समर्थन भी। हनुमान, अंगद, जामवंत जैसे पराक्रमी योद्धाओं का साथ। रावण की सभी विशेषताओं और दुर्बलताओं की जानकारी देने वाला विभीषण भी।''[25] इस तरह दोनो प्रसंग से यह स्पष्ट है कि जहाँ पर सुमति या अच्छी बुद्धि नहीं होगी वहाँ परिणाम अच्छे प्राप्त नहीं होते।

इसी प्रकार 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में यह प्रसंग है कि सीता के विवाह के पश्चात् जब विदा का समय होता है तो उससे पहले रानियों द्वारा सीता को कुछ शिष्टाचार बताया जाता है जो कि आज के परिवेश में भी यह बहुत महत्वपूर्ण है।

''सासु, ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ।।
अति सनेह बस सखी सयानी। नारि धरम सिखवहिं मृदु बानी।।''[26]

सास ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर उनकी आज्ञा का पालन करना। सयानी सखियाँ अत्यन्त स्नेह वंश कोमल वाणी से स्त्रियो के धर्म सिखलाती हैं।

''सादर सकल कुअरि समुझाई। रानिन्ह बार-बार उर लाई।।''

आदर के साथ सब पुत्रियों को (स्त्रियों के धर्म) समझाकर रानियों ने बार-बार उन्हें हृदय से लगाया।[27] इस प्रकार से कन्या पक्ष द्वारा सीता को विविध प्रकार से स्त्री के धर्म को सिखाया गया जिसका वर्णन हमें 'सीता पुनि बोली में भी प्राप्त होता है।

''जाओ बेटी, अपने घर जाओ। दोनो कुल की लाज रखना। हर परिस्थिति में तुम्हें राम का साथ देना है। तुमसे राम और राम से तुम जानी जाओगी। ससुराल, परिवार के सदस्यों और प्रजाजनों के हृदय पर राज करना। ननद देवर सबकी साम्राज्ञी बनना।''[28] इस प्रकार सीता को स्त्री धर्म के विषय में समझाया गया।

धनुष-भंग के पश्चात् परशुराम क्रोधावेश में आते हैं फिर जब परशुराम को यह भान होने लगा कि यह पुरुष कोई साधारण नहीं तब उन्होंने इस भ्रम की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए राम से कहा कि इस विष्णु-धनुष की प्रत्यंचा खीजिए जिससे मेरा सन्देह मिट जाए।

''राम रमापति कर धनु लेहू। खैचहु मिटै मोर संदेहू।।''[29]

हे राम ! यह विष्णु का धनुष लीजिए और इसे खीचिए, जिससे मेरा सन्देह मिट जाए। इसी तरह 'सीता पुनि बोली' में भी परशुराम द्वारा भ्रम निवारण हेतु राम से विष्णु धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने को कहा गया। ''राजा जनक ने सीता के विवाह हेतु राजकुमार के पराक्रम की परीक्षा के लिए धनुष भंग की शर्त रखी थी। तुमने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। बडेघ पराक्रमी हो विश्वकर्मा द्वारा निर्मित शिव धनुष की प्रत्यंचा दूसरे विष्णु-धनुष पर चढ़ाओ तो जानूँ।''[30] इस प्रकार इस विशिष्ट घटना का वर्णन हमें यहाँ भी प्राप्त होता है जो 'रामचरितमानस' से प्रभावित प्रतीत होती है।

सीता जी द्वारा गौरी-पूजन हेतु जाने का प्रसंग 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में है। माता ने सीता को पार्वती की पूजा करने हेतु भेजा। राम तथा लक्ष्मण भी पुष्प-पत्र लेने हेतु बाग में गए थे। उसी समय सीता भी वही पर आ गयी।

''तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई।''[31]

इसी प्रकार 'सीता पुनि बोली' में भी यह वर्णन प्राप्त होता है। 'गिरिजा पूजन से लौटकर उर्मिला ने माँ से पुष्पवाटिका में पल-पल घटित प्रसंगों का वर्णन विस्तार से सुना दिया।''[32] इसी प्रसंग में 'रामचरितमानस' में वर्णन है कि श्रीराम जी की छवि देखकर सीता के नेत्र निश्चल (स्थिर) हो गए।

''थके नयन रघुपति छवि देखें। पलकन्हिहू परिहरीं निमेषे।''[33]

श्री रघुनाथ जी की छवि देखकर सीता के नेत्र थकित (निश्चल) हो गए। पलकों ने भी गिरना छोड़ दिया। इसी प्रकार 'सीता पुनि बोली' में भी वर्णन है-

'वन-उपवन, पशु-पक्षी सबके सब चलायमान, गतिशील! ऐसे परिवेश में जलाशय का जल क्यों स्थिर था। ठीक वही स्थिति थी, जो कुछ समय पूर्व मेरी आँखों की हुई थी। आँखें भी अपनी तरलता लिए चलायमान ही रहती हैं। गतिशील, पर वे भी स्थिर हो गई

थी।''[34] इस प्रकार शृंगार का कैसा मर्यादित रूप तुलसीकृत- 'रामचरितमानस' से हमें प्राप्त होता है। वैसा ही शिष्ट वर्णन 'सीता पुनि बोली' में भी वर्णित है।

वयं रक्षामः चतुरसेन शास्त्री -

आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत 'वयं रक्षामः' मे रावण के चरित्र को नए सिरे से देखने के का प्रयास किया गया। इस उपन्यास रावण की रक्ष संस्कृति का विस्तृत वर्णन लेखक ने किया है। यद्यपि इस उपन्यास में रावण को नए सिरे से स्थापित करने हेतु लेखक ने कुशलतापूर्वक चित्रण किया है तथापि इस तुलसीकृत - 'रामचरितमानस' का घटनाओं की दृष्टि से, पात्र या चरित्रगत आदि दृष्टिकोण से किसी न किसी रूप में प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है। जिनका वर्णन निम्नवत् हैं।

'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में वर्णन है कि जब रानी कैकेयी ने राजा दशरथ से दो वरदान माँग लिए उसके पश्चात् राजा दशरथ की स्थित बहुत दयनीय हो गयी। वे बार-बार कैकेयी से कहते हैं कि वह अपना प्रण छोड़ दें। दशरथ के बार-बार विनय करने पर भी कैकेयी का निर्णय नहीं बदला। तब कैकेयी ने कहा कि जब अन्त में यहीं करना था तो आपने माँग-माँग किस बल पर कहा था। कैकेयी उपदेश सा देते हुए कहती है कि आप या तो वचन ही छोड़ दीजिए या धैर्य धारण कीजिए। यों इस तरह असहाय स्त्री की भाँति रोटी पोइए नहीं। सत्यव्रत के लिए तो शरीर, स्त्री, घर, धन, पुत्र और पृथ्वी सब तिनके के समान कहे गए हैं।

''छाड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू।।
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी।।''[35]

इसी प्रकार 'वयं रक्षामः' में भी इस घटना का चित्रण इस प्रकार किया गया है। कैकेयी राजा दशरथ से कह रही हैं- ''राजन, तुम्हारा गौरव, यश, प्रतिष्ठा, मान, बड़ाई इसी में है कि सत्य का पालन करो। राम को आज ही वन भेजो और भरत को अभी राज्य दो।''[36] इस प्रकार रानी कैकेयी द्वारा महाराज दशरथ को उपदेश देना, इसका वर्णन 'वयं रक्षामः' में उसी प्रकार है जिस प्रकार 'रामचरितमानस' में वर्णन है।

राजा जनक ने बंदीजनों को बुलाकर अपना प्रण सुनाया तथा कहा कि मेरा प्रण सबसे जाकर कह दो। जो भी इस शिवधनुष को तोड़ेगा वह सीता से विवाह करने के योग्य माना जाएगा। इस घटना का वर्णन 'रामचरितमानस' में इस प्रकार है-

''सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा ।।
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं विचार बरइ हठि तेही।।''[37]

जनक कहते हैं कि उसी शिव जी के कठोर धनुष को आज इस राज समाज में जो भी तोड़ेगा, तीनों लोकों की विजय के साथ ही उसको जानकी जी बिना किसी विचार के हठपूर्वक वरण करेगी। इसी प्रकार इस घटना का वर्णन 'वयं रक्षामः' में भी इसी प्रकार हमें देखने को मिलता है ''मिथिला के राजा सीरध्वज जनक ने यह प्रण किया था कि जो पिनाक धनुष को चढ़ाकर बाणसंयुक्त कर देगा, उसे ही वह अपनी कन्या सीता दे देंगे।''[38]

जनक की प्रतिज्ञा के बाद सभीं राजाओं अपने शौर्य तथा पराक्रम का प्रयोग कर शिव-धनुष को तोड़ना चाहे परन्तु उनका प्रयास असफल रहा। इसी क्रम मे गुरु विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम ने धनुष-भंग किया जिसका वर्णन 'रामचरितमानस' के बालकाण्ड में निम्न प्रकार से मिलता है-

''लेत चढ़ावत खैचत गाढें। काहुँ न लखा देख सबु ठाड़े ।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा।।''
भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले।।''[39]

राम ने इतनी फुर्ती के साथ धनुष को तोड़ा कि किसी को ठीक से दिखा तक नहीं। जब राम ने शिव-धनुष को तोड़ा उसके पश्चात् धरती तथा आकाश में मानों प्रलय सा आ गया हो। इस घटना का वर्णन 'वयं रक्षामः' में भी हमे इसी भाँति द्रष्टव्य होता है। ''इतना सुनते ही राम ने हजारों के देखते-देखते धनुष को उठा लिया। फिर ज्यों ही उसकी प्रत्यंचा को चढ़ाने लगे, वह वज्रपात की भाँति घोर शब्द करके बीच से टूट गया।''[40] इस प्रकार राम द्वारा धनुष भंग करना तथा उसके पश्चात् प्राकृतिक उथल-पुथल का वर्णन हमे 'वयं रक्षामः' में भी 'रामचरितमानस' की भाँति प्राप्त होता है। 'रामचरितमानस' के अयोध्याकाण्ड में मन्थरा द्वारा रानी कैकेयी को विविध प्रकार से यह समझाने का प्रयास किया गया कि राम का राज्याभिषेक हो जाने के पीछे बहुत बड़ी साजिश है। मन्थरा कैकेयी से कहती है कि यह सब कौशल्या की वजह से हो रहा है। उसी के कहने पर दशरथ ने राम के राज्याभिषेक का निश्चय किया है।

संदर्भ ग्रथ सूची

1. तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दो. 86
2. तुलसीदास, रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दो. 35
3. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, संस्करण 2014, पृ. 181
4. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 208
5. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, सं. 2014, पृ. 14
6. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 209
7. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, सं. 2014, पृ. 27
8. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 211
9. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, सं. 2014, पृ. 48
10. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 252
11. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, सं. 2014, पृ. 53
12. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 284
13. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, सं. 2014, पृ. 59
14. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 23
15. सुधाकर अदीब, मम अरण्य, से 2014, पृ. 74
16. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो.- 29
17. वही, दो. 46
18. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सं. 2016, पृ. 82
19. वहीं, सं. 2016, पृ. 86
20. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 83
21. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सं. 2016, पृ. 90
22. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो. 194
23. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सं.. 2016, पृ. 107
24. तुलसीदास, रामचरितमानस सुन्दरकाण्ड, दो. 40
25. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सं-2016, पृ. 165
26. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 334
27. वही, दो. 334
28. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सं. 2016, पृ. 58, 59
29. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 204
30. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सन् 2017, पृ. 59
31. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 228
32. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सं0 2037 पृ. 47
33. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 232
34. मृदुला सिन्हा, सीता पुनि बोली, सं. 2016, पृ. 47
35. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, 35
36. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वयं रक्षामः, सं. 2017, पृ. 298
37. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 250
38. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वयं रक्षामः, सं. 2017, पृ. 242
39. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 261
40. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, वयं रक्षामः, सं. 2018, पृ. 245

दीनदयाल उपाध्याय का समाजवादी चिंतनः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० पवन पाठक

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय (संघटक महाविद्यालय)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

सार (Abstract)

उद्देश्यः. यह शोध-पत्र पंडित दीनदयाल उपाध्याय के समाजवादी चिंतन की दार्शनिक नींव, पश्चिमी समाजवाद से उसके वैचारिक विभाजन, तथा समकालीन भारतीय विकास मॉडल में उसकी प्रासंगिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है।

पद्धतिः. अध्ययन गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। इसमें उपाध्याय के मूल ग्रंथों (एकात्म मानववाद, राष्ट्र जीवन की दिशा) एवं उन पर लिखे द्वितीयक स्रोतों का ऐतिहासिक-तुलनात्मक विधि से अवलोकन किया गया है।

निष्कर्षः- उपाध्याय का समाजवाद 'एकात्म मानववाद' एवं 'अंत्योदय' पर आधारित है, जो मनुष्य को केवल आर्थिक इकाई न मानकर शरीर-मन-बुद्धि-आत्मा के समन्वित रूप में देखता है। यह दृष्टि मार्क्सवादी वर्ग-संघर्ष और पूंजीवादी उपभोक्तावाद - दोनों से भिन्न एक विकेंद्रीकृत, नैतिक एवं सांस्कृतिक आधार पर विकास का वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत करती है।

मौलिकता/मूल्यः- यह अध्ययन उपाध्याय के समाजवादी चिंतन को समकालीन नीतियों (जैसे 'सबका साथ, सबका विकास', सतत विकास लक्ष्य) से जोड़कर उसकी व्यावहारिक उपयोगिता का आकलन करता है, जो प्रचलित राजनीतिक-आर्थिक विमर्श में एक अकादमिक अंतराल को भरता है।

मुख्य शब्दः- एकात्म मानववाद, अंत्योदय, समाजवाद, भारतीय राजनीतिक चिंतन, स्वदेशी, विकेंद्रीकरण।

प्रस्तावना- भारतीय स्वतंत्रता के उपरांत राष्ट्र-निर्माण की वैचारिक द्वंद्वात्मकता में दो प्रमुख धाराएँ प्रभावी रहीं- नेहरूवादी औद्योगिक-समाजवाद और गांधीवादी ग्राम-स्वराज्य का मॉडल। इन दोनों के मध्य पंडित दीनदयाल उपाध्याय (1916-1968) ने 'एकात्म मानववाद' के नाम से एक तृतीय मार्ग का प्रणयन किया, जो भारतीय सांस्कृतिक चेतना और आधुनिक आर्थिक आवश्यकताओं के समन्वय का प्रयास था।[1]

उपाध्याय का समाजवादी चिंतन पश्चिमी समाजवाद की भौतिकवादी व्याख्या से मूलतः भिन्न है। जहाँ मार्क्सवादी समाजवाद मनुष्य को उसके उत्पादन-संबंधों का प्रतिबिंब मानता है, वहीं उपाध्याय मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि, भावना और आत्मा के समन्वित रूप में देखते हैं।[2] यह दृष्टि न केवल आर्थिक समानता पर बल देती है, वरन् मानवीय गरिमा, सांस्कृतिक अस्मिता और नैतिक कर्तव्यबोध को भी विकास का अनिवार्य अंग मानती है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य उपाध्याय के समाजवादी दृष्टिकोण के दार्शनिक आधार, उसकी विशिष्टताओं, पश्चिमी समाजवाद से तुलनात्मक अंतर, तथा समकालीन वैश्विक एवं राष्ट्रीय संदर्भों में उसकी प्रासंगिकता का विश्लेषण करना है।

वैचारिक आधारः एकात्म मानववाद से अंत्योदय तक

एकात्म मानववादः दर्शन और मानव-दृष्टि- 'एकात्म मानववाद' (Integral Humanism) उपाध्याय के संपूर्ण चिंतन की आधारशिला है। उन्होंने 1965 में बम्बई (अब मुंबई) में इस विचारधारा का व्यवस्थित प्रतिपादन किया। उनके अनुसार पश्चिमी विचारधाराओं ने मनुष्य को या तो अत्यधिक व्यक्तिवादी (उदारवाद) या केवल सामूहिक इकाई (मार्क्सवाद) बना दिया, जबकि भारतीय परंपरा में व्यक्ति और समाज सह-अस्तित्व में रहते हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं।[3]

उपाध्याय के अनुसार मनुष्य की चार प्रमुख आवश्यकताएँ हैं - शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा।[4] इन चारों का समन्वित विकास ही 'एकात्म' विकास है। समाजवाद का उद्देश्य केवल शारीरिक आवश्यकताओं (भोजन, वस्त्र, आवास) की पूर्ति नहीं, बल्कि इन चारों स्तरों पर मानव का सर्वांगीण विकास होना चाहिए।

अंत्योदय: समाजवाद की कसौटी – उपाध्याय ने महात्मा गांधी के 'अंतिम व्यक्ति' (अंत्योदय) के सिद्धांत को अपने समाजवाद का केन्द्रीय मापदंड बनाया। उनके अनुसार किसी भी विकास मॉडल की सार्थकता इस बात से तय होगी कि वह समाज के सबसे दुर्बल, सबसे उपेक्षित व्यक्ति तक किस सीमा तक पहुँच पाता है।[5]

अंत्योदय केवल आर्थिक हस्तांतरण की नीति नहीं, वरन् एक समग्र सामाजिक दर्शन है। इसमें राजनीतिक भागीदारी, सामाजिक सम्मान, शिक्षा और स्वास्थ्य तक पहुँच, तथा सांस्कृतिक समावेशन जैसे आयाम शामिल हैं। यह दृष्टिकोण उपाध्याय के समाजवाद को मात्र 'कल्याणकारी' से ऊपर उठाकर 'सशक्तिकरण-केंद्रित' (empowerment & oriented) बनाता है।

पश्चिमी समाजवाद से वैचारिक विभाजन: एक तुलनात्मक दृष्टि – उपाध्याय का समाजवाद पश्चिमी समाजवादी विचारधाराओं – विशेषत: मार्क्सवाद – से अनेक स्तरों पर भिन्न है। निम्न तालिका इस विभाजन को स्पष्ट करती है:

आधार मार्क्सवादी समाजवाद उपाध्याय का एकात्म समाजवाद – मानव-दृष्टि मनुष्य आर्थिक संबंधों का उत्पाद; 'होमो इकोनॉमिकस' मनुष्य शरीर-मन-बुद्धि-आत्मा का समन्वित रूप प्रेरक शक्ति वर्ग-संघर्ष; ऐतिहासिक भौतिकवाद सहयोग, सामाजिक समरसता; धर्म (कर्तव्यबोध) आर्थिक संरचना राज्य-नियंत्रित केन्द्रीकृत योजना; निजी संपत्ति का अंत विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था; स्वदेशी; निजी संपत्ति नैतिकता के अधीन राज्य की भूमिका वर्गहीन समाज तक संक्रमण में सर्वशक्तिमान राज्य न्यूनतम हस्तक्षेप; स्थानीय स्वशासन की प्रध ानता लक्ष्य वर्गहीन समाज; आर्थिक समानता (प्राथमिक रूप से) समग्र मानव कल्याण (शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक) उपाध्याय के लिए समाज वर्ग-संघर्ष का रंगमंच नहीं, बल्कि सहयोग का सामूहिक प्रयास है। वे मार्क्सवादी 'वर्ग-चेतना' के स्थान पर 'राष्ट्र-चेतना' और 'कर्तव्य-चेतना' पर बल देते हैं।[6]

आर्थिक चिंतन: मानव-केंद्रित विकास का प्रतिमान – उपाध्याय का आर्थिक चिंतन उनके समाजवाद का अभिन्न अंग है। वे पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की जड़-विरोधी प्रकृति और मार्क्सवादी राज्य-समाजवाद की केन्द्रीकृत संरचना: दोनों की आलोचना करते हैं। उनके आर्थिक मॉडल के प्रमुख तत्व हैं:

1. विकेंद्रीकरण: आर्थिक सत्ता का विकेंद्रीकरण राजनीतिक सत्ता के विकेंद्रीकरण की पूर्व शर्त है। ग्राम सभाओं, स्थानीय निकायों और लघु उद्योगों को आर्थिक निर्णयन में प्राथमिक भूमिका दी जानी चाहिए।[7]
2. स्वदेशी: यह संकीर्ण आर्थिक राष्ट्रवाद न होकर स्थानीय संसाधनों, कौशल और आवश्यकताओं पर आधारित आत्मनिर्भरता का दर्शन है। वैश्वीकरण के समकालीन युग में यह 'स्थानीयकरण' (localçation) के वैश्विक विमर्श से संगत है।
3. लघु एवं कुटीर उद्योगों की प्राथमिकता: बड़े उद्योगों का स्थान नकारने के बजाय, उपाध्याय ने एक ऐसी संरचना का सुझाव दिया जहाँ कुटीर, लघु, मध्यम एवं बड़े उद्योग एक सहजीवी संबंध में सह-अस्तित्व रखें।

उपाध्याय के लिए अर्थव्यवस्था का अंतिम उद्देश्य सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में वृद्धि नहीं, वरन् मानवीय गरिमा, रोजगार की उपलब्धता और सांस्कृतिक आत्मबोध की रक्षा करना है।[8]

सामाजिक समरसता: भारतीय चिंतनधारा से संवाद- उपाध्याय का समाजवाद सामाजिक समरसता के सिद्धांत पर स्थापित है। वे जाति, वर्ग, क्षेत्र एवं संप्रदाय के विभाजनों से ऊपर उठकर एक समग्र सामाजिक दृष्टि का आह्वान करते हैं। यह दृष्टि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के वैदिक आदर्श से प्रेरित है, जहाँ सामाजिक संबंध अधिकार-केंद्रित न होकर कर्तव्य-केंद्रित हों।[9]

उपाध्याय ने स्पष्ट किया कि सच्चा समाजवाद वही है जो समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सहयोग और परस्पर स्नेह की भावना विकसित करे। यह दृष्टिकोण पश्चिमी सामाजिक अनुबंध सिद्धांतों से भिन्न है, जहाँ समाज को अधिकारों के परस्पर विरोधी संघर्ष के रूप में देखा जाता है।[10]

समकालीन प्रासंगिकता – वैश्विक पूंजीवाद के संकट, बढ़ती आर्थिक असमानता, जलवायु परिवर्तन और नैतिक मूल्यों के संकट के इस दौर में उपाध्याय का समाजवादी चिंतन विशेष रूप से प्रासंगिक हो उठता है:

- आर्थिक असमानता का समाधान: अंत्योदय का सिद्धांत समावेशी विकास की समकालीन नीतियों – जैसे 'सबका साथ, सबका विकास', 'प्रधानमंत्री गरीब कल्याण अन्न योजना' – का दार्शनिक आधार प्रदान करता है।
- सतत विकास (Sustainable Development): एकात्म मानववाद का समग्र दृष्टिकोण संयुक्त राष्ट्र के सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के साथ संगति रखता है, विशेषकर उन लक्ष्यों के साथ जो पर्यावरणीय स्थिरता, सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास को जोड़ते हैं।
- नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना: उपाध्याय का समाजवाद भौतिक प्रगति के साथ-साथ नैतिक पुनर्निर्माण पर बल देता है, जो वर्तमान में शासन और व्यवसाय में नैतिकता के बढ़ते संकट के संदर्भ में अत्यधिक महत्वपूर्ण है।[11]

आलोचनात्मक विवेचन

सकारात्मक पक्ष:

1. मौलिकता: भारतीय दार्शनिक परंपरा को आधुनिक राजनीतिक-आर्थिक विमर्श से जोड़ने का सफल प्रयास।
2. समग्रता: विकास की अवधारणा को केवल भौतिक आयामों से मुक्त कर मानवीय एवं सांस्कृतिक आयामों तक विस्तारित किया।
3. व्यावहारिकता का प्रयास: अंत्योदय जैसा मापनीय सिद्धांत नीति-निर्माण के लिए एक स्पष्ट दिशा प्रदान करता है।

सीमाएँ एवं आलोचना:

1. क्रियान्वयन की अस्पष्टता: एकात्म मानववाद के व्यावहारिक क्रियान्वयन के लिए उपाध्याय ने कोई विस्तृत संस्थागत रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की। संस्थाओं के बीच शक्ति-वितरण का प्रश्न अस्पष्ट रहता है।
2. वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ समन्वय: स्वदेशी और विकेंद्रीकरण पर अत्यधिक बल आज की अंतर्संबद्ध वैश्विक अर्थव्यवस्था में संरक्षणवाद का जोखिम उत्पन्न कर सकता है।
3. प्रौद्योगिकी की भूमिका: उनके चिंतन में प्रौद्योगिकी और नवाचार की भूमिका पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है, जो विकास का एक महत्वपूर्ण चालक है।

निष्कर्ष - दीनदयाल उपाध्याय का समाजवादी चिंतन केवल एक राजनीतिक विचारधारा नहीं, अपितु भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित एक वैकल्पिक विकास-दर्शन है। 'एकात्म मानववाद' और 'अंत्योदय' के सिद्धांत भारतीय संदर्भ में समाजवाद की एक स्वदेशी, मानवीय एवं नैतिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि इसके क्रियान्वयन की पद्धतियों पर विमर्श की गुंजाइश है, तथापि भौतिकवादी विकास मॉडलों के संकट के समय में यह चिंतन एक संतुलित, समावेशी एवं मानवीय विकास पथ का महत्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

पाद-टिप्पणियाँ (Footnotes)

1. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद (नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारतीय जनता पार्टी, 1965), 5-7.
2. वही, 12-15.
3. दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र जीवन की दिशा (दीनदयाल दर्शन संस्थान, 1962), 34.
4. उपाध्याय, एकात्म मानववाद, 22-24.
5. उपाध्याय, राष्ट्र जीवन की दिशा, 78-80.
6. बी.एन. सिंह, आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारक (नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2012), 210.
7. उपाध्याय, एकात्म मानववाद, 45-48.
8. वही, 52-53.
9. गोविंद चंद्र पांडेय, भारतीय दर्शन के मूल तत्व (वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2015), 301.
10. Andrew Heywood, Political Ideologies: An Introduction, 6th ed. (London: Palgrave Macmillan, 2012), 128-130
11. कमल श्रीवास्तव, दीनदयाल उपाध्याय: दार्शनिक-राजनीतिक विमर्श (इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2018), 156-158.

संदर्भ सूची (Bibliography)

प्राथमिक स्रोत

- उपाध्याय, दीनदयाल। एकात्म मानववाद। नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारतीय जनता पार्टी, 1965।
- उपाध्याय, दीनदयाल। राष्ट्र जीवन की दिशा। दीनदयाल दर्शन संस्थान, 1962।
- उपाध्याय, दीनदयाल। समग्र चिंतन (संकलित)। नई दिल्ली: दीनदयाल शोध संस्थान, 2010।
- द्वितीयक स्रोत
- शर्मा, रामविलास। भारतीय राजनीतिक चिंतन: परंपरा और आधुनिकता। नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2008।
- पांडेय, गोविंद चंद्र। भारतीय दर्शन के मूल तत्व। वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2015।
- सिंह, बी0एन0 आधुनिक भारतीय राजनीतिक विचारक। नई दिल्ली: ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2012।
- श्रीवास्तव, कमल। दीनदयाल उपाध्याय: दार्शनिक-राजनीतिक विमर्श। इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, 2018।
- Bakshi, S.R. Pandit Deendayal Upadhyaya: A Life and Vision. New Delhi: Deep & Deep Publications, 1991.
- Heywood, Andrew. Political Ideologies: An Introduction. 6th ed. London: Palgrave Macmillan, 2012.

अमृता प्रीतम की रचनाओं में स्त्री स्वर का विश्लेषण (संदर्भ सहित विस्तृत आलेख)

प्रो० बृजलता शर्मा

शोध निर्देशिका, हिन्दी विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल, विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

कु० उमा

शोधार्थी, विषय हिन्दी, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढ़वाल, विश्वविद्यालय, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य में स्त्री स्वर का विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। इस विकास में अमृता प्रीतम का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। वे केवल एक कवयित्री या उपन्यासकार ही नहीं थीं, अपितु स्त्री अस्मिता, प्रेम, पीड़ा और विद्रोह की सशक्त आवाज भी थीं।

उनकी रचनाओं में स्त्री केवल एक पात्र नहीं, बल्कि एक जीवंत चेतना है-जो समाज के बंधनों को तोड़ने, अपनी पहचान स्थापित करने और अपने अस्तित्व को स्वीकार करने का साहस रखती है।

यह शोधपत्र अमृता प्रीतम की प्रमुख रचनाओं में स्त्री स्वर का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें उनके साहित्यिक दृष्टिकोण, स्त्री चेतना, सामाजिक प्रतिरोध और भावनात्मक गहराई का गहन अध्ययन किया गया है।

अमृता प्रीतम का जन्म 1919 में पंजाब में हुआ। वे पंजाबी और हिंदी दोनों भाषाओं में समान रूप से सक्रिय रहीं।

उन्होंने 1947 के विभाजन की त्रासदी को बहुत करीब से अनुभव किया। यह अनुभव उनके साहित्य में बार-बार उभरता है, विशेषकर स्त्री के संदर्भ में।

उनका साहित्य स्त्री की आत्मा, की पुकार है-जहाँ वह परंपरागत बंधनों से मुक्त होकर अपनी स्वतंत्र पहचान की खोज करती है।

स्त्री स्वर का आशय उस अभिव्यक्ति से है जिसमें स्त्री स्वयं अपने अनुभवों, भावनाओं, संघर्षों और इच्छाओं को व्यक्त करती है, न कि किसी पुरुष दृष्टिकोण के माध्यम से।

अमृता प्रीतम के साहित्य में स्त्री स्वर तीन प्रमुख स्तरों पर विकसित होता है-

व्यक्तिगत स्तर - प्रेम, पीड़ा, अकेलापन, आत्मसंघर्ष

सामाजिक स्तर - पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विरोध

ऐतिहासिक स्तर - विभाजन और स्त्री की सामूहिक त्रासदी

अमृता प्रीतम की रचनाओं में स्त्री स्वर की अवधारणा

(क) प्रेम और स्वतंत्रता का स्वर

अमृता प्रीतम की कविताओं में प्रेम एक स्वतंत्र अनुभव है, जो सामाजिक बंधनों से परे है। उनकी प्रसिद्ध कविता "मैं तैनूं फिर मिलांगी" में स्त्री का प्रेम आत्मिक और स्वायत्त है।

यह प्रेम स्त्री को निर्भर नहीं बनाता, बल्कि उसे आत्मनिर्भर और मुक्त करता है।

(ख) विद्रोह और आत्मसम्मान

अमृता प्रीतम की रचनाओं में स्त्री केवल सहनशील नहीं, बल्कि प्रतिरोध करने वाली है।

उनका प्रसिद्ध उपन्यास पिंजर स्त्री अस्मिता का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसकी नायिका पूरे विभाजन के दौरान अपहरण और सामाजिक अस्वीकार्यता का सामना करती है। और फिर भी वह अंततः अपनी पहचान स्वयं गढ़ती है।

यहाँ स्त्री स्वर एक प्रश्न के रूप में उभरता है-

क्या स्त्री केवल सामाजिक मान्यताओं का प्रतीक है, या एक स्वतंत्र व्यक्तित्व भी?

1947 का विभाजन अमृता प्रीतम के साहित्य का केंद्रीय विषय है। उनकी प्रसिद्ध कविता अज्ज आखाँ वारिस शाह नूं में स्त्रियों की सामूहिक पीड़ा का मार्मिक चित्रण है।

इस कविता में वे वारिस शाह को पुकारती हैं और पंजाब की बेटियों के दुख को स्वर देती हैं।

यहाँ स्त्री केवल व्यक्तिगत त्रासदी नहीं, बल्कि इतिहास की हिंसा का प्रतीक बन जाती है।

उनकी आत्मकथा रसीदी टिकट स्त्री स्वर का सबसे प्रखर उदाहरण है।

इसमें उन्होंने अपने जीवन, प्रेम, संघर्ष और समाज की आलोचनाओं को अत्यंत ईमानदारी से व्यक्त किया है।

यह कृति स्त्री की आत्मस्वीकृति और आत्मनिर्भरता का दस्तावेज है।

अमृता प्रीतम की भाषा सरल, भावपूर्ण और अत्यंत संवेदनशील है।

उनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ-

- आत्मीयता,
- प्रतीकात्मकता,
- भावनात्मक गहराई,
- विद्रोही स्वर।

उनकी भाषा स्त्री के मौन को शब्द देती है और उसके भीतर के संघर्ष को उजागर करती है।

अमृता प्रीतम का साहित्य स्त्रीवादी चेतना से परिपूर्ण है, हालांकि वे किसी कठोर विचारधारा से बंधी नहीं थीं।

उनके स्त्रीवाद की मुख्य विशेषताएँ-

- स्त्री की आत्मनिर्भरता,
- प्रेम में स्वतंत्रता,
- सामाजिक बंधनों का विरोध,
- स्त्री गरिमा की स्थापना,
- समकालीन प्रासंगिकता

आज के समय में भी अमृता प्रीतम की रचनाएँ अत्यंत प्रासंगिक हैं।

उनका स्त्री स्वर आधुनिक समाज में महिलाओं के संघर्षों-

- पहचान
- स्वतंत्रता
- समानता को अभिव्यक्त करता है।

उनकी रचनाएँ आज भी स्त्री मुक्ति के विमर्श को दिशा प्रदान करती हैं।

निष्कर्ष

अमृता प्रीतम की रचनाओं में स्त्री स्वर बहुआयामी और गहन है। इसमें प्रेम, पीड़ा, विद्रोह, आत्मसंघर्ष और आत्मस्वीकृति का अद्‌भुत समन्वय है।

उन्होंने स्त्री को केवल सहानुभूति का पात्र नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र, सशक्त और निर्णय लेने वाली सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया।

उनका साहित्य यह संदेश देता है कि स्त्री की आवाज को दबाया नहीं जा सकता-वह हर युग में नए रूप में उभरती है।

संदर्भ सूची

- प्रीतम, अमृता – पिंजर
- प्रीतम, अमृता – रसीदी टिकट
- प्रीतम, अमृता – चयनित कविताएँ
- शर्मा, रामविलास – हिंदी साहित्य का इतिहास
- वर्मा, महादेवी – निबंध संग्रह
- चुगताई, इस्मत – लिहाफ और अन्य कहानियाँ
- भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श – विभिन्न शोध पत्र
- पंजाबी साहित्य का इतिहास

बैंकों की ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं का विस्तार: लाभ, चुनौतियाँ, जागरूकता स्तर और कर्मचारियों की सहायक भूमिका का मूल्यांकन

डॉ० धीरज कुमार शर्मा

अतिथि व्याख्याता वाणिज्य, शासकीय नवीन महाविद्यालय, कुई-कुकदुर, जिला कबीरधाम (छ.ग.)

सारांश

भारत में डिजिटल प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं का विस्तार तीव्र गति से हुआ है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बैंकों की ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं के विस्तार, उनके लाभ एवं चुनौतियों, ग्राहकों में जागरूकता स्तर तथा बैंक कर्मचारियों की सहायक भूमिका का मूल्यांकन करना है। इस शोध में द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है, जिसमें यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), UMANG] BharatNet, डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC), भाषा इंटरफेस फॉर इंडिया (BHASHINI) तथा Government e&Marketplace (GeM) जैसी प्रमुख डिजिटल पहलों के आँकड़ों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि डिजिटल बैंकिंग सेवाओं के विस्तार में इंटरनेट कनेक्टिविटी, मोबाइल एप्लिकेशन तथा सरकारी योजनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। साथ ही डिजिटल साक्षरता की कमी, साइबर सुरक्षा की चिंता तथा तकनीकी ज्ञान की सीमाएँ प्रमुख चुनौतियाँ के रूप में सामने आई हैं। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि कर्मचारियों का सहयोग, जागरूकता कार्यक्रम तथा डिजिटल प्रशिक्षण ऑनलाइन बैंकिंग के प्रभावी विस्तार के लिए आवश्यक हैं।

शब्द कुंजी – ऑनलाइन बैंकिंग, डिजिटल बैंकिंग, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), डिजिटल साक्षरता, जागरूकता, बैंक कर्मचारी सहयोग, ई-गवर्नेंस

1. प्रस्तावना

वर्तमान युग डिजिटल परिवर्तन का युग है, जिसमें बैंकिंग सेवाएँ पारंपरिक स्वरूप से डिजिटल स्वरूप में परिवर्तित हो रही हैं। ऑनलाइन बैंकिंग ने वित्तीय लेनदेन को सरल, तेज एवं सुरक्षित बनाया है। भारत में डिजिटल इंडिया अभियान, मोबाइल इंटरनेट तथा स्मार्टफोन की उपलब्धता ने बैंकिंग सेवाओं को ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सरकारी एवं निजी बैंकों द्वारा इंटरनेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), डिजिटल वॉलेट आदि सेवाओं के माध्यम से ग्राहकों को सुविधाजनक सेवाएँ प्रदान की जा रही हैं। साथ ही UMANG] BharatNet, डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC), भाषा इंटरफेस फॉर इंडिया (BHASHINI) और GeM जैसे प्लेटफॉर्म डिजिटल सेवाओं को व्यापक बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

2. भारत में ऑनलाइन बैंकिंग: अर्थ, परिभाषा और विकास

अर्थ ऑनलाइन बैंकिंग से आशय ऐसी बैंकिंग प्रणाली से है जिसमें ग्राहक इंटरनेट अथवा मोबाइल के माध्यम से बैंकिंग सेवाओं का उपयोग करता है।

परिभाषा ऑनलाइन बैंकिंग वह प्रणाली है जिसके माध्यम से ग्राहक बैंक की वेबसाइट या मोबाइल एप के माध्यम से धन हस्तांतरण, बिल भुगतान, खाता विवरण देखना तथा अन्य वित्तीय सेवाओं का उपयोग करता है।

विकास भारत में ऑनलाइन बैंकिंग का विकास विशेष रूप से 2016 के बाद तीव्र गति से हुआ, जब डिजिटल भुगतान प्रणालियाँ जैसे यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) शुरू की गईं। इसके पश्चात BharatNet] UMANG, डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC) आदि योजनाओं ने डिजिटल बैंकिंग के प्रसार को और अधिक सुदृढ़ किया।

3. ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं का विस्तार

- डिजिटल तकनीक का बढ़ता उपयोग इंटरनेट, स्मार्टफोन और मोबाइल एप्लिकेशन के बढ़ते उपयोग से बैंकिंग सेवाएँ तेजी से डिजिटल माध्यम में परिवर्तित हुई हैं। इससे ग्राहकों को बैंक शाखा में जाए बिना सेवाएँ प्राप्त करना संभव हुआ है।

- सरकारी योजनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका डिजिटल इंडिया, जनधन योजना तथा विभिन्न डिजिटल भुगतान प्रणालियों के माध्यम से बैंकिंग सेवाओं का विस्तार ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में हुआ है।
- मोबाइल बैंकिंग और UPI का प्रसार मोबाइल बैंकिंग एप तथा UPI जैसी सुविधाओं ने धन हस्तांतरण को सरल और त्वरित बनाया है, जिससे ऑनलाइन बैंकिंग का उपयोग व्यापक स्तर पर बढ़ा है।
- ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुँच में वृद्धि इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल प्लेटफॉर्म के विकास से दूरस्थ और ग्रामीण क्षेत्रों में भी बैंकिंग सेवाएँ उपलब्ध होने लगी हैं।
- 24×7 बैंकिंग सुविधा का विकास ऑनलाइन बैंकिंग के माध्यम से ग्राहकों को किसी भी समय और स्थान पर बैंकिंग सेवाओं का उपयोग करने की सुविधा प्राप्त हुई है।

4. ऑनलाइन बैंकिंग के लाभ

- समय की बचत ऑनलाइन बैंकिंग से ग्राहकों को बैंक की लंबी कतारों से मुक्ति मिलती है, जिससे समय की बचत होती है।
- लेनदेन की सरलता और गति धन हस्तांतरण, बिल भुगतान और बैलेंस जांच जैसी सेवाएँ कुछ ही सेकंड में पूरी हो जाती हैं।
- लागत में कमी ऑनलाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक संचालन की लागत कम होती है और ग्राहकों के लिए सेवाएँ अधिक सुलभ बनती हैं।
- पारदर्शिता में वृद्धि सभी लेनदेन डिजिटल रूप में दर्ज होने से पारदर्शिता बढ़ती है और रिकॉर्ड सुरक्षित रहता है।
- सुविधाजनक सेवाएँ ऑनलाइन बैंकिंग से ग्राहकों को घर बैठे बैंकिंग सेवाएँ प्राप्त होती हैं, जिससे सुविधा का स्तर बढ़ता है।
- वित्तीय समावेशन को बढ़ावा डिजिटल बैंकिंग के माध्यम से बैंकिंग सेवाएँ समाज के हर वर्ग तक पहुँच रही हैं, जिससे वित्तीय समावेशन को बढ़ावा मिला है।

5. ऑनलाइन बैंकिंग की चुनौतियाँ

- डिजिटल साक्षरता की कमी कई लोग, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, डिजिटल उपकरणों के उपयोग से परिचित नहीं हैं, जिससे ऑनलाइन बैंकिंग का उपयोग सीमित रह जाता है।
- साइबर सुरक्षा जोखिम ऑनलाइन धोखाधड़ी, हैकिंग और डेटा चोरी जैसी समस्याएँ ऑनलाइन बैंकिंग के लिए प्रमुख चुनौती हैं।
- इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या कई क्षेत्रों में इंटरनेट की धीमी गति या अनुपलब्धता ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं के उपयोग में बाधा उत्पन्न करती है।
- तकनीकी त्रुटियाँ सर्वर समस्या, एप्लिकेशन त्रुटि या सिस्टम फेल होने से ग्राहकों को असुविधा हो सकती है।
- विश्वास की कमी कुछ ग्राहक डिजिटल लेनदेन पर पूर्ण विश्वास नहीं करते, जिससे ऑनलाइन बैंकिंग अपनाने में संकोच करते हैं।
- भाषा संबंधी बाधाएँ कई डिजिटल प्लेटफॉर्म अंग्रेजी आधारित होने के कारण स्थानीय भाषा उपयोगकर्ताओं को कठिनाई होती है।

6. शोध उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बैंकों की ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं के विस्तार, उनके लाभ एवं चुनौतियों, ग्राहकों में जागरूकता स्तर तथा बैंक कर्मचारियों की सहायक भूमिका का मूल्यांकन एवं डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से बैंकिंग सेवाओं के विकास का विश्लेषण करना।

7. शोध प्रविधि

शोध का प्रकार – वर्णनात्मक

आँकड़ों का प्रकार – द्वितीयक आँकड़े

आँकड़ों के स्रोत –

- सरकारी रिपोर्ट
- डिजिटल इंडिया रिपोर्ट
- यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), UMANG, BharatNet, डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC), भाषा इंटरफेस फॉर इंडिया (BHASHINI), GeM आँकड़े

विश्लेषण विधि – सारणीकरण एवं प्रतिशत विश्लेषण

8. समंक विश्लेषण एवं व्याख्या

तालिका 1: यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) के माध्यम से लेनदेन मूल्य (रू. करोड़ में)

वर्ष	*लेनदेन मूल्य (रू. करोड़)*
2016	707.93
2020	4,16,176.21
2024	23,24,699.91

स्रोत – इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार।

चित्र 1: यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) के माध्यम से लेनदेन मूल्य (रू. करोड़ में)

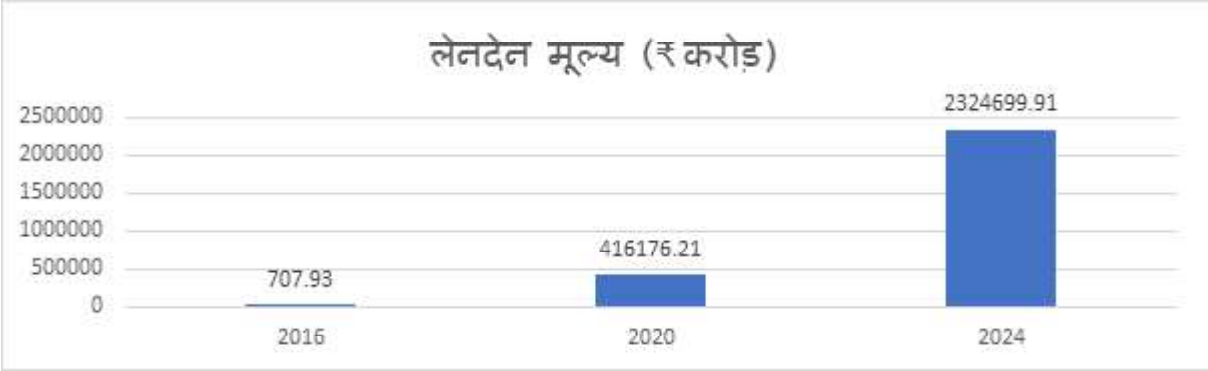

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) लेनदेन का मूल्य वर्ष 2016 में 707.93 करोड़ रुपये से बढ़कर वर्ष 2024 में 23,24,699.91 करोड़ रुपये तक पहुँच गया है। यह वृद्धि डिजिटल भुगतान प्रणाली की बढ़ती स्वीकार्यता तथा ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं के तीव्र विस्तार को दर्शाती है।

तालिका 2: यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) से जुड़े बैंकों की संख्या

वर्ष	*बैंकों की संख्या*
2016	35
2020	207
2024	641

स्रोत – इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार।

चित्र 2: यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) से जुड़े बैंकों की संख्या

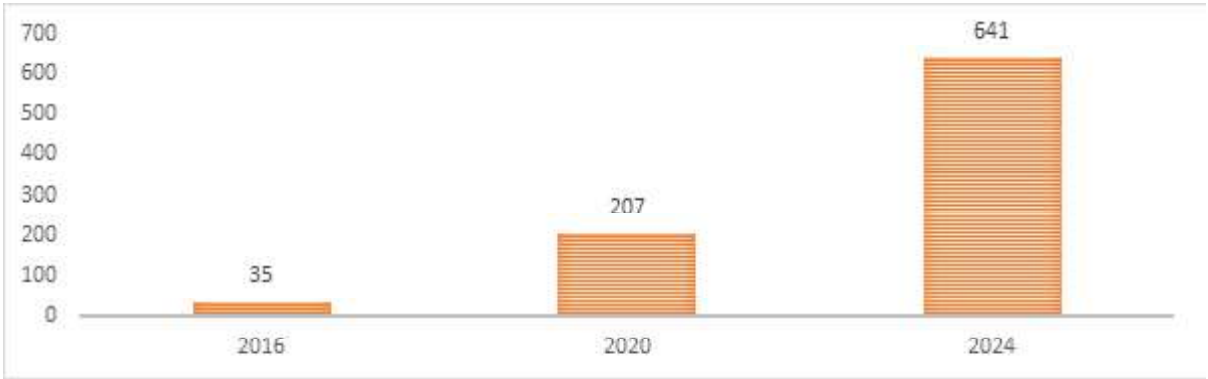

तालिका से स्पष्ट है कि यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) से जुड़े बैंकों की संख्या वर्ष 2016 में 35 से बढ़कर वर्ष 2024 में 641 हो गई है। यह बैंकिंग क्षेत्र में डिजिटल तकनीक के व्यापक उपयोग तथा बैंकिंग सेवाओं के विस्तार को दर्शाता है।

तालिका 3: यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) लेनदेन संख्या (मिलियन में)

वर्ष	*लेनदेन संख्या (मिलियन)*
2020	2,234.16
2024	16,730.01

स्रोत – इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार।

चित्र 3: यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) लेनदेन संख्या (मिलियन में)

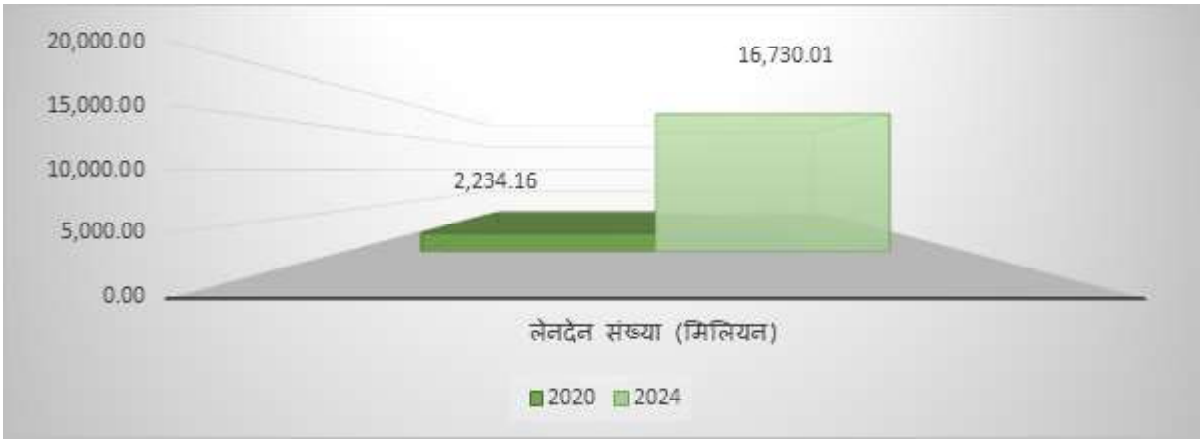

उपरोक्त तालिका से ज्ञात होता है कि वर्ष 2020 में यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI) लेनदेन संख्या 2,234.16 मिलियन थी, जो वर्ष 2024 में बढ़कर 16,730.01 मिलियन हो गई। यह डिजिटल भुगतान की बढ़ती लोकप्रियता तथा उपयोगिता को दर्शाता है।

तालिका 4: UMANG उपयोगकर्ता एवं सेवाएँ

वर्ष	*उपयोगकर्ता (करोड़)*	*लेनदेन (करोड़)*	*सेवाएँ*
2017	0.25 लाख	3.90	166
2020	2.54	126.55	974
2024	7.34	516.06	2,101

स्रोत – इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार ।

चित्र 4: UMANG उपयोगकर्ता एवं सेवाएँ

तालिका से स्पष्ट होता है कि UMANG प्लेटफॉर्म पर उपयोगकर्ताओं तथा सेवाओं की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। वर्ष 2024 तक 2,101 सेवाएँ उपलब्ध हो चुकी हैं, जो डिजिटल सेवाओं के व्यापक विस्तार को दर्शाता है।

तालिका 5: ठींतंजछमज उपलब्धियाँ

संकेतक	*उपलब्धि*
ग्राम पंचायत कनेक्ट	2.14 लाख
ऑप्टिकल फाइबर (किमी)	6.92 लाख
WIFI हॉटस्पॉट	1.04 लाख

स्रोत – इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार ।

चित्र 5: BharatNet उपलब्धियाँ

तालिका दर्शाती है कि BharatNet परियोजना के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं का विस्तार संभव हुआ है।

तालिका 6: डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC) उपलब्धियाँ

संकेतक	*मान*
शहर	616+
विक्रेता	7.64 लाख+
कुल ऑर्डर	154.4 मिलियन+
दैनिक लेनदेन	4,90,000+

स्रोत – इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार।

चित्र 6: डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC) उपलब्धियाँ

डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC) प्लेटफॉर्म डिजिटल व्यापार को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हुआ है। इसके माध्यम से छोटे व्यवसायों को डिजिटल माध्यम से बैंकिंग सेवाओं का उपयोग करने का अवसर मिला है।

तालिका 7: भाषा इंटरफेस फॉर इंडिया (ठभैभ्छप्) उपलब्धियाँ

संकेतक	*मान*
भाषाएँ	22+
डाउनलोड	5,00,000+
उपयोग	100 मिलियन+ प्रति माह

स्रोत – इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार ।

चित्र 7: भाषा इंटरफेस फॉर इंडिया (BHASHINI) उपलब्धियाँ

भाषा इंटरफेस फॉर इंडिया (BHASHINI) प्लेटफॉर्म ने भाषा अवरोध को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल बैंकिंग सेवाओं का उपयोग बढ़ा है।

तालिका 8: GeM उपलब्धिया

सकेतक	*मान*
GMV	रू.4.09 लाख करोड़
खरीदार	1.6 लाख+
विक्रेता	22.5 लाख+

स्रोत - इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, (2025), डिजिटल इंडिया रिपोर्ट, भारत सरकार ।

चित्र 8: GeM उपलब्धियाँ

GeM प्लेटफॉर्म सरकारी खरीद प्रणाली को डिजिटल बनाने में सहायक रहा है। इससे पारदर्शिता बढ़ी है तथा डिजिटल भुगतान को बढ़ावा मिला है।

6. सुझाव

- ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम आयोजित किए जाएँ।
- बैंक कर्मचारियों को नियमित तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।
- साइबर सुरक्षा जागरूकता बढ़ाई जाए।
- इंटरनेट कनेक्टिविटी को और अधिक सुदृढ़ किया जाए।
- ग्राहकों के लिए सरल एवं बहुभाषीय मोबाइल एप विकसित किए जाएँ।

7. निष्कर्ष

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत में ऑनलाइन बैंकिंग सेवाओं का विस्तार तीव्र गति से हुआ है। यूनिफाइड पेमेंट्स इंटरफेस (UPI), UMANG, BharatNet, डिजिटल कॉमर्स के लिए ओपन नेटवर्क (ONDC), भाषा इंटरफेस फॉर इंडिया (BHASHINI) तथा GeM जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म ने बैंकिंग सेवाओं को सरल एवं सुलभ बनाया है। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कनेक्टिविटी तथा डिजिटल साक्षरता में सुधार से ऑनलाइन बैंकिंग का उपयोग बढ़ा है। हालाँकि साइबर सुरक्षा, तकनीकी ज्ञान की कमी तथा डिजिटल साक्षरता की सीमाएँ अभी भी प्रमुख चुनौतियाँ हैं। बैंक कर्मचारियों की सहायक भूमिका तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम इन चुनौतियों को कम करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

संदर्भ

- Ministry of Electronics and Information Technology. (2025). Digital India Report. Government of India.
- National Payments Corporation of India. (2024). UPI Annual Report. NPCI.
- Government of India. (2025). UMANG Portal Statistics Report.
- Department of Telecommunications. (2025). BharatNet Progress Report.
- Open Network for Digital Commerce. (2025). ONDC Performance Report.
- Government e-Marketplace. (2025). GeM Annual Report.
- National Language Technology Mission. (2024). BHASHINI Progress Report.

बिहार के प्रशासनिक तंत्र में पारदर्शिता और जवाबदेही की चुनौतियां

प्रवीण कुमार झा

लोक प्रशासन विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

सारांश (Summary)

प्रस्तुत आलेख बिहार के प्रशासनिक ढांचे में पारदर्शिता और जवाबदेही के महत्व को सुशासन के आधार स्तंभ के रूप में रेखांकित करता है। यह स्पष्ट करता है कि जहाँ पारदर्शिता सरकारी प्रक्रियाओं को जनता के लिए सुलभ बनाती है, वहीं जवाबदेही लोक सेवकों को उनके कार्यों के प्रति उत्तरदायी ठहराती है। ऐतिहासिक रूप से बिहार, चाणक्य के सिद्धांतों और शेरशाह सूरी के सुधारों से प्रेरित रहा है, लेकिन वर्तमान समय में राज्य के 'सुशासन' के दावों और जमीनी हकीकत के बीच एक बड़ा अंतराल मौजूद है। डिजिटल सुधारों और नए कानूनों के बावजूद, भ्रष्टाचार और लालफीताशाही जैसी चुनौतियाँ आज भी प्रशासन और जनता के बीच के विश्वास को प्रभावित कर रही हैं।

मुख्य शब्द (Key Words): पारदर्शिता, जवाबदेही, सुशासन, विकेंद्रीकृत शासन, लालफीताशाही, सूचना का अधिकार, लोक सेवाओं का अधिकार

प्रस्तावना (Introduction)

बिहार के प्रशासनिक तंत्र में पारदर्शिता और जवाबदेही के महत्व को समझने के लिए सबसे पहले इनके मूल अर्थ को समझना आवश्यक है। 'पारदर्शिता' का तात्पर्य शासन की उन प्रक्रियाओं और निर्णयों से है जो जनता के लिए खुली, स्पष्ट और सुलभ हों, ताकि आम नागरिक यह जान सके कि सरकारी तंत्र किस आधार पर और कैसे कार्य कर रहा है। वहीं, 'जवाबदेही' वह नैतिक और कानूनी बंधन है जिसके तहत लोक सेवकों को अपने कार्यों, निर्णयों और उनके परिणामों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होना पड़ता है। सुशासन (Good Governance) के ढांचे में ये दोनों तत्व रीढ़ की हड्डी के समान हैं; क्योंकि बिना पारदर्शिता के भ्रष्टाचार पनपता है और बिना जवाबदेही के सत्ता निरंकुश हो जाती है। जब किसी राज्य का प्रशासन पारदर्शी होता है, तो वह न केवल संसाधनों के कुशल आवंटन को सुनिश्चित करता है बल्कि नागरिकों और सरकार के बीच विश्वास के सेतु को भी मजबूत करता है।[1]

ऐतिहासिक रूप से बिहार का प्रशासनिक आधार अत्यंत गौरवशाली रहा है। मगध साम्राज्य के समय आचार्य चाणक्य ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में लोक प्रशासन के उन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था, जिनमें राजा और उसके अमात्यों (अधिकारियों) की जवाबदेही को सर्वोपरि रखा गया था। चाणक्य ने स्पष्ट कहा था कि ष्प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है,ष जो सीधे तौर पर आज के लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से मेल खाता है। मध्यकाल में शेरशाह सूरी के प्रशासनिक सुधारों ने भी बिहार की भूमि से ही पूरे भारत को एक व्यवस्थित राजस्व और संचार तंत्र दिया। आधुनिक समय में, स्वतंत्रता के बाद बिहार ने एक जटिल नौकरशाही ढांचे को अपनाया, जिसमें समय-समय पर सुधार की कोशिशें की गईं। वर्तमान में राज्य का प्रशासनिक ढांचा सचिवालय से लेकर ग्राम पंचायत स्तर तक फैला हुआ है, जिसका उद्देश्य विकेंद्रीकृत शासन के माध्यम से अंतिम व्यक्ति तक पहुंच बनाना है।

हालांकि, वर्तमान परिदृश्य में बिहार के 'सुशासन' के दावों और धरातल की कड़वी चुनौतियों के बीच एक स्पष्ट द्वंद्व दिखाई देता है। एक ओर सरकार ने 'सूचना का अधिकार' (RTI) और 'लोक सेवाओं का अधिकार' (RTPS) जैसे कानूनों के माध्यम से पारदर्शिता लाने के बड़े दावे किए हैं, तो दूसरी ओर जमीनी स्तर पर भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और सूचनाओं को दबाने की प्रवृत्ति आज भी एक बड़ी बाधा बनी हुई है। नीतियों का कागजों पर आदर्श दिखना और क्रियान्वयन के स्तर पर जवाबदेही का अभाव, बिहार के प्रशासनिक तंत्र की सबसे बड़ी विडंबना है। यह द्वंद्व तब और गहरा हो जाता है जब विकास की योजनाओं का लाभ तकनीकी जटिलताओं या बिचौलियों के हस्तक्षेप के कारण लक्षित लाभार्थियों तक नहीं पहुंच पाता। अतः बिहार में वास्तविक सुशासन की स्थापना के लिए केवल कानूनों का निर्माण पर्याप्त नहीं है, बल्कि प्रशासनिक संस्कृति में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व के प्रति एक ईमानदार बदलाव की तत्काल आवश्यकता है।[2]

पारदर्शिता और जवाबदेही के स्तंभ

बिहार में प्रशासनिक पारदर्शिता और जवाबदेही को सुनिश्चित करने के लिए एक मजबूत संवैधानिक, कानूनी और संस्थागत ढांचा तैयार किया गया है। कानून के स्तर पर 'सूचना का अधिकार अधिनियम' (RTI) सबसे शक्तिशाली हथियार के रूप में उभरा है, जिसने सरकारी फाइलों में कैद सूचनाओं तक आम आदमी की पहुंच को सुलभ बनाया है। यह कानून न केवल प्रशासन को खुला बनाता है,

बल्कि अधिकारियों में यह बोध भी पैदा करता है कि उनके निर्णय जनता की निगरानी में हैं। इसी कड़ी में, बिहार सरकार ने 'बिहार लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम' (RTPS) लागू कर एक क्रांतिकारी कदम उठाया। इस कानून के तहत जाति, आय, निवास जैसे महत्वपूर्ण प्रमाणपत्रों और अन्य सेवाओं को एक निश्चित समय सीमा के भीतर प्रदान करना अनिवार्य कर दिया गया है। यदि सेवा देने में देरी होती है, तो संबंधित अधिकारी पर दंड का प्रावधान है, जो सीधे तौर पर कार्यपालिका की जवाबदेही तय करता है। इसके अतिरिक्त, 'बिहार लोक शिकायत निवारण अधिकार अधिनियम' ने नागरिकों को अपनी शिकायतों पर सुनवाई और उनके निश्चित समाधान का कानूनी हक दिया है, जिससे आम जनता और शासन के बीच की दूरी कम हुई है।

संस्थागत ढांचे की बात करें तो बिहार में भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने और प्रशासनिक शुचिता बनाए रखने के लिए कई उच्च स्तरीय निकायों का गठन किया गया है। 'लोकायुक्त' एक स्वतंत्र वैधानिक निकाय के रूप में कार्य करता है, जिसके पास मुख्यमंत्री से लेकर निचले स्तर के लोक सेवकों के विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायतों की जांच करने का अधिकार है। यह संस्था प्रशासन में शीर्ष स्तर पर जवाबदेही सुनिश्चित करने का काम करती है। वहीं, 'राज्य सतर्कता आयोग' (Vigilance Commission) सरकारी तंत्र के भीतर भ्रष्टाचार के मामलों की निगरानी, जांच और ट्रैपिंग जैसी कार्रवाइयों के लिए उत्तरदायी है। इसका मुख्य उद्देश्य लोक सेवकों के आचरण की शुचिता बनाए रखना है। इन प्रयासों को संगठनात्मक रूप देने के लिए 'बिहार प्रशासनिक सुधार मिशन' (BPSM) निरंतर कार्य कर रहा है। यह मिशन न केवल नई तकनीकों के माध्यम से सरकारी प्रक्रियाओं को सरल और पारदर्शी बना रहा है, बल्कि लोक सेवाओं के प्रबंधन में नवाचार (Innovation) को भी बढ़ावा दे रहा है।[3]

ये कानूनी और संस्थागत स्तंभ मिलकर एक ऐसा पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) बनाने का प्रयास करते हैं जहाँ सत्ता का दुरुपयोग न्यूनतम हो। जहाँ RTI और RTPS जैसे कानून नागरिक को सशक्त बनाते हैं, वहीं लोकायुक्त और सतर्कता आयोग जैसे संस्थान भ्रष्ट आचरण पर अंकुश लगाने का भय पैदा करते हैं। हालांकि, इन स्तंभों की वास्तविक सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि ये संस्थान कितने स्वायत्त हैं और आम नागरिक इनके प्रति कितने जागरूक हैं। बिहार जैसे राज्य में, जहाँ सामाजिक-आर्थिक विविधता अधिक है, इन ढांचों का प्रभावी क्रियान्वयन ही 'सुशासन' की असली कसौटी है।

बिहार में प्रशासनिक पारदर्शिता लाने के प्रयासों के मार्ग में कई गंभीर चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जो सुशासन के लक्ष्यों को पूर्णतः प्राप्त करने में बाधक सिद्ध होती हैं। इन चुनौतियों में सबसे प्रमुख डिजिटल साक्षरता की कमी है। यद्यपि बिहार सरकार ने ई-गवर्नेंस और विभिन्न ऑनलाइन पोर्टल्स के माध्यम से सेवाओं को आधुनिक बनाने का प्रयास किया है, किंतु राज्य की एक विशाल ग्रामीण आबादी आज भी स्मार्टफोन और इंटरनेट के प्रभावी उपयोग से वंचित है। विडंबना यह है कि केवल नागरिक ही नहीं, बल्कि प्रशासनिक तंत्र के निचले स्तर के कई कर्मचारी और अधिकारी भी तकनीकी रूप से उतने दक्ष नहीं हैं, जितना कि एक पूर्णतः पारदर्शी डिजिटल सिस्टम के लिए आवश्यक है। इसके परिणामस्वरूप, ऑनलाइन आवेदन करने या अपनी शिकायतों की स्थिति जानने के लिए ग्रामीणों को आज भी 'वसुधा केंद्रों' या बिचौलियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिससे पारदर्शिता का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।

दूसरी बड़ी चुनौती अभिलेखों का अधूरा और त्रुटिपूर्ण डिजिटलीकरण है। बिहार जैसे कृषि प्रधान राज्य में भूमि सुधार और राजस्व विभाग प्रशासन की धुरी हैं। यहाँ दशकों पुराने भूमि रिकॉर्ड्स, जो कागजी रजिस्टरों में दर्ज थे, उनका पूर्णतः और शुद्धता के साथ डिजिटलीकरण करना एक हिमालयी कार्य साबित हो रहा है। पुराने अभिलेखों का फटे होना, लिखावट का अस्पष्ट होना और वंशावली की जटिलताओं के कारण डेटा एंट्री में व्यापक त्रुटियां हुई हैं। जब तक भूमि और संपत्ति के रिकॉर्ड पारदर्शी रूप से ऑनलाइन उपलब्ध नहीं होते, तब तक ग्रामीण क्षेत्रों में विवाद और भ्रष्टाचार की जड़ें जमी रहेंगी। राजस्व विभाग में फाइलों का अव्यवस्थित होना अधिकारियों को अपनी सुविधानुसार सूचनाओं को छिपाने या विलंब करने का अवसर प्रदान करता है।[4]

सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम का क्रियान्वयन भी बिहार में पारदर्शिता की राह में एक बड़ा रोड़ा बना हुआ है। कानूनन सूचना देना अनिवार्य है, परंतु व्यावहारिक धरातल पर लोक सूचना अधिकारियों (PIOs) की टालमटोल वाली नीति आम है। अक्सर सूचना मांगने वालों को अधूरी जानकारी दी जाती है या आवेदन को एक विभाग से दूसरे विभाग में घुमाया जाता है। सबसे चिंताजनक पहलू त्ज्प् कार्यकर्ताओं की सुरक्षा से जुड़ा है। बिहार में कई बार भ्रष्टाचार का खुलासा करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं को जानलेवा हमलों और धमकियों का सामना करना पड़ा है। जब सूचना मांगने की कीमत जान का जोखिम हो, तो प्रशासनिक पारदर्शिता स्वतः ही संकुचित हो जाती है। राज्य सूचना आयोग में रिक्त पड़े पदों और अपीलों के भारी बोझ के कारण न्याय मिलने में होने वाली देरी भी इस सशक्त कानून को कमजोर बनाती है।

अंततः, सिस्टम की संरचनात्मक जटिलता एक अदृश्य बाधा है। सरकारी नियम, कानून और आवेदन की प्रक्रियाएं इतनी पेचीदा और तकनीकी शब्दावली से भरी होती हैं कि एक सामान्य शिक्षित नागरिक के लिए भी उन्हें समझना कठिन हो जाता है। प्रशासनिक तंत्र में आज भी एक ऐसी 'गोपनीयता की संस्कृति' (Culture of Secrecy) विद्यमान है, जहाँ सूचना को साझा करने के बजाय उसे सुरक्षित रखना ही कर्तव्य समझा जाता है। फाइलों के मूवमेंट की लंबी श्रृंखला और नौकरशाही की कठोर पदानुक्रमित व्यवस्था पारदर्शिता के मार्ग में दीवार खड़ी कर देती है। जब प्रक्रियाएं अस्पष्ट होती हैं, तो आम आदमी को अपना जायज काम कराने के लिए भी 'संपर्क' या 'जुगाड़' का सहारा लेना पड़ता है, जो अंततः पारदर्शिता की अवधारणा को ही पराजित कर देता है।[5]

बिहार सरकार के सकारात्मक प्रयास

1. सात निश्चय योजना: डैशबोर्ड आधारित मॉनिटरिंग

मुख्यमंत्री के 'सात निश्चय' (पार्ट-1 और पार्ट-2) के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने बदलाव (Badlav) नामक एक अत्याधुनिक डैशबोर्ड विकसित किया है।

- सकारात्मक प्रयास: पहले ग्रामीण विकास की योजनाओं में प्रगति की रिपोर्ट कागजों पर होती थी, लेकिन अब हर नल-जल कनेक्शन और पक्की गली की स्थिति ऑनलाइन दर्ज है।
- केस स्टडी: 'हर घर नल का जल' योजना के तहत, यदि किसी वार्ड में पानी की आपूर्ति बाधित होती है, तो उसे डैशबोर्ड के माध्यम से जिला स्तर पर ट्रैक किया जा सकता है। इससे अधिकारियों की जवाबदेही तय हुई है और भ्रष्टाचार में कमी आई है।

2. शराबबंदी और कानून व्यवस्था: पारदर्शिता के प्रयास

बिहार में शराबबंदी को लागू करना एक बड़ा सामाजिक और प्रशासनिक कदम रहा है।

- तकनीकी निगरानी: कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए मद्य निषेध विभाग ने ड्रोन, मोटरबोट और हैंडहेल्ड स्कैनर का उपयोग शुरू किया है।
- परिणाम: पारदर्शिता लाने के लिए शिकायतों के लिए टोल-फ्री नंबर (15545) जारी किया गया। एक शोध (ADRI) के अनुसार, शराबबंदी के बाद घरेलू हिंसा में कमी आई है और गरीब परिवारों के जीवन स्तर में सुधार हुआ है। हालांकि, अवैध व्यापार को रोकने के लिए पुलिस अब ई-बीट और सीसीटीवी सर्विलांस का व्यापक उपयोग कर रही है।[6]

3. RTPS का प्रभाव: सेवाओं की समयबद्ध डिलीवरी

लोक सेवाओं का अधिकार अधिनियम (RTPS) बिहार में आम नागरिक के सशक्तिकरण का सबसे बड़ा हथियार बना है।

- अनिवार्यता: अब जाति, आय और निवास प्रमाणपत्र प्राप्त करने के लिए सरकारी दफ्तरों के चक्कर लगाना अनिवार्य नहीं है। पोर्टल के माध्यम से समय सीमा (Time-bound) के भीतर सेवा देना अनिवार्य कर दिया गया है।
- प्रभाव: यदि सेवा तय समय (जैसे 10-15 दिन) में नहीं मिलती, तो संबंधित अधिकारी पर दंड का प्रावधान है। इससे बिचौलियों की भूमिका समाप्त हो गई है और श्डिजिटल बिहारश् के सपने को मजबूती मिली है।

4. जल-जीवन-हरियाली: रिमोट सेंसिंग तकनीक

जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए बिहार का यह मिशन दुनिया भर में चर्चा का विषय रहा है।

- तकनीकी निगरानी: इस मिशन के तहत पोखरों, तालाबों और कुओं के जीर्णोद्धार की निगरानी Remote Sensing और GIS Mapping के जरिए की जा रही है।
- केस स्टडी: रिमोट सेंसिंग के जरिए सरकार यह ट्रैक करती है कि कहाँ जलस्तर गिर रहा है और कहाँ वृक्षारोपण की उत्तरजीविता (Survival rate) अधिक है। उपग्रह चित्रों के माध्यम से अतिक्रमण मुक्त कराए गए जल निकायों की वास्तविक स्थिति देखी जाती है, जिससे डेटा में हेरफेर की गुंजाइश खत्म हो गई है।[7]

सुधार के सुझाव

बिहार की प्रशासनिक व्यवस्था को और अधिक पारदर्शी, जवाबदेह और जन-केंद्रित बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुधारों की आवश्यकता है। इन सुधारों को तकनीक, सामाजिक भागीदारी और नैतिक मूल्यों के समन्वय से प्राप्त किया जा सकता है।

ब्लॉकचेन और AI का एकीकरण आधुनिक शासन व्यवस्था में डेटा की सुरक्षा और सटीकता सबसे बड़ी चुनौती है। ब्लॉकचेन तकनीक (Blockchain Technology) को सरकारी रिकॉर्ड्स, विशेषकर भूमि सुधार और राशन वितरण में लागू किया जाना चाहिए। ब्लॉकचेन का 'डिस्ट्रीब्यूटेड लेजर' सिस्टम यह सुनिश्चित करेगा कि एक बार दर्ज हुआ डेटा बदला न जा सके, जिससे भ्रष्टाचार की गुंजाइश खत्म हो जाएगी। वहीं, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) का उपयोग सात निश्चय जैसी योजनाओं के डेटा विश्लेषण में किया जा सकता है। AI के जरिए यह पहचानना आसान होगा कि किन क्षेत्रों में संसाधनों की कमी है या कहाँ फर्जी लाभार्थी योजना का लाभ उठा रहे हैं।[8] यह तकनीक 'प्रेडिक्टिव गवर्नेंस' को बढ़ावा देगी, जिससे समस्या पैदा होने से पहले ही उसका समाधान संभव होगा।

पंचायत स्तर पर सोशल ऑडिट की अनिवार्यता लोकतंत्र की सफलता केवल योजनाओं के क्रियान्वयन में नहीं, बल्कि उनकी जन-समीक्षा में निहित है। पंचायत स्तर पर होने वाले विकास कार्यों का 'सोशल ऑडिट' (Social Audit) न केवल कागजी खानापूर्ति होनी चाहिए, बल्कि इसे एक अनिवार्य और स्वतंत्र प्रक्रिया बनाना होगा। जब गांव के लोग स्वयं नाली, गली या स्कूल निर्माण की गुणवत्ता की जांच करेंगे और ग्राम सभा में सवाल पूछेंगे, तो ठेकेदारों और अधिकारियों में जवाबदेही का भाव पैदा होगा। इसके लिए एक स्वतंत्र सोशल ऑडिट इकाई का गठन किया जाना चाहिए जो सीधे उच्च अधिकारियों को रिपोर्ट करे, ताकि स्थानीय दबाव में रिपोर्ट प्रभावित न हो।[9]

व्हिसलब्लोअर संरक्षण और कानूनी सुरक्षा भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई तब तक अधूरी है जब तक सूचना देने वाले सुरक्षित महसूस न करें। बिहार में व्हिसलब्लोअर (Whistleblower) संरक्षण को लेकर एक स्पष्ट और सख्त नीति की आवश्यकता है। भ्रष्टाचार की शिकायत करने वाले व्यक्तियों की पहचान गुप्त रखना और उन्हें किसी भी प्रकार के उत्पीड़न से बचाने के लिए कानूनी सुरक्षा प्रदान करना अनिवार्य है। इसके लिए एक सुरक्षित डिजिटल पोर्टल बनाया जा सकता है जहाँ शिकायतकर्ता गुमनाम रहकर साक्ष्य अपलोड कर सके। जब लोगों को यह विश्वास होगा कि सच बोलने पर उनकी जान या नौकरी को खतरा नहीं है, तभी प्रशासनिक सफाई का मार्ग प्रशस्त होगा।

क्षमता निर्माण और नैतिक प्रशिक्षण प्रशासनिक सुधार केवल नियमों से नहीं, बल्कि मानसिकता में बदलाव से आते हैं। सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों के लिए नियमित अंतराल पर 'क्षमता निर्माण' (Capacity Building) कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। इसमें केवल तकनीकी प्रशिक्षण ही नहीं, बल्कि नैतिक प्रशिक्षण (Ethics Training) को अनिवार्य हिस्सा बनाया जाना चाहिए। कर्मचारियों को जनता के प्रति संवेदनशील बनाने और 'लोक सेवक' की भूमिका को आत्मसात कराने के लिए कार्यशालाएं आयोजित की जानी चाहिए।[10] जब अधिकारियों में सेवा भाव और ईमानदारी का आंतरिक बोध होगा, तो फाइलों की पेंडेंसी और भ्रष्टाचार में स्वतः ही कमी आएगी।

निष्कर्ष (Conclusion)

बिहार को एक विकसित राज्य की श्रेणी में खड़ा करने के लिए आगामी दशक अत्यंत निर्णायक हैं। अब तक की प्रगति ने एक मजबूत आधार तैयार किया है, लेकिन भविष्य की राह केवल नई फाइलों या कानूनों के निर्माण से नहीं, बल्कि एक व्यापक प्रशासनिक और सांस्कृतिक बदलाव से होकर गुजरती है। जब तक शासन की प्रक्रिया में 'लोक सेवक' और 'आम नागरिक' के बीच की दूरी कम नहीं होगी, तब तक सुधारों का पूर्ण लाभ धरातल पर नहीं दिखेगा। सरकारी तंत्र को अपनी कार्यसंस्कृति में जड़ता को त्यागकर नवाचार (Innovation) और संवेदनशीलता को अपनाना होगा। एक ऐसा वातावरण बनाना आवश्यक है जहाँ नियम बाधा न बनें, बल्कि विकास के उत्प्रेरक (Catalyst) साबित हों।

अंतिम विचार के रूप में यह समझना महत्वपूर्ण है कि पारदर्शिता (Transparency) का अर्थ केवल वेबसाइट पर डेटा डाल देना या डैशबोर्ड बनाना मात्र नहीं है। वास्तविक पारदर्शिता वह है जो सरकार और नागरिक के बीच अटूट विश्वास (Trust) का निर्माण करे। जब एक आम आदमी को यह भरोसा होता है कि उसकी शिकायत पर बिना किसी सिफारिश के निष्पक्ष कार्रवाई होगी और सरकारी योजनाओं का लाभ उसे हक के रूप में मिलेगा, तब सुशासन (Good Governance) चरितार्थ होता है।

तकनीक (जैसे AI और ब्लॉकचेन) इसमें केवल एक उपकरण की भूमिका निभाती है, लेकिन असली शक्ति मानवीय मूल्यों और ईमानदारी में निहित है। यदि बिहार अपनी समृद्ध ऐतिहासिक विरासत को आधुनिक प्रशासनिक सुधारों के साथ जोड़ने में सफल रहता है, तो वह न केवल एक विकसित राज्य बनेगा, बल्कि पूरे देश के लिए 'न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन' (Minimum Government, Mañimum Governance) का एक उत्कृष्ट मॉडल भी पेश करेगा।

संदर्भ सूची (Reference)

1. बिहार सरकार (योजना एवं विकास विभाग): 'सात निश्चय योजना - भाग 1 एवं 2 की प्रगति रिपोर्ट और डैशबोर्ड (2021-2024)'। आधिकारिक वेबसाइट: state.bihar.gov.in.
2. आर्थिक सर्वेक्षण बिहार (2024): बिहार के वित्त विभाग द्वारा जारी वार्षिक आर्थिक रिपोर्ट, विशेषकर 'सुशासन' और 'ई-गवर्नेंस' अध्याय।
3. लोक सेवाओं का अधिकार (RTPS) पोर्टल: बिहार प्रशासनिक सुधार मिशन (BPSM) द्वारा जारी डेटा और सेवा समय-सीमा की मार्गदर्शिका।
4. जल-जीवन-हरियाली मिशन रिपोर्ट: ग्रामीण विकास विभाग द्वारा रिमोट सेंसिंग और जीआईएस मैपिंग के उपयोग पर जारी तकनीकी हैंडबुक।
5. नीति आयोग (NITI Aayog): "SDG India Indeñ Report" – बिहार की सामाजिक और बुनियादी ढांचे में सुधार की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन।
6. ADRI (Asian Development Research Institute): 'बिहार में शराबबंदी का सामाजिक और आर्थिक प्रभाव' - एक विस्तृत केस स्टडी और सर्वेक्षण।
7. विश्व बैंक (World Bank) रिपोर्ट: 'बिहार में सार्वजनिक सेवा वितरण में सुधार' (Improving Public Service Delivery in Bihar), तकनीकी सहयोग पत्र।
8. PRIA (Participatory Research in Asia): 'पंचायत स्तर पर सोशल ऑडिट की प्रभावशीलता' - बिहार के विशेष संदर्भ में शोध पत्र।
9. NCRB (National Crime Records Bureau): बिहार में कानून व्यवस्था और मद्य निषेध के बाद अपराध दर में परिवर्तन पर वार्षिक डेटा।
10. Digital Bihar Initiative: सूचना प्रौद्योगिकी विभाग (IT Dept, Bihar) द्वारा 'ब्लॉकचेन और AI' के भविष्य के रोडमैप पर जारी विजन डॉक्यूमेंट।

'देवरानी-जेठानी की कहानी': सामाजिक सुधार और स्त्री शिक्षा का एक दस्तावेज

डॉ० सोनिया दहिया

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, चौधरी ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय पूंडरी (कैथल)

सार

यह कहा जा सकता है कि पंडित गौरीदत्त द्वारा सन् 1870 में लिखित उपन्यास 'देवरानी-जेठानी की कहानी' को हिंदी साहित्य का पहला उपन्यास माना जाता है, जो औपनिवेशिक काल के दौरान मेरठ के एक अग्रवाल परिवार के नजरिए से महिलाओं की शिक्षा, बाल विवाह और संयुक्त परिवार में आए बदलावों को दर्शाता है। यह देखा जा सकता है कि यह रचना सरल हिंदी में सामाजिक सुधार और महिलाओं की शिक्षा की वकालत करती है, और अशिक्षित जेठानी और शिक्षित देवरानी दोनो बहुओं के बीच के अंतर को स्पष्ट करती है। यह उपन्यास समकालीन समाज का सजीव चित्रण प्रस्तुत करता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि लेखक की मुख्य चिंता समकालीन महिलाओं की सामाजिक और पारिवारिक परिस्थितियाँ थीं। यह एक तथ्य है कि यह उपन्यास बाल विवाह, विवाह में होने वाले फिजूलखर्ची, सामाजिक और पारिवारिक विभाजन, बुजुर्गों और बहुओं की समस्याओं, महिलाओं की शिक्षा आदि जैसे मुद्दों का वर्णन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उपन्यास भारतीय परिवार के आंतरिक जटिल और प्रतिस्पर्धी पारिवारिक वातावरण को दर्शाता है। इस उपन्यास में दो ऐसी महिलाओं की तुलना की गई है जो एक ही घर में रहती हैं लेकिन उनकी समझदारी एक जैसी नहीं है। यह उपन्यास यह भी दिखाता है कि कैसे एक ही परिवार की महिलाएं घरेलू पारिवारिक मामलों में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या करती हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि अपनी भाषा के माध्यम से यह उपन्यास आज के लेखकों को मार्गदर्शन भी प्रदान करता है। इस शोध पत्र में लेखक भारतीय परिवार इकाई की वास्तविकता और परिवार के सदस्यों के एक-दूसरे के साथ व्यवहार करने के तरीके को उजागर करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द: 'देवरानी-जेठानी, कहानी', उपन्यास, सामाजिक सुधार, स्त्री, शिक्षा

भूमिका

यह देखा जा सकता है कि पंडित गौरीदत्त द्वारा लिखित 'देवरानी-जेठानी की कहानी' (1870) मात्र एक उपन्यास नहीं है[1], बल्कि 19वीं शताब्दी के उत्तर भारतीय हिंदू समाज के पारिवारिक-सामाजिक ताने-बाने का जीवंत चित्रण है। डॉ. गोपाल राय के अनुसार, इसे पहला हिंदी उपन्यास माना जाता है। यह उपन्यास शिक्षा विशेषकर महिला शिक्षा के महत्व को स्थापित करने के उद्देश्य से लिखी गई थी। यह देखा जा सकता है कि उपन्यास का मुख्य पात्र 'सर्वसुख' नाम का एक अग्रवाल बनिया है, जिसके दो बेटे हैं दौलतराम बड़ी बहू ज्ञानो का पति और छोटेलाल छोटी बहू आनंदी का पति है। इस उपन्यास का केंद्रीय विषय ज्ञानो की संकीर्ण सोच और आनंदी की बुद्धिमत्ता के बीच का संघर्ष है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि ज्ञानो अनपढ़ और लालची है, जबकि आनंदी पढ़ी-लिखी और सुलझी हुई है। कहानी दोनों बहुओं के बीच ईर्ष्या, छोटी-छोटी बातों पर उनके झगड़े और अंततः परिवार के विभाजन को दर्शाती है। यह उपन्यास उस समय महिलाओं की शिक्षा के महत्व और घर के कुशल प्रबंधन की आवश्यकता पर बल देती है, और आनंदी का व्यवहार अनुकरणीय माना जाता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि उपन्यास बाल विवाह, फिजूलखर्ची और परिवार में बड़ों के सम्मान जैसे मुद्दों को भी उजागर करता है। यह उपन्यास स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि भारतीय हिंदू परिवार किस प्रकार एक झगड़ालू सामाजिक-पारिवारिक वातावरण में रहते हैं। यह उपन्यास स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि कैसे परिवार के एक निरक्षर सदस्य ने पूरे परिवार की पारिवारिक शांति भंग कर दी है। यह उपन्यास स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि परिवार का एक अनपढ़ सदस्य हर बार झगड़ा करने की इच्छा रखता है। यह उपन्यास स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि पारिवारिक शांति के लिए परिवार में समन्वय की आवश्यकता है। इस उपन्यास की कहानी हमें बताती है कि आपसी समन्वय और सभी के साथ सम्मानजनक व्यवहार के माध्यम से एक परिवार के सदस्य अपने घर में शांतिपूर्वक रह सकते हैं।[2]

यह उपन्यास 'देवरानी-जेठानी की कहानी' पुनर्जागरण काल की चेतना से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। पुनर्जागरण काल में भारतीय समाज का सबसे अधिक प्रभावित पहलू महिलाओं के प्रति समाज का रूढ़िवादी दृष्टिकोण और बुरा व्यवहार था। भारत में निरक्षरता

के कारण मध्यमवर्गीय परिवारों में महिलाओं की स्थिति दयनीय थी। इस उपन्यास से हमें यह सीखने को मिलता है कि महिलाओं की शिक्षा सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। सन् 1870 में प्रकाशित होने के कारण भारत में सामाजिक सुधार आंदोलनों के दौर में, पंडित गौरीदत्त ने इस उपन्यास के माध्यम से प्रचलित सामाजिक बुराइयों की आलोचना की थी। इस उपन्यास में महिलाओं की शिक्षा के महत्व और घरेलू कार्यों में विवेक की आवश्यकता पर बल दिया गया है और इस उपन्यास में आनंदी का व्यवहार अनुकरणीय माना जाता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि उपन्यास में बाल विवाह, फिजूलखर्ची और परिवार में बड़ों की स्थिति जैसे समकालीन मुद्दों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस उपन्यास में यह भी दर्शा दिया है कि इस देश के बनिये बहुत पारंपरिक जिंदगी जीते है।[3]

इस उपन्यास में कहानी यह कहानी मेरठ के अग्रवाल बनिया परिवार के इर्द-गिर्द घूमती है। इस उपन्यास में मुख्य पात्र, बड़ी भाभी, अनपढ़ और संकीर्ण सोच वाली है, जबकि छोटी भाभी शिक्षित और बुद्धिमान महिला है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास महिलाओं की शिक्षा की पुरजोर वकालत करता है और महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा की आवश्यकता पर बल देता है। यह उपन्यास उस समय के संयुक्त परिवार की संरचना को यथार्थवादी ढंग से चित्रित करता है, जिसमें आंतरिक संघर्ष, बाल विवाह और जन्म एवं मृत्यु से संबंधित रीति-रिवाज शामिल हैं। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास उस समय के अग्रवाल व्यापारी समुदाय के जीवन, उनकी व्यापारिक गतिविधियों और जीवनशैली को उजागर करता है। इस उपन्यास में कहानी सरल, बोलचाल की हिंदी में लिखी गई है जिससे पाठक इसे आसानी से समझ पाते हैं।

'देवरानी-जेठानी की कहानी' में सामाजिक सुधार और स्त्री शिक्षा की महता:

पंडित गौरीदत्त की 'देवरानी जेठानी की कहानी' को प्रकाशन वर्ष 1870 के साथ-साथ संरचना के लिहाज से भी पहला हिंदी उपन्यास माना जाता है। कुछ छोटी-मोटी कमियों के बावजूद, हिंदी उपन्यास के विकास की दिशा में उठाया गया यह पहला आशाजनक कदम है। पंडित गौरीदत्त द्वारा सन् 1870 में लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' हिंदी साहित्य के सबसे प्रारंभिक और महत्वपूर्ण उपन्यासों में से एक है। यह मेरठ के एक बनिया परिवार के पारिवारिक विघटन की कहानी है, जहाँ मेरठ के एक बनिया परिवार की बड़ी बहू ज्ञानो अनपढ़ और ईर्ष्यालु है, जबकि छोटी बहू आनंदी शिक्षित और बुद्धिमान है। ज्ञानो की निरक्षरता उसके हर कार्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उसने कई तर्कहीन फैसले लिए हैं और इसी वजह से एकजुट बनिया परिवार में आंतरिक फूट पड़ गई है। ज्ञानो के कृत्य पूरी तरह से तर्कहीन थे। उसने अपने मूर्खतापूर्ण कृत्यों से परिवार के अन्य सदस्यों को प्रताड़ित किया था। इन महिला पात्रों के माध्यम से संयुक्त परिवारों में महिलाओं की शिक्षा, पारिवारिक कलह और सामाजिक सुधारों जैसे मुद्दों को उजागर किया गया है।

इस उपन्यास में ब्रिटिश काल में समाज और परिवार के विघटन की समस्या को मेरठ शहर के अग्रवाल परिवार की कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। पंडित गौरी दत्त द्वारा लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' की पृष्ठभूमि उत्तर भारतीय शहर मेरठ के एक अग्रवाल व्यापारी परिवार के जीवन पर आधारित है, जो ब्रिटिश शासन के दौरान घटित हुआ था। यह उपन्यास कहानी संयुक्त परिवार की आकांक्षाओं, सामाजिक सुधारों, आधुनिकता और महिलाओं की शिक्षा पर केंद्रित है, और शिक्षित 'देवरानी और निरक्षर जेठानी के माध्यम से 'सामाजिक बुराइयों और महिलाओं के गुणों और अवगुणों' का यथार्थवादी चित्रण करती है। यह उपन्यास लाला सर्वसुख और उनके बेटे और बहू से मिलकर बने एक बनिया परिवार पर आधारित है। यह उस समय के मध्यमवर्गीय समाज की वास्तविकता और संयुक्त परिवार के विघटन और पारिवारिक विभाजन को प्रस्तुत करता है। उपन्यास कहानी का मुख्य पात्र सर्वसुख है, जो अग्रवाल बनिया है और उसके दो पुत्र हैं: दौलतराम ज्ञानो बड़ी बहू का पति और छोटेलाल आनंदी छोटी बहू का पति है। कहानी में ज्ञानो की संकीर्ण सोच और आनंदी की बुद्धिमत्ता के बीच संघर्ष को दर्शाया गया है। ज्ञानो अनपढ़ और लालची है जबकि आनंदी शिक्षित और सुसंस्कृत है। कहानी दोनों बहुओं के बीच ईर्ष्या, छोटी-छोटी बातों पर उनके झगड़े और अंतत: बनिया संयुक्त परिवार के विभाजन को उजागर करती है।

उपन्यास की नायिका, 'आनंदी' भाभी, शिक्षित है और घर के कामकाज को बुद्धिमानी से संभालती है, जबकि बड़ी भाभी, ज्ञानो, अशिक्षित होने के कारण, अपनी अज्ञानता से घर में पारिवारिक कलह का कारण बनती है। लेखक यह स्पष्ट करता हैं कि केवल शिक्षा ही स्त्री को आत्मनिर्भर और बुद्धिमान बना सकती है। लाला सर्वसुख के परिवार के माध्यम से संयुक्त परिवार में आने वाली पारिवारिक समस्याओं और ईर्ष्या को दर्शाती है, जो अंतत: समझदारी भरे पारिवारिक सुलह की ओर ले जाती है। उपन्यास उस समय प्रचलित पारिवारिक समस्याओं, जैसे बाल विवाह और विधवा पुनर्विवाह, पर भी प्रकाश डालता है। उपन्यास में मेरठ के अग्रवाल बनिया समुदाय की बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है, जो इसे पाठकों के लिए अधिक सहज बनाती है।

यह उपन्यास स्त्री शिक्षा और सामाजिक सुधार का दस्तावेज है:

यह उपन्यास महिलाओं की शिक्षा को महज साक्षरता का विषय नहीं, बल्कि 'ज्ञान का उपहार' मानता है। इस उपन्यास में आनंदी द्वारा पार्वती को शिक्षित करना यह दर्शाता है कि केवल एक शिक्षित महिला, जो अपने अधिकारों और कर्तव्यों से अवगत हो, अपने परिवार को प्रगति की ओर ले जा सकती है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास समकालीन समाज के लिए एक सशक्त संदेश था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध का हिंदी साहित्य मुख्य रूप से सामाजिक सुधार और पुनर्जागरण से प्रेरित था। इस काल में साहित्य को सामाजिक सुधार के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया। पंडित गौरीदत्त की ष्देवरानी-जेठानी की कहानीष् इसी चेतना का परिणाम है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास न केवल मनोरंजक है, बल्कि एक समकालीन बनिया परिवार के परिप्रेक्ष्य से घरेलू जीवन, महिलाओं की शिक्षा और पारिवारिक सद्भाव के बारे में भी शिक्षा देती है।

यह उपन्यास सामाजिक सुधार को प्रोत्साहन और सामाजिक कुरीतियों का विरोध करता है:

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस 'देवरानी-जेठानी की कहानी' ने अपने समय की सामाजिक और पारिवारिक बुराइयों पर सीधा प्रहार किया। यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में बाल विवाह के दुष्परिणामों को दर्शाया गया है। विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करना उस समय के लिए एक क्रांतिकारी कदम था। यह एक तथ्य है कि इस 'देवरानी-जेठानी की कहानी' ने बनिया समुदाय में पारिवारिक विवाहों के दौरान प्रचलित फिजूलखर्ची और दिखावे की भी आलोचना की। यह एक तथ्य है कि यह उपन्यास एक संयुक्त परिवार के सामाजिक और पारिवारिक विघटन और पुनर्मिलन की कहानी बयां करती है। यह कहा जा सकता है कि यह उपन्यास सास-बहू, ननद-ननद के बीच के संबंध और ननद-बड़ी ननद के बीच के संघर्ष को मनोवैज्ञानिक रूप से दर्शाता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास नैतिक आचरण, सौम्य वाणी और ईश्वर में आस्था का पाठ पढ़ाती है। यह कहा जा सकता है कि इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य पारिवारिक महिलाओं को शिक्षित करना और उन्हें घरेलू कामकाज में कुशल बनाना है। यह एक तथ्य है कि गौरीदत्त का मानना था कि केवल शिक्षित महिलाएं ही परिवार को सुखी रख सकती हैं। यह कहा जा सकता है कि उपन्यास में दर्शाया गया है कि कैसे शिक्षित आनंदी (बड़ी बहू/जेठानी) परिवार को कुशलतापूर्वक संभालती है, जबकि अशिक्षित छोटी बहू (देवरानी) कलह और मूर्खता का कारण बनती है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास केवल किताबी ज्ञान पर ही नहीं, बल्कि महिलाओं को नैतिक आचरण और व्यावहारिक सामाजिक और पारिवारिक ज्ञान जैसे कौशल सिखाने के महत्व पर भी बल देता है।

इस उपन्यास का विषय बार-बार दोहराया जाता है फिर भी इसकी विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि यह कभी भी जबरदस्ती का नहीं लगता। डेढ़ शताब्दी पहले के संक्रमणकालीन भारत की संस्कृति को समझने का ष्देवरानी जेठानी की कहानीष् से बेहतर कोई तरीका नहीं है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि इस उपन्यास का विषय इतना सामाजिक है कि यह उस समय के पूरे समाज से गहराई से जुड़ा हुआ है की जैसे कि बाल-विवाह, विवाह के अत्यधिक खर्चे, महिलाओं का आभूषणों के प्रति प्रेम, परिवार विभाजन, परिवार में बुजुर्गों और बहुओं की पारिवारिक समस्याएं, शिक्षा और महिलाओं की शिक्षा। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास स्पष्ट और सत्यपूर्ण प्रस्तुति देने में कभी असफल नहीं होता है। लोककथाओं से ओतप्रोत इस उपन्यास की भाषा इतनी जीवंत है कि आज भी लेखकों को प्रेरित करती है। इस उपन्यास की दृष्टि इतनी गहरी है कि यह हिंदी भाषी क्षेत्र में पुनर्जागरण के समय की पारिवारिक समस्याओं को दिखाता है।

निष्कर्ष:

यह कहा जा सकता है कि पंडित गौरीदत्त का यह उपन्यास महज मनोरंजन के लिए नहीं लिखा गया था, बल्कि समाज में महिलाओं की शिक्षा की नींव रखने के लिए लिखा गया था। यह एक ऐसा दस्तावेज है जिसने हिंदी साहित्य में महिलाओं के विमर्श की शुरुआत की और सामाजिक सुधार का मार्ग प्रशस्त किया। 'देवरानी-जेठानी की कहानी' हिंदी साहित्य में एक क्रांतिकारी शुरुआत थी, जिसने उपन्यास विधा को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है। यह कहा जा सकता है कि यह उपन्यास न केवल महिलाओं की शिक्षा की वकालत करती है, बल्कि यह भी प्रकाश डालता है कि एक शिक्षित भारतीय हिंदू महिला परिवार और समाज में सकारात्मक बदलाव कैसे ला सकती है। यह देखा जा सकता है कि यह 19वीं सदी के भारतीय हिंदू समाज को समझने के लिए यह उपन्यास एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह उपन्यास महिलाओं की शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालता है। यह उपन्यास हमें बताता है कि कैसे एक शिक्षित व्यक्ति सबके साथ तर्कसंगत तरीके से व्यवहार करता है, जबकि दूसरी ओर एक निरक्षर व्यक्ति का व्यवहार हमेशा गलत धारणाओं और मिथकों पर आधारित होता है।

संदर्भ सूची:

1. मनोज कुमार आर्या. ष्कुमाऊँनी भाषा का साहित्य की ओर बढ़ते कदमश.ष अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका,13.1,2025,पृष्ठ-44-56.
2. गोपाल राय, ष्देवरानी जेठानी की कहानीष, ग्रन्थ निकेतन,1966,दिल्ली ष
3. स्मिता गंडोत्रा और उलरीके स्टार्क, देवरानी जेठानी की कहानी या दो भाभियों की कहानी, रत्न सागर, 2023, पृष्ठ-110-178.

संदर्भग्रंथ सूची:

डालमिया, वसुधा, ष्व्यापारी कथाएँ और हिंदी में उपन्यास का उदयष, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक पत्रिका,(2008): पृष्ठ-43-60.

त्रिवेदी, हरीश, ष्अंग्रेजी में प्रेमचंद: एक अनुवाद, दो मूल रचनाएँष, विश्व भाषाओं में प्रेमचंद, रूटलेज इंडिया प्रकाशक, 2016, पृष्ठ-15-39.

मुखर्जी, मीनाक्षी, ष्भारत में उपन्यास और समाजष, यथार्थवाद और वास्तविकता, ऑक्सफोर्ड प्रकाशक,1992.

लोक संस्कृति में संगीत की भूमिका

डॉ० हेमलता कुमारी

संगीत शिक्षिका, +2 राम श्रृंगारी कन्या उच्च विद्यालय, कमतौल, दरभंगा

सारांश

लोक संस्कृति जनसामान्य की वह सहज, पारंपरिक जीवन शैली है जो पीढ़ियों से चली आ रही मान्यताओं, रीति-रिवाजों, लोकगीतों, नृत्यों और कलाओं से निर्मित होती है। यह अभिजात्य संस्कृति से भिन्न, ग्रामीण परिवेश से जुड़ी और मौखिक परंपराओं पर आधारित होती है, जो समुदाय की विशिष्ट पहचान दर्शाती है।

संगीत ने समाज को आकार देने और प्रतिबिंबित करने में हमेशा से ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह सीमाओं को पार कर सकता है, लोगों को एकजुट कर सकता है और भावनाओं, विचारों और सांस्कृतिक मूल्यों को व्यक्त करने का एक शक्तिशाली माध्यम बन सकता है।

भारतीय सांस्कृतिक धरोहर में लोकसंगीत का अतितीय स्थान है, जो स्मृति, भाषा, और सांस्कृतिक एकता के सबसे महत्वपूर्ण स्त्रोतों में से एक है। लोकसंगीत न केवल संगीतक अनुष्ठान का हिस्सा है, बल्कि यह एक समुदाय की अनुभूति, आत्मा और विचारों का परिचायक भी है। लोकसंगीत एक सामूहिक अनुभव का स्त्रोत है जो सांस्कृतिक एकता को समृद्धि से जोड़ता है। लोकसंगीत भाषा को सांस्कृतिक रूप से संरचित करता है और यह सामूहिक बनावट को बढावा देता है। इसके अलावा, लोकसंगीत के विभिन्न प्रकार और उनके सांस्कृतिक परिचय से संस्कृति को बढ़ावा मिलता है। लोकसंगीत के सांस्कृतिक महत्व को समझने से, इसकी समृद्धि और संरक्षण में समाज को सहारा प्रदान किया जा सकता है। इस शोध लेख में, हम लोकसंस्कृति पर संगीत के महत्त्व का विश्लेषण करेंगे।

मूल शब्दः लोक संस्कृति, लोकसंगीत, सांस्कृतिक महत्व, भाषा, सामूहिक एकता, सांस्कृतिक विरासत, भारतीय समृद्धि

प्रस्तावना

किसी क्षेत्र विशेष में निवास करने वाले लोगों के पारस्परिक धर्म त्योहार, पर्व, रीति-रिवाज, मान्यताओं, कला आदि को लोक संस्कृति का नाम दिया जाता है। लोक संस्कृति किसी क्षेत्र विशेष को अन्य क्षेत्रों से स्वतन्त्र पहचान प्रदान करती है। वर्तमान में यदि हम हरियाणा, राजस्थान, केरल, तमिलनाडु, उड़ीसा इत्यादि प्रान्तों का स्मरण करते हैं, तो उनकी लोक संस्कृति के आधार पर।

मानव मन की बाह्य प्रवृत्ति-मूलक प्रेरणाओं से जो कुछ विकास हुआ है उसे सभ्यता कहा जाता है और उसकी अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों से जो कुछ बना है, उसे संस्कृति कहेंगे।[1]

लोक का अभिप्राय सर्वसाधारण जनता से है, जिसकी व्यक्तिगत पहचान न होकर सामूहिक पहचान है। दीन-हीन, शोषित, दलित, जंगली जातियाँ, खस, पुक्कस आदि समस्त लोक समुदाय का मिलाजुला रूप 'लोक' कहलाता है। इन सबकी मिलीजुली संस्कृति, लोक संस्कृति कहलाती है। देखने में इन सबका अलग-अलग रहन-सहन है, वेशभूषा, खान-पान, पहरावा-ओढ़ावा, चाल-व्यवहार, नृत्य, गीत, कला-कौशल, भाषा आदि, परन्तु लोक संस्कृति ही एक ऐसा सूत्र है जिसमें ये सब एक माला में पिरोई हुई मणियों की भाँति दिखाई देते हैं। लोक संस्कृति कभी भी शिष्ट समाज की आश्रित नहीं रही है, उलटे शिष्ट समाज लोक संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करता रहा है।

लोक संस्कृति का एक रूप हमें भावाभिव्यक्तियों की शैली में भी मिलता है, जिसके द्वारा लोक-मानस की मांगलिक भावना से ओत प्रोत होना सिद्ध होता है। वह 'दीपक के बुझने' की कल्पना से सिहर उठता है। इसलिए वह 'दीपक बुझाने' की बात नहीं करता 'दीपक बढ़ाने' को कहता है। इसी प्रकार 'दूकान बन्द होने' की कल्पना से सहम जाता है। इसलिए 'दूकान बढ़ाने' को कहता है।[2]

लोक जीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमयी अभिव्यंजना का चित्रण लोक गीतों व लोक कथाओं में मिलता है, वैसा अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। लोक साहित्य में लोक मानव का हृदय बोलता है। प्रकृति स्वयं गाती गुनगुनाती है। लोक जीवन में पग-पग पर लोक संस्कृति के दर्शन होते हैं। लोक साहित्य उतना ही पुराना है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है।

लोकसंस्कृति पर विभिन्न विद्वानों यथा डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. सत्येन्द्र आदि ने भी लिखा है, जिसका साथ यह है कि लोकसंस्कृति वह संस्कृति है, जो अनुभव, श्रुति और परम्परा से चलती है। इसके ज्ञान का आधार पोथी नहीं होती।[3]

- मूल आधारः लोक संस्कृति जड़-चेतन, पशु-पक्षी, और ग्रामीण जनजीवन के स्वाभाविक और सरल विश्वासों में रची-बसी होती है।

- मौखिक परंपरा: इसका प्रसाथ और हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप से, लोकगीतों, कथाओं और लोकनाट्यों के माध्यम से होता है।
- विविधता और स्थानीयता: यह क्षेत्र विशेष के परिवेश से गहराई से जुड़ी होती है, इसलिए स्थानीयता के आधार पर बदलती रहती है।
- लोक साहित्य: लोक साहित्य (गीत, कथा, कहावतें) लोक संस्कृति का प्रतिबिंब है, जो रीति-रिवाज, आस्था और विश्वासों को उजागर करता है।
- कला और वेशभूषा: इसमें स्थानीय शिल्प, पारंपरिक पहनावा, खानपान और लोक नृत्य जैसे तत्वों का समावेश होता है।
- सजीव परंपरा: यह पुरानी परंपराओं का सम्मान करती है, लेकिन समय के साथ इसमें धीरे-धीरे बदलाव भी आते हैं।

लोक संस्कृति के संरक्षक, प्रतिष्ठापक ये ग्रामीण, परमहंस अथवा अबोध बालक की भाँति स्वयं अपने को कुछ भी नहीं समझा करते। इनके मर्म और वास्तविक स्वरूप को अध्ययन-मननशील विद्वान ही समझते हैं। भारतीय लोक संस्कृति की आत्मा भारतीय साधारण जनता है जो नगरों से दूर गाँवों, वन-प्रांतों में निवास करती है।[4]

लोक संस्कृति के विविध आयाम

भारतीय लोक संस्कृति श्रमशील समाज की संवेदनात्मक आवेगों की अभिव्यक्ति रही है। धरती के हर हिस्से के मूल निवसियों ने अपनी लोक संस्कृति की रक्षा की है। लोक संस्कृति प्रकृति की गोद में पनपती है। लोक संस्कृति के उपासक या संरक्षक बाहर की पुस्तकें न पढ़कर अन्दर की पुस्तकें पढ़ते हैं। लोक संस्कृति की शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा-भक्ति की प्राथमिकता रहती है। उसमें अविश्वास, तर्क का कोई स्थान नहीं रहता। लोक संस्कृति में श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है, वह अन्त: सलिला सरस्वती की भाँति जनजीवन में सतत प्रवाहित हुआ करती है। लोक संस्कृति एवं लोकोत्तर संस्कृति तथा विश्व की सभी संस्कृतियों का बीज एक ही है। यह बीज लोक संस्कृति ही है।

लोक संस्कृति बहुत व्यापक है, वहाँ वह सब कुछ है जो लोक में है, लोक से हटकर जब हम उसकी व्याख्या करने लगते हैं तो उसकी तमाम बातें अश्लील लग सकती हैं, जैसे गालियाँ। परन्तु ये गालियाँ लोक में प्रचलित हैं और दैनिक जीवन में इनका भरपूर प्रयोग भी देखा जा सकता है। कोई गाँव, कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ गालियाँ नहीं प्रयुक्त होती। लोक जीवन में इनका भी महत्व है, मन की ग्रंथि खुल कर साफ हो जाती है। लोक को समझना इतना आसान भी नहीं है, लोक परम्परा और लोक संस्कृति में भी बड़ा अन्तर है, परम्पराओं में से अच्छी अच्छी बातें निकल-निकल कर कालांतर में लोक संस्कृति बनती रहती है, लोक संस्कृति अन्तस में रची बसी होती है। गालियाँ और अपशब्द लोक संस्कृति के अन्तर्गत नहीं लोक परम्परा में आते हैं।..... लोक संस्कृति नष्ट नहीं होती। परम्पराएँ बनती बिगड़ती रहती हैं।.... लोक संस्कृति में कुछ भी अश्लील नहीं है लेकिन लोक परम्परा में, लोक जीवन में अश्लीलता देखी जा सकती है। लोक में जो कुछ है वह सब का सब लोक संस्कृति नहीं है। टोना और टोटका लोक जीवन के अंग हैं। लोक जीवन में इनका प्रयोग खूब होता है।

लोक संस्कृति, समाज को जोड़े रखने, मूल्यों को संरक्षित करने और रचनात्मकता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो आधुनिकता और शहरीकरण के बीच भी अपनी पहचान बनाए रखती है।[5]

लोक जीवन में संगीत का महत्त्व

हम लोगों के जीवन में दो स्पष्ट धाराएँ हैं - एक है आनंद की धारा, दूसरी है कर्म की धारा। इन्हीं दो धाराओं के कारण जीवन में कभी शुष्कता, शिथिलता और विरक्ति नहीं आती। बाह्य स्थिति प्रतिकूल होने पर भी हम अपने अंतर्जगत् से प्रेरणा पाते हैं और अंतर्जगत् में भावों की आँधी आने पर हम बहिर्जगत् में स्फूर्ति पाते हैं। कर्म की व्यग्रता में हम भाव की प्रबलता को विलीन कर देते हैं और भावों के सुकोमल स्फुरण में हम अपने कार्य भार की चिंता को भूल जाते हैं।

संसाथ में दो ही तो विषय हैं-पहला विज्ञान, दूसरा कला। विज्ञान से हम सत्य को जानते हैं। कला से हम आनंद उपलब्ध करते हैं। आनंद हमारे मन की वस्तु है। इसीलिए कला हमारे मन की रचना है। कुछ कलाएँ ऐसी होती हैं जो हमारी सांसारिक आवश्यकताओं और अभावों की पूर्ति करती हैं। सीना-पिरोना, भोजन बनाना, हाथों से तरह-तरह की चीजें तैयार करना-ये सभी कलाएँ हैं। पर ललित कलाएँ वे हैं; जिनसे हमें विशुद्ध आनंद की प्राप्ति होती है। जो सच्चा आनंद है, वह सबके लिए सुलभ है, उस पर बड़े और छोटे सभी का अधिकार रहता है। प्रकृति-सौंदर्य को देखकर सभी लोग आनंद उठा सकते हैं। चित्रों और मूर्तियों की सुंदरता से सभी को प्रसन्नता होती है। नृत्य और संगीत के द्वारा भी सभी को आनंद मिलता है।[6]

इन कलाओं में ऊँच-नीच का भेद नहीं है, छोटे-बड़े का विचार नहीं है। इसी से इन ललितकलाओं के द्वारा हमारी कोई सांसारिक आवश्यकता दूर नहीं हो तो उनसे केवल हमारे मन की, हमारे भीतर की आवश्यकता ही दूर होती है। धन और ऐश्वर्य से हमें सुख

मिल सकते हैं, पर ललित कलाओं से हमें आनंद मिलता है। इनमें भी संगीत-कला सर्वश्रेष्ठ है। सभी अवस्थाओं में हमें संगीत की जरूरत होती है। पूजा में भक्ति प्रकट करने के लिए, उत्सव में उमंग प्रकट करने के लिए और दु:ख दूर करने के लिए संगीत से बढ़कर कोई दूसरा उपाय नहीं है। अकेले रहने पर उससे जैसा मन बहलता है, समाज में रहने पर उससे वैसा ही मनोविनोद होता है। यह सुख और दु:ख दोनों में साथ देता है और यह धनी और दरिद्र दोनों का सहचर है। स्त्रियों का तो इस कला पर जन्मसिद्ध अधिकार है। भगवान ने संगीत की शक्ति स्त्री जाति को दे दी है। तभी तो सरस्वती देवी के हाथ में वीणा है। संगीत ही एक ऐसी कला है, जिसकी रसानुभूति के लिए विशेषता की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी सहृदयता की। इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य ने जिस प्रकार ज्ञान के द्वारा प्रकृति की शक्तियों को स्वायत्त किया है, उसी प्रकार अपनी आनंदमयी भाव प्रवृत्ति से उसने सौंदर्य विभूति को अपनाया है।[7]

मनुष्य के शरीर में जिस तरह मस्तिष्क ज्ञान का स्थान मान लिया गया है, उसी तरह हृदय भी भावों का आगार मान लिया गया है। ज्ञान के क्षेत्र में व्यस्त वैज्ञानिक में जैसे तर्क और चिंतनशीलता है, उसी प्रकार भाव के क्षेत्र में संलग्न कलाकार में कल्पना और सहृदयता है। ज्ञान की उन्नति और भावों के विकास में एक बड़ा भेद है। प्राचीन काल में ज्ञान का जो क्षेत्र था, उससे कहीं अधिक विस्तृत आधुनिक ज्ञान का क्षेत्र है।

परंतु यही बात भाव के संबंध में नहीं कही जा सकती। प्राचीन काल में मानवीय भावों का जो विस्तार था, वही विस्तार अभी तक विद्यमान है। विकास केवल उसकी अभिव्यक्ति में हुआ है। बात यह है कि सभी अवस्थाओं में मनुष्य अपने भावों को ही लेकर जीवित रहता है। भाव मनुष्य की अपनी वस्तु है। जो कुछ हम देखते, सुनते और जानते हैं, वही जब हर्ष और विषाद, विस्मय और आतंक, भक्ति और श्रद्धा आदि भावों का रूप ग्रहण कर हमारे जीवन में लीन हो जाता है। तभी उसे हम अपना कहते हैं और तभी वह रस के रूप में परिणत होकर आनंद की सृष्टि करता है। संसाथ में जितने प्राणी हैं, उन सब में हर्ष और विषाद का न्यूनाधिक अंश रहता। पर मनुष्य ही उसे अधिक स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकता है। इसी से ये सब कला में परिवर्तित हो जाते हैं।[8]

प्रकृति के साहचर्य से ही मनुष्य ने संगीत की कला प्राप्त की है। प्रकृति स्वयं संगीतमयी है। उसमें स्वयं संगीत की मधुरता है। भिन्न-भिन्न ऋतुओं में स्वर-लालित्य के साथ भाव-माधुर्य है। यही नहीं, दिवस के भिन्न-भिन्न समयों में प्रकृति का संगीत-वैचित्र्य है। यदि प्रकृति में वैचित्र्य और चिरनवीनता का भाव न रहता, तो संगीत की उत्पत्ति ही न होती। इन सबको अपने मानसिक जगत में लाकर प्रकृति ने भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के अनुकूल अपने भिन्न-भिन्न आनंदों की अनुभूतियों को संगीत के द्वारा व्यक्त किया है।

संगीत के तीन स्पष्ट भेद किए जा सकते हैं- शब्द-संगीत, स्वर संगीत और गति संगीत। प्रकृति के अपूर्व से वशीभूत मनुष्य ने अपने प्रसन्नता-सूचक भाव को मन से, वाणी से और अंग-संचालन से प्रकट किया। उसका भावावेश वाणी में प्रकट हुआ और गति में भी। वाणी में भाषा के शब्दों में ही भाव साकार होते हैं। इसी से काव्यों में शब्द-संगीत की रचना होती है, गानों में स्वर-संगीत की सृष्टि होती है और नृत्य में गति-संगीत की अभिव्यक्ति होती है। तीनों के मूल प्रकृति में ही हैं। वृक्षों की मर्मर-ध्वनि, पक्षियों के कलरव तथा अन्य पशुओं के स्वर-वैचित्र्य में जो माधुर्य है, उसी के आधार पर मनुष्य ने अपनी भाषा में माधुर्य ला दिया है। वह काव्यों में प्रत्यक्ष होता है; कंठों में जो स्वर-लालित्य ला दिया, वह गान में उद्‌भूत होता है और जड़ पदार्थ में जो ध्वनि की मृदुता है, उसी को वह अपने हस्त कौशल से वाद्य-यंत्रों में प्रकट करता है। भावों की उत्पत्ति होने पर शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा जो अनुभव प्रकट होते हैं, उन्हीं से गीत-संगीत का निर्माण हुआ है।[9]

यह तो स्पष्ट है कि प्रकृति के साथ मनुष्य का जो साहचर्य है, उसी से संगीत का उद्‌भव होता है। प्रकृति में जो परिवर्तनशीलता है, वही मनुष्य के मानसिक जगत् में भी है। इधर प्रकृति में वसंत का आगमन हुआ, उधर मनुष्य में मृदु भावों का संचार हुआ। मलय समीर की चंचल गति मन को अस्थिर कर देती है। शरीर में आप-से-आप स्फूर्ति आ जाती है, आप से आप अंग फड़कने लगते हैं, आप से आप हम भौरों की तरह गुनगुनाने लगते हैं।

लोक संस्कृति में संगीत की मुख्य भूमिकाएं इस प्रकार हैं:

- सांस्कृतिक पहचान और विरासत का संरक्षण: लोक गीत और संगीत किसी विशेष क्षेत्र या समुदाय की पहचान होते हैं, जो परंपराओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाते हैं।
- भावनात्मक और सामाजिक अभिव्यक्ति: जन्म, विवाह, मृत्यु और त्यौहार जैसे जीवन के महत्वपूर्ण अवसरों पर लोकसंगीत खुशी या दुख की भावनाओं को व्यक्त करता है।
- सामुदायिक एकता: सामूहिक रूप से गाए जाने वाले गीत लोगों को जोड़ते हैं और सामुदायिक भावनाओं को मजबूत करते हैं।
- कृषि और दैनिक जीवन से जुड़ाव: भारत में, लोकसंगीत प्रकृति और कृषि चक्र से गहराई से जुड़ा हुआ है (जैसे- कजरी, सोहर)।

- ऐतिहासिक और पारंपरिक कथावाचन: लोक गीतों के माध्यम से स्थानीय इतिहास, वीर गाथाओं (जैसे- आल्हा) और पौराणिक कथाओं को याद रखा जाता है।
- मनोरंजन का साधन: शास्त्रीय संगीत के विपरीत, लोकसंगीत बिना किसी औपचारिक प्रशिक्षण के आम लोगों द्वारा गाया जाता है, जो मनोरंजन का एक सहज माध्यम है।

भारतीय लोकसंगीत के उदाहरणों में असम का बिहू, महाराष्ट्र की लावणी, बंगाल के बाउल, और कश्मीर का चकरी शामिल हैं।[10]

लोक संस्कृति में संगीत

संगीत सदियों से मानव संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। यह समाज को प्रतिबिंबित करता है, विभिन्न युगों, क्षेत्रों और समुदायों के साथ को समाहित करता है। पारंपरिक लोकगीतों से लेकर समकालीन शैलियों तक, संगीत किसी विशेष संस्कृति की कहानियों, मान्यताओं और मूल्यों को अपने साथ समेटे रखता है।[11]

संगीत में सांस्कृतिक विविधता

संगीत का एक उल्लेखनीय पहलू सांस्कृतिक विविधता का सम्मान करने और उसे संरक्षित करने की इसकी क्षमता है। विभिन्न क्षेत्रों और देशों की अपनी अनूठी संगीत परंपराएं, वाद्ययंत्र और लय हैं। लोग विभिन्न संगीत शैलियों का अन्वेषण करके विभिन्न संस्कृतियों और उनकी विरासत की गहरी समझ प्राप्त करते हैं।[12]

सामाजिक टिप्पणी के माध्यम के रूप में संगीत

इतिहास भर में, संगीतकारों ने अपनी कला को सामाजिक अभिव्यक्ति के मंच के रूप में इस्तेमाल किया है। नागरिक अधिकार आंदोलन के दौरान गाए गए विरोध गीतों से लेकर राजनीतिक रूप से प्रेरित रैप गीतों तक, संगीत अक्सर जागरूकता बढ़ाने और बदलाव लाने का एक सशक्त माध्यम रहा है। यह समय के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक मुद्दों को प्रतिबिंबित करता है और हाशिए पर पड़े समुदायों को अपनी बात रखने का अवसर प्रदान करता है।[13]

संगीत का फैशन और रुझानों पर प्रभाव

संगीत और फैशन एक दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं और एक दूसरे को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। कलाकार और उनका संगीत अक्सर पहनावे, हेयर स्टाइल और समग्र सौंदर्यशास्त्र में नए चलन स्थापित करते हैं।[14]

उत्सवों और अनुष्ठानों में संगीत की भूमिका

संगीत विभिन्न संस्कृतियों में उत्सवों और अनुष्ठानों का अभिन्न अंग है। चाहे वह विवाह जुलूस की ऊर्जावान धुन हो, धार्मिक समारोह की गंभीर संगीतमय धुन हो, या सांस्कृतिक उत्सवों की जीवंत लय हो, संगीत समग्र अनुभव को बढ़ाता है और सामुदायिक बंधनों को मजबूत करता है।[15]

निष्कर्ष

सुबह के रागों की शांत धुनों से लेकर बॉलीवुड की जोशीली धुनों तक, भारत में संगीत सिर्फ मनोरंजन नहीं हैख़यह एक सांस्कृतिक पहचान, आध्यात्मिक यात्रा और भावनात्मक अनुभव है।

लोक संस्कृति में संगीत (लोक संगीत) जीवन के हर पहलू को जीवंत करने, सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने, और सामुदायिक एकता को मजबूत करने का एक अनिवार्य माध्यम है। यह जन्म, विवाह, त्योहारों और कृषि कार्यों जैसे अवसरों पर खुशी और भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति है। यह पीढ़ियों से चली आ रही मौखिक परंपराओं, क्षेत्रीय भाषाओं और स्थानीय कथाओं का संवाहक है।

लोक संगीत का भाषा संरचना पर अद्वितीय प्रभाव होता है जो भाषा को समृद्धि, सांस्कृतिकता, और विभिन्नता की दिशा में मोड़ने में मदद करता है। इसके माध्यम से भाषा को सामूहिक एवं सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा बनाया जाता है, जिससे लोग अपनी भाषा, सांस्कृतिक पहचान और सामूहिक सम्बन्ध में गर्व महसूस करते हैं।

सांस्कृतिक विरासत का समृद्धि और संरक्षण में योगदान एक समुदाय को सहारा प्रदान करता है, जिससे वह अपनी प्राचीनता, सांस्कृतिक पहचान, और सामूहिक एकता को सुरक्षित रख सकता है। लोक संगीत का योगदान समृद्धि में और सांस्कृतिक संरक्षण में अत्यधिक महत्वपूर्ण है, जिससे समुदाय को आत्म-प्रमोदी बनाए रखने में मदद मिलती है।

सन्दर्भ

1. गिरिजा - यतीन्द्रनाथ मिश्र प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, 2016 आईएसबीएन: 978-93-5072-484
2. भारतीय संगीत का इतिहास- ठाकुर जयदेव सिंह संगीत रिसर्च अकादमी, कोलकाता, 1994
3. कुमार, राजीव. (2008). 'लोक संगीत: सांस्कृतिक परांपरा और भूमिका.' लोक संगीत और साहित्य, 32(2), 45-58.
4. शर्मा, नीता. (2015). 'लोक संगीत का सांस्कृतिक महत्व.' भारतीय सांस्कृतिक अनुसंधान, 18(4), 112-127.
5. पाठक, सुरेन्द्र. (2012). 'लोक संगीत की विशेषता और भारतीय सांस्कृतिक विरासत में योगदान.' लोक संगीत और साहित्य, 36(1), 78-92.
6. गुप्ता, सुनील. (2009). 'लोक संगीत के रूप और संरचना: एक विश्लेषण.' लोक संगीत और कला, 21(4), 56-68.
7. त्रिपाठी, मनोज. (2014). 'भारतीय लोक संगीत में राजनीति और सामाजिक सांस्कृतिकता.' राजनीतिक सांस्कृतिक अनुसंधान, 17(1), 89-104.
8. यादव, आरती. (2016). 'लोक संगीत और भाषा: एक सन्दर्भ में.' भाषा और साहित्य समीक्षा, 29(3), 134-148.
9. सिंह, प्रदीप. (2011). 'लोक संगीत का सांस्कृतिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य.' भारतीय सांस्कृतिक अनुसंधान, 14(2), 45-60.
10. राजपूत, राजेश. (2018). ष्लोक संगीत और आत्म-निर्भरता: एक सांस्कृतिक विश्लेषणष् सांस्कृतिक स्थानीयता, 30(1), 78-91.
11. महेश्वरी, अनीता. (2013). 'लोक संगीत का समाजशास्त्रीय अध्ययन: भारतीय समाज के साथ एक मुकाबला.' समाजशास्त्र अनुसंधान, 26(3), 201-215.
12. गोस्वामी, सुनील. (2006). 'लोक संगीत: एक सांस्कृतिक अन्वेषण.' अध्ययन प्रकाशन.
13. राठौड़, अनुराग. (2019). 'भारतीय लोक संगीत: संगीत और सांस्कृतिकता का अध्ययन.' जयपुर: राजस्थान साहित्य अकादमी.
14. शुक्ला. (2009). 'लोक संगीत और भारतीय साहित्य: एक सांस्कृतिक अध्ययन.' कोलकाता: सुनील पब्लिकेशन्स.

कृषि जानकारी के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका

विघनेश्वर सिंह

प्रस्तावना - भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ आज भी एक बड़ी आबादी अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। समय के साथ कृषि क्षेत्र में अनेक परिवर्तन हुए हैं-परंपरागत खेती से लेकर आधुनिक तकनीकों के उपयोग तक। इन परिवर्तनों में सूचना और संचार तकनीक (ICT) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। विशेष रूप से सोशल मीडिया ने सूचना के आदान-प्रदान के तरीके को पूरी तरह बदल दिया है। आज के डिजिटल युग में सोशल मीडिया केवल मनोरंजन या व्यक्तिगत संचार का माध्यम नहीं रह गया है, बल्कि यह ज्ञान, सूचना और नवाचार के प्रसार का एक सशक्त साधन बन गया है। कृषि क्षेत्र में भी सोशल मीडिया का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है, जिससे किसानों को नई जानकारी, तकनीक और बाजार से जुड़ी सूचनाएँ आसानी से उपलब्ध हो रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और स्मार्टफोन की बढ़ती पहुँच ने किसानों को डिजिटल प्लेटफॉर्म से जोड़ने का कार्य किया है। पहले जहाँ किसानों को कृषि संबंधी जानकारी के लिए पारंपरिक माध्यमों जैसे कृषि विस्तार अधिकारियों, रेडियो, टेलीविजन या अखबारों पर निर्भर रहना पड़ता था, वहीं अब सोशल मीडिया के माध्यम से वे तुरंत और विविध स्रोतों से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। फेसबुक, व्हाट्सएप, यूट्यूब और ट्विटर जैसे प्लेटफॉर्म किसानों के बीच तेजी से लोकप्रिय हो रहे हैं। इन माध्यमों पर कृषि विशेषज्ञ, वैज्ञानिक, सरकारी संस्थान और अन्य किसान अपने अनुभव, सुझाव और नवीन तकनीकों की जानकारी साझा करते हैं, जिससे ज्ञान का आदान-प्रदान अधिक सुलभ और प्रभावी हो गया है।

सोशल मीडिया की सबसे बड़ी विशेषता इसकी त्वरित और व्यापक पहुँच है। इसके माध्यम से कृषि से संबंधित जानकारी जैसे मौसम पूर्वानुमान, उन्नत बीजों का चयन, उर्वरकों का उचित उपयोग, कीट एवं रोग नियंत्रण, सिंचाई तकनीक, और बाजार मूल्य आदि तुरंत प्राप्त किए जा सकते हैं। इससे किसानों को समय पर सही निर्णय लेने में सहायता मिलती है, जिससे उनकी उत्पादकता और आय में वृद्धि हो सकती है। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया किसानों को एक ऐसा मंच प्रदान करता है जहाँ वे अपनी समस्याओं को साझा कर सकते हैं और विशेषज्ञों या अन्य अनुभवी किसानों से समाधान प्राप्त कर सकते हैं। सोशल मीडिया के उपयोग के साथ कुछ चुनौतियाँ भी जुड़ी हुई हैं। सभी किसानों के पास समान रूप से डिजिटल साक्षरता नहीं होती, जिसके कारण वे उपलब्ध जानकारी का सही उपयोग नहीं कर पाते। इसके अलावा, सोशल मीडिया पर गलत या भ्रामक जानकारी का प्रसार भी एक गंभीर समस्या है, जो किसानों के निर्णयों को प्रभावित कर सकती है। इसलिए यह आवश्यक है कि किसानों को सोशल मीडिया के सही और प्रभावी उपयोग के बारे में जागरूक किया जाए और उन्हें विश्वसनीय स्रोतों की पहचान करने की क्षमता प्रदान की जाए।

वर्तमान समय में जब डिजिटल क्रांति तेजी से आगे बढ़ रही है, तब कृषि क्षेत्र में सोशल मीडिया की भूमिका को समझना अत्यंत आवश्यक हो गया है। यह न केवल किसानों को सशक्त बनाने का माध्यम है, बल्कि यह कृषि विकास और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। यदि सोशल मीडिया का उपयोग सही दिशा में किया जाए, तो यह किसानों के लिए एक प्रभावी उपकरण सिद्ध हो सकता है, जो उन्हें आधुनिक कृषि की ओर अग्रसर करने में सहायक होगा।

अत: यह शोध सोशल मीडिया के माध्यम से कृषि जानकारी के प्रसार की प्रक्रिया, उसकी प्रभावशीलता और उससे जुड़े अवसरों एवं चुनौतियों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास करेगा। यह अध्ययन नीति निर्माताओं, कृषि विशेषज्ञों और विस्तार सेवाओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है, ताकि वे किसानों तक सही और समयबद्ध जानकारी पहुँचाने के लिए सोशल मीडिया का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग कर सकें।

सूचक शब्द - सोशल मीडिया, कृषि जानकारी, किसान साक्षरता, डिजिटल तकनीक, सूचना प्रसार-उत्पादन प्रभाव, गलत जानकारी।

सारांश -

सोशल मीडिया का प्रभाव अब केवल शहरी क्षेत्रों तक सीमित नहीं है, बल्कि ग्रामीण और कृषि क्षेत्र में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा है। कृषि, जो भारत की अर्थव्यवस्था का आधार है, उसमें सूचना की समय पर उपलब्धता अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। ऐसे में सोशल मीडिया किसानों के लिए एक प्रभावी माध्यम के रूप में उभरकर सामने आया है, जो उन्हें नवीनतम कृषि संबंधी जानकारी तक त्वरित पहुँच प्रदान करता है। यह अध्ययन कृषि जानकारी के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका को समझने पर केंद्रित है। इसके अंतर्गत किसानों के बीच सोशल मीडिया के उपयोग की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण किया गया है। आज के समय में किसान विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग कर रहे हैं, जहाँ वे खेती से जुड़ी समस्याओं का समाधान खोजते हैं, नई तकनीकों के बारे में

सीखते हैं और अन्य किसानों के अनुभवों से लाभ उठाते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण सूचना स्रोत बनता जा रहा है। अध्ययन का दूसरा प्रमुख पक्ष यह है कि सोशल मीडिया कृषि संबंधी जानकारी के प्रसार में किस प्रकार सहायक है। इसके माध्यम से मौसम पूर्वानुमान, उन्नत बीज, उर्वरक प्रबंधन, कीट नियंत्रण और आधुनिक कृषि तकनीकों की जानकारी तेजी से किसानों तक पहुँच रही है। यह माध्यम पारंपरिक सूचना तंत्र की सीमाओं को कम करते हुए अधिक संवादात्मक और सहभागी प्रणाली को बढ़ावा देता है। तीसरे उद्देश्य के तहत यह विश्लेषण किया गया है कि सोशल मीडिया किसानों के निर्णय लेने की प्रक्रिया और कृषि उत्पादन पर किस प्रकार प्रभाव डालता है। सोशल मीडिया से प्राप्त जानकारी के आधार पर किसान अपनी फसल का चयन, उत्पादन तकनीक और बाजार में बिक्री से जुड़े निर्णय अधिक सोच-समझकर लेने लगे हैं। इससे उनकी उत्पादकता और आय में सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिल सकता है। इस प्रक्रिया में कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे गलत या अप्रमाणित जानकारी का प्रसार और डिजिटल साक्षरता की कमी। इन समस्याओं के समाधान के लिए उचित मार्गदर्शन और जागरूकता आवश्यक है।

यह अध्ययन दर्शाता है कि सोशल मीडिया कृषि क्षेत्र में सूचना के प्रभावी प्रसार और किसानों के सशक्तिकरण का एक महत्वपूर्ण साधन बन सकता है, बशर्ते इसका उपयोग सही दिशा में और सावधानीपूर्वक किया जाए।

साहित्य समीक्षा -

Sandhu H-S , Singh G and Grover J(2012) किसान मोबाइल सलाहकार सेवा (केएमएस) कृषि संबंधी जानकारी भेजने के लिए शुरू की गई थी। यह सेवा लघु संदेश सेवा (एसएमएस) के माध्यम से भेजी जाती है। संदेश का विषय-वस्तु पंजाबी भाषा में टाइप किया गया था, लेकिन अंग्रेजी अक्षरों का उपयोग करते हुए, फसलों की कृषि विज्ञान, कीट नियंत्रण, बागवानी, दुग्ध उत्पादन और मौसम पूर्वानुमान आदि से संबंधित जानकारी अंतिम उपयोगकर्ताओं को भेजी गई। केएमएस के बारे में किसानों की प्रतिक्रिया जानने के लिए 150 किसानों का यादृच्छिक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के परिणामों से पता चला कि अधिकांश किसानों ने मोबाइल फोन के माध्यम से एसएमएस के रूप में प्राप्त कृषि संबंधी जानकारी को उपयोगी (69.3%), समझने योग्य (74.7%) और समय पर (64.7%) पाया। केएमएस के लिए पंजीकृत लगभग 15 प्रतिशत किसानों ने इस सेवा का उपयोग नहीं किया। लगभग 9 प्रतिशत उपयोगकर्ता भाषा की बाधा के कारण एसएमएस को समझ नहीं पाए। 12.7 प्रतिशत किसानों ने संदेश की अत्यधिक लंबाई के कारण लाभार्थी की अरुचि की सूचना दी।

Khan, S. Md., Rahman, H. M., & Uddin, N. M. (2017). कृषि क्षेत्र में सूचना प्रसार के लिए सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का उपयोग दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता जा रहा है, विशेषकर किसानों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के संदर्भ में। बांग्लादेश में आज आईसीटी उपकरणों और केंद्रों की भरमार है। सरकार द्वारा विकसित कृषि सूचना वितरण की नवीनतम पहल की शुरुआत 20 कृषि सूचना एवं संचार केंद्रों (एआईसीसी) से हुई है और देश के अधिकांश कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों को कवर करने के लिए इनकी संख्या बढ़ाने की योजना है। इसी संदर्भ में, किसानों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में कृषि सूचना एवं संचार केंद्रों (एआईसीसी) की प्रभावशीलता का निर्धारण करने के लिए यह अध्ययन किया गया। इसके अलावा, एआईसीसी की प्रभावशीलता के बारे में किसानों की समझ को बेहतर बनाने वाले महत्वपूर्ण कारकों की पहचान की गई। यह अध्ययन बांग्लादेश के मयमनसिंह जिले के पांच उप-जिलों में किया गया। डेटा एकत्र करने के लिए पूर्व-परीक्षित प्रश्नावली का उपयोग करके सौ एआईसीसी उपयोगकर्ताओं का साक्षात्कार लिया गया। एकत्रित डेटा के विश्लेषण के लिए वर्णनात्मक और अनुमानित सांख्यिकी दोनों का उपयोग किया गया। एक तिहाई से अधिक (37%) किसानों का मानना था कि प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में एआईसीसी की प्रभावशीलता उच्च थी, जबकि 38% किसानों ने इसे 'मध्यम रूप से प्रभावी' और 25% ने 'कम प्रभावी' माना। किसानों की विशेषताएं जैसे शिक्षा, खेत का आकार, वार्षिक पारिवारिक आय, संगठनात्मक भागीदारी, विस्तार संपर्क, आईसीटी सुविधाओं के बारे में जागरूकता, आईसीटी सुविधाओं तक पहुंच, आईसीटी का ज्ञान और आईसीटी पर प्राप्त प्रशिक्षण का एआईसीसी की प्रभावशीलता के साथ सकारात्मक संबंध था, जबकि आयु और परिवार के आकार का एआईसीसी की प्रभावशीलता के साथ नकारात्मक और नगण्य संबंध था। एआईसीसी की प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक शिक्षा, वार्षिक पारिवारिक आय और आईसीटी का ज्ञान थे, जिनकी पुष्टि बहु प्रतिगमन मॉडल द्वारा की गई। इस मॉडल ने यह भी स्पष्ट किया कि ये तीनों व्याख्यात्मक चर मिलकर एआईसीसी की प्रभावशीलता में 81.2% भिन्नता की व्याख्या करते हैं, जबकि आईसीटी का ज्ञान एआईसीसी की प्रभावशीलता में 70% भिन्नता की व्याख्या करता है। कंप्यूटर के परिचालन ज्ञान की कमी, आईसीटी प्रशिक्षण सुविधाओं की कमी और ग्रामीण किसानों में कम जागरूकता को एआईसीसी सुविधाओं के उपयोग में प्रमुख बाधाओं के रूप में पहचाना गया। हालांकि, विस्तार नीति निर्माताओं को उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखना चाहिए और उपयोगकर्ताओं को आईसीटी प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए, आईसीटी अवसंरचना विकसित करनी चाहिए, केंद्र सुविधाओं का पर्याप्त रखरखाव करना चाहिए आदि, जो एआईसीसी को प्रभावी और टिकाऊ बनाने में योगदान देते हैं।

Jat Jeewan Ram,N.K. Punjabi,Rashmi Bhinda, (2021) दक्षिण राजस्थान के अधिकांश आदिवासी किसान कृषि संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए मोबाइल फोन, टेलीविजन, रेडियो, किसान कॉल सेंटर, सूचना केंद्र, इंटरनेट और विशेषज्ञ प्रणाली जैसे सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) उपकरणों का उपयोग कर रहे हैं। यह अध्ययन दक्षिण राजस्थान के दो जिलों (बांसवाड़ा और डूंगरपुर) में किया गया, जहां आईसीटी के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए अधिकतम सुविधाएं और बुनियादी ढांचा उपलब्ध है। 160 किसानों से संरचित साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्तिगत रूप से अनुभवजन्य आंकड़े एकत्र किए गए। परिणामों से पता चला कि अधिकांश किसानों के पास मोबाइल फोन के साथ-साथ टेलीविजन और रेडियो भी हैं। सामाजिक संचार, उपज के विपणन के लिए बिचौलियों से संपर्क करने और वास्तविक समय में विशेषज्ञों से संपर्क करने के लिए सबसे अधिक उपयोग किया जाने वाला आईसीटी मोबाइल फोन था, जिसके बाद टेलीविजन का स्थान था। रेडियो और किसान कॉल सेंटर का उपयोग मोबाइल फोन और टीवी की तुलना में कम था, क्योंकि आईसीटी की उपलब्धता और पहुंच का स्तर अन्य आईसीटी की तुलना में कम था। इंटरनेट, टच स्क्रीन कंप्यूटर, सूचना केंद्र और अन्य एप्लिकेशन अभी भी युवा और शिक्षित लोगों द्वारा कम ही उपयोग किए जा रहे थे। अधिकांश किसान (60.62%) शाम के समय सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) का उपयोग करते थे, क्योंकि उनके पास खाली समय होता था और कृषि कार्यक्रमों का प्रसारण भी शाम के समय होता था।

Monikha C. Balasubramaniam M,Sukumar J (2021) सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) कृषि विस्तार प्रदान करने में अनेक संभावित अनुप्रयोग रखती है और ग्रामीण क्षेत्रों में नई सूचना सेवाएं ला सकती है। यह बेहतर सूचना एवं संचार प्रक्रियाओं के माध्यम से कृषि एवं ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने पर केंद्रित है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न विस्तार उपकरणों, जैसे विशेषज्ञ प्रणाली, कृषि-तकनीक पोर्टल और विस्तार साहित्य की प्रभावशीलता का आकलन करके किसानों के ज्ञान स्तर, कौशल अधिग्रहण और प्रतीकात्मक अपनाने के व्यवहार की पहचान करना था। तेनकासी जिले के तीन अलग-अलग गांवों से साठ किसानों का चयन किया गया। ज्ञान, कौशल अधिग्रहण और विभिन्न प्रौद्योगिकियों को अपनाने में हुई वृद्धि का आकलन करने के लिए पूर्व-परीक्षण और पश्चात-परीक्षण आयोजित किए गए। पूर्व-परीक्षण से पता चला कि तीनों विस्तार उपकरणों में 45 प्रतिशत किसानों का ज्ञान स्तर उच्च था, जबकि पश्चात-परीक्षण के परिणामों से संकेत मिलता है कि विशेषज्ञ प्रणाली के संपर्क में आने के बाद 60 प्रतिशत किसानों ने उच्च स्तर का ज्ञान प्राप्त किया। इसी प्रकार, विशेषज्ञ प्रणाली के संपर्क में आने वाले 70.00 प्रतिशत किसानों में प्रतीकात्मक अपनाने का व्यवहार उच्च स्तर का था। विशेषज्ञ प्रणाली ने किसानों को अपनी उत्पादकता बढ़ाने के लिए स्थान-विशिष्ट फसल प्रबंधन पद्धतियों के विभिन्न पहलुओं को अपनाने के निर्णय लेने में सहायता की ।

Sandeep Guntukogula Pattabhi,Pasunoori Prashanth,M. Sreenivasulu,Anne Madavilata (2022) तेलंगाना राज्य के दक्षिणी तेलंगाना क्षेत्र के तीन पूर्व जिलों में किसानों द्वारा सोशल मीडिया के माध्यम से प्रसारित कृषि सूचनाओं की प्रभावशीलता को समझने के लिए 2020 में 120 किसानों के नमूने के साथ एक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन के लिए आठ संकेतकों का चयन करके कृषि सूचना प्रभावशीलता सूचकांक (ईएआईआई) विकसित किया गया। यह पाया गया कि 39.17% उत्तरदाताओं ने सोशल मीडिया के माध्यम से प्रसारित कृषि सूचनाओं की प्रभावशीलता को मध्यम स्तर का माना। आयु और कृषि अनुभव का उत्तरदाताओं द्वारा कृषि सूचनाओं की प्रभावशीलता पर नकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया। डिजिटल साक्षरता, खेत का आकार, सोशल मीडिया नेटवर्क, सोशल मीडिया का उपयोग, पहुँच का तरीका और प्राथमिकता, सूचना स्वीकार करने की तत्परता और सोशल मीडिया में भागीदारी का प्रभाव प्रभावशीलता पर सकारात्मक और महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया, जबकि सूचना प्रसंस्करण चर का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पाया गया। परिणामों से पता चलता है कि आधे से अधिक उत्तरदाताओं ने सोशल मीडिया पर प्राप्त सूचना को प्रभावी माना। बेहतर इंटरफेस और सूचना सामग्री को चित्रों और वीडियो प्रारूप में विकसित करके सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य -

1 किसानो में सोशल मीडिया के उपयोग की स्थिति का अध्ययन करना।

2 कृषि संबंधी जानकारी (जैसे मौसम, बीज, उर्वरक, तकनीक) के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका को समझना।

3 कृषि उत्पादन और निर्णय लेने पर सोशल मीडिया के प्रभाव का विश्लेषण करना।

शोध पद्धति - इस अध्ययन में गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार के अनुसंधान विधियों का उपयोग किया गया। प्रस्तुत अध्ययन की शोध प्ररचना वर्णात्मक है, अध्ययन क्षेत्र के रूप में छत्तीसगढ़ राज्य के मुंगेली जिले के मुंगेली और लोरमी तहसील के 10 गाव से 100 उत्तरदाताओ का चयन किया गया,समग्र से निदर्शन का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया है। जिसमे तथ्यों के संकलन करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची और समूह चर्चा के माध्यम से डेटा संग्रहित किया गया। तथ्य संकलन के समय उत्तरदाताओ की मनोभाव, प्रवृतियो आदी को ध्यान में रखते हुए अवलोकन किया गया है। तथ्य संकलन के द्वितीयक स्त्रोत के रूप में पुस्तकों, शोध पत्रों, इन्टरनेट आदि का प्रयोग किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण -

तालिका क्रमांक 01: प्लेटफॉर्म उपयोग

क्रमांक	प्लेट फार्म	आवृत्ति	प्रतिशत
01	व्हाट्सएप	40	40%
02	यूट्यूब	35	35%
03	फेसबुक	15	15%
04	अन्य	10	10%
	योग	100	100

तालिका के अनुसार 100 उत्तरदाताओं में व्हाट्सएप (40%) और यूट्यूब (35%) कृषि जानकारी के प्रसार के सबसे प्रमुख माध्यम हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि किसान त्वरित और दृश्य जानकारी के लिए इन प्लेटफॉर्मों का अधिक उपयोग करते हैं। फेसबुक (15%) तथा अन्य माध्यम (10%) का उपयोग अपेक्षाकृत कम है, जिससे पता चलता है कि किसानों की प्राथमिकता सरल, मोबाइल-आधारित और तुरंत उपलब्ध सोशल मीडिया साधनों की ओर अधिक है। यह निष्कर्ष दर्शाता है कि सोशल मीडिया विशेषकर व्हाट्सएप और यूट्यूब मौसम, बीज, उर्वरक, तकनीक तथा कृषि निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जो उत्पादन बढ़ाने में सहायक है।

तालिका क्रमांक 02: कृषि जानकारी प्राप्त करना

क्रमांक	उत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	75	75%
02	नहीं	25	25%
	योग	100	100

तालिका क्रमांक 02 के अनुसार 100 उत्तरदाताओं में से 75% किसानों ने स्वीकार किया कि उन्हें सोशल मीडिया के माध्यम से कृषि संबंधी जानकारी प्राप्त होती है, जबकि 25% ने इससे इंकार किया। यह दर्शाता है कि अधिकांश किसान मौसम, बीज, उर्वरक, कीटनाशक एवं नई कृषि तकनीकों की जानकारी के लिए सोशल मीडिया पर निर्भर हैं, जो सूचना प्रसार का प्रभावी माध्यम बन चुका है। निष्कर्षत:, सोशल मीडिया किसानों तक कृषि जानकारी पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है और उनके कृषि निर्णयों को अधिक वैज्ञानिक एवं समयानुकूल बनाने में सहायक है।

तालिका क्रमांक 03: जानकारी के प्रकार

क्रमांक	जानकारी के प्रकार	आवृत्ति	प्रतिशत
01	मौसम	30	30%
02	बीज	25	25%
03	उर्वरक	20	20%
04	नई तकनीक	25	25%
	योग	100	100

सोशल मीडिया से जानकारी के संबधित तालिका क्रमांक 03 के अनुसार किसानों द्वारा सोशल मीडिया से प्राप्त जानकारी में मौसम संबंधी जानकारी (30%) सबसे अधिक है, जबकि बीज (25%) और नई तकनीक (25%) समान रूप से महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उर्वरक संबंधी जानकारी (20%) का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है, फिर भी यह दर्शाता है कि किसान खेती के विभिन्न पहलुओं के लिए डिजिटल माध्यमों का उपयोग कर रहे हैं। निष्कर्षत:, सोशल मीडिया किसानों तक मौसम, बीज, उर्वरक और नई तकनीक जैसी उपयोगी कृषि जानकारी पहुँचाने का प्रभावी साधन बनकर उनके निर्णय और उत्पादन क्षमता को मजबूत कर रहा है।

तालिका क्रमांक 04: जानकारी की उपयोगिता

क्रमांक	जानकारी की उपयोगिता	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	60	60%
02	नहीं	15	15%
03	कभी-कभी	25	25%
	योग	100	100

तालिका क्रमांक 04 के अवलोकन से ज्ञात होता है की 60% किसानों ने सोशल मीडिया से प्राप्त कृषि जानकारी को उपयोगी माना, जबकि 25% ने इसे कभी-कभी उपयोगी बताया और केवल 15% ने इसे उपयोगी नहीं माना। यह स्पष्ट करता है कि अधिकांश किसानों के लिए सोशल मीडिया से मिलने वाली जानकारी खेती के निर्णय, नई तकनीक अपनाने और समय पर कार्य करने में सहायक सिद्ध हो रही है। सोशल मीडिया कृषि सूचना के प्रसार में विश्वसनीय और व्यावहारिक माध्यम के रूप में उभर रहा है, जो किसानों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में मददगार है ।

तालिका क्रमांक 05: खेती में उपयोग

क्रमांक	खेती में उपयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	65	65%
02	नहीं	35	35%
	योग	100	100

खेती में उपयोग संबधी तालिका क्रमांक 05 के अवलोकन से स्पष्ट है कि 100 उत्तरदाताओं में से 65% (65 किसान) खेती में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का उपयोग करते हैं। जबकि 35% (35 किसान) इसका उपयोग नहीं करते हैं। कुल मिलाकर यह पता चलता है कि बहुमत किसान कृषि जानकारी के प्रसार के लिए सोशल मीडिया पर निर्भर हैं। 65% किसान जानकारी को खेती में लागू करते हैं।

तालिका क्रमांक 06: उत्पादन में वृद्धि

क्रमांक	उत्पादन में वृद्धि	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	55	55%
02	नहीं	20	20%
03	निश्चित नहीं	25	25%
	योग	100	100

उपरोक्त तालिका क्रमांक 06 से स्पष्ट है कि 100 उत्तरदाताओं में से 55% (55 किसान) का मानना है कि सोशल मीडिया के उपयोग से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। जबकि 20% ने कहा कि उत्पादन में वृद्धि नहीं हुई और 25% उत्तरदाता निश्चित नहीं हैं। शोध से यह पता चलता है कि बहुमत किसानों के अनुसार सोशल मीडिया ने कृषि उत्पादन और निर्णय लेने पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। आधे से अधिक किसानों ने उत्पादन में वृद्धि महसूस की।

तालिका क्रमांक 07: गलत जानकारी

क्रमांक	गलत जानकारी	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	45	45%
02	नहीं	55	55%
	योग	100	100

गलत जानकारी के संबध में पूछने पर उत्तरदाताओ द्वारा बतलाया गया की सोशल मीडिया के माध्यमसे कुछ किसानों को गलत जानकारी भी मिलती है, जो चिंता का विषय है ।

तालिका क्रमांक 08: इंटरनेट समस्या

क्रमांक	इंटरनेट समस्या	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	50	50%
02	नहीं	50	50%
	योग	100	100

तालिका के अनुसार अधिकांश किसानों ने इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या को सोशल मीडिया आधारित कृषि जानकारी प्राप्त करने में प्रमुख बाधा बताया, जिससे समय पर जानकारी मिलने में कठिनाई होती है। कम नेटवर्क, धीमी इंटरनेट गति और ग्रामीण क्षेत्रों में सीमित डिजिटल सुविधाओं के कारण किसान मौसम, बीज, उर्वरक एवं नई तकनीक संबंधी सूचनाओं का पूरा लाभ नहीं ले पाते। निष्कर्षत:, बेहतर इंटरनेट सुविधा उपलब्ध कराने से किसानों में सोशल मीडिया के उपयोग, त्वरित निर्णय क्षमता और कृषि उत्पादन में सकारात्मक वृद्धि संभव है। इंटरनेट की समस्या आधे किसानों के लिए बाधा है ।

तालिका क्रमांक 09: जानकारी साझा करना

क्रमांक	जानकारी साझा करना	आवृत्ति	प्रतिशत
01	हाँ	70	70%
02	नहीं	30	30%
	योग	100	100

तालिका के अनुसार 70% किसानों ने बताया कि वे आपस में कृषि संबंधी जानकारी साझा करते हैं जबकि 30% किसान ऐसा नहीं करते। यह दर्शाता है कि किसानों के बीच अनुभव, नई तकनीक, बीज, उर्वरक और मौसम संबंधी सूचनाओं का आदान-प्रदान एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया है, जो सामूहिक सीखने को बढ़ावा देती है। किसानों के बीच जानकारी साझा करने की प्रवृत्ति 'कृषि नवाचार के प्रसार, बेहतर निर्णय और उत्पादन वृद्धि में सहायक सिद्ध होती है अधिकतर किसान आपस में जानकारी साझा करते हैं ।

निष्कर्ष -

इस अध्ययन का उद्देश्य कृषि जानकारी के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका का विश्लेषण करना और किसानों के व्यवहार तथा निर्णयों पर इसके प्रभाव का मूल्यांकन करना था। अध्ययन में विभिन्न पहलुओं पर ध्यान दिया गया, जिनमें प्लेटफॉर्म का उपयोग, जानकारी की उपलब्धता और प्रकार, उसकी उपयोगिता, खेती में प्रभाव, उत्पादन में वृद्धि, गलत जानकारी, इंटरनेट समस्याएँ और जानकारी साझा करने की प्रवृत्ति शामिल हैं।

1. प्लेटफॉर्म का उपयोग :- अध्ययन से पता चला कि अधिकांश किसान व्हाट्सएप और यूट्यूब का नियमित रूप से उपयोग करते हैं। फेसबुक और इंस्टाग्राम का उपयोग कम संख्या में देखा गया। युवा और शिक्षित किसानों में सोशल मीडिया का अधिक व्यापक उपयोग पाया गया, जबकि वृद्ध और कम शिक्षित किसानों में इसकी पहुँच सीमित रही। यह दर्शाता है कि डिजिटल साक्षरता सोशल मीडिया के प्रभावशील उपयोग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
2. कृषि जानकारी प्राप्त करना :- किसानों ने सोशल मीडिया के माध्यम से विभिन्न प्रकार की कृषि जानकारी प्राप्त की। प्रमुख जानकारी में मौसम पूर्वानुमान, फसल सुरक्षा, बीज और उर्वरक प्रबंधन, कीट नियंत्रण और नवीन तकनीक शामिल हैं। सोशल मीडिया ने किसानों को समय पर महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध करवाई, जो पारंपरिक माध्यमों की तुलना में अधिक त्वरित और सहज थीं।
3. जानकारी के प्रकार और उपयोगिता :- अध्ययन में यह देखा गया कि वीडियो और चित्र आधारित सामग्री किसानों के बीच अधिक प्रभावी साबित हुई। किसानों ने माना कि सोशल मीडिया से प्राप्त जानकारी उनके खेती के निर्णयों में सहायक रही। मौसम, फसल सुरक्षा और सिंचाई संबंधी सूचनाओं को सबसे अधिक उपयोगी माना गया।
4. खेती में उपयोग और उत्पादन में वृद्धि :- सोशल मीडिया से प्राप्त जानकारी का प्रभाव सीधे किसानों की खेती में दिखाई दिया। नई तकनीकों और उन्नत कृषि विधियों को अपनाने वाले किसानों ने अपनी उत्पादकता में वृद्धि दर्ज की। इससे यह स्पष्ट हुआ कि सही जानकारी का समय पर उपयोग उत्पादन बढ़ाने में सहायक है।

5. गलत जानकारी और इंटरनेट समस्या :- कुछ किसानों ने गलत या अप्रमाणित जानकारी का सामना किया, जिससे उन्हें नुकसान भी हुआ। इसके अतिरिक्त, इंटरनेट की धीमी गति और नेटवर्क की समस्याएँ सोशल मीडिया के प्रभावी उपयोग में बाधा बन रही हैं।
6. जानकारी साझा करना:- किसान अब अपने अनुभव और जानकारी को साझा करने के लिए अधिक सक्रिय हैं। इससे सामूहिक ज्ञान में वृद्धि हो रही है और कृषि समुदाय में सहयोग और संवाद की भावना बढ़ रही है।

सारांश निष्कर्ष :- कुल मिलाकर यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि सोशल मीडिया कृषि जानकारी के प्रसार और किसानों के निर्णय लेने में प्रभावी माध्यम बन रहा है। हालांकि, इसकी पूर्ण क्षमता तक पहुँचने के लिए डिजिटल साक्षरता, इंटरनेट सुविधाओं में सुधार और विश्वसनीय सूचना स्रोतों की पहचान आवश्यक है।

इस अध्ययन से पता चलता है कि सोशल मीडिया किसानों के लिए कृषि जानकारी प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन चुका है। यह मौसम, बीज और नई तकनीकों की जानकारी देने में सहायक है, जिससे उत्पादन में भी सुधार होता है। साथ ही इंटरनेट की समस्या और गलत जानकारी जैसी चुनौतियाँ भी मौजूद हैं। इसलिए सही और विश्वसनीय जानकारी का प्रसार बहुत आवश्यक है।

सुझाव (Suggestions)

- किसानों को सही और प्रमाणित जानकारी दी जाए।
- सरकार और कृषि विभाग सोशल मीडिया का अधिक उपयोग करें।
- ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट सुविधा सुधारी जाए।
- किसानों को डिजिटल साक्षरता दी जाए।

सन्दर्भ सूची

1 Sandhu H.S , Singh G and Grover J(2012)Analysis of Kisan Mobile Advisory Service in South Western Punjab.Journal of Krishi Vigyan1, 1-4
2 Khan, S. Md., Rahman, H. M., & Uddin, N. M. (2017). Effectivenessof agricultural information and communication canter intechnology transfer to the farmers in Bangladesh. Asian Journalof Agricultural Extension, Economic & Sociology, 18(4), 1-11
3 Monikha, C., Balasubramaniam, M., & Sukumar, J. (2020). Effectiveness of Extension Tools Among the Paddy Farmers of Tenkasi District of Tamil Nadu. Indian Journal of Extension Education, 57(1), 110-113.
4 Jat Jeewan Ram,N.K. Punjabi,Rashmi Bhinda,(2021).Use of ICTs by Tribal Farmers for Obtaining Agricultural Information in Southern Rajasthan Indian Journal of Extension Education, 57(03), 16-19.
5 Sandeep Guntukogula Pattabhi,Pasunoori Prashanth,M. Sreenivasulu,Anne Madavilata (2022)Effectiveness of Agricultural Information Disseminated through Social Media. Indian Journal of Extension Education, 58 (2), 186-190

शांति की खोजः धर्म और दर्शन का नवीन दृष्टिकोण

अनुज कुमार सिंह

पी० एच० डी०, शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

डॉ० मोहम्मद अली

सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय, दर्शनशास्त्र विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सार

इस विश्व में मानव जाति के साथ-साथ अन्य अनेक जीवों का अस्तित्व यहाँ बना रहे, सभी प्राणी अपने वर्चस्व को कायम रखते हुए लगातार प्रगति एवं समृद्धि की ओर अग्रसर रहें, इसके लिए शांति का वातावरण जरूरी है। अशांति से देश के प्राकृतिक संसाधन एवं मानव संसाधन की बर्बादी होती है। अशांति रहने से जहाँ निवेश की कमी होती है और आर्थिक विकास अवरुद्ध हो जाता है, वहीं अशांति समाज में तनाव, डर और मानसिक अस्थिरता पैदा करती है। इससे सामाजिक एकजुटता और सहयोग की भावना कमजोर होती है, जो विकास के लिए आवश्यक है। शांति हर एक देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समृद्धि के लिए आवश्यक है, क्योंकि जहाँ अशांति का वातावरण रहेगा वहाँ विकास अवरुद्ध हो जाएगा।

विश्व के प्रमुख धर्मों जैसे हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, यहूदी धर्म, पारसी धर्म, सिख धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, कन्फ्यूशियस धर्म, शिंतो धर्म एवं ताओ धर्म ने वैश्विक शांति, खासकर आंतरिक शांति के साथ-साथ बाह्य शांति के लिए पूरे विश्व का मार्गदर्शन किया है। इन धर्मों ने अपने उपदेशों में 'मानव कल्याण' के आदर्श को सर्वोच्च महत्व प्रदान किया है।

दर्शन के क्षेत्र में भारतीय दर्शन ने सराहनीय कदम उठाया। इसने आंतरिक शांति एवं बाह्य शांति के साथ-साथ मरणोपरांत आत्मा की परम शांति के लिए भी विधान निर्धारित किया, जिसे अलग-अलग भारतीय दर्शन सम्प्रदायों में विभिन्न नामों जैसे मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य मुक्ति, अपवर्ग आदि के रूप में जाना जाता है। पाश्चात्य दर्शन ने मानवतावाद, मार्क्सवाद, उपयोगितावाद, आदर्शवाद, उदारवाद, पैसिफिज्म आदि की अवधारणाएँ विकसित करके विश्व शांति की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

परिचय

मानव हमेशा से शांति की तलाश में रहा है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व गौतम बुद्ध और महावीर द्वारा अपने शाक्य गणराज्य एवं वैशाली गणराज्य के राजसी सुखों को त्याग कर वनों में अत्यंत दुःखों एवं कष्टों को सहना शांति प्राप्त करने की दिशा में सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है। पैगम्बर मुहम्मद से लेकर ईसा मसीह तक को शांति प्राप्त करने के लिए एकांतवास का सहारा लेना पड़ा। सभी का एक ही लक्ष्य था कि इस विश्व में दुःखों का निवारण कर शांति कायम की जाए।

विश्व के इन धर्मों ने मानव के नैतिक मूल्यों का विकास किया। इन्होंने समाज में भाईचारा बनाए रखने की नसीहतें दीं, अहिंसा, करुणा और मैत्री का संदेश दिया तथा आंतरिक शांति का मार्ग सुझाया। दर्शन विभिन्न मतों एवं विचारों को समझने की शिक्षा देता है। इससे लोगों में सहिष्णुता और दूसरों के विचारों का सम्मान करने की भावना विकसित होती है। दर्शन मनुष्य में विवेक, नैतिकता, तर्क, सहिष्णुता तथा अहिंसा के गुण विकसित करता है। यही गुण समाज और विश्व में स्थायी शांति लाने में सहायक हैं।

भूमिका

विश्व के विभिन्न धर्मों का शांति की स्थापना में भूमिका एवं नवीन दृष्टिकोणः- शांति विभिन्न आध्यात्मिक परंपराओं में एक प्रमुख अवधारणा है। हिन्दू धर्म, दुनिया के सबसे पुराने और सबसे विविध धर्मों में से एक है, जो शांति और सद्भाव के मूल्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है। हिन्दू दर्शन में शांति केवल संघर्ष की अनुपस्थिति नहीं है, बल्कि आंतरिक संतुलन और सद्भाव की स्थिति है, जो बाहरी दुनिया में फैलती है। हिन्दू धर्म सिखाता है कि सच्ची शांति भीतर से आती है, जिसे आत्म-साक्षात्कार, धार्मिक जीवन और ईश्वर के साथ गहरे संबंध के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। हिन्दू धर्म अपनी अवधारणाओं, सिद्धांतों और प्रथाओं के माध्यम से विश्व शांति में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

इस्लाम का प्राथमिक महत्व शांति स्थापित करना है और शांति का विचार इस्लाम में प्रमुख विचार है। इस्लाम मनुष्य और उसके निर्माता के बीच तथा विभिन्न धर्मों और समुदायों के बीच शांति का प्रतीक है। एक मुस्लिम का उद्देश्य अल्लाह की इच्छा के अनुसार जीवन जीकर आंतरिक शांति प्राप्त करना होता है। कलमा, नमाज, रोजा, जकात और हज जैसे कर्तव्य आध्यात्मिक अनुशासन और संतुलन लाते हैं। इस्लाम समाज में न्याय, भाईचारा और सहयोग की भावना को बढ़ावा देता है।

शांति एवं सद्भावना ईसाई धर्म के बुनियादी आदर्श हैं। यीशु को शांति का राजकुमार कहा जाता है क्योंकि वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो आपके और परमेश्वर तथा अन्य लोगों के बीच सच्ची शांति, पुनर्स्थापना, मुक्ति और मेल-मिलाप ला सकते हैं। यीशु मसीह ने अपने दुश्मनों से भी प्रेम करने तथा उन्हें क्षमा करने की शिक्षा दी। उनके द्वारा दिया गया यह सिद्धांत वैश्विक शांति के लिए एक प्रेरणास्रोत है, जहाँ हिंसा का उत्तर प्रेम और क्षमा से दिया जाता है।

यहूदी धार्मिक परंपरा में ईश्वर को शांति का निर्माता कहा जाता है। इसमें कहा गया है कि "हे ईश्वर, जो स्वर्ग में शांति लाता है, पृथ्वी पर भी वैसी ही शांति दे।" यहूदी धर्म में विश्वास है कि जब मसीहा आएगा, तब पूरी दुनिया में शांति, भाईचारा और न्याय स्थापित होगा। मसीहा के आने से ही युद्ध और संघर्ष का अंत होगा, वे अपनी तलवारों को पीटकर हल के फाल बना देंगे। यह सिद्धांत शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के साथ वैश्विक बदलाव का प्रतीक है।

पारसी धर्म के प्रवर्तक जरथुस्त्र हैं। इसमें दो मूल शक्तियों का द्वैत है अहुरमज्दा, जिन्हें ईश्वर कहा जाता है ये ज्ञान, प्रकाश और अच्छाई के देवता हैं। अहरिमान अंधकार और बुराई के प्रतीक माने जाते हैं। पारसी परंपराओं में अग्नि पूजा, प्राकृतिक तत्वों का सम्मान तथा मृत शरीर को 'टॉवर ऑफ साइलेंस' (दखमा) में रखना ये सभी प्रकृति और जीवन में शांति बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण विधियाँ हैं। पारसी धर्म व्यक्तिगत स्तर की आंतरिक शांति से लेकर सामाजिक और वैश्विक शांति की बात करता है।

गुरु नानकदेव द्वारा पंद्रहवीं सदी में स्थापित सिख धर्म एक आध्यात्मिक और मानवीय धर्म है, जो शांति, समानता और सेवा पर बल देता है। सिख धर्म में गुरु के उपदेशों के माध्यम से आत्मज्ञान और ईश्वर के नाम (सिमरन) का जाप करने पर जोर दिया जाता है। इससे व्यक्ति में आंतरिक शांति और आत्मसंतुलन प्राप्त होता है। सिख धर्म सभी मनुष्यों को समान मानता है, चाहे उसकी जाति, धर्म, लिंग या रंग कुछ भी हो। यह सामाजिक शांति और सद्भाव को बढ़ावा देता है।

गौतम बुद्ध द्वारा स्थापित बौद्ध धर्म की मूल शिक्षाएँ शांति, करुणा और अहिंसा पर आधारित हैं। शांति की अवधारणा बौद्ध धर्म में केवल बाहरी शांति तक सीमित नहीं है, बल्कि आंतरिक शांति और मानसिक संतुलन को भी अधिक महत्व दिया गया है। बौद्ध धर्म का मानना है कि मनुष्य की अशांति का मूल कारण उसकी इच्छाएँ, क्रोध, मोह और अज्ञान हैं। इनसे मुक्ति पाने के लिए बुद्ध ने चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग का मार्ग सुझाया। इसमें सम्यक दृष्टिकोण, सही कर्म, सही वाणी, सही आजीविका और सही ध्यान जैसी बातों को अपनाकर व्यक्ति अपने भीतर शांति ला सकता है।

महावीर स्वामी जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर हुए। भगवान महावीर के उपदेश आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। उन्होंने "अहिंसा परमो धर्मः" का उद्घोष किया और "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की भावना को विश्व में जागृत किया। "जियो और जीने दो" अर्थात सह-अस्तित्व, अहिंसा और अनेकांतवाद का संदेश देने वाले महावीर के सिद्धांत विश्व की अशांति को दूर कर शांति स्थापित करने में समर्थ हैं। उन्होंने समस्त प्राणी जगत के प्रति प्रेम और करुणा का संदेश दिया।

छठी एवं पांचवीं सदी ईसा पूर्व चीन में जन्मे कन्फ्यूशियस एक महान दार्शनिक, शिक्षक और नैतिक विचारक थे। उनके अनुसार शांति व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र इन सभी स्तरों पर संतुलन और नैतिकता के पालन से आती है। कन्फ्यूशियस शांतिपूर्ण जीवन के लिए पूर्वजों की पूजा और मानवीय गुणों को बढ़ावा देने की बात करते हैं।

शिंतो धर्म जापान का प्राचीनतम धर्म है। इसमें माना जाता है कि हर प्राकृतिक तत्व में 'कामी' का वास होता है, इसलिए इसके अनुयायी प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन को प्राथमिकता देते हैं। यह दृष्टिकोण मानव और प्रकृति के बीच शांति को प्रोत्साहित करता है।

ताओवाद प्राचीन चीन का एक धर्म और दर्शन है। इसका मानना है कि मनुष्य तभी शांत हो सकता है जब वह लालच, अज्ञान और अनावश्यक प्रयासों का त्याग करे। ताओवाद में शांति की अवधारणा प्राकृतिक संतुलन, नैतिकता, सादगी और संघर्ष-रहित जीवन पर आधारित है। यह सिखाता है कि वास्तविक शांति बाहर नहीं, बल्कि भीतर और प्रकृति के साथ सामंजस्य में है।

भारतीय दर्शन का शांति की स्थापना में भूमिका एवं नवीन दृष्टिकोणः-

भारतीय दर्शन के अंतर्गत चार्वाक दर्शन एक महत्वपूर्ण दर्शन है। चार्वाक दर्शन भौतिकवादी परंपरा का अंग है, जिसके अंतर्गत वेदों, आत्मा, पुनर्जन्म एवं परलोक जैसी अवधारणाओं का जोरदार खंडन किया जाता है। चार्वाक दृष्टिकोण को अपनाने से हमें वर्तमान में पूर्ण रूप से जीने की प्रेरणा मिलती है तथा जीवन के मूर्त पहलुओं में आनंद और अर्थ की प्राप्ति होती है। यह दर्शन बिना जाँचे-परखे

विश्वासों पर प्रश्न उठाने, भलाई को प्राथमिकता देने और व्यावहारिक ज्ञान तथा मानवीय अनुभव पर आधारित जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है। इसलिए यह दर्शन विचारशील आनंद, अनुभवजन्य ज्ञान और तर्कसंगत आत्मनिर्णय के माध्यम से वर्तमान जीवन में शांति स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जैन दर्शन अहिंसा, करुणा, त्याग, सदाचार, आत्मसंयम एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित है। यह जहाँ सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र जैसे त्रिरत्नों की चर्चा करता है, वहीं जैन साधना में पंचव्रत जैसे आचार-नियमों का भी उल्लेख मिलता है। बौद्ध दर्शन का मुख्य एवं अंतिम उद्देश्य स्थायी और पूर्ण शांति, अर्थात निर्वाण की प्राप्ति है। बुद्ध की शिक्षाओं नैतिकता, ध्यान और ज्ञान में व्यक्ति को शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक हिंसा से दूर रहने की प्रेरणा दी गई है। बौद्ध दर्शन ने अतीत में भी शांति की अवधारणा को व्यवहार में लागू करने का मार्ग प्रशस्त किया है।

कपिल मुनि को सांख्य दर्शन का प्रवर्तक माना जाता है। सांख्य दर्शन में ध्यान, योग, विवेक और वैराग्य को शांति के लिए आवश्यक माना गया है। इसके साथ ही प्रकृति के तीन गुणों सत्त्व, रज और तम का संतुलन भी शांति के लिए आवश्यक बताया गया है। योग दर्शन के अभ्यास के माध्यम से हम आत्म-जागरूकता, आंतरिक शांति और स्वयं के साथ तथा दूसरों के साथ जुड़ाव का अनुभव करते हैं। योग में चित्तभूमियों तथा अष्टांग योगमार्ग का वर्णन मिलता है, जो शांति, ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने का एक अनूठा मार्ग है।

न्याय दर्शन संघर्ष-समाधान और प्रभावी संचार के संबंध में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इसकी शिक्षाएँ व्यक्तियों को ज्ञान विकसित करने, संबंधों में सामंजस्य बढ़ाने तथा आत्म-खोज और आंतरिक परिवर्तन की ओर अग्रसर करती हैं, जिससे यह आधुनिक दुनिया की जटिलताओं को समझने और सुलझाने में सहायक बनता है। वैशेषिक दर्शन का अंतिम लक्ष्य केवल दु:ख से मुक्ति पाना नहीं, बल्कि पूर्ण स्वतंत्रता की अवस्था प्राप्त करना है अर्थात् संसार के बंधनों, इच्छाओं के प्रभाव और अज्ञानता से उत्पन्न प्रतिबंधों से मुक्ति। जब आत्मा इन बंधनों से मुक्त होती है, तब वह पूर्ण शांति और आनंद का अनुभव करती है।

विशिष्टाद्वैत दर्शन एक ओर गूढ़ धार्मिक सिद्धांत प्रस्तुत करता है, तो दूसरी ओर वर्तमान समय में व्यक्तिगत, सामाजिक और वैश्विक शांति के लिए एक प्रासंगिक दृष्टिकोण भी प्रदान करता है। यह न केवल ईश्वर के प्रति भक्ति को बढ़ाता है, बल्कि एक समावेशी समाज के निर्माण में भी सहायक है। मीमांसा दर्शन में कर्मकांड और अनुष्ठान को शांति के लिए आवश्यक माना गया है, जो व्यक्ति को अपने जीवन में संतुलन और शांति बनाए रखने में मदद करते हैं। यह दर्शन काम्य और निषिद्ध कर्मों से दूर रहने तथा वेदविहित नित्य कर्मों के पालन पर बल देता है, जो शांति स्थापना में सहायक हैं।

अद्वैत वेदान्त की शिक्षा है कि सभी जीवों का आंतरिक सत्य एक ही है। उनमें एक ही ब्रह्म की आत्मा विद्यमान है। इस विचारधारा ने भारतीय संस्कृति और समाज में प्रेम, एकता, उदारता, सहानुभूति और विश्व-दृष्टि को प्रोत्साहित किया है। इसी से प्रेरित होकर हमने "वसुधैव कुटुम्बकम" तथा "सर्वे सन्तु सुखिन:" जैसे आदर्शों को स्वीकार करते हुए विश्व-प्रेम का संदेश दिया है।

पाश्चात्य दर्शन का शांति की स्थापना में भूमिका एवं नवीन दृष्टिकोण:-

पाश्चात्य दर्शन के प्रारंभिक काल में ग्रीक दर्शन का युग प्रमुख था, जिसमें थेल्स, एनेक्सीमेंडर, पाइथागोरस, हेराक्लिटस, जेनो, सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे महान दार्शनिक हुए। सुकरात को एथेंस के युवकों को सही मार्ग दिखाने के कारण मृत्युदंड की सजा सहनी पड़ी। प्लेटो ने न्यायपूर्ण समाज की कल्पना की, जबकि अरस्तू ने बौद्धिक गुणों पर जोर देकर समाज में शांति स्थापित करने का प्रयास किया। ग्रीक दर्शन ने तार्किक चिंतन को प्रोत्साहित करते हुए युद्धों से बचाव और कूटनीतिक समाधान को बढ़ावा दिया। ये विचार आज भी अंतरराष्ट्रीय संबंधों में नैतिक नीतियों और शांति निर्माण में सहायक हैं।

मध्ययुगीन दर्शन में शांति की अवधारणा मुख्यत: ईसाई धर्मशास्त्र तथा प्लेटो और अरस्तू जैसे प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों की विरासत से प्रभावित थी। इस काल में संत ऑगस्टीन, जॉन स्कॉटस एरिजेना, संत एन्सेल्म, थॉमस एक्विनास और रोजर बेकन जैसे महान दार्शनिक हुए। मध्यकालीन दर्शन ने नैतिकता, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक समानता और आध्यात्मिक एकता पर जोर देकर शांति स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दूसरी ओर, भक्ति और सूफी परंपराओं के प्रसार से समाज में शांति और भाईचारे को भी बढ़ावा मिला।

आधुनिक दर्शन में शांति की अवधारणा मध्यकालीन धार्मिक दृष्टिकोण से हटकर मानव-केंद्रित, तार्किक और राजनीतिक दृष्टिकोण की ओर अग्रसर हुई। विज्ञान के विकास के कारण आधुनिक दर्शन में नवीन जागरूकता और प्रगति संभव हुई। यह दर्शन शांति की अवधारणा को समझने और प्राप्त करने के लिए तर्क, बुद्धि और अनुभव के उपयोग पर बल देता है।

समकालीन दर्शन में शांति की अवधारणा और अधिक जटिल, बहुआयामी और वैश्विक हो गई है। अब यह केवल धार्मिक, राजनीतिक या नैतिक स्तर तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, भौतिकवाद, यथार्थवाद, व्यवहारवाद, अस्तित्ववाद, पर्यावरण और वैश्विक संबंधों जैसे पहलू भी शामिल हो गए हैं। समकालीन दर्शन की प्रमुख विशेषता यह है कि यह मानव, उसके संबंधों, उसकी समस्याओं और उसके वास्तविक स्वरूप पर चिंतन करता है, जो मानव शांति का मूल आधार है। पश्चिमी दर्शन

का समकालीन परिदृश्य समृद्ध, विविधतापूर्ण और बहुआयामी है। चाहे वह विश्लेषणात्मक दर्शन की तार्किक सटीकता हो या अस्तित्ववाद के माध्यम से मानव स्वतंत्रता की खोज करना इन सभी आंदोलनों ने वास्तविकता, भाषा और मानवीय स्थिति की हमारी समझ को आकार दिया है।

निष्कर्ष

शांति एक सभ्य समाज के लिए अत्यंत आवश्यक है। शांति की स्थापना में विश्व के प्रमुख धर्मों एवं दर्शनों के नवीन दृष्टिकोणों को एक समन्वित नजरिया अपनाने की आवश्यकता है। परंपरागत धर्म जहाँ बाह्य अनुष्ठानों को ही प्राथमिकता देते हैं, वहीं हमें धर्म को संकीर्ण रीति-रिवाजों और अनुष्ठानिक विधियों से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक नैतिक चेतना, समानता, करुणा, न्याय, सहिष्णुता एवं विश्व-बंधुत्व के रूप में स्थापित करना होगा।

दूसरी ओर, दर्शन को केवल बौद्धिक खेल, अमूर्त चिंतन एवं दार्शनिक वाद-विवाद तक सीमित न रखकर उसमें व्यावहारिक विवेक को शामिल करना होगा, ताकि वैश्विक मानवीय समस्याओं जैसे विश्व युद्ध, आतंकवादी घटनाएँ, धार्मिक कट्टरता और पर्यावरणीय संकट के समाधान खोजे जा सकें। इसके लिए दर्शन को एक व्यावहारिक उपकरण एवं तार्किक समाधान के रूप में देखने की आवश्यकता है।

हमें धर्म और दर्शन के बीच के द्वंद्व को भी समाप्त करने की आवश्यकता है। आज धर्म और दर्शन एक-दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं, जहाँ धर्म मानवीय भावनाओं को जागृत करता है, वहीं दर्शन उन्हें तर्कसंगत बनाकर पूरे विश्व में अमन, चैन और शांति कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ ग्रंथ

- गर्ग, डॉ0 निर्मल, विश्व के प्रमुख धर्मों में धर्म समभाव की अवधारणा एक तुलनात्मक अध्ययन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली, 2019
- विवेकानन्द, स्वामी, हिन्दू धर्म, श्री रामकृष्ण आश्रम प्रकाशन, नागपुर, 1950
- सुन्दरलाल, हजरत ईसा और ईसाई धर्म, विश्ववाणी प्रकाशन, इलाहाबाद, 1945
- गोयन्दका, जयदयाल, परम शांति का मार्ग, गीता प्रेस प्रकाशन, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश, 2016
- अग्रवाल, रघुवीर शरण, शांति पथ, नव भारती प्रकाशन, मेरठ, उत्तर प्रदेश, 1952
- वर्णी, जिनेन्द्र, शांति पथ प्रदर्शन, विश्व जैन मिशन प्रकाशन, पानीपत, हरियाणा, 2000
- शास्त्री, देवेन्द्रमुनि, धर्म और दर्शन, श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा, उत्तर प्रदेश
- वेदवाचस्पति, आचार्य प्रियव्रत, मेरा धर्म, श्री स्वामी श्रद्धानन्द अनुसंधान प्रकाशन केन्द्र, हरिद्वार, उत्तराखंड, 2003
- मुनि, शांति, शांति-सम्बोध, संस्कार क्रान्ति संस्थान प्रकाशन, उदयपुर, राजस्थान
- वहीद, अब्दुल, पृथ्वी के प्रचलित धर्म व पंथ, **Notion press.com,** 2006
- गैरोला, वाचस्पति, भारतीय धर्म शाखाएँ और उनका इतिहास, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, 1988
- पाठक, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, 2009
- निगम, डॉ0 शोभा, पाश्चात्य दर्शन के सम्प्रदाय, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशन, दिल्ली, 2013
- लाल, बसन्त कुमार, समकालीन पाश्चात्य दर्शन, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, दिल्ली, 2005

आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो के नैतिकता का अध्ययन

कैलाश मीणा

शारीरिक शिक्षक

भारत की जनजातीय संस्कृति विविधताओं से भरपूर है, जिसमें खेलकूद एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। विशेष रूप से तीरंदाजी जैसे पारंपरिक खेल जनजातीय जीवन का अभिन्न हिस्सा रहे हैं। आधुनिक खेल संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के साथ पारंपरिक और आधुनिक तीरंदाजी के खिलाड़ियों में न केवल तकनीकी अंतर देखने को मिलता है, बल्कि उनके सामाजिक, नैतिक, स्य एवं व्यक्तित्व संबंधी पक्षों में भी अनेक महत्वपूर्ण भिन्नताएं देखने को मिलती हैं।

यह शोध प्रस्तावना इस विषय पर केंद्रित है कि जनजातीय क्षेत्रों में आधुनिक एवं पारंपरिक तीरंदाजों के मध्य सामाजिक उपलब्धियों, व्यक्तित्व विशेषताओं, स्वास्थ्य स्तर एवं नैतिक मूल्यों में किस प्रकार के अंतर पाए जाते हैं। पारंपरिक तीरंदाजी खिलाड़ियों का सामाजिक जीवन अधिक सामुदायिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा होता है, जबकि आधुनिक खिलाड़ी अधिक प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में प्रशिक्षित होते हैं।

इस अध्ययन का उद्देश्य न केवल इन दोनों प्रकार के खिलाड़ियों की विशेषताओं का तुलनात्मक विश्लेषण करना है, बल्कि यह भी जानना है कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का उनके स्वास्थ्य एवं नैतिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार का अध्ययन जनजातीय युवाओं के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

व्यक्तित्व के संदर्भ में यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करेगा कि किन गुणों की अधिकता पारंपरिक तीरंदाजों में पाई जाती है और आधुनिक खिलाड़ियों में कौन-से लक्षण प्रबल होते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से आहार, जीवनशैली, व्यायाम एवं मानसिक तनाव जैसे बिंदुओं का तुलनात्मक मूल्यांकन किया जाएगा। वहीं नैतिकता के स्तर पर ईमानदारी, सहयोग, प्रतिस्पर्धात्मक भावना एवं खेल भावना जैसी विशेषताओं का विश्लेषण किया जाएगा।

यह शोध कार्य विभिन्न आयु वर्ग, लिंग एवं अनुभव के आधार पर चयनित खिलाड़ियों के माध्यम से किया जाएगा, जिससे परिणाम अधिक प्रासंगिक एवं व्यापक बन सकें। शोध विधियों में सर्वेक्षण, साक्षात्कार एवं प्रेक्षण तकनीकों का समावेश किया जाएगा।

समाज में खेलों की भूमिका केवल शारीरिक विकास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व निर्माण, नैतिकता के विकास एवं सामाजिक एकता को भी प्रोत्साहित करता है। अतः यह अध्ययन नीति-निर्माताओं, प्रशिक्षकों एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है जो जनजातीय क्षेत्रों में खेलों के माध्यम से सकारात्मक परिवर्तन लाने हेतु प्रयासरत हैं।

अंततः यह शोध यह दर्शाने का प्रयास करेगा कि पारंपरिक एवं आधुनिक तीरंदाजी केवल तकनीकी दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी एक-दूसरे से भिन्न हैं और दोनों की विशेषताओं को समझकर एक समन्वित खेल संस्कृति का विकास किया जा सकता है।

आधुनिक युग में तीरंदाजी:

16वीं शताब्दी में यूरोप में तीरंदाजी खेल और मनोरंजन का साधन बनने लगी। इंग्लैंड में राजघरानों ने इसे प्रतिष्ठा का प्रतीक माना।

आर्चरी क्लबों की स्थापना 18वीं और 19वीं शताब्दी में हुई। 1844 में यॉर्कशायर (इंग्लैंड) में पहला राष्ट्रीय तीरंदाजी प्रतियोगिता आयोजित हुआ। धीरे-धीरे यह अमेरिका और यूरोप के अन्य देशों में फैल गया। इस दौर में आर्चरी ने युद्धकला से खेलकला की ओर संक्रमण किया।

ओलंपिक खेलों में तीरंदाजी:

1900 पेरिस ओलंपिक में पहली बार तीरंदाजी शामिल हुई। 1900 से 1920 तक यह अनियमित रूप से खेला गया। 1920 के बाद इसे कार्यक्रम से हटा दिया गया। 1972 म्यूनिख ओलंपिक में पुनः शामिल किया गया।

वर्तमान में यह पुरुष और महिला दोनों वर्गों में नियमित खेल है। विश्व तीरंदाजी महासंघ (World Archery Federation) खेल के नियमों और आयोजन की देख-रेख करता है।

भारत में आधुनिक तीरंदाजी:

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रारंभिक दशकों में भारत में तीरंदाजी की उपेक्षा हुई।

1973 में आर्चरी एसोसिएशन ऑफ इंडिया (AAI) की स्थापना हुई। 1980 के दशक में भारत ने अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू किया।

भारत के उल्लेखनीय खिलाड़ी:

1. लिम्बा राम दृ जिन्हें "भारतीय रोबिन हुड" कहा जाता है।
2. दीपिका कुमारी दृ 2012 में विश्व नंबर 1 रैंकिंग।
3. अतनु दास, तरुणदीप राय, कोमोलिका बारी आदि।

भारत ने एशियाई खेलों, विश्व कप और विश्व चौंपियनशिप में अनेक पदक जीते हैं।

सांस्कृतिक एवं प्रतीकात्मक महत्व:

तीरंदाजी केवल युद्ध या खेल नहीं रही, बल्कि यह ध्यान, अनुशासन और एकाग्रता का प्रतीक भी रही है। भारत में यह योग और साधना से जुड़ी रही। लोककथाओं, नाटकों और मेलों में तीरंदाजी के प्रसंग आज भी जीवित हैं (जैसे रामलीला में राम का धनुष-भंग)।

वर्तमान स्वरूप:

खेल की प्रमुख विधाएँ:

- रिकर्व आर्चरी - ओलंपिक खेलों में प्रयुक्त।
- कम्पाउंड आर्चरी - आधुनिक तकनीक से विकसित।
- ट्रेडिशनल आर्चरी - सांस्कृतिक एवं पारंपरिक रूप।
- प्रतियोगिताएँ: ओलंपिक, एशियाई खेल, राष्ट्रमंडल खेल, विश्व चौंपियनशिप।
- उपकरणों में तकनीकी विकास - कार्बन-फाइबर बो, एरो-रेस्ट, साइटिंग डिवाइस।
- खेल विज्ञान का योगदान - बायोमैकेनिक्स, खेल मनोविज्ञान, आहार और प्रशिक्षण।

शोध परिकल्पना:

प्रस्तुत शोध कार्य हेतु निम्नलिखित परिकल्पनानिर्धारित की गई हैं-

1. जनजातीय क्षेत्र में आधुनिक एवं पारम्परिक खिलाड़ियों की नैतिकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है।

शोध परिसीमन:

1. प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा जिले तक सीमित रखा गया है।
2. प्रस्तुत शोध जनजातीय क्षेत्र के तीरदाज खिलाड़ियों तक सीमित रखा गया है।
3. प्रस्तुत शोध में आधुनिक एवं पारम्परिक तीरदाज खिलाड़ियों तक सीमित रखा गया है।
4. प्रस्तुत शोधकार्य तीरदाज छात्र एवं छात्रा तक सीमित रखा गया है।

शोध में प्रयुक्त परिभाषित शब्दावली:

1. जनजातीय क्षेत्र - जनजातीय क्षेत्रीय से तात्पर्य उस समुदाय से है जो आदिमकाल से ही क्षेत्र विशेष से निवास कर रहा है और जिन्हें सरकार द्वारा विशिष्ट जाति के रूप से सविधान में उल्लेखित किया गया हैं जनजाति क्षेत्र से तात्पर्य उस क्षेत्र विशेष से है जहाँ पर जनजाति के लोग निवास करते है। प्रस्तुत शोध में जनजाति क्षेत्र से तात्पर्य राजस्थान राज्य के जनजाति बहुल क्षेत्र यथा उदयपुर, डूंगरपुर एवं बांसवाड़ा जिले से है।
2. व्यक्तित्व - व्यक्तित्व का अर्थ है कि व्यक्ति के शारीरिक संगठन, कौशल, उसका ज्ञान, उसकी अभिरूचि अभिवृतियाँ, आदर्श, आकाक्षाएँ उसकी आदतें आदि। मनुष्य के सभी पक्षों शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विशेषताओं का समाकलित रूप उसका व्यक्तितव कहलाता है।

3. नैतिकता – नैतिकता से आशय व्यक्ति के अनुशासन कर्तव्यपरायणता, निष्पक्षता, शिष्टाचार, ईमानदारी, सहिष्णुता एवं खेल भावना से लिया गया है।
4 स्वास्थ्य – स्वास्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति के शारीरिक मानसिक, सेवगात्मकता, मनौवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक आदतों से लिया गया है।

शोध विधिः

प्रस्तुत शोध की प्रकृति को देखते हुए शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

शोध उपकरणः

प्रस्तुत शोधकार्य में शोधार्थी द्वारा दंतों का संकलन हेतु ''नैतिकता – स्वनिर्मित उपकरण'' उपकरण का प्रयोग किया गया।

न्यादश चयन :

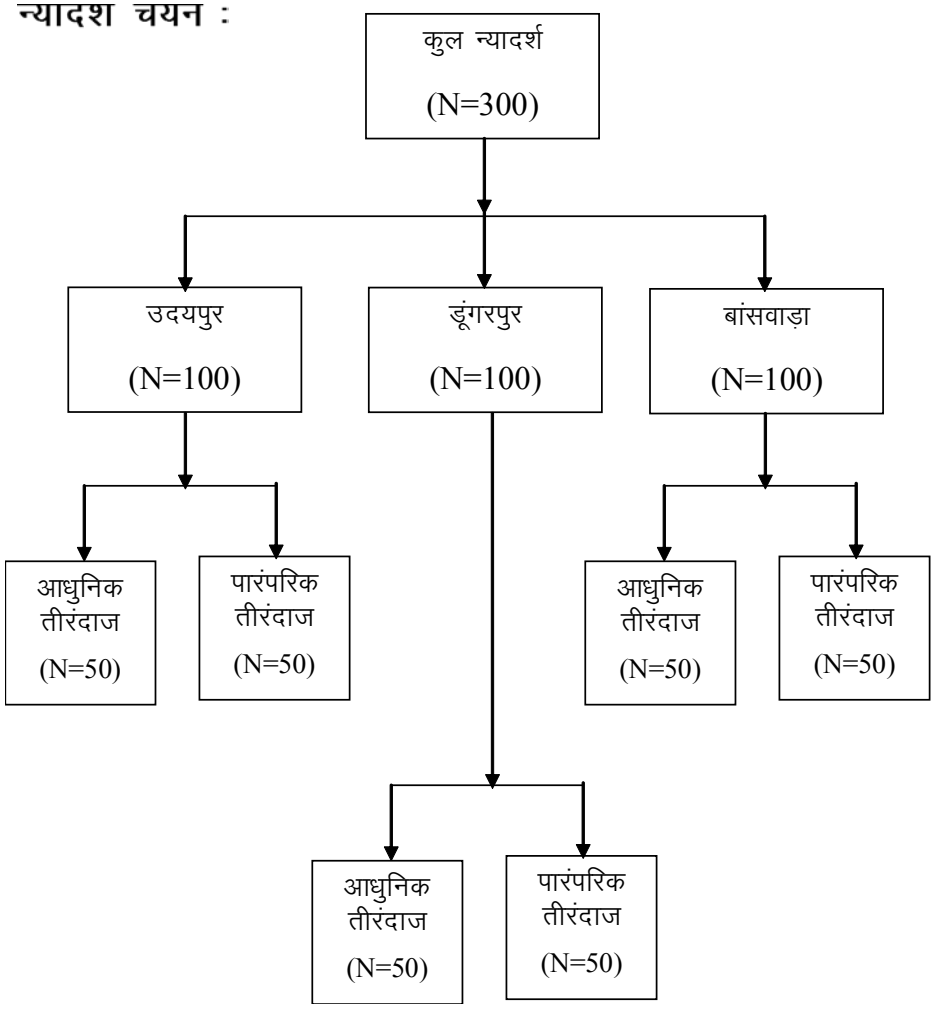

न्यादर्श चयनः

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकीः

प्रस्तुत शोध में निम्नांकित सांख्यिकीय का उपयोग किया गया।

- प्रतिशत
- मध्यमान
- मानक विचलन
- टी–परीक्षण

प्राप्त दत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्याः-

सारणीः आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो के नैतिकता का विश्लेषण

क.सं.	क्षेत्र		आधुनिक खिलाड़ी		पारम्परिक खिलाड़ी		आधुनिक खिलाड़ी	पारम्परिक खिलाड़ी
		N	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमान	मानक विचलन	प्रतिशत मध्यमान	प्रतिशत मध्यमान
1.	अनुशासन	**150**	32.6	7.3	24.00	4.5	65.3	48.0
2.	कर्त्तव्य पराणणता	**150**	30.4	8.5	26.7	5.4	60.9	53.4
3.	निष्पक्षता	**150**	32.9	7.5	25.3	2.5	65.9	50.5
4.	शिष्टाचार	**150**	34.9	7.2	24.8	2.8	69.7	49.6
5.	ईमानदारी	**150**	34.5	7.3	26.2	7.4	69.1	52.3
6.	सहिष्णुता	**150**	34.5	7.7	22.7	6.5	68.9	43.3
7.	मित्रवत एवं खेल भावना	**150**	3.5	6.4	25.6	6.0	70.0	51.1
	कुल		**234.9**	**18.9**	**175.2**	**12.2**	**67.1**	**50.00**

व्याख्याः

उपर्युक्त सारणी संख्या एवं आरेख संख्या 4.8 के अनुसार आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिक विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों का अनुशासन का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 234.9, 175.2 एवं 18.9, 12.2 पाया है एवं प्रतिशत मध्यमान क्रमश 67.1 एवं 50.00 पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो का प्रतिशत मध्यमान पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो से उच्च पाया जाता है। जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों का अनुशासन पारम्परिक खिलाड़ियो से उच्च होता है।

उपर्युक्त सारणी का क्षेत्रवार विश्लेषण इस प्रकार हैः

(1) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरदांज खिलाडियों के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषणः- आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिक विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों का अनुशासन का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 32.6, 24.00 एवं 7.3, 4.5 पाया है एवं प्रतिशत मध्यमान क्रमश 65.3 एवं 48.00 पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो का प्रतिशत मध्यमान पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो से उच्च पाया जाता है। जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों का अनुशासन पारम्परिक खिलाड़ियो से उच्च होता है।

(2) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के कर्तव्यपरायणता का सांख्यिकी विश्लेषणः- आधुनिक एवं पारम्परिक तीरदांज खिलाड़ियो के कर्तव्य परायणता संबंधी कथनों का साख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक एवं पारम्परिक तीरदांज खिलाडियों का मध्यमान व मानक विचलन क्रमशः 30.4, 26.7 एवं 8.5, 5.4 पाया गया है तथा प्रतिशत मध्यमान क्रमशः 60. 9, 53.4 पाया है। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो की कर्तव्यपरायणता पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो से उच्च पाया जाता है। जिससे स्पष्ट होता है, कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ी जनता पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों से अधिक कर्तव्यपरायण होते है।

(3) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के निष्पक्षता का साख्यिकी विश्लेषणः- आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के निष्पक्षता संबंधी कथनों का साख्यिकी विश्लेषण करने पर आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों का निष्पक्षता का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 32.9, 25.3 एवं 7.5, 2.5 पाया गया तथा प्रतिशत मध्यमान क्रमशः 65.9, 50.5 पाया गया। कतससं स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियों के निष्पक्षता संबधी प्रतिशत मध्यमान पारम्परिक

खिलाडियों से उच्च पाया जाता है। जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो की निष्पक्षता पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो से उच्च होती है।

(4) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो के शिष्टाचार का साख्यिकी विश्लेषण:- आधुनिक एवं पारम्परिक खिलाडियों के शिष्टाचार संबंधी कथनों का साख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के शिष्टाचार का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 34.9, 24.8 एवं 7.2, 2.8 प्रतिशत मध्यमान क्रमश: 69.7, 49.6 पाया है। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों का शिष्टाचार पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों से अधिक होता है। अत: आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों का शिष्टाचार पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों से अधिक होता है।

(5) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो के ईमानदारी का साख्यिकी विश्लेषण:- आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के ईमानदारी सबंधी कथनो का साख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के ईमानदारी का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 34.5, 26.02 एवं 7.3, 7.4 पाया गया। तथा मध्यमान प्रतिशत 69.1, 52.3 पाया गया। आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों की ईमानदारी पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों से अधिक पाया जाता है। जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो की ईमानदारी पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों से उच्च पाया जाता है।

(6) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो के सहिष्णुता का सांख्यिकी विश्लेषण:- आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के सहिष्णुता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के सहिष्णुता का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 34.5, 22.7 एवं 7.7, 6.5 पाया गया। तथा मध्यमान प्रतिशत 68.9, 45.3 पाया गया। आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों की सहिष्णुता पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो से अधिक होता है। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों की सहिष्णुता पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों से उच्च पायी जाती है।

(7) आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो के मित्रवत् एवं खेल भावना संबंधी कथनों का साख्यिकी विश्लेषण:-

आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के मित्रवत् एवं खेल भावना संबंधी कथनों का साख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया है कि आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 35.0, 25.6 एवं 6.4, 6.00 प्राप्त हुआ एवं प्रतिशत मध्यमान क्रमश: 70.0, 51.1 प्राप्त हुआ। जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों की भित्रवत् एवं खेल भावना पारम्परिक तीरदांज खिलाडियों से अधिक होती है। अत: आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों में मित्रवत् एवं खेल भावना पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों से उच्च होती है।

शोध निष्कर्ष:

आधुनिक एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिक विश्लेषण करने पर पाया गया कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो एवं पारम्परिक तीरंदाज खिलाडियों का अनुशासन का मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमश: 234.9, 175.2 एवं 18. 9, 12.2 पाया है एवं प्रतिशत मध्यमान क्रमश 67.1 एवं 50.00 पाया गया। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाड़ियो का प्रतिशत मध्यमान पारम्परिक तीरंदाज खिलाड़ियो से उच्च पाया जाता है। जिससे स्पष्ट होता है कि आधुनिक तीरंदाज खिलाडियों का अनुशासन पारम्परिक खिलाड़ियो से उच्च होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -::

1 Best, J.W.k~ : "Research in Education", New Delhi, Prentice Hall of India Pvt.k~ Ltd.k~ _1978¼
2 Borg Walter, R.k~ : "Educational Research an Introduction", New York Longmans, Green & Co.k~ Ltd., 1963.
3 Buch, M.B.k~ : "A Survey of Research in Education", Centre of Advanced Study in Education, Faculty of education & Psychology, M.S.k~ University of Baroda, India, 1974.
4 Buch, M.B.k~ : "Second Survey of Research in Education", Society for Educational Research & Development, Baroda, India, 1979.
5 Buch, M.B.k~ _1979¼ : "A second survey of research in education", Baroda society for educational researcher and development.
6 Fox, D.J.k~ : "The Research Process in Education", New York, Halt Rinehart and Winston., 1969
7 Good, C.V.k~ _1945¼ : "Dictionary of Education", McGraw Hill Book Co., U.S.A.
8 Good, C.V., Bar, A.S.k~ & Scater, D.E.k~ _1935¼ : "The Methodology of Educational Research".k~ Appleton Centaury Crofts.k~ Inc., New York.
9 गैरेट, हैनरी, ई., सांख्यिकी के मूल तत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
10 गैरेट, हैनरी, ई., ''शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी हिन्दी अनुवाद'' कल्याणी पब्लिशर्स, लुधियाना।
11 कौल, लोकेश, शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

12 भण्डारी, रणजीत सिंह, निर्देशन-संदिर्शका, शैक्षिक एवं व्यावसायिक यूनिट मनोवैज्ञानिक आधार प्रभाग-3, एस.आई.ई.आर.टी., उदयपुर।
13 कपिल, एच.के., अनुसंधान विधियॉं, हर प्रसाद भार्गव पुस्तक प्रकाशन, आगरा।
14 पाठक, पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
15 चौहान, एस.एस., ''एडवान्स एजूकेशनल साइकोलोजी''
16 बेस्ट, जे. डब्ल्यू., रिसर्च इन एज्युकेशन प्रिंटिंग हॉल ऑफ इण्डिया प्रा. लि. नई दिल्ली
17 गणेशन, एन.एस., अनुसंधान प्राविधि सिद्धांत और प्रक्रिया, इलाहाबाद
18 गैंड डी. एन. तथा शर्मा आर.पी., शैक्षिक एवं माध्यमिक शिक्षालय व्यवस्था, रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा।
19 जायसवाल डॉ. सीताराम, भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ
20 Jonson and Nelson, Measurement in Physical Education, W.B. Sunder Company, Philadelphia, 1984
21 Michelle P. Warren and Naama W. Constantini, Sports Endocrinology, United States : Humana Press Publisher, 2000.
22 Edward M. Winter, Sport and Exercise Physiology Testing Guideline, London, Taylor & Francis Publish, 2006.
23 Amusa, Laley O. : " The Relationship between Soccer Playing Ability and Selected Measure of Structure and Physical, Physiological performance on College Men", Completed Research in Health, Physical Education and Recreation, Vol. 21, p. 23, 2009.
24 Ogilivie, B.C. and Johnsberg, K.W. : "The personality of male players", Paper presented at American Academy of Physical Education, Los Vegas, Nevada, 2009
25 Long, Karen S. : Physical fitness of Secondary School Boys and Girls : A Comparison of two Programmes of Physical Education". Completed Research in Health, Physical Education and Recreation, Vol. 2, P. 97, 2009.
26 Barrow Herharoldon Megr Rosemaary Trickely Kathleeb "A Practical Measurement in Physical Education and Sports." Fourth Edition, 2009, U.S.A., Lea and febiger (UK) 145 A Croydon Road Beclcehham Kent, B.R. 3-3 R.D. U.K.
27 David Christian Dutler : "Anthropometric Strength and Performance Attitudes Among Good and Poor Vaulters", Completed Research in Health Physical Education and Recreation, 2010.
28 Robert Hindmarch : "The relationship between various anthropometric and physical Performance test and selected trunk flexibility criteria", Completed Research in Health, Physical Education and Recreation, Vol. 2, P. 59, 2010
29 Power, A. (2010) : Transforming the Nations Health : Next Steps in Mental health Promotion, American Journal of public Health, 100(12), 2343-6.
30 Encyclopedia of sports science and medicine : S.V. Statue by Cart E. Willgoose, Vol. XII, 2010.
31 Ferrer Hombravella H. : "Psychic and somatic pathological effects of precocious competition". In. G. Kenyon (Ed.) Contemporary Psychology of Sport, Proceed : International Congress of Sport Psychology, The Athletic Inst. Chicago, 2010.
32 Hasen, Kjoss Benet. : "Prediction of Sports Competitive State Anxiety Among Coaches and Athletes". Dissertation Abstracts International, Vol. 44, P. 3009-A, 2010.
33 Adward F. Alolf (1974), "Some physiological regulation illustrate in exercise", Science & Medicine of exercise & sports, Harper & Raw publishers, New York,
34 Booth Jr. E.G. & G.E. Booth, "Personality Traits of Athletes as Measured by Minnesota Multiphase Personality Inventory." Research Quarterly, Vol.29, P. 127-137.
35 Brackmeier, Fredrick, "Personality Types/Traits, Interactions and Jury Decision Making", Ph.D. Union Institute & University, P. 158.
36 Brayant J. Kretty, "Psychology and Physical Activity", Anglewood Cliffns, Prentice Hall, New Jersy, Pg. 15
37 Charlel V. Karvin & Sir Laines, "Finess for Life", Sports Forman & Co., New Jersy, Pg. 7.

उच्च माध्यमिक स्तर के वॉलीबॉल खिलाडियों की नैतिकता का अध्ययन

नरेश पालीवाल

शोधाकर्ता

डॉ० तिलकेश आमेटा

शोधकर्ता, सहायक आचार्य, शिक्षा संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड-टू-बी विश्वविद्यालय)

प्रस्तावना :-

वर्तमान अध्याय में शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर शोध निष्कर्ष, सुझाव व सारांश प्रस्तुत किए गए हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों-शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक स्वास्थ्यख्रका अध्ययन करना था।

शोध के अंतर्गत एकत्रित आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण मध्यमान एवं मानक विचलन की सहायता से किया गया। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह अध्याय तैयार किया गया है। इस अध्याय में अध्ययन के मुख्य निष्कर्ष, परिणामों की व्याख्या, अध्ययन की उपयोगिता तथा भविष्य के लिए सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं।

खिलाड़ियों के सर्वांगीण विकास के लिए खेलकूल से उनके जीवन में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल होती है। इस उपलब्धि को हासिल करने के लिए एक विशेष प्रकार की रचना का होना अत्यन्त आवश्यक है। इन कियाओं को पूर्ण करने के लिए कौशल निपुणता और प्रवीणता प्राप्त करना होता है। आधुनिक युग में शोध कर विद्वानों ने इस बात को सिद्ध किया है कि विभिन्न खेलों में सफल प्रदर्शन हेतु उस खेल की तकनीकी की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

आज विश्व तकनीकी युग में प्रवेश कर चुका है। इस परिवर्तनशील युग में मानव का व्यवहार उसकी अभिवृत्तियां अपेक्षाएं उसका व्यक्तित्व, स्वास्थ्य का स्तर उसके नैतिक तथा मानवीय मूल्यों, उसका कार्यशैली आदि सभी में परिवर्तन आ रहे है। उसके कारण उनके सामाजिकरण की प्रक्रिया में भी जटिलताएं आ रही है।

वर्तमान समय में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालकों का सर्वांगीण विकास करना है। इस दृष्टि से विद्यालयों के दायित्व पहले की अपेक्षा बढ़ गये है। इब विद्यालय में समुचित साधन सुविधाएं जुटाई जाती है। बालकों के व्यक्तित्व का निर्माण करके उन्हें भावी जीवन के लिए दक्ष बनाया जाता है।

आज की शारीरिक शिक्षा व्यक्ति का केवल शारीरिक विकास ही नहीं करती है। अपितु मानसिक सामाजिक संवेगात्मक एवं आध्यात्मिक विकास भी करती है। अर्थात् सर्वांगीण विकास करता है। विभिन्न प्रकार के व्यक्तिगत तथा सामूहिक खेलों को खेलते समय स्वाभाविक रूप से प्रतियोगिता की भावना जागृत होती है। इसी भावना से वह खेल में भाग लेता है और पूरी शक्ति से जीतने का प्रयास करता है।

खिलाड़ी के सर्वांगीण विकास के लिए खेलकूद का उसके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। जिसके परिणामस्वरूप उसे खेल जगत में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल होती है। इन उपलब्धियों को हासिल करने के लिए एक विशेष प्रकार की रचना का होना अत्यंत आवश्यक है। इन कियाओं को पूर्ण करने के लिए कौशल

निपुणता और प्रवीणता प्राप्त करना होता है। आधुनिक युग में शोध कर विद्वानों ने इस बात को सिद्ध किया है कि विभिन्न खेलों में सफल प्रदर्शन हेतु उस खेल की तकनीकी जानकारी अत्यन्त आवश्यक है।

वॉलीबाल :-

वॉलीबाल का खेल दो टीमों द्वारा खेला जाता है जिनमें से प्रत्येक में छह खिलाड़ी होते है। दोनों टीमों को एक जाल द्वारा अलग किया गया है और खेल का उद्देश्य है गेंद को नेट के पाल भेजे और इसे प्रतिद्वंद्वी के कोर्ट पर ग्राउंड करें। प्रतिद्वंद्वी टीम को इसे रोकना होगा। वॉलीबाल कोर्ट के आयामा है-18मीटर गुणा 9 मीटर।

सीमा रेखाएं :-

1. सेमा रेखए कोर्ट के चारों ओर आयताकार आकार में फैली हुई है।
2. अंतिम पंक्तियां कोर्ट के छोटे किनारों पर मौजूद है।
3. किनारे के लंबे किनारों पर लंबी सीमा रेखाएं होती है।
4. रेखाएं 5 सेण्टिमीटर चौड़ी होती है।

केन्द्र रेखा :-

1. केन्द्र रेखा नेट के नीचे किनारे से किनारे तक फैली हुई है।
2. केन्द्र रेखा कोर्ट के खेल क्षेत्र को दो बराबर हिस्सों में विभाजित करती है।
3. केन्द्र रेखा 30 गुणा 30 फीट होती है।

आकामक पंक्तिः-

आक्रमण रेखाएं केन्द्र रेखा से 3 मीटर की दूरी पर स्थित रेखाएं होती है. कोर्ट आक्रमण रेखा किनारे से किनारे तक फैली हुई है।

सर्विस ऐरिया :-

1. सर्विस क्षेत्र अंतिम लाइन के पीछे का क्षेत्र है जहां सर्वर होता है।
2. सर्विस क्षेत्र 30 फीट चौड़ा है।
3. दोनों सर्विस क्षेत्र 2 मीटर गहराई में हैं।

प्रतिस्थापन क्षेत्र :-

प्रतिस्थापन क्षेत्र आक्रमण रेखा और केन्द्र रेखा के बीच का क्षेत्र है। यह वह क्षेत्र है जहां प्रतिस्थापन होता है। प्रतिस्थापन अनुरोध केवल तभी किया जाता है जब कोई विकल्प इसमें प्रवेश करता है। प्रतिस्थापन क्षेत्र का मतलब है कि कोच या कप्तान अनुरोध नहीं कर सकते है।

मैच पाँच सेटों में से सर्वश्रेष्ठ खेले जाते है। पहले चार सेट खेले जाते हैं 25 अंक, अंतिम सेट 15 अंक तक खेला जाता है। एक टीम को एक सेट 2 अंक जीतना होता है, कोई सीमा नहीं है इसलिए एक सेट एक टीम तक जारी रहता है। दो अंक का लाभ मिलता है। पहले सभी सेट 15 अंक के होत है। पहले चार सेट में 17 की अधिकतम सीमा होती है और अंतिम सेट में कम से कम दो अंक जीतने के लिए आवश्यकता होती है।

आधुनिक युग में शिक्षा के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा का उतना ही महत्वपूर्ण है जितना शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर वॉलीबाल खेल को बढ़ावा देने एवं उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु कई शोध हुए है। लेकिन उच्च माध्यमिक स्तर पर वॉलीबाल खेल को बढ़ावा देते एवं उत्कृष्ट प्रदर्शन हेतु शोधार्थी के मस्तिष्क में कई प्रश्न उभरे हैं जो इस प्रकार है-

1. वॉलीबाल खिलाडियों का व्यक्तित्व किस तरह का होता है
2. वॉलीबॉल खिलाडियों की सामाजिक उपलब्धियां कौन-कौनसी है?
3. वॉलीबॉल खिलाड़ियों का शारीरिक स्वास्थ्य कैसा है?
4. गैर खिलाड़ियों का व्यक्तित्व एवं शारीरिक स्वास्थ्य किस तरह का है.?
5. वॉलीबॉल खिलाडी एवं गैर खिलाड़ियों के व्यक्तित्व, शारीरिक स्वास्थ्य एवं सामाजिक उपलब्धियों में क्या भिन्नता है[१]

इन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की जिज्ञासा ने ही शोधार्थी को उक्त विषय में कार्य करने हेतु प्रेरित किया है।

शोध परिसीमन :-

प्रस्तुत शोध में निम्नलिखित परिसीमाएं निर्धारित की -

1. प्रस्तुत शोध कार्य उच्च माध्यमिक स्तर के वॉलीबॉल खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ियों तक सीमित रखा।
2. प्रस्तुत शोध कार्य कक्षा 11वीं एवं 12वीं में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं तक सीमित रखा।
3. प्रस्तुत शोध कार्य उदयपुर जिले तक सीमित रखा।

शोध विधि :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन की समस्या की प्रकृति को देखते हुए शोधार्थी द्वारा शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया।

शोध में प्रयुक्त शब्दों का पारिभाषीकरण :-

(1) उच्च माध्यमिक स्तर :- उच्च माध्यमिक स्तर से आशय सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 10वीं एवं 12वीं के खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ी विद्यार्थियों से है।

(2) व्यक्तित्व : - हर एक व्यक्ति में कुछ विशेषताएं होती है, जिनके आधार परवह परिस्थितियों के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाओं को हम एक शब्द में व्यक्तित्व कहते हैं। व्यक्ति से ही व्यक्ति के आकर्षण का पता चलता है। कुछ लोग आशावादी होते है. और कुछ निराशावादी यह आपकों व्यक्ति के व्यक्तित्व से पता चलता है।

(3) सामाजिक उपलब्धि :- समाजिक उपलब्धि से आशय खिलाड़ी एवं गैर खिलाड़ियों के अनुशासन, कर्तव्यपरायणता, निष्पक्षता, शिष्टाचार, ईमानदारी, सहिष्णुता, मित्रता एवं खेल भावना से लिया गया।

(4) शारीरिक स्वास्थ्य :- शारीरिक स्वास्थ्य से आशय खिलाड़ियों एवं गैर खिलाड़ियों की शारीरिक क्षमता, गति, मांसपेशीय क्षमता, सहनशीलता, शक्ति, चपलता आदि से लिया गया है।

समस्या का औचित्य :-

विद्यार्थी देश का भविष्य होता है। उनका सर्वांगीण विकास देश की उन्नति में सहायक के लिए उपयोगी नागरिक बन सके और इस पवित्र कार्य को सम्पादित करने का दायित्व शिक्षक का ही लें

विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्वक, व्यवहारिक मूल्य परक एवं रोजगारपरक शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा भी दी जानी उचित है। यह शिक्षा छात्रों के लिए रोजगार के साथ शारीरिक स्वास्थ्य पर भी लाभदायक सिद्ध होती है।

प्रस्तुत शोध कार्य खिलाडियों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। साथ ही खिलाड़ियों के व्यक्तित्व, शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक उपलब्धि एवं सर्वागीण विकास के लिए विशिष्ट महत्व रखता है।

शोध में प्रयुक्त न्यादर्श :-

प्रस्तुत शोध में प्रयुक्त न्यादर्श इस प्रकार है-

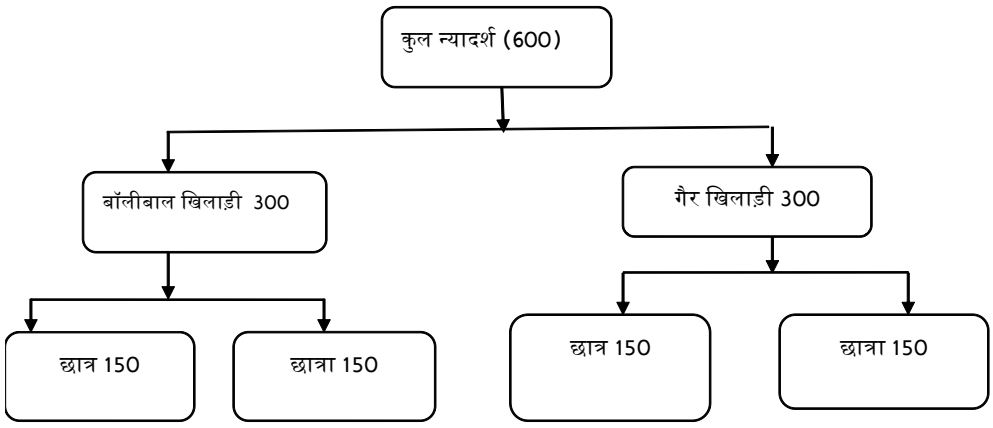

शोध उपकरण :- प्रस्तुत शोध अध्ययन में स्वनिर्मित उपकरण उपकरण का प्रयोग किया।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी :-

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ती द्वारा तथ्यों के विश्लेषण हेतु निम्नलिखित सांख्यिकी का उपयोग किया-

1. मध्यमान
2. प्रमाप विचलन
3. टी-परीक्षण

प्राप्त दत्तों का विश्लेशण

सारणी: वालीबाल खिलाडियो की नैतिकता सांख्यिकी विश्लेषण

	N	खिलाड़ी मध्यमान	मानक विचलन
अनुशासन	150	27.3	7.3
कर्तव्य परायणता	150	27.6	7.2
निष्पक्षता	150	28.1	6.5
शिष्टाचार	150	28.8	7.2
ईमानदारी	150	29.4	8.2
सहिष्णुता	150	27.6	8.1
मित्रवत एवं खेल भावन	150	29.02	6.5
कुल	150	198.00	51.00

व्याख्य:

1. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। अनुशासन का मध्यमान 27.3 तथा मानक विचलन 7.3 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में अनुशासन का स्तर संतोषजनक पाया गया है। खेल गतिविधियों में नियमित भागीदारी के कारण खिलाड़ियों में नियमों का पालन करने, समय का सदुपयोग करने तथा संगठित व्यवहार अपनाने की प्रवृत्ति विकसित होती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि खेल गतिविधियां विद्यार्थियों में अनुशासन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
2. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के कर्तव्य परायणता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :-महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के कर्तव्य परायणता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। कर्तव्य परायणता का मध्यमान 27.6 तथा मानक विचलन 7.2 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूकता तथा उत्तरदायित्व की भावना विद्यमान है। खेल गतिविधियों के माध्यम से खिलाड़ी टीम, नियमों तथा प्रशिक्षक के निर्देशों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझते हैं, जिससे उनमें कर्तव्यपरायणता का विकास होता है।
3. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के निष्पक्षता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :-महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के निष्पक्षता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। निष्पक्षता का मध्यमान 28.1 तथा मानक विचलन 6.5 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि खिलाड़ियों में निष्पक्ष व्यवहार करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। खेल प्रतियोगिताओं के दौरान नियमों का पालन, निर्णयों का सम्मान तथा प्रतिस्पर्धा के बावजूद न्यायपूर्ण व्यवहार करना खिलाड़ियों की प्रमुख विशेषता होती है।
4. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के शिष्टाचार संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के शिष्टाचार संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। शिष्टाचार का मध्यमान 28.8 तथा मानक विचलन 7.2 प्राप्त हुआ। प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में शिष्टाचार, विनम्रता तथा सामाजिक व्यवहार की भावना विद्यमान रहती है। खेल गतिविधियों में परस्पर सहयोग, आदर और सम्मान की भावना के कारण खिलाड़ियों में शिष्टाचार का विकास होता है।

5. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के ईमानदारी संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के ईमानदारी संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। ईमानदारी का मध्यमान 29.4 तथा मानक विचलन 8.2 प्राप्त हुआ। यह दर्शाता है कि खिलाड़ियों में ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा का स्तर अपेक्षाकृत अधिक पाया गया है। खेल के दौरान नियमों का पालन, गलत साधनों से बचना तथा निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा करना खिलाड़ियों में ईमानदारी के गुण को विकसित करता है।
6. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के सहिष्णुता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के सहिष्णुता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। सहिष्णुता का मध्यमान 27.6 तथा मानक विचलन 8.1 प्राप्त हुआ। इससे यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में धैर्य, सहनशीलता तथा विपरीत परिस्थितियों में भी संतुलित व्यवहार बनाए रखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। खेलों के माध्यम से खिलाड़ी हार-जीत दोनों परिस्थितियों को स्वीकार करना सीखते हैं, जिससे उनमें सहिष्णुता का विकास होता है।
7. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के मित्रवत एवं खेल भावना संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के मित्रवत एवं खेल भावना संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। मित्रवत एवं खेल भावना का मध्यमान 29.02 तथा मानक विचलन 6.5 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में सहयोग, मित्रता तथा सकारात्मक प्रतिस्पर्धा की भावना विद्यमान रहती है। खेल गतिविधियों के माध्यम से खिलाड़ी टीम भावना, सहयोग तथा पारस्परिक सम्मान के गुणों को विकसित करते हैं।
8. महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के कुल नैतिक मूल्यों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर खिलाड़ीयो के कुल नैतिक मूल्यों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। कुल नैतिक मूल्यों का मध्यमान 198.00 तथा मानक विचलन 51.00 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में अनुशासन, कर्तव्यपरायणता, निष्पक्षता, शिष्टाचार, ईमानदारी, सहिष्णुता तथा खेल भावना जैसे नैतिक मूल्यों का स्तर संतोषजनक पाया गया है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि खेल गतिविधियां विद्यार्थियों के व्यक्तित्व तथा नैतिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सारणी: गैर खिलाडियो की नैतिकता का सांख्यिकी विश्लेषण

	N	खिलाड़ी मध्यमान	मानक विचलन
अनुशासन	150	23.6	3.3
कर्तव्य परायणता	150	23.0	3.9
निष्पक्षता	150	23.3	3.7
शिष्टाचार	150	24.3	.9
ईमानदारी	150	24.7	6.7
सहिष्णुता	150	24.3	5.0
मित्रवत एवं खेल भावना	150	23.2	5.9
कुल	150	166.4	29.4

व्याख्या:

1. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के अनुशासन संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। अनुशासन का मध्यमान 23.6 तथा मानक विचलन 3.3 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में अनुशासन का स्तर संतोषजनक पाया गया है। खेल गतिविधियों में नियमित भागीदारी के कारण खिलाड़ियों में नियमों का पालन करने, समय का सदुपयोग करने तथा व्यवस्थित जीवन शैली अपनाने की प्रवृत्ति विकसित होती है।
2. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के कर्तव्य परायणता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के कर्तव्य परायणता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। कर्तव्य परायणता का मध्यमान 23.0 तथा मानक विचलन 3.9 प्राप्त हुआ। प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट होता है कि

खिलाड़ी अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक तथा उत्तरदायी होते हैं। खेल गतिविधियों में भाग लेने से उनमें जिम्मेदारी की भावना तथा अपने कार्यों के प्रति समर्पण का विकास होता है।

3. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के निष्पक्षता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के निष्पक्षता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। निष्पक्षता का मध्यमान 23.3 तथा मानक विचलन 3.7 प्राप्त हुआ। इससे यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में निष्पक्ष व्यवहार करने तथा नियमों का पालन करने की प्रवृत्ति विद्यमान है। खेल प्रतियोगिताओं के दौरान निष्पक्षता और न्यायपूर्ण व्यवहार खिलाड़ियों की प्रमुख विशेषता होती है।
4. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के शिष्टाचार संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के शिष्टाचार संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। शिष्टाचार का मध्यमान 24.3 तथा मानक विचलन 0.9 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में विनम्रता, सभ्यता तथा आदरपूर्ण व्यवहार की भावना पाई जाती है। खेल गतिविधियों में परस्पर सहयोग और सम्मान के कारण खिलाड़ियों में शिष्टाचार का विकास होता है।
5. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के ईमानदारी संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के ईमानदारी संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। ईमानदारी का मध्यमान 24.7 तथा मानक विचलन 6.7 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में ईमानदारी तथा सत्यनिष्ठा का स्तर पाया जाता है। खेल प्रतियोगिताओं में नियमों का पालन करना तथा निष्पक्ष खेल भावना रखना खिलाड़ियों में ईमानदारी के गुण को विकसित करता है।
6. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के सहिष्णुता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के सहिष्णुता संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (छ) 150 है। सहिष्णुता का मध्यमान 24.3 तथा मानक विचलन 5.0 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में धैर्य, सहनशीलता तथा विपरीत परिस्थितियों में भी संतुलित व्यवहार बनाए रखने की प्रवृत्ति पाई जाती है। खेलों के माध्यम से खिलाड़ी हार-जीत दोनों परिस्थितियों को स्वीकार करना सीखते हैं।
7. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के मित्रवत एवं खेल भावना संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण :- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के मित्रवत एवं खेल भावना संबंधी कथनों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। मित्रवत एवं खेल भावना का मध्यमान 23.2 तथा मानक विचलन 5.9 प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में सहयोग, मित्रता तथा सकारात्मक प्रतिस्पर्धा की भावना विद्यमान रहती है। खेल गतिविधियों के माध्यम से खिलाड़ी टीम भावना और सहयोग की भावना को विकसित करते हैं।
8. महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के कुल नैतिक मूल्यों का सांख्यिकी विश्लेषण:- महाविद्यालय स्तर पर गैर खिलाडियो के कुल नैतिक मूल्यों का सांख्यिकी विश्लेषण करने पर पाया गया कि खिलाड़ियों की संख्या (N) 150 है। कुल नैतिक मूल्यों का मध्यमान 166.4 तथा मानक विचलन 29.4 प्राप्त हुआ। प्राप्त आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि खिलाड़ियों में अनुशासन, कर्तव्यपरायणता, निष्पक्षता, शिष्टाचार, ईमानदारी, सहिष्णुता तथा खेल भावना जैसे नैतिक मूल्यों का स्तर संतोषजनक पाया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि खेल गतिविधियाँ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व तथा नैतिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष :-

वालीबाल खिलाडियो की नैतिकता सांख्यिकी विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि वालीबाल खिलाडियो की नैतिकता का कुल मध्यमान 198.00 तथा मानक विचलन 51.00 प्राप्त हुआ। यह परिणाम दर्शाता है कि उत्तरदाताओं की नैतिकता स्तर संतोषजनक पाया गया।

नैतिकता व्यक्ति की दैनिक जीवन की क्रियाओं को प्रभावी ढंग से करने की क्षमता को प्रभावित करता है। अच्छा अनुशासन,कर्तव्य परायणता,निष्पक्षता,शिष्टाचार तथा मित्रवत एवं खेल भावना को बढ़ाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. रिद्वान दगदेमीर, सेरकन तेवबिल औका (2019)अलग-अलग अध्ययन करने वाले छात्रों के दृष्टिकोण पर तुलनात्मक अध्ययन, शारीरिक शिक्षा, खेल के प्रति उच्च विद्यालयों प्रकार सबक एशियन जर्नल ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेंनिग, 5(4) 609-615.प्रकाशन-एशियन ऑनलाइन जर्नल पब्लिशिंग ग्रुप।

2. गु. एक्स और झांग टी 2016 बच्चों की प्रेरणा में परिवर्तन शारीरिक शिक्षा और शारीरिक गतिविधि में एक अनुदैर्ध्य परिपेक्ष्य, शारीरिक शिक्षा में अग्रिम 6,205-12.https://doi.org/10.4236/ape.2016.63022
3. उलूइस्क 2016 कक्षा लिंग के अनुसार शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम के प्रति माध्यमिक विद्यालय के छात्रों के दृष्टिकोण की जांच की। इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टी डिसिप्लनरी एकेडमिक रिसर्च, 2(3)45-53.
4. स्वास्थ्य वर्धक शारीरिक गतिविधि पर विशेषज्ञ समूह (2014) यूरोपीय संघ का काम खेल के लिए योजना 2014-2017 यूरोपीय आयोग से लिया गया वेबसाइड http://ec.europa.eu/transparency/regexpert/ index-CFm dj group detail-group detail doc और आईडी 19,860 ओर कोई = 1
5. रोग नियन्त्रण एवं निवारक केन्द्र 2014 राज्य सूचक शारीरिक गतिविधि रिपोर्ट 2014. https://doi-org/10.3945/an.1141007.2011
6. ग्रास्टन ए. जाकोला टी. लियुकोनेन जे. वाट. ए. और यली पिपरी एस. 2012 स्कूल शिक्षा में आनन्द की भविष्यवाणी स्पोर्ट्स सांइस एंड मेडिसन जर्नल, 11, 260-269.https://doi.org/10.1111/josh. 12228
7. कोलक्विट, जी. वॉकर ए. लैगंडन जे. मैकलम एस. और पोमाजल एम. (2012) शारीरिक शिक्षा और छात्र के दृष्टिकोण की खोज और नीति के लिए निहितार्थ खेल वैज्ञानिक और व्यवहारिक पहलु 2.5-12.
8. बाल्यान, एम.वाई.बी. Kiremitei2012, दृष्टिकोण सामाजिक कौशल और आत्म प्रभावशीलता के स्तर पर विभिन्न खेल गतिविधियों के प्रभाव प्राथमिक स्कूल के छात्रों की शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम सेल्कुक यूनिवर्सिटी जर्नल ऑफ फिजिकल एज्यूकेशन एण्ड स्पोर्ट्स साइंस 14(2)196-201.
9. इक्यासी एट अल., हैकफरोउलू और ए. बेशकदार (2011) शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम का मूल्यांकन हाई स्कूल के छात्रों का दृष्टिकोण जर्नल का मानव विज्ञान, 8(1)329-839.

बदलते परिदृश्य में संयुक्त परिवार का एक समाजशास्त्रीय अध्ययनः जनपद सिद्धार्थनगर के विशेष संदर्भ में

डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार सोनकर

शोध निर्देशक, प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी0जी0 कालेज, महाराजगंज

दया शंकर

शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी0जी0 कालेज, महाराजगंज

सारांश

भारतीय समाज की सांस्कृतिक धरोहर में संयुक्त परिवार प्रणाली का महत्वपूर्ण स्थान रहा है, जो आर्थिक सहयोग, भावनात्मक सुरक्षा और सामाजिक मूल्यों के हस्तांतरण का माध्यम रही है। हालाँकि, वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव से, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, इसकी पारंपरिक संरचना में बदलाव आ रहे हैं। सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश में संयुक्त परिवार प्रणाली का अध्ययन कर यह शोध-पत्र बदलते परिदृश्य पर केंद्रित है। यहाँ, शहरीकरण और आधुनिकता के बावजूद यह प्रणाली पूरी तरह विलुप्त नहीं हुई है, बल्कि इसका स्वरूप बदल रहा है। परिवारों का आकार छोटा हो रहा है, व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर बढ़ रहा है, और पारिवारिक संबंधों का स्वरूप बदल रहा है। इन परिवर्तनों के सकारात्मक पहलू व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समानता की संभावना को बढ़ाते हैं, जबकि नकारात्मक पहलू सामाजिक विघटन और परंपरागत मूल्यों के क्षरण की आशंका को जन्म देते हैं। सिद्धार्थनगर जैसे क्षेत्रों में इन परिवर्तनों का गहन अध्ययन आवश्यक है ताकि पारंपरिक और आधुनिक आवश्यकताओं का संतुलन बनाया जा सके और परिवार की संस्था अपनी केंद्रीय भूमिका को बनाए रख सके।

मुख्य शब्दः सांस्कृतिक धरोहर, स्वतंत्रता और समानता, समाजशास्त्रीय, संयुक्त परिवार।

प्रस्तावना

भारतीय समाज अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर और सामाजिक संरचनाओं के लिए विश्व में जाना जाता है। इन सामाजिक संरचनाओं में संयुक्त परिवार प्रणाली का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यह प्रणाली न केवल आर्थिक सहयोग और भावनात्मक सुरक्षा का केंद्र रही है, बल्कि सामाजिक मूल्यों, परंपराओं और सांस्कृतिक विरासत के हस्तांतरण का एक प्रमुख माध्यम भी रही है। हालाँकि, वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, शहरीकरण और बदलती जीवनशैली के प्रभाव से भारतीय समाज में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, संयुक्त परिवार की पारंपरिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे जा रहे हैं। इन परिवर्तनों का अध्ययन समाजशास्त्र के लिए एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। यह शोध-पत्र जनपद सिद्धार्थनगर के विशेष संदर्भ में बदलते परिदृश्य में संयुक्त परिवार के समाजशास्त्रीय अध्ययन पर केंद्रित है। सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित एक ऐसा जनपद है जहाँ अभी भी संयुक्त परिवार प्रणाली का प्रभाव देखा जाता है, परंतु यहाँ भी शहरीकरण और आधुनिकीकरण के प्रभाव से इसके स्वरूप में बदलाव आ रहे हैं। इस अध्ययन का उद्देश्य इन परिवर्तनों के कारणों, स्वरूपों और समाज पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण करना है।

संयुक्त परिवार की पारंपरिक अवधारणा और महत्व

संयुक्त परिवार, भारतीय समाज की एक मौलिक इकाई है, जहाँ तीन या अधिक पीढ़ियाँ एक साथ निवास करती हैं, एक रसोई में भोजन करती हैं, और संपत्ति को साझा करती हैं। इस व्यवस्था में, परिवार के सभी सदस्य, चाहे वे किसी भी उम्र या लिंग के हों, एक दूसरे के प्रति दायित्वों और कर्तव्यों से बंधे होते हैं। परिवार का मुखिया, जो सामान्यतः सबसे बड़ा पुरुष सदस्य होता है, परिवार के सभी सदस्यों के लिए निर्णय लेता है और उनका मार्गदर्शन करता है। संयुक्त परिवार केवल रहने की एक व्यवस्था मात्र नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक स्थिरता और भावनात्मक संबल का एक मजबूत स्तंभ रहा है। यह बच्चों के सामाजिकीकरण, नैतिक मूल्यों के विकास और बुजुर्गों की देखभाल के लिए एक आदर्श वातावरण प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, संयुक्त परिवार संपत्ति

के प्रबंधन, कृषि कार्य के संपादन और पारिवारिक व्यवसायों को चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। साझा आय और व्यय की व्यवस्था आर्थिक कठिनाइयों में एक दूसरे का सहारा बनने में सहायक होती थी।

परिवर्तन के कारक

आधुनिकता की लहर ने भारतीय समाज के हर पहलू को छुआ है, और संयुक्त परिवार प्रणाली भी इससे अछूती नहीं रही है। संयुक्त परिवार के विघटन और एकाकी परिवारों के उदय के पीछे कई कारक जिम्मेदार हैं।

आधुनिकीकरण और पश्चिमीकरण

पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव, विशेषकर शिक्षा, जीवनशैली और उपभोक्तावाद के प्रसार ने पारंपरिक मूल्यों और संरचनाओं को चुनौती दी है। पश्चिमी संस्कृति में व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता और व्यक्तिगत उपलब्धि पर जोर दिया जाता है, जो संयुक्त परिवार की सामूहिक भावना के विपरीत है।

शहरीकरण और पलायन

रोजगार के अवसरों की तलाश में ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन हुआ है। शहरों में रहने की सीमित जगह, अधिक खर्च और अलग जीवनशैली की अपेक्षाओं ने लोगों को छोटे, एकांकी परिवार बनाने के लिए प्रेरित किया है।

शिक्षा और जागरूकता का प्रसार

शिक्षा के प्रसार ने विशेषकर महिलाओं में चेतना जागृत की है। वे अब अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रति अधिक सचेत हैं और पारंपरिक बंधनों से मुक्त होना चाहती हैं। बेहतर शिक्षा और रोजगार के अवसर उन्हें आर्थिक रूप से स्वतंत्र बना रहे हैं, जिससे वे अपने निर्णय स्वयं ले सकती हैं।

आर्थिक परिवर्तन

कृषि आधारित अर्थव्यवस्था से सेवा और उद्योग आधारित अर्थव्यवस्था की ओर परिवर्तन ने पारिवारिक आय के स्रोतों को बदला है। पहले जहाँ परिवार की आय कृषि पर निर्भर होती थी, वहीं अब सदस्यों की आय विभिन्न क्षेत्रों से आती है, जिससे व्यक्तिगत वित्तीय स्वतंत्रता बढ़ी है।

तकनीकी प्रगति

संचार प्रौद्योगिकी, विशेषकर मोबाइल फोन और इंटरनेट के प्रसार ने परिवारों के सदस्यों को भौगोलिक दूरी के बावजूद जुड़े रहने का अवसर दिया है। हालाँकि, इसने अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत दुनिया को भी बढ़ावा दिया है, जहाँ लोग अपने आभासी समुदायों में अधिक समय बिताते हैं।

सिद्धार्थनगर में संयुक्त परिवार का बदलता स्वरूप

सिद्धार्थनगर, एक कृषि प्रधान और अपेक्षाकृत कम शहरीकृत जनपद होने के बावजूद, इन परिवर्तनों से अछूता नहीं है। यहाँ संयुक्त परिवार की संरचना में कई तरह के बदलाव देखे जा रहे हैं।

आंशिक विभाजन और नई संरचनाएँ

पूर्णत: विघटित न होकर, कई परिवार आंशिक रूप से विभाजित हो रहे हैं। भाई अलग-अलग घरों में रहते हैं, लेकिन आर्थिक और सामाजिक रूप से जुड़े रहते हैं। इसे 'आंशिक संयुक्त परिवार' या 'विस्तारित एकाकी परिवार' की श्रेणी में रखा जा सकता है। ऐसे परिवारों में, पिता अपनी पुरानी संपत्ति का हिस्सा लेकर अलग हो जाता है, लेकिन अक्सर उसी गाँव या आस-पास के क्षेत्र में रहता है। वे अभी भी पारिवारिक आय, बच्चों की शिक्षा और विवाह जैसे महत्वपूर्ण निर्णयों में एक दूसरे से सलाह लेते हैं।

शहरी प्रभाव और बदलती अपेक्षाएँ

जनपद मुख्यालय और कस्बों में, जहाँ शिक्षा और व्यावसायिक अवसरों की उपलब्धता थोड़ी अधिक है, वहाँ शहरीकरण का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। युवा पीढ़ी, जो शहरी जीवनशैली से प्रभावित है, पारंपरिक संयुक्त परिवार के रहन सहन के तरीकों को बोझिल मानने लगी है। वे अधिक स्वतंत्रता, गोपनीयता और व्यक्तिगत पसंद की इच्छा रखते हैं, जो एकाकी परिवार में संभव है।

महिलाओं की बदलती भूमिका

शिक्षा और रोजगार के कारण महिलाओं की समाज में भूमिका तेजी से बदल रही है। वे अब केवल गृहणी तक सीमित नहीं हैं, बल्कि परिवार की आय में भी योगदान दे रही हैं। इससे परिवार में उनकी स्थिति मजबूत हुई है, और वे निर्णयों में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने लगी हैं। यह संयुक्त परिवार के पारंपरिक पितृसत्तात्मक ढांचे में भी बदलाव ला रहा है।

पारिवारिक मूल्यों में परिवर्तन

संयुक्त परिवार में जहां बड़े बुजुर्गों का सम्मान और उनकी बात को अंतिम माना जाता था, वहीं अब युवा पीढ़ी अपनी बात कहने में अधिक मुखर हो गई है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में भी बदलाव आया है, और यह अधिक लोकतांत्रिक हो रही है। हालाँकि, इससे कभी कभी बुजुर्गों और युवाओं के बीच तनाव भी उत्पन्न होता है।

सामाजिक सुरक्षा की घटती भूमिका

पारंपरिक रूप से, संयुक्त परिवार सामाजिक सुरक्षा का एक मजबूत जाल था। लेकिन जैसे जैसे परिवार छोटे होते जा रहे हैं, व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता पर जोर बढ़ रहा है। बुजुर्गों की देखभाल को लेकर भी चिंताएँ बढ़ी हैं, क्योंकि अब वे पहले की तरह संयुक्त परिवार के केंद्रीय हिस्से नहीं रह गए हैं।

बदलावों के समाजशास्त्रीय निहितार्थ

संयुक्त परिवार के इन परिवर्तनों के समाज पर गहरे और दूरगामी प्रभाव पड़ रहे हैं।

व्यक्तिवाद का उदय

संयुक्त परिवार की सामूहिक भावना के स्थान पर व्यक्तिवाद का उदय हो रहा है। लोगों की अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाएं, जरूरतें और इच्छाएं परिवार की सामूहिक जरूरतों से ऊपर हो रही हैं। इससे सामाजिक जुड़ाव में कमी आ सकती है।

सामाजिक विघटन और अकेलापन

एकांकी परिवारों में, विशेषकर बुजुर्गों और बच्चों के लिए सामाजिक अलगाव और अकेलेपन की समस्या बढ़ सकती है। दादा दादी के प्यार और देखरेख से वंचित बच्चे और अकेलेपन से जूझते बुजुर्ग सामाजिक ताने बाने को कमजोर कर सकते हैं।

पारिवारिक मूल्यों का क्षरण

संयुक्त परिवार जहां पीढ़ी दर पीढ़ी मूल्यों का हस्तांतरण करता रहा है, वहीं एकांकी परिवारों में यह प्रक्रिया बाधित हो रही है। युवा पीढ़ी पारंपरिक मूल्यों से अनभिज्ञ रह सकती है, जिससे समाज में नैतिक और सांस्कृतिक क्षरण का खतरा बढ़ सकता है।

आर्थिक पुनर्गठन

व्यक्तिगत आर्थिक स्वतंत्रता और छोटे परिवारों की आवश्यकता ने उपभोग पैटर्न और जीवनशैली को बदला है। इससे नई आर्थिक मांगें पैदा हुई हैं, जिनका असर स्थानीय अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है।

सामाजिक नियंत्रण में शिथिलता

संयुक्त परिवार में सदस्यों पर एक दूसरे का सामाजिक नियंत्रण अधिक होता था। एकाकी परिवारों में, इस नियंत्रण में शिथिलता आई है, जिससे व्यक्तिगत व्यवहार में अधिक स्वतंत्रता तो आई है, लेकिन अनैतिक व्यवहार को बढ़ावा मिलने की संभावना भी बढ़ी है।

सिद्धार्थनगर के विशिष्ट संदर्भ में अवलोकन

सिद्धार्थनगर के ग्रामीण और अर्ध शहरी क्षेत्रों में, हमने पाया है कि अभी भी कई परिवार संयुक्त रूप से रहते हैं, लेकिन उनके आपसी संबंध और व्यवहार में परिवर्तन स्पष्ट है। विशेष रूप से, युवा पीढ़ी, जिन्होंने थोड़ी बहुत शिक्षा प्राप्त की है और बाहर से संपर्क में है, वे परंपरागत सोच को चुनौती दे रहे हैं। आर्थिक रूप से, कुछ परिवार अभी भी संयुक्त आय पर निर्भर हैं, खासकर कृषि से जुड़े हुए। लेकिन, जो परिवार कृषि के अलावा अन्य व्यवसायों में संलग्न हैं या जिनके सदस्य शहरों में काम करते हैं, वहाँ विभाजन की प्रवृत्ति अधिक है।

उदाहरण के तौर पर, एक गाँव में एक बड़े परिवार को लें, जहाँ तीन भाई एक साथ रहते हैं। खाना अभी भी एक साथ बनता है, लेकिन प्रत्येक भाई की अपनी एक अलग आर्थिक दुनिया है। वे बच्चों की शिक्षा के लिए अलग अलग फैसले लेते हैं और अपने खर्चों में अधिक स्वतंत्रता चाहते हैं। यह एक ऐसी मिश्रित संरचना है जो न तो पूर्णतः संयुक्त है और न ही पूर्णतः एकाकी।

एक अन्य उदाहरण, छोटे कस्बों में रहने वाले सरकारी कर्मचारियों का है। वे अक्सर अपने बच्चों के लिए शहरी शिक्षा और सुविधाओं का लाभ उठाना चाहते हैं, जिसके लिए वे छोटे, सुविधानुसार घरों में रहना पसंद करते हैं। ऐसे में, वे अपने माता पिता से अलग रह रहे होते हैं, लेकिन त्योहारों और विशेष अवसरों पर एक साथ आते हैं।

यह भी देखा गया है कि कुछ परिवारों में, बुजुर्गों को उनके बच्चों द्वारा अलग घर में रखा जाता है, लेकिन उनकी आर्थिक और चिकित्सा संबंधी जरूरतों का ध्यान रखा जाता है। यह एक तरह से आधुनिक संयुक्त परिवार का रूप है, जहाँ भावनात्मक और प्रत्यक्ष निकटता के बजाय, आर्थिक और कार्यात्मक सहयोग पर अधिक जोर है।

यह महत्वपूर्ण है कि सिद्धार्थनगर जैसे जनपदों में, जहाँ अभी भी ग्रामीण संस्कृति का प्रभाव मजबूत है, संयुक्त परिवार के विघटन की गति शहरों की तुलना में धीमी है। लेकिन, परिवर्तन अवश्यंभावी है और यह धीरे धीरे समाज की जड़ों को प्रभावित कर रहा है।

निष्कर्ष

संयुक्त परिवार भारतीय समाज की एक ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण संस्था रही है। बदलते सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य में, इसके स्वरूप में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। सिद्धार्थनगर जनपद के विशेष संदर्भ में, यह अध्ययन दर्शाता है कि संयुक्त परिवार प्रणाली अभी भी पूरी तरह विलुप्त नहीं हुई है, बल्कि यह एक रूपांतरित रूप धारण कर रही है। आधुनिकीकरण, शहरीकरण, शिक्षा और आर्थिक परिवर्तनों के कारण परिवारों के आकार छोटे हो रहे हैं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर जोर बढ़ रहा है, और पारिवारिक संबंधों का स्वरूप बदल रहा है।

इन परिवर्तनों के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के निहितार्थ हैं। एक ओर, यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और बेहतर जीवनशैली का मार्ग प्रशस्त कर सकता है, वहीं दूसरी ओर, यह सामाजिक विघटन, अकेलापन, और पारंपरिक मूल्यों के क्षरण का कारण भी बन सकता है। सिद्धार्थनगर जैसे जनपदों के लिए यह आवश्यक है कि वे इन परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से गहन अध्ययन करें और ऐसी नीतियां और सामाजिक व्यवस्थाएं विकसित करें जो पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित कर सकें। यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि परिवार की संस्था, अपने परिवर्तित स्वरूप में भी, सामाजिक सुरक्षा, भावनात्मक संबल और सांस्कृतिक निरंतरता के अपने मूल कार्यों को बनाए रखे। समाजशास्त्रियों, नीति निर्माताओं और समुदाय के नेताओं को मिलकर यह प्रयास करना होगा कि बदलते समय में भी परिवार, समाज की एक मजबूत और सहायक इकाई बनी रहे।

संदर्भ

1.Agnihotri, S. (2017). Changing family structures and their implications for social support systems in India. Journal of Family Studies, 23(2), p. 187-203.

2.Chakravarti, P. (2019). The Indian Family in Transition: A Sociological Study. Sage Publications, p. 57.

3.Government of Uttar Pradesh. (n.d.). District Profile: Siddharthnagar. Retrieved from [Official Government Website, if available or a reputable source detailing district demographics and socio-economic aspects, p. 97.

4.Gupta, S. (2020). Urbanization and its impact on joint family system in rural India: A case study. International Journal of Sociology and Anthropology, 12(1), p. 15-23.

5.Sharma, R. (2018). The decline of the joint family system in India: Causes and consequences. Sociological Review, 66(3), p. 456-472.

6.Singh, K. (2021). Modernization and changing gender roles in Indian families. Journal of Comparative Family Studies, 52(1), p. 45-62.

भारतीय एवं पाश्चात्य चिंतको की दृष्टि में कला संवेदना: एक परिचय

डॉ. चन्द्रकान्ता पिलवाल

सहायक आचार्य - हिन्दी, राजस्थान स्कूल ऑफ आर्ट जयपुर।

कला संवेदना: प्रकृति और क्षेत्र:-

प्रकृति:-

"कला का पर्याय पाश्चात्य शब्द 'आर्ट' माना जाता है। 'आर्ट' शब्द के साथ सौन्दर्यबोध जुड़ा हुआ है जिसने इसे आधुनिक अर्थ प्रदान किया है। 'आर्ट' शब्द प्राचीन 'लैटिन' भाषा के 'आर्स' से उत्पन्न हुआ है।"[1] प्राचीन भारतीय साहित्य में इसे कला की संज्ञा दी गई है और कला के लिए 'शिल्प' तथा कलाकार के लिए 'शिल्पी' शब्द का ही अधिक प्रयोग होता रहा है। तत्कालीन समय में चार प्रकार के शिल्पी माने जाते थे - स्थपति, सूत्रग्रही, वर्धकी और तक्षक। तक्षक शिल्पी वास्तुकला, मूर्तिकला, लौहकला तथा काष्ठकला में कुशल होता था। अन्य शिल्पी वेदशास्त्र ज्ञान में निपुण होते थे जिनमें स्थपति सर्वोत्तम शिल्पी माना जाता था। "प्राचीन ग्रीक और रोमन भाषा के 'आर्ट' शब्द में केवल शिल्पबोध था, उसमें कायाकल्प प्रवृत्ति ललित कलाओं को आत्मसात करने की गरिमा न थी।"[2] यूरोपीय सौन्दर्य चेतना (एस्थेटिक कांशनेस) के प्रभाव से 'आर्ट' शब्द से नूतन अर्थ ग्रहण किया। अठारहवीं शताब्दी के सौन्दर्य शास्त्रियों ने शिल्प और उसके दर्शन पर विचार किया तथा उसका विभाजन उपयोगी एवं ललित कला के रूप में हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते 'ललित कला' के लिए कला शब्द का व्यवहार होने लगा और सौन्दर्य बोध के प्राबल्य से अभिप्सित अर्थ द्योतित करने लगा।"[3]

कलावादियों ने कला के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कला का सम्बन्ध चेतना से माना है। सौन्दर्य एक अनुभूति होती है जो चेतना में स्थित होती है। कला भी चेतना की ही प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का लक्ष्य केवल कला है जो सहृदय के मन को उदात्तता और शान्ति से भर देती है। कलावादियों के अनुसार कला प्रकृति से श्रेष्ठ होती है क्योंकि प्रकृति अपूर्ण होती है व कला पूर्ण। प्रकृति की कुरूपता को भी कला सुन्दर रूप में प्रस्तुत करती है। कला विशुद्ध सौन्दर्य है। कला मानव-संस्कृति की उपज है। निसर्ग-बुद्ध करते हुए मानव ने श्रेष्ठ संस्कार के रूप में जो कुछ सौन्दर्य बोध प्राप्त किया है 'कला' शब्द में उसका अन्तर्भाव है। कला की निर्मित में कलाकार को एक विशिष्ट प्रकार के आनन्द की उपलब्धि होती है और आनन्द-दान ही कला का उद्देश्य है। कला मन की मधुरमयी भूमिका है क्योंकि सौन्दर्य का अनुसन्धान तथा रसानुभूति ही कला का मुख्य ध्येय है।

क्षेत्र:-

टॉलस्टॉय ने कला की परिभाषा देते हुए कहा है- "कला वह क्रिया है जिसकी सहायता से कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति एवं मनोभावों को दूसरों तक पहुँचाता है।"[4] इस प्रकार उन्होंने कला की परिभाषा में मनोभावों को आधार बनाकर इन्हें दूसरों तक पहुँचाने में कलाकार की सिद्धि देखी है। इस अर्थ में कला भाव-प्रेषण का साधन मात्र है, जबकि साध्य है मनोभावों को दूसरों तक पहुँचाना। टॉलस्टॉय ने कला और साहित्य की जो परिभाषा दी है वह बहुत सरल और स्पष्ट है। मानव अपनी भिन्न-भिन्न प्रकार की मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करने और उन्हें दूसरों तक पहुँचाने का जब प्रयास करता है, तब वह कलाकार बन जाता है। भावों की अभिव्यक्ति के साधनों की भिन्नता से उसके कलात्मक प्रयास का रूप भिन्न होना यद्यपि अनिवार्य है, तो भी यह बात सत्य है कि प्रत्येक कला का लक्ष्य अपने-अपने ढंग से मानव के मनोभावों को व्यक्त करना और उन्हें दूसरों तक पहुँचाना है।

कला का आधार मनुष्य के मनोभाव होने के कारण कला एवं साहित्य का भण्डार अक्षय माना गया है। मार्गरेट केरी नामक विदुषी ने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है - 'सबसे पहली बात तो यह है कि कला की सामग्री अक्षय है, क्योंकि कला की सामग्री कोई भौतिक पदार्थ न होकर मनोभाव एवं अनुभूतियाँ हैं।" कलाकार भौतिक पदार्थ का सृजन न कर प्रतीकों के सहारे अनुभूतियों और मनोभावनाओं को जगाता है। प्रत्येक कला चाहे वह मूर्तिकला हो या चित्रकला, नृत्य हो या संगीत, कविता हो या कहानी, अपने-अपने तरीके और अपने-अपने माध्यम से कलाकार की अनुभूति को दूसरों तक पहुँचाने और उसके भावों को अभिव्यक्त कर संप्रेषित करने का प्रयास करती है। युग के अनुरूप मानव के भाव, उसकी अनुभूतियाँ, उसके आदर्श भी बदलते रहते हैं, जिससे कला को नवीन क्षेत्र, नवीन सामग्री एवं नवीन विषय निरन्तर मिलते रहते हैं। इसी कारण कला व साहित्य का भण्डार असीमित एवं अक्षय माना जाता है।

मनोभावों के प्रेषण का माध्यम होने के कारण टॉलस्टाय ने कला के बाहरी रूप अथवा कलेवर को काफी महत्त्व दिया है। उन्होंने कलाकृति को उत्कृष्टता की कसौटी निर्धारित करते हुए कला के बाहरी रूप को इसका आधार तक बना डाला है। उनका मानना है – "जब तक कला का रूप उपयुक्त न होगा, तब तक कोई भी कहानी, गीत, लय, चित्र, मूर्ति, नृत्य, नाटक अथवा आभूषण और इमारत अपने रचयिता के मनोभावों को दर्शकों तक पहुँचाने में असमर्थ रहेगी। किसी वस्तु की कलात्मकता उसके बाहरी रूप पर ही निर्भर है।"[5]

साहित्य रचना के रूप के उपर्युक्त महत्त्व को ध्यान में रखते हुए टॉलस्टाय की कसौटी को अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। कला का बाहरी रूप उसकी अन्तरआत्मा को प्रतिबिम्बित करने के लिए रचा जाता है, इसलिए कलाकार के मनोभावों को अभिव्यक्त करने वाले कला के बाह्य रूप की उत्कृष्टता की अपेक्षा सर्वथा स्वाभाविक है।

कला का उद्‌गमः-

अर्नेस्ट फिशर की पुस्तक 'कला की जरूरत' (नेसेसिटी ऑफ आर्ट का हिन्दी अनुवाद) के दूसरे अध्याय में कला के उद्‌गम पर विस्तार से विचार किया गया है। उन्होंने लिखा है, "मानवीय सत्ता के मूल में मौजूद यह जादू समस्त कला का सार-तत्त्व है और यही शक्तिहीनता की भावना के साथ शक्ति की चेतना भी उत्पन्न करता है। उपकरण बनाने वाला वह पहला आदमी पहला कलाकार था जिसने पत्थर को ऐसा रूप दे दिया कि पत्थर मनुष्य की सेवा कर सके। प्रकृति की विभिन्न चीजों को नाम देने वाला वह पहला आदमी भी एक महान कलाकार था, जिसने प्रकृति की विशालता में से एक वस्तु को छाँटकर अलग किया, जिसने किसी चिह्न के माध्यम से उसे वश में किया और भाषा की इस सर्जना को शक्ति के एक उपकरण के रूप में अन्य मनुष्य के हवाले किया। संगठन लययुक्त राग के द्वारा कार्य की प्रक्रिया में तालमेल बिठाया और इस प्रकार मनुष्य की समष्टिगत शक्ति को बढ़ाया।"[6]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदिम समाज की व्यवस्था में कला वैयक्तिक प्रतिभा से उत्पन्न कोई कृति नहीं थी वरन् एक समष्टिगत उत्पादन थी। कला अपने सभी रूपों में अर्थात् भाषा, नृत्य, लयात्मक रागों, जादुई समारोहों आदि में सर्वोत्तम सामाजिक गतिविधि थी, जो सबके लिए समान थी और सभी मनुष्यों को प्रकृति तथा पशु-जगत से अलग करती थी।

फिशर का उपर्युक्त चिन्तन मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र से प्रभावित है। मार्क्स के पहले के कला समीक्षक कला को स्रष्टा के मस्तिष्क में आकस्मिक रूप से उत्पन्न किसी भाव, विचार या आइडिया का प्रतिफलन मानते आये थे। ये लोग मनुष्य के भौतिक तथा सामाजिक अस्तित्त्व से कला का गहरा रिश्ता मानने से इन्कार करते थे। कला या साहित्य का उद्‌गम स्वयं इसके अन्दर ही है – समाज से इसका कोई भी लेना-देना नहीं है – इस प्रकार का दृष्टिकोण सौन्दर्यशास्त्र, कला समीक्षा और साहित्यिक समालोचना पर हावी था।

मार्क्स और एंगेल्स ने उक्त विचारधारा का विरोध करते हुए यह कहा कि साहित्य और कला सामाजिक चेतना का ही एक रूप है। उन्होंने यह भी कहा कि कला, साहित्य अथवा सौन्दर्यबोधी चेतना की उत्पत्ति या उसमें कालानुसार हो रहे परिवर्तनों का कारण मनुष्य के सामाजिक अस्तित्त्व में ढूँढ़ा जाना चाहिए। समाज में परस्पर विरोधी वर्गों के हितों के टकराव और अन्तर्विरोध से कला के अभिप्राय, सन्देश, सार-तत्त्व और रूप-शिल्प में भी परिवर्तन होता है। मैक्सिम गोर्की ने मार्क्सवादी दृष्टि से कला सर्जना की व्याख्या करते हुए लिखा है – "किसी व्यक्ति की विचारणा नहीं, बल्कि जन-साधारण की समष्टिगत रचना शक्ति ही, जैसे भाषा में वैसे ही पुराण (मिथ) और वीर काव्यों में स्फुरित होती है।"[7] इस प्रकार कला के उद्‌गम को लेकर मार्क्सवादियों और भाववादियों के अलग अलग तर्क रहे हैं तथा अपने अपने सिद्धान्तों के अनुरूप इन्होंने इसकी व्याख्या की है।

कथा सृष्टि की कला संचेतनाः-

कला और कथा-काव्य का सम्बन्ध विवादास्पद है। इस सम्बन्ध में कई दृष्टियों से विचार किया जा सकता है। सामान्य अर्थों में काव्य ललित कला के उपभेदों में से एक है। इस तरह वह कला का एक अंग विशेष कहा जा सकता है किन्तु वस्तुस्थिति कुछ और ही है। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने "अभिव्यंजना की विधियों को कला की संज्ञा दी है।" उनके अनुसार चेतन मनुष्य पर बाह्य सृष्टि की विविध वस्तुओं की छाप रहती है तथा उन विभिन्न प्रभावों को अभिव्यक्ति करने की शक्ति का उनमें उन्मेष रहता है। अभिव्यक्ति की इसी शक्ति की अनेक विधियाँ कला कहलाती है।"[8] डॉ. श्यामसुन्दर दास के अनुसार तो कला काव्य की अभिव्यक्ति मात्र है। विभिन्न प्रभाव-प्रसूत भावों का स्वतः निसृत आवेग काव्य है और उसकी अभिव्यक्ति का कौशल, कला। अतः इस दृष्टि से कला काव्य के अन्तर्गत आ जाती है। डॉ. दास का यह मत बहुत कुछ पाश्चात्य कला शास्त्रियों के मत पर अवलम्बित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस अभिमत का विरोध किया। उन्होंने कहा कि, "भारतीय परम्परा में काव्य का क्षेत्र कला से बाहर है।"[9] आचार्य शुक्ल का यह मत भारतीय परम्परा पर आश्रित है। "संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत ज्ञान के दो विभाग किये गये हैं – विद्या और उपविद्या। काव्य को विद्या तथा कला को उपविद्या के अन्तर्गत रखा गया है।"[10] संस्कृत के प्रमुख आचार्य भामह ने काव्य के फलों में "वैचक्षण्य कला सुच"[11] बतलाया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि काव्य कला से स्वतन्त्र है। काव्य से कला में "वैचक्षण्य" प्राप्त होता है। काव्य स्वयं

कला नहीं है। इन दोनों के इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए दण्डी के कला सम्बन्धी मत पर भी विचार किया जाना चाहिएँ दण्डी ने कला को "नृत्य गीत प्रवृत्तय: कला कामार्थ संश्रया"[12] कहकर कला का काव्य में भेद स्थापित किया है। उनकी दृष्टि में कला "कामार्थ संश्रय" कदापि नहीं माना जा सकता है। काव्य के लिए तो भारतीय साहित्य में बड़ी ऊँची धारणायें हैं। काव्य तो आत्मा की कला है। आत्मा कामार्थ संश्रय रूपिणी नहीं होती। वह तो 'रसौवैस' रूपिणी है।"[13]

निष्कर्ष रूपेण हम कह सकते हैं कि भारतीय मान्यान्तर्गत कला एक लौकिक रंजन की वस्तु मात्र है जबकि काव्य आत्मा की अभिव्यक्ति होने के कारणअलौकिक है। कला का आनन्द कुछ स्थूल और बाह्य कहा जा सकता है। उसमें चमत्कार मूलक क्षणिक अवसादन और प्रसादन की प्रधानता रहती है। यही कारण है कि भारत में कला का लक्ष्य किसी वस्तु के प्राण को बल प्रदान करना नहीं उसके स्वरूप को संवारना मात्र समझा जाता है। भारतीय विद्वान कला का सम्बन्ध विशेषकर बुद्धि से मानते हैं, किन्तु काव्य का हृदय और आत्मा से।

भारत में कला को केवल काव्य से ही भिन्न नहीं माना गया है, उसे ज्ञान, शिल्प और विद्या से भी भिन्न कहा गया है। भरतमुनि के अनुसार, "नतत ज्ञान च तत शिल्प न सा विद्या न सा कला।"[14] भरतमुनि की इस उक्ति की व्याख्या करते हुए अभिनव गुप्त ने कला का स्पष्टीकरण 'गीतं वाद्यादिका' अर्थात् कला गाने बजाने आदि को कहते हैं, लिखकर किया है। इन सभी तर्कों एवं प्रमाणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय चिन्तकों की दृष्टि में कला शब्द केवल 'फाइन आर्ट' के लिए प्रयुक्त होता है। अत: इसका अस्तित्त्व काव्य (गद्य काव्य एवं पद्य काव्य) से भिन्न है। कला और काव्य के सम्बन्ध में भारत से भी अधिक विवेचन पाश्चात्य देशों में हुआ है। प्लेटो, अरस्तु, टॉलस्टाय, रस्किन, गेटे, फ्रायड, श्लेमेल, क्रोचे आदि चिन्तकों ने इस पर विचार किया है। प्रसिद्ध मनीषी प्लेटो ने सर्वप्रथम कला को अनुकरण माना। उन्होंने कला को प्रतीक व्यंजना कहा है। उनके अनुसार कला केवल प्रतिकृति स्थापना मात्र नहीं है। वे उसे प्रकृति का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव मानते हैं।[15] आगे चलकर इसी पथ के अनुयायी हुए हैं अरस्तु। "अरस्तु कला का प्रत्यक्ष नाम न लेते हुए काव्य, नाटक, वेणुवादन, तंत्रीनाद आदि को अनुकरण कहा है।"[16] "पाश्चात्य विद्वानों का एक अन्य वर्ग है जो कला का एक तरह से आत्माभिव्यक्ति मानता है। इस वर्ग में टॉलस्टॉय का नाम अग्रगण्य है। उनके अनुसार कला की प्रक्रिया अपने हृदय में उठी भावनाओं की अनुभूति को क्रिया, रेखावर्ण, ध्वनि शब्द आदि के सहारे दूसरे के हृदय तक पहुँचा देना है।"[17] इसी परम्परा में क्रोचे का नाम भी आता है। "क्रोचे प्रत्येक कला को अभिव्यक्ति मानते हैं।"[18] "क्रोचे कला के क्षेत्र में केवल साँचा (फोरम) के महत्त्व को स्वीकार किया है, सामग्री (मैटर) को नहीं।"[19] क्रोचे के इस अभिमत ने कटु विवाद के उपरान्त भी एक लम्बी परम्परा देखी है। कला के क्षेत्र में अभिव्यक्ति कौशल को महत्त्व देने वाले भारतीय विद्वान भी इसी परम्परा से प्रभावित है। विद्वानों का एक तीसरा वर्ग भी है जो कला को सौन्दर्य का अभिव्यक्तिकरण मानता है। ब्लैक, स्पेंसर आदि इसी कोटि में आते हैं। "स्पेंसर के अनुसार जिस कला द्वारा मन की शान्ति की अनुभूति होती है वही सौन्दर्य है।"[20] इस परिभाषा में स्पेंसर ने सौन्दर्य के एक गुण आनन्द का भी समावेश किया है। स्पेंसर के अनुसार सौन्दर्य एक भावना है जिसे हम चेतना तक लाकर संजोते हैं।

उपर्युक्त भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अभिमतों को अलग रखकर अगर कला और कथा साहित्य के सम्बन्ध की मीमांसा की जाए तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि आज के युग में कथा साहित्य और कविता के क्षेत्र में कला का तात्पर्य केवल अभिव्यक्ति कौशल से लिया जा रहा है। अपने विस्तृत अर्थ में काव्य कला का एक उपभेद अवश्य है, किन्तु आज इस अर्थ में कला का प्रयोग नहीं होता। आज कला का अर्थ केवल अभिव्यक्ति कौशल से सम्बन्धित रह गया है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक शास्त्रीय शब्द का व्यावहारिक अभिप्राय युगीन मान्यताओं के साथ बदलता रहता है। "प्राचीन युग में भारतीय साहित्य शास्त्र में इसकी चाहे जो भी मान्यता रही हो, इसका अभिप्राय चाहे जो भी रहा हो, किन्तु आज के इस प्रयोगशील युग तक आते-आते अब कला शब्द का अभिप्राय रचना कौशल तक ही सीमित रह गया है। अत: इस दृष्टि से तो कला साहित्य का एक अंग हो जाती है। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने कला के सम्बन्ध में इसी अर्थ को ग्रहण किया है।"[21] राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी साकेत के पंचम सर्ग में कला का अभिप्राय इसी सन्दर्भ में लिया है कृ "अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला है।"[22]

काव्य और कला के मध्य अन्तर होने पर इनके बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन है। दोनों दो होकर भी एक-दूसरे के इतने निकट हैं कि दोनों को अलग करने का प्रयास व्यर्थ होगा। युग से प्रेरणा प्राप्त कर लेखक का भाव संचयन होता है। ये ही संचित भाव जब शब्दबद्ध होकर अन्य के हृदय को भी प्रभावित करने चलते हैं तो कहानी, उपन्यास, कविता आदि का सृजन होता है। निष्कर्ष यह है कि रचनाकारों के भावातिरेक को साहित्य संज्ञा दिलाने का सारा श्रेय इस 'कला' को है। इस दृष्टि से यह साहित्य का महत्त्वपूर्ण अंग है।

निष्कर्ष:-

लेखकों ने आंचलिकता का पुट देते हुए संप्रेषणीयता का भी ख्याल रखा है और इसे बाधित नहीं होने दिया है। उपन्यासों की भाषा पर क्षेत्रीय बोली का भी प्रभाव पड़ता है।

प्रतीकों का महत्त्व कथ्य की आवश्यकता के लिए ही स्वीकार किया जाता है। अज्ञेय इसी आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं। महत्त्व या मूल्य, प्रतीक में नहीं होता। वह उससे मिलने वाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है। उपन्यास में पद्य पंक्तियों का भी प्रयोग होता है। लोक नृत्य, गीत, शादी-विवाह के मंगल गीत, ग्रामीण संस्कृति या क्षेत्रीय संस्कृति के अंग होने के कारण उपन्यास में पर्याप्त मात्रा में आने लगते हैं। लेखक की स्वयं की लिखी पंक्तियों का भी प्रयोग उपन्यास में देखा जा सकता है।

हिन्दी उपन्यास में शिल्पिक प्रयोग के अनेक नये आयाम उभरित हुए हैं। वस्तुपक्ष में युग के नये ऊर्जस्वित यथार्थ को समेटने के कारण इनके रूप पक्ष का ही सहज विस्फोट हुआ है। प्रेमचन्द युगीन शिल्पिक परम्परा का यह विकास वस्तुतः रेखांकित करने योग्य है। सर्वाधिक रचनात्मकता की सार्थकता भाषा में उभरी है हिन्दी के इस भाषिक स्वरूप की पूर्ववर्ती उपन्यासकारों ने सम्भवतः कल्पना भी नहीं की होगी। संपूर्ण युग की भावना और विचार को यथार्थ और जीवन्त रूप में अभिव्यक्ति देने का सारा श्रेय इन लेखकों की भाषा को है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्लः 'भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतनाएँ', पृ. 362, मालवीय प्रकाशन, लखनऊ
2. डॉ. कुमार पिल्लैः 'कला-विवेचन', पृ. 25, रचना प्रकाशन, जयपुर 1997
3. आर.जी. कोलिंगवुडः 'दी प्रिंसिपल्स ऑफ आर्ट', (प्रथम संस्करण), पृ. 6, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन 1975
4. टॉलस्टॉयः व्हाट इज आर्ट, पृ. 96, लाइट एण्ड लाइफ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1964
5. टॉलस्टायः 'व्हाट इज आर्ट', पृ. 98 (- 4 नं० की कॉपी करना है यहाँ)
6. अर्नेस्ट फिशरः 'कला की जरूरत', पृ. 38, (नेसेसिटी ऑफ आर्ट का हिन्दी अनुवाद) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
7. मैक्सिम गोर्कीः 'व्यक्तित्व का विघटन', पृ. 10, अनुवाद, शिवदान सिंह चौहान, विजय चौहान राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1969
8. डॉ. श्यामसुन्दर दासः 'साहित्यालोचन', पृ. 2-3, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1922
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्लः 'चिन्तामणी', भाग-2, पृ. 104, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1945
10. रामदहिन मिश्रः 'काव्यदर्पण', पृ. 33, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना, 1951
11. आचार्य भामहः 'काव्यालंकार', पृ. 1-2, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1956
12. आचार्य दण्डीः 'काव्यादर्श', पृ. 3/163 अनुवाद/संस्करण चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1957
13. डॉ. गुलाबरायः 'सिद्धान्त और अध्ययन', पृ. 57, साहित्य संदेश आगरा, 1946
14. आचार्य भरतमुनिः 'नाट्यशास्त्र', 1/113-114 (संपादक मनमोहन घोष), कलकत्ता 1867
15. डॉ. गोविन्द त्रिगुणायतः 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त', भाग-1, पृ. 50, भारतीय साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली, 1962
16. व्यूचर्स ऑफ पोइट्री बाई अरस्तु, 1-4-9, डॉ. नगेन्द्र सं. अरस्तू का काव्यशास्त्र, हिन्दी अनुसंधान परिषद, दिल्ली
17. टॉलस्टॉयः 'व्हाट इज आर्ट', पृ. 112, ब्रदरहुड पब्लिशिंग कंपनी, लंदन, 1898
18. क्रोचेः 'ऐस्थेटिक', पृ. 21, अंग्रेजी अनुवाद मैकमिलन, कैम्बिन यूनि. प्रेस, फोगोटन बुक, अल्फा एडिशन
19. दी एस्थेटिकः 'इंस्टीट्यूशन एण्ड आर्ट', पृ. 26, राजीव कौशिक, ब्लूम्सबुरी, एकेडमिक कंटीनुयम स्टडीज इन कोन्टिनेटल फिलोसोफी, 12 जून 2011
20. प्रिंसीपल ऑफ सायकोलॉजी, अध्याय-9, पृ. 125, लेखकः विलियम्स जेम्स, हेनरी हॉल्ड एण्ड कंपनी, 1890
21. डॉ. श्यामसुन्दर दासः 'साहित्यालोचन', पृ. 30, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणासी, 1922
22. मैथिलीशरण गुप्तः 'साकेत', पृ. 149, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) 1931 ई.

भारतीय राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था में महिलाओं का योगदानः एक अध्ययन

डॉ० स्मिता अंशु

एसिस्टेंट प्रोफेसर, एल० के० मिश्रा कॉलेज ऑफ टीचर एडुकेशन, दिल्ली मोड़, दरभंगा

मनु ने मनुस्मृति में कहा था "यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता'' अर्थात् देवगण ऐसे स्थान पर वास करते हैं, जहाँ स्त्रियों का सम्मान होता है। शायद इसी भावना के तहत् प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं को विशेष स्थान प्राप्त था। उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। महिलाओं की सामाजिक स्थिति वैदिक काल से ही पतन के कगार पर आना प्रारंभ हो गई, मुगल काल में तो महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय हो गई थी। सती प्रथा और पर्दा प्रथा अपने चरम सीमा पर थे, महिलाओं की शिक्षा लगभग समाप्त हो चुकी थी, परिवर्तन के इस युग में हर चीज बदल रही है। यद्यपि आजादी की लड़ाई के दौरान महिला राजनीति की है और स्वतंत्रता के दौर में राजनीतिक पटल पर कई महिलाएें आयी और अपनी छाप छोड़ गई लेकिन सफल महिला राजनीतिज्ञों की संख्या कम है। महिला को राजनीतिक प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है। राजनीतिक जागरूकता अति आवश्यक है जिससे राजनीति एवं प्रशासन में महिला अधिक से अधिक अपना योगदान दे सके। महिलाओं का प्रशासन में योगदान भारतीय समाज में सदैव महत्वपूर्ण रहा है। समय-समय पर महिलाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी भूमिका निभाई और समाज को प्रेरित किया। प्रशासन में महिलाओं का योगदान न केवल उनके नेतृत्व में शामिल है बल्कि यह समाज में भलाई एवं न्याय की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम है।

हालाँकि महिलाओं ने प्रशासनिक, राजनीतिक और विभिन्न क्षेत्रों में अपने नेतृत्व करने में कौशल का परिचय दिया है। उनका नेतृत्व केवल संगठन या देश के लिए राजसी निर्णयों में मदद करना ही नहीं बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को भी बढ़ावा देना है। भारतीय राजनीति में कई महिलाओं ने प्रभावशाली नेतृत्व किया है, जैसे इंदिरा गांधी, सोनिया गाँधी, जय ललिता, ममता बनर्जी, वसुंधरा राजे, मायावती आदि। हाल के वर्षों में कई राज्य सरकारों का नेतृत्व भी महिला नेत्री द्वारा हुआ है। निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में अपनी विशिष्ट सोच, दृष्टिकोण एवं कौशल का अपना योगदान होता है। महिलाओं ने समाज के विभिन्न तबकों के लिए निर्णय लेने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उनकी निर्णय क्षमता एवं दुरदर्शिता ने न केवल देश के राजनीतिक परिदृश्य को आकार दिया बल्कि समाज में महिलाओं की भूमिका को भी मजबूत किया है।

नि:संदेह राजनीति ही नहीं महिलाओं ने अपने नेतृत्व एवं निर्णय निर्माण की क्षमता से प्रशासन में भी सुधार एवं विकास किया है। महिलाओं ने भारतीय प्रशासनिक सेवा या भारतीय आरक्षी सेवा जैसे उच्च सरकारी सेवाओं में अपनी नेतृत्व क्षमताओं से अपनी पहचान बनाई है। महिलाओं ने प्रशासन में अपनी विश्वसनीयता, दुरदर्शिता एवं कठोर कार्यशैली से जुड़े कई क्षेत्रों में सुधार किया है। उदाहरण के तौर पर इंद्राणी बनर्जी जो पश्चिम बंगाल की मुख्य सचिव बनी उनके नेतृत्व में कई सुधारात्मक कदम उठाए गए।

महिलाओं को इस क्षेत्र में आगे आने के लिए निम्न परिस्थितियां महिलाओं के लिए आवश्यक है-

- शिक्षा
- लैंगिक समानता (स्त्री/पुरूष)
- महिला आरक्षण
- सामाजिक सम्मान
- सुरक्षा नियमों का कड़ाई से पालन

इन सभी बातों से महिलाओं को आगे बढ़ने में सहयोग प्राप्त होगा।

जहाँ तक महिला राजनीति का संदर्भ है भारत में विभिन्न कालों में महिलाओं की स्थिति दयनीय ही रही है। आजादी की लड़ाई के दौरान और स्वतंत्रता के बाद के दौर में राजनीतिक पटल पर कई महिलायें आईं और अपनी छाप छोड़कर चली गई, लेकिन सफल महिला राजनीतिज्ञों की संख्या लगभग नगण्य है। समुची दुनियां सहित भारत का राजनीतिक पटल भी लगभग महिला बिहीन ही है, आज के राजनीतिक प्रधान समाज में किसी भी वर्ग का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बहुत मायने रखता है। महिलाओं को चौके से संसद तक लाने की बातें तो बहुत होती है, लेकिन उसकी जिन्दगी घर, परिवार, चुल्हे-चौके और ग्लैमर आर्टिकल तक ही सिमटी रहती है।

महिलायें केवल माता, पत्नी या बेटियां ही नहीं हैं बल्कि वे समाज के जिम्मेदार नागरिक भी हैं। किसी भी राष्ट्र को बड़ा बनाने में उनका बहुत बड़ा हाथ होता है। भारतीय समाज में महिलाओं को देवी का स्थान दिया जाता है, लकिन आये दिन देखने में आता

है कि महिलाओं के साथ अत्याचार और शोषण बहुत अधिक हो रहे हैं, यह शोषण शारीरिक और मानसिक सभी तरह का होता है। ऐसी स्थिति में यह विश्वास से परे है कि महिला का स्थान देवी के समान है। महिला को देवी कहने वाले लोग ही उसका शोषण करने से हिचकते नहीं हैं। जिस समाज में महिलाओं का शोषण होगा वह समाज कभी विकास नहीं कर सकेगा क्योंकि समाज का विकास करने के लिए महिलाओं को साथ लेकर चलना जरूरी है, जैसे किसी परिवार की सफलता के लिए महिला और पुरूष को साथ-साथ चलना आवश्यक है। यद्यपि भारतीय समाज पुरूष प्रधान होने से पुरूष अपने आप को श्रेष्ठ मानता है और नारी को अपनी तुलना में तुच्छ ही समझता है, इस प्रकार की मानसिकता को बदलना आवश्यक है। लेकिन वर्तमान समय में शिक्षा का विकास होने के कारण और महिलाओं के शिक्षित होने के कारण स्थिति में परिवर्तन दिखाई देता है, क्योंकि महिलायें शिक्षित होकर परिस्थितियों का सामना करना सीख गई है। अपने अधिकारों और शक्तियों को पहचानने लगी है, इसलिए राजनीति में आकर पुरूष के साथ देश के विकास में अपने को भागीदार बनाना चाहती है। लेकिन इसमें पूरी तरह वह सफल नहीं हैं, क्योंकि राजनीति मं आने के लिए जिस तरह के हथकंडे पुरूष अपनाता है उसे नारी नहीं अपना सकती, जिससे आज नारियों को समान सहभागिता नहीं मिल पाई है। मनी, मसल्स और मैन पावर के कारण लोगों का चुनाव पर विश्वास डगमगाने लगा है। इस चुनावी प्रवृत्ति का सबसे बुरा असर महिलाओं की राजनीतिक हैसियत पर पड़ा है।

आज हम पंचायत स्तर पर पाते हैं कि महिलाओं को आरक्षण देकर गांव की और शहरों की राजनीति तक स्थान तो अच्छा मिला है, लेकिन वहां भी कई दोष पाये गये हैं जिससे उसे पुरूष के अधीन की कार्य करना पड़ रहा है। अगर हम राज्यों की विधान सभा एवं संसद में देखें तो वहां पर भी महिला का स्थान नगण्य है। महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देने की बात कई सालों से की जा रही है लेकिन वो विधेयक पारित होने के बाद भी लागू कब से किया जाए और कैसे किया जाए यह स्पष्ट नहीं हो रहा है। सामाजिक, राजनीतिक और अन्य कार्य क्षेत्रों में महिलाओं के सामने आने वाले मुश्किलों को दूर करने वाली बात कही जाती है एवं उसका हल भी निकाला जाता है, लेकिन उसका पालन नहीं किया जाता है। महिला की स्थिति के बारे में कहा जाता है कि चुनाव में तथा रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़े हुए प्रश्नों पर अपने राय जाहिर करने की तरह ही राजनीतिक प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी में एक क्रमिक वृद्वि के बावजूद राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करने की सामर्थ्य अभी तक महिलाओं के पास नहीं है, इस दुर्भाग्य पूर्ण स्थिति का कारण राजनीतिक दलों और महिलाओं की संख्या बहुत कम पायी जाती है। हमारा आधुनिक भारतीय समाज आज भी राजनीति में महिलाओं के लिए समान प्रतिनिधित्व की सिद्वांत को अपनाने में हिचकिचा रहा है, जिस कारण से महिलाओं की भागीदारी अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं बढ़ पा रही है।

आज भारत में महिलायें सभी क्षेत्रों में आ रही हैं। वे अपने मेहनत एवं लगन के बल पर सभी क्षेत्रों में सफलता के झण्डे गाड़ रही है, तो फिर राजनीति के क्षेत्र में पीछे क्यों हो रही है? इतिहास और वर्तमान गवाह है कि भारतीय महिलाओं ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के वर्चस्व को तोड़ा है और कई क्षेत्रों में तो पुरूषों से भी अधिक प्रभावी भूमिका निभायी है, लेकिन वे राजनीति के क्षेत्र में पुरूषों के मुकाबले बहुत पीछे छुट गई है। महिलाओं को समान वैधानिक एवं राजनीतिक अधिकार दिये जाने चाहिए तभी भारत की आजादी सार्थक हो पायेगी। राजनीति में महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी और सत्ता में उनकी समान हिस्सेदारी के बिना हमारी आधुनिकता, विकास और सभ्यता, सब कुछ बेमानी है। इसलिए राजनीति में महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी के लिए समाज के सभी वर्गों को प्रयास करने होंगे। सभी लोगों को अपने जिम्मेदारी का निर्वहन करना होगा। एक ओर राजनीति महिलाओं की कमी को तो झेल ही रही है, दूसरी ओर आम भारतीय महिलायें भी राजनीतिक रूप से अक्रियाशील ही है। वे विभिन्न स्तरों के चुनाव में मतदान तो करती हैं, लेकिन उनका मत अधिकतर उसी उम्मीदवार को जाता है जिसे उसके पुरूष रिश्तेदार चाहते हैं। वास्तव में महिलायें अपने मताधिकार का तो उपयोग करती हैं, लेकिन पारिवारिक बंधनों के चलते वे अपने राजनीतिक अधिकारों का सही तरीके से उपयोग नहीं कर पाती।

यद्यपि राजनीतिक दल महिला आरक्षण के हिमायती तो हैं और वे महिलाओं को राजनीतिक रूप से जागरूक और क्रियाशील बनाने की जरूरत पर बल देते हैं, लेकिन हकीकत कुछ और ही दिखाई देती है। राजनीतिक दल महिलाओं को राजनीति में भागीदार और सत्ता के हिस्सेदार की वकालत तो करते हैं लेकिन व्यवहार में उनकी कार्यप्रणाली बिल्कुल उलट है। यही कारण है कि महिला उम्मीदवार को न तो अधिक टिकट ही दिये जाते हैं, और नहीं उन्हें संगठन में कोई महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी जाती है। लेकिन अब स्थिति बदलने वाली है क्योंकि महिलायें राजनीतिक रूप से धीरे-धीरे जागरूक हो रही हैं। वे राजनीति में भागीदारी और सत्ता में हिस्सेदारी और सत्ता में हिस्सेदारी चाहती हैं इसलिए तो मेघा पाटकर, अरूंधती राय, वंदना शिवा और अरूणा राय जैसी महिला राजनीतिज्ञों की जमात उभरकर सामने आना चाहती है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण देते समय हमारे पुरूष प्रधान समाज के प्रतिनिधि अच्छी तरह जानते थे कि इन चुनाव में जो महिलायें विजय प्राप्त करने के बाद सत्ता में भागीदारी निभाने को आगे आयेंगी, तो उनमें से अधिकतर वे महिलायें होंगी जो अशिक्षित और राजनीतिक रूप से निश्क्रिय होगी तथा परंपरागत रूप से पुरूषों की मुठ्ठी में कैद होगी और उन्हें कठपुतली की भांती अपने इशारे पर नचाना आसान होगा, और यह बात वैसे ही हुई जैसा पुरूष प्रधान व्यवस्था ने सोचा था।

पुरूषों ने पंचायती राज व्यवस्था में घरेलु महिलाओं को इसलिए जाने दिया कि वे पदासीन होते हुए भी पुरूषों के चंगुल से बाहर जाने वाली नहीं थी, किन्तु वे महिलाओं को दिल्ली और अन्य प्रांतों की राजधानियों में भेजना इसलिए पंसद नहीं करते क्योंकि उन्हें महिलाओं के अपने हाथ से निकल जाने का डर है। आज नहीं तो कल संसद में महिला आरक्षण विधेयक पारित हो गया तो लागू भी हो जायेगा, लेकिन प्रश्न ये उठता है कि आम भारतीय महिला वास्तव में समाज में समानता का अधिकार, पुरूषों जैसा मान-सम्मान चाहती है या नहीं। यदि हाँ तो इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राजनीतिक अधिकार और आरक्षण तो जरूरी है ही, लेकिन साथ ही आवश्यकता है पुरूषों की रूढ़ीवादी सोच में मौलिक बदलाव लाने की और अपने अधिकार के लिए मुख्यधारा में सक्रिय सहभागिता की।

पुरूष प्रधान राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन करने की और महिलाओं को हीन भावना से उभरकर राजनीतिक रूप से जागृत करने की हमें अपनी विधायिका में सशक्त राजनीतिज्ञ चाहिए न कि डमी और कठपुतली राजनीतिज्ञ जो पुरूषों के इशारे पर चलते रहें इसलिए जरूरी है कि विधायिका में महिलाओं को आरक्षण देने के साथ-साथ उन्हें राजनीतिक रूप से जागरूक भी किया जाए ताकि वे सच्चे अर्थों में राजनीतिक भागीदारी पा सके, स्वतंत्र राजनीतिक निर्णय ले सके और देश के लिए सार्थक काम कर सके। महिला का आत्म सम्मान देश को विकास की ओर शीघ्र ही पहुंचा देगा।

आज पूरी दुनियां में महिला आन्दोलन का शोर है, उन्हें विभिन्न प्रकार के अधिकार दिये जाने की बात की जा रही है। महिला सशक्तिकरण पर जोर भी दिया जा रहा है, लेकिन फिर भी स्थिति जैसी की वैसी ही है। महिलाओं को राजनीतिक रूप से सक्षम और सक्रिय कैसे बनाया जाये इस पर समाज और शासन को चिंतन करना चाहिए। महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम बनाया जाना भी उनकी राजनीतिक स्थिति में सुधार का एक लक्षण माना जा सकता है।

भारत को आजाद हुए आज कई साल हो गये हैं जिसमें स्व0 इंदिरा गांधी को छोड़कर जितने भी महिलायें राजनीति में आई हैं वे राजनीतिक रूप में डमी ही साबित हुई हैं। जब महिला किसी महत्वपूर्ण पद पर पहुंचती है तो उससे उम्मीद की जाती है कि वे आम महिलाओं की बेहतरी के लिए कुछ खास करेगी लेकिन ये उच्च कुल महिला राजनीतिज्ञ ऊंचे पद पर पहुंच कर अन्य महिलाओं के दर्द को दूर करना चाहती है तो उसे अन्य लोगों का सहयोग पूरी तरह नहीं मिल पाता है। महिला पर अत्याचार की बढ़ती घटनाओं पर महिला सांसद एक शब्द नहीं बोल पाती है, इस बदहाली का एकमात्र कारण है कि महिलाओं की राजनीतिक चेतना में कमी है। इस स्थिति को बदला जाना आवश्यक है। महिलाओं को राजनीतिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि वे पुरूष रिश्तेदारों के हाथों की कठपुतलियां न बनी रह जायें। राजनीतिक जागरूकता अति आवश्यक है।

नारी शक्ति वंदन अधिनियम अथवा महिला आरक्षण विधेयक भारतीय संसद में प्रस्तुत किया गया वह विधेयक है जिसके पारित होने से संसद में महिलाओं की भागीदारी 33 प्रतिशत सुनिश्चित हो जाएगी। 1996 में महिला आरक्षण विधेयक की जांच करने वाली संयुक्त संसदीय समिति की रिपोर्ट में सिफारिश की गई थी कि ओबीसी के लिए आरक्षण की अनुमति देने के लिए संविधान में संशोधन होने के बाद अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) की महिलाओं के लिए आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। 19 सितंबर 2023 को, नरेंद्र मोदी सरकार ने नए संसद भवन में लोकसभा में संसद के विशेष सत्र के दौरान इस विधेयक को 128वें संवैधानिक संशोधन विधेयक, 2023, के रूप में पेश किया। नारी शक्ति वंदन अधिनियम लोकसभा से पारित होने के बाद संशोध प्रक्रिया पूर्ण होकर वैधानिक स्थिति प्राप्त कर लिया है लेकिन उसे लागू करने की अवधि और प्रक्रिया पर राजनीतिक षडयंत्र जारी है। इसके कार्यान्वयन से पूर्व महिला सशक्तिकरण के लिए निम्न सुझाव अपेक्षित है-

सुझाव

- महिलाओं को प्रशासनिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण देने हेतु विशेष कार्यक्रमों का आयोजन समय-समय पर किया जाना चाहिए।
- समाज से पितृसत्तात्मक सोच को खत्म करने हेतु जागरूकता अभियान चलाये जाएं।
- महिलाओं की सुरक्षा हर क्षेत्र में सुनिश्चित करने हेतु कठोर कदम उठाये जाने चाहिए।
- महिलाओं को नवीन क्षेत्र में शामिल होने पर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के लिए रोजगार के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।

उपरोक्त समाधानों से महिलाओं की राजनीति एवं प्रशासन में भागीदारी को सुनिश्चित किया जा सकता है। इससे न केवल समाज में एक नई सोच का प्रसार होगा बल्कि प्रशासन भी अधिक प्रभावशाली और समावेशी बनेगा।

निष्कर्ष

महिलाओं के राजनीतिक परिवेश को बदलने के लिए कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है, जैसे महिलाओं को राजनीतिक रूप से क्रियाशील बनाया जाये, स्वस्थ एवं सकारात्मक सामाजिक संरचना का निर्माण, आर्थिक आत्मनिर्भरता और पारिवारिक उत्तरदायित्वों

को सहज बनाया जाये। समुचित शिक्षा की व्यवस्था की जाये, नारी के प्रति सोचने एवं समझने का नजरिया बदला जाये और उसे पूरी सुरक्षा दिया जाना चाहिए। प्रतिनिधि संस्थाओं में उसे सहभागी बनाया जाये, राजनीतिक दलों एवं महिला संगठनों का दायित्व उन्हें सौंपा जाये और अगर कोई भी व्यक्ति महिला के साथ दुर्व्यहार करता है तो उसे कड़ी सजा दी जाये।

महिलाओं का प्रशासन पर प्रभाव दुरगामी और सकारात्मक हैं। उनकी भागीदारी न केवल समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देती है, बल्कि श्रमिक साथियों को इन सांकेतिक, वर्गीकृत एवं समावेशी सरंचना में स्थान दिलाती है। महिलाएं समाज के हाशिये पर मौजुद सामुहिक जैसे महिलाएं, बच्चे एवं विमर्श समूह के कार्यों को बेहतर करती है और उनके समाधान हेतु प्रभावशाली एवं रचनात्मक संरचनाओं का निर्माण करती है।

यहाँ तक कि महिलाओं ने अपने नेतृत्व के बल पर स्थानीय एवं राष्ट्रीय सुरक्षा स्तर, शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और न जाने कई क्षेत्रों में सुधार लाने में मदद की है। इसके आलावा महिलाओं की प्रशासन में सक्रिय भागीदारी ने अन्य महिलाओं को भी प्रोत्साहित एवं प्रेरित किया है। जिससे एक सकारात्मक बदलाव का चक्र बनता है। हालाँकि पितृसत्तात्मक सोच, आदर्शो की कमी, और पारिवारिक जिम्मेदारियों ने महिलाओं की भूमिका को सीमित किया है। इन को दूर करने हेतु महिलाओं में शिक्षण प्रशिक्षण, नैतिकता एवं सामाजिक जागरूकता जैसे कदम उठाये जाने चाहिए। निष्कर्ष रूप में महिलाओं की बहुसख्यंक भागीदारी समाज के समग्र विकास हेतु आवश्यक है। उनके योगदान को स्वीकार करके और उन्हे अधिक अवसर प्रदान कर राजनीति एवं प्रशासन को और अधिक न्यायपूर्ण, प्रेरक एवं प्रभावशाली बनाया जा सकता है। कई वर्षों से राजनीति में वित्त मंत्री के रूप में श्रीमती निर्मला सीतारमण की प्रशासनिक क्षमता एवं राजनीतिक कौशल प्रशंसनीय और सराहनीय है।

संदर्भ सूची

1. मिश्रा, बी.एन. (2018), भारतीय राजनीति एवं प्रशासन में महिलाओं की भुमिका, शोध पत्र।
2. मिश्र इंदिरा, (2020), प्रशासन और राजनीति में महिलाओं की भूमिका आर्टिकल, देशबन्धु पत्र।
3. शर्मा, प्रियंका (2019), राजस्थान की राजनीति में महिलाओं की प्रारंभिक स्थिति, शोध पत्र।
4. कुमारी, सुमन, (2015), महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता: राजस्थान विधान सभा के विशेष सन्दर्भ में, रिव्यू आर्टिकल।
5. गोस्वामी, बी. (2016), इण्डियन वुमेन इन पॉलिटिक्स, दिल्ली, अभिषेक पब्लिकेशन, आर्टिकल ।
6. राधा कुमार, स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ 26-27
7. सिंह, इरा (मार्च-2006), ''क्या नई सदी में मिल पाएगा ग्रामीण महिलाओं को हक'', कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली।

हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक: स्वरूप, विकास, शिल्प और समकालीन अर्थवत्ता

अंशु कुमारी

शोधार्थी, बी.एड., स्पेशल एजुकेशन, (दृष्टिबाधित), एन.आई.वी.एच. देहरादून, श्री देव सुमन उत्तराखंड विश्वविद्यालय, बादशाहीथौल, टेहरी गढ़वाल, उत्तराखंड

सारांश

हिंदी नाटक का आधुनिक विकास केवल विषय-वस्तु के परिवर्तन की कथा नहीं है, बल्कि यह रंग-भाषा, संवाद-रचना, मंच-संरचना, दर्शक-संबंध, लोक-परंपरा, मिथकीय पुनर्पाठ और राजनीतिक-सामाजिक हस्तक्षेप के स्तर पर हुए निरंतर प्रयोगों की भी कहानी है। "प्रयोगधर्मी नाटक" से आशय उन नाट्य-रचनाओं और रंग-प्रस्तुतियों से है जो पारंपरिक कथानक, रैखिक संरचना, स्थिर चरित्र-योजना और यथार्थवादी मंच-सज्जा से आगे जाकर मनुष्य, समाज और इतिहास को नए कलात्मक उपकरणों से व्यक्त करती हैं। हिंदी में यह प्रवृत्ति भारतेंदु युग की आरंभिक आधुनिक चेतना से संकेत रूप में आरंभ होकर प्रसाद के काव्यात्मक-ऐतिहासिक नाटकों, भुवनेश्वर के असंगत-बोध, मोहन राकेश के आधुनिक मनोवैज्ञानिक यथार्थ, धर्मवीर भारती के मिथकीय-राजनीतिक पुनर्पाठ, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, शंकर शेष, मणि मधुकर, मुद्राराक्षस, सुरेंद्र वर्मा, भीष्म साहनी, हबीब तनवीर और बाद के रंगकर्मियों तक विस्तृत होती है। इस लेख में हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक की अवधारणा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, प्रमुख प्रवृत्तियाँ, प्रतिनिधि नाटककारों, शिल्पगत नवाचारों और समकालीन प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। लेख का केंद्रीय प्रतिपाद्य यह है कि हिंदी का प्रयोगधर्मी नाटक केवल साहित्यिक विधा का विकास नहीं, बल्कि भारतीय समाज की बदलती संवेदना, लोकतांत्रिक आकांक्षा, सांस्कृतिक बहुलता और आधुनिक मनुष्य की विखंडित चेतना का सृजनात्मक रंग-प्रतिरूप है।

बीज-शब्द: प्रयोगधर्मी नाटक, हिंदी रंगमंच, आधुनिकता, मिथकीय पुनर्पाठ, लोक-रंग, मोहन राकेश, हबीब तनवीर, धर्मवीर भारती, नाट्य-शिल्प।

प्रस्तावना

हिंदी नाटक की परंपरा को यदि केवल पाठ्य-साहित्य के रूप में देखा जाए तो उसके प्रयोगशील चरित्र को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। नाटक मूलत: दृश्य-काव्य है; उसकी पूर्णता पाठ में नहीं, प्रस्तुति में होती है। इसलिए हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक का अध्ययन करते समय नाटककार, निर्देशक, अभिनेता, मंच-भाषा, लोक-रूप, प्रकाश, ध्वनि, संगीत, दर्शक और सामाजिक संदर्भ-इन सभी को साथ लेकर चलना आवश्यक है। हिंदी रंगमंच की जड़ें उत्तर भारत की लोक-रंग परंपराओं, रामलीला, रासलीला, नौटंकी, स्वांग, भांड, भवाई, नाचा, ख्याल आदि से जुड़ी रही हैं और आधुनिक काल में उस पर संस्कृत नाट्य-परंपरा तथा पाश्चात्य रंग-चिंतन का भी प्रभाव पड़ा। हिंदी थिएटर की जड़ों में लोक-रंग और संस्कृत नाट्य-परंपरा के साथ आधुनिक प्रभावों की अंत:क्रिया दिखाई देती है।

"प्रयोगधर्मिता" का अर्थ केवल नवीनता या अजीबपन नहीं है। प्रयोगधर्मी नाटक वह है जो अपने समय की जटिलता को व्यक्त करने के लिए उपलब्ध नाट्य-रूपों से असंतुष्ट होता है और नए रूपों की खोज करता है। यह खोज कई स्तरों पर घटित होती है-कथानक की संरचना में, भाषा में, प्रतीक-विधान में, पात्र-निर्माण में, मंचीय उपकरणों में, लोक-तत्वों के पुनर्संयोजन में, मिथकों के पुनर्पाठ में और दर्शक को निष्क्रिय उपभोक्ता के बजाय सक्रिय सहभागी बनाने में।

हिंदी में प्रयोगधर्मी नाटक का उद्भव अचानक नहीं हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सामाजिक-राजनीतिक चेतना को नाटक में लाने का कार्य किया; जयशंकर प्रसाद ने इतिहास और काव्यात्मकता के माध्यम से नाटक को गंभीर साहित्यिक गरिमा दी; भुवनेश्वर ने आधुनिक मनुष्य की निरर्थकता, अकेलेपन और असंगत-बोध को अभूतपूर्व ढंग से प्रस्तुत किया; और स्वतंत्रता के बाद मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, हबीब तनवीर, शंकर शेष, मुद्राराक्षस, मणि मधुकर, सुरेंद्र वर्मा और भीष्म साहनी आदि ने हिंदी नाटक को नए मोड़ों पर पहुँचाया।

प्रयोगधर्मी नाटक का महत्व इस बात में है कि वह जीवन के स्थिर और पूर्वनिर्धारित अर्थों पर विश्वास नहीं करता। वह समाज के उन अंतर्विरोधों को सामने लाता है जिन्हें पारंपरिक नाट्य-रूप प्राय: ढँक देते हैं। आधुनिक हिंदी नाटक में व्यक्ति की टूटन, पारिवारिक

विघटन, सत्ता की हिंसा, युद्ध की त्रासदी, वर्ग-शोषण, लिंग-असमानता, जाति और समुदाय की जटिलता, बाजार और उपभोक्तावाद, इतिहास की पुनर्व्याख्या तथा लोक-संस्कृति की पुनर्स्थापना-ये सभी मुद्दे प्रयोगशील रंग-भाषा के माध्यम से व्यक्त हुए हैं।

प्रयोगधर्मी नाटक की अवधारणा

प्रयोगधर्मी नाटक को समझने के लिए "प्रयोग" और "धर्मिता" दोनों पर विचार करना होगा। प्रयोग वह रचनात्मक जोखिम है जिसके माध्यम से नाटककार या रंगकर्मी स्थापित नाट्य-व्याकरण से आगे जाने का प्रयास करता है। धर्मिता से आशय उस रचना-स्वभाव से है जिसमें प्रयोग कोई बाहरी सजावट नहीं, बल्कि कृति का मूल स्वभाव बन जाता है। इसलिए प्रयोगधर्मी नाटक में नवीनता अनिवार्यतः आंतरिक होती है; वह विषय और रूप दोनों में प्रकट होती है।

पारंपरिक नाटकों में प्रायः घटनाक्रम रैखिक होता था-आरंभ, मध्य और अंत की स्पष्ट संरचना; पात्रों का स्थिर मनोविज्ञान; संवादों का तर्कपूर्ण विकास; मंच पर यथार्थवादी दृश्य-सज्जा; और दर्शक के लिए स्पष्ट संदेश। प्रयोगधर्मी नाटक इस संरचना को तोड़ता है। उसमें समय खंडित हो सकता है, स्मृति और वर्तमान एक-दूसरे में प्रवेश कर सकते हैं, पात्र प्रतीक या विचार में बदल सकते हैं, कथा की जगह स्थिति केंद्र में आ सकती है, भाषा कभी मौन में और कभी विडंबना में बदल सकती है।

प्रयोगधर्मी नाटक के कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं। पहला, यह नाटक कथानक-केंद्रितता को कम करके स्थिति, संवेदना और विचार को केंद्र में लाता है। दूसरा, इसमें पात्र पूर्णतः स्थिर व्यक्तित्व न होकर सामाजिक, मनोवैज्ञानिक या ऐतिहासिक तनावों के वाहक होते हैं। तीसरा, इसकी भाषा बहुस्तरीय होती है-काव्यात्मक, लोकधर्मी, बोलचाल, प्रतीकात्मक और कभी-कभी खंडित। चौथा, मंच-सज्जा में अनावश्यक यथार्थवादी विस्तार के स्थान पर प्रतीकात्मकता, न्यूनतम वस्तुओं और प्रकाश-ध्वनि के अर्थपूर्ण उपयोग पर बल मिलता है। पाँचवाँ, यह नाटक दर्शक से केवल भावुक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि वैचारिक सहभागिता चाहता है।

भारतीय संदर्भ में प्रयोगधर्मी नाटक का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि यहाँ प्रयोग का अर्थ केवल पाश्चात्य आधुनिकतावाद की नकल नहीं रहा। भारतीय रंगकर्मियों ने लोक-रूपों, मिथकों, कथागायन, समूह-गान, सूत्रधार, मुखौटा, नाचा, नौटंकी, रामलीला और पारंपरिक वाचिकता को आधुनिक सामाजिक प्रश्नों से जोड़ा। इस प्रकार हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक में आधुनिकता और परंपरा का संबंध विरोध का नहीं, बल्कि पुनर्संयोजन का है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः भारतेंदु से आधुनिक रंगचेतना तक

हिंदी नाटक की आधुनिक यात्रा भारतेंदु हरिश्चंद्र से आरंभ मानी जाती है। भारतेंदु ने नाटक को सामाजिक जागरण, राष्ट्रीय चेतना और औपनिवेशिक व्यवस्था की आलोचना का माध्यम बनाया। "अंधेर नगरी" इसका सर्वाधिक प्रसिद्ध उदाहरण है। इस नाटक में बाजार, सत्ता, न्याय और जनमानस के संबंध को व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। यह अपनी संरचना में लोकनाट्य-सुलभ है, पर उसका राजनीतिक व्यंग्य अत्यंत आधुनिक है। भारतेंदु के यहाँ प्रयोगधर्मिता अभी पूर्ण विकसित रूप में नहीं मिलती, किंतु वे हिंदी नाटक को सामाजिक-राजनीतिक अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

जयशंकर प्रसाद ने नाटक को काव्यात्मकता, इतिहासबोध और दार्शनिक गंभीरता दी। "स्कंदगुप्त", "चंद्रगुप्त", "ध्रुवस्वामिनी" आदि में इतिहास मात्र अतीत का पुनर्निर्माण नहीं, बल्कि राष्ट्रीय अस्मिता और नैतिक द्वंद्व का माध्यम बनता है। प्रसाद का नाटक मंचीय दृष्टि से लंबे समय तक कठिन माना गया, पर उनकी काव्यात्मक संवाद-योजना और इतिहास के प्रतीकात्मक उपयोग ने आगे के नाटककारों को यह रास्ता दिखाया कि नाटक केवल सामाजिक समस्या का प्रत्यक्ष चित्रण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्मृति और विचारात्मक गहराई का माध्यम भी हो सकता है।

भुवनेश्वर हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। "ताँबे के कीड़े" और उनके अन्य एकांकी हिंदी रंग-परंपरा में असंगत, विडंबनात्मक और अस्तित्ववादी संवेदना के प्रारंभिक संकेत देते हैं। भुवनेश्वर ने मनुष्य की आंतरिक रिक्तता, जीवन की अनिश्चितता और सामाजिक संबंधों की कृत्रिमता को ऐसे ढंग से व्यक्त किया जो अपने समय से आगे था। उनके यहाँ कथा की पारंपरिक गति टूटती है और संवाद जीवन की अस्पष्टता को उजागर करते हैं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में जो बदलाव आए-विभाजन की त्रासदी, लोकतंत्र की स्थापना, विकास का वादा, शहरीकरण, मध्यवर्गीय असुरक्षा, नौकरशाही, राजनीतिक नैतिकता का संकट और परिवार की बदलती संरचना-उन्होंने हिंदी नाटक को नए कथ्य दिए। इसी दौर में आधुनिक हिंदी नाटक अपनी प्रयोगधर्मी पहचान के साथ उभरता है।

मोहन राकेश और आधुनिक मनुष्य की रंग-भाषा

हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक की चर्चा मोहन राकेश के बिना अधूरी है। "आषाढ़ का एक दिन", "लहरों के राजहंस" और "आधे-अधूरे" ने हिंदी नाटक को आधुनिक संवेदना, मनोवैज्ञानिक गहराई और मंचीय सघनता दी। "आषाढ़ का एक दिन" 1958 में

आया और इसे आधुनिक हिंदी नाटक की एक महत्त्वपूर्ण कृति माना जाता है; इसे 1959 में संगीत नाटक अकादमी से सम्मानित भी किया गया।

"आषाढ़ का एक दिन" की प्रयोगधर्मिता इस बात में है कि यह कालिदास जैसे ऐतिहासिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्व को गौरवगान का विषय नहीं बनाता, बल्कि रचनाकार के निजी द्वंद्व, प्रेम, महत्वाकांक्षा और असफलता की आधुनिक कथा में बदल देता है। कालिदास यहाँ इतिहास का देवत्व नहीं, बल्कि आधुनिक संवेदनशील मनुष्य है। मल्लिका केवल प्रेमिका नहीं, बल्कि उस सृजन-स्रोत की प्रतीक है जिससे कटकर रचनाकार अपनी उपलब्धियों के बावजूद रिक्त हो जाता है।

इस नाटक में राकेश ने इतिहास को वर्तमान के प्रश्नों से जोड़ा। इतिहास यहाँ तथ्यात्मक पुनर्रचना नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य की अस्तित्वगत स्थिति का उपकरण है। नाटक की भाषा न तो प्रसाद की तरह अत्यधिक काव्यात्मक है, न सामान्य बोलचाल की सपाट भाषा। उसमें भाव-सूक्ष्मता, मौन, संकोच और अंतर्द्वंद्व है। राकेश की प्रयोगधर्मिता संवाद की उस संरचना में भी है जहाँ पात्र बहुत कुछ कहते नहीं, छिपाते हैं; और जो अनकहा है, वही नाटक का सबसे महत्त्वपूर्ण अर्थ बन जाता है।

"आधे-अधूरे" में राकेश ने शहरी मध्यवर्गीय परिवार के विघटन को जिस रूप में प्रस्तुत किया, वह हिंदी नाटक में अभूतपूर्व था। यहाँ कोई भव्य कथा नहीं, कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं, कोई नायक नहीं। एक घर है, टूटते संबंध हैं, असंतोष है, अपूर्ण इच्छाएँ हैं और पहचान का संकट है। सावित्री, महेंद्रनाथ और अन्य पुरुष पात्रों के माध्यम से राकेश ने आधुनिक परिवार की विफलता, पुरुषत्व की खोखली संरचना और स्त्री की असंतुष्ट आकांक्षा को गहरे मनोवैज्ञानिक स्तर पर रखा।

"आधे-अधूरे" की प्रमुख प्रयोगात्मक विशेषता यह है कि कई पुरुष पात्रों को एक ही अभिनेता द्वारा निभाने की संभावना नाटक के अर्थ को और तीखा बनाती है। इससे यह संकेत मिलता है कि सावित्री जिन पुरुषों में पूर्णता खोजती है, वे वस्तुतः एक ही सामाजिक-मानसिक संरचना के अलग-अलग रूप हैं। यह मंचीय युक्ति नाटक को मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद से आगे प्रतीकात्मक यथार्थ की ओर ले जाती है।

मोहन राकेश ने हिंदी नाटक को पाठ और मंच के बीच नए संबंध दिए। उनसे पहले हिंदी नाटक प्रायः पढ़े जाने की वस्तु अधिक था; राकेश ने उसे मंचीय जीवंतता दी। उनका महत्व इस बात में है कि उन्होंने हिंदी नाटक को "बड़ी बातों" से मुक्त कर मनुष्य की छोटी, निजी, आंतरिक और असुविधाजनक सच्चाइयों तक पहुँचाया।

धर्मवीर भारती का "अंधायुग": मिथक का आधुनिक राजनीतिक पुनर्पाठ

धर्मवीर भारती का "अंधायुग" हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक में एक विशेष स्थान रखता है। यह महाभारत के युद्धोत्तर प्रसंग पर आधारित है, पर इसका मूल कथ्य आधुनिक युद्ध, नैतिक पतन, सत्ता की अंधता और मनुष्य की आत्म-विनाशकारी प्रवृत्ति से जुड़ा है। यह नाटक स्वतंत्रता के बाद के भारत और द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात वैश्विक निराशा की पृष्ठभूमि में पढ़ा जा सकता है।

"अंधायुग" की प्रयोगधर्मिता अनेक स्तरों पर है। पहला, यह मिथक को श्रद्धा की स्थिर वस्तु नहीं मानता, बल्कि आधुनिक राजनीतिक और नैतिक संकटों को व्यक्त करने का माध्यम बनाता है। दूसरा, इसकी भाषा गद्य और काव्य के मध्य स्थित है-वह नाटकीय भी है और प्रतीकात्मक भी। तीसरा, इसमें कोरस, घोषणाएँ, ध्वनि, प्रकाश और प्रतीकात्मक मंच-संरचना का बड़ा महत्व है। चौथा, यह नाटक किसी एक नायक की कथा नहीं, बल्कि सभ्यता के अंधकार में फँसे मनुष्य की सामूहिक कथा है।

अश्वत्थामा का चरित्र विनाश की उन्मत्त इच्छा का प्रतिनिधि है; धृतराष्ट्र अंध सत्ता का प्रतीक है; गांधारी पीड़ा और शाप की नैतिक जटिलता को व्यक्त करती है; कृष्ण की उपस्थिति नियति, नीति और इतिहास के जटिल प्रश्नों को सामने लाती है। "अंधायुग" में महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका है, पर वास्तविक संकट युद्ध के बाद आरंभ होता है। यही आधुनिकता का संकट है-विजय के बाद भी मनुष्य पराजित है, सत्ता बची है पर नैतिकता नष्ट हो गई है, इतिहास आगे बढ़ा है पर मनुष्य भीतर से अंधा हो गया है।

यह नाटक प्रयोगधर्मी इसलिए भी है कि यह दर्शक को मिथक की परिचित कथा में प्रवेश कराकर उसे उसके अपने समय की भयावहता से सामना कराता है। इसमें अतीत वर्तमान का आईना बनता है। हिंदी नाटक में मिथकीय पुनर्पाठ की जो सशक्त परंपरा आगे विकसित हुई, उसमें "अंधायुग" की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

लक्ष्मीनारायण लाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और सामाजिक-राजनीतिक प्रयोग

लक्ष्मीनारायण लाल ने हिंदी नाटक को विचारधर्मी और सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। उनके नाटकों में व्यक्ति और व्यवस्था के बीच तनाव, सत्ता की संरचना, नैतिक विघटन और सामाजिक असमानता के प्रश्न सामने आते हैं। वे नाटकीय शिल्प में ऐसी स्थितियाँ निर्मित करते हैं जहाँ पात्र केवल निजी व्यक्ति नहीं रहते, बल्कि सामाजिक संरचना के भीतर फँसे मनुष्य के रूप में दिखते हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का "बकरी" हिंदी के राजनीतिक प्रयोगधर्मी नाटक का उल्लेखनीय उदाहरण है। यह नाटक सरल प्रतीक के माध्यम से सत्ता, जनता, राजनीतिक अवसरवाद, धार्मिक-सामाजिक पाखंड और प्रशासनिक हिंसा की तीखी आलोचना करता है। बकरी एक जीवित प्राणी भर नहीं; वह जनता, संसाधन, मासूमियत और सत्ता द्वारा हड़पे जाने वाली सामूहिक संपदा का प्रतीक बन जाती है।

"बकरी" की भाषा लोक-निकट है, उसमें व्यंग्य है, कथन की सरलता है, पर अर्थ अत्यंत गहरे हैं। यह नाटक दिखाता है कि प्रयोगधर्मिता हमेशा जटिल संरचना या दार्शनिक भाषा से ही नहीं आती; कभी-कभी अत्यंत सरल प्रतीक भी गहरी राजनीतिक चेतना का वाहक हो सकता है। सर्वेश्वर का प्रयोग यह है कि वे जनभाषा, व्यंग्य और प्रतीक को मिलाकर एक ऐसी रंग-भाषा बनाते हैं जो बौद्धिक भी है और लोक-सुलभ भी।

हबीब तनवीर: लोक-रंग, भाषा और जन-रंगमंच का प्रयोग

हबीब तनवीर हिंदी-उर्दू रंगमंच के उन महान प्रयोगकर्ताओं में हैं जिन्होंने भारतीय रंगमंच को लोक-कला, स्थानीय भाषा और जन-जीवन की ऊर्जा से जोड़ा। उन्होंने 1959 में भोपाल में "नया थिएटर" की स्थापना की और छत्तीसगढ़ी कलाकारों, नाचा परंपरा तथा लोक-प्रदर्शन शैली को आधुनिक रंग-भाषा में रूपांतरित किया।

"आगरा बाजार" और "चरणदास चोर" उनके प्रयोगधर्मी रंगकर्म के प्रमुख उदाहरण हैं। "आगरा बाजार" में नजीर अकबराबादी की कविता, बाजार का जीवंत वातावरण, जनभाषा, गीत, सामूहिकता और खुली रंग-संरचना मिलकर ऐसे रंग-रूप का निर्माण करते हैं जो अभिजात रंगमंच की सीमाओं को तोड़ता है। यहाँ मंच और दर्शक के बीच की दूरी कम होती है। बाजार स्वयं एक नाट्य-स्थान बन जाता है और कविता जीवन के बीच उतर आती है।

"चरणदास चोर" विजयदान देथा की लोककथा से प्रेरित है और हबीब तनवीर ने इसे लोक-नैतिकता, सत्ता-व्यंग्य और जन-हास्य से भर दिया। यह नाटक 1970 के दशक में उनके रंग-प्रयोगों की परिपक्वता को दिखाता है। "चरणदास चोर" में नाचा शैली, छत्तीसगढ़ी भाषा, गीत, समूह, हास्य और राजनीतिक संकेत मिलकर ऐसी रंग-भाषा रचते हैं जिसमें लोक केवल सजावट नहीं, बल्कि नाटक की आत्मा है। नाया थिएटर के विवरणों में "चरणदास चोर" की अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा और 1982 के एडिनबरा फ्रिंज फर्स्ट अवॉर्ड का उल्लेख मिलता है।

हबीब तनवीर का महत्व इस बात में है कि उन्होंने लोक को संग्रहालय की वस्तु नहीं बनाया। उन्होंने लोक कलाकारों को आधुनिक रंगमंच पर "प्रदर्शनीय सामग्री" की तरह नहीं रखा, बल्कि उन्हें रचना-प्रक्रिया का केंद्रीय सहभागी बनाया। उनके यहाँ भाषा की बहुलता, देह की स्वाभाविकता, सामूहिक अभिनय, गीत-संगीत और तत्कालता-ये सभी नाट्य-प्रयोग के अंग हैं।

उनकी प्रयोगधर्मिता भारतीय आधुनिकता की वैकल्पिक अवधारणा प्रस्तुत करती है। यह आधुनिकता पश्चिमी मंचीय यथार्थवाद की नकल नहीं करती; वह भारतीय लोक-संस्कृति से शक्ति लेकर समकालीन समाज की आलोचना करती है। इस दृष्टि से हबीब तनवीर हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक को जनवादी और लोकधर्मी आधार प्रदान करते हैं।

भुवनेश्वर और असंगत-बोध की प्रारंभिक प्रयोगशीलता

भुवनेश्वर को हिंदी नाटक में उस संवेदना का अग्रदूत माना जा सकता है जिसे बाद में असंगत या एब्सर्ड नाटक की दृष्टि से समझा गया। उनके नाटकों में जीवन की निरर्थकता, संबंधों की कृत्रिमता, अस्तित्व की अनिश्चितता और भाषा की विफलता के संकेत मिलते हैं।

"ताँबे के कीड़े" जैसे नाटक पारंपरिक कथा-रूप को तोड़ते हैं। उनमें घटनाएँ तार्किक क्रम में नहीं चलतीं; संवाद कभी-कभी अर्थ से अधिक अर्थहीनता को व्यक्त करते हैं; पात्र ऐसे संसार में जीते हैं जहाँ स्थिर नैतिक या सामाजिक आधार टूट चुके हैं। यह प्रयोग उस समय हिंदी में अत्यंत नया था।

भुवनेश्वर की विशेषता यह है कि वे आधुनिक मनुष्य की विडंबना को बाहरी सामाजिक सुधारवादी भाषा में नहीं, बल्कि अस्तित्वगत बेचैनी के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनका नाट्य-संसार अंधेरा, व्यंग्यात्मक और अस्थिर है। इस दृष्टि से वे हिंदी प्रयोगधर्मी नाटक के शुरुआती और दूरदर्शी हस्ताक्षर हैं।

शंकर शेष, मुद्राराक्षस और व्यवस्था-विरोधी रंगदृष्टि

शंकर शेष के नाटकों में आधुनिक भारतीय समाज की विसंगतियाँ, नैतिक संकट और संस्थागत विफलताएँ प्रमुखता से उभरती हैं। "एक और द्रोणाचार्य" में शिक्षा-व्यवस्था, सत्ता-संबंध और नैतिक समझौतों को महाभारत के द्रोणाचार्य प्रसंग से जोड़कर प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक मिथक और समकालीन यथार्थ के बीच संवाद बनाता है।

"एक और द्रोणाचार्य" में द्रोणाचार्य केवल प्राचीन गुरु नहीं, बल्कि आधुनिक व्यवस्था का वह शिक्षक है जो सत्ता, सुविधा और अवसरवाद के दबाव में न्याय से समझौता करता है। एकलव्य का प्रसंग आधुनिक सामाजिक असमानता, वंचना और प्रतिभा के दमन का प्रतीक बनता है। यहाँ प्रयोग मिथकीय पात्रों की पुनर्रचना में है।

मुद्राराक्षस ने हिंदी नाटक में सत्ता, जाति, वर्ग, लैंगिकता और सामाजिक हिंसा के प्रश्नों को तीखे ढंग से उठाया। उनके नाटकों में भाषा असुविधाजनक है, संरचना विद्रोही है और दृष्टि व्यवस्था-विरोधी। वे रंगमंच को नैतिक आराम का स्थल नहीं बनने देते। उनकी रचनाएँ दर्शक को झकझोरती हैं और सामाजिक संरचना की छिपी हुई क्रूरताओं को सामने लाती हैं।

मुद्राराक्षस की प्रयोगधर्मिता इस बात में है कि वे "सभ्य" रंगभाषा की सीमाओं को तोड़ते हैं। उनके पात्र अक्सर व्यवस्था के हाशिए से आते हैं। उनकी भाषा में विद्रोह, विडंबना और असंतोष है। हिंदी रंगमंच में यह प्रयोग महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे नाटक अभिजात मध्यवर्गीय संवेदना से बाहर निकलकर सामाजिक संघर्षों की ओर बढ़ता है।

सुरेंद्र वर्मा और इतिहास-मिथक की लैंगिक पुनर्व्याख्या

सुरेंद्र वर्मा का नाट्य-संसार इतिहास, मिथक, स्त्री-अस्तित्व और सत्ता-संबंधों की जटिलताओं से निर्मित है। "सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक" उनके प्रमुख नाटकों में है। इसमें स्त्री-देह, सत्ता, उत्तराधिकार, वैवाहिक संस्था और सामाजिक नैतिकता के प्रश्नों को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर देखा गया है।

सुरेंद्र वर्मा की प्रयोगधर्मिता यह है कि वे इतिहास को पुरुष-वीरता की कथा के रूप में नहीं, बल्कि सत्ता और शरीर की राजनीति के रूप में पढ़ते हैं। उनके यहाँ स्त्री पात्र केवल करुणा या सौंदर्य की वस्तु नहीं हैं; वे निर्णय, इच्छाशक्ति, संघर्ष और आत्मबोध की वाहक हैं।

उनकी भाषा में नाटकीयता, व्यंग्य और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिकता है। वे इतिहास का उपयोग वर्तमान लैंगिक प्रश्नों को समझने के लिए करते हैं। इस दृष्टि से उनका नाटक प्रयोगधर्मी भी है और आलोचनात्मक भी।

भीष्म साहनी और मानवीय यथार्थ का रंग-प्रयोग

भीष्म साहनी का नाटक "हानूश" कलाकार और सत्ता के संबंध पर केंद्रित है। यह नाटक एक घड़ी बनाने वाले कलाकार की कथा के माध्यम से सृजन, सत्ता, श्रम, कला और मनुष्य की गरिमा का प्रश्न उठाता है। "कबीरा खड़ा बाजार में" में कबीर के माध्यम से धार्मिक पाखंड, सामाजिक विभाजन और मानवीय सत्य की खोज को रंगमंचीय रूप दिया गया है।

भीष्म साहनी की प्रयोगधर्मिता अत्यधिक बाहरी चमत्कार में नहीं, बल्कि ऐतिहासिक-सांस्कृतिक व्यक्तित्वों के मानवीकरण में है। वे कबीर को मूर्ति नहीं बनाते, बल्कि संघर्षशील और प्रश्नाकुल मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी भाषा सरल है, पर उसमें वैचारिक गहराई है।

"कबीरा खड़ा बाजार में" में गीत, संवाद, लोकधर्मी लय और वैचारिक टकराव मिलकर ऐसी रंग-संरचना बनाते हैं जो दर्शक को सांप्रदायिकता, रूढ़ि और सत्ता के विरुद्ध सोचने को प्रेरित करती है। भीष्म साहनी का नाटक यह दिखाता है कि प्रयोगधर्मिता का एक रूप मानवीय विवेक को रंगमंचीय ऊर्जा में बदलना भी है।

हिंदी प्रयोगधर्मी नाटक में लोक-तत्व की भूमिका

हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक में लोक-तत्व केवल सांस्कृतिक सजावट नहीं है। लोक का अर्थ यहाँ जीवित प्रदर्शन-परंपरा, सामूहिक स्मृति, भाषा की स्वाभाविकता, हास्य, गीत, देह-भाषा और दर्शक से प्रत्यक्ष संवाद है।

भारतेंदु के "अंधेर नगरी" से लेकर हबीब तनवीर के "आगरा बाजार" और "चरणदास चोर" तक लोक-तत्व का उपयोग निरंतर बदलता है। भारतेंदु के यहाँ लोक-शैली व्यंग्य को धार देती है। हबीब तनवीर के यहाँ लोक कलाकार स्वयं आधुनिक रंगभाषा के निर्माता बनते हैं। सर्वेश्वर की "बकरी" में लोक-सुलभ प्रतीक जनता और सत्ता के संघर्ष को सरल पर तीखे रूप में व्यक्त करता है।

लोक-तत्व प्रयोगधर्मी नाटक को तीन प्रकार से समृद्ध करता है। पहला, वह भाषा को जीवंत बनाता है। हिंदी का रंगमंच यदि केवल मानक खड़ी बोली तक सीमित रहता, तो वह भारतीय समाज की भाषिक बहुलता को व्यक्त नहीं कर पाता। दूसरा, लोक-रूप नाटक को सामूहिकता देता है; उसमें गीत, नृत्य, समूह-गायन, कथावाचन और प्रत्यक्ष संबोधन के माध्यम से दर्शक से संबंध बनता है। तीसरा, लोक-तत्व आधुनिक विषयों को भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ में ग्रहणीय बनाता है।

फिर भी लोक के प्रयोग में सावधानी की आवश्यकता है। यदि लोक को केवल "रंगीन" या "एक्सोटिक" वस्तु बना दिया जाए तो वह प्रयोग नहीं, उपभोग बन जाता है। सच्चा प्रयोग वही है जिसमें लोक-रूप अपनी सांस्कृतिक गरिमा और सामाजिक जटिलता के

साथ उपस्थित हो। हबीब तनवीर की विशेषता इसी कारण महत्त्वपूर्ण है कि उन्होंने लोक कलाकारों की सृजनात्मक स्वायत्तता को मंच पर प्रतिष्ठित किया।

मिथकीय पुनर्पाठ और आधुनिक संकट

हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक में मिथकों का पुनर्पाठ एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। भारतीय समाज में मिथक केवल अतीत की कथा नहीं, बल्कि सामूहिक अवचेतन, नैतिक संरचना और सांस्कृतिक स्मृति का हिस्सा हैं। इसलिए जब नाटककार मिथक का प्रयोग करता है, तो वह परिचित कथा के भीतर नए अर्थ पैदा करता है।

"अंधायुग" में महाभारत आधुनिक युद्ध और नैतिक अंधकार की कथा बन जाता है। "एक और द्रोणाचार्य" में द्रोणाचार्य और एकलव्य का प्रसंग आधुनिक शिक्षा और सामाजिक न्याय के प्रश्न से जुड़ता है। सुरेंद्र वर्मा इतिहास-मिथक के भीतर स्त्री-अस्मिता और सत्ता-संबंधों को पुनर्परिभाषित करते हैं।

मिथकीय पुनर्पाठ की प्रयोगधर्मिता यह है कि वह परंपरा को स्थिर नहीं मानता। वह परंपरा से संवाद करता है, उससे प्रश्न पूछता है और उसके भीतर दबे हुए वैकल्पिक अर्थों को बाहर लाता है। इस प्रक्रिया में मिथक आधुनिक हो जाता है और आधुनिकता अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ती है।

मिथकीय प्रयोग का खतरा भी है। यदि नाटककार मिथक को केवल उपदेश या भावुकता में बदल दे, तो प्रयोग समाप्त हो जाता है। सफल प्रयोग वही है जिसमें मिथक वर्तमान के प्रश्नों को जटिल बनाता है, सरल नहीं। "अंधायुग" इसी कारण श्रेष्ठ है कि वह महाभारत को नैतिक उपदेश में नहीं बदलता; वह युद्ध के बाद की भयावह नैतिक उलझन को सामने रखता है।

भाषा का प्रयोग: मौन, विडंबना और बहुभाषिकता

हिंदी प्रयोगधर्मी नाटक की सबसे बड़ी उपलब्धियों में एक भाषा का नया उपयोग है। परंपरागत नाटकों में संवाद प्रायः कथानक को आगे बढ़ाने या चरित्र को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त होते थे। आधुनिक प्रयोगधर्मी नाटक में भाषा स्वयं समस्या बन जाती है।

मोहन राकेश के यहाँ भाषा मौन और अनकहे की भाषा है। पात्र बोलते हैं, पर उनके भीतर की असली पीड़ा अक्सर संवादों के बीच की रिक्तियों में छिपी रहती है। "आधे-अधूरे" में संवाद मध्यवर्गीय जीवन की टूटन और कटुता को व्यक्त करते हैं। वहाँ भाषा संबंधों को जोड़ती नहीं, कई बार उन्हें और उजागर कर देती है।

धर्मवीर भारती के "अंधायुग" में भाषा काव्यात्मक और प्रतीकात्मक है। वह मिथकीय ऊँचाई और आधुनिक त्रासदी दोनों को साथ लेकर चलती है। सर्वेश्वर की "बकरी" में भाषा व्यंग्यात्मक, लोक-सुलभ और राजनीतिक है। हबीब तनवीर के यहाँ भाषा बहुभाषिक है-हिंदी, उर्दू, छत्तीसगढ़ी, लोक-लय और गीत मिलकर एक जीवित रंग-भाषा बनाते हैं।

भाषा की प्रयोगधर्मिता का एक महत्वपूर्ण पक्ष मौन है। आधुनिक नाटक में मौन केवल संवाद का अभाव नहीं, बल्कि अर्थ का सघन रूप है। जब पात्र बोल नहीं पाते, जब भाषा विफल हो जाती है, तब नाटक अपनी सबसे गहरी बात कहता है।

मंच-संरचना और प्रस्तुति में प्रयोग

प्रयोगधर्मी नाटक का वास्तविक अर्थ मंच पर खुलता है। पाठ में जो संकेत रूप में होता है, मंच पर वह देह, प्रकाश, ध्वनि, वस्तु और गति के माध्यम से जीवित हो जाता है। हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक ने मंच-संरचना में कई महत्वपूर्ण बदलाव किए।

पहला बदलाव यथार्थवादी सजावट से प्रतीकात्मक मंच की ओर है। आधुनिक नाटक में पूरा घर, पूरा महल या पूरा युद्धक्षेत्र बनाने की आवश्यकता नहीं रहती। कुछ वस्तुएँ, प्रकाश की दिशा, ध्वनि और अभिनेताओं की देह-संरचना मिलकर वातावरण निर्मित कर सकते हैं। "आधे-अधूरे" का घर केवल भौतिक घर नहीं, टूटते परिवार की मानसिक संरचना है।

दूसरा बदलाव अभिनय-शैली में है। प्रयोगधर्मी नाटक में अभिनेता केवल चरित्र का अनुकरण नहीं करता; वह कभी-कभी विचार, प्रतीक, कथावाचक या समूह का हिस्सा भी बनता है। हबीब तनवीर के रंगकर्म में कलाकारों की देह, गीत, लय और स्वाभाविकता मंच को जीवंत बनाती है।

तीसरा बदलाव दर्शक-संबंध में है। पारंपरिक प्रोसीनियम मंच दर्शक और अभिनेता के बीच दूरी बनाता है। लोक-रंग और आधुनिक प्रयोग इस दूरी को कम करते हैं। दर्शक को कभी प्रत्यक्ष संबोधित किया जाता है, कभी गीत और टिप्पणी के माध्यम से उसे नाटक की प्रक्रिया में शामिल किया जाता है।

चौथा बदलाव समय और स्थान की प्रस्तुति में है। आधुनिक नाटक में समय रैखिक नहीं रहता। स्मृति, वर्तमान, कल्पना और इतिहास एक साथ उपस्थित हो सकते हैं। यह संरचना आधुनिक जीवन की जटिलता को व्यक्त करने में अधिक सक्षम है।

प्रयोगधर्मी नाटक और सामाजिक आलोचना

हिंदी का प्रयोगधर्मी नाटक केवल कलात्मक नवाचार नहीं है; वह सामाजिक आलोचना का भी माध्यम है। आधुनिक भारत में लोकतंत्र, विकास, राष्ट्रवाद, शिक्षा, परिवार, धर्म, जाति, वर्ग और सत्ता के प्रश्नों ने नाटक को गहरी वैचारिक भूमिका दी।

"अंधेर नगरी" में सत्ता और न्याय का व्यंग्य है। "अंधायुग" में युद्ध और नैतिक अंधकार की आलोचना है। "आधे-अधूरे" में मध्यवर्गीय परिवार का संकट है। "बकरी" में राजनीतिक अवसरवाद और जनता के शोषण का चित्रण है। "एक और द्रोणाचार्य" में शिक्षा-व्यवस्था और सामाजिक अन्याय का प्रश्न है। "कबीरा खड़ा बाजार में" में धार्मिक पाखंड और मानवीय सत्य का संघर्ष है।

प्रयोगधर्मी नाटक सामाजिक यथार्थ को सीधे नारे में नहीं बदलता। वह यथार्थ को ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है कि दर्शक उसके भीतर छिपे अंतर्विरोधों को महसूस करे। यह नाटक उपदेश नहीं देता, बल्कि प्रश्न पैदा करता है। यही इसकी लोकतांत्रिक शक्ति है।

स्त्री-अनुभव और प्रयोगधर्मी नाटक

हिंदी के आधुनिक प्रयोगधर्मी नाटक में स्त्री पात्रों की उपस्थिति विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। मल्लिका, सावित्री, गांधारी, सुरेंद्र वर्मा के स्त्री पात्र, भीष्म साहनी के नाटकों की स्त्रियाँ-ये सभी स्त्री को केवल करुणा या त्याग की मूर्ति के रूप में नहीं, बल्कि जटिल चेतना, निर्णय और संघर्ष के रूप में सामने लाते हैं।

"आषाढ़ का एक दिन" की मल्लिका प्रेम में टूटती है, पर अपनी आंतरिक गरिमा बनाए रखती है। वह कालिदास की प्रेरणा है, पर केवल प्रेरणा बनकर समाप्त नहीं होती; उसका अपना मौन और पीड़ा नाटक की नैतिक शक्ति बनती है। "आधे-अधूरे" की सावित्री हिंदी नाटक की सबसे जटिल स्त्री पात्रों में है। वह दोषरहित नहीं, पर उसकी बेचैनी आधुनिक स्त्री की अपूर्णता, असंतोष और आत्म-खोज को व्यक्त करती है।

प्रयोगधर्मी नाटक ने स्त्री को आदर्शीकृत छवि से मुक्त कर मनुष्य के रूप में देखने का रास्ता बनाया। इस दृष्टि से हिंदी नाटक सामाजिक आधुनिकता का भी दस्तावेज है।

हिंदी प्रयोगधर्मी नाटक की सीमाएँ

प्रयोगधर्मी नाटक की उपलब्धियों के साथ उसकी सीमाओं पर विचार करना भी आवश्यक है। पहली सीमा यह है कि कई बार प्रयोग केवल बौद्धिक या शिल्पगत चमत्कार बनकर रह जाता है और दर्शक से उसका जीवित संबंध टूट जाता है। यदि प्रयोग सामाजिक अनुभव से नहीं जुड़ता, तो वह कृत्रिम प्रतीत होता है।

दूसरी सीमा मंचीय संस्थाओं की कमजोरी है। हिंदी में नाटक लिखे तो गए, पर स्थायी रंगमंचीय संस्थाएँ, नियमित प्रदर्शन-व्यवस्था, आर्थिक सहयोग और दर्शक-वर्ग का विकास अपेक्षित रूप से नहीं हो पाया। इसके कारण कई प्रयोग पाठ में अधिक रहे, मंच पर कम।

तीसरी सीमा भाषा और क्षेत्रीयता से जुड़ी है। हिंदी रंगमंच को अक्सर खड़ी बोली केंद्रित समझा गया, जबकि हिंदी क्षेत्र भाषिक रूप से अत्यंत बहुल है। हबीब तनवीर जैसे रंगकर्मियों ने इस सीमा को तोड़ा, पर यह चुनौती आज भी बनी हुई है।

चौथी सीमा आलोचना की है। हिंदी नाटक की आलोचना अक्सर पाठ-केंद्रित रही है; उसने प्रदर्शन, अभिनय, प्रकाश, ध्वनि, देह और दर्शक-संबंध को पर्याप्त महत्व नहीं दिया। प्रयोगधर्मी नाटक को समझने के लिए रंग-समीक्षा की विकसित परंपरा आवश्यक है।

समकालीन संदर्भ में प्रयोगधर्मी नाटक की प्रासंगिकता

आज डिजिटल मीडिया, सिनेमा, वेब-सीरीज और सोशल मीडिया के युग में रंगमंच के सामने नई चुनौतियाँ हैं। फिर भी प्रयोगधर्मी नाटक की प्रासंगिकता कम नहीं हुई है। बल्कि आज जब समाज तेजी से बदल रहा है, लोकतांत्रिक संवाद संकट में है, सामूहिक स्मृति पर संघर्ष है और मनुष्य डिजिटल भीड़ में अकेला होता जा रहा है, तब रंगमंच की जीवित उपस्थिति और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

समकालीन हिंदी रंगमंच में स्त्रीवादी नाटक, दलित रंगमंच, आदिवासी रंग-अभिव्यक्ति, नुक्कड़ नाटक, विश्वविद्यालयीय रंगकर्म, स्वतंत्र रंग-समूह और डिजिटल मंचीय प्रयोग-ये सभी प्रयोगधर्मी परंपरा को आगे बढ़ा रहे हैं। नाटक अब केवल सभागार में नहीं, सड़क, विश्वविद्यालय परिसर, गाँव, डिजिटल स्क्रीन और वैकल्पिक सांस्कृतिक स्थलों पर भी घटित हो रहा है।

प्रयोगधर्मी नाटक आज भी यह प्रश्न पूछता है कि समाज में मनुष्य की स्वतंत्रता, गरिमा और संवाद की जगह कहाँ है। वह दर्शक को निष्क्रिय मनोरंजन से बाहर निकालकर विचार की असुविधा में ले जाता है। यही उसकी वास्तविक शक्ति है।

निष्कर्ष

हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक की यात्रा आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीय रंगमंच की सबसे जीवंत यात्राओं में से एक है। यह यात्रा भारतेंदु के सामाजिक व्यंग्य से शुरू होकर प्रसाद की काव्यात्मक ऐतिहासिकता, भुवनेश्वर की असंगत चेतना, मोहन राकेश के आधुनिक मनोवैज्ञानिक यथार्थ, धर्मवीर भारती के मिथकीय पुनर्पाठ, सर्वेश्वर की राजनीतिक प्रतीकात्मकता, हबीब तनवीर की लोकधर्मी रंग-क्रांति, शंकर शेष और मुद्राराक्षस की व्यवस्था-विरोधी दृष्टि, सुरेंद्र वर्मा की लैंगिक पुनर्व्याख्या और भीष्म साहनी के मानवीय विवेक तक विस्तृत होती है।

इस परंपरा की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इसने हिंदी नाटक को स्थिर रूपों से मुक्त किया। इसने सिद्ध किया कि नाटक केवल कहानी कहने की विधा नहीं, बल्कि समाज, इतिहास, स्मृति, सत्ता, देह, भाषा और दर्शक के बीच घटित होने वाली जीवित प्रक्रिया है। प्रयोगधर्मी नाटक ने हिंदी रंगमंच को साहित्यिकता से मंचीयता, अभिजातता से लोक-संबंध, रैखिकता से बहुस्तरता और उपदेश से प्रश्नाकुलता की ओर मोड़ा।

हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटक का भविष्य तभी समृद्ध होगा जब वह नए सामाजिक अनुभवों से जुड़ा रहेगा, लोक और आधुनिकता के बीच सृजनात्मक संवाद बनाए रखेगा, भाषिक बहुलता को स्वीकार करेगा, स्त्री, दलित, आदिवासी और हाशिए के अनुभवों को केंद्र में लाएगा तथा मंच को लोकतांत्रिक संवाद के जीवित स्थल के रूप में विकसित करेगा।

अंततः कहा जा सकता है कि हिंदी का प्रयोगधर्मी नाटक केवल नाट्य-शिल्प का प्रयोग नहीं है; वह जीवन के अर्थों, समाज की संरचनाओं और मनुष्य की संभावनाओं पर किया गया रचनात्मक प्रयोग है। यही उसे हिंदी साहित्य और भारतीय रंगमंच की अमूल्य धरोहर बनाता है।

संदर्भ-सूची

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र. अंधेर नगरी. विभिन्न संस्करण, हिंदी साहित्य सम्मेलन/राजकमल आदि।
2. प्रसाद, जयशंकर. स्कंदगुप्त. वाराणसी/दिल्ली: विभिन्न मानक संस्करण।
3. प्रसाद, जयशंकर. ध्रुवस्वामिनी. वाराणसी/दिल्ली: विभिन्न मानक संस्करण।
4. भुवनेश्वर. ताँबे के कीड़े एवं अन्य एकांकी. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन/विभिन्न संस्करण।
5. राकेश, मोहन. आषाढ़ का एक दिन. दिल्ली: राजपाल एंड संस, 1958/विभिन्न संस्करण।
6. राकेश, मोहन. लहरों के राजहंस. दिल्ली: राजपाल एंड संस।
7. राकेश, मोहन. आधे-अधूरे. दिल्ली: राजपाल एंड संस।
8. भारती, धर्मवीर. अंधायुग. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ/विभिन्न संस्करण।
9. सक्सेना, सर्वेश्वरदयाल. बकरी. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन/विभिन्न संस्करण।
10. तनवीर, हबीब. आगरा बाजार. विभिन्न संस्करण।
11. तनवीर, हबीब. चरणदास चोर. विभिन्न संस्करण।
12. शेष, शंकर. एक और द्रोणाचार्य. दिल्ली: विभिन्न संस्करण।
13. साहनी, भीष्म. कबीरा खड़ा बाजार में. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
14. साहनी, भीष्म. हानूश. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
15. वर्मा, सुरेंद्र. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक. दिल्ली: राधाकृष्ण/विभिन्न संस्करण।
16. लाल, लक्ष्मीनारायण. आधुनिक हिंदी नाटक और रंगमंच. दिल्ली: विभिन्न संस्करण।
17. सिंह, नामवर. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ. दिल्ली: लोकभारती/राजकमल।
18. तिवारी, विश्वनाथ प्रसाद. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. दिल्ली: लोकभारती।
19. अवस्थी, सुरेश. Indian Theatre: Traditions of Performance. New Delhi: National Book Trust/विभिन्न संस्करण।
20. Dalmia, Vasudha. Poetics, Plays, and Performances: The Politics of Modern Indian Theatre- New Delhi: Oñford University Press , 2006.
21. Dharwadker, Aparna Bhargava. Theatres of Independence: Drama, Theory, and Urban Performance in India since 1947. Iowa City: University of Iowa Press, 2005.
22. Bhatia, Nandi. Acts of Authority/Acts of Resistance: Theater and Politics in Colonial and Postcolonial India. Ann Arbor: University of Michigan Press, 2004.
23. Hansen, Kathryn. Grounds for Play: The Nautanki Theatre of North India. Berkeley: University of California Press, 1992.
24. Sangeet Natak Akademi / Naya Theatre से संबंधित ऑनलाइन सामग्री, विशेषतः हबीब तनवीर और नया थिएटर के विवरण।
25. Hindi Samay एवं Bharat Discovery पर उपलब्ध मोहन राकेश और "आषाढ़ का एक दिन" से संबंधित सामग्री।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और प्रतिरोध

शिव शंकर प्रसाद सिंह

शोधार्थी, स्नातकोत्तर (हिन्दी) बी0 आर0 ए0 बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सार-संक्षेप

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और प्रतिरोध का प्रश्न आधुनिक हिन्दी साहित्य के सबसे महत्त्वपूर्ण और व्यापक विमर्शों में से एक बनकर उभरा है। बदलती सामाजिक संरचना, वैश्वीकरण, बाजारवाद, शिक्षा के प्रसार, तकनीकी विकास और लोकतांत्रिक चेतना ने स्त्री-जीवन के अनुभवों को नई वैचारिक दिशा प्रदान की है। परिणामस्वरूप समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री का स्वर अधिक मुखर, आत्मचेतस, संघर्षशील और प्रतिरोधधर्मी रूप में सामने आया है। अब स्त्री केवल करुणा, त्याग और सहनशीलता की प्रतीक नहीं रही, बल्कि वह अपनी स्वतंत्र पहचान, अस्तित्व, देह, श्रम, अधिकार और आत्मसम्मान से जुड़े प्रश्नों को स्वयं अभिव्यक्त करने लगी है। समकालीन स्त्री-विमर्श पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचनाओं, लैंगिक असमानताओं और सांस्कृतिक वर्चस्व के विरुद्ध वैचारिक प्रतिरोध का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श का केंद्र स्त्री की अस्मिता, आत्मनिर्णय, लैंगिक समानता, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के प्रश्न हैं। मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, चित्रा मुद्गल, गीतांजलि श्री तथा अन्य लेखिकाओं ने स्त्री-अनुभवों को व्यापक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ते हुए नए विमर्शों को जन्म दिया है। इन उपन्यासों में स्त्री की देह, यौनिकता, ग्रामीण जीवन, श्रम, जातिगत उत्पीड़न, वर्गीय विषमता, मानसिक संघर्ष और दांपत्य संबंधों की जटिलता जैसे विषय प्रमुखता से उपस्थित हैं।

प्रस्तुत शोध आलेख में समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और प्रतिरोध के विविध आयामों का विश्लेषण किया गया है। आलेख में उत्तर-आधुनिक सामाजिक संदर्भ, स्त्री की आत्मचेतना, ग्रामीण एवं श्रमिक स्त्रियों की स्थिति, देह-राजनीति, आर्थिक स्वायत्तता तथा प्रतिरोध की वैचारिक संरचना का विवेचन किया गया है। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, मानवीय समानता और लोकतांत्रिक चेतना का सशक्त माध्यम बन चुका है।

शब्द-कुंजी: स्त्री-अस्मिता, प्रतिरोध, समकालीन हिन्दी उपन्यास, स्त्री-विमर्श, पितृसत्ता, देह-राजनीति, आत्मनिर्णय, उत्तर-आधुनिकता

विषय-परिचर्चा

समकालीन हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श एक केंद्रीय और प्रभावशाली वैचारिक प्रवृत्ति के रूप में स्थापित हो चुका है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तथा इक्कीसवीं शताब्दी के सामाजिक परिवर्तनों ने भारतीय समाज की संरचना और मान्यताओं को गहराई से प्रभावित किया है। शिक्षा के प्रसार, औद्योगीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों और संचार माध्यमों के विस्तार ने स्त्री की सामाजिक स्थिति में उल्लेखनीय परिवर्तन उत्पन्न किए। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप स्त्री अपने अस्तित्व, अधिकार, आत्मसम्मान और अस्मिता के प्रति अधिक सजग हुई है।[1] अब वह केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित रहने के बजाय सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक स्तर पर अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करने का प्रयास कर रही है। साहित्य ने इस बदलती चेतना को गहराई से ग्रहण किया और स्त्री के अनुभवों, संघर्षों, संवेदनाओं तथा प्रतिरोध को अभिव्यक्ति का केंद्र बनाया। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री का स्वर पहले की अपेक्षा अधिक आत्मचेतस, प्रश्नाकुल और प्रतिरोधधर्मी रूप में सामने आता है। अब वह केवल त्याग, सहनशीलता और आदर्श गृहिणी की प्रतीक नहीं रह गई, बल्कि सामाजिक संरचनाओं, पारिवारिक बंधनों, पितृसत्तात्मक नियंत्रणों और लैंगिक असमानताओं के विरुद्ध प्रश्न उठाने वाली व्यक्तित्व के रूप में दिखाई देती है।[2] इस साहित्य में स्त्री की पहचान केवल पत्नी, माँ या गृहिणी के रूप में नहीं की जाती, बल्कि उसे स्वतंत्र विचारों, इच्छाओं, आकांक्षाओं और आत्मनिर्णय की क्षमता से संपन्न मनुष्य के रूप में देखा जाता है। वस्तुतः समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता का प्रश्न केवल व्यक्तिगत संघर्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक न्याय, आर्थिक स्वतंत्रता, देह-राजनीति, यौनिकता, श्रम, जाति और वर्ग जैसे व्यापक मुद्दों से भी जुड़ जाता है। इस प्रकार स्त्री-विमर्श आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक चेतना का एक सशक्त माध्यम बनकर उभरता है। विचारणीय प्रश्न है कि स्त्री-अस्मिता की मूल अवधारणा क्या है? 'अस्मिता' का सामान्य अर्थ हैकृस्वत्व, पहचान, आत्मबोध और अपने अस्तित्व के प्रति सजग चेतना।

वस्तुतः स्त्री-अस्मिता से आशय स्त्री की उस स्वतंत्र पहचान से है, जिसमें वह स्वयं को केवल किसी संबंध-जैसे पत्नी, माँ, पुत्री या बहू-के माध्यम से नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र और पूर्ण मनुष्य के रूप में देखती है।[3] यह अवधारणा स्त्री के आत्मसम्मान, आत्मनिर्णय, वैचारिक स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा से गहरे रूप में जुड़ी हुई है। यह ऐतिहासिक रूप से बिल्कुल सत्य है कि लंबे समय तक पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की पहचान पुरुष-केन्द्रित रही, जहाँ उसकी भूमिका परिवार, परंपरा और सामाजिक मान्यताओं द्वारा निर्धारित की जाती थी। परिणामस्वरूप स्त्री के व्यक्तिगत अनुभव, इच्छाएँ और स्वतंत्र निर्णय अक्सर गौण माने जाते रहे। समकालीन स्त्री-विमर्श इसी पितृसत्तात्मक संरचना और पुरुष-प्रधान मानसिकता का आलोचनात्मक प्रतिरोध करता है। यह स्त्री को स्वतंत्र वैचारिक सत्ता, संवेदनशील व्यक्तित्व और सामाजिक अधिकारों से संपन्न मनुष्य के रूप में स्वीकार करने की मांग करता है।[4] स्त्री-अस्मिता का प्रश्न केवल स्त्री-पुरुष समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि मानसिक स्वतंत्रता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व और सामाजिक न्याय जैसे व्यापक आयामों से भी जुड़ा हुआ है। आधुनिक स्त्री अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने की आकांक्षा रखती है और अपने अस्तित्व को किसी बाहरी नियंत्रण के अधीन नहीं मानती।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में यह चेतना अत्यंत स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यहाँ स्त्री विवाह, प्रेम, देह, मातृत्व, श्रम और संबंधों जैसे प्रश्नों पर अपनी स्वतंत्र दृष्टि विकसित करती है। वह सामाजिक रूढ़ियों और पारंपरिक नैतिक मानदंडों को चुनौती देते हुए अपने अधिकारों और इच्छाओं की अभिव्यक्ति करती है। वस्तुतः स्त्री-अस्मिता का विमर्श हिन्दी साहित्य में केवल वैचारिक बहस नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और मानवीय समानता की स्थापना का सशक्त माध्यम बनकर उभरता है।

प्रत्येक युग के साहित्य में तदयुगीन प्रवृतियां अभिव्यक्त होती हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में उत्तर-आधुनिक दृष्टि प्रखरता के साथ अभिव्यक्त होती है। उत्तर-आधुनिकता ने साहित्य, समाज और संस्कृति में स्थापित मान्यताओं, सत्ता-संरचनाओं तथा परंपरागत मूल्यों पर गंभीर प्रश्नचिह्न लगाया। इस वैचारिक प्रवृत्ति ने उन आवाजों और अनुभवों को केंद्र में लाने का प्रयास किया, जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा के विमर्शों में उपेक्षित रखा गया था। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से स्त्री-विमर्श के रूप में दिखाई देती है, जहाँ स्त्री अपनी अस्मिता, अधिकार और स्वतंत्र अस्तित्व के प्रश्नों को अधिक मुखरता से अभिव्यक्त करती है।[5] उत्तर-आधुनिक दृष्टि ने स्त्री को केवल सामाजिक संरचनाओं की निष्क्रिय इकाई मानने के बजाय उसे एक स्वतंत्र वैचारिक सत्ता के रूप में देखने की दृष्टि विकसित की। वैश्वीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति ने स्त्री-जीवन में अनेक नए अवसर प्रदान किए। शिक्षा, रोजगार और आर्थिक स्वावलंबन के क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी, किंतु दूसरी ओर बाजारवादी व्यवस्था ने स्त्री-देह को उपभोग और प्रदर्शन की वस्तु के रूप में भी प्रस्तुत किया।[6] समकालीन लेखिकाओं ने इस अंतर्विरोध को गंभीरता से उठाया है, जहाँ एक ओर स्त्री स्वतंत्रता की ओर अग्रसर दिखाई देती है, वहीं दूसरी ओर वह नए प्रकार के सांस्कृतिक और मानसिक शोषण का सामना भी करती है। प्रभा खेतान ने अपने साहित्य और आत्मकथात्मक लेखन में स्त्री-देह, आर्थिक पराधीनता, भावनात्मक शोषण और मानसिक संघर्ष के प्रश्नों को गहरी संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया। उनकी कृति अन्या से अनन्या स्त्री की आत्मचेतना, आत्मसंघर्ष और स्वतंत्र पहचान की खोज का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज मानी जाती है।[7]

उत्तर-आधुनिक समाज में स्त्री की समस्याएँ केवल पारंपरिक सामाजिक बंधनों तक सीमित नहीं रह गई हैं। अकेलापन, मानसिक तनाव, संबंधों की अस्थिरता, पहचान का संकट और भावनात्मक विखंडन भी आधुनिक स्त्री-अनुभव का हिस्सा बन चुके हैं। समकालीन हिंदी उपन्यास इन जटिलताओं को अत्यंत संवेदनशील और यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त करते हैं।

वस्तुतः उत्तर-आधुनिक चेतना किसी भौतिक अथवा भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित न होकर सर्वव्यापी चेतना के रूप में प्रकट हुई। समकालीन साहित्यों में इसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट दृष्टव्य है। इस सन्दर्भ में समकालीन हिन्दी उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री का चित्रण विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि यह स्त्री-विमर्श को केवल शहरी मध्यवर्गीय अनुभवों तक सीमित नहीं रहने देता। ग्रामीण समाज की स्त्री लंबे समय से जातिगत भेदभाव, आर्थिक विषमता, अशिक्षा, श्रम-शोषण और पितृसत्तात्मक नियंत्रण जैसी अनेक समस्याओं का सामना करती रही है। फिर भी समकालीन साहित्य में वह केवल उत्पीड़न की शिकार और सहनशील पात्र के रूप में नहीं, बल्कि अन्याय के विरुद्ध संघर्षरत और प्रतिरोधशील व्यक्तित्व के रूप में उभरती है।[8] यह परिवर्तन हिंदी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता के व्यापक और बहुआयामी विकास का संकेत देता है। मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण समाज की स्त्रियों के जीवन-संघर्ष, उनकी पीड़ा, इच्छाओं और प्रतिरोध को अत्यंत प्रामाणिकता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। उनके उपन्यास चाक में स्त्री अपने अस्तित्व, सम्मान और अधिकारों की रक्षा के लिए सामाजिक रूढ़ियों तथा पितृसत्तात्मक मान्यताओं का खुलकर विरोध करती है।[9] मैत्रेयी पुष्पा के स्त्री-पात्र पारंपरिक नैतिकता और सामाजिक बंधनों को निष्क्रिय रूप से स्वीकार नहीं करते, बल्कि वे अपने आत्मसम्मान और स्वतंत्र पहचान के लिए संघर्ष करते हैं।

उनके साहित्य में ग्रामीण स्त्री के श्रम, यौन-शोषण, सामाजिक उपेक्षा और आर्थिक निर्भरता का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण मिलता है।[10] वे यह स्पष्ट करती हैं कि ग्रामीण स्त्री केवल घरेलू दायित्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह खेत, परिवार और समाज के अनेक स्तरों पर श्रम करती हुई भी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत रहती है। वस्तुतः समकालीन हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण स्त्री की यह

संघर्षशील छवि विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्त्री-विमर्श को व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान करती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-अस्मिता और प्रतिरोध का प्रश्न केवल शिक्षित शहरी स्त्री तक सीमित नहीं, बल्कि भारतीय समाज की विविध सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-देह, यौनिकता और स्वतंत्रता के प्रश्नों को नई वैचारिक दृष्टि से देखा गया है। लंबे समय तक हिन्दी साहित्य और समाज में स्त्री-देह को नैतिकता, मर्यादा और सामाजिक नियंत्रण के दायरे में सीमित रखा गया। स्त्री की इच्छाओं और यौनिकता पर खुलकर चर्चा करना वर्जित माना जाता था, जबकि पुरुष की स्वतंत्रता को अपेक्षाकृत सहज रूप से स्वीकार किया जाता था।[11] आधुनिक स्त्री-विमर्श ने इस दोहरे मानदंड को चुनौती देते हुए स्त्री-देह को उसकी अस्मिता, आत्मनिर्णय और स्वतंत्र अस्तित्व से जोड़कर देखने की दृष्टि विकसित की। अब स्त्री अपनी इच्छाओं, भावनाओं और शारीरिक अनुभवों को व्यक्त करने में संकोच नहीं करती, बल्कि उन्हें अपने मानवीय अधिकार का हिस्सा मानती है। मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों में स्त्री की वैचारिक स्वतंत्रता, यौनिक इच्छाओं और सामाजिक बंधनों के विरुद्ध उसके संघर्ष को अत्यंत निर्भीकता से प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यास कठगुलाब में स्त्री-पात्र पारंपरिक नैतिकता और रूढ़ सामाजिक धारणाओं का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं।[12] मृदुला गर्ग के साहित्य में स्त्री केवल सामाजिक नियमों का पालन करने वाली निष्क्रिय पात्र नहीं, बल्कि अपने जीवन और देह के विषय में स्वयं निर्णय लेने वाली स्वतंत्र चेतना के रूप में उभरती है।

इसी प्रकार कृष्णा सोबती ने स्त्री-यौनिकता को स्वाभाविक और मानवीय अनुभव के रूप में प्रस्तुत किया। उनके साहित्य में स्त्री अपनी इच्छाओं और भावनाओं को अपराध-बोध के साथ नहीं, बल्कि आत्मविश्वास और स्वाभाविकता के साथ स्वीकार करती है।[13] यह दृष्टि हिन्दी साहित्य में स्त्री की मानसिक मुक्ति और स्वतंत्र पहचान की स्थापना की दिशा में अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-देह और यौनिकता की यह नई व्याख्या स्त्री-विमर्श को अधिक व्यापक और गहन बनाती है। यह प्रवृत्ति न केवल पितृसत्तात्मक नैतिकता को चुनौती देती है, बल्कि स्त्री को पूर्ण मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता के साथ देखने की नई साहित्यिक दृष्टि भी प्रदान करती है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-विमर्श का स्वरूप अत्यंत व्यापक हो गया है। अब यह विमर्श केवल स्त्री-पुरुष असमानता या पारिवारिक दमन तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि वर्ग, श्रम, आर्थिक विषमता और सामाजिक न्याय जैसे प्रश्नों से भी गहराई से जुड़ गया है। श्रमिक स्त्री का जीवन विशेष रूप से जटिल है, क्योंकि उसे दोहरे शोषण का सामना करना पड़ता है-एक ओर आर्थिक और वर्गीय शोषण, तो दूसरी ओर लैंगिक उत्पीड़न और पितृसत्तात्मक नियंत्रण।[14] वह घर और कार्यस्थल दोनों स्थानों पर श्रम करती है, किंतु उसके श्रम को उचित सम्मान और पहचान प्रायः प्राप्त नहीं होती। समकालीन हिन्दी उपन्यासों में श्रमिक स्त्री की पीड़ा, संघर्ष और प्रतिरोध को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया गया है। चित्रा मुद्गल ने अपने साहित्य में श्रमिक वर्ग, मजदूर आंदोलनों और स्त्री-अस्मिता के प्रश्नों को प्रमुखता से उठाया है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास आवां में मजदूर वर्ग के संघर्ष, श्रमिक जीवन की कठिनाइयों तथा स्त्री की सामाजिक और आर्थिक असुरक्षा को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है।[15] इस उपन्यास में स्त्री केवल सहानुभूति की पात्र नहीं, बल्कि श्रम, संघर्ष और प्रतिरोध की सक्रिय भागीदार के रूप में दिखाई देती है। वहीं चित्रा मुद्गल का साहित्य यह स्पष्ट करता है कि स्त्री-मुक्ति केवल लैंगिक समानता प्राप्त कर लेने से संभव नहीं है। जब तक आर्थिक न्याय, श्रम का सम्मान और सामाजिक समानता स्थापित नहीं होगी, तब तक स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता अधूरी रहेगी। उनके साहित्य में वर्गीय संघर्ष और स्त्री-विमर्श एक-दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं, जहाँ स्त्री अपने अस्तित्व और अधिकारों के लिए सामाजिक तथा आर्थिक दोनों स्तरों पर संघर्ष करती है। वस्तुतः समकालीन हिन्दी उपन्यासों में श्रमिक स्त्री की उपस्थिति स्त्री-विमर्श को अधिक यथार्थवादी और सामाजिक रूप से व्यापक बनाती है। यह साहित्य स्पष्ट करता है कि स्त्री-अस्मिता का प्रश्न केवल लैंगिक नहीं, बल्कि वर्गीय और आर्थिक संरचनाओं से भी गहराई से संबद्ध है।

परिवर्तनशील युगीन प्रवृतियों ने पारिवारिक एवं सामाजिक संरचना को भी कई स्तरों पर प्रभावित किया है जिनका चित्रण समकालीन साहित्यों में स्वाभाविक है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में दांपत्य संबंधों की जटिलता, भावनात्मक विघटन और स्त्री के मानसिक संघर्षों का अत्यंत सूक्ष्म तथा संवेदनशील चित्रण मिलता है। आधुनिक जीवन-शैली, शहरीकरण, व्यक्तिवाद और बदलती सामाजिक संरचनाओं ने पारिवारिक संबंधों की प्रकृति को गहराई से प्रभावित किया है। परिणामस्वरूप दांपत्य संबंधों में संवादहीनता, असंतोष, अकेलापन और भावनात्मक दूरी जैसी समस्याएँ अधिक स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आई हैं।[16] समकालीन स्त्री केवल पारिवारिक मर्यादा निभाने वाली निष्क्रिय पात्र नहीं रह गई, बल्कि वह अपने संबंधों में समानता, सम्मान और आत्मीयता की अपेक्षा करने लगी है। उषा प्रियंवदा तथा मन्नू भंडारी जैसी लेखिकाओं ने शिक्षित मध्यवर्गीय स्त्री के मानसिक द्वंद्व, भावनात्मक रिक्तता और आत्मसंघर्ष को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया

है। उनके साहित्य में आधुनिक स्त्री बाहरी रूप से शिक्षित और आत्मनिर्भर दिखाई देती है, किंतु भीतर से वह संबंधों के विघटन, अकेलेपन और असुरक्षा की गहरी पीड़ा से गुजरती है। उषा प्रियंवदा की रचनाओं में स्त्री का मानसिक संसार अत्यंत संवेदनशीलता के साथ उभरता है, जहाँ वह प्रेम, आत्मसम्मान और सामाजिक अपेक्षाओं के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है।

मन्नू भंडारी के साहित्य में भी दांपत्य संबंधों की विडंबनाएँ और टूटते पारिवारिक संबंधों का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। उनके स्त्री-पात्र परंपरागत दांपत्य व्यवस्था को बिना प्रश्न किए स्वीकार नहीं करते, बल्कि संबंधों में समानता, सम्मान और भावनात्मक संतुलन की मांग करते हैं।[17] वे अपनी अस्मिता और आत्मसम्मान को बनाए रखते हुए संबंधों को नए मानवीय आधार पर देखने की कोशिश करते हैं। वस्तुतः समकालीन हिन्दी उपन्यासों में दांपत्य संबंध केवल सामाजिक संस्था के रूप में नहीं, बल्कि मानसिक, भावनात्मक और अस्तित्वगत संघर्षों के क्षेत्र के रूप में चित्रित होते हैं। यह साहित्य आधुनिक स्त्री के आंतरिक संसार, उसकी संवेदनाओं और आत्मसम्मान की आकांक्षा को गहरी मानवीय दृष्टि से अभिव्यक्त करता है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-प्रतिरोध केवल बाहरी सामाजिक संघर्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि वह गहरी मानसिक, वैचारिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में भी विकसित हुआ है। आधुनिक स्त्री अब पितृसत्तात्मक व्यवस्था, लैंगिक असमानता और परंपरागत सामाजिक मान्यताओं को स्वाभाविक सत्य मानकर स्वीकार नहीं करती। वह उन संरचनाओं पर प्रश्न उठाती है, जिन्होंने लंबे समय तक स्त्री की स्वतंत्रता, इच्छाओं और अस्तित्व को नियंत्रित किया।[18] समकालीन स्त्री-विमर्श इस बात पर बल देता है कि प्रतिरोध केवल विद्रोह या संघर्ष का बाहरी रूप नहीं, बल्कि आत्मचेतना और वैचारिक जागरूकता की प्रक्रिया भी है।

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री का प्रतिरोध अनेक रूपों में व्यक्त होता है। कहीं वह सामाजिक बंधनों और रूढ़ नैतिक मानदंडों के विरुद्ध प्रत्यक्ष विद्रोह करती है, तो कहीं शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता, वैचारिक स्वायत्तता और आत्मनिर्णय के माध्यम से अपनी स्वतंत्र पहचान स्थापित करती है। यह प्रतिरोध स्त्री को निष्क्रिय और आज्ञाकारी भूमिका से बाहर निकालकर सक्रिय, विचारशील और आत्मसम्मान से युक्त व्यक्तित्व के रूप में स्थापित करता है। समकालीन लेखिकाओं ने स्त्री की इसी संघर्षशील चेतना और आंतरिक शक्ति को साहित्य में अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया है।

इस दौर में गीतांजलि श्री के साहित्य में स्त्री की स्मृति, पहचान, अकेलापन और अस्तित्व-बोध के प्रश्नों को उत्तर-आधुनिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। उनके उपन्यास रेत समाधि में स्त्री अपने जीवन, संबंधों और अनुभवों को नए अर्थों में परिभाषित करती दिखाई देती है।[19] यहाँ स्त्री केवल सामाजिक बंधनों से मुक्त होने का प्रयास नहीं करती, बल्कि वह अपने आत्म-अस्तित्व और जीवन के अर्थ की खोज भी करती है। वस्तुतः समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-प्रतिरोध केवल सामाजिक विद्रोह नहीं, बल्कि आत्म-अन्वेषण, वैचारिक स्वतंत्रता और अस्तित्व-बोध की व्यापक प्रक्रिया बनकर उभरता है। यह साहित्य स्त्री की चेतना, आत्मसम्मान और स्वतंत्र पहचान की स्थापना को आधुनिक लोकतांत्रिक समाज की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और प्रतिरोध का प्रश्न हिन्दी साहित्य के सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली वैचारिक विमर्शों में से एक के रूप में स्थापित हो चुका है। आधुनिक सामाजिक परिवर्तनों, शिक्षा-विस्तार, वैश्वीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों और स्त्री-चेतना के विकास ने भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका और पहचान को नए संदर्भ प्रदान किए हैं। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप स्त्री अपने अस्तित्व, अधिकार, आत्मसम्मान और स्वतंत्रता के प्रति अधिक सजग हुई है। समकालीन हिन्दी उपन्यासों ने इस बदलती चेतना को व्यापक और गहन अभिव्यक्ति प्रदान की है, जिसके कारण स्त्री-विमर्श साहित्य का केंद्रीय विषय बनकर उभरा है। इन उपन्यासों में स्त्री केवल करुणा, त्याग और सहनशीलता की प्रतीक नहीं रह गई, बल्कि वह संघर्षशील, आत्मनिर्णयी, वैचारिक रूप से स्वतंत्र और प्रतिरोधधर्मी व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है। मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण स्त्री के जीवन-संघर्ष, सामाजिक उपेक्षा और प्रतिरोध को सशक्त स्वर दिया, जबकि मृदुला गर्ग ने स्त्री-देह, यौनिकता और वैचारिक स्वतंत्रता के प्रश्नों को नई दृष्टि से प्रस्तुत किया। इसी प्रकार चित्रा मुद्गल ने श्रमिक स्त्री, वर्गीय विषमता और आर्थिक शोषण जैसे मुद्दों को केंद्र में रखकर स्त्री-विमर्श को व्यापक सामाजिक संदर्भ प्रदान किया।

समकालीन स्त्री-विमर्श का महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह स्त्री की स्वतंत्र पहचान, आत्मसम्मान, समानता और आत्मनिर्णय के अधिकार की मांग करता है। यह विमर्श केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, मानवीय गरिमा और लोकतांत्रिक चेतना का सशक्त माध्यम बन चुका है। इसमें स्त्री के अनुभवों को समाज, संस्कृति, वर्ग, श्रम और सत्ता-संरचनाओं से जोड़कर देखा गया है, जिससे हिन्दी साहित्य का दायरा अधिक व्यापक और बहुआयामी हुआ है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्त्री-अस्मिता और प्रतिरोध की अभिव्यक्ति ने हिन्दी साहित्य को अधिक संवेदनशील, मानवीय और यथार्थपरक बनाया है। यह साहित्य स्त्री को 'विषय' के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और मानवीय स्वतंत्रता की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है।

सन्दर्भ-

1. खेतान, प्रभा, स्त्री उपेक्षिता, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 22।
2. सिंह, नामवर, कहानी: नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 117।
3. पचौरी, सुधीश, स्त्री देह के विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 39।
4. व्होरा, आशारानी, भारतीय नारी: दशा और दिशा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1994, पृ. 104।
5. पांडेय, मैनेजर, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 154।
6. खेतान, प्रभा, बाजार के बीच: बाजार के खिलाफ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 62।
7. खेतान, प्रभा, अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 91।
8. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, समकालीन हिंदी साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, 2011, पृ. 133।
9. पुष्पा, मैत्रेयी, चाक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 77।
10. पुष्पा, मैत्रेयी, खुली खिड़कियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 58।
11. पचौरी, सुधीश, स्त्री देह के विमर्श, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 82।
12. गर्ग, मृदुला, कठगुलाब, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002, पृ. 96।
13. सोबती, कृष्णा, मित्रो मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ. 67।
14. सिंह, नामवर, दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 141।
15. मुद्गल, चित्रा, आवां, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 118।
16. प्रियंवदा, उषा, वापसी और अन्य कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 52।
17. भंडारी, मन्नू, आपका बंटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 121।
18. खेतान, प्रभा, स्त्री उपेक्षिता, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2003, पृ. 113।
19. श्री, गीतांजलि, रेत समाधि, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 144।